सरस्वती

सचित्र मासिकपत्रिका।

भाग ६

सम्पादक

पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी।

१९०५

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

सूचीपत्र।

☞ जिन लेखों के पहले * ऐसे चिन्ह हैं वे सचित्र हैं।

नम्बर	लेख	लेखक	पृष्ठ

१—आध्यात्मिक विषय।

नम्बर	लेख	लेखक	पृष्ठ
१	*आत्मा के अमरत्व का वैज्ञानिक प्रमाण ...	सम्पादक	२३६
२	*कुण्डलिनी	"	९७
३	प्रपञ्च	गवीश	३५१
४	पुनर्जन्म का प्रत्यक्ष प्रमाण	सम्पादक	४२१
५	सृष्टि-विचार	"	१७१

२—आख्यायिका।

नम्बर	लेख	लेखक	पृष्ठ
१	एक शिकारी की सच्ची कहानी ..	श्रीयुक्त निज़ामशाह	२९९
२	नरक-गुलज़ार	लाला पार्वती नन्दन	३३८
३	पत्नीव्रत	भट्टाचार्य्य ...	४१९
४	बिजुली	लाला पार्वतीनन्दन	२३
५	महाराज सूरजसिंह और बादलसिंह की लड़ाई	पण्डित बदरीदत्त-पांडे	१४५
६	मेरी चम्पा	लाला पार्वतीनन्दन	१३२
७	मैं तुम्हारा कौन हूं? ...	"	२[illegible]
८	राज-टीका	"	४७८
९	सम्पादक	"	१६७
[illegible]	*हंस-सन्देश	सम्पादक	२१२

३—ऐतिहासिक विषय।

नम्बर	लेख	लेखक	पृष्ठ
[illegible]	कलकत्ते की काल कोठरी	सम्पादक ...	३०,६९
२	जहांगीर के आत्मचरित का एक नमूना ...	"	३९८
३	जा[illegible]न-सागर के विजयीवीर ...	"	३४५

नम्बर	लेख	लेखक	पृष्ठ
४	राजा युधिष्ठिर का काल	पण्डित गणपति जानकीराम दुबे, बी० ए०	७७
५	राजायुधिष्ठिर का समय	पण्डित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी	१४६
६	,, ,, ,,	सम्पादक	२१८
७	लोमहर्षण शारीरिक दण्ड	,,	३१८
८	वाल्मीकि-रामायण और बौद्धमत	,,	४०५

कविता ।

नम्बर	लेख	लेखक	पृष्ठ
१	अन्योक्ति-सप्तक	पण्डित श्यामनाथ शर्म्मा	१७०
२	ईश-वन्दना	पण्डित गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री	१३
३	कलङ्की को पेड्स	पण्डित गिरिधर शर्म्मा	४६०
४	*कुमुदसुन्दरी	सम्पादक	२११
५	क्रोधाष्टक	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	४१७
६	ग्रन्थकारों से विनय	सम्पादक	५३
७	ग्रीस	पण्डित सनातन शर्म्मा सकलानी	३१०
८	द्वारका-वर्णन	श्रीमन्त प्रिंस बलवन्तराव सैंधिया	५४
९	निद्रा	पण्डित सनातन शर्म्मा सकलानी	२५७
१०	नौकरों पर सख़्ती करने का परिणाम	सैयद अलताफहुसेन हाली)	३७६
११	प्रभात-प्रभा	पण्डित सत्यशरण रतूड़ी	३३५
१२	पावस-राज	पण्डित सनातत शर्म्मा सकलानी	२२७
१३	पुनः करो उद्योग	पण्डित गोविन्दशरण त्रिपाठी	२११
१४	प्रेम-पताका	पण्डित सत्यशरण रतूड़ी	२९८
१५	महाकवि भारवि का शरद्वर्णन	पण्डित गिरिधर शर्म्मा	३७३
१६	*महाश्वेता	सम्पादक	२३७
१७	मित्रता	पण्डित कालीशङ्कर व्यास	९३
१८	मित्र-पञ्चक	सेठ कन्हैयालाल पोद्दार	१७०
१९	मेरी चम्पा	पण्डित सनातन शर्म्मा सकलानी	२५९
२०	*रम्भा	सम्पादक	९२
२१	रसाल-पञ्चक	पण्डित जनार्दन झा	१२९
२२	लार्ड अलिन-कुमारी	पण्डित सनातन शर्म्मा सकलानो	४५९
२३	वसन्त	पण्डित श्रीधर पाठक	[illegible]
२४	,,	पण्डित सत्यनारायण	[illegible]
२५	वसन्तराज	पण्डित सनातन शर्म्मा सकलानो	१२८
२६	विचारक्षीण प्राणी	बाबू कृष्णजी सहाय	१३१
२७	शरत्स्वागत	पण्डित सत्यशरण रतूड़ी	४१७
२८	शिक्षा-शतक	पण्डित जनार्दन झा	१४,५६

नम्बर	लेख	लेखक	पृष्ट
२९	शिशिर-पथिक	पण्डित रामचन्द्र शुक्ल	८८
३०	सभ्यता	पण्डित सत्यशरण रतूड़ी	१३
३१	सरस्वती-अष्टक	पण्डित सनातन शर्म्मा सक..नी	९१
३२	स्वदेश-प्रीति	पण्डित चण्डिका प्रसाद अवस्थी	३७५
३३	हेसान्योक्तियां	पण्डित श्यामनाथ शर्म्मा	३३६
३४	हे भारत	बाबू रामरणविजयसिंह	४१८
३५	हेमन्त	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	१५

५—जीवन-चरित।

१	*कविवर लछीराम	सम्पादक	१५४
२	*कुमारी तरूदत्त	पण्डित उमाशङ्कर द्विवेदी	१९१
३	गुरु तेगबहादुरसिंह	बाबू वेणीप्रसाद	१२३
४	*जापान की महारानी हरो-को	श्रीयुक्त शिवप्रसाद दलपतराम पण्डित	२६३
५	*जोधाबाई	वङ्ग-महिला	३३१
६	*डाकृर ग्रियर्सन	बाबू काशीप्रसाद	४४
७	*पण्डित बलदेवप्रसाद मिश्र	सम्पादक	४३४
८	पण्डित मथुराप्रसाद मिश्र	,,	२४६
९	*प्रसिद्ध मूर्तिकार म्हातरे	,,	२०६
१०	*बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री	चौधरी पुरुषोत्तम प्रसाद शर्म्मा	८३
११	महा-कवि माघ	सेठ कन्हैयालाल पोद्दार	२८७
१२	*महाराज रघुराजसिंहजू देव	बाबू जीतनसिंह	२
१३	*राजा रामपालसिंह सी० आई० ई०	राजा पृथ्वीपालसिंह	१६३
१४	*लार्ड कर्जन-लार्ड-मिंटो	सम्पादक	३७०
१५	*श्री-आत्मानन्द स्वयंप्रकाश सरस्वती	राय देवीप्रसाद बी० ए०, बी० एल.	४१२
१६	*श्रीयुक्त सत्यव्रत सामश्रमी	बाबू जगन्नाथप्रसाद वर्म्मा	४५४
१७	*सवाई जयसिंह	सम्पादक	१२५

६—देश, नगर, स्थल, जात्यादि-वर्णन।

१	*ओङ्कार-मान्धाता	सम्पादक	२९
२	*नैपाल	,,	२६४
३	फीजी द्वीप के असभ्य निवासी	बाबू कृपाशङ्कर निगम, बी० ए०	२७६
४	*बनारस	सम्पादक	४५१
५	*मक्का-तीर्थ	लाला पार्वतीनन्दन	४४२
६	*मलाबार	सम्पादक	९३

७—फुटकर विषय ।

नम्बर	लेख	लेखक	पृष्ठ
१	अनुमोदन का अन्त	सम्पादक	५७
२	आख्यायिका	,,	२४१
३	*कांग्रेस के कर्ता	,,	१६
४	क्रोध	,,	२६१
५	जापान की जीत का कारण	,,	३२१
६	*जापान की स्त्रियां	,,	२१
७	जापान में स्त्री-शिक्षा	,,	१०३
८	*जालन्धर का कन्या-महाविद्यालय	,,	१४२
९	*बंबई की प्रदर्शिनी	पण्डित माधवराव सप्रे, बी० ए०	६५
१०	भारत महिला-परिषद	सौभाग्यवती रामदुलारी दुबे	६०
११	मनोरञ्जक श्लोक	सम्पादक	४०,२००
१२	,,	पाण्डेय लोचनप्रसाद	२४४
१३	,, (जरामहात्म्य)	पण्डित पद्मसिंह शर्म्मा	३६६
१४	मैं कैसे डाकृर हो गया ?	सम्पादक	१०५
१५	विविध-विषय †	सम्पादक	१,४१, ८१, १२१, १६१, २०१, २४५, २८५, ३२७, ३६७, ४०९, ४४१
१६	*सबसे बड़ा हीरा	सम्पादक	३८९
१७	सम्मिलित-हिन्दू-कुटुम्ब-प्रथा के दूषण	पण्डित श्यामविहारी मिश्र, एम० ए० और पण्डित शुकदेव विहारी मिश्र, बी० ए०	४८६
१८	स्वाधीनता की भूमिका	सम्पादक	३०२

८—विचित्र-विषय ।

नम्बर	लेख	लेखक	पृष्ठ
१	अन्तःसाक्षित्व विद्या	सम्पादक	१५५
२	*आकाश में निराधार स्थिति	,,	३८२
३	*कस्तूरी मृग	,,	१८०
४	*पत्थर का एक अद्भुत गोला	पण्डित देवीप्रसाद शुक्ल, बी० ए०	३४६
५	*विस्यूवियस	सम्पादक	१९
६	*सप्त-इचर्य्य (मिश्र के पिरामिड)	पण्डित गिरिजादत्त वाजपेयी, एम० ए०	१०९
७	*हवाई कोठरी	पण्डित मधुमङ्गल मिश्र, बी ए०	३५३
८	*हिम-स्फटिक	पण्डित सरयूनारायण त्रिपाठी, एम० ए०	३४८

† विविध विषयों में अनेक विषय सचित्र हैं ।

नम्बर	लेख	लेखक	पृष्ठ

६—वैज्ञानिक विषय।

नम्बर	लेख	लेखक	पृष्ठ
१	*आकाश-मण्डल ...	... बाबू जीतनसिंह ...	... १८६
२	*आँख ...	... पण्डित चन्द्रधर गुलेरी, बी ए०	३६, ७८, ११५, १९६, २४२, ३२४, ३५६,
३	*क्या चिड़ियां भी सूँघती हैं?	... सम्पादक ...	... १४१
४	*तार-द्वारा ख़बर भेजने का यन्त्र	... ,, ...	... ९५
५	पौधों की नींद ...	... पण्डित सूर्य्यनारायण दीक्षित, बी० ए०	२६१
६	पौधों में रस-प्रवाह ...	... ,, ...	... १०६
७	फोटोग्राफ़ी के उपयोग ...	... सौभाग्यवती रामदुलारी दुबे	... २७३
८	*भूकम्प ...	... बाबू मालिक्यचन्द्र जैन	... २२७
९	*मार्तण्ड-महिमा ..	... सम्पादक ...	... ३७७
१०	वानस्पतिक सज्ञानता ...	... पण्डित सूर्य्यनारायण दीक्षित, बी ए०	४००
११	*व्योम-विहरण ...	... सम्पादक ...	३१५, ३४०

१०—साहित्य-विषय।

नम्बर	लेख	लेखक	पृष्ठ
१	कालिदास की वैवाहिक कविता	... सम्पादक ...	... २२३
२	कैथी (उत्तर) ...	... ,, ...	... ४३९
३	,, (प्रतिवाद) ...	... रेवरंड एड्विन ग्रीव्स ...	... ४३९
४	"ज़माना" और देवनागरी लिपि	... सम्पादक ...	... ४०३
५	देवनागरी लिपि का उत्पत्ति-काल	... ,, ...	... ३९२
६	देशव्यापक लिपि ...	... ,, ...	... ३०९
७	पुस्तक-परीक्षा ...	... ,,	३८, ८०, ११९, १९८, २३९, २८० ३६२, ४०५, ४९५
८	पूर्वी हिन्दी ...	... ,, ...	... १८२
९	पूर्वी हिन्दी का एक और नमूना	... ,, ...	... २०२
१०	भाषा और व्याकरण ...	... ,, ...	... ४२४
११	स्कूली किताबें ...	... ,, ...	... १००
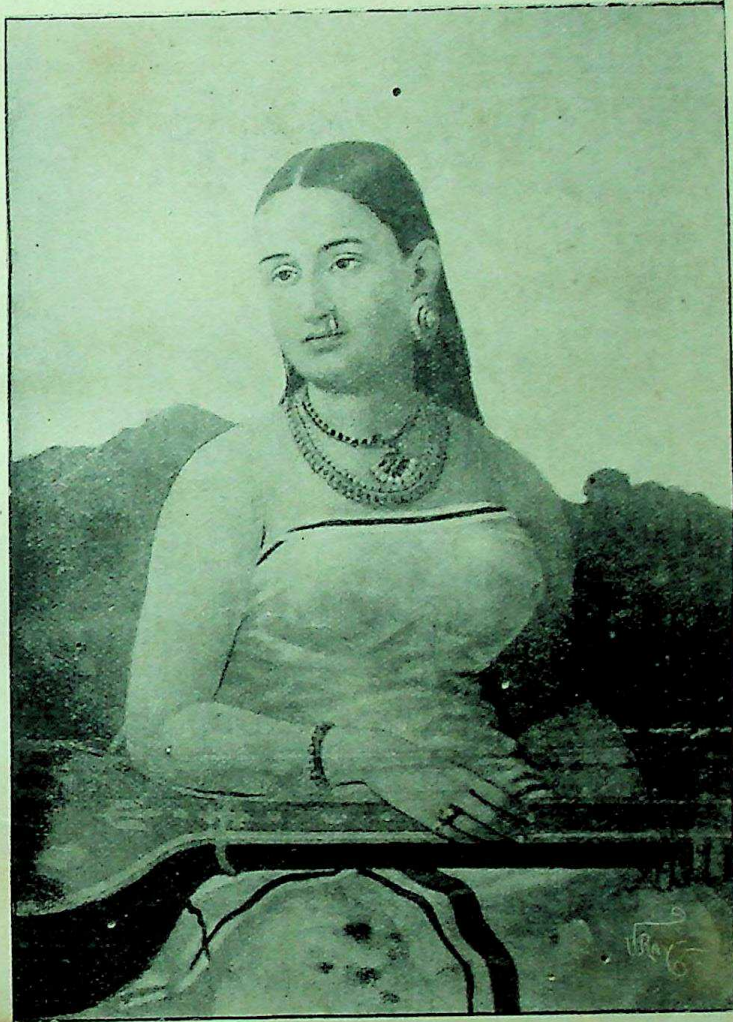
एक मालयाली महिला ।

एक नाम्बूरी ब्राह्मण ।
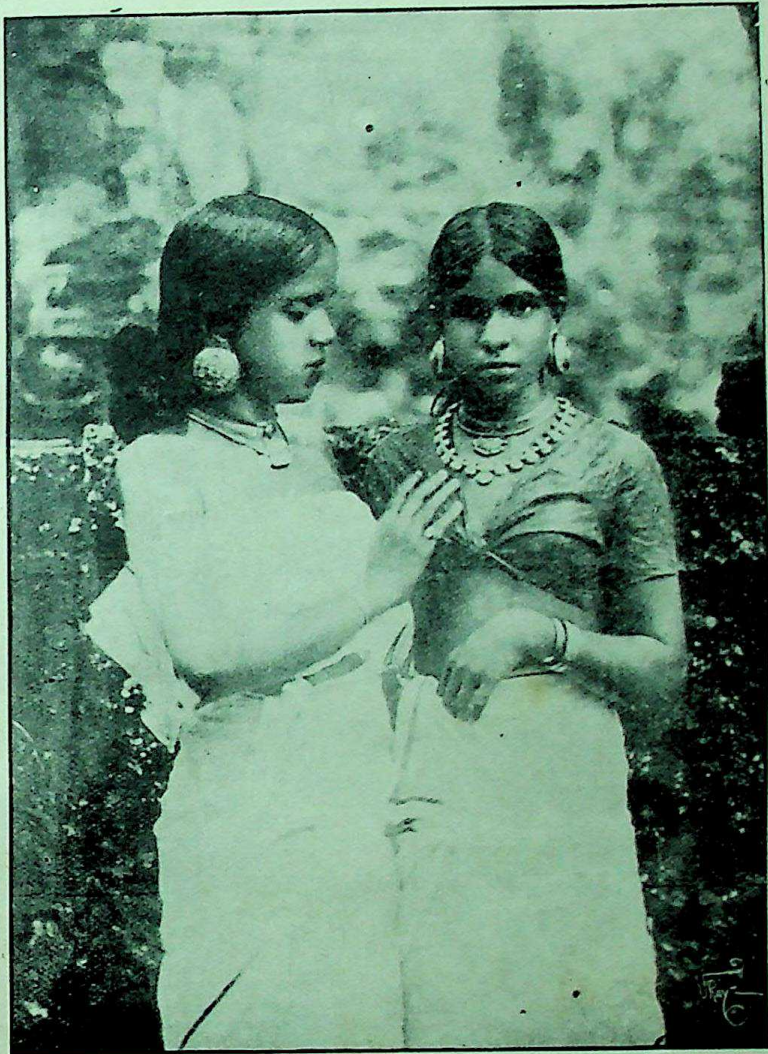
मालयाली लड़कियां ।

तीयर जाति की स्त्रियां।

रम्भा
[राजा रविवर्म्मा कृत]
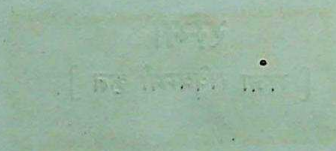
दमयन्ती और हंस।
रविवर्म्मा कृत।

माननीय गोपालकृष्ण गोखले, बी० ए०, सी० आई० ई०
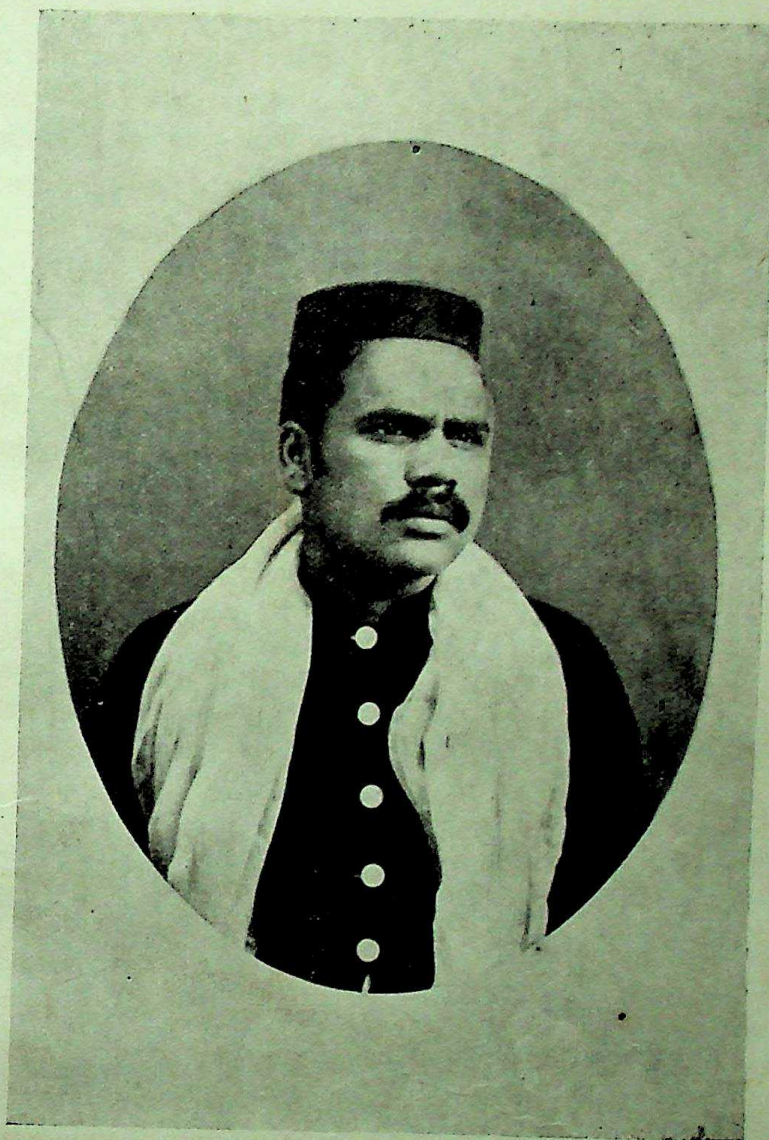
सरस्वती

पण्डित बलदेवप्रसाद मिश्र ।

सम्राट सातवें एडवर्ड ।

महारानी एलेक्ज़ण्ड्रा ।

श्रीमान राजपौत्र ।

श्रीमती प्रिंसेस आफ़ वेल्स ।

श्रीमान प्रिंस आफ़ वेल्स ।

सरस्वती
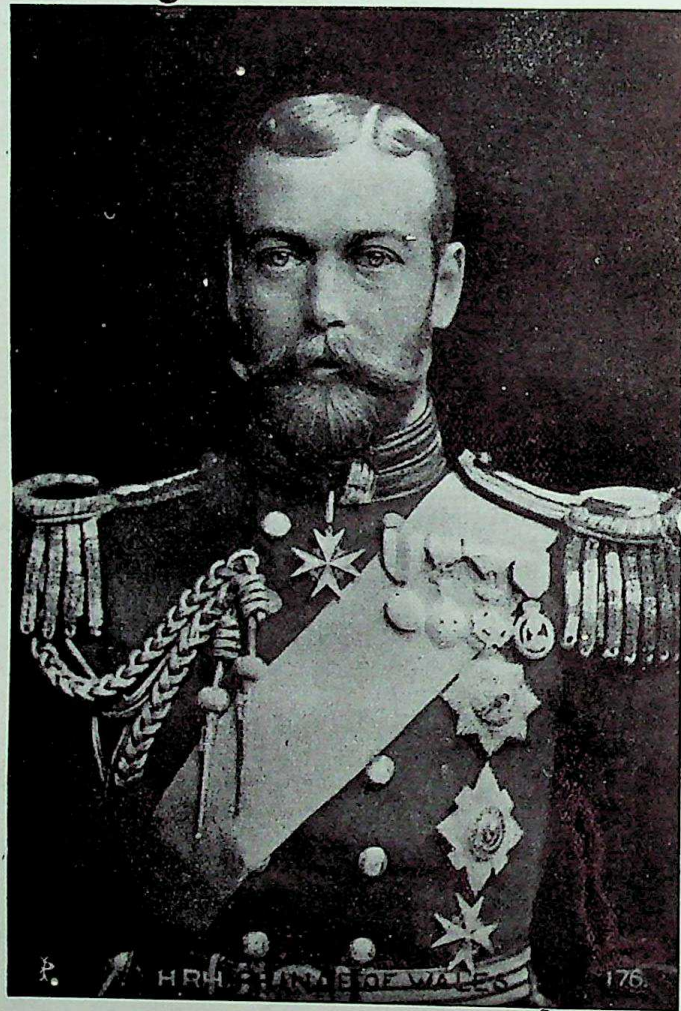
श्रीमान् प्रिंस ऑफ़ वेल्स ।

सरस्वती

श्रीमती प्रिंसेस ऑफ़ वेल्स ।

लार्ड कर्ज़न

लार्ड मिण्टो
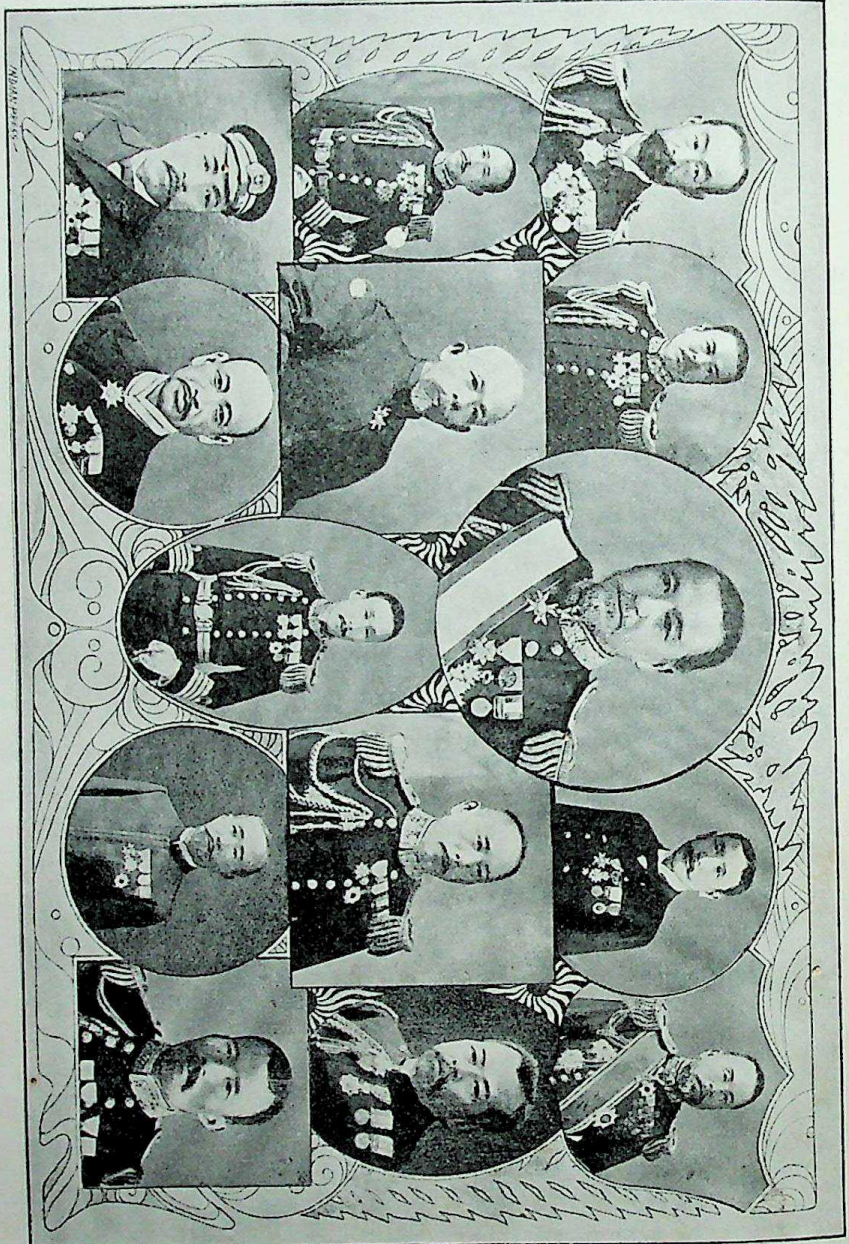
जापान-सागर के विजयी वीर ।

रियर ऐडमिरल यम० टोगो	वाइस ऐडमिरल मिसू	सेनापति ऐडमिरल टोगो	वाइस ऐडमिरल उरियू	वाइस ऐडमिरल देवा
कप्तान फूजी	वाइस ऐडमिरल करावका	रियर ऐडमिरल केटो	वाइस ऐडमिरल कामोमुरा	कप्तान सेटो
रियर ऐडमिरल टाकेटोमी	रियर ऐडमिरल ओग्यरा		रियर ऐडमिरल यमाडा	रियर ऐडमिरल शिमामुरा

महाराजा जंग बहादुर के छः [स्वर्गवासी] भाइयों का चित्र ।
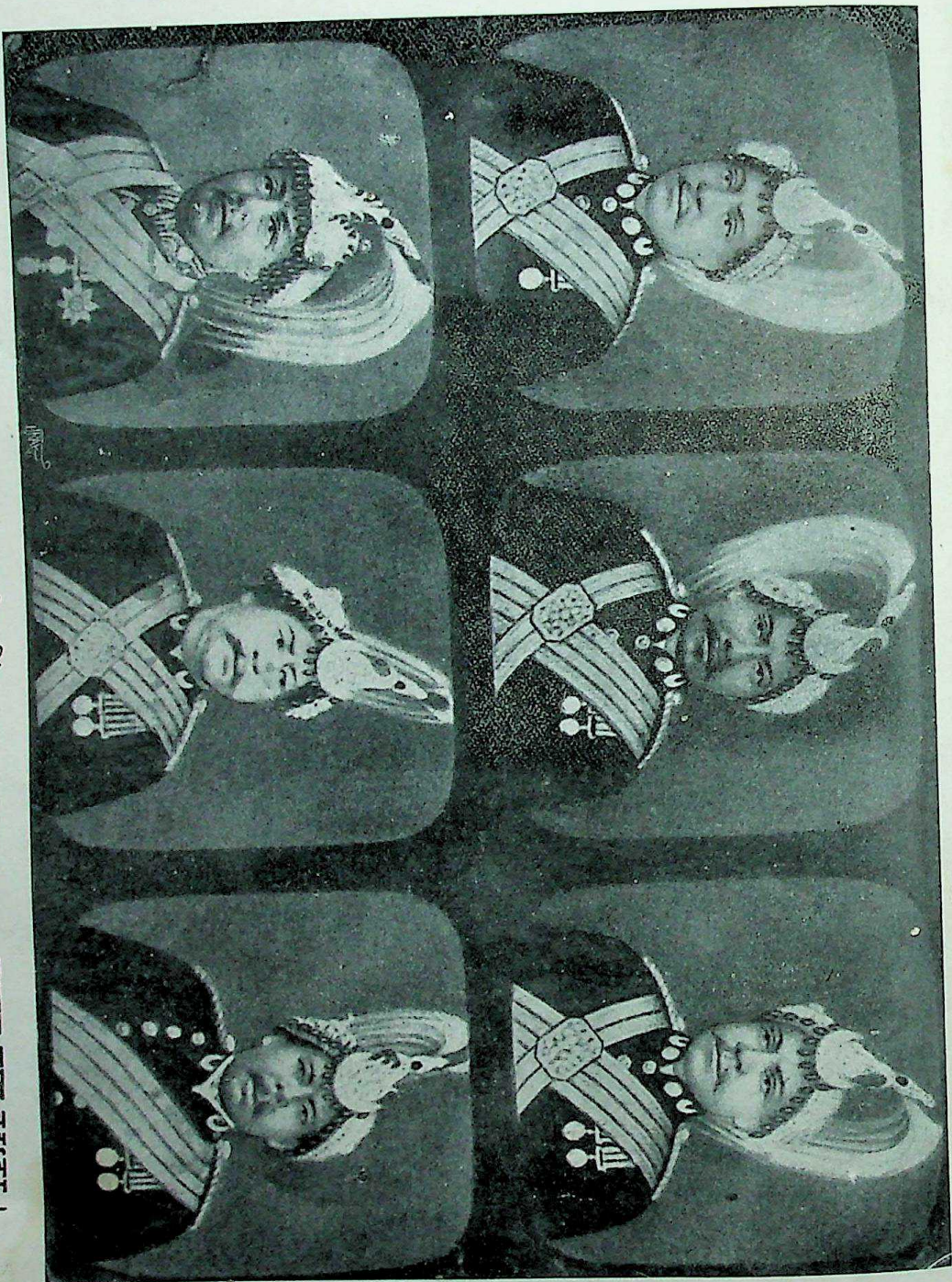
जनरल बमबहादुर राना ।

जनरल बद्रीनरसिंह राना बहादुर ।

जनरल कृष्ण बहादुर ।

महाराजा सर रणउद्दीपसिंह राना बहादुर, के० सी० एस० आई ।

जनरल जगत शमशेर जंग राना बहादुर ।

जनरल धीरशमशेर जंग राना बहादुर ।

स्वर्गवासी महाराजा सर जङ्गबहादुर राना,

जी. सी. बी., जी. सी. एस आई., इत्यादि ।

महाराजाधिराज पृथ्वीवीरविक्रम जङ्गबहादुरशाह नेपालाधिपति ।

प्रयाग-प्रवासी प्रिंस जेनेरल पद्मजंग राना बहादुर ।

स्वर्गवासी प्रिंस जगतजंग बहादुर राना,
कमांडिंग जेनेरल, पश्चिम प्रान्त, नेपाल।
सर जंगबहादुर के बड़े बेटे।

बाग की राजकुमारी
[महाराजा जंगबहादुर की एक कन्या]

महाराजा सवाई जयसिंह ।

राजा रामपालसिंह, सी० आई० ई० ।
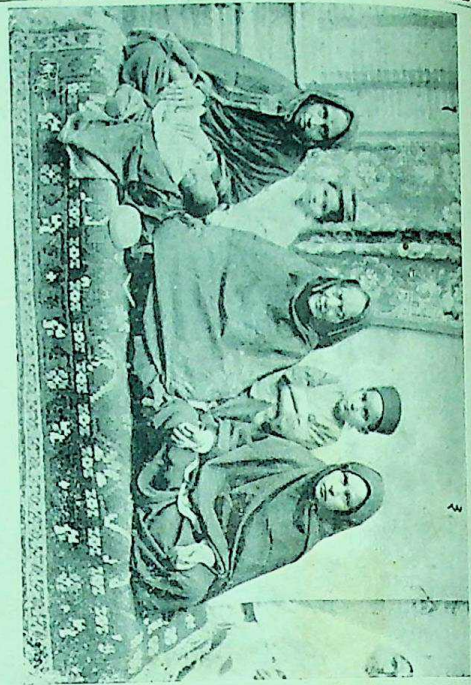
१ २ ३

१. **श्रीमती सुभद्राबाई,**
सुपरिंटेण्डेण्ट, कन्या-आश्रम (बोर्डिङ्ग-हाउस)

२. **श्रीमती काहनदेवी,**
लाला देवराज की माँ।

३. **श्रीमती सावित्री देवी,**
पाञ्चालपण्डिता की सहायक-सम्पादिका।

कन्या-अनाथालय, जालन्धर।

१	२	३
श्रीमती सुन्दरी देवी	**लाला देवराज**	**श्रीमती सुभद्रा देवी**
[लाला-देवराज की पत्नी] अनाथालय की दूसरी अवैतनिक सुपरिंटेंडेंट।	अनाथालय के अधिष्ठाता।	अनाथालय की अवैतनिक सुपरिंटेंडेंट।
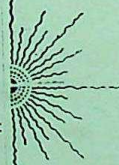
॥ १ ॥ ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥
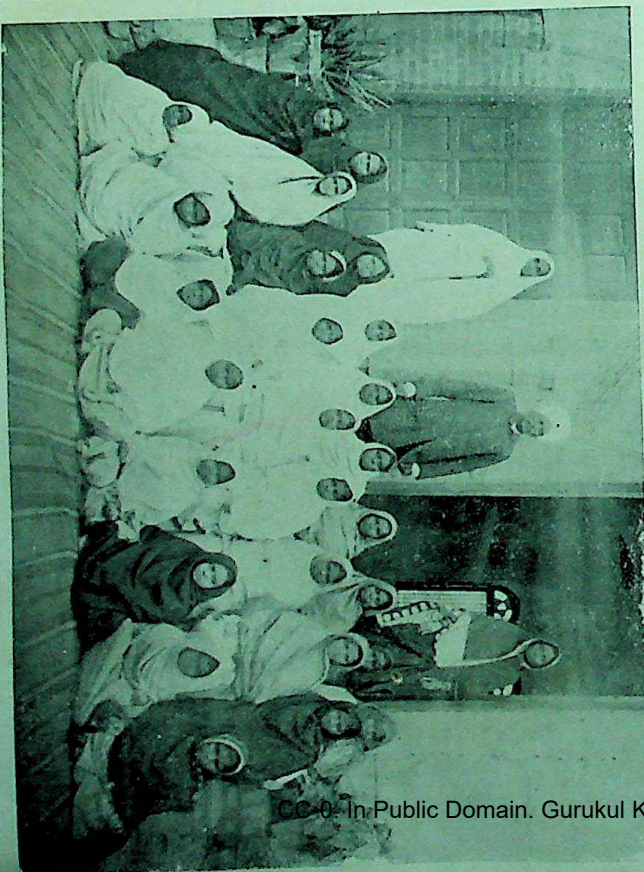
कन्या-आश्रम, जालन्धर.

ऊपर की लाइन, दाहनी तरफ़ से—

१. **श्रीमती सुभद्राबाई,** अवैतनिक लेडी-सुपरिण्टेण्डेण्ट ।

२. **लाला देवराज,** आश्रम के अधिष्ठाता ।

३. **श्रीमती सुन्दरीदेवी,** [नं० २ की पत्नी], आश्रम की अवैतनिक देखभाल करनेवाली ।

४. **श्रीमती कर्म्मदेवी** [लाला सन्तराय, असिस्टण्ट इन्स्पेक्टर आफ़ स्कूल्स की पत्नी], नं० ३ की कार्यकर्त्री ।

५. **श्रीमती सावित्री देवी,** पाञ्चालपण्डिता की सहायक-सम्पादिका, और आश्रम की सहायक लेडी-सुपरिण्टेण्डेण्ट ।

कन्यामहाविद्यालय, जालन्धर, के अध्यापक और अध्यापिकाएं ।

१.
पण्डित विश्वनाथ वैद्य,
आरोग्यशिक्षा के
अध्यापक ।

२.
पण्डित देवीदयाल,
विद्यालय के मुख्य
पण्डित ।

३.
लाला भोलानाथ,
अङ्क-गणित, पदार्थ-विद्या, आदि
के अवैतनिक अध्यापक ।
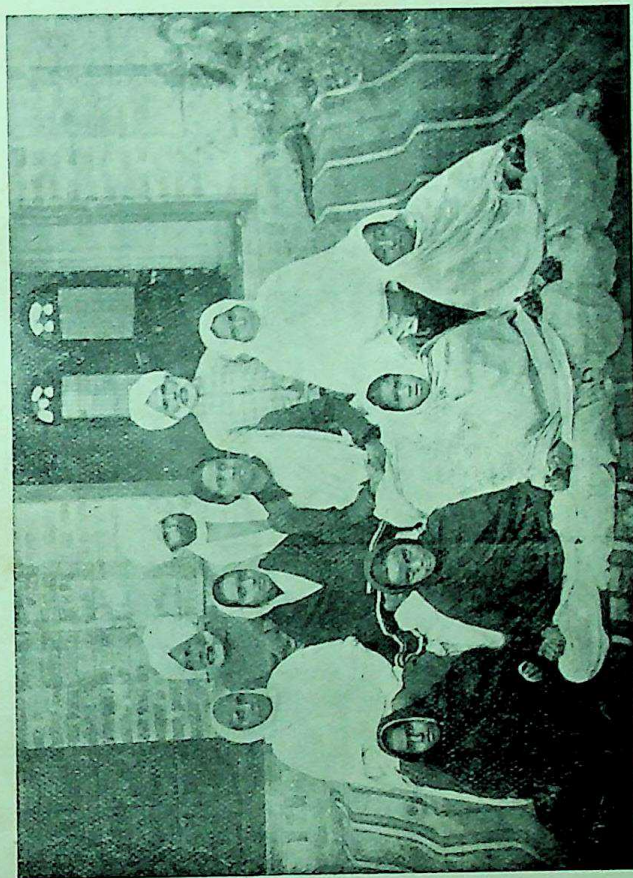
४.
माता राम देवी,
ज़रदोज़ी, सीना और पिरोना
की अध्यापिका ।

५.
कुमारी सत्यवती,
गणित की अध्यापिका ।

६.
कुमारी आमोदिनी घोष,
अङ्गरेज़ी और सङ्गीत
की अध्यापिका ।

७.
श्रीमती सावित्री देवी,
इतिहास और धार्म्मिकशिक्षा
की अध्यापिका ।

८.
श्रीमती रानी देवी,
छोटे बच्चों की अध्यापिका ।

९.
श्रीमती बुद्धिमती देवी,
"ड्रिल" की अध्यापिका ।

१०.
श्रीमती दुर्गावती देवी,
अवैतनिक अध्यापिका ।

११.
श्रीमती सोहावा देवी,
अवैतनिक अध्यापिका

कविवर लछीराम ।
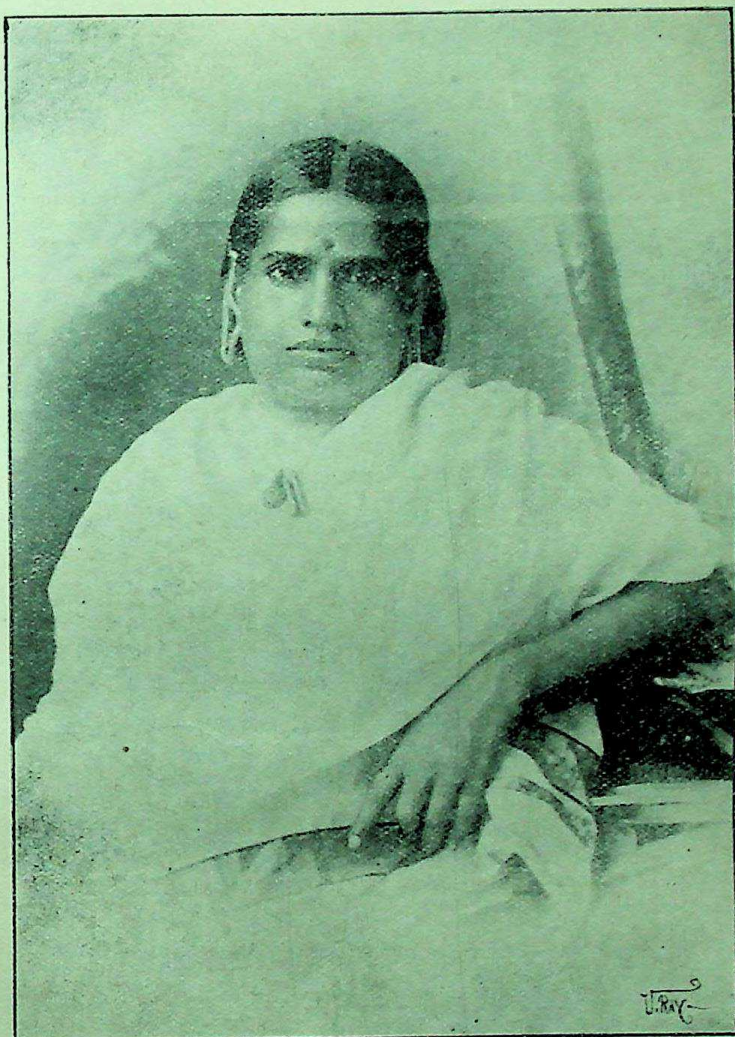
कालीकट के ज़मोरिन साहब की धर्म्मपत्नी ।
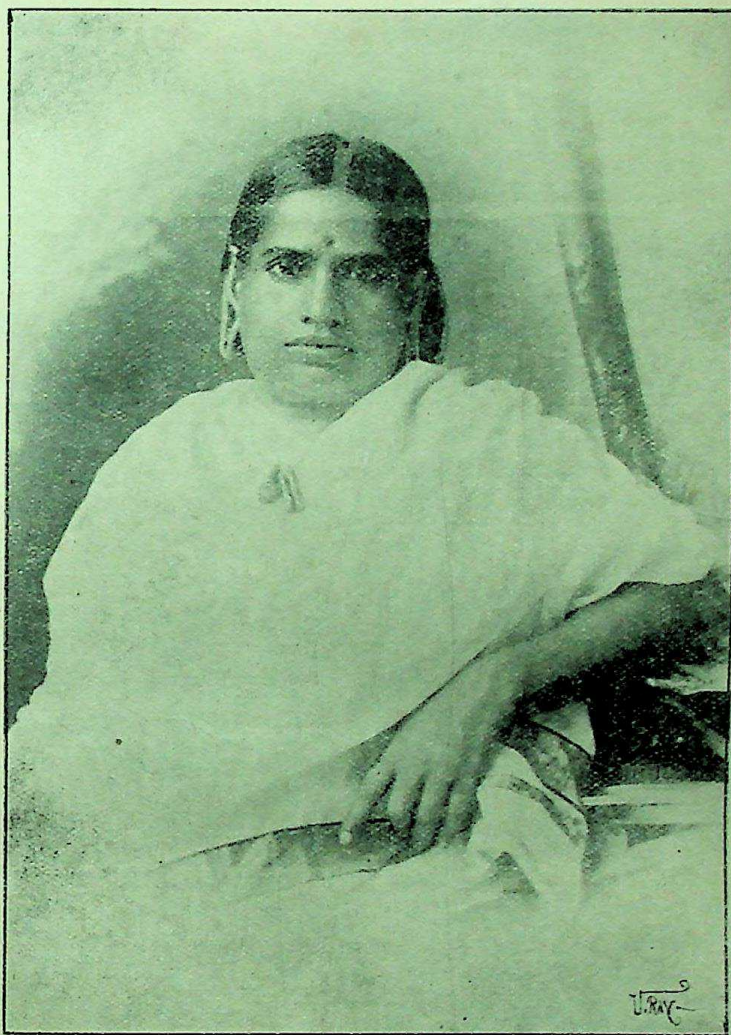
कालीकट के ज़मोरिन साहब की धर्म्मपत्नी।

त्रिवाङ्कोड़ के महाराजा साहब ।

बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री ।

आनरेबल मिस्टर विठ्ठलदास दामोदरदास ठाकरसी,
चेअरमन, प्रदर्शन कमेटी

कर्नल आल्काट

मैडम ब्लावेट्स्की
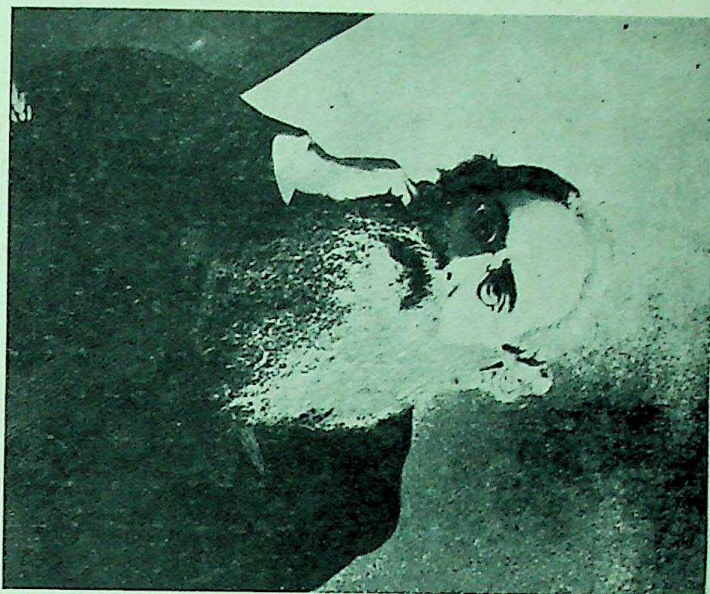
श्रीमती ऐनी बेसण्ट
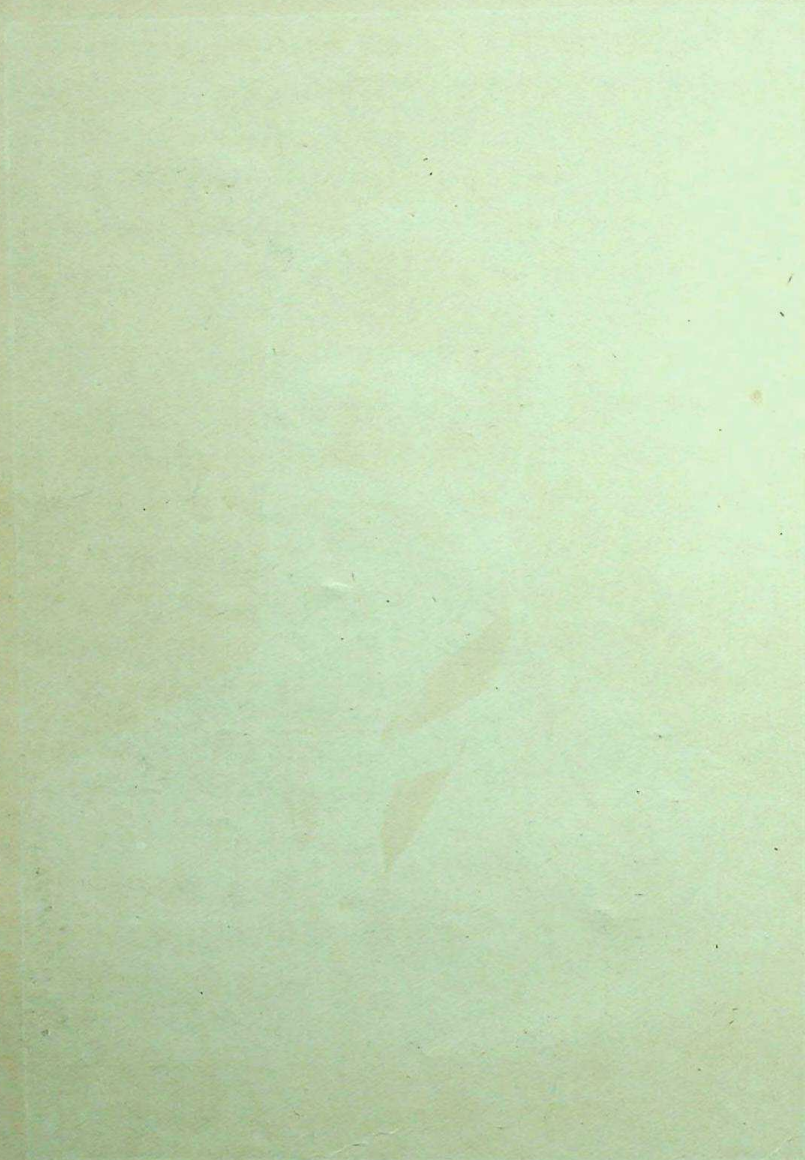
Dr. G. A. GRIERSON, C.I.E., Ph.D., D.Litt.

श्री तुलसी के काव्य प्रेम सों बाँचन वारे,
सूर, विहारी, लाल, जायसी मानन हारे ;
विद्या-कीरति-धाम, बड़े ये भाषा-पंडित,
जि० ए० ग्रियर्सन नाम, गुणागर ऋजुता-मंडित ॥

सरस्वती

अध्यापक गोपालकृष्ण गोखले, बी. ए., सी. आई. ई.

मिस्टर दिनशा इदलजी वाचा।

आनरेब्ल सर फ़ीरोज़शाह मेहता, के० सी० आई० ई०
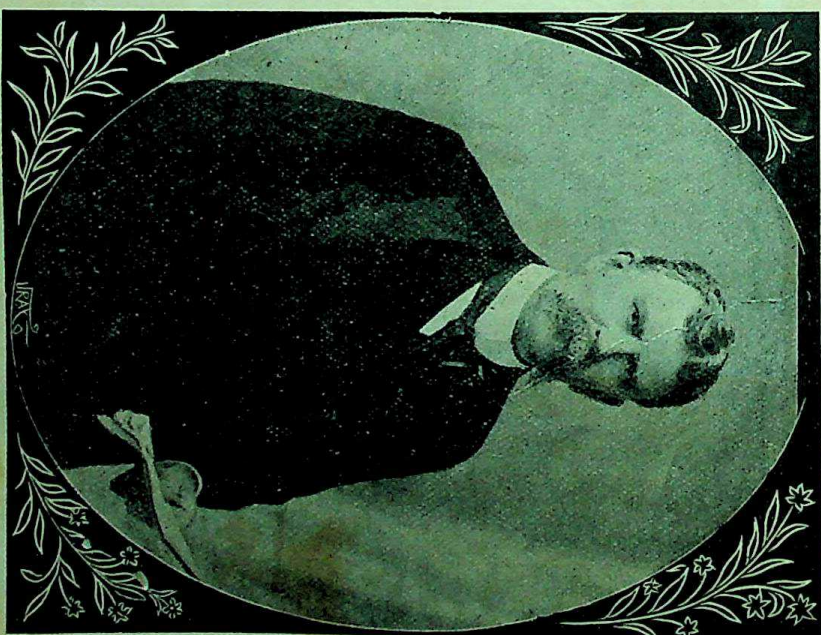
मिस्टर दादाभाई नैरोज़ी ।

सर हेनरी काटन, सी० आई० ई०
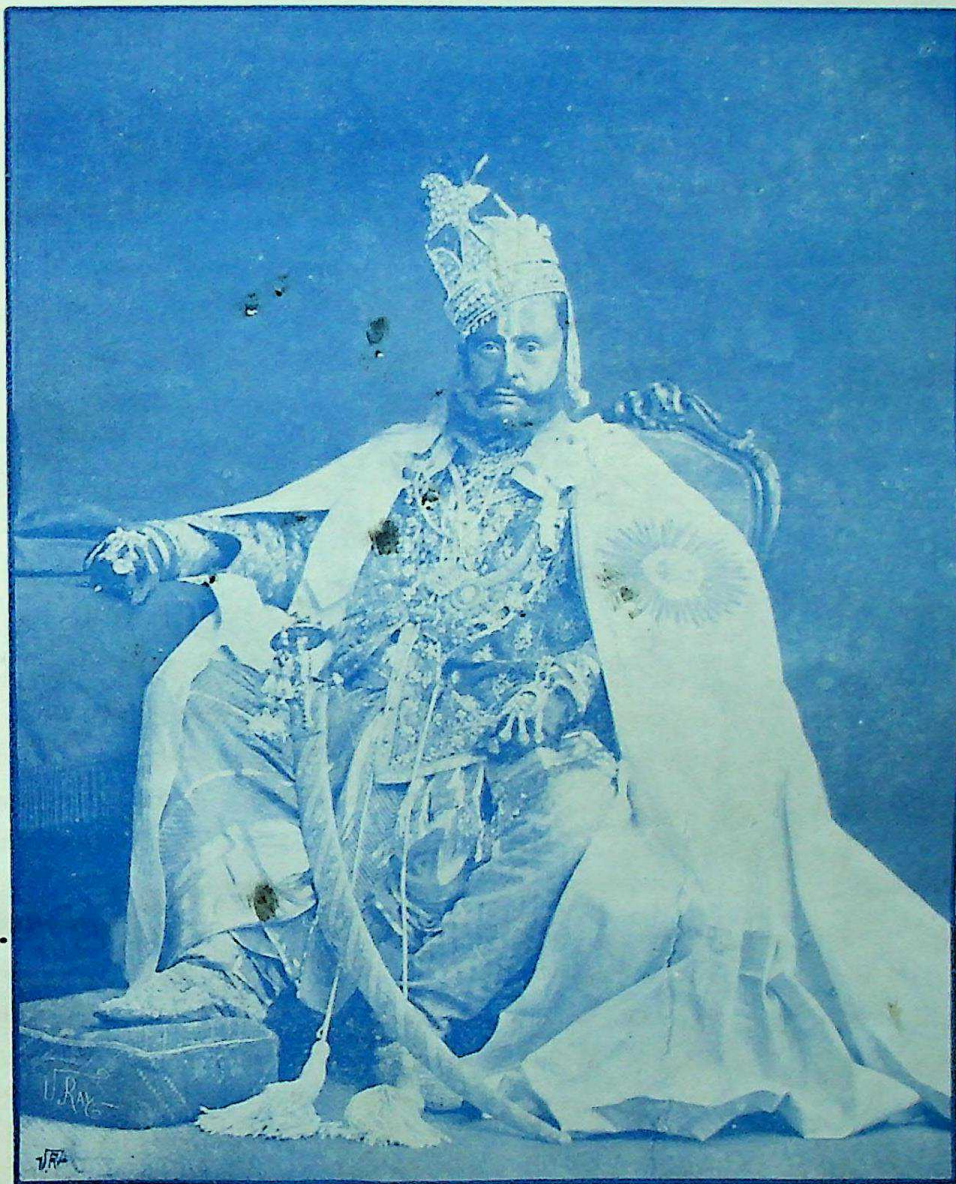
सर विलियम वेडर्बन।

महाराजा रघुराजसिंहजू देव, जी. सी. एस. आई
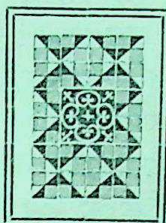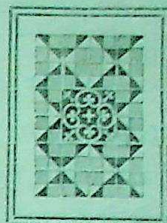
भाग ६] जनवरी, १९०५ [संख्या १

विविध विषय।

डाक्टर पी० सी० राय कलकत्ते के प्रेसीडेन्सी कालेज में रसायन शास्त्र के अध्यापक हैं। अध्यापक बसु की तरह उन्होंने भी बड़ा नाम पाया है। उन्होंने "भारतवर्ष के रसायन शास्त्र का इतिहास" लिखा है। इस पुस्तक को देखकर गवर्नमेण्ट और रसायन विद्या के पारगामी पण्डितों की दृष्टि में अध्यापक राय विशेष प्रतिष्ठा की वस्तु हो गये हैं। गवर्नमेण्ट ने उनको, अब, अपने ख़र्च से योरप भेजा है। वहां पर वे इङ्गलैण्ड की सर्व-प्रधान रासायनिक शाला में नाना प्रकार की परीक्षायें और आइलेषण विश्लेषण करेंगे। प्रसिद्ध प्रसिद्ध रासायनिक पण्डितों से वे वार्तालाप भी करेंगे; और, जिन नई नई बातों का उन्होंने पता लगाया है, उन पर निबन्ध भी वे वहां पढ़ेंगे। इङ्गलैण्ड में अपना कर्त्तव्य पूरा करके अध्यापक राय जर्मनी और आस्ट्रिया के भी रसायनागार देखेंगे। तब वे इस देश को लौट आवेंगे। और लौटकर वे प्रेसीडेंसी कालेज की रसायनशाला की उन्नति करेंगे और यहां के स्कूलों और कालेजों के लिए रसायन-विद्या पर एक छोटी सी पुस्तक लिखेंगे। अध्यापक राय की इस विद्वत्ता और उनके इस सत्कार और सम्मान पर केवल बङ्गवासीही नहीं, किन्तु, समग्र भारतवासियों को प्रसन्न होना चाहिए।

* * *

पानीपत के मौलवी सैयद अलताफ़ हुसेन (हाली) की रुबाइयों का अँगरेज़ी भाषा ने बड़ा आदर किया है। जी० ई० वार्ड, एम० ए०, बी० सी० एस०, ने उनको रोमन में प्रकाशित किया है और साथ ही उनका अँगरेज़ी अनुवाद भी दिया है। हाली साहब की यह कविता उर्दू में है और बहुत अच्छी है। अँगरेज़, और उर्दू न जाननेवाले हिन्दुस्तानी भी, अब इस कविता का आनन्द प्राप्त कर सकेंगे। हाली साहब के पिता, जब हाली साहब लड़के थे, तभी मर गये थे। देहली में उनके भाई ने उन्हें शिक्षा दी। बड़े होने पर लाहौर में उनको एक नौकरी मिली। इससे वे वहां चले गये। वहां बहुत दिनों तक वे रहे। जिस समय उनकी उम्र कोई

४० वर्ष की थी वे सर सैयद अहमद के अनुयायी हुए। तब से उन्होंने, समय समय पर, सामाजिक सुधार पर, बहुत सी कवितायें लिखीं। उनकी कविता और विद्वत्ता से प्रसन्न होकर गवर्नमेण्ट ने, गये वर्ष, उनको "शम्सुल् उल्मा" की पदवी से विभूषित किया है।

***

पण्डित श्रीधरजी पाठक, कुछ समय हुआ, काश्मीर गये थे। कवि स्वभाव ही से प्राकृतिक दृश्यों को देखने के लोलुप होते हैं। परन्तु यह बात श्रीधर जी में बहुत ही विशेषता से पाई जाती है। चिरकाल तक शिमला-शैल और नैनीताल में रह कर भी लवली-लता, शिखर-श्रेणी और हरित-वसन्त-पूर्ण शैलतटी की सुषमा लूटने आप काश्मीर गये। काश्मीर की महिमा आपने इस प्रकार बतलाई है—

"यही स्वर्ग सुरलोक, यही सुरकानन सुन्दर
यहिं अमरन को ओक, यहीं कहुं बसत पुरन्दर"

ऐसे ही मनोहर पद्यों में आपने "काश्मीरसुखमा" नाम की एक छोटी सी कविता लिखकर प्रकाशित की है। काश्मीर को देखकर आपके मनमें जो जो भावनायें हुई हैं उनको उसमें आपने अपनी मधुमयी कविता में वर्णन किया है। पुस्तक के अन्त में, आपकी "शिमलाप्रेक्षणम्" नाम की एक छोटी सी संस्कृत-कविता भी है। हम कहते हैं कि—

"ताहि रसिक वर सुजन अवसि अवलोकन कीजै
मम समान मन-मुग्ध ललकि लोचन-फल लीजै"

महाराजा रघुराजसिंह जू देव, जी॰ सी॰ एस॰ आई॰।

सरस्वती में भारतवर्षीय तथा विदेशीय विद्वद्वरों और महानुभावों के जीवन-चरित, समय समय पर, अक्सर प्रकाशित हुआ करते हैं। गत वर्ष, इसकी आठवीं संख्या में, मान्य-वर महाराजा सवाई रामसिंह जी का जीवन-चरित प्रकाशित हुआ है। अतः आज मैं भी पाठकों को उक्त महाराज के सामयिक, वैकुण्ठवासी, बांधवाधिपति श्रीमहाराजा रघुराजसिंह जू देव, जी॰ सी॰ एस॰ आई॰, का संक्षिप्त जीवन-चरित भेंट करता हूं। आशा है कि ऐसे कवि-चूड़ामणि महाराज की जीवनी पाठकों को मनोरञ्जक होगी। इस लेख में महाराज की जीवनसम्बन्धिनी बड़ी बड़ी घटनाओं का उल्लेख न कर विशेष करके इस विषय की आलोचना की जायगी कि श्रीमान् का भारतवर्षीय भाषा और संस्कृत कवियों में कौन सा स्थान है।

२। ये महाराज, तथा इनके पूर्वज, अग्निवंशान्तर्गत शुद्ध सोलंकी वंश के थे। इनके पूर्वज गुजरात देशान्तर्गत बघेला नामक ग्राम से आये थे। इस कारण इनका वंश यहां पर बघेलवंश* के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस प्रान्त में सबसे प्रथम श्रीवीरध्वज महाराज के पुत्र श्रीव्याघ्रदेव महाराज, लगभग १४०० वर्ष हुए, आये और कुछ काल तक युद्ध करके उन्होंने बान्धवगढ़ और उसके आसपास की भूमि को जीता। ऐसा कहा जाता है कि पहले इस देश की सीमा उत्तर में प्रयाग, बांदा और रायबरेली तक; पूर्व में मिरज़ापुर और छोटा नागपुर तक; दक्षिण में अमरकण्टक के आगे बिलासपुर तक; तथा पश्चिम में कालिञ्जर और कालपी तक थी। सई नदी के तट पर स्थित एक ग्राम का दान-पत्र यहां के किसी महाराज की ओर से उसी ग्राम के रहनेवाले एक ब्राह्मण के यहां पाया गया है। व्याघ्रदेव से ले कर हमारे चरितनायक के सुयोग्य पिता महाराज विश्वनाथसिंह जू देव तक जितने महाराज क्रमशः इस राज्य के सिंहासन पर आरूढ़ हुए हैं, उनकी नामावली श्रीमान् ने अपने ग्रन्थ आनन्दाम्बुनिधि के प्रथम स्कन्ध के प्रथम तरङ्ग में यों अङ्कित की है—

---

* इस देश में व्याघ्रदेव जो प्रथम आये। अतः कोई कोई उन्हीं के नाम पर इस वंश का नाम पड़ना बतलाते हैं।

कवित्त

वीरध्वज, व्याघ्रदेव, करन, सोहागदेव,
संग रामसिंह, औ विलासदेव, जानिये।
भीमल, अनीकदेव, बलदेव, दलकेन्द्र,
मलकेश, बुल्लार, व बरियार भानिये।
सिंहदेव, भैरोंदेव, नरहरि, भयद्देव,
त्यों शालिवाहन, वीरसिंह देव गानिये।
वीरभान, रामसिंह, वीरभद्र, विक्रम जू,
अमर, अनूप, भावसिंह के बखानिये॥

दोहा

भावसिंह महराज के, अनिरुधसिंह सुजान;
श्रीअनिरुध महाराजके, श्रीअवधूत महान।
महाराज अवधूत के, श्रीअजीत बलवान;
श्रीअजीत महराजके श्रीजैसिंह सुजान।
फहराता जेहि धर्म के अवलों ध्वजा महान;
जेहि गमनत गोविन्दपुर गंग लियो अगुवान।
महाराज जयसिंह के धर्म ज्ञान यश धाम;
महाराज नृप मुकुटमणि विश्वनाथ प्रदकाम।

३। महाराज विश्वनाथसिंह जू देव की सहधर्म्मिणी श्रीमती परिहारिन मा साहिबा से, जो कि महाराज नागैाद की पुत्री थीं, आपका जन्म श्री विक्रमीय सम्वत् १८८० में हुआ था। बाल्यावस्था ही से श्रीमान् के विद्योपार्जनार्थ, पिता की ओर से, विशेष चिन्तना की गई थी। इससे आपने किशोरावस्था ही में संस्कृतविद्या में बहुत कुछ दक्षता प्राप्त करली थी। काव्यरचना में ता इनको शक्ति स्वाभाविक थी और ऐसा होता भी है। क्योंकि कहा गया है कि काव्यरचना की शक्ति बहुधा विद्योपार्जन से नहीं होती। किन्तु यह किसी नैसर्गिक शक्ति का प्रभाव है, जो विरलेही भाग्यवान पुरुषों को प्राप्त होती है। प्रथम ही प्रथम बहुत ही किशोरावस्था में, श्रीमान् ने विनयमाल नामक ग्रन्थ की रचना की थी। २७ वर्ष की अवस्था में आपने रुक्मिणीपरिणय नामक ग्रन्थ रचा। यह ग्रन्थ नाना प्रकार के छन्द, अलङ्कार और शान्त, शृङ्गार, वीर, रौद्र आदि रसों से परिपूर्ण है।

४। श्रीमान् ने छोटे बड़े अष्टकों और स्फुट कविताओं के सिवा निम्नलिखित ग्रन्थ निर्म्माण किये हैं—(१) विनयमाल, (२) रुक्मिणीपरिणय, (३) आनन्दाम्बुनिधि, (४) रामरसिकावली, (५) भक्तिविलास, (६) सुन्दरशतक, (७) गङ्गाशतक, (८) जगदीशशतक, (९) मृगयाशतक, (१०) चित्रकूटमाहात्म्य, (११) रामस्वयम्वर, (१२) पदावली, (१३) रघुराजविलास, (१४) विनयपत्रिका, (१५) विनयप्रकाश। न ता मुझे इन सब ग्रन्थों के देखने ही का गैारव प्राप्त है, और न सरस्वती में इतना स्थान ही है, कि सब ग्रन्थों की समालोचना पूरी तैार पर की जाय। इससे केवल दोही एक ग्रन्थों की अति संक्षिप्त आलोचना यहां पर की जाती है। इससे पाठकों को मालूम हो जायगा कि महाराज में काव्यशक्ति कैसी प्रबल थी और इनकी कविता कैसी सरस और मधुर होती थी।

५। रुक्मिणीपरिणय। इस ग्रन्थ को श्रीमान् ने सम्वत् १९०७ में निर्म्माण किया था। इसके पहले शायद श्रीमान् ने एक ही दो काव्य के ग्रन्थ बनाये थे। परन्तु, तिस पर भी, इसकी मनोमोहिनी कविता मन को मुग्ध कर लेती है। शृङ्गार रसही इस ग्रन्थ में प्रधान नहीं है, यथास्थान वीर, शान्त और रौद्र आदि रसों से भी यह ऐसी परिप्लुत है, कि पढ़नेवालों को, इसके पद पद का आस्वादन करके, महा आनन्द होता है। उदाहरणार्थ केवल दो पद्य यहां पर उद्धृत किये जाते हैं—

सवैया

बरखा अरु शीतहु आतप को,
निसि द्यौस सहैं सरही में खरे।
कहुं सूखिहु जात, कहूं हरियात,
रहैं जलजात यों ध्यान धरे।
रघुराज सुनो तप केवल यद्यपि,
रावरे के गॅल माहिँ परे।
तबहूं न लहैं सरि रुक्मिणि के पद
की मधु व्याजहि आशु भरे॥ १॥

कवित्त

महा महा महि के महोपन के मध्य ह्वै के,
मरदि मतंगन को मण्डल महान है।
भेदि भेदि भारी भारी भीम भीम भटन को,
भानही सो भयो भल भूमि भासमान है।
स्यन्दन यदुनन्दन को भूपनन्दिनी को अति,
करत अनन्द आय ढिग दरसान है।
भाषै रघुराज यदुराज रुक्मिणी के नैन,
लागे तजि लाज नेह सरस्यो समान है ॥२॥

६। आनन्दाम्बुनिधि। संवत् १९११ में श्रीमान् ने श्रीमद्भागवत के बारहों स्कन्धों का अनेक प्रकार के मनोहर छन्दों में अनुवाद करके उसका नाम आनन्दाम्बुनिधि रक्खा। इसके कहने की कुछ आवश्यकता नहीं कि श्रीमद्भागवत व्यासदेव के और पुराणों की अपेक्षा कैसा क्लिष्ट ग्रन्थ है। यदि क्लिष्टता का विचार न किया जाय तो संस्कृत में यह काव्य और साहित्य की भी एक अद्वितीय पुस्तक है। श्रीमान् ने इसका पद्यात्मक अनुवाद सराहनीय किया है। भागवत के प्रति श्लोकों को पढ़ते जाइये, और उसीके अनुसार, तथा उसी भाव के, हिन्दी पद्य उससे मिलाते जाइए। इस ग्रन्थ में ग्रन्थकर्त्ता की वाक्पटुता, सरसता, लालित्य और भावगाम्भीर्य जगह जगह पर झलकती है। ज्यों ज्यों पाठकवृन्द इस आनन्दाम्बुनिधि के स्कन्धरूपी तरल तरङ्गों के ज्ञान प्रवाह में मनमाझी को प्रवेपित करते जाते हैं, त्यों त्यों इस सुधासिन्धु में नाना प्रकार के छन्द-मुक्ताओं की माला, उनके हृदयकमल के विमल विचारों को अलङ्कृत और भूषित करती जाती है। इस ग्रन्थ में, श्रीमद्भागवत को छोड़ अन्यान्य पुराणों से भी बहुत से सामयिक प्रसङ्ग श्रीमान् ने आवश्यकीय स्थानों पर रख दिये हैं। यदि इस वृहद्ग्रन्थ के प्रत्येक स्कन्ध से उदाहरण लेकर आलोचना की जाय, तो वह स्वयं एक बड़ा ग्रन्थ हो जायगा। इससे पाठकों के अवलोकनार्थ केवल एकही स्थान के कतिपय छन्द देकर, मुझे सन्तोष करना पड़ता है। निम्नलिखित कथा पञ्चम स्कन्ध के द्वितीय तरङ्ग से उद्धृत की जाती है। जहां पर अग्नीध्र महाराज और पूर्वचिती अप्सरा का वन में साक्षात् हुआ है वहां का वर्णन—

दोहा

तेहि आश्रम के निकट में, उपवन अति कमनीय।
तहँ सुन्दरि विचरन लगी, करि करि गति कमनीय।

चौपाई

सघन विटप जहँ बहुत सोहाहीं।
तिन महँ ललित लता लहराहीं॥
शुक कपोत चातक अरु मोरा।
विपुल बिहङ्ग करहिं कलशोरा॥
लसहिं मनोहर विविध तड़ागा।
विकसित वारिज उड़त परागा॥
चक्रवाक वक सारस हंसा।
करहिँ शोर चहुँदिस दुख ध्वंसा॥
मरकतमणि सम निर्मल नीरा।
बहत सुहावन त्रिविध समीरा॥
पूर्वचिती अपसर छवि पागी।
ऐसे वन महँ विचरन लागी॥
तासु ललित जुग चरण विलासू।
काके उर नहिं करत हुलासू॥
ललित चरण नूपुर झनकारी।
छाइ रही वन महँ मनहारी॥

दोहा

हुतो समाध अगाध गहि, सो नरदेवकुमार।
ताके कानन में परी, मनहुँ सुधा की धार।
कनक कलश सम कपत महि, युग उरोजयुत हार।
लफि लफि लचकत लङ्क लघु, लहिलहि कुचकचभा[र]
ताहि निरखि आग्नीध्र नृप, कामविवश ह्वै आशु
बोल्यो मञ्जुल वचन अति, जड़सम चलि ढिग ताशु

सवैया

कैानि हैा, कैान की बेटी अहैा,
केहि हेत फिरैा वन में मनहारी।
आई इतै रघुराज कहै,
किधैां ईश की माया तिया तनधारी

जौन के हेतु, बिना गुण के,
युग चाप गहे, शर पै न पँवारी।
मो से कुरङ्गन कामिन के हिय,
मोहन को जिय माझ विचारी॥

दोहा

बिन गाँसी के बाण ये, केहि हनिहहु सुकुमारि।
अति तीक्षण लखि कँपत हिय, रक्षा करहु हमारि॥
तव वेनी विगलित कुसुम, लपटि सुखित भल भौंर।
करत गान तेरो सुयश, सुकवि सरिस चहुँ ओर॥

सवैया

पद पङ्कज पञ्जर में ललना,
यह तीतुरी नूपुर शोर करै।
मम कानन धार सुधा सी ढरै,
नहिं नैनन में कछु मोद ठरै।
वन में वसि कै तरु को त्वच त्यागि,
कदम्ब प्रभा पट काहे धरै।
येहि हेतु कसी कल किङ्किनि तूं,
कटि मेरी कहूं नहिँ टूटि परै॥

केसरि के रँग सों रँगि कै,
युग शैल धरे तुम काह विचारी।
यद्यपि ताकी सुवास ते वासित,
वेस करो कुटि टूटी हमारी।
ये उपजै अतिशै उर पीर,
कहा कहिये कहिजात न प्यारी।
भूधर भारहिं भूरि लहे,
करकैगी लली कटि खीन तिहारी॥

दोहा

कामिन की करनी क़तल, मुख पियूखरस धारि।
अपनो देश बताउ वलि, जहँ उपजै अस नारि॥
कैसो वह थल जहँ हरो, तिय प्रभाव अस देहिं।
धरि अनुपम युग कुम्भ उर, बरवस बस करि लेहिं॥
नैन मीन अलकैं अली, कुण्डल मकर अदाग।
सुभगदन्त तुव मुख लसत, मानहुँ सुधा तड़ाग॥
प्यारी पङ्कज पाणि तें, गलित मनोहर गेंद।
जस भू महँ वह भ्रमत तस, मो मन भ्रमत सखेद॥

छूटीं अलक सम्हारि ले, हे सुन्दरि सुख रासि।
क्यों डारत बरवस अली, मेरे गल में फाँसि॥
देत दुसह दुख पवन मोहिं, अञ्चल चारु उड़ाय।
कसु कामिनि करिकै कृपा, औंदिय सुधि बिसराय॥

७। पाठक! इन कतिपय छन्दों से आपको मालूम हो जायगा, कि श्रीमान् की कविता कैसी सरस और मधुर होती है। कोमल और मधुर पदों से भूषित, गूढ़ाशयरहित, शृङ्गाररस के सब भावों के सहित, कैसी अनोखी कविता है। किस प्रकार आपने रति, हास, शोक, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय इत्यादि स्थायी भावों का आविर्भाव किया है। जड़ता, गर्व, औत्सुक्य इत्यादि सञ्चारी भाव भी विद्यमान हैं। व्यंग्य और अलङ्कारों की भी कमी नहीं है। पहले की पाँच सात चौपाइयों में प्राकृतिक शोभा का भी कैसा अच्छा वर्णन है। यह भी ध्यान देने की बात है, कि यह कथा पञ्चम स्कन्ध की है, जिसे व्यासजी ने अत्यन्त क्लिष्ट गद्य में वर्णन किया है। यदि आप लोग श्रीमान् के दशमस्कन्ध के तरल तरङ्गों के मधुर रस को पान करें, जिनमें श्रीकृष्णचन्द्र की रासलीला इत्यादि का वर्णन है, तो निश्चय है, कि आपका मन मुग्ध होकर इस काव्य-पीयूष के मधुर रस को बार बार पान करने की इच्छा करेगा।

८। भक्तिविलास। यह एक छोटा सा ग्रन्थ है जिसको श्रीमान् ने संवत् १९२७ में निर्म्माण किया था। इसे नवधा भक्ति की प्रत्येक उपासना के मुख्य सिद्धान्तों का दर्पण कहना अयोग्य न होगा। श्रीमान् ने एक एक विषय के ऐसे ऐसे उत्तमोत्तम और हृदयग्राही उदाहरण दिये हैं, कि जिनके पढ़ने से पढ़नेवाला तल्लीन हो जाता है। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में नव रस तथा नीति आदि के जो उदाहरण हैं वे भी पठनीय हैं। पाठकों के अवलोकनार्थ हम केवल एकही कवित्त उस ग्रन्थ से लेकर नीचे देते हैं—

कवित्त

कुटिल-अलकवारो, मन्द-मुसुकानिवारो,
कोटि चन्द जाके मुख-चन्द पर वारो है।

मुरली-लकुटवारो, पीत-पट-कटिवारो,
ललित-त्रिभङ्गवारो, सब सुख कारो है।
रघुराज रसिक-सुजानन को प्राण प्यारो,
करुणा समुद्र कोटि अधम उधारो है।
नन्द को दुलारो, वृन्दा-विपिनि-विहारवारो,
मोरपंखवारो, रखवारो, सो हमारो है॥

९। रामस्वयम्बर। इसको श्रीमान् ने संवत् १९२७ में काशिराज महाराज ईश्वरीनारायणसिंह की इच्छानुसार रचा था। इन दोनों महाराजों में परस्पर बहुतही हार्दिक प्रेम था, और काशिराज का हमारे चरितनायक श्रीमान् बहुत ही आदर सत्कार करते थे। वे उनसे प्रायः पितृभाव से मिलते थे तथा काका साहब कहकर पुकारते थे। काशी-रामनगर की रामलीला बहुत ही प्रसिद्ध है। महाराज ईश्वरीनारायणसिंह जी का प्रेम रामलीला से बहुत था। यहां भाद्रपद शुक्ल अनन्त चतुर्दशी से लीला प्रारम्भ हो कर आश्विन मास पर्यन्त होती है। एक समय महाराज रघुराजसिंह जी इन दिनों काशी गये, और रामनगर में एक मास रह कर रामलीला दर्शन से अत्यन्त प्रसन्न हुए। उसी समय द्विजराज ने इनसे रघुनाथ जी की बाललीला और स्वयम्बर को विस्तार पूर्वक कराने की इच्छा प्रगट की। उसीके अनुसार इस ग्रन्थ की रचना की गई। इसमें बाललीला और स्वयम्बर का बहुत ही विस्तार से वर्णन है। पर और काण्डों की भी कथायें संक्षेप से वर्णन की गई हैं। इस ग्रन्थ की कविता, मेरी समझ में, श्रीमान् के अन्यान्य काव्यों से बहुत अधिक मनोहारिणी, सरस और मधुर है। उदाहरण मात्र से इसके अपूर्व छन्दों के छटा की छवि वर्णन करना, दुस्तर ही नहीं, किन्तु सर्वथा असम्भव है। तथापि पाठकों के अवलोकनार्थ कतिपय छन्द नीचे दिये ही जाते हैं—

विश्वामित्र की चरणसेवा।

सवैया

हैं नख दीरघ, चारिहुं ओर,
कढ़ों केतनी तरवांन बेमाई।
कारे कठोरन कंटक सी, रज
पंक भरी, उधिरी सब ठांई।
रेखन रेख बसी हैं पिपीलिका,
ते पद आपने अङ्क उठाई।
कोमल कौलहु ते कर सों,
रघुराज मलैं डरसों दोउ भाई॥

देखिये मिथिला की वाटिका का कैसा अपूर्व वर्णन है—

कवित्त

कञ्चन कियारिन में फटिक फरस फावैं,
तामे झरैं मालती सुमन मनु तारा हैं।
वदन कुरङ्गन के, विविधि विहङ्गन के,
मुखन मतङ्गन तुरङ्गन कुधारा हैं।
केते कुञ्जभौन, लता भौन लोने लोने लसैं,
वल्लिन वितान त्यों निसानहू अपारा हैं।
भनै रघुराज नवपल्लवित मल्लिका के,
अमल अगारा हैं, मुनारा हैं, दुधारा हैं॥

कीरन की भीर कामनीन ते सहित सोहैं,
कूजि रहे कुञ्ज कुञ्ज मुनि मन हारने।
कोकिला कलापैं चित चोरत अलापैं करैं,
मयूरी कलापैं थापै थिरता अपार ने।
भनै रघुराज केकी कूकैं सुनि चूकैं चित्त,
करत चकोर चारि ओरहू विहार ने।
पिक की पुकारैं, त्यों पपीहा की पुकारैं,
हिय हारैं, हर हारैं, बेसुमारैं देवदार ने॥

देखिये, मालिनियों के वचन कैसे मधुर हैं—

सवैया

तुम श्यामल गौर सुनो दोउ लालन,
आये कहां से उदायन में।
मिथिलेस की वाटिका में विहरो,
हियरो हरो, हेरि, सुभायन में।
इत कौन पठायौ, दया नहिं लायौ,
सुफूल न तोरो उपायन में।
रघुराज कहूं गड़ि जैहै लला,
पुहुपालि की पांखुरी पायन में॥

कामकलाजित कोशलनाथ,
वचो मम संशृणु हे मनोभावन !
तानि हरे कुसुमानि दलानि,
चिनोषि, न पश्यसि, मामिह पावन ।
श्रीरघुराज तवेन्दुमुखे,
मम चित्तचकोरमवेहि विभावन ।
त्वत्पदसेवनमद्य विना,
नहि मे शरणं क्वचिदस्ति जनावन ॥

यह पिछला पद्य बिलकुल संस्कृत में है ।

१० । रामस्वयम्बर में श्रीमान् ने, वाल्मीकि के मतानुसार, परशुरामागमन विवाह के पीछे दिखलाया है; उस समय दशरथजी अपने चारों कुँअरों तथा वशिष्ठ और विश्वामित्र के साथ अयोध्याभिमुख प्रस्थान कर चुके थे । परशुरामागमन की सूचक बीभत्स और भयानकरसमयी ऐसी अच्छी कविता श्रीमान् ने की है, जैसी केवल शृङ्गाररस के कवियों से कभी आशा नहीं की जाती । यह पाठकों के अवलोकन योग्य है । श्रीमान् ने परशुराम से चारों कुँअरों की वार्ता, और दशरथ के विनय में, वीर, रौद्र और शान्त रस इस प्रकार दरसाये हैं कि देखतेही बनता है । विशेष करके वीर और रौद्र रस की कविता यहां पर बहुतही अपूर्व है; परन्तु स्थानाभाव से मैं उसके उदाहरण यहां पर नहीं प्रकाशित कर सकता ।

११ । भाषा पद्य का नमूना तो आप लोग देख चुके । अब गद्य का नमूना देकर इस विषय को मैं यहीं समाप्त करता हूं । यह एक पत्र है जो मिथिलाधिपति की ओर से कोशलाधिपति को, धनुष टूटने पर, लिखा गया है । इसके पढ़नेही से आप लोगों को मालूम हो जायगा कि श्रीमान् का हिन्दी भाषा पर कितना अधिकार था—

अथ पत्रिका

श्रीश्रीश्रीश्रीश्री, सकलभूमण्डलाखण्डल विधिमण्डलनिस्सरितसरितवतदिग्गजगण्डमण्डलकुण्डलाकारसुयशधारक धर्मधुरन्धर धराधर्मप्रचारक रनधीर वीरशिरोमणि हंसवंसावतंस रघुकुलकमलविमलदिवामनि प्रतापतापतापितदिगन्त दुरितदुअन सकलदिगपालजाल मुकुटमनिनीराजितचरनचारुनखचन्द चक्रवर्त्तीचक्रचूड़ामनि महिपालमालमण्डित अखण्डितअवनिउदण्ड महाराजाधिराज राजराजिराजित अवधअवनीन्द्र दशरथजू चरनसमीप; महीप मण्डलमौलिमनिमण्डितचरन सज्जनसुखढरन भक्तजनकण्ठाभरन उत्तमाचरन चारिवरनधर्मशिक्षाकरन ज्ञानविज्ञानानन्दसन्दोहभरन वेदवेदान्तोचरन वैराग्यानुरागप्रचण्डचण्डकरकिरनक्षरन निमिकुलकुमुदकलानिधिनरेन्द्रशिरोमनि सीरध्वज करकमलकलित सानन्दन अभिवन्दन बिलसै । रावरो कृपापारावारधार वार वार पाय अपारसंसार-जनित-दुखसंहार भये । हे महोदार भूभरतार, ब्रह्मर्षिमुनिकुसिककुमार सङ्ग परम सुकुमार मारहू के मदमार धर्मधराधार बलागार श्यामलगौराकार मनोहार रघुकुलसरदार रावरे कुमार नरनारिदुखविपिनिउजारि ताड़कासंहारि कौशिक मख करि रखवारि गौतमगेहिनी उधारि जनकपुर पगधारि रुचिररचनानिहारि मम पन बिचारि रङ्गभूमि सिधारि सकल महीपन को मदगारि दिगन्तयश वितान विस्तारि हियनहारि मोहिं सोचसिन्धु ते उबारि तमारिकुलकीरति बगारि पङ्कजपानि पसारि पुरारिपिनाक तिनुकाहीं सो तोरि दये । मो हिय सुख न समात छन छन उछाह उदधि उमगात पुरजनपरिजनव्रातअभिलाष यों जनात रघुकुलजलजात रविदरश ह्वै जात सहितचतुरङ्गिनीसुभटविख्यात जनकपुर प्रविशात लगन नगिचात ताते मानस त्वरात पत्र यह जात कृपावसात तात लै बरात वेगिही पगुधारिये । हरिप्रबोधिन्यां निशानने ।

१२ । महाराज भाषा ही के कवि न थे । इन्होंने संस्कृत में भी कई छोटे मोटे ग्रन्थ बनाये हैं । इनमें से, इस समय, जगदीशशतक मेरे पास मौजूद है । इसे श्रीमान् ने सम्वत् १९१३ में निर्म्माण किया था । रचना का कारण और अवसर इस अद्भुत

ग्रन्थ के किसी टीकाकार ने निज व्याख्या के आरम्भ में यों लिखा है—

अथ खलु श्रीमन्महाराजधिराजः श्रीकृष्णचन्द्र-कृपापात्राधिकारी सकलसपत्नराजशिरोराजद्रत्न-राजिनी राजितचरणराजीवः श्रीरघुराजसिंहनामा बांधवाचलाधिराजः श्रीमन्नीलाचलाधिराज संदिदृक्षया प्रस्थितो मध्येपथं तद्दर्शनविलम्बमसहमानः कदा कदा द्रक्ष्यामिति तद्दर्शनोत्सुक्यातिरेकाविष्ट-मनास्तमेवानवरतमनुसंदधानो यद्धि मनसा ध्यायति तद्वाचा वदतीत्युक्तरीत्या वाचायितमेव तोष्टयमानस्तदनुसंधानजनितप्रेमपरीवाहरूपां पठनश्रवणमात्रेण सकलजनपावनीं श्रीमज्जगन्नाथशतकाख्यां स्तुतिमरीरचत् ॥

इस ग्रन्थ की सरसता, मधुरता, भावगम्भीरता, पदसारल्य और अलङ्कारादि-योजना अपूर्व है। देखनेवाले का चित्त इसके एक श्लोक के पाठ करने पर, बिना आद्योपान्त पढ़े, नहीं मानता। इसके काव्यानन्द को कवि ही अच्छी तरह पा सकता है। यह मेरा काम नहीं कि मैं इसकी समालोचना करने का साहस करूं। मुझे तो यही नहीं जान पड़ता कि कौन सा श्लोक उदाहरणार्थ आप लोगों को भेंट करूं। मुझे तो सभी श्लोक एक ही से सरस और मधुर मालूम होते हैं। देखिये—

यद्भासा सुविभाति विश्वमखिलं सार्केन्दुतारागणं
यत्किञ्चिद्भ्रूकुटीकटाक्षकलया नाशोद्भवौ पालनम्
यत्पादाम्बुजधूलिधारणविधौ कुर्वन्ति यत्नं सुरा-
स्तन्नीलाचलवासिनं यदुपतिं वंदे जगद्वंदितम् ॥१॥

यत्पादपंकजजलं चतुराननोऽसौ
शुद्धयै कमंडलुमुखे सुतरां दधार।
अद्यापि मूर्द्धनि शिवो वहतीष्टरूपं
वन्दे प्रभुं पतितपावननामधेयम् ॥ १० ॥

कामस्य पाशवलितं चपलं मनो मे
संधावतीष्टविषयेषु वदामि सत्यम्।
प्राप्स्यामि केन विधिना गतिमुत्तमां ते
मामुद्धरस्व कृपया जगदीश कृष्ण ॥ ३६ ॥

हृदयहर्षणहर्षणहर्षणो
मनुजकर्षणकर्षणकर्षणः।
अवनिपोषणपोषणपोषणः
पतितपावन माधव पाहि माम् ॥ ४८ ॥

सकलगोकुलगोकुलगोकुलः
सकलगोकुलगोकुलगोकुलः।
सकलगोकुलगोकुलगोकुलः
पतित पावन माधव पाहिमाम् ॥ ५९ ॥

ज्वलितरत्नविभासविभासितं
मुकुटमण्डितमस्तकमिष्टदम्।
सुभगकुण्डलमण्डलगण्डकं
तमवलोकितुमुत्सहते मनः ॥ ५१ ॥

भवविलासनिरासविधायकं
मुनिगणाऽमलमानसभानसम्।
ललितनूपुरयुग्मपदाम्बुजं
तमवलोकितुमुत्सहते मनः ॥ ५७ ॥

अस्मादृशां पापविनिष्टितानां
नान्योऽस्त्युपायस्तरणे भवाब्धेः
महाप्रसादं ददतं तदर्थं
श्रीमज्जगन्नाथमहं नमामि ॥ ६१ ॥

मनोहारी हारी व्रजवनविहारी यदुपति-
द्विपद्धारी तारी हृदि शिवविचारी सुमनसा
सदा संचारी यो दिनकरकुमारीकलतटे,
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥

जयतु जलधिवासी नीलशैलेन्द्रवासी
निजजनरिपुनाशी सत्यविश्वप्रकाशी।
व्रजविपिनविलासी सर्वदा मंदहासी
नरनरकनिराशी दिव्यसौन्दर्य्यराशिः ॥ ६

मयि विरतिविहीने सर्वदा नाथ दीने
मदमदनविलीने त्वं दयां संविधत्स्व।
खलसमलकुलीने सर्वदा पापपीने
निजपद जलमीने पामरेऽस्मिन्नवीने ॥ १०

जगदाधार धीरेन्द्र धराधर्मधुरंधर।
जगन्नाथ दयासिंधो रघुराजे दयां कुरु ॥

१३। यदि मैं श्रीमान् की समस्त पुस्तकों की आलोचना करने बैठूं, तो सम्भव है, कि वह एक बहुत बड़ा ग्रन्थ हो जाय। इसलिए अब इस विषय को मैं यहीं पर समाप्त करता हूं और इसका विचार आपही लोगों पर छोड़ता हूं कि श्रीमान् को कौन सा स्थान कविसमाज में मिलना चाहिए। मुझे तो विश्वास है कि, किसी समय, जब इनके समग्र ग्रन्थों का प्रचार भली भांति हो जायगा, तब ये भी गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास, केशवदास आदि के समान आदरणीय होंगे और इनके काव्यपीयूष का पान पाठक वैसे ही प्रेम से करेंगे, जैसे आज कल इन कवियों के काव्यरस का करते हैं। किसीने कवियों के विषय में निम्न लिखित दोहा लिखा है—

"सूर सूर तुलसी ससी उडगन केसवदास।
कलि के कवि खद्योतसम जहँ तहँ करैं प्रकाश"॥

यदि इस दोहे को जगह पर अब यह दोहा पढ़ा जाय तो ठीक होगा—

सूर सूर तुलसी ससी शुक्र सुकेशवदास।
सुरगुरु श्रीरघुराज हैं सोभित सुभग अकास॥
जानहुँ अपर कवीन को अति ही अल्प उजास।
जहां तहां खद्योत सम नभ बिच करैं प्रकास॥

१४। सरस्वती के पहले पृष्ठ पर जिस विशाल मूर्त्ति का चित्र है वह इन्हीं महाराज की अनुपम मूर्त्ति है। मुझे तो इनके साक्षात् दर्शन का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ; किन्तु जिन लोगों ने इन्हें देखा है वे इनकी सुन्दरता की बहुत बड़ाई करते हैं। इनका वर्ण गौर, माथा ऊंचा और क़द लम्बा था। इनके नेत्र बहुत बड़े बड़े थे। भुजायें इतनी लम्बी थीं कि ये यहां आजानुबाहु प्रसिद्ध हैं। शरीर स्थूल तो था, किन्तु क़द लम्बा होने से स्थूलता इनकी सुन्दरता को द्विगुणित करती थी। सहस्रों मनुष्यों की भीड़ में भी इनका मस्तक ऊपर रहता था। आप अत्यन्त प्रियवादी, नीतिज्ञ और उदार थे। दाता ऐसे थे कि मथुरा, जगदीश, काशी इत्यादि तीर्थों में जाकर आपने हेम-तुला दान दिये। स्थूल शरीर तो थे ही, उस पर तुला पर बैठते समय कुल राजसी पोशाक के साथ शस्त्र अस्त्र से सुसज्जित हो लेते थे। इनके प्रत्येक तुलादान में कम से कम पांच मन सुवर्ण लगता था। इस दान से उन तीर्थों के विद्वान् और दीन ब्राह्मणों को ये सन्तुष्ट करते थे। निज राज्य में भी कई सहस्र के आय की भूमि आपने ब्राह्मणों को सर्वदा के लिये पैर-पखार दे दी है। लगभग ६० सहस्र के आय की भूमि श्रीमान् के गुरुस्थान लक्ष्मणबाग़ के स्वामी के आधीन देवार्थ लगी है। सुतरां इन्हें कलियुग का कर्ण कहना अत्युक्ति नहीं है। ये पूर्ण हरिभक्त थे। और स्वधर्म में इतने दृढ़ थे, कि शास्त्रोक्त त्रिकाल सन्ध्योपरान्त २४,००० अष्टाक्षर मन्त्र का जप प्रति दिन किया करते थे। इसके सिवा नित्य वाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड का पाठ और भगवान द्वारिकाधीश की आराधना भी इनका नित्य कर्म था। शील के तो आप सागर ही थे। यदि राज्य का कोई कर्मचारी अथवा प्रजा कैसा ही अपराध कर, सौभाग्य वश, इनके सम्मुख पहुंच जाता तो आप उससे कुछ नहीं कहते थे। और उसके सब अपराधों को भूल कर आप उससे सप्रेम वार्तालाप करते थे। अन्त में आप ऐसा प्रबन्ध कर देते थे कि न्यायालय से उसका अपराध क्षमा कर दिया जाता था। यदि राज्य की कोई वस्तु इनके सामने से भी कोई ले जाता हो तो ये उसे देखी अनदेखी कर जाते थे। ऐसा सुना जाता है कि एक समय राज्य का एक बड़ा कर्म्मचारी सरकारी कोष से बहुत सा द्रव्य मटकों में रखवाता था। ऊपर से कुछ मिठाई इत्यादि से उसे वह ढकवाता था। इस तरह वह उसे अपने घर भिजवाता था। रास्ते में एक बार जब यह मृगया से लौटे आते थे, तब मटकों को लेजानेवाले कहारों से इनसे साक्षात् हो गया। साथियों में से किसी की शिकायत पर, इन्होंने कहारों को बुला कर एक घड़ा खोला, तो उसमें द्रव्य मिला। तब श्रीमान् ने केवल इतना हो कहा था कि—"यह अपूर्व मिठाई

है। किन्तु यदि तुम्हारे स्वामी ने ऐसी अनमोल मिठाई भेजते समय लुटेरों से रक्षा के लिये कुछ सवार इत्यादि का भी बन्दोबस्त कर दिया होता तो उत्तम होता"। यह कह कर कहारोंके चले जाने की आपने आज्ञा दे दी; और तब से उस विषय की चर्चा भी कभी आप अपने मुंह से नहीं की।

१५। श्रीमान् बड़े बुद्धिमान् थे। इनकी बुद्धि ऐसी विलक्षण थी, कि राज्य-सम्बन्धी कठिन से कठिन कार्य्य भी यह सरलता से पूरा कर डालते थे, जिनके करने में बड़े बड़े कर्म्मचारी नीतिज्ञों की बुद्धि चक्कर में आ जाती थी। इसका एक छोटा सा उदाहरण लीजिए। यह उस समय की घटना है जब ये युवराज थे, और इनके सुयोग्य पिता जीवित थे। इनके पितामह का गुरुस्थान निपनिया है, जहां पर अग्निहोत्री ब्राह्मण रहते हैं। ये लक्ष्मण बाग के स्वामी आचारी के शिष्य थे। एक समय इन दोनों गुरुकुलों में कुछ झगड़ा पड़ गया। लक्ष्मण बाग के स्वामी जी निपनिया पर तोप इत्यादि लेकर, चढ़ाई करने की तय्यारी करने लगे। यह समाचार सुन कर महाराज विश्वनाथसिंह और उनके कर्म्मचारी बहुत घबराये। इधर तो पिता का गुरु स्थान, उधर युवराज का। गुरु को रोकना या उनकी आज्ञा-भङ्ग करना ये लोग महा पातक समझते थे। अन्त में हमारे चरितनायक बुलाये गये। समाचार सुन कर इन्होंने पिता से निवेदन किया कि "इस विषय में श्रीमान् कुछ चिन्ता न करें; मैं शीघ्र इसका ऐसा प्रबन्ध किये आता हूं कि जिसमें धर्म भी न जाय और यह झगड़ा भी निर्विघ्न समाप्त हो जाय"। यह कह कर तुरन्त निज गुरुस्थान लक्ष्मणबाग में आप पहुंचे। आपने स्वामी जी को साष्टांग प्रणाम किया और उनसे अपनी इच्छा युद्ध में साथ देने की प्रगट की। स्वामी जी ने अति प्रसन्न हो कर इन्हें उस युद्ध का सेनापति बनाया। इन्होंने तुरन्त गोलन्दाजों को बुलाकर यह आज्ञा दी कि अमुक स्थान पर तोपें लगा कर निपनिया पर ऐसा गोला बरसावो कि वहां के स्त्री, पुरुष और बच्चे ही नहीं, वरन गाय बैल इत्यादि जीवजन्तु भी ध्वंस हो जांय।" स्वामी जी स्त्री, बच्चे, गाय और बैल का नाम सुनकर चिहुंक उठे, और कहा कि "नहीं, नहीं, केवल पुरुषही पुरुष मारे जांय"। श्रीमान् ने विनय किया कि "दयासागर, यह कैसे सम्भव है कि स्त्री, बच्चे, गाय और बैलों पर तोप के गोले दया दृष्टि रक्खें"। सारांश यह कि स्वामी जी ने इस चातुरी के उत्तर से युद्ध को आज्ञा रोक दी। कुछ दिनों बाद इन्होंने दोनों गुरुकुलों में प्रेम भी करा दिया।

१६। पितृभक्त तो ये बड़ेही थे; किन्तु भ्रातृस्नेह भी इनमें कम न था। सहोदर भाई तो श्रीमान् के कोई न था। पर चचा के पुत्र, माधवगढ़ के बा[बू] साहब, श्रीयुक्त रामराजसिंह से इनका ऐसा स्नेह था कि उनके बिना देखे यह एक क्षण भी नहीं र[ह] सकते थे। यह प्रजा को पुत्रवत् मानते थे। गुरु के ऊपर जैसा इनका प्रेम था वह ऊपर वर्णन हो चुका है। प्रजावर्ग श्रीमान् को किस प्रकार हृदय से चाहते थे, उसका एक उदाहरण सुनिये। दरबार के ऊपर सरकार अङ्गरेज़ का १० लक्ष मुद्रा क़र्ज़ था। श्रीमान् की दानशीलता के कारण इतना रुपया एकबारगी इकट्ठा होना दुस्तर था। गवर्नमेण्ट का मीठा मीठा तक़ाज़ा भी आने लगा। आपने अपने प्रिय दीवान दीनबन्धु को बुलाकर पूछा कि क्या करना चाहिये, जिसमें यह क़र्ज़ अदा हो जाय। दीवान दीनबन्धु ने राज्य के सरदारों और मुखियों को बुलाकर एक सभा की जिसमें सब लोगों ने प्रेम से चन्दा कर सहर्ष १० लाख रुपया बात की बात में इकट्ठा कर दिया और एक ही सप्ताह में सब रुपया गवर्नमेण्ट को भेज दिया गया। पाठक गण, प्रजा की असीम राजभक्ति का और क्या उदाहरण हो सकता है?

१७। श्रीमान् राजनीति में बड़े ही निपुण थे। अपने एकही अधिकारी के आप कभी पूर्णतः वश-भूत नहीं होते थे। इनके राज्यकाल में पण्डित वंशीधर, मथुरानाथ, दीनबन्धु तथा लाल रणदमन

सिंह क्रमशः दीवान हुए। लाल रणदमनसिंह के वैकुण्ठवास के बाद पण्डित दीनबन्धु पुनः दीवान हुए थे। कुछ दिनों के लिए महाराष्ट्रदेशीय पण्डित दिनकरराव भी यहां दीवानी पाने की इच्छा से आये थे; किन्तु श्रीमान् परदेशियों को इस पद पर नियुक्त करना नीतिविरुद्ध समझते थे। बरेली के पण्डित हेतरामजी, दीवान दीनबन्धु के समय ही से, नायब दीवान थे। दीनबन्धु के मरने पर १० या ११ महीने तक, जब तक श्रीमान् का वैकुण्ठवास नहीं हुआ, पण्डित हेतराम जी पूरे दीवान नहीं हुए थे; यद्यपि सब कार्य्य दीवानी के वे करते थे। जब जब किसी दीवान या बड़े कर्म्मचारी से महाराज असन्तुष्ट होकर, दूसरे को अधिकार देना चाहते थे, तब तब ऐसी गुप्त रीति से उसका सब अधिकार खींच लेते थे, कि वह स्वयं निरुत्साह होकर, इस्तेफ़ा दे देता था। किन्तु ऊपरी प्रेमालाप श्रीमान् का सर्वदा वही बना रहता था।

१८। श्रीमान् के समय में निम्नलिखित सरदारों का बहुत मान था और ये श्रीमान् के बहुत ही प्रियपात्र थे—लाल हरचन्द्रराय हारौल; हारौल सरदार पुष्करसिंह सामन्त; रामगढ़ के सरदार दिग्गजसिंह चन्दौल; देवरा-रामनगर के श्रीलाल दिग्गजसिंह कमाण्डर-इन-चीफ़; लाल कल्याणसिंह कर्नल; श्रीलल्लाबहादुर वकील दरबार; तथा श्री बांकेसिंह प्राइवेट सेक्रेटरी।

१९। संवत् १९२४ में श्रीमान् ने एक बहुत बड़ा वाजपेय यज्ञ किया। इस यज्ञ में एक लक्ष पचीस सहस्र से ऊपर रुपया व्यय हुआ। बड़े बड़े विद्वान् और पण्डित, जो वेदोक्त यागादि कार्य्यों में अत्यन्त चतुर और कुशल थे, इस यज्ञ में, देश-देशान्तर से, बुलाये गये थे। उनका यथोचित् सत्कार भी किया गया था। यज्ञ, निर्विघ्न पूर्ण होने पर, श्रीमान् ने साम्राट् की उपाधि को धारण किया था।

२०। संवत् १९१३ के अन्त में, श्रीमान् ने जगदीशदर्शन के लिए, पुरी की ओर, बिलासपुर और सम्मलपुर की तरफ़ से, सकुटुम्ब प्रस्थान किया। जब आप पुरी ही में थे, भारत गवर्नमेण्ट का ख़रीता पहुँचा कि हिन्दुस्तान में बलवा हो गया। श्रीमान् की सलाह लेने के लिए बड़े लाट ने इन्हें कलकत्ता बुलवाया। स्त्रियों को रीवां पहुंचा कर श्रीमान् ने कलकत्ते जाने का वचन दिया। फिर गया में पिण्डदान करते हुए आप शीघ्र ही मिरज़ापुर पहुंचे। यहां इन्हें बाग़ियों के एक बड़े गरोह से सामना हुआ। श्रीमान् के साथ में स्त्रियां थीं और सेना की न्यूनता थी; इससे उनसे लड़ना उचित न समझ, आपने उनसे प्रेम से वार्तालाप किया। बाग़ियों ने इनसे फ़ौज और द्रव्य की सहायता मांगी; और दिल्ली का सिंहासन देने का वादा किया। श्रीमान् ने स्त्रियों को रीवां पहुंचाने पर, उन्हें फ़ौज और द्रव्य से सहायता देने का वचन देकर, युक्ति से उनसे पिण्ड छुड़ाया। और रीवां पहुंच कर, आपने अपनी सीमा पर ऐसा कठिन बन्दोबस्त कर दिया, कि बाग़ी राज्य में घुसने न पावें। यह करके भारत गवर्नमेण्ट को सहायता के लिए, स्वयं अपनी सेना और तोपें इत्यादि लेकर, मैहर राज्य पर, जहां कि उस समय बहुत बाग़ी थे, आप चढ़ गये। शीघ्र ही वहां के क़िले को श्रीमान् ने तोड़ दिया और बाग़ियों को तितर बितर कर दिया। इस प्रत्युपकार में गवर्नमेण्ट की ओर से, सोहागपुर का इलाक़ा, जो अब तक राज्य में शामिल है, मिला। इससे श्रीमान् की दूरदर्शिता और वृटिशराज्य-भक्ति पूर्णतः झलकती है।

२१। जब सन् १८७२ ई० में, ड्यूक आफ़ एडिनबरा (His Royal Highness the Duke of Edinborough), जोकि श्रीमती राजराजेश्वरी महारानी विक्टोरिया के द्वितीय पुत्र थे, भारतवर्ष देखने के लिए आये थे, तब आगरे जाकर आप उनके दरबार में शरीक हुए थे। तदनन्तर ही भारतवर्ष के राजा महाराजाओं को मिलनेवाले ख़िताबों में से सबसे बड़े, जी० सी० एस० आई० (Grand Kinght Commander of the most

exalted order of the Star of India) के खिताब से आप आभूषित किये गये। श्रीमान् के चित्र में इसीका पदक आपकी दक्षिण भुजा को सुशोभित कर रहा है। लार्ड मेओ से आपका हार्दिक प्रेम और मित्रभाव था।

२२। सन् १८७५ ई० में, आप महारानी के ज्येष्ठ पुत्र, युवराज प्रिन्स आफ़ वेल्स, अर्थात् हमारे वर्त्तमान सम्राट् सप्तम एडवर्ड, की मुलाक़ात के लिए कलकत्ता गये थे। और दो वर्ष बाद सन् १८७७ ई० के दिल्ली के वृहत् दरबार में, जब श्रीमती विक्टोरिया महारानी ने भारतवर्ष की राजराजेश्वरी की उपाधि ग्रहण की थी, आप पधारे थे। उसी समय आपकी सलामी में दो फ़ैर और बढ़ा दी गईं, अर्थात् १७ फ़ैर से १९ फ़ैर कर दी गईं।

२३। यद्यपि श्रीमान् का जीवन सर्वतोभाव से सुखमय था, तथापि एक मानसिक दुःख भी आपको ऐसा था, जो श्रीमान् के हृदयकमल को समय समय पर कुम्हिला देता था। आपके बारह विवाह हुए थे, किन्तु खेद की बात है कि बारह महाराणियों में से, महाराज की तिरपन वर्ष की अवस्था तक, जितनी सन्तान उत्पन्न हुई, कोई भी जीवित न रही। इधर महाराज की अवस्था ढल जाने के कारण, महाराज सामयिक व्याधियों से भी पीड़ित रहा करते थे। उत्तराधिकारी न होने के सबब से, युवराज पद किसको दिया जाय; राज्यशासन कौन करेगा, इत्यादि चिन्तायें उनको, समय समय पर, और भी दुःखित करती थीं। शरीर की दशा दिन पर दिन क्षीण होती देख, अपनी जीवित अवस्थाही में, श्रीमान् ने, कलकत्ते जाकर, १८७५ ई० में, समस्त राज्यकाज वृटिश गवर्नमेण्ट के आधीन कर दिया। और आप सांसारिक झमेलों से हस्थ खींच, तीर्थ पर्य्यटन, ईश्वराराधन, तथा साधुसेवा में समय व्यतीत करने लगे।

२४। रीवां से १० मील दक्षिण, पर्वत के नीचे, एक अपूर्व स्वभाविक झील के तट पर श्रीमान् ने गोविन्दगढ़ नामक एक नगर विशेष व्यय से बसाया था। इस नगर की मनोभाविनी छवि मनुष्य मात्र को मोहित कर लेती है। श्रीमान् को यह नगर अत्यन्त प्रिय था, और वहीं पर, आपका तीर्थादि स्थानों से लौटने पर, विशेष कालक्षेप होता था।

२५। ईश्वर की लीला भी क्याही विचित्र और अपरम्पार है, कि उसे सांसारिक जीव मात्र के सुख दुःख परिवर्त्तन कर देने में तनिक भी देर नहीं लगती। ऐसे हताश महाराज के ५४ वर्ष की अवस्था में, हमारे वर्त्तमान महाराज, श्री १०८ सर वेङ्कट रमणसिंहजू देव बहादुर, जी० सी० एस० आई० का जन्म, श्रावण कृष्ण तृतीया संवत् १९३३ को हुआ, जिससे श्रीमान् की हृदय-बेल को मनोरथ लता, जो चिन्ता-तुषार से मुर्झा गई थी, पुत्रोत्सव के आनन्द-बूंदों से सिञ्चित होकर, एक बारही लहलहा उठी। किन्तु यह लिखते हमको अत्यन्त खेद होता है, कि श्रीमान् अपने इस वृद्धावस्था के परम सुख को विशेष काल तक भोगने का अवसर विधाता की वामगति के कारण न प्राप्त कर सके। अर्थात् जिस समय वर्त्तमान महाराज की अवस्था केवल तीनही वर्ष की थी, आप समस्त सांसारिक सुखों को स्वप्नवत् छोड़, सत्तावन वर्ष की अवस्था में, माघ कृष्णा नवमी, संवत् १९३६ अर्थात् ४ फ़रवरी सन् १८८० ई० को, अपने प्यारे पुरजन, परिजन, तथा भ्रातृजनों को शोकसमुद्र में छोड़, परमपवित्र, निज राज्य-गुरुस्थान, लक्ष्मण बाग़ में, इस असार संसार को परित्याग कर वैकुण्ठधाम को पधारे।

इस लेख का कुछ अंश श्रीमल्लाल बलदेवसिंह जी लिखित आनन्दाम्बुनिधि की भूमिका से लिया गया है, जिसके लिए मैं लाल साहब का कृतज्ञ हूं।

जीतनसिंह

ईशवन्दना ।

[१]

हे कारुणीक ! करुणामय ! दीनबन्धो
प्रातर्नमामि तव पाद दयैकसिन्धो ।
ह्वै के प्रसन्न विनती मम कान कीजै
जो मैं चहौं सुरुचि ते वह मोहिँ दीजै ॥

[२]

जैसी दया तुम करी ध्रुव बाल पै है
वैसी दया करन की अब बारि या है ।
नीरोग औ सुदृढ़ मोर शरीर कीजै
विद्या-विनोद महँ नेह सुगाढ़ दीजै ॥

[३]

देशानुराग अरु बान्धव-प्रेम मेरे
हृद्देश से नहिँ हटैं विधि केहु प्रेरे ।
देशोपकारक लखाहिँ विधान जेते
राजैं सदैव मम मानस माहिँ तेते ॥

[४]

वाणिज्य औ कृषि बढ़ावनहार बातैं
जो जो जहाँ मिलि सकैं उनको वहाँ ते,
लै लै प्रचार करिबे कहँ मोहिँ दीजै
सामर्थ्य; नाथ ! बिनती यह कान कीजै ॥

[५]

वाष्पीय यन्त्र अरु विद्युत शक्ति द्वारा
पाश्चात्य बन्धु करहीं निज देश केरा
लोकोपकार, जिमि, स्वारथ नेह रीते
मैंहू करों तिमि सदा निज बाहु बूते ॥

[६]

जो जो धनाढ्य जन भारत के निवासी
सो सो समाजन रचैं तजि कै उदासी ।
वाणिज्य, शिल्प, कृषि को नित ही बढ़ावैं
राजा, प्रजा सबन के मन मोद पावैं ॥

[७]

हे हे दयाघन ! विभो ! जन-दुःख-हारी !
ज्यों थी सुनी तुम प्रभो ! गज की पुकारी ।
त्यों धाय नाथ ! मम टेर सुनौ कृपाल
औ शीघ्र ही भरत-भूमि करौ निहाल ॥

[८]

न्यायी, सुखी, अरु पराक्रम बुद्धिवारे
कर्त्तव्य-कर्म्म-रत सज्जन शीलधारे ।
आबाल-वृद्ध नर-नागर ग्रामवासी
होवैं गुणी सकल ये मम देशवासी ॥

गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री ।

सभ्यता ।

[१]

अद्भुत तेरी माया; उसका
कोई पार न पाते हैं;
विविध भाँति से विद्वज्जन तव
गुण की गरिमा गाते हैं ।
देश देश में भेष बदलती
चलती फिरती आती है;
मदमाती, अपने यौवन को
हाथों हाथ लुटाती है ॥

[२]

विद्या-धन-कुल-रूपवान नर
ढूंढ ढूंढ अपनाती है;
जिसे चाहता उसको तो तू
स्वामी सुभग बनाती है ।
छी ! छी ! ऐसा बुरा कर्म्म कर,
ज़रा नहीं सकुचाती है;
जो तुझको भाता उसको ही
अपनी ओर झुकाती है ॥

[३]

तिस पर भी तुझको पाने के
लिए लोग अकुलाते हैं;

बिना बिचारे सब आ आकर
तुझसे हाथ मिलाते हैं।
तेरे बिन धन-यौवन-शाली
आदर अधिक न पाते हैं;
जिन पर तेरी कृपा नहीं वे
निरे असभ्य कहाते हैं।

[४]

रूपहीन कुलहीनों को भी
तू अति ऊञ्च बनाती है;
ज्यों ज्यों तुझसे प्रेम करें नर,
त्यों त्यों तू सरसाती है॥
आते ही तू जनसमाज पर
निज अधिकार जमाती है;
सारे जग की सभ्य जाति को
नूतन नाच नचाती है।
झूठ बुलाती; क़सम खिलाती;
और अपेय पिलाती है;
कभी हँसाती; कभी रुलाती;
नाना खेल खिलाती है॥

[५]

कभी कभी जन तुझको पाकर
मनही मन पछताते हैं।
तो भी तेरे मोहजाल से
नहीं छूटने पाते हैं।
अधिक गुणी जो, वे ही तेरे
अधिक दास हो जाते हैं;
नहीं जानता मैं वे तुझसे
क्या ऐसा कुछ पाते हैं॥

[६]

नहीं कभी भी ग्रामीणों को
तू चल कर अपनाती है;
रूपवान श्रीमान क्यों न हों;
उनसे घृणा दिखाती है।
कुलबाला तव देख वदन-विधु
नलिनी सम सकुचाती हैं;
चारुहास करके धीरे से
घूंघट में घुस जाती हैं॥

सत्यशरण रतूड़ी।

शिक्षाशतक।

[गत अङ्क के आगे]

(६१)

कवितानुभव-जनित सुख-भोग।
पा सकते नहिँ अरसिक लोग॥
शरदचन्द्र की छटा विशेष।
अन्धे कभी न सकते देख॥

(६२)

कविवाणी सुन, रसिक अमन्द।
पाते जो मन में आनन्द॥
सो कब पा सकता मतिदीन।
जो सहृदयता-वित्त-विहीन॥

(६३)

मन्दवन्हि को अति आहार।
दुर्बल जन को गुरुतर भार॥
कुमति नृपति को राज्य अछाम।
होता है दुख का परिणाम॥

(६४)

नीति सहित कर धन उत्पन्न।
करो सुकृत कारज सम्पन्न॥
इसमें है सब बिधि कल्याण।
सभी ठौर होगा सन्मान॥

(६५)

जो समुचित व्यय से मुँह मोड़।
झुकते अपव्ययों की ओर॥
वे कुछ दिन में अपना माल।
व्यर्थ उड़ा, होते कङ्गाल॥

(६६)

जो कुकार्य में अभिमत द्रव्य ।
फूँक, दिखाते निज सामर्थ्य ॥
सो अपनी करनी पर आप ।
पछताते पाकर उत्ताप ॥

(६७)

जो कुसङ्गवश निज सम्पत्ति ।
खोते, सो पा, विषम विपत्ति ॥
पछताते मल दोनो हाथ ।
अन्त न कोई देता साथ ॥

(६८)

जो अपनी आमद अनुसार ।
करते हैं सब काज विचार ॥
कभी न वे ऋण लेने हेत ।
कर फैलाते विनय-समेत ॥

(६९)

जो करता है मदिरा-पान ।
रखता नहीँ धर्म का ध्यान ॥
सो कुछ दिन में हो विक्षिप्त ।
असुर कर्म में होता लिप्त ॥

(७०)

बिगड़े दिलवालों के सङ्ग ।
रहने से होता मति-भङ्ग ॥
इस से उनका करना साथ ।
मानो विपद चढ़ाना माथ ॥

(७१)

पहले प्रेम दिखाकर नीच ।
लेता अपने मत में खींच ॥
मतलब गाँठ भले, दे ताप ।
पीछे हट जाता है आप ॥

(७२)

निज सुशीलपत्नी को त्याग ।
करते परतिय से अनुराग ॥
अन्तकाल वे हो बेचैन ।
झखते रहते हैं दिन रैन ॥

(७३)

जो अपने पति के प्रतिकूल ।
चल, हठ वश करती हैं भूल ॥
वे दिन दिन पातीँ दुख ढेर ।
पछतातीँ निज पातक हेर ॥

(७४)

जहाँ दम्पती-प्रेम अभङ्ग ।
होता वहाँ न दुख का सङ्ग ॥
जीवन सुख पाते सब तौर ।
उनसे बढ़कर सुखी न और ॥

(७५)

पिशुन, पाप, वैरी, ऋण, रोग ।
औ अपकारी हैं जो लोग ॥
वे हैं प्रतीकार के जोग ।
विना दबे देते हैं सोग ॥

(७६)

सत् सेवक निज कार्य समान ।
कर्म, वचन, मन से हित ठान ॥
स्वामी की सेवा कर नित्य ।
होगा किसी समय कृतकृत्य ॥

जनार्दन झा ।

हेमन्त ।

[१]

हेमन्त में महिष-अश्व-वराह-जाति
होती प्रसन्न अतिही गज-काक-पांति ।
पुन्नाग, लोध्र तरु ये नित फूलते हैं;
भौंरे सदैव इन ऊपर झूलते हैं ॥

[२]

वियोगिनी वाम महा मलीन;
होतीं दिशायें सब दीप्तिहीन ।

अम्भोज सारे बिन पत्र क्षीण;
भुजङ्ग होते बिन वीर्य्य दीन ॥

[३]

हुआ हिमाच्छादित सूर्य्यमण्डल;
समीर सीरी बहती अखण्डल।
प्रियङ्गु के पेड़ प्रफुल्ल हो चले;
हरे हरे अङ्कुर खेत में भले ॥

[४]

आनन्द देती न समीर शीत;
हुए सभी हैं उससे विभीत।
न चाँदनी मञ्जुल है सुहाती;
नदी, नदों की लहरी न भाती ॥

[५]

सौभाग्य से जो पति-युक्त बाला;
देता कसाला उनको न पाला।
माला नहीं वे अब धारती हैं;
विश्लेष की भीति विचारती हैं ॥

[६]

अच्छे दुशाले सित, पीत, काले;
हैं ओढ़ते, जो बहु-वित्त-वाले।
तोभी नहीं बन्द अमन्द सी सी;
हेमन्त में है कँपती बतीसी ॥

मैथिलीशरण गुप्त।

कांग्रेस के कर्ता।

कांग्रेस क्या चीज़ है इसके बतलाने की ज़रूरत नहीं। कांग्रेस का अर्थ प्रायः सभी जानते हैं, चाहे वे अङ्गरेज़ी जानते हों चाहे न जानते हों। हां, अख़बारों से उनका परिचय होना चाहिए। १९०३ की कांग्रेस, इसी महीने, अर्थात् दिसम्बर में, होनेवाली है। उसके होने के पहले ही हम यह लेख लिख रहे हैं। इसीसे हम तदनुकूल शब्द प्रयोग करते हैं। इस बार उसका लीलास्थल बम्बई है। वहां, पालव बन्दर के मैदान में, एक सुदक्ष पारसी यञ्जिनियर उसके लिए एक भव्य भवन बना रहे हैं। कुल १७ विषयों पर वाद प्रतिवाद होगा। इन विषयों में से कई विषय पुराने हैं। नये विषयों में से एक विषय यह है कि पार्लिमेण्ट में हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि लिये जांय। दूसरा यह है कि कांग्रेस की तरफ़ से हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि इङ्गलैण्ड भेजे जांय और वहां वे इस देश की आवश्यकताओं को, वक्तृतायें देकर, प्रकट करें। और भी कई विषय ऐसे हैं जिनसे इस देश का बहुत कुछ लाभ हो सकता है। परन्तु कांग्रेस का काम प्रार्थना करना है। उनको मञ्ज़ूर करना या न करना गवर्नमेण्ट का काम है।

इस बार की कांग्रेस के सभापति आसाम के भूत-पूर्व चीफ़-कमिश्नर सर हेनरी काटन होंगे। आप इस पद के ग्रहण करने के लिए इङ्गलैण्ड से आते हैं। उनके साथ सर विलियम वेडरबर्न भी आते हैं। काटन साहब के कारण इस कांग्रेस में विशेष सजीवता आ जाने की सम्भावना है। आपका पूरा नाम है एच. जे. एस. काटन, के. सी. एस. आई.।

काटन साहब की कई पुश्तें इस देश में बीत चुकी हैं। जोसेफ़ काटन इनके परदादा थे; जान काटन इनके दादा थे; और जोसेफ़ जान काटन इनके पिता थे। ये लोग इस देश में आकर बहुत दिनों तक अच्छे अच्छे पदों पर रहे थे। इनके पिता मदरास हाते में १८३१ से १८६३ तक सिविलियन थे। इनका जन्म १८४५ ई० में, कुम्भकोण में, हुआ था। इनके एक भाई हैं। उनका नाम है जे. एस. काटन। वे भी इन्हींकी तरह हिन्दुस्तान से प्रीति रखते हैं। उन्होंने "इङ्गलिश सिटीज़न" नामक पुस्तक-माला में हिन्दुस्तान पर एक बहुत अच्छी किताब लिखी है। उसमें उन्होंने हिन्दुस्तानियों को अङ्गरेज़ों की बराबरी का बतलाया है। काटन साहब के भी दो लड़के इस समय इस देश में हैं; एक कलकत्ते में हाईकोर्ट के ऐडवोकेट हैं; दूसरे मदरास हाते में सिविलियन हैं।

काटन साहब ने आक्सफ़र्ड और लण्डन में विद्याभ्यास किया। सिविल सरविस की परीक्षा पास करने पर, १८६७ में, वे मेदिनीपुर में असिस्टण्ट कलक्टर नियत हुए। धीरे धीरे उनकी तरक्क़ी होती गई। अनेक ऊंचे ऊंचे पदों पर काम करके १८९३ में वे आसाम के चीफ़ कमिश्नर हुए। १८९६ में वे सी० यस० आई० हुए और १९०२ में के० सी० एस० आई०। चीफ़ कमिश्नरी से उन्होंने पेन्शन ले ली। काटन साहब की इस देश और इस देशके रहनेवालों पर बड़ी प्रीति है। आपने "न्यू इण्डिया" नाम की एक किताब लिखी है। उसमें इस देश की वर्तमान दशा का बहुत ही अच्छा वर्णन है। उसे हिन्दुस्तानी मात्र को पढ़ना चाहिए। आसाम में चाय के अनेक बाग़ हैं। उनमें जो .कुली काम करते हैं उन पर साहब लोग अकसर बड़ी सख्ती करते हैं। यह बात काटन साहब से, चीफ़ कमिश्नरी की हालत में, देखी नहीं गई। उन्होंने .कुलियों का .खूब पक्ष लिया। इस पर उनसे उनके देशवासी अङ्गरेज़ सख्त नाराज़ हुए। पर उन्होंने इसकी ज़रा भी परवा नहीं की। खुले मैदान, कौंसिल में, उन्होंने .कुलियों की दशा का, उन पर होनेवाले अत्याचारों का, और अपने सहानुभूतिसूचक विचारों का बड़े आवेश में आकर वर्णन किया। काटन साहब अच्छे समाज-संशोधक हैं और कांग्रेस के पक्षपाती हैं। जब तक वे इस देश में रहे, छोटे से लेकर बड़े तक, सबसे वे मिलते रहे। कभी किसी से मिलने से उन्होंने इनकार नहीं किया। एक दफ़ा अपने मुंह से उन्होंने कहा—

The excuse of "फ़ुरसत नहीं" is abhorent to me—अर्थात् फ़ुरसत न होने का बहाना बतलाने से मुझे नफ़रत है। ऐसे महामना और उदारचेता काटन साहब इस कांग्रेस के सभापति वर किये गये हैं।

१९०४ की कांग्रेस बम्बई में है। इस लिए उस प्रान्त के दो एक प्रसिद्ध कांग्रेसवालों का परिचय भी, लगे हाथ, हम करा देना चाहते हैं। उनमें से प्रथम स्थान दादाभाई नैरोजी का है। वे इस कांग्रेस में न आ सकेंगे। पर वे उसके पूरे पक्षपाती हैं।

दादाभाई का जन्म, बम्बई में, १८२५ ई० में हुआ था। इनके पिता एक पारसी-पुरोहित थे। वहीं, बम्बई में, इनकी अङ्गरेज़ी शिक्षा समाप्त हुई। अनन्तर ये यल्फ़िन्सटन कालेज में अध्यापक नियत हुए। अपने काम से इन्होंने कालेज के अधिकारियों को .खूब .खुश किया। कुछ समय तक ये विद्या-सम्बन्धिनी एक गुजराती सभा के सभापति रहे। फिर इन्होंने रास्त-गुफ़्तार नामक एक गुजराती अख़बार निकाला। दो वर्ष तक ये उसके सम्पादक रहे; फिर छोड़ दिया। यह अख़बार अब तक जारी है। १८५५ ईसवी में ये इङ्गलैण्ड गये और वहां व्यापार करने लगे। तब से वे वहीं रहते हैं। यहां भी कभी कभी आ जाते हैं। १८७४ में, कुछ काल तक, ये बरौदा में गायकवाड़ के दीवान थे। ये "हौस आफ़ कामन्स" अर्थात् पार्लिमेण्ट के एक बार सभासद हो चुके हैं। अब फिर उस में प्रवेश पाने का ये यत्न कर रहे हैं। ये पहले हिन्दुस्तानी हैं जिनको पार्लिमेण्ट में बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। एक बार, बम्बई में, गवर्नर के कौंसिल में भी यह बैठ चुके हैं। यद्यपि ये बहुत बूढ़े हैं, तथापि देश-हित करने की प्रबल प्रेरणा से पुस्तकें लिखकर, बड़े बड़े अधिकारी अङ्गरेज़ों से मिलकर, और समय समय पर व्याख्यान देकर, जो काम यह कर रहे हैं वह जवानों से भी नहीं हो सकता। इस वर्ष (१९०४) अम्स्टरडाम में जो सभा हुई थी उसमें यह भी गये थे। इनके ऋषितुल्य रूप को देख कर इनके खड़े होते ही सारी सभा खड़ी हो गई थी। इस देश की दुर्दशा का जो चित्र इन्होंने वहां खींचा उससे सभासदों का हृदय द्रवीभूत हो गया। इन्होंने "पावर्टी एेण्ड अन्-ब्रिटिश रूल इन इण्डिया" नाम की एक बहुत ही अच्छी पुस्तक लिखी है।

सर फ़ीरोज़शाह मेहता, एम. ए., एल. एल. बी., के. सी. आई. ई., इस बार, कांग्रेस की

स्वागतकारिणी कमिटी के सभापति हैं। आपही पहले दिन सभासदों का स्वागत करेंगे और अपनी पहली वक्तृता में, कांग्रेस-सम्बन्धिनी भूमिका का भाष्य सुनावेंगे। यह पारसी हैं। पर इस देश में रहनेवाली सब जातियों की प्रतिष्ठा के यह पात्र हैं। बम्बई की हाईकोर्ट के यह प्रधान बैरिस्टरों में से हैं। एक बार वाइसराय के कौंसल के सभासद भी यह रह चुके हैं। आप बहुत बड़े वक्ता हैं; कांग्रेस के बहुत बड़े भक्त हैं; और देश-हित-कारक कामों के बहुत बड़े अभिभावक हैं।

अध्यापक गोपालकृष्ण गोखले, बी. ए., सी. आई. ई. का नाम कौन न जानता होगा? स्वदेशहितचिन्तकों में इनका स्थान बहुत ऊंचा है। तिलक-विभ्राट् के समय ये इङ्गलैण्ड में थे। वहां इन्होंने कुछ अनुचित कह डाला था। इसलिए, यहां आकर, इन्होंने अपनी भूल स्वीकार कर ली, जिससे गवर्नमेण्ट का क्षोभ इन पर से जाता रहा। ये पूना के स्वदेशी फ़र्गुसन कालेज में प्रोफ़ेसर हैं। बहुत कम वेतन लेकर ये वहां विद्यादान देते हैं। देशसेवाही में इन्होंने अपना समय व्यतीत करने का प्रण कर लिया है। अपने प्रान्त से यह वाइसराय के कौन्सल के मेम्बर हैं। ये अपूर्व वक्ता हैं। "यूनीवरसिटी बिल" पास होने के समय इन्होंने कौन्सल में जैसी आवेशपूर्ण वक्तृता दी थी, वैसी आज तक किसी हिन्दुस्तानी से नहीं बन पड़ी। उससे कौन्सल का "हाल" कँप उठा था; बिल को उपस्थित करनेवालों का चेहरा सुर्ख़ हो गया था; और लार्ड कर्ज़न तक से उसका यथोचित उत्तर न बन पड़ा था। इनकी वह वक्तृता एक अजूबा चीज़ है। वह सादर पढ़ने लायक़ है और चिरकाल तक रख भी छोड़ने लायक़ है। उसके कुछही दिन बाद गवर्नमेण्ट ने इनको सी. आई. ई. कर दिया। बहुत अच्छा हुआ।

मिस्टर दिनशा इदलजी वाचा बम्बई के निवासी हैं। आप पारसी-वंशज हैं। कांग्रेस से आपका उसी तरह का सम्बन्ध है जिस तरह का योगियों को ब्रह्मानन्द से होता है। शायदही कोई कांग्रेस ऐसी हुई हो जिसमें आप उपस्थित न रहे हों। व्यापार-विषयक बातों में आपका तजरुबा बहुत बढ़ा चढ़ा है। आपके बोलने का ढंग ऐसा है कि सुननेवालों के नेत्र आपके चेहरे पर जाकर चिपक से जाते हैं। वक्तृता में, यथा समय, अङ्गविक्षेप करने की कला आपको ख़ूब आती है।

सर विलियम वेडरबर्न बम्बई के गवर्नर के प्रधान सेक्रेटरी थे। इस देशवालों ने विलायत में जो एक समाज संगठित किया है उससे आपका घनिष्ट सम्बन्ध है। आप भारत के इतने शुभचिन्तक हैं कि उसके मंगल के लिए राजनैतिक आन्दोलनों में आपने अपने घर के कोई दो लाख से अधिक रुपये ख़र्च किये हैं!

पार्लियामेण्ट सभा के सभ्य स्मिथ साहब भी इस बार कांग्रेस में आते हैं। आप भी भारत के बड़े शुभचिन्तक हैं। इस देश में मद्यपान निवारण करने के लिए आपने विलायत में एक सभा बनाई है। आप उसके सभापति हैं।

इस कांग्रेस के साथ जो प्रदर्शिनी होती है उसके, इस बार, दो भाग हैं—एक पुरुषों का, दूसरा स्त्रियों का। पुरुषोंवाले को बम्बई के गवर्नर लार्ड लेमिङ्गटन खोलेंगे और स्त्रियोंवाले को उनकी लेडी साहबा खोलेंगी। स्त्रियों की प्रदर्शिनी एक नई चीज़ होगी। अनेक पारसी और महाराष्ट्र स्त्रियां इस काम में लगी हुई हैं। वही प्रदर्शिनी के लिये चन्दा इकट्ठा कर रही हैं; वही चीज़ें इकट्ठा कर रही हैं और वही उनको हिफ़ाज़त से रखने और दिखलाने का प्रबन्ध कर रही हैं। ईश्वर करे उनको इस काम में ख़ूब सफलता हो।

अगली कांग्रेस इस प्रान्त में होनेवाली है।

विस्युवियस ।
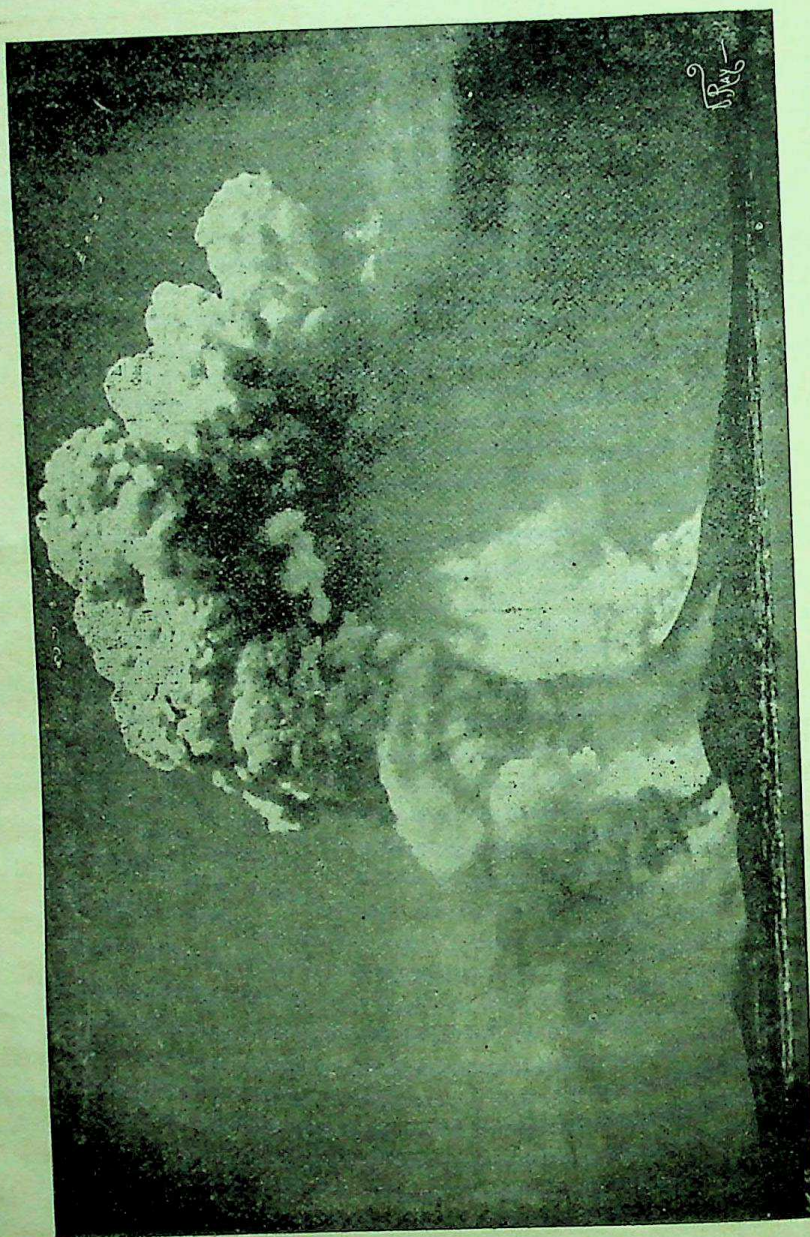
विस्यूवियस ।

पृथ्वी पहले एक प्रकार का जलता हुआ प्रवाही पदार्थ थी। लोहा और तांबा आदि धातु गलने पर जैसे तरल और अग्निमय हो जाते हैं, पृथ्वी भी वैसी ही थी। वह धीरे धीरे ठंढी हो गई है। उसके पेट में, परन्तु, अभी तक ज्वाला भरी है। पृथ्वी का जो भाग समुद्र के पास है वहां बड़ी बड़ी दरारों से, कभी कभी, पानी का प्रवाह पृथ्वी के जलते हुए पेट में चला जाता है। वहां आग का संयोग होने से पानी की भाफ हो जाती है और वह बड़े वेग से पृथ्वी के ऊपरी भाग को तोड़ कर बाहर निकलने का यत्न करती है। इस प्रकार की भीषण भाफ जब पृथ्वी के उदर में इधर उधर आघात करती है तभी भूकम्प आता है। जहां वह पृथ्वी को तोड़ कर ऊपर निकलने लगती है वहां ज्वालामुखी पर्वत हो जाते हैं। ऐसे पर्वतों के नीचे की भाफ निकल जाने पर वे शान्त हो जाते हैं। जब फिर कभी वहां पानी का प्रवाह पहुँचता है तब फिर वहां की आग कुपित हो उठती है और उत्पन्न हुई भाफ पहले मार्ग से ऊपर निकलने लगती है। इस निकलने में पृथ्वी के उदर के पदार्थ वह ऊपर फेंकती है।

पानी पहुँचने से पृथ्वी के पेट की ज्वाला कहीं कहीं अत्यन्त कुपित हो उठती है, और बटलोही के ढकन के समान, पृथ्वी के ऊपरी भाग को वह बलपूर्वक ऊपर उठा देती है। एँडीज़ और आल्प्स् आदि ऊंचे ऊंचे पर्वत इसी प्रकार ऊपर उठ आये हैं। भूगर्भ-शास्त्र के जाननेवालों ने इस बात को सप्रमाण सिद्ध किया है।

जिन पर्वतों में पृथ्वी के ऊपर की उबलती हुई भाफ के निकलने का मार्ग हो जाता है, अर्थात् जिन में भीतर से ऊपर तक, एक विशाल कुवां सा बन जाता है उनसे, कभी कभी, आग की विकराल ज्वाला निकल पड़ती है। ऐसे पर्वतों को ज्वालामुखी अथवा अग्निगर्भ पर्वत कहते हैं।

संसार में जितने अग्निगर्भ पर्वत हैं उन सब में विस्यूवियस बड़ा ही भयङ्कर है। शान्त महासागर के व्यस्ट इण्डीज़ नामक द्वीपों में, उस वर्ष, जो एक ज्वालामुखी का स्फोट हुआ और उससे एक शहर का शहर विध्वंस हो गया, वह विस्यूवियस के हृत्कम्पकारी स्फोटों के सामने कोई चीज़ नहीं था। विस्यूवियस, इटली में, नेपल्स की खाड़ी से थोड़ी दूर पर है। उसके चारों ओर घनी बस्ती है। अङ्गूर और शहतूत के बाग़ दूर दूर तक चले गये हैं। तरु, लता, पशु, पक्षी और मनुष्यों से परिपूर्ण, ऐसी मनोहर भूमि के बीच, यह भीम भूधर खड़ा है। समुद्र की सतह से यह कोई ४,००० फुट ऊंचा है।

जिस मुँह से विस्यूवियस ज्वलन्त ईंट, पत्थर, राख, भाफ और धातुरस उगलता है उसकी परिधि ५ मील है! यह अनादि अग्निगर्भ पर्वत है। किसी समय यह एक दूसरे ही मुख से ज्वाला वमन करता था। इस प्राचीन मुख का घेरा नये मुँह से भी बड़ा है। परन्तु इस मुँह ने चिरकाल से मौन धारण कर लिया है। विस्यूवियस की, इस समय, जितनी उँचाई है, प्राचीन समय में वह उससे दूनी थी। परन्तु एक महा वेगवान् स्फोट में उसके सब से ऊँचे शिखर उड़ गये। तब से उसे यह वामन रूप मिला है।

विस्यूवियस कई सौ वर्ष तक शान्त था। जान पड़ता था कि उसकी जठराग्नि मन्द हो गई और वह हमेशा के लिए शिथिल पड़ गया। इसी लिए मनुष्यों ने उसके इर्द गिर्द अनेक बाग़ लगा दिये, अनेक नगर और गांव बसा दिये; यहां तक कि पर्वत के ऊपर उसके ज्वालाग्राहक मुँह तक वे अपनी भेड़ बकरियां चराने के लिए ले जाने लगे। उसके शिखर नाना प्रकार के हरे हरे पेड़ और लताओं से ढक गये। उनको देखकर यह बात कभी मन में न आती थी कि यह अग्निगर्भ पर्वत है।

६३ ईसवी में अकस्मात् भूडोल आया और यूविस्वियस के पेट में फिर, सैकड़ों वर्ष के बाद,

गड़ बड़ शुरू हुई । १६ वर्ष तक भूडोल आते रहे और जिस प्रान्त में यह पर्वत था उसके निवासियों के कलेजों को कँपाते रहे । अनेक मकान गिर गये; मन्दिरों के अनेक शिखर टूट पड़े; ऊँचे ऊँचे महल पृथ्वी पर उलटे लेट रहे । आगे आनेवाले तूफ़ान की १६ वर्ष-व्यापी यह एक छोटी सी सूचना थी । मनुष्य-संहारक प्रलय का यह आदि रूप था । भूडोल के धक्के धीरे धीरे अधिक उग्र होते गये । अन्त में २४ आगस्ट ७९ ईसवी को विस्यूवियस का भीषण मुँह, महा भयङ्कर अट्टहास करके, खुल गया । क्षुब्ध हुए समुद्र में जिस प्रकार एक छोटी सी डोंगी हिलती है—एक निमेष में कई हाथ ऊपर उठकर फिर नीचे आ जाती है–स्फोट होने के पहले, उसी प्रकार पृथ्वी हिल उठी । सपाट ज़मीन पर भी जाती हुई गाड़ियां उलट गईं; मकान गिरने लगे और उनके भीतर से मनुष्य भगने लगे; समुद्र किनारे से कोसों दूर हट गया; अनन्त जलचर सूखी ज़मीन में पड़े रह गये ! यह हो चुकने पर विस्यूवियस ने अपने पेट के पदार्थ वमन करना आरम्भ किया । प्रलयकाल के मेघ के समान भाफ की घोर घटा हाहाकार करते हुए उसके मुँह से निकलने लगी । ठहर ठहर कर सैकड़ों वज्रपात के समान महाप्रचण्ड गड़गड़ाहट प्रारम्भ हुई । भाफ के साथ राख और पत्थर उड़ने लगे और दूर दूर तक गिर कर देश का सर्वनाश करने लगे । बिजुली इतनी भीषणता से चमकने लगी कि पचास पचास कोस दूर तक के लोगों की आँखों में चकाचौंध आ गई ! मुँह के ठीक बीच से जलते हुए धातु और पत्थरों की राशि आकाश की ओर कोसों ऊपर उड़ने लगी । तीन दिन तक आस पास का देश अन्धकारमय हो गया । विस्यूवियस ने महाप्रलय कर दिया । उसके पास के हरक्युलैनियम, पाम्पियाई और स्टेबिया नामक तीनों शहर समूल लोप हो गये । उनके ऊपर बीस बीस फुट गहरी बजरी, राख, और पत्थर आदि की तह जम गई । सारे जीवधारियों का सहसा संहार हो गया । विस्यूवियस ने अपने मुँह से इतना भाफ उगला कि उसके चारों ओर महाभयङ्कर और महावेगवान् नद बह निकले और अपने साथ, उस पर्वत के भीतर से निकले हुए राख और पत्थर आदि पदार्थों को बहाकर, उन्होंने बाग़, खेत, गाँव, नगर जो कुछ उन्हें मार्ग में मिला, सब को दस दस पन्द्रह पन्द्रह हाथ ज़मीन के नीचे गाड़ दिया ! इस स्फोट में अनन्त प्राणियों ने अपने प्राण खोये ।

इसके बाद कोई १५०० वर्ष तक विस्यूवियस प्रायः शान्त रहा । बीच में कभी एक आध बार उसने धीरे से श्वास अथवा डकार लेकर ही सन्तोष किया । इन १५०० वर्षों में इस ज्वालामुखी पर्वत-राज की फिर पहले की सी अवस्था हो गई । सब कहीं लतायें लटक गईं, घास से उसके शिखर लहलहे हो गये, अङ्गूर और शहतूत के उद्यान उसके आस पास उसकी शोभा बढ़ाने लगे । कितने ही गाँव बस गये । यह सब विस्यूवियस से देखा न गया । फिर भूडोल आरम्भ हुआ । छ महीने तक पृथ्वी हिलती रही । १६ दिसम्बर १६३१ ईसवी को फिर उदरस्फोट हुआ । राख और पत्थर के समूह के समूह हृदयविदारी नाद करते हुए उड़ने लगे और सैकड़ों मील दूर जाकर गिरने लगे । यहां तक कि छोटे छोटे पत्थर रूम की राजधानी कान्स्टैंटिनोपल तक पहुँचे !!! भाफ के पानी की प्रचण्ड नदियां बन गईं । उनमें राख पत्थर मिल जाने से कीचड़ हो गया । कीचड़ के ये सर्वग्रासकारी भयावने नद बहे और अपीनाइन पर्वत के नीचे तक चले गये ! इस बार गले हुए धातु और पत्थरों की अग्निरूपिणी नदियों के भी प्रवाह बहे और महा भीषण रूप धारण करके, पशु, पक्षी, मनुष्य, घास, फूस, वृक्ष, लता आदि को भस्म करते हुए बारह तेरह मुखों से समुद्र में जा गिरे ! इस स्फोट में १८,००० मनुष्यों का संहार हुआ !

जब से यह स्फोट हुआ तब से विस्यूवियस को पूरी शान्ति नहीं मिली । बीच बीच में आप आग, पत्थर, भाफ, राख उगलतेही रहे हैं । १७

१७६७, १७७९, १७९४ और १८२२ ईसवी में आपने विशेष पराक्रम दिखाया।

१७९४ ईसवी के स्फोट में पिघले हुए पत्थरों की एक धारा विस्यूवियस ने निकाली। वह १२ से ४० फ़ुट तक गहरी थी। टोरी डल ग्रेको नामक नगर को तबाह करके वह ३५० फ़ुट तक समुद्र में चली गई। समुद्र में प्रवेश के समय वह १,२०० फ़ुट चौड़ी थी। १८२२ ई० के स्फोट में धुंवें के विशाल स्तम्भ १०,००० फ़ुट तक आकाश में उड़े। १८५५ में चट्टानों के टुकड़े ४,००० फ़ुट तक ऊंचे उड़े और स्फोट के समय ऐसी घोर गड़गड़ाहटें हुईं कि लोगों का कलेजा काँप उठा और वे सब नेपल्स को भग गये।

कुछ दिन से विस्यूवियस की ज्वाला-वमन करने की शक्ति क्षीण सी हो गई थी। परन्तु यह क्षीणता जाती रही है। अब फिर आपने विकराल रूप धारण किया है। फिर आप आग, पानी, ईंट, पत्थर बरसाने लगे हैं। यह अद्भुत तमाशा देखने के लिए दूर दूर से लोग नेपल्स को जा रहे हैं। विस्यूवियस के पास एक यन्त्रशाला स्थापित है। वहां इसकी अग्निलीला की दिनचर्य्या रक्खी जाती है और जो जो दृश्य दिखलाई पड़ते हैं उनका वैज्ञानिक विचार किया जाता है। १८८० ईसवी से, वहां, तार के रस्सों की रेल निकाली गई है। यह रेल विस्यूवियस के मुख से १५० गज़ तक चली गई है। इसी रेल पर लोग इस ज्वलन्तदेव के दर्शन करने जाते हैं।

हरक्युलैनियम और पाम्पिपाई, जिनको विस्यूवियस ने १५ हाथ पृथ्वी के नीचे गाड़ दिया था और बहुत ढूंढ़ने पर भी जिनका कोई निशान नहीं मिलता था, अब ज़मीन से खोद कर निकाले गये हैं। हरक्युलैनियम एक छोटा सा नगर है; परन्तु पाम्पिपाई बहुत बड़ा है। एक कुवां खोदते समय पाम्पिपाई का पहले पहल १७४८ ईसवी में पता लगा। तब से बराबर उसकी खुदाई और खोज हो रही है। विस्यूवियस से वह कोई एक ही मील दूर है। उसके मकान, उसके मन्दिर, और उसकी नाटकशालायें आदि इमारतें सब जैसी की तैसी निकली हैं। उनमें रक्खा हुआ सामान भी बहुत सा निकला है। मनुष्यों की ठठरियां भी पाई गई हैं। १८०० वर्ष के पहले रोमन लोगों के इतिहास को पाम्पिपाई ने प्रत्यक्ष कर दिया है। इस पर अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं और अब तक लिखी जा रही हैं। इनमें लिखे गये वर्णन बहुतही मनोरञ्जक हैं। उस समय इटलीवालों के मकान कैसे थे; उनके रहने की रीति कैसी थी; उनके घरों में किस प्रकार का सामान रहता था; उनके आमोद प्रमोद किस प्रकार के थे—इत्यादि बातों का पता पाम्पियाई से ख़ूब लगा है। कभी कभी बुराई से भी भलाई निकलती है। विस्यूवियस के स्फोट से यदि पाम्पिपाई दब न जाता तो प्रायः दो हज़ार वर्ष पीछे अपने पूर्वरूप में वह क्यों दिखलाई देता?

जापान की स्त्रियां।

प्रशान्त महासागर में कई एक द्वीप मिलकर जापान कहलाते हैं। जापान की राजधानी टोकियो है। सब द्वीप हमारे मदरास हाते से कुछ बड़े होंगे। उनका विस्तार १,५०,००० चौरस मील है। जापान ने कलाकौशल में, व्यापार में, विद्या में, समाजिक सुधार में, युद्ध और समुद्रयान-विद्या में आश्चर्य्य-कारक उन्नति की है। यह सब उन्नति उसने कोई पचास ही साठ वर्ष में कर डाली है। इस समय, एशिया में, जापान बड़ा शक्तिशाली राज्य है। वहां कलाकौशल सीखने के लिए इस देश से, प्रति वर्ष, दो एक युवा पुरुष जाते हैं। अंगरेज़ भी वहां युद्धविद्या सीखने जाने लगे हैं।

जापानियों का रङ्ग कुछ पीलापन लिए हुए होता है, उनके बाल काले और सीधे होते हैं; डाढ़ी के बाल बहुत नहीं बढ़ते। गालों की हड्डियां उभड़ी

हुई होती हैं। जापानी कुछ ठिँगने होते हैं। पुरुषों की अपेक्षा जापानी स्त्रियां अधिक रूपवती होती हैं। उनका रङ्ग गोरा होता है; गाल कुछ ललाई लिए होते हैं; मुँह छोटा और सुन्दर होता है। सिर के बालों को वे बड़ी ख़ूबसूरती से बाँधती हैं। कोकिला के समान उनकी मीठी वाणी और बात चीत करने का उनका तर्ज़ चित्त को लुभानेवाला होता है।

एक जापानी महिला।

जापानवाले बहुत ढीले ढाले कपड़े पहनते हैं। परन्तु स्त्रियों के वस्त्र चुस्त होते हैं; वे बदन से सटे रहते हैं। स्त्रियों के घांघरे पैर के गुल्फ-गुठुवे-तक लम्बे होते हैं। एक फुट भर का चौड़ा कपड़ा कमर से बाँधकर उसे वे बदन पर डाल लेती हैं; और पीछे एक बड़ी सी गाँठ दे देती हैं। उसके दोनों छोर नीचे को लटका करते हैं। उनके ओढ़ने और पहनने के कपड़े इतने अधिक होते हैं कि चल[ते] समय जान पड़ता है कि जापानी स्त्रियां आगे [को] झुकी हुई हैं। वे अपने बालों की बड़ी सेवा कर[ती] हैं; और उनको भाँति भाँति से अलङ्कृत कर[ती] रहती हैं। किसी किसी के बाल इतने लम्बे हो[ते] हैं कि वे बढ़ कर पैरों तक की ख़बर लेते हैं। स्त्रि[यां] बालों का गुच्छ बनाकर आगे ऊंचा कर देती [हैं] और पीछे से उनको बांधती हैं। जूड़े में वे बहु[त] फूल गूंधती हैं। धनवानों की स्त्रियां सोने [की] पिनों---सूइयों—को लगाकर बालों की गाँठ बांध[ती] हैं। कोई कोई पिनें रत्न-जटित होने के कारण बहु[त] क़ीमती होती हैं। स्त्रियां परदा नहीं करतीं। बि[ना] परदे के, मुँह और सिर खोले हुए, वे बा[हर] निकलती हैं। एक बार के शृङ्गार किये हुए ब[ाल] आठ आठ दस दस रोज़ तक वैसे ही रहते [हैं]; बिगड़ने नहीं पाते। स्त्रियां, रात को, गरदन [के] नीचे एक लकड़ी की तकिया रखकर सोती [हैं]। इस तकिये के पीछे बाल लटका करते हैं। [इस] तरह, उनकी बनावट नहीं बिगड़ती।

जापानी लोग स्त्रियों को उच्च शिक्षा दे[ने के] बड़े पक्षपाती हैं। स्त्री-शिक्षा का वहां बहुत प्र[चार] है। इस देश में यदि १०० में १ लड़की मद[रसे] पढ़ने जाती है तो जापान में १०० में २० लड़कि[यां] मदरसे जाती हैं। स्त्रियों में, वहां, अनेक क[वि], चित्रकार, अध्यापिका और सम्पादक हैं। हज़[ारों] पुस्तकें स्त्रियों ने बनाई हैं। जापान में, पुरुष [जिस] समाज का सुधार करने में सङ्कोच नहीं करते, [वैसे] स्त्रियां भी सङ्कोच नहीं करतीं। जो पुरानी री[तियां] हानिकारिणी अथवा निरर्थक हैं उनको वे [छोड़] देती हैं और नई नई अनुकूल रीतियों को स्वी[कार] कर लेती हैं। जापान के बड़े बड़े प्रतिष्ठित [लोग] और अधिकारी अपनी अपनी स्त्रियों के साथ [बाहर] निकलते हैं; सभाओं में जाते हैं; और योरप [और] अमेरिकावालों से भी सस्त्रीक मिलते हैं।

जापान यद्यपि योरपवालों की सभ्यता [की] प्रतिदिन नक़ल करता जाता है, तथापि वह

स्त्रियां स्वतन्त्र नहीं हैं। वे अपने पति के कुटुम्बियों का बड़ा आदर करती हैं; पति को तो वे स्वामी क्या, देवता के तुल्य, समझती हैं। हमारे देश के समान जापान में भी स्त्रियों को, हर अवस्था में, दूसरों के आधीन रहने की शास्त्राज्ञा है। लड़कपन में वे अपने माता पिता की आज्ञा में रहती हैं; विवाह होजाने पर वे पति की आज्ञा में रहती हैं; और विधवा होजाने पर वे पुत्र की आज्ञा में रहती हैं। वे अपने पति की हृदय से सेवा करती हैं; पति जब घर से कहीं बाहर जाता है तब मस्तक झुकाकर उसको वे प्रणाम करती हैं; और भोजन के समय सदा उसके पास वे उपस्थित रहती हैं।

जापानी लड़के जब घर से कहीं जाते हैं या कहीं से घर को वापस आते हैं, तब जाने या आने के लिए वे अपनी मां से प्रणाम-पूर्वक आज्ञा मांगते हैं। जब मां कहीं बाहर से घर आती है तब सब लड़के द्वार पर आकर सिर झुकाते हुए उसका स्वागत करते हैं।

जापानी डोली।

बिजुली*।
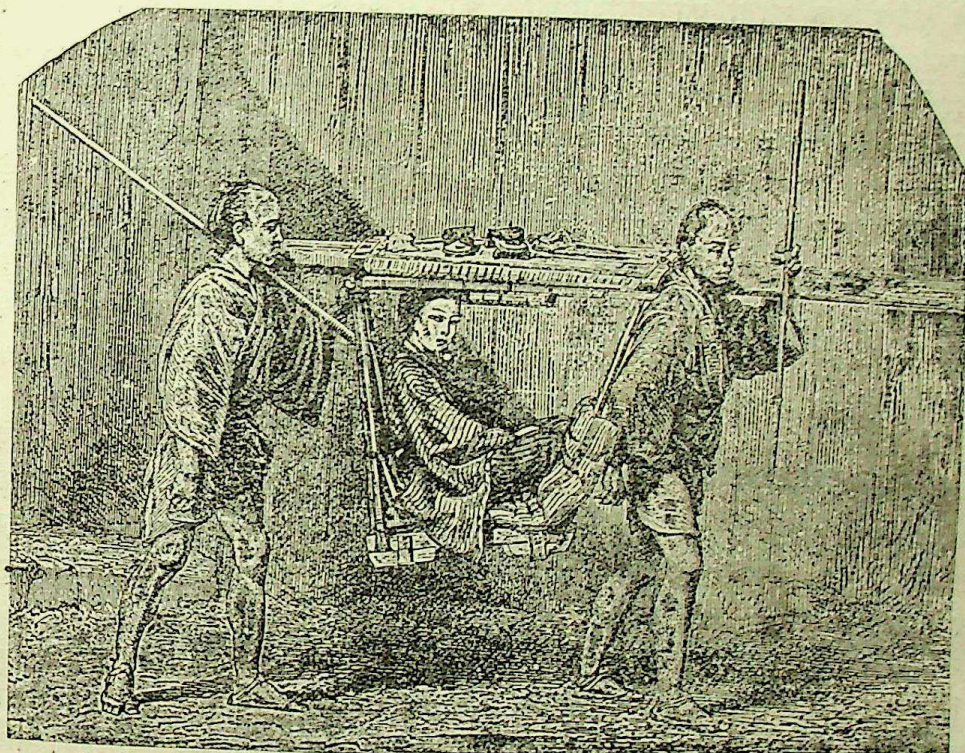
इस हरे भरे, उपजाऊ, विशाल भारतवर्ष के एक प्रान्त में एक रेतीला, उजाड़ और दुर्गम मैदान पड़ा हुआ है जिसे लोग मरुस्थल वा रेगिस्तान कहते हैं। यह रेगिस्तान सिन्धु नद के दक्षिणी अंश से उत्तर को ओर छोटी बड़ी नद नदियों से शोभित पञ्जाब के छोर तक, और पूर्व की ओर राजपुताने के पहाड़ी देशों के पार तक

* एक अमेरिकन कहानी की छाया।

नीरस और भयावने रूप से फैला हुआ है। अकबर बादशाह का पिता हुमायूं शेरशाह के प्रताप से भागता हुआ इसी मरुभूमि में जा पड़ा था और उसे वहां जो जो कठिनाइयां झेलनी पड़ीं थीं, इतिहास जाननेवालों को वह कथा भली भाँति विदित है। यहीं पर प्यासे हरिणों के झुण्ड धूप में चमकती हुई बालू को दूर से नदी की धारा समझ कर उसकी ओर दौड़ते दौड़ते प्राण दे डालते हैं। इन्हीं प्यासे हरिणों की दुर्दशा को देखकर पुराने कवीश्वरों ने सांसारिक जीवों की दुराशा की उपमा मृगतृष्णा से दी है।

इस मरुभूमि की दक्षिण दिशा में अरावली श्रेणी की कई छोटी बड़ी पहाड़ियां दौड़ दौड़ कर, विन्ध्याचल के शिखरों को साष्टांग दण्डवत सा कर रही हैं। बिजुली नाम का एक मनुष्य इन्हीं पहाड़ियों में कहीं पर एकान्तवास करता था। उसकी जीविका शिकार से होती थी। नहीं मालूम वह कब, कहां से आकर, वहां बसा था। उस स्थान में दूर दूर, कई कोसों तक, मनुष्य का नामो-निशान तक नहीं था। पूर्व और उत्तर की पहाड़ियों पर भील लोगों की दो चार छोटी छोटी बस्तियां थीं। ये जङ्गली भील स्वभाव ही से क्रूर और निर्दयी थे। ब्रिटिशसिंह के पराक्रमी नाद को, जिस समय की कथा मैं लिख रहा हूं उस समय तक, उन्होंने नहीं सुना था। मन मानी लूट मार करके, दूर दूर के रजवाड़ों और पहाड़ी रास्तों में, उन्होंने गड़ बड़ मचा रक्खा था। परन्तु ये बनैले भील बिजुली से दूर भागते थे। उससे वे कभी छेड़ छाड़ करने का साहस नहीं करते थे। सम्भव है कि कभी बिजुली के पराक्रम से उन्हें धोखा खाना पड़ा हो। परन्तु ऐसा भी सुना गया है कि बिजुली जिस पहाड़ी में रहता था, किसी कारण से, भय मानकर, निर्भय भील भी वहां नहीं जाते थे। लोग कहते हैं कि उस समय वहां पर कोई चुड़ैल वा राक्षसी रहती थी जो भीलों से वैरभाव रखती थी। बिजुली को वे लोग मन्त्रज्ञानी समझते थे, क्योंकि जहां पर दूसरा भील जाने का साहस नहीं करता था, व[illegible] बिजुली अकेला बेरोकटोक निर्द्वन्द रहता था। [illegible] कभी किसीसे बोलता नहीं था; उसके मन की क[illegible] उसका इतिहास, कोई नहीं जानता था; और न को[illegible] उससे पूछने का साहस ही करता था।

बिजुली इस एकान्त जङ्गली पहाड़ी में अके[illegible] नहीं था। उसके जीवन की सङ्गिनी एक स्त्री [illegible] थी। उसका नाम हमने मैना सुना है। बिजुली स[illegible] काला, लम्बा और कुरूप था; परन्तु उसकी सङ्गि[illegible] का रंग उससे बहुत साफ़ था; और यदि वह न[illegible] में, सभ्य समाज में, रहती तो स्वरूपवती नहीं तो [illegible] वह कुरूपा भी नहीं समझी जाती। और, यों [illegible] बड़ी रूपवती भी यदि जङ्गल में रहे, रूखे स[illegible] भोजन और मैले कुचैले वस्त्रों ही से उसे सन्तो[illegible] करना पड़े,—तिस पर, शरीर की सेवा भी जै[illegible] चाहिए वैसी न हो,—तो उसका स्वाभाविक [illegible] घनघटाच्छन्न चन्द्रमा की तरह मलिन होही जा[illegible] है। बिजुली-मैना में बड़ा प्रेम था। दोनों ए[illegible] दूसरे से कभी अलग नहीं होते थे। जो क[illegible] हरिण के शिकार में बिजुली दो एक दिन के लि[illegible] बाहर जाता तो वह मैना को भी एक टट्टू[illegible] सवार कराकर ले जाता। दोनों स्त्री-पुरुष एक [illegible] साथ उस सूनसान रेतीले मैदान में पशु मार [illegible] प्रेम से विचरा करते।

गृहस्थी की दूसरी साधारण वस्तु, कपड़े ल[illegible] आदि का संग्रह बिजुली कभी कभी नगर की [illegible] जाकर कर लाता था। वह नगर में जाकर आखे[illegible] से पाई हुई पशुओं की खाल, मोरों के पङ्ख इत्या[illegible] बेचता था, और उनके बदले अपनी आवश्यक [illegible] वस्तुओं को मोल लेकर अपने पहाड़ी घर को [illegible] आता था। कुछ दिनों से उसने एक नया व्या[illegible] आरम्भ किया था। उसने दो घोड़ियां पाल र[illegible] थीं—उनसे जो बच्चे पैदा होते थे, उनसे उसे [illegible] निर्वाह के योग्य धन मिल जाता था। पहाड़ी [illegible] घोड़ों के लिये चारे की कमी न थी। और [illegible] भीलों की तरह उसका स्वभाव दुष्ट नहीं [illegible]

परन्तु यह भी नहीं जान पड़ता था कि वह भील था या कोई और। वह चाहे जिस जाति का रहा हो, इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह किसी गूढ़ कारण से इस भाँति जङ्गली पहाड़ों में रहता था। चाहे और कोई कारण न रहा हो; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि मैना का प्रेमही उसे इस एकान्त वास में ले आया था। यह प्रेम बड़ा गहरा था, इसमें भी कोई सन्देह नहीं। मैना का प्रेमही उसे अवश्य इस दुर्गम ठौर पर ले आया होगा; क्योंकि मैनाही उसका ध्यान, मैनाही ज्ञान, मैनाही उसके जीवन की आधार हो रही थी।

भारतवर्ष में अँगरेज़ों का प्रतापसूर्य उस समय तक उदय नहीं हुआ था। अँगरेज़ों की एक कोठी सूरत में नई नई खोली जा रही थी। अँगरेज़ उस समय वीररव से सिंहनाद नहीं करते थे; वे शान्तिमय बनिये व्यापारियों की तरह भारत के नवाब और राजाओं के कृपाकटाक्ष के भिखारी मात्र थे। परन्तु उनसे पहले पोर्टुगीज़ लोगों ने भारतसमुद्र के पश्चिमी तट पर अपना अड्डा जमा लिया था। आजकल जैसे अँगरेज़ पादरी हमलोगों को अँधेरे से उजियाले में लाने के लिए चौराहों पर धर्म्म-व्याख्यान दिया करते हैं, उस समय पोर्टुगीज़ पादरी लोग बादशाह से आज्ञा लेकर गोवा के आस पास, कई नगरों में, गिर्जाघर बना कर लोगों को नरक से बचाने की चेष्टा करते थे। बहुत से पादरी पवित्र-हृदय भी थे; परन्तु अधिकांश पादरी और व्यापारी फ़िरङ्गी, लोगों को किरिस्तान बनाने की सुगमता न पाकर, नीच जाति की स्त्रियों के समागम से किरिस्तानों की एक नई जाति का जन्म दे रहे थे।

ऐसेही एक पोर्टुगीज़ व्यापारी के पास एक दिन बिजुली-मैना अपना बनिज लेकर आये। बिजुली पहले भी कई बार साहब के पास खाल बेच गया था। परन्तु साहब की दृष्टि अब तक मैना पर नहीं पड़ी थी। उस समय उसके पास दो नीच जाति की काली मेमें थीं। परन्तु मैना के सुन्दर नेत्रों ने आज उसके चित्त को विकल कर दिया। मैना को वश में लाने के लिए उसने कई यत्न किये; परन्तु मैना की पवित्रता के आगे उसकी एक भी चाल न चली। साहब हिन्दुस्तानी स्त्रियों की पवित्रता को क्यों भला कोई चीज़ समझने लगा; इससे उसने मैना को वशीभूत करने की एक निराली ही चाल निकाली। उसने भोलेभाले बिजुली को बहुत सी खालें एक नियत समय के भीतर ले आने को राज़ी करा लिया, और उसे समझा बुझाकर मैना को नगरही में छोड़ जाने के लिए कहा। बिजुली, जिसे साहब की चालाकी कुछ भी न सूझी, जल्दी में, मैना को बिना कहेही वहां से अपने पहाड़ी घर की ओर, घोड़े पर सवार होकर, चल दिया। मैना को उसे सावधान करने का समय ही न मिला।

पहाड़ी देश के पूर्व ओर एक घाटी में बड़ाही सुन्दर, वृक्ष लताओं के कुञ्जों से शोभित, पथिकों का श्रम हरनेवाला, कवियों का मन लुभानेवाला एक उपवन है। वहां पर खौलते हुए पानी से भरा हुआ एक छोटा सा कुण्ड है। राही बटोही या जङ्गली भील, जो वहां जाते हैं, कुछ काल के लिए उस कुण्ड के किनारे बैठकर अपनी थकावट दूर कर लेते हैं; और परमात्मा के कौशल को देखकर अपने नयन सफल करते हैं। इस कुण्ड का जल बड़ा गुणकारक है; इससे लोग उसे पीकर उसमें दो चार कौड़ियां भेट की भांति छोड़ देते हैं। यह रीति बहुत काल से चली आती है।

इस कुण्ड के किनारे, एक दिन, वैशाख के दोपहर में, एक शिकारी बैठा हुआ था। उसकी पीठ पर तीर कमान, कमर में लाल कमरबन्द और सिर पर घुँघराले भूरे केश थे। दूर से देखने से जान पड़ता था कि वह साक्षात् यमराज का अवतार राहिओं की राह देखता हुआ बैठा हुआ है। परन्तु देखने में कुरूप होने पर भी उसकी विशाल देह, लम्बी नाक, बड़ी बड़ी आँखें, गम्भीर मुख और शरीर के दूसरे अवयव, उसे एक निराली

ही शोभा से सज्जित कर रहे थे। एकाएकी देखने वाला राही उसे भील समझकर दूर भाग जाता; परन्तु कोई अनुभवी यदि पास से उसके गम्भीर मुख की छटा को देखता तो उसके मन में सन्देह होता कि यह भील नहीं है। उसकी जाति का ठिकाना लगाना वास्तव में कठिन था। दृढ़ता और साहस से भरे हुए उसके मुख और नेत्रों का भाव यही कहता था कि वह पुरुष निस्सन्देह किसी समय में अच्छी दशा में रहा होगा, अथवा वह कोई साधारण भील न होगा।

आखेट के परिश्रम से थककर, दोपहर की धूप से आर्त्त बिजुली कुण्ड के किनारे हरे मख़मल के समान घास पर बैठा था। उसने अपने झोले को उतारकर धर दिया था, और उसमें से कुछ कौड़ियां निकालकर कुण्ड में चढ़ाने के लिए बिन रहा था। कौड़ियां एक एक करके खौलते हुए जल में डूब गईं; परन्तु तुरन्तही उबलते हुए सोते के वेग से फिर ऊपर को फेंक दी गईं। कुण्ड के देवता ने मानो बिजुली की भक्ति भरी भेंट स्वीकार नहीं की। बिजुली का मन इससे घबरा गया। यद्यपि वह भीलों से अधिक सभ्य और बुद्धिमान था, तो भी कौड़ियों के जल पर लौट आने से उसका मन चञ्चल हो उठा। एकाएकी यदि बीस पचीस भील आकर उसे घेर लेते और उसे मार डालने की चेष्टा करते, तो वह इतना भयभीत न होता, और उनके भयङ्कर चिल्लाने को सुनकर वह बड़ी घृणा से गर्ज उठता। परन्तु अभागा मनुष्य दैव के विपरीत क्या कर सकता है। बिजुली का हृदय एक हाथ भीतर धँस गया।

मरने या और किसी विघ्न से वह कभी नहीं डरता था। परन्तु एक और जीव का जीवन उसके जीवन से लिपटा हुआ था। इस समय उसीकी याद बिजुली के मन को डांवाडोल करने लगी। उसकी आँखों के सामने अँधेरा सा छा गया; मैना का भयभीत मुख मानो कुण्ड के भीतर से उसकी ओर बड़े चाव से देखने लगा। भय का मारा वह प्रेमी बिजुली की तरह उछलकर खड़ा हो गया, और फिर टकटकी बाँधकर कुण्ड में देखने लगा। परन्तु मैना की छाया अब वहां नहीं थी। कुण्ड एक क्षण के लिए शान्त हो गया। उसके तले पानी के नीचे कौड़ियों का ढेर साफ़ दिखाई पड़ने लगा। उसके मन में चिन्ता की तरङ्गें बड़े वेग से लहराने लगीं। वह बहुत घबरा उठा। एक क्षण भर और,—और बिजुली ने मनसूबा पक्का कर लिया। उसने ज़ोर से सीटी बजाई, और उसका घोड़ा, जो कहीं पर चर रहा था, दौड़कर उसके पास आ पहुंचा। बिजुली ने अपनी सब चीज़ वस्तु किसी भाग्यशाली राही के लिए वहीं छोड़ दी, और आप, झटपट घोड़े की पीठ पर सवार होकर, तीर के समान दक्षिण की ओर दौड़ा।

हाय, आज राह कितनी लम्बी हो गई है। रात दिन दौड़ते दौड़ते बीता, परन्तु नगर का अब तक पता नहीं। बड़े धीरज से अपने मन की लगाम खींचकर, अन्त में, वह नगर में पहुंचा। साहब बहादुर की कोठी सदा सिपाहियों से रक्षित रहती थी; सिपाहियों ने आज उसे भीतर जाने से रोक दिया। बहुत पूछपाछ करने पर भी किसीने मैना का हाल न बताया। जब वह उदास होकर, कोठी से थोड़ी दूर, एक पेड़ के नीचे खड़ा खड़ा सोच रहा था कि अब क्या करना चाहिये, तब एक बुढ़िया स्त्री ने उससे धीरे से कह दिया कि मैना कई दिन हुए यहां से चली गई है। यह सुननाही था कि बिना सोचे विचारे, वह, घोड़े पर चढ़, फिर तीर की तरह उत्तर की ओर दौड़ा।

इतने दिन जिस ठौर निर्द्वन्द सुख से बीत चुके थे, उस शान्ति कुञ्ज की, उस निर्मल प्रेम के मन्दिर की राह आज की भांति पहिले कभी इतनी दूर नहीं जान पड़ी थी। अहा, मन में भय की कराल छाया से अन्धेरा रहने पर भी बिजुली अब भी अपने पहाड़ी घर में सुख का सपना देख रहा था। ऊंचे नीचे टीलों पर चढ़ते उतरते हुए अन्त में वह उस घाटी में पहुँचा जहां उसने अपना घर बनाया था।

सब कुछ ठीक उसी भांति शान्त चुपचाप देख पड़ा जैसा कि वह छोड़ गया था। और जब एक झरने के किनारे जङ्गली लताओं के एक कुञ्ज के पास मैना की प्यारी मूर्त्ति उसे देख पड़ी, उसका हृदय कूद कर कण्ठ में चढ़ आया। मैना चुपचाप बैठी थी; उसके शरीर के सब अवयव माना पत्थर के हो गये थे। उसकी निष्पन्दता को देखकर बिजुली ने जान लिया कि कुछ अनहोनी घटना अवश्य हो गई है। घोड़े के खुरों की आहट उसके कानों तक न पहुँची। और जब, अन्त में, उसकी दृष्टि अपने पति के मुख पर पड़ी, तब भी वह मिट्टी के खिलौने की तरह बैठी बैठी उसकी ओर देखती ही रही; उसने यह न जाना कि कौन पास आकर खड़ा है। कुत्तों के चार पांच बच्चे पास हो आपस में खेल रहे थे; वह उन्हीं की लीला टकटकी बान्धकर देखने लगी। जब ये बच्चे लता कुञ्जमें एक ओर से दूसरी ओर कूद कूद कर छिप जाते, तब मैना एक उदासी से भरे हुए स्वर से अपने प्यारे गीतों की एक आध कड़ी गाने लगती। उन गीतों में न सिर था न पैर; जहां से मन में आया, बिना अर्थ के, बिना भाव के, उन्हें वह गाने लगती। बिजुली ने उसके कन्धे पर हाथ रक्खा; परन्तु तब भी उसने उसे नहीं पहचाना। उसकी सुध बुध सब चली गई थी। उसके कोमल हृदय पर कोई बड़ी भारी चोट लग चुकी थी जिसके घाव ने उसे पागल बना दिया था। बिजुली ने अपनी प्यारी का—जिसके लिये उसने घर बार, देश, परिवार, सब त्यागकर इस वनवास को स्वीकार किया था; जिसे लेकर उसने, ऐसे दुर्गम ठौर में भी, सब पिछले दुःखों को बिसराकर, अपना जीवन बिताने का मनसूबा ठान लिया था;—निर्दय दैव की लीला से उसने अपनी उसी प्रियतमा का यह भाव देख कर बड़ी भारी कठिनाई से अपने धड़कते हुए कलेजे को धर दबाया; और उसके पास बैठ कर वह उसकी टूटी फूटी रागिनी के अक्षरों को बड़े ध्यान से सुनने लगा। कुछ देर बाद उसके कान में जो शब्द पहुंचे उनसे उसके शरीर में बिजुली की शिखा सी दौड़ गई। वह उछल कर खड़ा हो गया। उसके सिरमें चक्कर आने लगा। वह फिर भूमि पर बैठ गया। सारा जगत् उसके नेत्रों के सामने अँधेरे से भर गया। परन्तु उसकी इस दुर्दशा को देखकर उन्मादिनी की निर्जीव उन्मत्तता भी सजीव हो गई। उसने अपने प्राणपति को उसी क्षण पहचान लिया, और एक भयावने और दुःखभरे स्वर से एक बार चिल्ला कर उसने बिजुली की कमर से एक लम्बी छुरी खींच कर उसकी पैनी नोक को ज़ोर से अपने हृदय में गाड़ दिया। उसकी लोहू लुहान लोथ उसके प्राणपति के पैरों पर लोटने लगी!

बिजुली के मन की दशा का वर्णन असम्भव है। उसने माना कोई डरावना स्वप्न देखा था। सुख से भरे हुए अपने घर को इस भांति अकस्मात् उजड़ते देख कर उसकी आत्मा भय से, विस्मय से, सूख गई। उसकी आशा की पिटारी, उसके जीवन का आधार, उसके प्रेम का चमकता हुआ तारा अनन्त अपार अन्धेरे में बिला गया। और इस अकथनीय हानि का कर्त्ता—इस यमलीला का नायक—कौन था? वही विश्वासी मित्र जिसके भरोसे वह अपने हृदय के अनमोल रत्न को छोड़ आया था?

घण्टों बीत गये और वह अभागा प्रेमी निश्चल गूंगा पत्थर सा वहीं बैठा रहा। अब तक दुख की राख में दबी हुई उसकी चिन्ता भीतर ही भीतर सुलग रही थी; कुछ देर में वह अकस्मात् सुलग कर जल उठी। उस दहकती हुई ज्वाला की शिखाएं उसके दोनों आंखों से फूट कर निकलने लगीं। किसी नई चेष्टा ने उसके मन को चञ्चल कर दिया। वह तुरन्त एक दूसरी ही प्रकृति का मनुष्य हो गया। एक क्षण ही भर में उसका हृदय, उसकी आत्मा, उसका स्वभाव, सब—माना किसी जादूगर के जादू के प्रभाव से—बदल गये। अब तक वह एक शान्त-स्वभाव का अनुभवी जीव था; परन्तु इस समय उसकी प्रकृति अपने पड़ोसी भीलों से भी अधिक क्रूर हो गई।

ऊपर कही हुई घटना के दो दिन पीछे पोर्तुगीज़ व्यापारी गढ़ी के समान रक्षित अपनी कोठी में, रात्रि के समय, एक कमरे में सुख से सो रहा था। उसके पैरों के पास, एक काला, जङ्गली भील सा पुरुष, तीर कमान बाँधे, बैठा हुआ, चुपचाप उसके मुख को टकटकी बांधकर देख रहा था। कोठी के चारों ओर सन्त्री लोग बड़ी चौकसी से पहरा दे रहे थे। परन्तु उन सबों की आँख बचाकर, वह पुरुष साहब के पास आ पहुंचा था।

कुछ देर वह यों ही चुपचाप अपने शत्रु की ओर देखता रहा। फिर बड़ी सावधानी से धीरे धीरे वह उसके सिरहाने के पास आया। उसने अपनी छुरी को निकाल कर दांतों में दबा लिया और कूदकर साहब की छाती पर वह चढ़ बैठा। एक हाथ से उसने एक कपड़े का टुकड़ा उसके मुखमें ठूस दिया, और दूसरे से उसकी गति को रोक कर, बड़ी फुर्ती से, एक रस्सी लेकर उसके हाथों को कमर से कस कर उसने बांध डाला। पोर्तुगीज़ ने थोड़ी देर तक छुटकारा पाने के लिये बहुत ज़ोर मारा। परन्तु चूहा जैसे एक बार बिल्ली के पञ्जों में पड़कर नहीं बच सकता, उसी भांति उसकी भी सब चेष्टाएं विफल हुईं। मुखमें कपड़ा भरा रहने से वह चिल्ला कर किसीको बुला न सका। अब बिजुली ने उसे पैरों के बल खड़ा किया; उसके मुख और हाथ पैरों को फिर कसकर बांधा; और उसके शरीर से बँधी हुई रस्सी के छोर को थाम कर, लटकते हुए पंखे की सहायता से छत पर पहुंच, छप्पर को काट, वह ऊपर चढ़ गया; और रस्सी को खींचकर अपने जाल में फँसे हुए शिकार को भी अपने पास खींच कर उसने चढ़ा लिया। शहरों में रहनेवाले लोगों ने बँगलों की छतों पर धुआं निकलने के लिये चिमनियां देखी होंगी। बिजुली चिमनी के पास ही छप्पर काटकर ऊपर चढ़ा था। अब उसी चिमनी की आड़ में अपने शिकार को रख कर, खड़ा होकर, उसने चारो ओर अच्छी तरह देखा। कोठी के सब छप्पर फूस के थे। अब बिजुली फिर कमरे में उतर गया, और एक तीर हाथ में लेकर उसे जांच कर देखने लगा। इस तीर में परों की जगह तेल में भीगे रुई के फाहे लगे थे। बिजुली ने रुई को कमरे में जलते हुए लम्प से जला लिया और फिर छप्पर पर चढ़ कर जलते हुए तीर को कमान में चढ़ाकर एक छप्पर पर चला दिया। क्षण भर में छप्पर जल उठा। प्रकृतिके काले पर्दे पर चमकती हुई लाली पुत गई। अग्निदेव ने अपनी लपलपाती हुई जिह्वाओं से कोठी भर को देखते ही देखते चाट लिया। सन्त्री लोग दौड़ दौड़ कर उसकी गति रोकने की चेष्टा करने लगे। पर कुछ न हो सका। थोड़ी देर में पोर्तुगीज़ व्यापारी का सब माल मत्ता भस्मीभूत हो गया।

परन्तु वह व्यापारी अब तक नहीं जानता था कि उसका परिणाम क्या होगा। जिस समय उसके नौकर चाकर दौड़ दौड़ कर बँगले के दूसरी ओर आग बुझाने में लगे थे, बिजुली ने अपनी ओर सूना पाकर फिर रस्सी की सहायता से अपने शत्रु को कोठी के बाहर उतारा और आप भी कूद कर उसके पास आया। तब, जैसे कोई छोटे बच्चे को अनायास अपनी पीठ पर चढ़ा लेता है, उसी भांति उसने साहब को भी अपनी पीठ पर लाद उसे पास ही, जहां वह अपने दो घोड़ों को बांध आया था, ले गया।

* * * * *

अहा, यह क्या खेल हो रहा है? पाठक, देखिए, देखिए,—उस मरुभूमि में, सूनसान, जीव मात्र से रहित, गरम रेत से ढके हुए, गरम वायु से झुलसते हुए, उस विस्तीर्ण रेगिस्तान में यह क्या बीभत्स दृश्य देख पड़ता है? देखिए, यह वही कामी पोर्तुगीज़ व्यापारी का गोरा शरीर अपने दोनों हाथों से एक काली स्त्री को अपने हृदय से लगाए हुए, घोड़े पर सवार हो कर, दौड़ रहा है। स्त्री को उसने हाथों से पकड़ रक्खा है?—नहीं, नहीं, उसके दोनों हाथ उसका सारा शरीर, स्त्री की देह से बंधे हैं। उस दोनो पैर घोड़े के पेट से कसकर बंधे हुए हैं; और

स्त्री,—यह उसी अभागिनी मैना की लोथ है। पोर्टुगीज़ भय से, घृणा से, थकावट और भूख प्यास से स्वयं मुर्दा सा देख पड़ता है। उसकी देह पर मैना की लोथ अब सड़ सड़ कर गिरने लगी है। दुर्गन्ध से उसके प्राण निकल रहे हैं। परन्तु बस कुछ नहीं।

और बिजुली? बिजुली कहां है? इस बीभत्स रीति से अपने शत्रु से बदला लेकर उसका क्रोध अब तक शान्त नहीं हुआ। देखिए, वह भी एक दौड़ते हुए घोड़े पर चढ़ कर हाथ में चाबुक उठाये हुए पोर्टुगीज़-मैना के घोड़े के पीछे पीछे दौड़ रहा है। सामने का घोड़ा जब जब अपनी गति धीमी करता है, तब तब बिजुली का रौद्रावतार चाबुक मार मार कर उसे जलते हुए मैदान में अधिक वेग से दौड़ा रहा है। और वह पोर्टुगीज़............परन्तु अब आगे इस भयानक वर्णन की आवश्यकता नहीं। पाप का परिणाम इस संसार में, कभी कभी, यदि इसी भांति हो तो असम्भव नहीं।

पार्वतीनन्दन।

ओंकार-मान्धाता।

मध्यप्रदेश में एक ज़िला नीमार है। इस ज़िले का ख़ास शहर खाँडवा है। वहीं ज़िले के हाकिम रहते हैं। खाँडवा से इन्दौर होती हुई राजपूताना-मालवा रेलवे की एक शाख़ अजमेर के जाती है। इस शाख़ पर मोरटक्का नाम का एक स्टेशन है। वह खाँडवा से ३७ मील है। इस स्टेशन से ७ मील दूर, नर्मदा के ऊपर, मान्धाता नाम का गाँव है। मोरटक्का के आगे बरवाहा स्टेशन है। वहां से भी लोग मान्धाता के जाते हैं। इस गाँव का कुछ भाग नर्म्मदा के दक्षिणी किनारे पर है और कुछ नदी के बीच में एक टापू के ऊपर है। यह टापू कोई डेढ़ मील लम्बा है। इस पर ऊंची ऊंची दो पहाड़ियां हैं। ये पहाड़ियां उत्तर-दक्षिण हैं। उनके बीच की ज़मीन ख़ाली है। पूर्व की तरफ़ ये दोनों पहाड़ियां एक दूसरी से मिल गई हैं और उनके कगार नर्म्मदा के भीतर तक चले गये हैं। दक्षिण की तरफ़ जो पहाड़ी है उसके दक्षिणी सिरे पर मान्धाता का जो भाग बसा हुआ है वह बहुत ही सुन्दर है। उसके मकान, मन्दिर और दूकानों की लैनें देखकर तबीयत ख़ुश हो जाती है। महाराजा होल्कर का महल सब से ऊंचा और सबसे अधिक शोभायमान है। पहाड़ी के ऊंचे नीचे सिरे तराशकर चौरस कर दिये गये हैं; उन्हीं पर मकान बने हुए हैं। जिस पहाड़ी पर मान्धाता है उस पर, गाँव से कुछ दूर, घना जङ्गल है। उस जङ्गल के भीतर प्राचीन इमारतों के चिन्ह दूर दूर तक पाये जाते हैं। कौस्यन्स साहब ने मध्यप्रदेश की प्राचीन इमारतों पर एक पुस्तक लिखी है। उसमें उन्होंने अपनी राय दी है कि किसी समय, इस पहाड़ी पर, मान्धाता की वर्तमान बस्ती से बहुत बड़ी बस्ती थी।

नर्म्मदा का बड़ा माहात्म्य है। गङ्गा से उतर कर नर्म्मदा ही का नम्बर है। अनेक साधु-सन्यासी नर्म्मदा की प्रदक्षिणा करते हैं। भड़ौंच के पास नर्म्मदा समुद्र में गिरी है। वहीं से ये लोग नर्म्मदा के किनारे किनारे अमरकण्टक तक चले जाते हैं और फिर वहां से ये दूसरे किनारे से भड़ौंच के लैाट जाते हैं। इस प्रदक्षिणा में कोई तीन वर्ष लगते हैं। प्रदक्षिणा करनेवाले इन साधुओं की मान्धाता में बड़ी भीड़ रहती है। जाते भी ये वहां ठहरते हैं और लैाटते भी।

नर्म्मदा के बीच में जो टापू है वह भी पर्वत-प्राय है। उस पर अनेक फाटक, मन्दिर, मठ, और मकानों के निशान हैं। दो एक मन्दिरों को छोड़ कर शेष सब इमारतें उजड़ी और आधी उजड़ी हुई दशा में पड़ी हैं। कहीं कहीं पर क़िले की दीवार के भी चिन्ह हैं। मान्धाता के वर्तमान नगर से यह उजाड़ नगर बिलकुल अलग है। इसमें एक आध विशाल मन्दिर और मकान अब तक बने हुए हैं; और वे देखने लायक़ हैं।

मान्धाता में ओंकार जी का प्रसिद्ध मन्दिर है। इसकी गिनती शिव के द्वादश लिङ्गों में है। दूर

दूर से लोग यहां यात्रा के लिए आते हैं। ओंकार जी का मन्दिर बहुत प्राचीन नहीं है; परन्तु उसके विशाल पाये बहुत पुराने हैं। वे किसी दूसरे मन्दिर के हैं। उसके भग्न हो जाने पर ये स्तम्भ इस मन्दिर में लगाये गये हैं। पुरातत्व के पण्डितों का अनुमान ऐसा ही है। इस मन्दिर में एक विचित्रता है। इसमें जो शिवलिङ्ग है वह दरवाज़े के सामने नहीं है। इससे वह सामने से देख नहीं पड़ता। वह गर्भगृह के एक तरफ़ है। इस कारण, बरामदे के सबसे दूरवर्ती कोने पर गये बिना, लिङ्ग के दर्शन बाहर से नहीं हो सकते।

यहां पहाड़ की चोटी पर सिद्धनाथ अथवा सिद्धेश्वर का एक मन्दिर है। वह सब से अधिक पुराना है। परन्तु वह, इस समय, उजाड़ दशा में पड़ा हुआ है। वह एक ऊंचे चबूतरे पर बना हुआ है। उसके पायों को, चारों तरफ़, पत्थर के बड़े बड़े हाथी थांभे हुए हैं। उनमें से दो हाथी नागपुर के अजायब घर में पहुँच गये हैं। वहां, दरवाज़े पर खड़े हुए, वे चैाकीदारी का काम कर रहे हैं। इस मन्दिर का गर्भगृह अब तक बना हुआ है। उसमें चार दरवाज़े हैं। शिखर गिर गया है। ओसारे की छत भी गिर गई है। जो भाग इस मन्दिर का शेष है उस पर बहुत अच्छा काम है। जिस समय यह मन्दिर अच्छी दशा में रहा होगा उस समय इसकी शोभा वर्णन करने लायक़ रही होगी।

नर्म्मदा के बायें तट पर कई पुराने मन्दिर हैं। यद्यपि इन मन्दिरों की महिमा, इस समय, कम हो गई है, तथापि जो लोग ओंकार जी को जाते हैं वे इनके भी दर्शन करते हैं। जिनको पुरानी वस्तुओं से प्रेम है उनको तो इन्हें अवश्य ही देखना चाहिए।

गैारी-सोमनाथ के मन्दिर के सामने एक प्रकाण्ड नन्दी है। हरे पत्थर को काटकर उसकी मूर्ति बनाई गई है। मान्धाता में नर्म्मदा के तट पर बने हुए घाटों की शोभा देखकर चित्त बहुत प्रसन्न होता है।

सुनने में आता है कि १०२४ ईसवी में ज महमूद ग़ज़नवी ने सोमनाथ के मन्दिर को तोड़ा तब मान्धाता में ओंकार जी के मन्दिर के सि अमरेश्वर नामक महादेव का भी एक मन्दिर था उसकी भी गिनती द्वादश लिङ्गों में थी। परन्तु सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी की लड़ाइयों नर्म्मदा का दक्षिणी तट, जहां पर ये दोनों मन्दि थे, बिलकुल उजाड़ हो गया। उस पर इतना घन जङ्गल हो आया कि जब पेशवा ने ओंकार जी के मन्दिर की मरम्मत करानी चाही तब वह, बहुत ढूंढ़ने पर भी, न मिला। इससे उसने एक नया मन्दिर बनवाकर उसका नाम ओंकार जी रख दिया पीछे से राजा मान्धाता को ओंकार जी का पुरा मन्दिर मिला और उसने उसकी मरम्मत भी करा परन्तु पेशवा के बनवाये हुए मन्दिर का तब त इतना नाम हो गया था कि लोगों ने असल की अपेक्षा उस नक़ली मन्दिर की अधिक प्रतिष्ठा की इसीसे उस मन्दिर की प्रधानता रही।

ठाकुर जगमोहनसिंह ने, जिस समय वे खांड में तहसीलदार थे, ओंकारचन्द्रिका नामक ए पद्यबद्ध छोटी सी पुस्तक लिखी है। उसमें उन्हों ओंकार जी का अच्छा वर्णन किया है।

कलकत्ते की काल-कोठरी।

१७५६ ईसवी के एप्रिल महीने में मुरशिदाबा के नवाब अलीवर्दी ख़ां की मृत्यु हुई। उसके मर पर सिराजुद्दौला को नवाबी मिली। अङ्गरे ग्रन्थकार सिराजुद्दौला को दुर्गुणों की खानि ब लाते हैं। वे कहते हैं कि उसे अङ्गरेज़ों से स नफ़रत थी। उस समय ग्रेटब्रिटेन और फ़्रांस एक दूसरी लड़ाई छिड़नेवाली थी। इस लिए नवा को लोगों ने सुझाया कि अङ्गरेज़ कलकत्ते में क़िल बन्दी कर रहे हैं और शीघ्र ही वे चन्द्रनगर फ़रासीसियों पर चढ़ाई करेंगे। फ़रासीसी नव
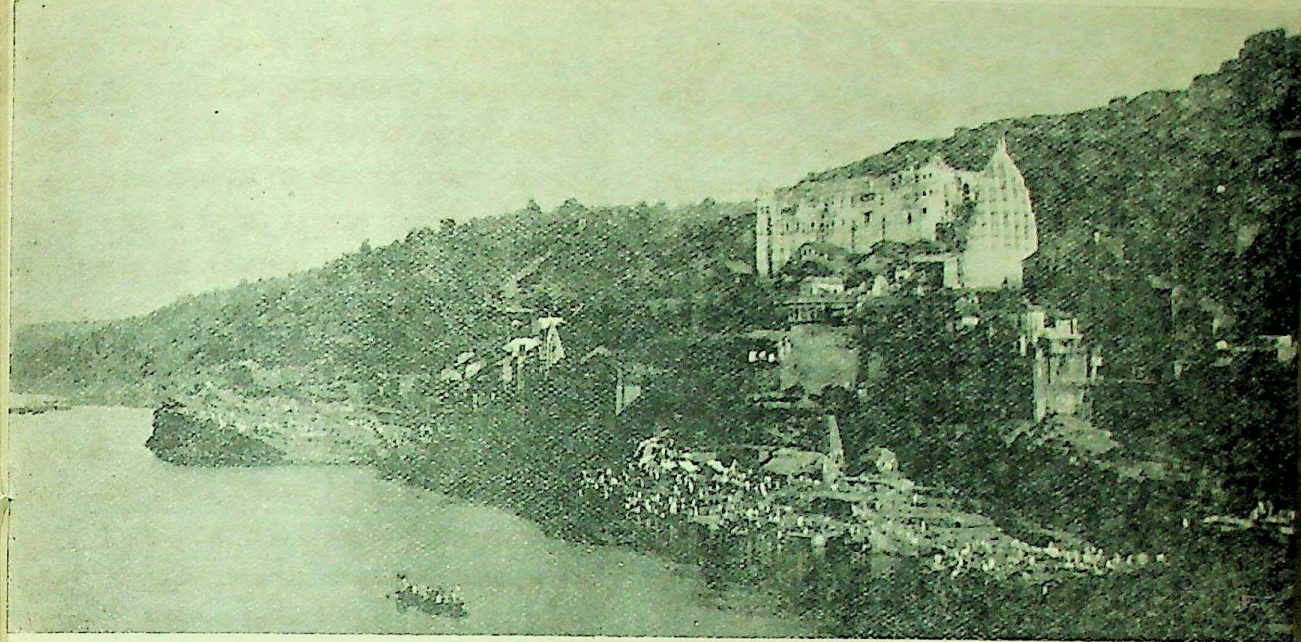
नर्मदा का घाट और मान्धाता का मन्दिर ।

ओंकार-मान्धाता में नर्मदा का दृश्य ।
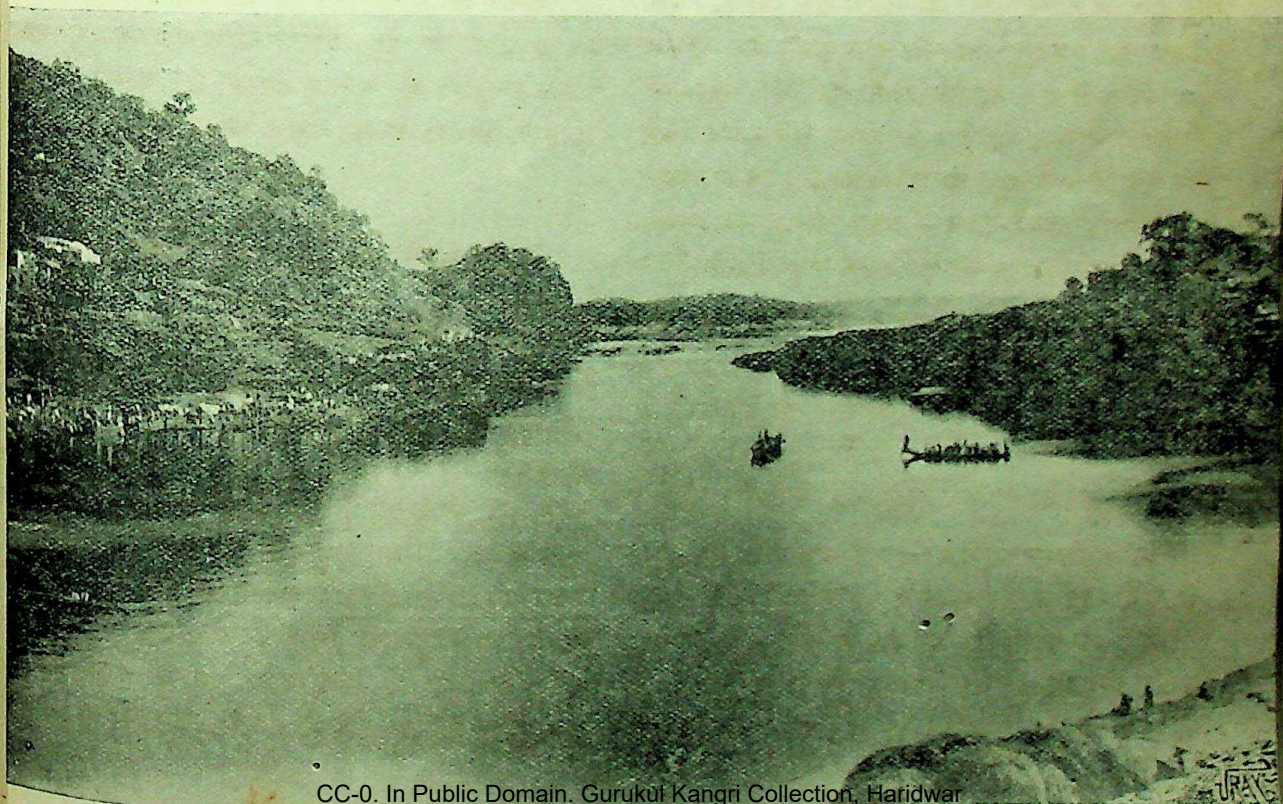
ओंकारजी का पुराना मन्दिर।

के कृपापात्र थे। अपने कई कर्म्मचारियों से सिराजुद्दौला नाराज़ हो गया था; अतएव दण्ड से बचने के लिए वे लोग मुरशिदाबाद से कलकत्ते भग आये थे। इन कारणों से, सिराजुद्दौला अङ्गरेज़ों से बहुत ही कुपित हो गया था। परन्तु किसी किसी का मत है कि अङ्गरेज़ों को लूट लेने का उसने पहले ही से पक्का इरादा कर लिया था। इसके लिए जो कारण उसने बतलाये थे वे केवल बहाना मात्र थे। उसने सुन रक्खा था कि अङ्गरेज़ों के पास अपार सम्पत्ति है। इस सम्पत्ति को छीनने के लिए उसकी लार लड़कपन से टपकती थी।

सिराजुद्दौला को बहुत कम उम्र में नवाबी मिली। नवाब होते ही, मुरशिदाबाद के पास, अङ्गरेज़ों की क़ासिमबाज़ार वाली कोठी को उसने लूटा। जो कुछ माल और रुपया उसे मिला उस को क़ब्ज़े में करके, वहां के अङ्गरेज़ व्यापारियों को उसने क़ैद कर लिया। फिर, १८५६ ईसवी के जून में, ५०,००० पैदल और बहुत सी तोपें लेकर, उसने कलकत्ते पर हमला किया। उस समय कलकत्ते में अङ्गरेज़ों की संख्या कुल ५०० के क़रीब थी। उन में से लड़नेवाले गोरे सिपाही १७० ही थे। १५ जून को लड़ाई शुरू हुई। १८ तारीख़ को स्त्रियां और बच्चे जहाज़ों पर पहुँचा दिये गये; उन्हींके साथ कितने ही अङ्गरेज़ भी निकल गये। ड्रेक साहब कलकत्ते के गवर्नर थे; वे भी उसी दिन वहां से चलते हुए। उनके चले जाने पर बचे हुए अङ्गरेज़ों ने हालव्यल साहब को गवर्नर माना। पचास हज़ार फ़ौज के सामने सौ पचास अङ्गरेज़ क्या कर सकते थे? अन्त में, लाचार हो कर, १९ जून को तीसरे पहर, इन लोगों ने अपने को नवाब के स्वाधीन कर दिया।

इसके उपरान्त जो कुछ हुआ उसे सुनकर योरप काँप उठा। सब क़ैदी एक अङ्गरेज़ी बारिक़ में इकट्ठे किये गये। उसके एक छोर पर अङ्गरेज़ों के फ़ौजी क़ैदियों के लिए, हवालात की तरह, एक कोठरी थी। इस हवालात का अङ्गरेज़ी नाम "ब्लैक होल" था। इसी में वे १४६ क़ैदी, मर्द और औरत, सब, भर दिये गये। यह "ब्लैक होल" नामक काल-कोठरी १८१८ ईसवी तक यथास्थित थी। उसका उस समय तक का वर्णन कई लोगों ने, जिन्होंने उसे देखा था, किया है। इसके बाद वह गिरा दी गई। परन्तु, कुछ समय हुआ, बँगला भाषा में सिराजुद्दौला के ऊपर एक किताब प्रकाशित हुई है। उसमें यह सिद्ध किया गया है, कि काल-कोठरी एक ख़याली बात है। उसका जितना क्षेत्रफल बतलाया जाता है उसमें १४६ आदमी हरगिज़ हरगिज़ नहीं आ सकते। इस किताब के तर्क और सिद्धान्तों का खण्डन एक योरोपियन लेखक ने, अभी कुछ दिन हुए, "ब्लैक उड्स मैगेज़ीन" नामक सामयिक पत्रिका में बड़ी योग्यता से किया है। इस कोठरी में जो लोग भरे गये थे उनमें से कलकत्ते के अल्पकालिक गवर्नर हालव्यल साहब भी थे। १९ जून, रविवार, की यन्त्रणा भोग कर वे जीते बच गये थे। उन्होंने इस काल-कोठरी का जो रुधिर-शोषक वृत्तान्त लिखा है उसे ही हम यहां पर देते हैं। चाहे वह ख़याली हो, चाहे सच।

पूर्वोक्त १४६ आदमियों में से, सोमवार २० जून को सुबह, जब काल-कोठरी का दरवाज़ा खोला गया, तब केवल २३ आदमी जीते निकले। इनमें से एक स्त्री भी थी। मरे हुओं में से कितने ही कौंसिल के मेम्बर थे; कितने ही फ़ौजी अफ़सर थे; और कितने ही व्यापारी थे। इन सब के नामों की तालिका भी हालव्यल साहब ने दी है।

हालव्यल ने काल-कोठरी का जो बयान लिखा है वह पत्र के रूप में है। यह पत्र उन्होंने साइरन नामक जहाज़ पर से, २८ फ़रवरी १७५७ ईसवी को, विलियम डेबिस नामक अपने एक मित्र को लिखा है। पत्र बहुत लम्बा है। इसे पढ़कर पढ़नेवाले का ख़ून सूख जाता है। इसका शब्द प्रतिशब्द अनुवाद न देकर हम इसका केवल सारांश यहां पर लिखते हैं। यह सारांश हालव्यल साहब के ही मुँह से सुनिये।

'ईस्ट इण्डिया कम्पनी की बङ्गालवाली ज़मीदारी छिन जाने पर लण्डन में बड़ा ही शोर व ग़ुल हुआ होगा। ब्लैक-होल में जिन लोगों को अपने प्राण देने पड़े उनकी मौत का समाचार सुनकर वह शोर व ग़ुल और भी बढ़ गया होगा। तुमने सुना ही होगा, कि १४६ में से कुल २३ आदमी, २० जून १७५६ को, ब्लैक-होल से ज़िन्दा निकले। जो मरने से बचे उनमें से कुछ ही ऐसे थे जो इस लोमहर्षण हादसे का बयान लिख सकते थे; परन्तु उनमें से किसीने लिखने की कोशिश नहीं की। मैं कई बार लिखने बैठा और कई बार क़लम रखना पड़ा। क़लम उठाते ही उस रात की घोर और हृदय-कम्प-कारिणी यन्त्रणायें मेरी आँखों के सामने आने लगीं। अँगरेज़ी कोश में ऐसे शब्दही नहीं जिनसे सैकड़ों नरनारियों को अवर्णनीय यातना पहुँचा कर उनका प्राण हरनेवाली वह महा भयानक दुर्घटना बयान की जा सके। भाषा में यह शक्ति ही नहीं कि वह उसका पूरा पूरा चित्र उतार सके। चाहै कोई उसे जितनी रङ्गीन बनावे; चाहै उसमें कोई जितना नमक मिर्च मिलावै; वह उस भयङ्कर हत्याकाण्ड का पूरे तौर पर हरगिज़ हरगिज वर्णन न लिख सकैगा। परन्तु लिखना अवश्य होगा। ऐसी महत्व-पूर्ण ऐतिहासिक घटना को लिख रखना बहुत ज़रूरी बात है। इसी लिए मैं आज दिल कड़ा करके लिखने बैठा हूं। तबीयत भी मेरी अब अच्छी है। ब्लैक-होल की विपद् ने मेरे शरीर को जो धक्का पहुँचाया था उसका असर अभी तक मुझ में बना है; अभी तक मैं सबल नहीं हुआ। परन्तु लिखने लायक़ हो गया हूं। सामुद्रिक वायु से मुझे बड़ा फ़ायदा हुआ है। इस लिए उस कालरात्रि का वर्णन अब मैं आरम्भ करता हूं। सुनिए।

"१९ जून की शाम को ६ बजे के पहले ही कलकत्ते का क़िला नवाब के क़ब्ज़े में आ गया। मैं तीन बार नवाब से मिला। आख़िरी बार मैं ७ बजे मिला था। नवाब ने मुझे विश्वास दिलाया कि हम लोगों का बाल भी बांका न होगा। और, मैं समझता हूं, उसका हुक्म भी ऐसा ही था। परन्तु हम लो जिनके सिपुर्द किये गये उनके कितने ही साथियो को हमने लड़ाई में मारा था। यह बात उनके दि में बहुत खटकती थी। इस लिए वे लोग मनहीम हम से जल रहे थे; और बदला लेने के लिए उता वले हो रहे थे। जब अँधेरा हुआ तब हम लो की निगरानी के लिए जो गारद थी वह डबल क दी गई। उसके हुक्म से हम सब बारिख के बरा मदे में इकट्ठे होकर एक जगह बैठ गये। इतने कलकत्ते की कोठी से ज्वाला निकलने लगी; उस आग लगा दी गई। दाहिनी तरफ़ जो हथियार घर था वह भी जलने लगा; और बाईं तरफ़ बढ़ई लोगों का कारख़ाना था वह भी ज्वाला वम करने लगा। हम लोगों ने समझा कि सब तरफ़ आग लगाकर उसीमें हमको भून डालने का बन्दो बस्त हो रहा है। साढ़े सात बजने पर, कुछ फ़ौ अपने अफ़सरों के साथ, हाथों में मशाल लिए हु हमारे पास आ पहुँची। इस पर हम लोगों को अप जलाये जाने का निश्चय हो गया। तब हम सब मनसूबा किया, कि इस प्रकार जीते जलना मञ्ज़ करने की अपेक्षा, इन लोगों पर एकदम हमल करके, इनके शस्त्र छीन लेना चाहिए; और इन इस अमानुषी कर्म्म का मज़ा चखाना चाहिए परन्तु हमारा सन्देह केवल भ्रम था। वे लो मशालें जलाकर हमको रात भर क़ैद रखने के लि जगह ढूँढ़ते थे।

"इस समय लीच साहब मेरे पास आये। कम्पनी के कारख़ाने में लोहार का भी काम कर थे और लेखक का भी। मुझे सुरक्षित भगा ले जा के लिए उन्होंने पास ही एक नाव तैयार कर र थी। हमारे पहरेवाले भी हम लोगों की तरफ़ बहुत बेपरवाह थे। इस लिए यदि मैं चाहता निःशङ्क भग जाता। परन्तु अपने साथियों को छो कर भग जाना मैंने कृतघ्नता समझा। इसलि मैंने लीच से कहा कि तुम जिस रास्ते आये उसी रास्ते फ़ौरन वापस जाओ। मैं औरों को छो

कर अकेला नहीं जा सकता। यह सुनकर वह वीर और परोपकारी पुरुष हम लोगों के दुर्भाग्य का हिस्सेदार बना। वह भी हम सब में शामिल हो गया।

"इतने में नवाब की गारद हमारी ओर बढ़ी और हमको बारिख के भीतर ले चली। हम लोग बहुत खुश हुए। हमने समझा, वहां पर, रात सुख से कट जायगी। इस सुखाशा का एक मिनट में नाश हो गया। ज्योंही सब लोग भीतर आ गये त्योंहीं गारद के अगले आदमियों ने, अपनी बन्दूकें सामने करके, उस लम्बी दालान के दक्षिण तरफ़ बनी हुई काल-कोठरी में घुसने के लिए हमको हुक्म दिया। उधर गारद के दूसरे हिस्से ने, डण्डे उठाकर और नङ्गी तलवारें निकाल कर, हम लोगों को पीछे से दबाया। इस तरह हम लोग उसमें घुसने के लिए मजबूर किये गये। हम न जानते थे कि वह कोठरी इतनी तङ्ग है, नहीं तो हम लोग हरगिज़ उसके भीतर न घुसते; फिर चाहे हमारे शरीर के टुकड़े टुकड़े उड़ा दिये जाते।

"सब तरफ़ से मजबूर किये जाने पर हम लोग उस कोठरी के भीतर घुसे। मैं पहले घुसा; मेरे साथ ही सात आठ आदमी और भी भीतर गये। मैं दरवाज़े के पास की खिड़की के नीचे खड़ा हो गया। कोलस और स्काट साहब को भी मैंने अपने पास ले लिया; वे दोनों घायल थे। मेरे दोस्त, इस बात को न भूलना कि वह कोठरी कुल १८ फुट लम्बी चौड़ी थी। और उसमें हम सब १४६ नरनारी भेड़ बकरियों की तरह भरे थे। मौसम गरमी का था; सो भी बङ्गाल का। कोठरी तीन तरफ़ से बिलकुल बन्द थी। एक तरफ़ मात्र दो खिड़कियां थीं; उनमें भी लोहे के मज़बूत डण्डे लगे थे। ताज़ी हवा मिलना सर्वथा दुर्लभ था। ऐसी हालत में रक्त का अभिसरण प्रायः असम्भव था। ज़रा देर में मृत्यु आँखों के सामने नज़र आने लगी। किवाड़े तोड़ कर निकल जाने की बहुत कोशिश की गई; परन्तु व्यर्थ।

"गड़बड़ शुरू हुआ। सब लोग छटपटाने लगे। मार पीट की नौबत पहुँची। मैंने बहुत समझाया और कहा कि जैसा तुम लोगों ने दिन को मेरी आज्ञा मानी है, वैसे ही इस समय भी तुमको माननी चाहिए। सवेरे हम लोग यहां से निकाले जायँगे। यदि तुम धीरज के साथ रात न काटोगे तो इससे जीते निकलना असम्भव है। सबको चाहिए कि वे अपनी जान के लिए, और अपने बालबच्चों के लिए, इस विपद को चुपचाप झेलें। बेफ़ायदा बकवाद करने और परस्पर लड़ने झगड़ने से, और तो कुछ होने का नहीं; परन्तु मौत आने में जलदी होगी। मेरे उपदेश और मेरी प्रार्थना ने कुछ काम किया ज़रा देर के लिए लोग चुप हो गये। मैं सोचने लगा। मैं अनेक रूप में मौत को सामने देखने लगा। मेरे दोनों घायल दोस्त अपने कराहने से मेरे मृत्यु-दर्शन के दृश्य में विघ्न डालने लगे। मैं समझ गया कि क्या होने वाला है। मृत्यु-नर्तकी ने सब के चेहरों को अपनी भयङ्कर रङ्गभूमि बनाया। मैं अपनी दशा को भूल गया; परन्तु अपने साथियों की यम-यातना ने मुझे बहुत ही विकल किया।

"मेरी खिड़की के पास गारद का एक बुड्ढा जमादार था। उसके चेहरे पर मैंने कुछ आदमियत के निशान देखे। उसको मैंने पास बुलाया। पत्थर को भी विदीर्ण करनेवाली हमारी दुर्दशा उसने देखी। मैंने उसे एक हज़ार रुपये देने का वादा किया; और कहा, कि किसी तरह वह हम सब को आधे आधे दो जगह कर दे। उसको कुछ दया आई। उसने प्रयत्न करने का वचन दिया। कुछ देर के लिए वह बाहर गया; परन्तु लौटकर उसने अपनी असमर्थता प्रकट की। मैंने समझा एक हज़ार का पारितोषिक कम था। इस लिए मैंने उसे डबल कर दिया। जमादार फिर बाहर गया; परन्तु फिर नाकामियाब वापस आया। उसने कहा नवाब साहब सोते हैं; उनको जगाना जान को खोना है। और उनके हुकम के सिवा और किसीमें शक्ति नहीं जो तुमको यहां से निकाल सके।

"हम लोगों की घबराहट और बेचैनी बढ़ने लगी। पसीने की धारा बदन से निकल पड़ी। कपड़े सब सराबोर हो गये। सबका कण्ठ सूखने लगा; प्यास बढ़ी; और जैसे जैसे बदन की नमी पसीना होकर निकलने लगी, तैसे तैसे प्यास प्रचण्ड होती गई। प्यास की यह दशा और कोठरी में हवा का नाम नहीं! हम लोगों ने कपड़े उतार डाले और टोपियां हिलाना शुरू किया। इससे कुछ आराम मिला; परन्तु बहुत थोड़ी देर के लिए। सब की सलाह से हम लोग, जो अब तक खड़े थे, बैठ गये। इस समय ८ बजे थे। बैठने से वायु का कुछ अधिक सञ्चार ज़रूर हुआ; परन्तु, जगह कम होने के कारण हम लोगों को कई बार उठना बैठना पड़ा। मैंने देखा कि बैठकर उठने में बड़ी मुशकिल होती थी; क्योंकि आदमी एक दूसरे से सटे थे। इनमें से कुछ ऐसे थे जो बहुत कमज़ोर थे; उनमें बैठकर उठने की शक्ति ही न थी। हाय, हाय। उनकी वहीं मौत हो गई। उठने का हुकम पाने पर वे उठ नहीं सके। वे अभागे वहीं बैठे बैठे कुचल गये। यदि किसी में प्राणवायु शेष भी रहा तो, ज़रा देर में, नीचे निर्वात स्थान में पड़े रहने के कारण, दम घुट कर, वह भी चलता हुआ।

"नौ बजे के क़रीब प्यास असह्य हो गई। साँस लेने में कठिनता होने लगी। हमारी हालत जानवरों से भी बदतर थी। झटपट मौत आजाती तो अच्छा था। किवाड़े तोड़ने की फिर कोशिश हुई। सबने बेतहाशा ज़ोर लगाया; परन्तु सब व्यर्थ। गारद के सिपाहियों पर गालियों की वर्षा होने लगी; उनको महा अपमानसूचक और घृणित बातें सुनाई गईं। आशा थी कि इस बेइज्ज़ती का बदला लेने के लिए वे हम लोगों पर बन्दूक़ छोड़ेंगे; परन्तु ऐसा नहीं हुआ। मेरी दशा अब तक ख़राब न थी। खिड़की में जो लोहे की शलाकायें थीं, उन्हीं में से, दो के बीच, मैंने अपना मुँह लगा दिया था। इससे मुझे थोड़ी बहुत हवा मिलती थी। इस समय उस काल-कोठरी में ऐसी बदबू पैदा हो गई थी कि मेरी नाक फटने लगी। मैं, हज़ार कोशिश करने पर भी, उस तरफ़ मुँह न फेर सका। जो लोग खिड़की के पास थे उनको छोड़कर बाक़ी सब एक दूसरे का अपमान करने लगे; बुरा भला कहने लगे। कुछ बेहोश हो गये; और उस बेहोशी की हालत में, जो कुछ मुँह से निकला, बकने लगे। सबके मुँह से पानी, पानी, पानी की चिल्लाहट सुनाई पड़ने लगी। उस बुड्ढे जमादार को हम पर दया आई। उसने मशकों में पानी लाये जाने का हुक्म दिया। यह देख मैं घबरा उठा। मैंने मन में कहा, अब कोई नहीं बचैगा। इस नरक-यातना की कहानी कहने के लिए एक भी शेष न रहैगा। मैंने जमादार से चुपचाप कहना चाहा कि पानी लाना हम लोगों के लिए मौत बुलाना है। परन्तु मेरी सुनै कौन? मैंने सबका अन्त समीप आ गया समझा।

"अब तक मुझे प्यास न थी। पर पानी देखकर मुझे भी उसकी बाधा हुई। पानी पिलाया किस तरह जाय? बरतन तो कोई था ही नहीं। यह कठिनाई हमारी टोपियों ने हल कर दी। मैं और मेरे दो तीन साथी, जो खिड़की के पास थे, टोपियों में पानी लेने लगे, और बहुत शीघ्रता से उसे सब को पहुँचाने लगे। परन्तु इस पानी ने प्यास को और भी बढ़ाया। उससे एक क्षणही भर सन्तोष हुआ। पीछे फिर वही दशा। फिर, पानी, पानी, पानी की आवाज़। हम लोग टोपियों को पानी से ख़ूब भर कर लाते थे; परन्तु उसे पाने के लिए, आपस में, जो मारपीट, जो घूंसेबाज़ी और जो बलप्रयोग होता था, वह उसे गिराकर छटाँकही डेढ़ छटाँक रहने देता था। पीनेवाले के होठों तक पहुँचने के समय, एक टोपी में, इससे अधिक पानी न रह जाता था। जलती हुई आग में पानी छिड़कने से जैसे वह और भी अधिक प्रज्वलित हो उठती है, वैसीही दशा हम सबकी हुई। प्यास की सीमा न रही; वह अपनी हद को उल्लंघन कर गई।

"मेरे प्यारे दोस्त, मैं उन लोगों की बेकली का तुमसे किस प्रकार वर्णन करूं जो उस काल-कोठरी

में सब से दूर थे। उनको एक भी बूंद पानी मिलने की आशा न थी; परन्तु तिस पर भी जीने से वे निराश नहीं हुए थे। उनमें से कुछ ऐसे थे जिन पर मेरा बहुत प्रेम था। वे बड़े ही करुणस्वर में पानी के लिए मुझ से प्रार्थना करते थे; और पुराने प्रेम का परिचय देकर, बार बार, मुझे उसकी याद दिलाते थे। दोस्त, अगर सोच सको तो सोचो कि उस समय, मेरी क्या दशा हुई होगी। मुझे आश्चर्य्य है कि मेरा हृदय क्यों नहीं फट गया। मेरा कलेजा मुँह के रास्ते क्यों नहीं बाहर निकल आया। मैं सर्वथा लाचार था। मैं उन तक पानी न पहुँचा सकता था। लोगों की हालत अबतर हो गई। दृश्य भयानक दिखाई देने लगा। जो लोग दूर थे, वे बलपूर्वक दूसरों को हटा कर पानीवाली खिड़की के पास पहुँचने लगे। खिड़की के पास बेतरह भीड़ हुई; पल पल पर कशमकश बढ़ने लगी। जो लोग अधिक सशक्त और बलवान थे, वे कमज़ोरों को पैरों के नीचे कुचल कर खिड़की के पास आ पहुँचे। इस अमानुषी कर्म्म से अनेक पिस गये और मौत ने .खुशी .खुशी उनको उसी क्षण ग्रास कर लिया।

"क्या तुम विश्वास करोगे कि गारद में जो लोग उस काल-कोठरी के बाहर थे, वे हमारे इस प्राणान्तक कष्ट को, इस अनिर्वचनीय विपद को, इस घोर दुर्दशा को, देख देख हँसते थे! उनके लिए यह एक अच्छा तमाशा था। वे बराबर पानी देते जाते थे जिसमें हम लोग उसके लिए लड़ लड़ कर प्राणों से हाथ धोते जावें। खिड़की के पास मशालें भी उन्होंने लगा दी थीं, जिसका मतलब यह था कि इस नर-नारी-यातना नाटक का कोई अङ्क उनका बेदेखा न रह जाय। ११ बजे तक मैंने यह नाटक देखा और पानी पहुँचाता रहा। आगे मैं न देख सका। मेरे पैरों की हड्डियां टूटने लगीं। सब तरफ़ के दबाव से मैं म्रियमाण होने को हुआ। लोग अपने आप को अब भूलने लगे। मेरा मान अभी तक बराबर रक्खा गया था; परन्तु अब वह लोप होने लगा। समय ही ऐसा था। मरने के वक्त, कौन किसका साथी होता है? क्रम क्रम से उम्र का, विद्या का, वैभव का, सब ख़याल जाता रहा। मेरे कितने ही मित्र और स्नेही, जो बहुत बड़े रुतबे के आदमी थे, मेरे पैरों के पास मरे पड़े थे। अब उन को नाचीज़ फ़ौजी गोरे अपने बूटों से कुचलने लगे। उनके ऊपर पैर रखते हुए वे खिड़की के पास पानी के लिए आ पहुँचे। मैं दब कर मरने लगा। मेरा हाथ पैर हिलाना बन्द हो गया! मैंने हाथ जोड़े, प्रार्थना की, विनती की, और कहा, भाई, मेरे ऊपर से ज़रा हटो। मैं खिड़की के पास नहीं रहना चाहता। मैं कमरे के बीच में चला जाऊँगा। मुझे निकल जाने दो। मेरे गिड़गिड़ाने का कुछ असर हुआ। मुझे रास्ता मिला। मैं काल-कोठरी के बीच में आया। वहां मुर्दों का ढेर था। तब तक एक तिहाई मर चुके थे। दूसरी खिड़की पर भी पानी आगया था। इसलिए उस तरफ़ भी ख़ूब भीड़ लग गई थी। इसीसे बीच में कमरा ख़ाली था। पर मुर्दों से नहीं, ज़िन्दों से।

"कमरे में एक तरफ़ एक चबूतरा था। मुर्दों के ऊपर पैर रखते हुए मैं वहां पहुँचा और एक जगह बैठ गया। यह मुझे निश्चय हो गया कि अब मैं मरूंगा। परन्तु अफ़सोस इस बात का हुआ कि मरने में विलम्ब था। मेरे पास ही कप्तान स्टिवेनसन और डम्बुल्टन पड़े थे। डम्बुल्टन का दम उस समय निकल रहा था। जब से मैंने खिड़की छोड़ा मुझे सांस लेने में तकलीफ़ होने लगी। थोड़ी देर में मेरे दोस्त यडवर्ड आयर, मुर्दों के ऊपर पैर रखते और ठोकरें खाते, मेरे पास आये। उन्होंने पूछा कि मेरी क्या हालत थी? परन्तु मैं जवाब न देने पाया था, कि वे वहीं गिरे और मर गये! मैंने अपना आत्मा ईश्वर को सौंपा; और मैं मौत का रास्ता देखने लगा। मुझे सख्त प्यास मालूम हुई। दस मिनट बाद साँस लेने की कठिनाई और भी बढ़ी। मेरी छाती में बड़ा दर्द हुआ। दिल धड़कने लगा। मैं फिर खड़ा हो गया। यह तकलीफ़ देर तक मैं नहीं बरदाश्त कर सका। इसे कम करने के लिए हवा

की बड़ी ज़रूरत थी। इसलिए मैं फिर खिड़की की तरफ़ लपका। उस समय मुझमें दूना बल आ गया। झपट कर मैंने खिड़की की शलाका पकड़ ली। ऐसा करने में मुझे छ सात आदमियों को हटाना पड़ा। मेरा दर्द जाता रहा; दिल का धड़कना भी बन्द हो गया; सांस भी ठीक तौर पर चलने लगी। पर प्यास ने ज़ोर किया। "भगवान के लिए मुझे पानी दो" यह कह कर मैं चिल्ला उठा। लोगों ने मुझे मरा समझा था। परन्तु मेरी आवाज़ से उन्होंने जाना कि मैं जीता हूं। सबने मुझे पहले पानी देने की प्रार्थना की। मैंने पानी पिया; पर मेरी प्यास न गई। वह और भी बढ़ी। मैंने कहा, बहुत पानी पीना बेफ़ायदा है। उस समय मेरी कमीज़ पसीने से सराबोर थी। उसीके आस्तीन मैं चूसने लगा। सिर से भी पसीने की बूंदें बराबर बरस रही थीं। उन्हें भी मैं मुंह में लेने लगा। इस तरह मैं अपने होठ और हलक़ को नम बनाये रहा। जब मैं इस कोठरी में घुसा, तब मेरे बदन पर केवल एक कमीज़ थी। गरमी के कारण कोट मैं ने पहले ही से न पहना था। वास्कट थी; परन्तु उसे देखकर, गारद के एक जमादार की लार टपक पड़ी। उसे उसने ले लिया। कमीज़ के पसीने से मैं अपनी प्यास, यथासम्भव, बुझाने लगा था। परन्तु इसमें भी बाधा आई। मेरे एक साथी ने यह प्रस्वेद-पीयूष पीते मुझे देख लिया। वह मेरे पास ही था। उसने मेरी कमीज़ पर हमला किया। और मेरे जीवन का एक मात्र यह सहारा उसने ख़ूब लूटा। मुझे पीछे से इस लुटेरे का पता लग गया। वे हमारे सुयोग्य लूशिंगटन साहब थे। आप भी इस कोठरी से जीते निकले थे"। [असमाप्त।

आँख।

"य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मेति
होवाचैतदमृतमभयमेतद् ब्रह्म" छान्दोग्य ४।१५।१

"अक्षि चष्टेरनक्तेरित्यग्रायणस्तस्मादेते
व्यक्ततरे इव भवतः" निरुक्त १।३।४

परमेश्वर की रचना में यों तो एक से एक अद्भुत, अनुपम और सुन्दर पदार्थ हैं; सारा विश्व ब्रह्माण्ड ही ऐसा है कि अपने गुणों से अपने कर्त्ता के लिए वह बारम्बार कहलाता है कि—

यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह

तथापि मनुष्यदेह से अधिक कोई पदार्थ अद्भुत नहीं। यही ईश्वर का प्रथम मन्दिर है, यही जगत् की सब लीलाओं का केन्द्र है। यदि किसी घर का रहनेवाला अपने निवास का हाल न जाने तो वह हास्यास्पद होता है; किन्तु इस पवित्र घर में रहते भी हम इसका वृत्तान्त न जानने के अपराधी हैं। इस घरकी प्रधान खिड़की आँख ऐसी विलक्षण है कि न्यूटन के कथनानुसार आँख की परीक्षा नास्तिकता की परम महौषधि है। ऊपर लिखी श्रुति का अभिप्राय यह है कि ज्ञानी लोग आँख ही के द्वारा सच्चिदानन्द का ज्ञान प्राप्त करते हैं। निरुक्तकार 'अक्षि' का अर्थ यह करते हैं कि वह स्वयं बहुत व्यक्त होती है अथवा सब चीज़ों को व्यक्त करती है। साधारण कहावत है कि आँख मूंदने पर कुछ भी नहीं रहता। सच है, आँख की आवश्यकता और उपयोगिता की महिमा तब तक कदापि कम नहीं हो सकती जब तक कि मनुष्य जाति और इन्द्रिय उत्पन्न न करले। दूरबीन प्रभृति विज्ञान के मुकुट स्वरूप यन्त्र आँखके परिशेष-पूरक हैं। आँख न होने से वे किसी कामके नहीं। विशेष करके चञ्चलता और त्वक् से सम्बन्ध होने के कारण आँख ने मानो जगत् के ज्ञान-साम्राज्य को ठोकर ही मारदी। ऐसी अनुपम इन्द्रिय का वृत्तान्त किसको न रुचेगा। नैयायिकों के अनुसार कृष्णतारा के अग्रभाग स्थित चक्षु इन्द्रिय आलोक-संयोग, और उद्भुत रूप संयोग से, उद्भुत रूप, रूपवान् द्रव्य, पृथक्त्व, संख्या, विभाग, संयोग, परत्व, अपरत्व, स्नेह, द्रवत्व और परिमाण तथा क्रिया जाति और समवाय का

ग्रहण करती है। गवेषणा के नायक पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने आँख पर क्या क्या लिखा है उसका एक साथ समावेश करना अति दुष्कर है। तथापि उस का सार देने का यत्न किया जाता है।
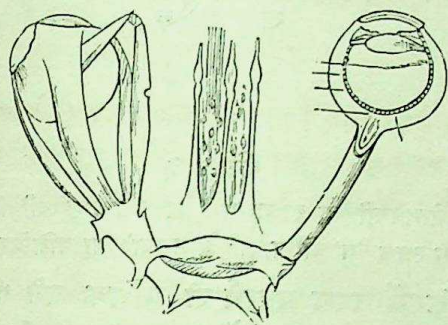
चित्र १

क बाईं आंख स्नायु दिखाती हुई ग शङ्कु और छड़ियां ख दाहनी आंख का असली रूप।
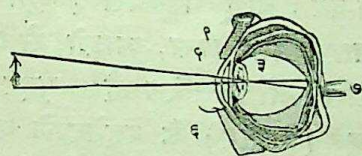
चित्र २

१ कार्निया। २ इरिस। ३ काच। ४ रेटिना। ५ काली चद्दर। ६ स्केलेरोटिक। ७ ज्ञानतन्तु।

इन्द्रिय।

आँख बाहर से प्रायः गोलाकार होती है। सामने ही जो काँच की सी झिल्ली दिखाई देती है उसे कार्निया कहते हैं। इसके पीछे थोड़ी दूर पर आइरिस नाम की झिल्ली है; यह वही रङ्गीन गोल पदार्थ है जो आँख के सफ़ेदे के बीच में दिखाई देता है। इस झिल्लीके बीचमें एक छिद्र होता है। यह मनुष्य की आँख में गोल होता है; बिल्ली की आँख में तङ्ग और लम्बा होता है। इसीके द्वारा किरण आँख के भीतर प्रवेश करते हैं। प्रकाश के प्रवेश को नियमित करने के लिए यह फैल और सिकुड़ सकता है। इसके पीछे, बहुत पास ही, दोनों ओर से उन्नतोदर एक काच वा उसके सदृश पदार्थ है। यह भी फैल और सिकुड़ सकता है। इस ताल को यथास्थान रखने के लिए "सिलिपरी" स्नायु नामक एक माँस का छल्ला है, जो ऊपर के ढक्कन स्केलेरोटिक में ही लगा हुआ है। इसके पीछे का सब भाग, आँख के पिछवाड़े तक, अण्डे के रस के सदृश चिपचिपे पारदर्शक पदार्थ से भरा हुआ होता है, जिसे "काचीय अर्क" कहना उचित होगा। आगे, 'काच' और कार्निया के बीच में भी ऐसा ही विमल रस है जिसे "जलीय अर्क" कहते हैं। आँख के अन्दर का सब पिछला भाग रेटिना नामक मुलायम, श्वेत और विमल झिल्ली से मढ़ा हुआ है। यह मानो उस ज्ञानतन्तु का जाल की तरह फैला हुआ अग्रभाग है जो यहां से मस्तिष्क तक जाने तथा दर्शन का ज्ञान कराने के कारण चाक्षुप ज्ञानतन्तु कहलाती है। रेटिना ही दर्शनेन्द्रिय का प्रधान तथा दुर्बोध भाग है। ज्ञानतन्तु पीछे से आकर तन्तु-शिराओं के रूप में अन्दरी सतह पर फैले हुए हैं वहाँ से पीछे को मुड़कर मस्तिष्क के प्रथम स्वरूप गोल गोल कणों की तरह वे व्याप्त हैं; वा छड़ी से अथवा शङ्कु के से टुकड़ों का रूप धारण करके आड़े पड़े हुए हैं। मनुष्य की आँख में इन शङ्कुओं की संख्या ३३,६०,००० मानी गई है; छड़ियों की संख्या का पता नहीं। इन छड़ियों में एक प्रकार का रङ्ग है जो प्रकाश में उड़ जाता है और अन्धेरे में फिर प्राप्त हो जाता है। इन छड़ी शङ्कुओं का पूरा कर्तव्य क्या है सो तो मालूम नहीं, हां, आकारपरिज्ञान तथा रङ्गज्ञान में यह काम देते हैं। यदि आलोक ज्ञानतन्तु के एक ऐसे स्थान पर पड़े जहां कोई शङ्कु न हो, तो कुछ देख नहीं पड़ता; इस स्थान का नाम "अन्धबिन्दु" है। इसके विरुद्ध एक दूसरे स्थान पर बहुत से शङ्कु रक्खे हुए हैं; वहां पर बहुत तीव्र दर्शन होता है। इस स्थान को "पीतबिन्दु" कहते हैं। यह सब आँखों में एक स्थान पर नहीं होता; तथा मृत्यु के पीछे बहुत कम देर तक रहता

है। बकरे की आँख में इस बिन्दुको मैंने स्वयं देखा है। रेटिना के पीछे एक और कोरोइड नामक झिल्ली है। उसमें कुछ काले गोल दानों के समान पदार्थ है जो उन किरणों को शोष लेता है जो दर्शन में काम नहीं दे सकतीं। अन्त में यही कहना है कि "स्क्लेराटिक" नामकी झिल्ली आँख को घेरे हुए है और आगे आकर कार्निया में मिल गई है। यह सफ़ेद ढक्कन आँख को सुरक्षित रखता है। इसी में पतली ढकनो से ढका हुआ छिद्र काच की खिड़की का काम देता है।

आँख की विशेष उपयोगिता इसी में है कि इसके प्रबन्ध के लिए कितने ही स्नायु हैं जो इसको समय समय पर मोड़ वा बदल सकते हैं। अन्दर के सीलियरी छल्ले का हाल कह ही चुके हैं। यह समीपावलोकन के लिए काच को दबाकर अधिक उन्नतोदर कर देता है। बाहर की तरफ़ कपाल की हड्डोसे लगे हुए स्नायु हैं; उनमें से चार तो खड़े हैं और डेले को ऊपर नीचे घुमाने का काम देते हैं; और दो अगल बगल में रह कर आँख को तिरछा घुमा सकते हैं। इन से आँख की धुरी बदल सकती है और हम पदार्थों को ध्यानपूर्वक देख सकते हैं। यदि आँख का डेला स्थिर होता तो आँख से बहुत कम ज्ञान मिलता। इस चञ्चलता से पदार्थपरिज्ञान में बड़ा काम निकलता है।

नेत्र द्वारा ज्ञान का मुख्य करण दोनों ओर से उन्नतोदर इस काच को ही गिनना चाहिए; क्योंकि आलोक इसीके द्वारा भीतर जाकर ज्ञानतन्तु सम्बन्धी प्रकम्पन में परिणत होता है। अतएव, यहां पर, ताल काच और उन पर आलोक पड़ने के प्रभाव पर कुछ कहना अनुचित न होगा।

यहां काच वा ताल से "दर्पण" का अभिप्राय नहीं है, किन्तु ऐसे काच के टुकड़े से अभिप्राय है जिसके दोनों किनारे एक दूसरे के समानान्तर न होकर किसी कोण को बनाते हुए झुके हों। सुप्रसिद्ध तिकोने काच में पदार्थों को उठा हुआ देखने के दृष्टान्त और इस चित्र से जान पड़ेगा कि आलो
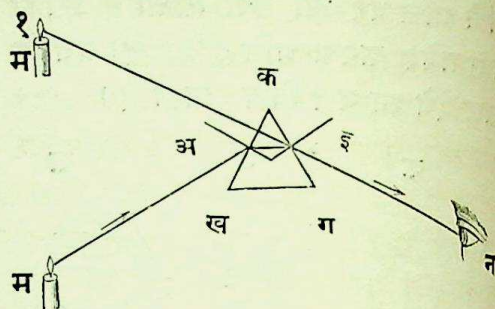
चित्र ३

म, मोमबत्ती· क ख ग ताल, अ इ प्रकाश की किरण मुड़ने के स्थल 'न' आँख, म१ मोमबत्ती का प्रतिबिम्ब।

की किरणें तरल पदार्थ से अधिक घने पदार्थ घुसती बेर मुड़ जाती हैं। [क्रमश

—·०·—

पुस्तक-परीक्षा।

बिहारी वीर। बाबू गङ्गाप्रसाद गुप्त कृत ... आने में भारतजीवन प्रेस, काशी, से प्राप्य। एक छोटासा जीवनचरित है। ग़दर के स... जगदीशपुर (बिहार) के रहनेवाले बाबू कुँ... सिंह ने बड़ी बहादुरी दिखलाई थी। उन... संक्षिप्त हाल इस पुस्तक में है। कुँवरसिंह ग... मेण्ट के बड़े शुभचिन्तक थे। परन्तु गवर्नमेण्ट कई बातों से चिढ़ कर वे बाग़ी हो गये। बग़ावत हालत में उन्होंने वीरता के बड़े बड़े काम किये। ... तक उनके साथ लड़ाई में कट मरीं। एक दफ़ा ... अँगरेज़ की गोली उनकी भुजा में, नदी पार ... समय, लगी। इस पर उन्होंने उस भुजाही को का... पानी में फेंक दिया। इसी सदमे से उनकी मृत्यु ... यह चरित भारतजीवन में, क्रम क्रम, छपता रहा ... वही अब पुस्तकाकार निकला है। पुस्तक ... लायक़ है।

✻

हम्मीर। बाबू गङ्गाप्रसाद को पुस्तकरचना ... प्रिय होती जाती है। आप बड़े तेज़ लेखक ... एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी ...

निकलती जाती है। आज तक इन्होंने बहुत सी पुस्तकें लिख डालीं हैं। इस समय आप बनारस के "भारतजीवन" के सम्पादक हैं। यह काम भी ये बड़ीही योग्यता से कर रहे हैं। इस साप्ताहिक पत्र का सम्पादन भी ये करते जाते हैं और पुस्तकें भी लिखते जाते हैं। पुस्तक-प्रणयन में ये सहस्रबाहु हो रहे हैं। इनका साहित्यप्रेम, अध्यवसाय और लेखन-कौशल प्रशंसनीय है। "राजस्थान" के आधार पर इन्होंने यह "हम्मीर" नामक उपन्यास लिखा है। इसका बहुत कुछ अंश ऐतिहासिक है। भाषा सरल और रसात्मक है। हम्मीर की देश-हितैषिता, पराक्रम और परोपकार का इसमें अच्छा वर्णन है। असम्भव और ऊटपटांग बातों से भरे हुए उपन्यासों की अपेक्षा ऐसे उपन्यासों का पढ़ना अच्छा है। दाम इस पुस्तक का तीन आना है।

✲

संस्कृत कविपञ्चक। मराठी के प्रसिद्ध लेखक विष्णुशास्त्री चिपलूनकर के नाम से हिन्दी के जाननेवाले भी, पण्डित गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री की बदौलत, परिचित हो गये हैं। शास्त्रीजी मराठी के विख्यात लेखक थे; संस्कृत और अङ्गरेज़ी के अच्छे ज्ञाता थे; देशहितैषिता और स्वातन्त्र्य के बहुत बड़े अनुरागी थे; और संस्कृत के प्राचीन काव्यों के पूरे मर्म्मज्ञ थे। उनके लिखे हुए मराठी के कई निबन्धों का हिन्दी अनुवाद अग्निहोत्रीजी ने "निबन्धमालादर्श" के नाम से, कुछ समय हुआ, प्रकाशित किया था। कविपञ्चक भी शास्त्री जीही के पांच मराठी निबन्धों का अनुवाद है। ये निबन्ध कालिदास, भवभूति, सुबन्धु, बाण और दण्डी के विषय में हैं। संस्कृत में यही पांच कवि बहुधा प्रधान माने जाते हैं। उनके समय, जीवन और काव्य आदि की इसमें अच्छी समालोचना है। इस तरफ़ संस्कृत का बहुत कम प्रचार है। इसलिए संस्कृत न जाननेवालों के लिए भारतवर्ष के इन प्रसिद्ध कवियों के विषय में ज्ञान प्राप्त करने का मार्ग अग्निहोत्री जी ने बहुत सुलभ कर दिया। प्रत्येक कवि के सम्बन्ध में बहुत अच्छा विवेचन इस पुस्तक में है। उनके काव्यों के अच्छे अच्छे नमूने भी हैं। पुस्तक मोटे और चिकने काग़ज़ पर, श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बंबई में, छपी है। सुन्दर जिल्द बंधी हुई है। २५२ पृष्ठ की पुस्तक होने पर भी दाम सिर्फ़ ॥।) है। इसे जयपुर निवासी हिन्दी-रसिक जैन वैद्य जी ने प्रकाशित किया है। उन्हीं के यहां से यह मिलती है। वैद्य जी का उत्साह प्रशंसनीय है। इस पुस्तक के दो निबन्ध मुंशी नवलकिशोर के प्रेस में छपे थे। परन्तु दो से अधिक, उस प्रेस के मालिक, नहीं छाप सके। जिस काम को इतना बड़ा प्रेस नहीं कर सका, उसे जैन वैद्य जी ने करके अपने साहित्यानुराग का अच्छा परिचय दिया। इस पुस्तक की भाषा, कहीं कहीं पर, कुछ क्लिष्ट हो गई है। संस्कृत के जो श्लोक नमूने के तौर पर दिये गये हैं उनमें से किसी किसी का यदि अनुवाद भी लिख दिया जाता तो उत्तम होता।

✲

कन्याबोधिनी। इस पुस्तक के चार भाग हैं। प्रत्येक भाग की क़ीमत क्रम से १, २, ३ और ४ आने हैं। पुस्तक सचित्र है; ख़ूब मोटे और चिकने काग़ज़ पर छपी है। महाराजा सेंधिया की कन्या-पाठशालाओं में पढ़ाई जाती है। कन्याधर्म्मवर्द्धिनी सभा ग्वालियर के उपदेशक पण्डित केदारनाथ चतुर्वेदी ने इसे बनाया है। इस परिश्रम के उपलक्ष्य में आपको पुरस्कार भी मिला है। पुस्तक अच्छी है। इसके पाठ लड़कियों के योग्य हैं। अच्छा हो जो दूसरी जगह के लड़कियों के मदर्सों में भी यह पुस्तक जारी हो जाय। ऐसी पुस्तकों की, इस समय, बड़ी आवश्यकता है।

✲

स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा-उत्तमार्द्ध। जैनग्रन्थरत्नाकर नाम की जो पुस्तक-मालिका बम्बई से निकलती है उसीमें यह पुस्तक प्रकाशित हुई है। मूल्य १॥) यह अनुप्रेक्षा जैनियों का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसकी

रचना प्राकृत में है; परन्तु जयपुर के पण्डित जयचन्द्र जी ने इसकी छाया संस्कृत में कर दी है और साथही पण्डिताऊ हिन्दी में अर्थ भी लिख दिया है। पुस्तक जैनियों के काम की है।

❋

विघ्न-दर्शन। इसका दूसरा नाम है "राक्षसीमाया का परिचय"। "टाइटिल पेज" इस पर नहीं है। इसके कर्ता बरेली-निवासी खुन्नीलाल शास्त्री हैं। इसमें "सूत्र" हैं। जैसे संस्कृत की प्राचीन पुस्तकों में सूत्र हैं वैसे ही इसमें भी हैं। उनका भाष्य भी है। वह भी हिन्दी में है। नग्न रहनेवाले, भूत, प्रेत इत्यादि सिद्ध करने का यत्न करनेवाले, तथा अघोर-पन्थी मत के अनुयायियों के प्रतिकूल बहुत सी बातें इसमें शास्त्री जी ने लिखी हैं।

❋

संस्कृतवाक्यप्रबोधः। पण्डित बदरीदत्त शर्म्मा कृत। स्वामीप्रेस, मेरठ, से प्राप्य। दाम ≡) मात्र। हम लोगों को संस्कृत सीखने की बड़ी आवश्यकता है। परन्तु सारस्वत और कौमुदी के सूत्र घोखने से लोग डरते हैं। है भी वह ज़रा कष्टसाध्य काम। लड़कपन ही में वैसा परिश्रम हो सकता है। जो लोग थोड़े परिश्रम से संस्कृत में प्रवेश करना चाहें उनके लिए संस्कृत-वाक्य-प्रबोध बड़े काम की चीज़ है। पण्डित बदरीदत इस पुस्तक को चार भागों में बाँट कर संस्कृत-व्याकरण का पढ़ना सुलभ कर देना चाहते हैं। यह इस पुस्तक का पहला भाग है। इसमें वर्णोपदेश, वर्णोच्चारणस्थान, सन्धि-प्रकरण, शब्दानुशासन और कारक इतने विषय हैं। वे सब हिन्दी में ख़ूब अच्छी तरह समझाये गये हैं। पुस्तक उत्तम है। अच्छा हो यदि पण्डित जी शेष तीनों भागों को भी झटपट छपा डालें।

❋

रहस्यप्रकाश। यह एक छोटा सा नाटक है। पण्डित बदरीदास ने इसे लिखा है और प्रयाग इण्डियन प्रेस में छपवाया है। छपाई और काग़ज़ बहुत अच्छे हैं। दाम ॥) है। मुक़दमेबाज़ों का बहुत अच्छा चित्र है। जाल और फ़रेब से भरे हुए कैसे अभियोग कचहरियों में आते हैं इसका अच्छा प्रदर्शन है। यह रूपक खेलने लायक़ है।

मनोरञ्जक श्लोक।

अनामा स्वर्णमाधत्ते न कनिष्ठा न मध्यमा।
निजनामप्रसिद्धानां भूषणैः किं प्रयोजनम्?

अनामा ही सोने की अँगूठी पहनती है; कनिष्ठा ही पहनती है और न मध्यमाही। क्यों? जिसका नाम नहीं है; अर्थात् जिसका नाम कोई नहीं जानता, उसीको आभूषण पहनकर अपनी प्रसिद्धि करने की ज़रूरत पड़ती है। जो अपने नामही से प्रसिद्ध हो रहा है, अर्थात् जिसका नाम सब के जानते हैं, उसको आभूषणों से क्या मतलब? नाम मात्र से प्रसिद्ध होनेवालों के लिए "एशियाटिक सोसायटी के मेम्बर," या अमुक कालेज के अध्यापक, या अमुक सभा के मन्त्री, या अमुक अख़बार के एडिटर, इत्यादि लिखने की ज़रूरत नहीं।

* *
*

अनलस्तम्भनविद्यां सुभग भवान् नियतमेव जानाति।
मन्मथशराग्नितप्ते हृदये मे कथमन्यथा वससि॥

हे सुभग, (जङ्गम बाबा के चेलों के समान) आप आग के स्तम्भन (ठण्ढा) करने की विद्या ज़रूर जानते हैं। यदि न जानते होते तो मन्मथ के बाणों की आग से धधकते हुए मेरे हृदय में आप किस तरह रह सकते?
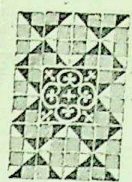
भाग ६] फ़ेब्रुअरी, १९०५ [संख्या २

विविध विषय।

गत दिसम्बर के अन्त में, काशी में, थिआसफ़िकल समाज का सालाना जलसा हुआ। दूर दूर से, दूसरे दूसरे देशों तक के, लोग इसमें शामिल होने आये थे। यह समाज सब जातिवालों को अपना सभासद बनाता है और सब धर्म्मों की अच्छी अच्छी बातों पर अमल करने की घोषणा देता है। काशी का हिन्दू कालेज इसी सम्प्रदाय के मुखिया महात्माओं के परिश्रम का फल है। इस समाज के अधिष्ठाता कर्नल आल्काट हैं। यह बहुत बूढ़े हैं। पर इनके जीवन-चरित का लोगों को कम ज्ञान है। इनकी सहकारिणी एक लेडी महाशया थीं। वे अब इस लोक में नहीं हैं। उनका नाम था मैडम ब्लावेट्स्की। वे रूस की रहनेवाली थीं। सुनते हैं, उनका विवाह एक जरठ से हुआ था। वह कुछ काल में, विवाह के बाद, हमेशा के लिए यहां से चलता हुआ। रूस के अधिकारियों को, इस घटना पर, कुछ सन्देह हुआ। इसलिए मैडम साहबा ने रूस छोड़ दिया। वे इधर उधर घूमती हुई तिबत पहुँचीं। वहां हिमालय पर उनको कई पहुँचे हुए साधु मिले। उनसे उन्होंने बहुत सी अलौकिक शक्तियां प्राप्त कीं। वहां से, इस प्रकार, सिद्धि प्राप्त करके उन्होंने, कर्नल आल्काट की सहायता से, थिआसफ़िकल समाज की नीव डाली। इस समाज ने अब ख़ूब ज़ोर पकड़ा है। इस समय इसकी ८५० शाखायें, भिन्न भिन्न देशों में, हैं। कोई २९,००० विद्यार्थी इसके खोले हुए स्कूलों में पढ़ते हैं। श्रीमती बेसण्ट भी अब इसी समाज में हैं। दिसम्बर के जलसे में बनारसी सारी पहने हुए, इन्होंने एक बहुत ही हृदयहारिणी वक्तृता देकर, सुननेवालों को लुभाया था। सुनते हैं ये मद्य-मांस नहीं छूतीं और हिन्दुस्तानी साध्वी स्त्रियों की तरह बड़ी पवित्रता से अपना जीवन निर्वाह करती हैं। हिन्दू कालेज से अङ्गरेज़ी में जो एक पत्रिका निकलती है उसको अब यही लिखती हैं। कुमारी एडगर, एम० ए०, भी इस समाज की एक प्रसिद्ध मेम्बर हैं। ये पहले आस्ट्रेलिया या न्यूज़िलैण्ड में कहीं, किसी

कालेज में, अध्यापिका थीं। अब यह भी इस समाज की उन्नति के काम में लगी हैं; और अपने मनोहर व्याख्यानों से लोगों को मोहित किया करती हैं।

* * *

पण्डित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी ने वराह-मिहिर पर एक लेख लिखा। वह लेख एप्रिल, १९०४, की सरस्वती में छपा। उसके अन्त में "आसन् मघासु मुनयः" इत्यादि वराह-मिहिर के श्लोक से यह अनुमान किया गया है कि कलि के ६९७३ वर्ष पहले कुरुक्षेत्र में युद्ध हुआ था, अर्थात् महाभारत हुए ११००० वर्ष हुए। नवम्बर १९०४ की संख्या में चिट्टूरनिवासी वी० गोपाल आइयर का मत हमने प्रकाशित किया है। उसके अनुसार युधिष्ठिर को हुए सिर्फ़ ३००० वर्ष हुए। अब, इस संख्या में, इसी विषय पर हम पण्डित गणपति जानकीराम दुबे का एक छोटासा लेख अन्यत्र प्रकाशित करते हैं।

* * *

पण्डित गणपति जानकीराम ने गोपाल आइयर के मत को प्रामादिक बतलाया है। परन्तु आपको चाहिए था कि गोपालराव के दिये हुए प्रमाण को आप युक्ति से खण्डन करते और वराह-मिहिर के श्लोक की सङ्गति भी लगाते। ऐसा करने से आप के लेख का अधिक गौरव होता। किसीकी बात को भ्रमपूर्ण बतला कर उसकी युक्तियों का खण्डन भी करना चाहिए।

* * *

इवल्ली कहां है? वहां के जैनमन्दिर को किसने बनवाया? शिलालेख किन अक्षरों में है? उस लेख में और क्या क्या बातें हैं? प्रथम शङ्कराचार्य कब हुए? उनके समय का क्या प्रमाण है? किस किस पुरातत्ववेत्ता ने इस लेख को पढ़ा और इसके शक-सम्वत् को ठीक बतलाया? अध्यापक केरो लक्ष्मण गणित में सचमुच अद्वितीय थे। पर क्या वे पुरातत्व के भी पण्डित थे? शिलालेख के श्लोक से तो कलि के ८५५ वर्ष पहले मन्दिर का बनना सूचित होता है; फिर कलि की बाईसवीं शताब्दी में उसका बनना किस तरह सिद्ध हुआ? अच्छा, मान लीजिए कि कलि के २१७५ वर्ष पहले महाभारत हुआ और कलि की २२वीं शताब्दी में यह मन्दिर बना। अतएव मन्दिर बनने के समय महाभारत हुए कोई पांच हज़ार वर्ष हुए थे। क्या प्रमाण है कि पांच हज़ार वर्ष की पुरानी बात शिलालेख में ठीक ठीक दी गई है।

* * *

अपनी आरकियालाजिकल रिपोर्ट के पहले भाग में जनरल कनिंहाम अनुमान करते हैं कि ईसा के १४२४-२५ वर्ष पहले युधिष्ठिर ने इन्द्रप्रस्थ को अपनी राजधानी बनाया था। बेण्टले साहब का हवाला देकर वे लिखते हैं कि जिन ग्रहों का ज़िकर महाभारत में है वे इसी वर्ष अपने उल्लिखित स्थान में थे। विष्णुपुराण में लिखा है कि परीक्षित के जन्म समय सप्तर्षि मघा पर थे और नन्द के समय में पूर्वाषाढ़ पर होंगे। सप्तर्षि एक नक्षत्र पर १०० व तक रहते हैं। इस प्रकार परीक्षित और नन्द बीच में १००० वर्ष का समय हुआ। परन्तु भागव के अनुसार यह समय १०१५ का है। इसमें ९ नन्द के राज्यकाल के १०० वर्ष मिला देने से १११५ हो हैं। चन्द्रगुप्त ईसा के ३१५ वर्ष पहले हुए अतएव १११५ + ३१५ = १४३० वर्ष ईसा के पह परीक्षित का जन्म हुआ। अर्थात् महाभारत में परीक्षित के जन्म में पाँच वर्ष का अन्तर हुआ इस हिसाब से महाभारत को हुए कोई सवा तीं हज़ार वर्ष हुए। परन्तु हमने भागवत और वि पुराण में उल्लिखित श्लोकों को ढूंढ़ कर उन्हें स नहीं देखा। कनिंहाम साहब ने जो कुछ लिखा वही हमने यहां पर लिख दिया है।

* * *

कलकत्ता हाईकोर्ट के न्यायमूर्ति शारदाच मित्र, एम० ए, बी० एल०, चाहते हैं कि इस में जितनी भाषायें हैं सब एकही प्रकार लिपि में लिखी जायं। यह लिपि संस्कृत वर्णमाला की भित्ति पर होनी चाहिए—अ देवनागरी अक्षरों में सब प्रान्तिक भाषायें लि

जानी चाहिए। उन्होंने इस विषय में गत दिसम्बर महीने में एक लेख पढ़ा था। यह लेख यूनीवर्सिटी इन्स्टीटयूट में पढ़ा गया था। सर गुरुदास बैनर्जी उस समय सभापति थे। अपने प्रस्ताव के समर्थन में न्यायमूर्ति शारदाचरण ने प्रायः वही बातें कहीं जो हम अपने "देशव्यापक भाषा" सम्बन्धी लेख में कहचुके हैं। लक्षण अच्छे हैं। जैसा हमने कहा है, इस मामले में, जब तक वङ्गवासी अगुआ न होंगे तब तक सफलता की कम आशा है।

* *
*

कलकत्ते में एक हिन्दी-साहित्य-सभा स्थापित हुई है। उसका उद्देश्य हिन्दी भाषा और हिन्दी-साहित्य की उन्नति करना है। हम इस सभा के मङ्गलाकांक्षी हैं। यह सभा हिन्दी का एक व्याकरण बनाने की चेष्टा कर रही है। सभा चाहती है कि जो महाशय इस काम में उसकी सहायता देना चाहें वे उससे पत्र-व्यवहार करें। यदि किसी ने व्याकरण लिखने का काम आरम्भ किया हो तो वह भी उसकी सूचना, कृपाकरके, सभा के मन्त्री को, ७६ नं०, तूलापट्टी, कलकत्ता, के पते पर दे।

* *
*

समालोचक कहते किसे हैं? जो समालोचना के नियमों को अच्छी तरह जानता हो; और, समालोचना करते समय, अपनी युक्तियों को पुष्ट करने ही के लिए जो समालोच्य वस्तु में से उदाहरण उद्धृत करता हो; वही सच्चा समालोचक है। जिनमें यह गुण नहीं उनकी समालोचना पढ़ते समय आनन्द नहीं मिलता और समय व्यर्थ जाता है, क्योंकि पढ़ने-वाले सभी समालोच्य वस्तुओं से परिचित नहीं होते। और बिना परिचय के किसी वस्तु की साधारण निन्दा अथवा प्रशंसा का असर चित्त पर नहीं होता। समालोचक के लिए दो बातें बहुत ज़रूरी हैं। एक तो वह अपने और ग्रन्थकार के हृदय का एकीकरण कर सके; अर्थात् ग्रन्थकार के मतलब को वह उसी तरह समझ ले जिस तरह कि स्वयं ग्रन्थकार ने अपने शब्दों द्वारा उसे दूसरों को समझाना चाहा है। दूसरे यह कि समालोच्य ग्रन्थ की समता वह किसी दूसरे ग्रन्थ से करके दोनों का तारतम्य बतला सके। उसे साहित्य का उत्तम ज्ञाता होना चाहिए और साहित्य के गुण दोषों के विवेचन की शक्ति भी उसमें होनी चाहिए। जो समालोचक सिर्फ़ यह कह कर चुप हो जाता है कि यह पुस्तक बुरी है और यह भली है, वह समालोचक कहलाने योग्य नहीं। यह एक अङ्गरेज़ समालोचक का मत है।

* *
*

अक्टोबर १९०४ की सरस्वती में सुखदेवमिश्र का चरित प्रकाशित हुआ है। उसमें हमने शिवसिंह के आधार पर सुखदेवजी-कृत अध्यात्म-प्रकाश नामक पुस्तक का उल्लेख किया है। इस पुस्तक को मध्य प्रदेश में, रायगढ़ से २४ मील पर, पारसापाली के रहनेवाले पण्डित मेदिनीप्रसाद ने हमारे पास भेजा है। आपके पास और भी कई हस्तलिखित अच्छी अच्छी पुस्तकें हैं। सम्वत् १९३५ ईसवी में काशी से ४ संन्यासी पारसापाली पहुँचे थे। वहां उन्होंने अध्यात्मप्रकाश की पुस्तक पण्डित मेदिनीप्रसाद के पिता को दी थी। यह पुस्तक सम्वत् १८२३ की लिखी हुई है। इसे स्वामी गिरिजानन्द ने काशी में लिखा था। इससे यह अनुमान होता है कि सम्वत् १८२३ में सुखदेवजी को परलोक गये थोड़ा ही समय हुआ था। सम्भव है कि वे काशी गये हों और वहां पूर्वोक्त स्वामी ने इसकी नक़ल कर ली हो। इससे हमारा यह सिद्धान्त और भी दृढ़ होता है कि सुखदेवजी को हुए १५० वर्ष से अधिक नहीं हुए। अध्यात्मप्रकाश एक छोटी सी पुस्तक है। उसमें गुरु-शिष्य-सम्वाद द्वारा थोड़े में वेदान्त का वर्णन है। परन्तु कविता बहुत अच्छी है; और सुखदेवजी की कविता से मिलती भी है। इससे यह अवश्य ही दौलतपुर-निवासी सुखदेव जी की बनाई होगी। परन्तु बनाने का कारण और समय इसमें नहीं लिखा। इसकी कविता का एक उदाहरण सुनिए—

आत्मा का लक्षण।

मन बुद्धि इन्द्रिन को कारण चलाइबे को सकल उपाधिन तें न्यारो रहै गात में।
जैसे घर घर मांहिँ व्यापक प्रकाश अरु न्यारो सुख दुःखनि ते देखो अवदात में।
जैसे रवि ज्योति आगे सोवत के जीव जागै उठि उठि काम लागै सबै परभात में।
अज अविनाशी परिपूरण प्रकाशी सुखदेव सुखराशी ऐसो नित्य लखै आतमें॥

डाक्टर जी० ए० ग्रियर्सन, सी० आई० ई० (D. Litt.)

गुणि-गण-गणनारम्भे न पतति कठिनी सुसम्भ्रमा यस्य।
तेनाम्बा यदि सुतिनी, वद वन्ध्या कीदृशी भवति?॥ * पञ्चतन्त्र।

हिन्दी के खेत में काम करनेवालों के बीच ऐसा शायद ही कोई निकलैगा, जो डाकृर ग्रियर्सन के नाम को न जानता हो। जैसे संस्कृत के साथ लोग मैक्सम्यूलर साहब का नाम लेते हैं, ठीक उसी तरह डाकृर साहब का सुनाम भी हिन्दी भाषा के साथ लिया जाता है। यद्यपि सभी लोग डाकृर साहब के नाम को आप ही याद करते हैं, तथा पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ने अपने 'विहारी-विहार' में आपकी जीवनी भी छाप दी है; पर तो भी, डाकृर साहब के चित्र को, इस समय, जबकि वे स्वदेश को लैाट गये हैं और कदाचित् ही अब उनका दर्शन हम लोगों को यहां मिलै, साहित्य के सरस्वती-नामक मन्दिर में प्रतिष्ठित कर देना और साथ ही उनकी कीर्त्ति भी उसमें कुछ अङ्कित कर देना आवश्यक समझा गया। †

इस पृथ्वी पर जन्म लेकर डाकृर ग्रियर्सन ने जितना काम किया और जितना नाम कमाया, वैसा विरले पुण्यवानों के भाग्य में बदा होता है। आपकी कीर्त्ति की चाँदनी इस देश को और योरप को भी उजियाली पहुंचा रही है। आप अनेक भाषाओं के पण्डित हैं; पर सबसे अधिक प्रेम आप हमारी मातृभाषा हिन्दी ही पर रखते हैं।

आयरलैण्ड के डबलिन परगने में राथफर्नहा[म] हैास (Rathfarnham House) नामक ए[क] घराना है। उसी घराने के नायक श्रीयुत जा[र्ज] अब्रहम ग्रियर्सन, एल. एल. डी., बैरिस्टर, के डाकृ[र] साहब बेटे हैं। इनका जन्म तारीख़ ७वीं जनव[री] सन् १८५७ को हुआ, अर्थात् इस समय आपकी उ[म्र] ४८ वर्ष की है। पहले ये श्रियुसबरी स्कूल [में] डाकृर वेञ्जमिन हालकेनेडी से, और, फिर उ[स] विद्वान् के केम्ब्रिज में ग्रीक भाषा के आचार्य [हो] जाने पर, पादरी एच. डबल्यू. मॉस से विद्या पढ़[ते] रहे। डबलिन नगर के ट्रिनिटी कालेज में इन्हों[ने] १७ वर्ष की उम्र में, प्रवेश किया, जहां गणितशा[स्त्र] की परीक्षा को बड़ी नेकनामी के साथ पास किय[ा]। इसके पीछे प्रॉफ़ेसर राबर्ट एट्किन्सन से इन्हों[ने] संस्कृत सीखी। "और मीर औलाद अली के पा[स] हिन्दुस्तानी भाषा पढ़ने लगे।" * Sanskr[it] Exhibition नामक पारितोषिक दो बार आ[प] पाया। ट्रिनिटी कालेज के इतिहास में यह [...]

---

* गुणियों की गिनती के आरम्भ ही में जिसके नाम पर खाइर लेखनी नहीं चलती, अर्थात् जिसका नाम नहीं लिखा जाता, यदि माता उस बेटे से बेटेवाली कही जावे, तो कहिए वन्ध्या कैसी होगी?

† डाक्टर साहब के चित्र के लिए हम डाक्टर हार्नली महाशय के कृतज्ञ हैं।

* यह नोटिस, The Biographer पत्र के लेख और [...] की चिट्ठियों के अनुसार लिखी जा रही है। उसके कामों [...] अधिकतर विहारी-विहार से लिये गये हैं।

पहली बार हुई और तब तक बिलकुल नई थी। हिन्दुस्तानी (विहारीविहार के अनुसार "हिन्दी") भाषा का भी पुरस्कार इन्होंने पाया। संस्कृत और हिन्दुस्तानी भाषाओं में विद्वत्ता के लिए, युनिवर्सिटी भर के सबसे बड़े पारितोषिक, उस समय के, यही थे। प्रॉफ़ेसर एट्किन्सन् ही के प्रसाद से, पूर्वी, विशेषकर हमारे देश की भाषाओं की ओर इनका यह अटूट प्रेम उत्पन्न हुआ। और मुख्यतः इन्हीं भाषाओं के कारण आपकी गिनती पूर्वी विद्वानों में हुई।

सन् १८७१ में, हिन्दुस्तान की सिविल सर्विस परीक्षा पास करके, सन् ७३ में ये उस देश में पहुंचे जिसकी भाषाओं ने इनके मन को पहले ही से लुभा रक्खा था। पहले पहल ये बङ्गाल के जशोर स्थान में नियुक्त हुए; पर जल्दी ही उस समय के अकाल से दुःखित विहार प्रान्त को, दुर्भिक्षसम्बन्धी प्रबन्ध के सर्कारी मुहकमे में, भेजे गये।

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास लिखते हैं—"बस भारतवर्षीय पुरुषों के चाल व्यवहार जानने को तथा एतद्देशीय सब पुरुषों से मिलने को साहब को यह बहुत अच्छा अवसर मिला। जब इननें तिरहुत के निवासियों को स्वतन्त्र भाषा बोलते देखा और देखा कि वहां के छोटे लोग तिरहुता भाषा छोड़ हिन्दी बँगला आदि कुछ भी नहीं बोल सकते हैं, तब उनकी चित्तवृत्ति इधर झुकी कि जो यूरोप-देश-निवासी केवल बँगला तथा हिन्दी जान कर बड़े अधिकारी हो कर इस देश में आते हैं, उन्हें इन दुखिया प्रजाओं की पुकार सुनने में कितना कष्ट होता होगा। बस, चट पट इननें स्थिर किया कि इस देश की भाषा का कोष तथा व्याकरण बनाना चाहिए। इसका नाम साहस है और इसका नाम वीरता है कि स्वयं भी जिस भाषा को आज तक न जानते थे, जिस भाषा के मुद्रित ग्रन्थ नाम मात्र को भी अप्राप्य थे, उस भाषा को केवल जानने की नहीं किन्तु उसके व्याकरण बनाने की प्रतिज्ञा की जिसमें नवीन पुरुष सहज में समझ सकें। ओः एक हमारे देश के पण्डित हैं जो कुछ न्याय व्याकरण के खर्रे घोष अहश्च त्वश्च कर........ पण्डित बन बैठते हैं..........। और कहाँ यह विद्वान् कि स्वदेश में कितनी भाषा तथा विद्या को सीख चुके हैं; अब छात्रता छोड़ शासनकार्य करते हैं, तो भी नवीन नवीन विद्याओं के सीखने के लिए वही पिपासा है और गुप्त विद्याओं को प्रगट करने के लिये महर्षियों का सा उत्साह है।"

पीछे इन्होंने हवड़ा, मुर्शिदाबाद और रङ्गपुर में कई वर्ष तक काम किया। इन ज़िलों में सर्कारी कर्त्तव्यों को पालते हुए, इन्होंने सर्कारी परीक्षा में, वङ्गभाषा और संस्कृत में High Proficiency (उच्चविद्वत्ता) पास करने की पदवी प्राप्त की; और वङ्गाल एशियाटिक सोसाइटी नाम की विद्वानों की सभा में सम्मिलित हो कर उसके ये बराबर कार्य-कर सभासद बने रहे। रङ्गपुर की विचित्र भाषा का इन्होंने व्याकरण बनाया और उस भाषा के नमूने भी प्रकाशित किये।

सन् १८७७ में दर्भङ्गा के मधुवनी स्थान में, आप वहाँ के सब-डिविज़नल् ऑफ़िसर हो कर, आये। बङ्गाल से बदल आकर यहाँ आप ३ वर्ष से कुछ अधिक रहे। "बस मिथिला भाषा के व्याकरण बनाने का यहीं इनको पूर्ण अवसर मिला। इस समय इनके पास कई एक लेखक वेतन पाते थे और इस तिरहुत भाषा का जो कुछ गान, पद्य आदि मिला, उसका संग्रह करते जाते थे। पण्डित बबुजन झा, पण्डित भाना झा, पण्डित हली झा, पण्डित चन्दा झा प्रभृति के साहाय्य से, साहब ने तिरहुत भाषा के विशेष गानों का संग्रह किया और पण्डित हली झा ने तिरहुत भाषा का एक व्याकरण बनाया था, सो लिखा हुआ, उनने साहब को दिखाया। उससे भी इनने बहुत साहाय्य लिया। और मुक़द्दमों में जितने गवाह आदि आवें उनका इज़हार साहब तिरहुती ही में लेने लगे; और उनके शब्दों को ध्यान देकर सुनने लगे; और जो नया शब्द हो उसे उसी क्षण लेखकों को लिखवाने लगे।

सुना है कि जो पण्डित लोग साहब के यहाँ आते थे उन्हें साहब कुछ भेंट भी देते थे। तिरहुत में २ रु० और एक जोड़ा धोती प्रायः पण्डितों को दिया जाता है, सो इस बिदाई के लिये साहब भी बहुत पण्डितों के यजमान हो गये थे। तिरहुत के प्रसिद्ध महाकवि विद्यापति के गान और मनबोध के हरिवंश ने साहब को बहुत से प्रयोगों का परिचयी बनाया*। साहब ने इस श्रम के फलस्वरूप तिरहुत भाषा का व्याकरण प्रकाशित किया† और अति दुर्लभ मनबोध के हरिवंश की भी ग्यारह अध्याय प्रकाशित की (इतनी हीं मिली)।"

सन् १८८० में, साहब को इङ्गलैण्ड जाना पड़ा। इसका कारण यह था कि रङ्गपुर में आप को ज्वर आने लगा था और उसका दौरा बराबर सन् १८८० तक होता रहा। स्वदेश जा कर, उसी वर्ष, साहब ने डबलिन के डा० मॉरिस कॉलिस साहब की बेटी श्रीमती ल्यूसी से अपना विवाह किया और भारतवर्ष को प्रत्यागमन किया। यहां आने पर इनके हाथ में सर्कार ने एक विशेष काम सौंपा। यह काम कैथी अक्षरों के, अपने नीरीक्षण में, टाइप ढलवाने का था। बायोग्राफ़र (The Biographer) नामक पत्र लिखता है—"अब तक सब सर्कारी विज्ञापन और गवर्न्मेंट गज़ट फ़ारसी अक्षरों में छपते थे जिन्हें बिहार के बहुत थोड़े से पढ़े लिखे लोग ही समझ सकते थे। इस दिन से ये (सर्कारी कागज़), उन अक्षरों में छपने के कारण जिन्हें बिहार का हरएक गवँहाँ, जो थोड़ा भी पढ़ सकता था, जानता था,—प्रायः सभों के समझने के योग्य हो गये। यह सुधार अधिकतर मि० ग्रियर्सन के ही प्रयत्नों की बदौलत हुआ*"। कैथी अक्षरों बारे में पं० अम्बिकादत्त जी इस भांति लिख हैं—"इस समय बिहार में शिक्षाविभाग में कै अक्षरों का प्रचार हुआ था और कैथी ही में विवि पुस्तक पढ़ाने की शिक्षा विभाग की आज्ञा हुई थी परन्तु महाजनी की भांति कैथी में न तो ह्रस्व दी ही का विभेद था और न युक्ताक्षर ही थे। गवर्नमेण्ट ने इनको स्वातन्त्र्येण इस काम प नियुक्त किया कि ये कैथी के अभाव को पूरा क और तदनुसार टाइप ढलवावें।" सन् १८८१ कैथी अक्षरों पर एक इनकी किताब भी कलक में छापी गई।

इस काम के पूरे हो जाने पर, ग्रियर्सन साह पटने के ज्वाइण्ट मैजिस्ट्रेट बनाये गये। कभी क कार्यविशेष के साधन के निमित्त, थोड़े समय लिये, अन्यत्र चले जाने को छोड़, ये पटने ही में वर्ष तक रहे। वहीं पर पण्डित अम्बिकादत्त व्या क़ाज़ी साहब रज़ाहुसैन, राय जयकिशुनदास ब दुर, बाबू रामदीनसिंह आदि देशी महाशयों आपकी मित्रता हुई। अब ये सज्जन परलोकवा हो गये हैं। इसी समय, डाकृर साहब ने विहा भाषा की साधारण बोलियों के सात व्याकरण ब और बिहार के किसानों की रहन सहन पर Bih Peasant Life नामक पुस्तक लिखी। इन पुस्त के बल योरप के पूर्व-देश-सम्बन्धी पण्डितों सामने इनका नाम चमकने लगा। सन् ७३ की महँगी में जब कि ये थोड़ी उम्र के एक अ स्टैंट मैजिस्ट्रेट थे, इन्होंने जो एक काम आप अपने ऊपर उठा लिया था उसका एक खण्ड पुस्तकों के साथ आज समाप्त सा हो गया। अ

* "इसी समय इनने कचहरी और मधुबनी बस्ती के बीच में एक उत्तम बाज़ार बसाया जो आज तक "ग्रियर्सन् गञ्ज' नाम से प्रसिद्ध है॥"

† An Introduction to the Maithili Language of North Bihar, containing a Grammar. Asiatic Society, Bengal. Price Rs. 6. 'बिहारी-बिहार'।

* "Hitherto, all Government notifications and *Government Gazette* had been printed in the Persian racter, which could only be read by a small minority of educated people of Bihar. From this date they were generally intelligible by being printed in the char familiar to every Bihar villager who could read at all. reformation was in great measure due to Mr. Grier personal exertions." The *Biographer* for 1894, page 1

कहा गया है कि उस समय दीन प्रजालोगों की बात समझने में नितान्त कठिनाई थी। पर अब इन ग्रन्थों के छपने से बिहार की लग भग ढाई करोड़ प्रजा की भाषा का सारा भेद, थोड़े श्रम से, चाहे जो हाकिम सीखले। इन दोनों ग्रन्थों को (१–Seven Grammars of the Dialects and Sub-dialects of the Bihari Language, २–Bengal Peasant Life.) बङ्गाल गवर्न्मेण्ट ने प्रकाशित कराया है।

"अब इन्होंने बङ्गाल एशियाटिक सोसायटी, रायल एशियाटिक और जर्मन ओरियण्टल सोसायटी के सामयिक पत्रों में गहन लेख लिखना आरम्भ किया। सन् १८८५ में इन्होंने फर्लो छुट्टी ली जिसका अधिकतर अंश जर्मनी में बिताया।" इसी वर्ष इनके Curiosities of Indian Literature (भारतवर्षीय साहित्य की अनोखी बातें) और Vidyapati and his Contemporaries (विद्यापति और उनके समकालीन कवि) नामक निबन्ध निकले। सन् १८८६ में, आस्ट्रिया की वीना नगरी में होनेवाली, पूर्वी विद्वानों की, Congress of the Orientalists नामक, महासभा में, ये हमारी गवर्नमेण्ट की ओर से प्रतिनिधि बना कर भेजे गये। इस सभा में, इन्होंने, भारतवर्ष के मध्य-सामयिक-भाषा-साहित्य पर एक प्रबन्ध सुनाया जो उस विद्वन्मण्डली में बहुत सराहनीय हुआ। उसी प्रबन्ध को पल्लवित करके Modern Vernacular Literature of Hindustan नामक ग्रन्थ,* सन् १८९० में हमारे साहब ने, एशियाटिक सोसायटी (बङ्गाल) के द्वारा, प्रकाशित किया। यह ग्रन्थ भाषाप्रेमियों में डाक्टर साहब की पुस्तकों में से अधिकतम प्रसिद्ध है।

यहां लौटने पर, सन् १८८७ में ये गया के कलेक्टर और मैजिस्ट्रेट बनाये गये। वहां १८९२ तक इन्होंने काम किया। वहां पर रह कर आपने 'गया ज़िले पर नोट्स' (Notes on the District of Gaya) नामक ग्रन्थ लिखा जो गया का एक गज़ेटियर (भूगोल) सा है; साथ ही इसमें वहां के निवासियों की दशा, रहन सहन, किम्बदन्ती और किसानों का बहुत कुछ हाल है।

इसी समय में, ये बिहारी भाषा के Comparative Dictionary (तारतम्यबोधक अभिधान) के लिए मसाला जुटा रहे थे। इसे डाक्टर ए० एफ० रूडल्फ़ हार्नली, एम्० ए०, और ये मिल कर रचते थे। इस कोश के दो ही भाग निकल सके। "अ" से "अञ्जलि" तक शब्दों का दोनों भागों में विस्तार है। बङ्गाल सेक्रेटेरियट प्रेस में यह छापा गया है। दोनों भागों का मूल्य ५) है। प्रथम भाग

---

* "हिन्दुस्तान का आधुनिक देशभाषा-साहित्य।" यह पुस्तक बड़े श्रम से छानबीनपूर्वक लिखी गई है। हिन्दुस्तान के आधुनिक देशभाषा-साहित्य के वर्णन में केवल हिन्दी और उसके रूपान्तरों के ही साहित्य की चर्चा की गई है। 'हिन्दुस्तान' से अभिप्राय उस भूमिखण्ड से है जो राजपूताना सहित, गङ्गा-यमुना के बीच, काशी से पश्चिम है और जिसमें पञ्जाब और निचला-बङ्गाल (Lower Bengal) नहीं आते। आधुनिक भाषा में प्राकृत, अरबी, फ़ारसी, किसी की गिनती नहीं हो सकती। किताबी (Literary) उर्दू को भी डा० साहब ने बाहर रक्खा है, इस लिए कि वह इस देश की औरस उपज नहीं, वरन् विदेशी योग से पैदा हुई है। इस पुस्तक में, मारवाड़ी, हिन्दी, बिहारी और उसके विविध उपभाषाओं के साहित्य का वर्णन है।

युरोपीय विद्वान् पहले संस्कृत की ओर झुके, फिर पाली और बाद प्राकृत की ओर। डा० साहब ने उन लोगों के प्रति अपनी भूमिका में कहा है कि एक पग और उल्लंघन करने से आप गौड़ीय साहित्य में पहुँच जांयगे। हेमचन्द्र ११५० ई० में हुए और ११७२ में मरे; चन्दबर्दाई ११९३ में मरे। डा० साहब ने, संस्कृत, प्राकृत और ...नपत्रों से, उन लोगों को, इस तरफ़ झुकने को युक्ति-युक्त कहा है।

इस पुस्तक में, एक अनुक्रम दिया है जिसमें देश-भाषा-साहित्य का संक्षिप्त वर्णन है, और ९५२ कवि और लेखकों की कहीं संक्षेप और कहीं विस्तार से चर्चा है जिसमें उनके होने का समय भी दिया गया है। भक्तमाल, शिवसिंहसरोज आदि १८ देशी पुस्तकों के आधार पर इसकी रचना की गई है। इसमें डाक्टर साहब ने एक पंचायती फ़ैसले का फ़ोटोग्राफ़ भी दिया है जिसमें कुछ भाग तुलसीदासजी के हस्ताक्षरों में लिखा माना जाता है। इसके देखने से मालूम होता है कि गोस्वामी जी ने बराबर, जहां काम पड़ा, चन्द्रबिन्दु का व्यवहार किया है। इससे अब के उन लेखकों को शिक्षा लेनी चाहिए जो अनुस्वार और आनुनासिक दोनों के लिए अनर्गल सब कहीं अनुस्वार-चिन्ह ही देते चले जाते हैं।

के आदि में एक बहुत अच्छी अनुक्रमणिका दी गई है। यदि यह ग्रन्थ पूरा हो गया होता तो बड़े काम का होता * ।

यह शब्द-कोश सर ऐशली एडन साहब को, जो बङ्गाल के छोटे लाट थे, समर्पित किया गया है; क्योंकि इन्हीं लाट महाशय ने बिहार की अदालतों में वहां के जातीय अक्षरों को जारी किया था और बिहार में इन्होंने पहले पहल, सर्कारी तौर पर एक जातीय भाषा का अस्तित्व माना था। *

सन् १८९१ में डाकृर ग्रियर्सन साहब का लिखा "पियदसी (अशोक) के शिलालेख" नामक प्रबन्ध प्रकाशित हुआ जो फ़रासीसी विद्वान् सेनार्ट (M. Senart) के प्रसिद्ध ग्रन्थ के दूसरे खण्ड का अनुवाद है।

---

* पढ़नेवालों को इस अभिधान की बानगी दो उदाहरणों द्वारा से, दिखाये बिना हमसे आगे नहीं बढ़ा जाता।

बिहारी शब्द — अंग्रेज़ी में विवरण।

अकोर। (काव्य, अकोरा) तद्भव शब्द †। विशेष्य। पुं०। अर्थ—(क) रिशवत, (घूस)। इससे पुनः, (ख) जिसका बछवा मर गया हो ऐसी गाय या भैंस को चारा खिलाने का यत्न, (ग) खेत में मज़दूरों का, काम के बीच, जलपान। खण्ड वाक्य—अकोर खाब = घूस लेना। उदाहरण, "जनु सभीत दै अकोर—राखे जुगरुचिर मोर—कुण्डल छवि निरखि चोर—सकुचत अधिकाई" तुलसीदास, गीतावली ३।२ (इसका अंग्रेज़ी में अर्थ)। "अँगिया तोरी रे अदालत, जोबन हाकिम जालिम जोर। जाय फँसे नाहक लालच बस ये दोउ नैना चोर। छूटे प्यारी मन-मुनसी कों दै के प्रान अकोर।" लाल खड्गबहादुर मल्ल, सुधाबिन्दु ३७। "जहँ अकोर तहँ नेक न राजू। ठाकुर केर बिनासहि काजू।" पद्मावत ६७१।२। "टका लाख दस दीन्ह अकोरा॥"

उत्पत्ति—सं० उत्कोच (संदिग्ध)। प्राकृत—उक्कोचो, उक्कोअडो। हिन्दी और बिहारी—अकोर। अन्य गौड़ भाषाओं में नहीं देख पड़ते।

अखार। (अखाड़, अखाढ़)। काव्य—अखारा; प्राचीन, अखारा; प्राचीन अधिकरण एक वचन-अखारें, बहुवचन-अखारेन्ह। तद्भव। संज्ञा। पुं अर्थ—कुश्ती लड़ने की जगह। इससे पुनः—को खुली जगह जहाँ खेल, तमाशा, या कसरत हो खण्डवाक्य—अखारा खेलब॥ उदाहरण-(क) नाना अखारेन्ह भिरहिं बहुविधि एक एकन्ह तर्जहीं। तुलसीदास, सुन्दर काण्ड १,८। (ख) "कनौ में सात सौ पट्ठा अखारा खेलवैत अछि"। गी दीनाभद्रिक, नैपाल तराई। (अर्थात् वह कनौ में सात सौ कुश्तीबाज़ों को लड़वा रहा है) (ग "दोउन बल भर जोबन गाजे। अप्सर जानु अख बाजे॥" पद्मावत, ४८०।३ (घ) "लङ्कसिखर ऊ आगारा। तहँ दसकन्धर केर अखारा" तु० लङ्का, १४।४। "लङ्का सिखर ऊपर आगारा। अ विचित्र तहँ होइ अखारा॥ बाजहिं ताल-पखा बीना। नृत्य करहिं अपछरा प्रबीना॥" तु० लङ्का ११-७। उत्पत्ति—सं० अक्षवाटः = प्रा अक्खआड़ो। गुजराती—अखाड़ो। मराठी अखाड़ा। पञ्जाबी—अखाड़ा। हिन्दी—अखा (रा)। बिहारी—अखाड़ (र)। बङ्ग, उड़िया आखड़ा; आसामी—आखरा।

विशेष—"नाना अखारेन्ह भिरहिं" में, (रे में ह्रस्व एकार है। बिहारी तथा और कई आ

---

† तद्भव वे शब्द कहे जाते हैं जो संस्कृत से निकले हों पर रूप वही न हो। जैसे राय, भाई, खेत, दहिन, आन (आज्ञा)। तत्सम वे हैं जो संस्कृत के समान रूप रखते हों। जैसे, राजा, भ्राता, खेतर (क्षेत्र), दखिन, आग्या।

* "There is a peculiar fitness in dedicating the Dictionary of the Bihari Language to you; for it was who, when ruling over these provinces, succeeded in m the national character of the country current in the courts, and who first officially recognised the existenc national language in Bihar.

To You, Sir, therefore, in grateful remembrance o beneficient reform which you introduced, this wo dedicated by—The Authors."

गया में आपके शासन से प्रजा बहुत ही प्रसन्न रही। वहां पर एक बार हिन्दू मुसल्मानों में झगड़ा होने की सम्भावना हुई थी। पर डाकृर साहब के सुप्रबन्ध से दोनों दलवाले शान्त और प्रसन्न रहे। एक गाँव में एक सती जल गई थी; पर उस विषय में भी कुछ उपद्रव न हुआ।*

बङ्गाल हाते के जिन ज़िलों में बहुत अधिक सरकारी काम रहता है, गया उनमें से एक है। इससे, बराबर पाँच वर्ष तक कठिन मेहनत करने के कारण साहब के शरीर की स्वस्थता बिलकुल बिगड़ गई। निदान, सन् ९२ में उन्होंने आपही अपनी बदली हवड़े को, जहां काम कुछ कम था, करा ली। यहां वे सन् १८९६ तक रहे। हवड़े में आने से ये अपने लिखने पढ़नेवाले मित्रों के बीच आ गये और वहां से बङ्गाल की एशियाटिक सोसाइटी भी समीप ही पड़ी। थोड़े ही समय में (सन् १८९४ में) आप इस सभा के Honorary Philological Secretary (अवैतनिक भाषा-सम्बन्धी मन्त्री) चुने गये। सन् १८९४ में, ग्रियर्सन साहब, जनेवा नगरी में होनेवाली पूर्वी विद्वानों की महासभा (कांग्रेस) में, बङ्गाल गवर्नमेण्ट, बङ्गाल एशियाटिक सोसाइटी, और कलकत्ता युनिवर्सिटी की ओर से प्रतिनिधि होकर गये।

निक भाषाओं में (ए) (ऐ), और (ओ) (औ) ह्रस्व भी हैं जिनको अब तक किसी ने, कदाचित्, नहीं पहचाना था। डा० हार्नली ने इनके बारे में अपने व्याकरण में भी लिखा है। इस शब्द-कोश में उसके रचयिताओं ने इन निर्बल दीर्घ (=ह्रस्व) स्वरों के लिए नये चिन्ह निर्मित किये हैं। पाणिनि ने "अच्" मात्र को ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत माना है। "ऊकालोज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः"। १।२।२७। अष्टाध्यायी। पर पीछे के संस्कृत वैयाकरणों ने (ए) (ऐ) आदि को दीर्घ ही कहा है। साधारण प्रेसों में इन नये चिन्हों के टाइप न रहने के कारण हमने पुराने ही चिन्हों का प्रयोग किया है।

* "बिहारी-बिहार"।

इसी वर्ष डाकृर साहब ने बिहारी-सतसई का अपना संस्करण प्रकाशित किया। इसके तैयार करने में डा० साहब ने कई वर्ष तक परिश्रम किया था। सतसई ने ही साहब के नेत्रों को अधिक विकृत कर डाला; पर तोभी वे बिहारीलाल से अलग न हुए। इस संस्करण में उन्होंने लालचन्द्रिका की बहुत शुद्ध टीका दी, और जहां जहां आवश्यक समझा दूसरे टीका-कारों के भी मत टिप्पणी में दिये। इसकी भूमिका बहुत लम्बी है जिसमें काव्य ग्रन्थ "भाषभूषण" का पूरा अंग्रेज़ी अनुवाद भी दिया गया है। अन्त में, छह (६) उत्तम टीका-कारों के मत के अनुसार दोहों का अङ्क-चक्र तथा अनेक दोहों के विचित्र अर्थ और शङ्का-समाधान भी आपने दिये हैं; तथा स्थान स्थान पर कठिन विषयों की व्याख्या भी की है। यह पुस्तक भी गवर्नमेण्ट के लिए तैयार की गई थी। आपने मलिक मुहम्मद जायसी की "पद्मावत" का भी एक संस्करण छपवाया है।

वीना नगरी में उस समय प्रोफ़ेसर बूलर, भारतवर्षीय आर्य-वस्तुओं के अनुसन्धान का एक विश्वकोष (Encyclopaedia of Indo-Aryan Research) छाप रहे थे। उसके लिए यहां की देश-भाषाओं पर एक निबन्ध लिखने में साहब का नेत्र रोग बहुत बढ़ गया। छोटे अक्षरों का पढ़ना लिखना दुष्कर होगया। ऐसी दुःख की अवस्था में भी डाकृर ग्रियर्सन ने अपना काम नहीं छोड़ा। लेखक, टाइपराइटर, चश्मे आदि की सहायता से वे बराबर लिखते पढ़ते रहे; यहां तक कि काश्मीरी भाषा का एक प्राचीन व्याकरण भी, इसी अवस्था में, पं० बालमुकुन्द काश्मीरी की सहायता से, प्रकाशित किया। ठीक है—

"चिन्ता यशसि न वपुषि प्रायः परिदृश्यते महताम्।"

'बिहारी-बिहार' से मालूम पड़ता है कि नेत्र-रोग के कारण सन् १८९४ के बाद और ९६ के पहले, साहब को एक बार फिर विलायत जाना

पड़ा था। सन् १८९५-९६ के लिखे कई एक बहुत अच्छे और गहन लेख एशियाटिक सोसाइटी के जरनल में देख कर और उससे, नेत्र जैसे उपयोगी, आवश्यक और प्रिय अवयव की, साहब द्वारा उपेक्षा, का विचार करके "यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ" आदि महात्माओं के प्रकृति-सिद्ध लक्षणों का बार बार स्मरण होता है।

सन् १८९६ में आप बिहार के अफ़ीयून-एजेण्ट हुए। बांकीपुर में आपकी स्थिति हुई। सन् १८९८ में आप Linguistic Survey 'भाषा सम्बन्धी जाँच' नामक एक विशेष कार्य पर सर्कार से नियुक्त होकर शिमला गये। सन् १८९९ में आप विलायत को लौट गये * और भाषा सम्बन्धी जाँच का काम वहीं पर, अब भी, Superintendent of the Linguistic Survey of India (भारतवर्षीय भाषा सम्बन्धी जाँच के सुपरिण्टेन्डेण्ट) नामक सर्कारी उपाधि को धारण करते हुए उस भाषा-सम्बन्धी जाँच के काम को कर रहे हैं। यह काम अब बिलकुल समाप्ति पर आपहुँचा है।

इस जाँच की पूरी रिपोर्ट अभी नहीं छपी। वंगभाषा, बिहारी और उड़िया पर रिपोर्ट छप कर भारतवर्ष में हाल ही में आई है; पर और और जिल्दें अभी प्रकाशित नहीं हुईं। कई जिल्दों में यहाँ की विविध भाषाओं की केवल तालिका तैयार की गई है। हमें विश्वास है कि यह पूरी रिपोर्ट छप जाने पर डा० साहब के हाथ से एक बहुत बड़ा काम पूरा हो जायगा †।

सन् १९०३ में सिविल सर्विस से, आप इस्तेफ़ा देकर, अलग हो गये।

उपसंहार।

डाकृर ग्रियर्सन, ट्रिनिटी कालेज (डबलिन) के बी० ए०, हेल युनिवर्सिटी (विश्वविद्यालय) से "डाकृर" (Ph. D., Honoris causa) उपा[धि] प्राप्त, और कलकत्ता युनिवर्सिटी के फ़ेलो हैं। स[न्] १९०२ में, डा० साहब को उनके पुराने विद्या[लय] ट्रिनिटी कालेज ने Doctor of Letters (D. Li[tt.]) साहित्याचार्य) की पदवी से सम्मानित किया। डाकृर महाशय, बङ्गाल एशियाटिक सोसाइ[टी], जर्मन ओरियण्टल सोसाइटी, रायल एशियाटि[क] सोसाइटी, फ़ोकलोर सोसाइटी, आदि विद्वत्सम[ाज]ओं के सभ्य हैं; अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइ[टी] के भी आप सभ्य हैं।

डाकृर साहब के लेख।

इनके लेख, जिनमें से बहुत ही कम का ऊ[पर] उल्लेख किया गया है, अगणित हैं। इण्डियन ऐण्टि[]क्वेरी, और एशियाटिक सोसाइटिओं के जरन[ल] इनके निबन्धों से भरे पड़े हैं। असीम विद्याभि[रुचि] के कारण अध्ययन में आपके घोर परिश्रम का अ[नु]मान, उनके चित्र ही को देखकर, पाठक सहज[] कर सकते हैं। इन्होंने जो कुछ लिखा, वह मुख्य[] विदेशियों के लिए। डा० साहब का यह वि[चार] हुआ कि बिना इस देश की भाषा जाने और वि[ना] यहांवालों की रीति नीति समझे हाकिम लोग[] शासन नहीं कर सकते। यह विचार बहुत ठीक[] और इस अभाव को डा० साहब ने चिर-परिश्रम[के] अनन्तर दूर करने के बहुत कुछ साधन भी ब[ना] दिये। अतः "नरपति और जनपद" दोनों के हितकर्त्ता हुए। प्रत्यक्ष है कि डा० साहब [] भाषाज्ञ और देशज्ञ से प्रजा बराबर उपकृत, सु[खी] और प्रफुल्लमन रही है। जब भाषा ही अच्छी त[रह] हाकिम न जानैगा तो प्रजा की बातें क्या समझे[गा]। अस्तु, साहब का श्रम सर्वथा सफल है। ह[मारे] शासकों को न केवल हमारी भाषा के कुछ व्याक[रण] ही सिखला कर उन्होंने रहने दिया; वरन् उ[न्होंने] हमारे साहित्य को भी पढ़ने का मार्ग खोल दि[या]। साहित्य जन-समुदाय के हृदय का विकाश []; हमारे साहित्य को पढ़ने से वे हमारे हृदय[] पढ़ लेंगे। सर्कारी शासन में जो सहायता व[]

* इस समय डाकुटर साहब का पता इस तरह है —
Rathfarnham, Camberly, Surrey, England.

† इसके तैयार करने में हर एक जगह से एक ही आख्यान का वहां की चलित भाषा में अनुवाद और गीतों के नमूने मँगाये गये थे।

इनसे पहुंची है वह सैकड़ों क्या सहस्रों कोरे हाकिमों से न पहुंचती। पञ्चतन्त्र में एक श्लोक है कि ऐसे राजपुरुष बहुत दुर्लभ हैं जो नरपति और जनपद, अर्थात् राजा और रिआया, दोनों के हितकर्त्ता हों। सो ऐसे ही दुर्लभ लोगों में हम इनको मानते हैं। एक महाशय ने कुछ खिँचकर हमसे कहा कि आप इन अङ्गरेज़ों में लिखनेवाले पण्डितों के इतने भक्त हैं, पर क्या इनमें से किसी ने किसी देशभाषा में कभी कुछ भी लिखा है। ऐसी समझ के लोग, हमें विश्वास है, बहुत कम होंगे। उनके लिए यही उत्तर है कि देशी भाषाओं में लिखने पर उनको समझने और आदर देनेवाले कितने लोग मिलेंगे? फिर, क्या हम उनके लेखों को भाषान्तर करके लाभ नहीं उठा सकते। हमें आप कुछ न करना पड़े और सब कुछ दूसरे ही करदें! एक ये लोग हैं जो रातदिन मेहनत करके अपनी भाषा को अलंकृत करते जाते हैं; और एक हम जिन्हें अपने अक्षर लिखते भी लाज लगती है। विदेशी भाषा में लिखने से विदेशियों का हम पर अच्छा ख़याल होने के अतिरिक्त हमारे पुराने विद्वानों की कीर्त्ति घर के बाहर फैलती है। ये लाभ, देशी भाषाओं में उनके लिखने से, कदापि नहीं हो सकते। हमारा उपकार, कोई चाहे जैसे करै, हमको उसके लिए हृदय से कृतज्ञ होना चाहिए। देश में कौन सा ऐसा विद्वान् हुआ जिसने इन लोगों के समान हमारी भाषाओं की उत्पत्ति; उनके व्याकरण की शृङ्खलता; उनकी स्वतन्त्रता सिद्ध कर दी हो। कोरे संस्कृत के पण्डित जी, प्रायः देखा गया है, "भाषा" को नितान्त अपभ्रष्ट, कुछ फ़ारसी शब्दों की मिलावट से बनी हुई और बिना व्याकरण की, मानते हुए, "भाखा" का नाम तक तुच्छातितुच्छ मानते हैं। कोई कैसी भी अच्छी चीज़ भाषा में क्यों न हो, पर वह उनके अनुसार है तो "भाखा" हो! इसीसे गो॰ तुलसीदास जी को भी रामायण के शुरू में अपने "भाषा-भणित" को 'भदेस' कहते हुए ऐसे लोगों के प्रति इतना लिखना पड़ा। सो ऐसी पद-दलित और तुच्छीकृत भाषाओं को इन पुण्य-पुरुषों ने स्वतन्त्रता दी है।

डाकृर साहब और हिन्दी।

यद्यपि डाकृर साहब अनेक देशी भाषाओं के पण्डित हैं, पर जितना प्रेम उनको हमारी हिन्दी से है उतना और किसीसे नहीं। हिन्दी के अध्ययन में आप बहुत सुख पाते हैं। गत ३० वर्ष से ये हमारी भाषा का अध्ययन करते चले आते हैं। और उसको, विचारों के प्रगट करने के लिए, संसार की वर्त्तमान सुपूर्ण भाषाओं में गिनते हैं। शुद्ध ठेठ हिन्दी को आप एक महती भाषा समझते हैं। अपनी इस प्यारी भाषा में व्यर्थ ही संस्कृत शब्दों को भर कर—जैसा कि इस समय वे काशी में प्रचलित बताते हैं—उसे बिगाड़ते देख डाकृर साहब को बहुत दुःख होता है। हिन्दी में संस्कृत शब्दों के अनावश्यक प्रयोग को ही साहब अनुचित बताते हैं। वे 'अवसर-कथित' संस्कृतमिश्रित हिन्दी को ख़राब नहीं कहते। जैसे श्रीतुलसीदास ने जहां तक हो सका ठेठ ही से काम लिया; बार बार और अधिकतर मीठी, बे-मिलावट की ही, हिन्दी का उन्होंने व्यवहार किया; पर संस्कृत-मिली भी उनकी बाणी अवसर-कथित होने के कारण ठीक जचती है।

हिन्दी-ग्रन्थ-कार।

हमने डाकृर साहब से पूछा कि आपके मतानुसार हिन्दी का सबसे बड़ा ग्रन्थकार कौन है। इस पर डाकृर साहब ने उत्तर दिया कि बिना आगा-पीछा के कहा जा सकता है कि हिन्दुस्तान की सब भाषाओं में सबसे श्रेष्ठ ग्रन्थकार तुलसीदास ही हुए। विलायतवालों में गोस्वामीजी की बहुत कम चर्चा है, इसलिए वहां उनकी लिखावट पर प्रेम उपजाने को साहब ने रायल एशियाटिक सोसाइटी सभा में एक बार एक लेख सुनाया और उसे छपवाया भी है। डाकृर साहब ने गोस्वामीजी के रामायण को बहुत ठीक, मध्यदेशवालों का बाइबिल कहा है। गुणग्राही ग्रियर्सन साहब ने विनयपत्रिका के एक पद का अपने लेख में अनुवाद देकर लिखा है कि

यह ईसाई धर्म की प्रार्थना-पुस्तक का एक अंश हो सकता है। उन्होंने लिखा है कि तुलसीदासजी की कविता का नमूना किसी उदाहरण द्वारा दिखलाना, एक ग्लास पानी लेकर समुद्र का नमूना दिखलाने के बराबर होगा।* ऐसे विद्यानिधानों से अपने मान्य कवि की ऐसी उचित प्रशंसा सुन कर हमारा शरीर पुलकित होता है। बिहारीलाल और सूरदास की कविता के भी हमारे चरित-नायक बड़े प्रेमी हैं। लल्लूजी की कुछ गद्यलिखावट भी आप बहुत पसंद करते हैं; पर लल्लूजी के बाद, साहब कहते हैं कि, बहुत कम शुद्ध हिन्दी लिखनेवाले हुए। डाकृर साहब की अभिलाषा रहती है कि हरि-औध जी† के "ठेठ हिन्दी का ठाठ" नामक पुस्तक की लेखशैली के अनुसार हिन्दी और लोग भी लिखें। वैसी भाषा लिखने से आप लाभ की आशा रखते हैं। डाकृर साहब की सम्मति यहां पर इसलिए लिख दी गई है कि वे हिन्दीवालों से प्रमाण से माने जाते हैं। अतः वे लोग अपने हितेच्छुक की इच्छा पूरी करने की चेष्टा करें।

चरित्र, स्वभाव आदि।

हमारे चरितनायक पर गवर्नमेण्ट का बहुत विश्वास था। सर्कार ने उनको सी० आई० ई० (भारत साम्राज्य के सहायक) की उपाधि भी दी है। आपक[illegible] सर्कारी कर्मचारिता में यद्यपि कोई विशेष घटना[illegible] हुई, पर जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, उन्होंने ऐ[illegible] काम किया है जिससे चिरकाल तक भारत साम्रा[illegible] का हित साधन होगा। भारतवर्ष में आपके अने[illegible] सुहृद् हुए जिनमें बहुत से वर्त्तमान हैं और बहु[illegible] से इस संसार को छोड़ गये। ऐसे लोगों में कु[illegible] की चर्चा ऊपर की गई है। टिकारी के परलोक[illegible] वासी राजा रणबहादुरसिंह से भी डा० साह[illegible] का बहुत बन्धुत्व था। साहब का कथन है कि [illegible] संसार में उनके सब मित्र हैं प्रायः सभी हिन्[illegible] स्तान ही में रहते हैं या रहे हैं। शासन में, य[illegible] वालों के प्रति सर्वदा, आप, मित्र के समान व्यव[illegible] करते थे। और सन्मित्र के समान, जब कभी [illegible] लोगों में कोई अनुचित बात देखते तो उसके लि[illegible] बे-हिचके उनको डांटते भी थे। आपका स्व[illegible] ऐसा सरल है कि विरले ही हाकिमों में वैसा देख[illegible] आता है। पण्डित अम्बिकादत्त लिखते हैं "ग्रिय[illegible] साहब में एक अपूर्व गुण यह है कि इनसे जो [illegible] भारतवर्षीय पुरुष मिलता है वही प्रसन्न हो जा[illegible] है। प्रायः उच्च पद वालों में अपने उच्च पद की ठ[illegible] ऐसी हो जाती है कि कोई कैसा ही प्रतिष्[illegible] विद्वान् उनसे मिलना चाहै तो उससे भरसक मि[illegible] नहीं और मिलें तो अपने पद की ठसक भी ल[illegible] रहते हैं। यह बात इनमें नहीं है। इनसे मिलने [illegible] यही विदित होता है कि जैसे किसी परममित्र[illegible] भेट भई हो। हम लोगों से इनसे चिरपरिच[illegible] और इनका स्नेह देखके आश्चर्य होता है।"

ठीक है सज्जनों का ऐसा ही स्वभाव होता है

"घर्मार्त्ते न तथा सुशीतलजलं स्नानं न मुक्तावलि-
र्न श्रीखण्डविलेपनं सुखयति प्रत्यङ्गमप्यर्पितम्।
प्रीत्यै सज्जनभाषितं प्रभवति प्रायो यथा चेतसि
सद्युक्त्या च पुरस्कृतं सुकृतिनामाकृष्टिमन्त्रोपमम्॥"

ईश्वर इनकी प्रतिष्ठा और आयु को बढ़ावे [illegible]
हिन्दी पर साहब की वही दया बनी रहे।

काशीप्रस[illegible]

---

* "हिन्दुस्तान के आधुनिक देशी भाषा साहित्य" में सब कवियों से अधिक तुलसीदास ही पर डाक्टर साहब ने लिखा है। सूरदास से गोसाईं जी को आपने बड़ा माना है। वरन् भारतवर्ष मात्र के मध्य कालीन काव्याकाश में आपने उनको महत्तम नक्षत्र कहा है। साहब ने धार्मिक दृष्टि से, इनके उपदेशों को बहुत पवित्र, विशुद्ध, और अलौकिक बताया है; इनकी उपदिष्ट सच्चरित्रता और कर्त्तव्य परायणता की शिक्षा की बड़ी प्रशंसा की है। लिखा है कि ईसाई धर्म के बहुत से भजन ऐसे हैं कि इस बड़े कवि के लिखे वाक्यों के शब्दशः अनुवाद हो सकते हैं। काव्य दृष्टि से भी, आपने उनकी बड़ी श्लाघ्य आलोचना की है; वर्णन को बहुत ओजस्वी और वर्णित पात्रों को, अङ्गरेज़ी साहित्य के चित्रित पात्रों के बराबर सिद्ध बताया है; उनकी उपमाओं की बहुत सराहना की है।

† हमारे आत्मीय मित्र, प्रसिद्ध ठेठ हिन्दी के लेखक, पण्डित अयोध्यासिंहजी उपाध्याय, आज़मगढ़ वाले।

ग्रन्थकारों से विनय।

[१]

हे ग्रन्थकार, आगार गुणों के, ज्ञाता,
अति-रुचिर-मनोरम-गद्य-पद्य-निर्म्माता।
क्षण भर के लिए समेट काम निज सारा,
सुनिए यह इतना विनय विनीत हमारा॥

[२]

भाषा है रमणी-रत्न महा-सुखकारी;
भूषण हैं उसके ग्रन्थ लोक-उपकारी।
उनको लिख उसकी तृप्ति भली विधि कीजै;
अति-विमल-सुयश की राशि क्यों न ले लीजै?

[३]

सत्काव्य, तथा इतिहास, और विज्ञान,
सत्पुरुषों के भी चरित विचित्र-विधान;
लिखिए हे लेखन-कला-कुशलतावान!
इसमें ही है सब भाँति देश-कल्याण॥

[४]

वर रत्न, कनक कमनीय, कान्ति के वर्द्धक
इस भूषण-रचना-हेत नहीं आवश्यक।
इस कारण देश विदेश नहीं जाना है;
शारीरिक श्रम भी नहीं बहुत पाना है॥

[५]

सुविचार-राशि हैं रत्न रुचिरताधारी;
हैं सुन्दर वर्ण सुवर्ण; कर्ण-सुखकारी।
घर ही में बैठ विचार प्रकट करना है;
पुस्तक के पृष्ठ सहर्ष वहीं भरना है॥

[६]

जो वस्तु और की बिना कहे लेता है;
सब कोई उसको "चोर" सदा कहता है।
औरों के चारु विचार तथापि मनोहर
ले लेने में कुछ दोष नहीं, हे बुध-वर!

[७]

इंगिलश का ग्रन्थ-समूह बहुत भारी है;
अति-विस्तृत-जलधि-समान देहधारी है।
संस्कृत भी सबके लिए सौख्यकारी है;
उसका भी ज्ञानागार हृदयहारी है॥

[८]

इन दोनों में से अर्थ-रत्न ले लीजै;
हिन्दी के अर्पण उन्हें प्रेम-युत कीजै।
वह माता-सम सब भाँति स्नेह-अधिकारी;
इतनी ही विनती आज विनम्र हमारी॥

[९]

माता है जैसी पूज्य सुनो हे भाई!
भाषा है उसी प्रकार महा-मुद-दायी।
माता से पूज्य विशेष देश-भाषा है;
मिथ्या यह हमने वचन नहीं भाखा है॥

[१०]

माता से जग के बीच जन्म मिलता है;
भाषा से सब व्यवहार सदा चलता है।
इससे ही उसकी कीर्ति विज्ञ गाते हैं;
तत्सेवा कर आनन्द अमित पाते हैं॥

[११]

इसलिए स्वभाषा-भक्ति, देश-हितकारी!
कर, भली भाँति, हूजिए पुण्य-अधिकारी।
रचिए गुण-गौरव-पूर्ण-ग्रन्थ-गण सारा;
बस, यही आप से विनय विनीत हमारा॥

मित्रता।

[अङ्गरेज़ी कवि शेक्सपियर की FRIENDSHIP नामक कविता का भावार्थ]

[१]

Every one that flatters thee
Is no friend in misery.
Words are easy, like the wind;
Faithful friend 'tis hard to find.
Every man will be thy friend,
Whilst thou hast wherewith to spend;
But if store of coin be scant,
No man will supply thy want.

मित्र नहीं दुख में है वह, जो
झूठ प्रशंसा करता है।
मीठे वचन सुगम है सुनना
सत्य मित्र कम मिलता है।
साथी तेरे सभी बनेंगे
जब तक रुपया है भरपूर।
जब अभाव उसका होगा, तब
वही रहेंगे तुझसे दूर॥

[२]

If a man be prodigal,
Bountiful they will him call;
If he be inclined to vice,
Quickly they will him entice.
But if fortune once do frown,
Then farewell his great renown;
They that frowned on him before
Use his company no more.

☼

जो मनुष्य बहु व्यय करता है
उसको कहते लोग उदार।
जो प्रवृत्त होता कुकर्म में
देते उसको ख़ूब उभार।
यदि विधि वाम कभी हो जाता,
जाता उसका सारा नाम।
पास कभी आता नहिं उसके
पहले जो था बना ग़ुलाम॥

[३]

He that is thy friend indeed,
He will help thee in thy need:
If thou sorrow, he will weep;
If thou wake, he cannot sleep;
Thus of every grief in heart
He, with thee, doth bear a part.
These are certain signs to know
Faithful friend from flattering foe.

☼

सच्चा मित्र वही है तेरा
जो विपत्ति में आता काम।
तुझको दुखी देख वह रोता;
जगते, सोता एक न याम।
इसी तरह सब दुःख बाँटने
में वह रखता अपना ध्यान।
झूठे-सच्चे मित्रों को इन
चिन्हों से करिये पहचान॥

कालीशङ्कर व्यास

द्वारका-वर्णन।

[१]

पुरी द्वारका परम सोहाई।
को जग जासु नाहिँ मन भाई?
बन उपबन सर सरित सुहाये।
कुसुमित जल थल अति मन भाये॥

[२]

अरुण पीत सित नील वरण के।
कञ्ज-पुञ्ज-गुञ्जार अलिन के॥
कुसुम कमल-दल सुन्दर भारे।
मनहु पञ्चशर-शर अनियारे॥

[३]

जल देविन के सुत अति बारे।
रविहिँ लखत जनु बदन उघारे॥
प्रात जलज-छबि लखि सकुचायो।
शशी हँसी-भय वदन दुरायो॥

[४]

षटपद-रव-पूरित चहुं छाई।
मानहुं किन्नर बीन बजाई॥
तरुण-मराल-वृन्द-बर जोरिन।
चुगत फिरत मुक्तन चहुं ओरिन॥

[५]

चकवा चकई जुगल छबि, रजनी-विरह वि...
विहरत सर सरितन फिरत, मोद न हृदय सम...

[६]

जल कुक्कुट काकोल बक, टिटही टेर सु...
सुन्दर सारस जोरियाँ, विहरत दृग सुख...

[७]
द्विजगन कूजनि विविध विधाना ।
निदर करहिं अपसरगन गाना ॥
नव कुसुमित सुबेलि सुखदानी ।
तरुन तरुवरन हिय लपटानी ॥

[८]
मनु कोमल कर नारि नवेली ।
पिय गल मेलि करहिँ रस केली ॥
बाग़ गुलाब प्रफुल्लित ऐसे ।
प्रौढ़ा दृग मदमाते जैसे ॥

[९]
नैन गुलाब कली सों लागे ।
बिन पराग मधु मद अनुरागे ॥
खिली चमेली दृगन लुभाई ।
बिबुध भामिनी मनु मुसक्याई ॥

[१०]
कुन्द-कली-छवि-छटा सुहाई ।
रति की दशन-पंक्ति सकुचाई ॥
ठाढ़े कदली-द्रुम यहि भाँती ।
जनु सुरभवन अपसरा पाँती ॥

[११]
भरत बीन लालन की पाँती ।
मंजु मंजरिन अतिहि सुहाती ॥
चढि स्यन्दन नभ-पथ थहरावहिँ ।
बिबिध बिहग के वचन सुनावहिँ ॥

[१२]
थिरकि थिरकि श्यामा मतवारी ।
महा मृदुल वर वैन उचारी ॥
चिरियां चुहचुहाँय चहुं ओरा ।
मञ्जु माधुरी शोर न थोरा ॥

[१३]
कोक कपोतन के सुभग, भरे काम रस भार ।
रस-विलास बहु बिध करत, तिय मुखमें मुख डार ॥

[१४]
शुकि झूलत निज झोंझ में, बया बई के सङ्ग ।
शुक पिक सुन्दर शारिका, बिहरत भरे उमङ्ग ॥

[१५]
भूमि स्वर्ग से अधिक सुहानी ।
पानी होत सुधा लखि पानी ॥
पवन परस अद्भुत सुखदाई ।
त्रिविध ताप लागतहि सिराई ॥

[१६]
अगनित मन्दिर सुन्दर राजे ।
स्फटिक मणी के शशि सम भ्राजे ॥
विविध पन्थ वीथिन शृङ्गारा ।
सभा अनेकन सुभग बजारा ॥

[१७]
रचना रुचिर विचित्र अनोखी ।
बहु विध एक एक सन चोखी ॥
चारु चौहटे सुन्दर शाला ।
नभ-चुम्बित सुरसदन विशाला ॥

[१८]
घण्टा घोर झांझ झनकारा ।
शङ्ख सरस धुनि सुभग नगारा ॥
जहँ तहँ वेद-घोष चहुं घाँई ।
शोर पठनगृह बटु-समुदाई ॥

[१९]
नगर मध्य प्रासाद विशाला ।
उन्नत शिखर रुचिर शशि-शाला ॥
तापर गरुड़ ध्वजा जरतारी ।
झलकत अति विचित्र मनहारी ॥

[२०]
भवन भामिनिन के चहुं ओरा ।
सोलह सहस सुभग चित चोरा ॥
द्वारे द्वारपाल समुदाई ।
ठाढ़े सज धज विशद बनाई ॥

[२१]
घूमत सायुध सज्य बहु, बीर द्वार दोउ ओर ।
जहँ तहँ पहरन पर खरे, भारी भट बरजोर ॥

[२२]
सालङ्कृत गज बाजि रथ, जुरे समूह महान ।
सुन्दर शिविकन पालकिन, भरे भवन मैदान ॥

(श्रीमन्त प्रिन्स) बलवन्तराव सिन्धिया,
[ग्वालियर]

शिक्षाशतक ।

[गत अङ्क के आगे]

(७७)

जो सच्चे सेवक हैं शिष्ट ।
कभी न करते काज अनिष्ट ॥
मालिक के हित अपनी जान ।
सदा समझते तृण-परिमाण ॥

(७८)

सेवक की शुभ सेवा जान ।
रीझ पचाते जो धनवान ॥
वह अकृतज्ञ अज्ञ का दास ।
कभी न रक्खै सुख की आस ॥

(७९)

प्रभु से बढ़, अपना सन्मान ।
पा, मन में लाकर अभिमान
आज्ञा सुन, बैठें, गह मौन ।
ऐसे सेवक से सुख कौन ?

(८०)

प्रभु से कह, मुँह मीठी बात ।
झूठी भक्ति दिखा, दिन रात ॥
अपनी झोली ही से काम ।
वे ही सेवक नमकहराम ॥

(८१)

जो स्वामी सेवक-आधीन ।
हो, दब के रहते मतिहीन ॥
सो अपनी प्रभुता को व्यर्थ ।
खो कर हो जाते असमर्थ ॥

(८२)

पहले किया तपस्या-योग ।
तब तुम ने पाया धन-भोग ॥
इसे सुमिर, करना सो काम ।
जिस से फिर पाओ सुख-धाम ॥

(८३)

संचित धन की हैं गति तीन ।
दान, भोग, औ होना क्षीण ॥
जहाँ न दान और उपभोग ।
वहाँ वही अन्तिम-गति-योग ॥

(८४)

धर्म-काज में जो मतिमान ।
यथा शक्ति देते हैं दान ॥
रखते हृदय सदा अविकार ।
वास्तव में हैं वही उदार ॥

(८५)

श्रद्धा सहित रहित अभिमान ।
जो करते धर्मानुष्ठान ॥
वे आदर्श पुरुष धर्मिष्ठ ।
पाते हैं सुख सदा वनिष्ठ ॥

(८६)

ब्रह्मचर्य्य व्रत नियमाधीन ।
होकर पहले बनो प्रवीण ॥
तब गृहस्थ का गह कर धर्म ।
करो शास्त्र-सम्मत सब कर्म ॥

(८७)

गेहोचित सुख-भोग-विलास ।
करके फिर हो जाव उदास ॥
बरतो वानप्रस्थाचार ।
तज दो, ममता-जनित-विकार ।

(८८)

जिसे समझते हो निज अङ्ग ।
सो भी नहीं जायगा संग ॥
निज-कृत-कर्म्म साथ ले हाय ।
चल दोगे, तज यह भी काय ॥

(८९)

धर्म एक रक्षक सब ठौर ।
जिस से बढ़ बान्धव नहिँ और ।
उसे बिसार, अज्ञ दुख झेल, ।
करते पाप-शत्रु से मेल ॥

(९०)

धूर्तराज पातक है एक ।
दिखला करके विषय अनेक ॥

कांग्रेस के मण्डप का दृश्य
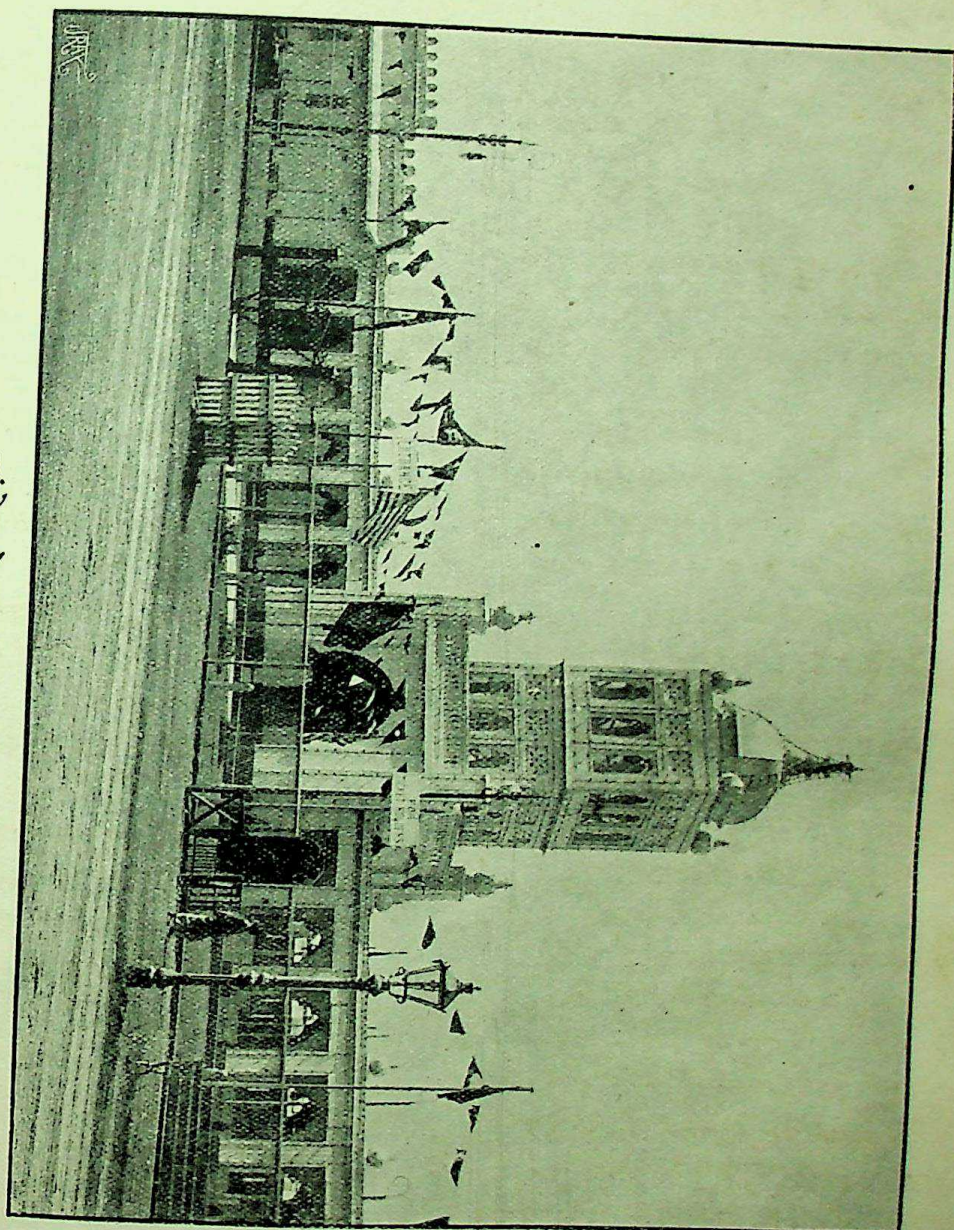
मोद चखा कर क्षणिक सयत्न।
ठग लेता है जीवन-रत्न॥

(९१)

रागद्वेष असत-आलाप।
बाधक जान, इन्हें तज, आप॥
भली भाँति कर अन्तःशुद्धि।
होवैं मुक्तिपथिक थिर-बुद्धि॥

(९२)

लौकिक सुख सब स्वप्न समान।
मन में निश्चय मिथ्या मान॥
ज्ञानी सब से होकर त्यक्त।
कभी न होते मायासक्त॥

(९३)

जिन्हें नित्य सुख की है चाह।
करते बुद्धि-सरित-अवगाह॥
वे अनित्य-सुख-भोग-निमित्त।
कभी न होते लोलुप-चित्त॥

(९४)

बन्धन-मूलक कर्म्म सकाम।
जिसका भला न है परिणाम॥
जो चाहो सुख अभय ललाम।
तो तुम करो कर्म निष्काम॥

(९५)

होगा नष्ट तभी अभिमान।
उपजेगा जब आत्मज्ञान॥
चीन्होंगे अपने को आप।
सुख पाओगे हो निष्पाप॥

(९६)

देह और इन्द्रिय से भिन्न।
आत्मा चेतन नित्य अखिन्न॥
मन से अपर पूर्ण-सुख-सार।
ज्ञानगम्य निर्गुण अविकार॥

(९७)

ब्रह्म जीव हैं एक अखेद।
केवल मायोपाधिक भेद॥
भेद-बुद्धि तज, आत्मज्ञान
साधन कर, होओ विद्वान॥

(९८)

भगवद्भक्ति बिना सो ज्ञान।
सुलभ नहीं यह निश्चय जान॥
हरि-पद-प्रेम-लीन हो, आप
समझैं करतल-मुक्ति दुराप॥

(९९)

मायावश प्राणी सब भूल,
पाते जन्म मरण भवशूल॥
जो हरिपद-आश्रित दिन रैन।
माया तिन्हें सताती है न॥

(१००)

कर न सको जो साधन और।
प्रभु को लख, व्यापक सब ठौर॥
बच, कुवृत्ति से सभी प्रकार।
प्रभुपद भज, जीतो संसार॥

(१०१)

जन-सीदन की शिक्षा मान,
जो उस पर रक्खेगा ध्यान॥
सो प्रभु कृपापात्र हो नित्य।
सभी भाँति होगा कृतकृत्य॥

जनार्दन झा।

अनुमोदन का अन्त।

कोई पांच वर्ष हुए, नागरीप्रचारिणी सभा के, काशी-निवासी, दो प्रधान सभ्य इलाहाबाद किसी काम से गये। काम इण्डियन प्रेस में था। वहां पर, बातों बातों में, हिन्दी-साहित्य की चर्चा छिड़ी। इस पर प्रेस के मालिक ने उन सज्जनों से हिन्दी की अवनति पर खेद प्रकट किया और कहा कि बँगला मासिक पुस्तक "प्रदीप" की ऐसी यदि हिन्दी में भी कोई

पत्रिका होती तो बहुत उपकार होता। यह सुन कर उन सज्जनों ने कहा कि यदि ऐसी पत्रिका के निकालने की ज़िम्मेदारी कोई अपने ऊपर ले तो वे उसके सम्पादन का प्रबन्ध कर दें। प्रेस के मालिक ने उनसे कहा कि "हमारी मातृ-भाषा बँगला है; पर हम युक्तप्रदेश में रहते हैं; इसलिए यहां की भाषा, हिन्दी, की भी उन्नति करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं। अतएव यदि हिन्दी-भाषा-भाषी कोई सज्जन इस काम को अपने ऊपर नहीं लेता तो हमीं ले लेंगे; आप सम्पादन का प्रबन्ध कीजिए"। तब उन सज्जनों ने, काशी में, एक "सम्पादक-समिति" बनाकर, सरस्वती को निकाला और इण्डियन प्रेस ने उसे छापने और प्रकाशित करने का ख़र्च अपने ऊपर लिया।

एक वर्ष बाद "सम्पादक-समिति" तोड़ दी गई और सरस्वती का सम्पादकत्व सभा के मन्त्री को मिला। यह दूसरे प्रकार का प्रबन्ध भी दोही वर्ष तक चला। तीसरे वर्ष से यह काम हमको अपने ऊपर लेना पड़ा। परवशता के कारण उस समय हमारे पास बेहद काम था। परन्तु प्रेस के कहने और सरस्वती का सच्चा हाल जानने पर हमने इस काम को स्वीकार करना ही उचित समझा।

जब इस बात की ख़बर सभा को दी गई तब उसने सरस्वती के सम्बन्ध में इण्डियन प्रेस से कई शर्तें करनी चाहीं। तीन वर्ष के बाद अपना "अनुमोदन" बनाये रखने के लिए सभा ने इन शर्तों की ज़रूरत समझी। सभा से प्रेस ने प्रार्थना की कि हिन्दी की उन्नति के ही लिए सभा स्थापित हुई है। इससे "सरस्वती" को ही नहीं, किन्तु, जितने समाचारपत्रों और जितनी पुस्तकों का उद्देश्य हिन्दी की उन्नति करना है, सभा को चाहिए, उन सबको भी वह अपना अनुमोदन दे। न सभा लिखै; न सभा प्रकाशित करै; न सभा को कुछ देनाहीं पड़ै, फिर अनुमोदन के लिए शर्तें क्यों? ख़ैर, कुछ लिखा पढ़ी के बाद सभा ने कृपापूर्वक शर्तों की बात वहीं तक रक्खी; आगे न बढ़ने दी।

तब से डेढ़ दो वर्ष तक कोई विशेष बात न हुई। गत आक्टोबर की सरस्वती में हमने "खो[ज] की रिपोर्ट" की आलोचना प्रकाशित की। उस[का] जो परिणाम हुआ वह सरस्वती के वाचकों [को] मालूमही है। हमारे उत्तर पर सभाने क्या किया [यह] तो हमें विदित नहीं। पर, इस बीच में, एक ऐ[सी] ही बात होगई जिसने सभा और सरस्वती [के] अनुमोदन-रूपी सम्बन्ध-सूत्रही को तोड़ डाला।

सभा की आज्ञा शिरोधार्य्य करके १९०३ [ई०] में "देशव्यापक भाषा" नामक एक लेख ह[मने] लिखा। वह सरस्वती में छप भी चुका है। [उस] लेख को पुस्तकाकार छपाने के लिए सभा[ने] लिखाया था। परन्तु जब एक वर्ष तक वह पु[स्त]काकार न छपा तब हमने सभा से पूर्व-प्रतिज्ञा भङ्ग करने का कारण पूछा। इस पर कुछ लि[खा] पढ़ी हुई। सभा के उत्तरों से हमको सन्तो[ष न] हुआ। इसलिए, इस विषय पर, हमने एक छो[टा] सा लेख, प्रकाशित करने के इरादे से, लिखा। [उस] लेख के अन्तमें हमने एक प्रस्ताव भी किया। [वह] यह कि सभा बाहरी सभासदों को भी अपनी का[र्य्य]कारिणी कमिटी में रक्खे। क्योंकि सभा के [६१६] सभासदों में से बाहर के ४८८ और बनार[स के] सिर्फ़ १२८ हैं। पर, आज तक, स्थानीय सभासदों से ही कार्य-कारिणी कमिटी के मेम्बर चुने गये [हैं]। इस लेखको हमने सभा के पास देखने को [भेज] दिया; क्योंकि सभा ने कई बार यह इच्छा [प्रकट] की थी कि उसके सम्बन्ध के लेख, देखने के [लिए] पहले उसके पास भेजे जाया करैं। इस लेख[को] पढ़ कर सभा ने न उसका खण्डन किया; न ह[मसे] कुछ पूँछा; यहाँ तक कि उसे हमको लैटाया [भी] नहीं! उसे उसने इण्डियन प्रेस को भेजा और [लिखा] कि—"सभा सम्बन्ध में जैसे प्रश्नों पर सरस्व[ती में] लेख लिखे जा रहे हैं उनका निश्चय सभा में [होना] चाहिए"। इसके आगे उसने प्रेस के स्वामी [से] कहा कि या तो वे ऐसे "आन्दोलन" को रो[कें या] सरस्वती से सभा का नाम दूर कर दें।

यहां पर हम सभा से यह प्रार्थना करना चाहते हैं कि वह ज़रा हमसे पहले पूँछ तो लेती कि यह लेख हमने सरस्वती में छापने के इरादे से लिखा था या और कहीं। क्योंकि यदि हम उसे अन्यत्र प्रकाशित करते तो सभा को उसके प्रकाशन को रोकने की ज़रूरत ही न रह जाती। अस्तु।

इण्डियन प्रेस ने सभा की चिट्ठी का ख़ूब अच्छी तरह से विचार करके जो उत्तर दिया उसकी नक़ल हम नीचे देते हैं—

"इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद, १३-१-०५

"श्रीयुत मन्त्री महाशय, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी—

"महाशय, आपका पत्र नम्बरी ११३०-१२, ता० २२ जनवरी, १९०५ का मिला।

"सरस्वती के सम्पादक का मत है कि सभा-सम्बन्धी कार्यों की आलोचना सर्वसाधारण की जानकारी से हो, और आपकी इच्छा है कि सभा की कारवाई सर्वसाधारण पर विदित न हो। आपकी और सरस्वती के सम्पादक की राय में हमको इतनाही भेद जान पड़ता है। इस भेद से हमको बड़ा दुःख हुआ।

"सरस्वती के द्वारा हम आप लोगों में भेद करवाना नहीं चाहते। सभा के बहुत से मेम्बरों को यह बात अच्छी तरह मालूम है कि सरस्वती के प्रकाशन से हमारा उद्देश्य हिन्दी साहित्य की कुछ उन्नति करने का है; उससे धनसम्बन्धी लाभ उठाने की आशा हमको कभी नहीं है। जब से वर्त्तमान सम्पादक के हाथ में सरस्वती गई है, तब से लोग उसे अधिक पसन्द करने लगे हैं। क्योंकि अब दिनोदिन उसकी ग्राहकसंख्या बढ़ती जाती है। हम समझते हैं कि अब बहुत शीघ्रही सरस्वती का व्यय उसीके आय से चल जायगा। इस अवस्था में हम यह उचित नहीं समझते कि हम सम्पादक की स्वाधीनता में हस्तक्षेप करें; क्योंकि ऐसा करने से सम्पादक से और हमसे भेद होजाने का भय है। और हमको पूर्ण विश्वास है कि यदि हम उनकी स्वाधीनता छीन लें तो वे सरस्वती का सम्पादन ही छोड़ देंगे। इसीलिए हम सरस्वती के वर्त्तमान प्रबन्ध में गड़बड़ डालना उचित नहीं समझते।

"परन्तु, यदि हम सम्पादक की कारवाई को न रोकें तो आप चाहते हैं कि सरस्वती और सभा का "बन्धन" तोड़ दिया जाय। सरस्वती का जन्म सभा की सहायता से हुआ था। इसीसे हमने सरस्वती के कवर पर अब तक सभा का नाम रहने दिया था। परन्तु अब सभा इस बात को नहीं चाहती, इसलिये हमने मैनेजर को कह दिया है कि सभा का नाम इस मास (जनवरी) की संख्या से, जो आज कल में प्रकाशित होगी, अब और न छापा जाय।

"हिन्दी साहित्य में आपस का झगड़ा बड़ा हानिकारक होगा। इसलिये आप लोगों में यह मतभेद देखकर हमको बहुत दुःख होता है। परन्तु इसमें हमारा कुछ बस नहीं।

"भवदीय

C. M. Ghosh

प्रोप्राइटर, इण्डियन प्रेस।"

सरस्वती के आवरणपृष्ठ से, सभा के अनुमोदन की सूचक सतर, जनवरी से, उठाकर सभा की आज्ञा पालन कर दी गई। सभा के कार्यकर्ता सब समझदार और योग्य हैं। वे जो कुछ करेंगे समझ बूझ कर ही करेंगे। परन्तु हमारी मन्दबुद्धि में यह आता है कि जितने सर्व-साधारण समाज हैं उनको अपनी कारवाई की आलोचना रोकने का कभी यत्न न करना चाहिए। अङ्गरेज़ी गवर्नमेण्ट विदेशी है। पर उसने भी अपने कामों की आलोचना करने का द्वार खोल रक्खा है। खुले ख़ज़ाने, लोग, वाइसराय और प्राइम मिनिस्टर तक के कामों का खण्डन मण्डन करते हैं। इससे गवर्नमेण्ट की उदारता और न्यायनिष्ठा ज़ाहिर होती है। यदि गवर्नमेण्ट यह क़ानून बना दे कि जिसे जो कुछ कहना हो

वह कलेक्टर, कमिश्नर या किसी प्रान्तिक गवर्नर के पास अर्ज़ी लेकर हाज़िर हो, तो प्रजा के असन्तोष और कष्ट का ठिकाना न रहे। प्रबन्ध में गड़बड़ पड़ जाय। पर इस तरह का क़ानून गवर्नमेण्ट ने आज तक नहीं बनाया; बनाने का विचार तक नहीं किया। गवर्नमेण्ट के कामों की जो आलोचनायें होती हैं उनमें से जो तुच्छ समझी जाती हैं वे उपेक्षा की दृष्टि से देखी जाती हैं; जिनके उत्तर की आवश्यकता होती है उनका यथा समय और यथानियम उत्तर दिया जाता है; और यदि किसी आलोचना में कोई बात ग्रहण करने के योग्य होती है तो वह ग्रहण भी करली जाती है। यद्यपि सरस्वती से सभा का अनुमोदन-स्वरूप सम्बन्ध समाप्त हो चुका, तथापि हमारी अब भी यही आन्तरिक इच्छा है कि वह अपने कार्य्यों की आलोचनाओं के विषय में उदार भाव धारण करे, क्योंकि जो अपने विषय की चर्चा को रोकने की चेष्टा करता है वह माने उस चर्चा को और भी अधिक उत्तेजित करता है। और, इस समय, इतने समाचार पत्र और मासिक पुस्तकें जारी हैं कि इस प्रकार की चेष्टा करना ही व्यर्थ है।

सभा हिन्दी जाननेवालों के आदर की चीज़ है। उसके "अनुमोदन" वाली सतर को बहुत कुछ समझ कर ही सरस्वती ने सादर सिर पर रक्खा था। पर वह सभा की चीज़ थी। उसे उसने ले लिया। परन्तु सरस्वती के प्रकाशन में मध्यप्रदेश, युक्तप्रदेश, मध्यभारत, राजपूताना, बिहार और पञ्जाब के सिवा बंगाल और मदरास प्रान्तों तक के सज्जनों का जो अनुमोदन है वह उसके हर पृष्ठ में, अलक्ष्य रूपसे, अभी तक बना हुआ है। और जब तक सरस्वती में वह सामग्री है जिसकी प्रेरणा से उसे यह विशेष व्यापक और सर्वथा अप्रार्थित अनुमोदन मिला है, तब तक उसके छिन जाने का डर भी नहीं है। अपनी विपन्न मातृ-भाषा पर इन अनुमोदन-कर्ताओं की जो प्रीति है, ईश्वर, उसकी उत्तरोत्तर वृद्धि करता जाय, जिसमें, उस वृद्धि के साथ ही उनके हृदय में सरस्वती-सम्बन्धिनी प्रीति का उद्रे[क] भी बढ़ता जाय।

जब दो मित्र एक दूसरे से अलग होते हैं त[ब] कई प्रकार के सात्विक भावों का उदय हो आता है। अनुमोदन के रूप में सभा और सरस्वती [का] पाँच वर्ष तक सम्बन्ध रहा। इतने दिनों बाद [ग]त मास में उसकी समाप्ति हुई। हम नहीं कह सक[ते] कि, इस कारण, सभा के मन में कोई भावनायें हुईं या नहीं; और जो हुईं तो कैसी हुईं। प[र] सरस्वती के मन में ठीक उसी तरह की भावनायें हुई हैं जिनका वर्णन अनीस कवि ने अपने एक प[द्य] में किया है। उसी पद्य को नीचे प्रकाशित करके आशीर्वाद देती हुई, काशी की नागरीप्रचारि[णी] सभा से सरस्वती प्रेमपुरःसर बिदा होती है—

> सुनिये विटप वर पुहुप तिहारे हम;
> राखिहौ हमैं जो, शोभा रावरी बढ़ावैंगे।
> तजिहौ कदाचित तो बिलगु न मानैं कछू;
> जहां जहां जैहैं तहां दूनो जस छावैंगे॥
> सुरनि चढ़ैंगे, नरसिरनि चढ़ैंगे सदा,
> सुकवि अनीस हाट बाटनि बिकावैंगे।
> देस में रहैंगे, परदेस में रहैंगे काहू,
> भेस में रहैंगे तऊ रावरे कहावैंगे॥

बम्बई में "भारत-महिला-परिषद्"

देश की उन्नति दो प्रकार के सुधारों [पर] अवलम्बित है। एक राजनै[तिक] सुधार; दूसरे सामाजिक। [जब] तक समाज की दशा उन्नत [नहीं] होती तब तक राजनैतिक सु[धार] की सम्भावना नहीं हो सकती। क्योंकि सम[ाज] भिन्न भिन्न लोगों का समूह है। यदि वे अशि[क्षित] हैं, तो समाज स्वस्थ नहीं कही जा सकती।

मुझको खेद के साथ लिखना पड़ता है कि [आ]ज की और इस प्रान्त की स्त्रियों में आकाशपाता[ल]

अन्तर है। इसका कारण केवल शिक्षा का अभाव है। क्योंकि बम्बई प्रान्त भी भारतवर्ष का ही एक भाग है। और वहां की स्त्रियां इस तरफ़ की स्त्रियों से, बुद्धि में, स्वभावतः, किसी भांति बढ़ कर नहीं हैं। खेद का विषय है कि हमारे विद्वान् भाई कानफ़्रेंस और कांग्रेस के चबूतरे पर चढ़कर बड़े बड़े व्याख्यान देते हैं। परन्तु, वास्तव में, उनके घरों में अन्धकार छाया रहता है। जब हमारा ध्यान इस प्रान्त की स्त्रियों की तरफ़ आकर्षित होता है, तब यह बात सहजही ध्यान में आ जाती है कि हमारे भाई स्त्री-शिक्षा की तरफ़ कितना उद्योग करते हैं। बम्बई प्रान्तके सज्जन अपनी विद्वत्ता तथा स्वदेशभक्ति को केवल चबूतरे ही पर नहीं दिखाते; किन्तु अपने घर में (जो यथार्थ में सुधार करने का सच्चा चबूतरा है) उसका बर्ताव भी करते हैं। आज, यहां पर, मैं यह दिखाना चाहती हूं कि बम्बई की स्त्रियों ने कितनी उन्नति की है। इसका नमूना मुझे वहां हाल ही में देखने में आया। जो सज्जन, इस दफ़ा, यहां से कांग्रेस के डेलीगेट अथवा दर्शक बनकर बम्बई गये होंगे उन्होंने यह देखा होगा कि सूचीकार्य और चित्रकारी में वहां कितनी उन्नति हुई है। और किस नियम, किस सुघराई और किस योग्यता से वहां वे पदार्थ प्रदर्शनी में रक्खे गये थे जिनका प्रबन्ध श्रीमती मिस पटुक ने किया था। यह सब कुछ तो था ही, परन्तु समाज-सुधार के लिये स्त्रियों ने जो किया उसका सारांश लिखना ही इस लेख का अभिप्राय है। यद्यपि बम्बई में लेडीज़ असोसिएशन (Ladies' Association) बहुत काल से है और वहां की स्त्रियां सामाजिक तथा मानसिक उन्नति के उपाय हमेशा ही सोचा करती हैं; तथापि यह सभा, अर्थात् महिला-परिषद, इस देश की सभी स्त्रियों के लिये थी।

दिनके ग्यारह बजे के पहले ही से स्त्रियों का आगमन आरम्भ हो गया। और बारह बजे तक फरामजी कावसजी इन्सटिट्यूट में लगभग ७-८ सौ स्त्रियां इकट्ठी हो गईं। उनका स्वागत, द्वार पर, श्रीमती लक्ष्मीबाई चन्दावरकर तथा श्रीमती विद्या-गौरी रमणभाई, बी० ए०, ने बड़े आदर से किया। कारवाई बारह बजे आरम्भ हुई। ईश्वर-स्तुतिके कई एक गीत गुजराती तथा मराठी में गाये गये। श्रीमान तैयबजी की कन्याओं ने हिन्दुस्तानी में गीत गाया और वीणा बजाया। लेडी भालचन्द्र स्वागत कमिटी की अध्यक्ष और २१ स्त्रियां सभासद थीं। सबकी तरफ़ से लेडी भालचन्द्र ने आगत स्त्रियों का सत्कार करके सभा का प्रयोजन, थोड़े शब्दों में, वर्णन किया। फिर श्रीमती लक्ष्मीबाई चन्दावरकर तथा मिसेज़ तैयबजी के प्रस्ताव तथा अनुमोदन से श्रीमती रमाबाई रानडे ने महान आनन्दध्वनि के साथ सभापति का आसन ग्रहण किया। तदुपरान्त श्रीमती ने मराठी भाषा में अत्यन्त मधुर स्वर से अपना व्याख्यान आरम्भ किया। उसे आपने बड़ी धीरता तथा समभाव से आदि से अन्त तक निबाहा। उनके व्याख्यान का सारांश मैं नीचे देती हूं—

"आज कोई चार वर्ष बाद मैं आप लोगों के सम्मुख उपस्थित हुई हूं। मेरी पहली और आज की स्थिति में आकाश पाताल का अन्तर है। इसी लिये वही बम्बई, वही स्थान और वही आप मुझे नई सी प्रतीत होती हो। जिस प्रेममय पवित्र सहवास में मेरे २७ वर्ष बीते हैं; उसके वियोग में मुझे अपना दुःख रोना उचित नहीं है। दैवेच्छा से जो स्थिति मुझे प्राप्त हुई है उसे अङ्गीकार करके उन्हीं चरण-कमलों का ध्यान करते हुए, विवेक-सहित, अपने कर्तव्य-कर्म में तत्पर रहना ही मुझे उचित था। परन्तु अत्यन्त खेद से कहना पड़ता है कि मुझ में इतना सामर्थ्य नहीं है। आप निरन्तर उपदेश किया करते थे कि "सुख दुःख शरीर के भोग तथा मन के विकार हैं। उनको महत्व न देना और प्रत्येक को अपने कर्तव्य में दक्ष रखना ही शरीर को सार्थक करना है" और इसी उपदेश के अनुसार आपका बर्ताव भी था। निद्रारहित रातें बीत जाती थीं। शारीरिक पीड़ा होने पर भी, कर्तव्य कर्म आ जाने से, वे सब भूल जाते थे। कर्तव्य तथा उद्योग पर आपको अत्यन्त प्रीति थी। ऐसे सत्सङ्ग

का लाभ मिलने पर भी उस दैवी गुण का अल्प अंश भी मुझमें न आया, यह मुझे खेदपूर्वक स्वीकार करना पड़ता है। नहीं तो क्या जिस महान कार्य के करने में मैंने अठारह वर्ष तक तन मन धन से अविश्रान्त श्रम किया, वही कार्य करने के लिए, यह प्रसंग प्राप्त होने पर भी, मुझे आपकी तरफ़ से निमंत्रण की आवश्यकता होती और गुरुवर भांडारकर को आग्रह करने के लिये श्रम उठाना पड़ता? चाहे जो हो, आज मैं आपके सामने खड़ी हूं। न मैं विदुषी हूं और न मैं इस परिषद् का अध्यक्ष होने के योग्य ही हूं। परन्तु आपने जिस हेतु की प्रेरणा से मुझे यह सम्मान दिया है उसको मैं असाधारण भूषण मानती हूं। और उसके लिये मैं आपकी बड़ी कृतज्ञ हूं।

"देश के भिन्न भिन्न भागों से आई हुई सब बहनों को आज यहां पर उपस्थित देख मुझे बड़ा आनन्द हुआ है। अभी तक हम में से कोई कोई स्त्रियां सामाजिक सभाओं में उपस्थित हो कर वहीं बोलती थीं। अठारह वर्ष तक ऐसा ही बर्ताव रहा। आज हमको यहां निराले में एकत्र होने का क्या प्रयोजन है? इस नई प्रवृत्ति से किस फलप्राप्ति की हमको आशा है? ये प्रश्न विचारने योग्य हैं। हमारे देश में शिक्षा का प्रचार हो चला है। बहुत सी स्त्रियां सुशिक्षित भी हो गई हैं। कई एक शहरों में स्त्री-समाज भी स्थापित हो गये हैं। सामाजिक उत्सवों में हमको अपने विचार प्रगट करने के लिये उत्तेजन भी दिया जाता है। इस पर भी ऐसे उत्सवों में उपस्थित स्त्रियों की संख्या कम क्यों होती है? इसका एक कारण है। रीति भली हो या बुरी, परन्तु हमारे देश में तीन चतुर्थांश परदे में रहनेवाली स्त्रियों का है। पुरुषों की सभा में उनका आना असम्भव सा है। इसलिए उनके विचार जानना आवश्यक है। बाक़ी, एक चतुर्थांश को सब स्त्रियों की तरफ़ से बोलने का उत्तरदायी होना बड़े साहस का काम है। तो क्या हमारी परदानशीन स्त्रियों को अपने विचार प्रकट करने के लिये किसी स्थान की आवश्यकता नहीं है? नहीं, अवश्य है, और इसीलिए यह सभा की गई है। हममें से जो परदे में नहीं रहती हैं उनमें से भी खुले दिल पुरुषों में बोल सकनेवाली बहुत थोड़ी हैं। हमारी प्रकृति स्वभाव से ही लज्जाशीला है। हम बोलने का चाहें जितना साहस करें, तो भी पूरी सफलता हमें नहीं हो सकती। कारण यह है कि हमको शिक्षा ही ऐसी मिली है; और घर में बड़ी बूढ़ियों के आचार विचार का मन पर प्रभाव ही ऐसा पड़ा है।

"बहुत सी रीतियां ऐसी हैं जो किसी समय अनुकूल थीं; पर अब वे उपयोगी नहीं हैं। फिर पर भी उनको छोड़ देना कठिन जान पड़ता है और यद्यपि कठिन न भी हो, तथापि छोड़ने में समय लगेगा। पर क्या हम पुरुषों के बीच अनेक विषय में वाद विवाद कर सकती हैं? नहीं, हमारा स्वभाव ही ऐसा नहीं। हमारे यहां अनेक कुरीतियां प्रसूति-विषयक हैं, जिससे अनेक स्त्रियां अकाल-वृद्ध और आजन्म रोगी हो जाती हैं। कुरीतियों को दिखलाने के लिए ऐसी ऐसी सभा की आवश्यकता है। इससे बोलने का अभ्यास होगा। और यह आशा की जाती है कि ज्ञान प्रसार तथा स्नेह की वृद्धि के लिए भी ऐसी सभा एक अच्छा साधन होंगी। हममें से जिनको विद्या से प्रेम है, उनको चाहिए कि अपनी अशिक्षित बहनों को, सीधी तथा रोज़मर्रः की बोल चाल की भाषा में, अपने जाने हुए विषयों को समझा दें। ऐसा करें तो बहुत अच्छा हो। जब दो चार स्त्रियां मिलती हैं तब अपने सुख दुःख इत्यादि की बातें एक दूसरे से कहती हैं। उसी तरह, अपने देश की भिन्न भिन्न भाँति सम्बन्धी विचार, हम, स्त्रियों की सभा में सकुच छोड़कर कह सकती हैं। हममें क्या दोष हैं, उनका किस उपाय से दूर होना सम्भव है; अन्य जातियों में क्या क्या गुण हैं; उनको किस तरह हम पा सकती हैं। ये विषय बड़े आवश्यक हैं; क्योंकि इससे समाज का कल्याण होना सम्भव है और हमारे चित्त के भावों के उदार होने से हृदय का विकाश होना भी सम्भव है।

"जैसे कुटुम्ब का कल्याण स्त्री-पुरुष दोनें की बुद्धिमानी पर, तथा एकमत होकर श्रम करने पर, स्थिर है, वैसेही देश के कल्याण की बात भी है। जब स्त्री-पुरुष दोनों प्रयत्न करेंगे तभी देश का कल्याण होगा। इसलिए स्त्रियों का सुशिक्षित होना और उनके विचारों का विकाश होना आवश्यक है। आज अठारह वर्ष से बड़े बड़े महात्मा परिश्रम कर रहे हैं। उनका श्रम कहां तक सफल हुआ है यह विचार करना भावी इतिहासकारों का काम है। परन्तु यह अवश्य है कि स्त्रियों का, अपनी उन्नति तथा स्वतन्त्र विचार करने के लिए, यह सभा करना उन्हीं महात्माओं के परिश्रम का फल है।

"कोई शायद यह कहे कि ऐसी सभाओं से परदे का, घटने के बदले, बढ़ जाना सम्भव है। परन्तु विचार करने से इसमें विशेष सत्यता प्रतीत न होगी। क्योंकि परदे के भीतर भी ज्ञान की वृद्धि होने से हानि के बदले लाभही होगा। और इस रीति से हमारे आन्तरिक विचार अच्छे होने से बाहर के परदे का महत्व आपही आप घट जायगा। ऐसी सभाओं से परदे का विशेष सम्बन्ध भी नहीं है। क्योंकि जिन देशों में परदा बिलकुल नहीं है वहां पर भी स्त्रियों को सभायें होती हैं। उनमें केवल स्त्रीसम्बन्धी विषयों पर ही चर्चा होती है।

"इस सभा का उद्देश क्या होना चाहिये, क्या क्या काम करना चाहिये और किन किन विषयों पर भाषण होना चाहिये—यह काम अनेक सुशिक्षित तथा अनुभवी लोगों का है। मेरा नहीं। इसलिए इन बातों को छोड़ कर और जो कुछ कहना मुझे उचित जान पड़ता है उसे मैं थोड़े में कहती हूं।

"पुराने समय की स्त्रियां क्या क्या काम करती थीं; अब हमारी स्थिति कितनी बदल गई है; हमारी बुद्धि में क्या क्या बातें बुरी जँचने लगी हैं; इन विषयों पर विचार करना उचित है। पुराने समय की स्त्रियों का जीवनक्रम कैसा था, यह हममें से बड़ी बूढ़ियों को अच्छी तरह मालूम होगा। इचल-करञ्जी के वर्तमान राजा के दादा की दादी नियमानुसार नित्य प्रातःकाल उठकर पञ्चगङ्गा स्नान को जाती थीं। वहां से लौटते समय, रास्ते में, अपने गांव के ग़रीबों के घर जाकर, जो कोई बीमार होता था उसकी आप कुशलता पूछती थीं। यदि किसीको प्रसूति की पीड़ा होती थी तो जाति पाँति का विचार न कर आप उसकी मदद करती थीं। इसी तरह अनेक प्रकार से भोजन, वस्त्र और ओषधि इत्यादि से दुखियों की आप सहायता करती थीं। मध्यान्ह में वे स्त्रियों को धर्म-पुस्तकें सुनातीं और उनका तात्पर्य भी समझाती थीं। उनका जीवन-क्रम ऐसा ही था। सत्कर्म और परोपकार में रानी और धनी स्त्रियों का ही अधिकार है, यह ठीक नहीं। मध्यम वृत्ति की स्त्रियां भी ये बातें करती हुई देखी गई हैं। दूसरे के दुःख से दुःखित होना नारिजाति का स्वभाव ही है। इस को सब तरह उत्तेजित करना ही हमारा धर्म है। प्राचीन काल से जो हमारी प्रथा चली आई है हमें उसको चिरस्थायी रखना चाहिए। शहर की दो चार वयस्क स्त्रियों को महीने में एक आध बार अपने शहर के अस्पतालों में जाकर रोगियों को देख भाल आना चाहिए, और वहां पर जिस बात की कमी हो उसके हटाने का प्रयत्न भी करना चाहिए। यह हमारे लिए कोई नई बात नहीं है। केवल पुरानी प्रथा का अनुकरण ही है।

दूसरा काम कन्या-पाठशालाओं की देख-भाल करना है। हर गाँव और हर शहर में कन्या-पाठशालाओं की आवश्यकता है। परन्तु इन पाठशालाओं की तरफ़ जो हमारा कर्तव्य है उसको हम कहां तक निबाहती हैं, इसका भी विचार करना चाहिए। हमको महीने में एक दो बार इन पाठशालाओं को देखना चाहिए और वहां के प्रबन्ध इत्यादि में जो त्रुटि हो उसके संशोधन का उपाय करना चाहिए। कन्याओं को अल्प वय में सुसराल जाना पड़ता है। इससे शिक्षा को हानि पहुंचती है। परन्तु उसके साथ हमारे घर बहुयें भी तो आती हैं। यदि उनकी उम्र पाठशाला जाने योग्य हो तो उनको उचित शिक्षा देना हमारा धर्म है।

आज कल हमारे लड़के बड़ी बड़ी परीक्षायें पास करते हैं। विज्ञान तथा साहित्य की तरफ़ उनका चित्त अधिक आकृष्ट रहता है। इसलिए स्वभाव से ही वे यह चाहते हैं कि उनकी स्त्रियां भी सुशिक्षित हों। परन्तु न होने से उनके चित्त में नैराश्य उत्पन्न होता है। और माता तथा पत्नी का जैसा आदर उन्हें करना चाहिए वैसा वे नहीं करते।

अस्पताल और पाठशालाओं की देख-भाल से बढ़कर अनाथ बालक और स्त्रियों की तरफ़ भी हमको ध्यान देना चाहिए। यह काम विशेष गौरव का है। प्लेग तथा अकाल से अनेक बालक तथा स्त्रियां अनाथ हो गई हैं। इनमें कोमल वय की बालविधवाओं को सहायता दूसरे प्रकार से करनी चाहिए। परन्तु जिन स्त्रियों की उम्र कुछ अधिक है और जिनके बालक भी हैं, वे बाहर जाकर अपने निर्वाह के लिए कोई काम नहीं कर सकती हैं। उनको बालकों की सेवा के बाद जो समय मिले उसमें सीना पिरोना इत्यादि कामों में नियुक्त करना चाहिये। और कुछ नक़द रुपयों से मदद भी करनी चाहिए। वस्त्र-दान की योजना हो तो और भी उत्तम है।

जिन अनाथ बालिकाओं की दशा विशेष शोचनीय है; जिनको आशा का अङ्कुर सूख गया है; जिन बेचारियों का जन्म व्यर्थ हो गया है; तथा समाज में जिनका आदर नहीं रहा—उनको हमें यह बतलाना चाहिए कि किस तरह से उनका जीवन सफल होगा। इन बालिकाओं के लिए अध्यापक कर्वे ने पूना में "अनाथ-विधवाश्रम" खोला है। वहां पर ३०-३५ लड़कियां शिक्षा पाती हैं। उनके चित्त में ज्ञान के साथ धर्म तथा स्वार्थ-त्याग उत्पन्न करने के लिए विशेष उद्योग किया जाता है। यह हर्ष की बात है।

अपने देश की बहनों के कल्याण के लिए कोई काम करने में बड़ा गौरव है। यह बात इन बालिकाओं को समझाना चाहिए और अपना धर्म समझकर उनसे यह काम कराना चाहिए। "सिस्टर्स" (Sisters) नामवाली स्त्रियां पाश्चात्य देशों से इस देश में आती हैं। वे अपने माता पिता और घर द्वा छोड़ कर, आजन्म कुमारी रहने तथा स्वार्थ त्याग व्रत धारण करके सारी उम्र परोपकार और प मार्थ में बिताने का प्रण करती हैं। उसीका उदा रण लेकर अपने आश्रम की बालिकाओं को दे अच्छे काम के लिये तैयार करना ही अध्याप कर्वेकी आकांक्षा है। उसीके अनुसार आश्रम शिक्षा दी जाती है। अन्धे, बहरे तथा और गूं की शालाओं का, निराश्रित वृद्ध और अपाहि के आश्रमों तथा दूसरों के घर जा जा कर शि देने इत्यादि के समान छोटे छोटे काम यदि बालिकाओं को दिये जायँ तो वे उन्हें प्रेम से क ऐसे पुण्य कार्य में सहायता देना हमारा परम धर्म

इससे स्पष्ट है कि यदि हम करना चाहें बहुत कुछ कर सकती हैं। इस लिये आलस छो उद्योगशीलता ग्रहण कर, परोपकार और शीलता से प्रेरित हो कर, आज तक स्त्री और दोनों का कल्याण सोचते सोचते थके हुये ह पुरुषों को, प्रेमपूर्वक, एक मत होकर, सब में हमें सहायता देना ही उचित है। चारों आ में गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता विशेष है। वह श्रे केवल अच्छी स्त्री के ही कारण है। इसलिए श्रेष्ठता तथा गौरव को चिरस्थायी रखने के प्रत्येक स्त्री को सावधान रहना चाहिये; प्र स्त्री को परोपकार का ध्यान रखना चाहिये; प्रत्येक स्त्री को सुशिक्षित होकर समाज का कल करने में सहायक होना चाहिए।

श्रीमती रमाबाई का व्याख्यान पूरा हो के बाद कुमारी शीरीन कावराजी ने श्रीमती कर्ज़न के असाध्य रोग से मुक्त हो जाने पर प्रकट करने का प्रस्ताव किया, जिसका अनु सौभाग्यवती धनकुंवरबाई पुरुषोत्तमदास ने इसके पश्चात् विशेष आनन्द-प्रदर्शन किया अनन्तर सौभाग्यवती तथा कुमारी स्त्रियों ने गु और मराठी में भाषण किये जिनमें से मुख्य स्त्रियों के नाम मैं नीचे देती हूं—
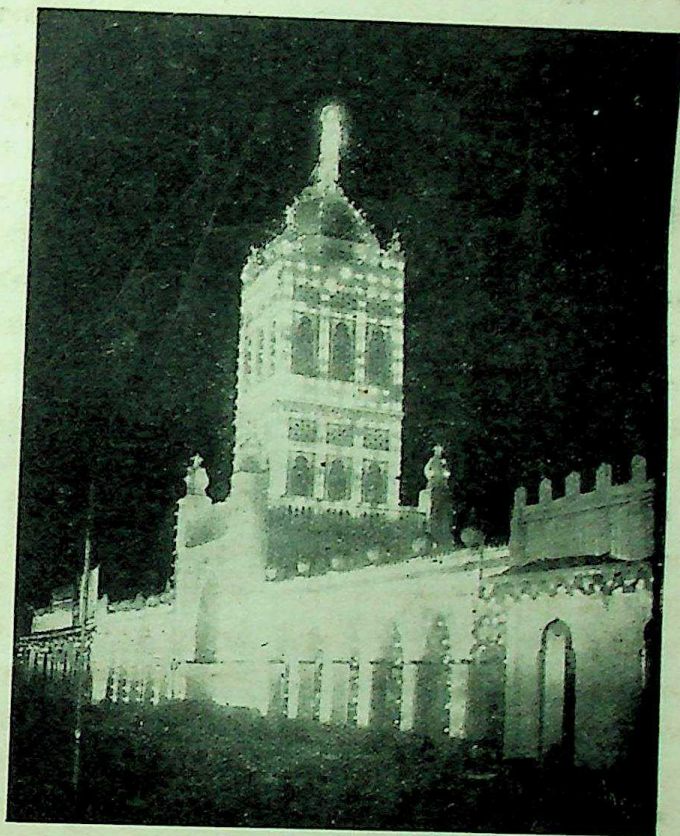
विजली की रोशनी से प्रकाशित प्रदर्शनी के मुख्य-द्वार का दृश्य (रात्रि के समय)

स्त्रियों की कला कुशलता के विभाग का चित्र
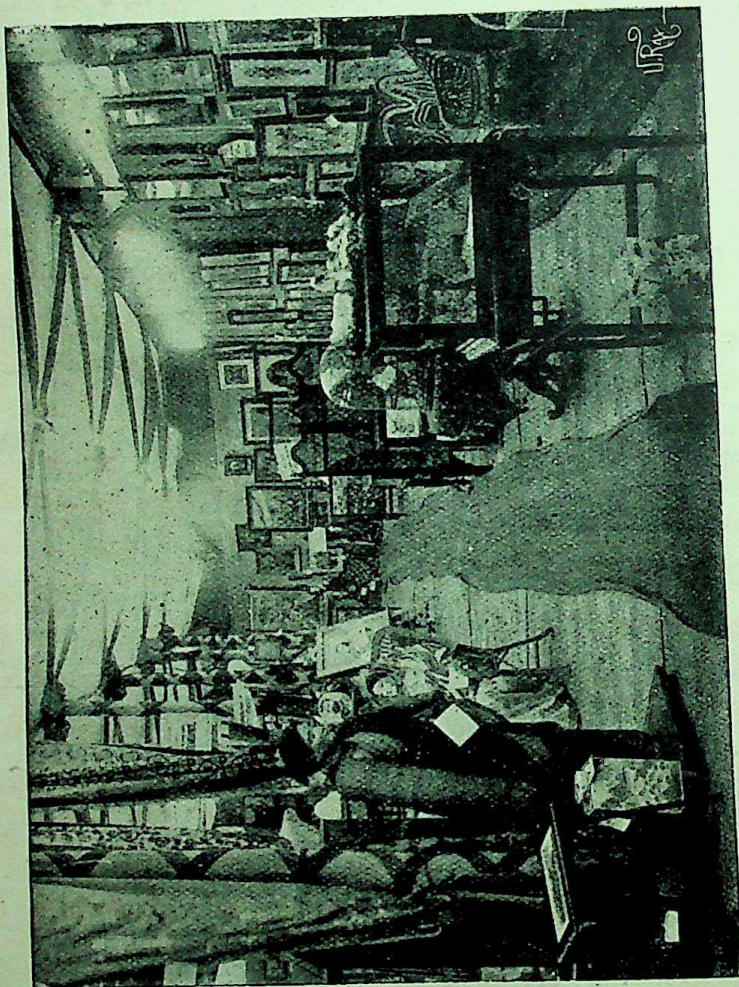
नाम	विषय	भाषा
मिसेज़ अब्बास तैयबजी	स्त्री शिक्षा	उर्दू
सौभाग्यवती विद्या गौरी रमण-भाई, बी० ए०	,,	गुजराती
,, सरस्वती मणीलाल	,,	,,
कुमारी काशीबाई नवरंगे, बी० ए०	,,	मराठी
सौ० वेणुताई नामजोशी	परोपकार	मराठी
,, शारदा सुमन्त, बी०ए०	,,	गुजराती
,, अंबाबाई खांडवाला	,,	,,
,, रतनबाई लक्ष्मीदास	,,	,,
,, प्रियंवदा दिवाटिका	,,	,,
,, उमाबाई केलकर	अनाथालयों की दशा तथा उनके सुधार	मराठी
,, सेवतीबाई निकांबे	शहर तथा गांव में प्राथमिक शिक्षा के लिये पाठशालाओं की आवश्यकता	मराठी
,, काशीबाई कानिटकर	विधवाओं को शिक्षक तथा दाई बनाने के सरल उपाय	मराठी
,, पार्वतीबाई आठावाले	बालविवाह और उसके अनिष्ट परिणाम	मराठी
,, धनकुंवरबाई पुरुषोत्तमदास	,,	गुजराती
कुमारी मथुराबाई जोशी	कुलव्यवहार तथा नये विचारों में मेल करने के उपाय	मराठी
डा० कृष्णाबाई केलवकर, बी० ए०, एल० एम० एस०,	स्त्रियों की आरोग्यता-सम्बन्धी-योजना	मराठी
सौ० तापीबाई मोतीवाला	,,	गुजराती
,, रखमाबाई केलवकर	बालकों का पालन पोषण	मराठी

इसके बाद भारतवर्ष की सुविख्यात कवि सौभाग्यवती सरोजनी नाइडू ने निज-रचित कविता "टू इण्डिया" (To India) अर्थात् "हिन्दुस्तान को" अङ्गरेज़ी में पढ़ी। तदुपरान्त सभापति को हर्ष-पूर्वक धन्यवाद देकर सभा विसर्जन की गई।

रामदुलारी दुबे।

बम्बई की प्रदर्शनी।

कांग्रेस का मण्डप।

कांग्रेस का बीसवां अधिवेशन गत दिसम्बर मास के अन्तिम सप्ताह में बम्बई में हुआ। उसी के मण्डप का चित्र इस संख्या में दिया जाता है। मण्डप का व्यास ५०० × ४०० फ़ुट है। इसमें बारह दरवाज़े हैं। मुख्य द्वार उत्तर की ओर है। इसके तैयार करने में बीस हज़ार से अधिक रुपये खर्च हुए हैं। मण्डप की रचना जैसी मनोहर थी, वैसी ही उसमें लोगों की ठसाठस भीड़ थी। ८०० से अधिक प्रतिनिधि थे, २०० के लगभग स्त्रियां थीं और १०००० प्रेक्षक जन थे। यथार्थ में मण्डप की शोभा और स्वदेशाभिमानी भारतवासियों का उत्साह प्रशंसनीय था।

प्रदर्शनी।

कई दिनों से लोग इस बात की चर्चा कर रहे हैं कि बम्बई में एक अजीब प्रदर्शनी हुई थी। प्रदर्शनी क्या, वह प्रत्यक्ष मय-सभा ही थी! पहले तो इस देश में बम्बई एक अपूर्व शहर है। उसमें समुद्र के किनारे, ओवल नाम के सुप्रसिद्ध मैदान में, प्रदर्शनी के लिये स्थान दिया गया, और उसके तैयार करने में खानबहादुर मर्ज़बान तथा आनरेबल मि० विठ्ठलदास दामोदरदास ठाकरसी जैसे कार्यकुशल लोगों ने परिश्रम किया। फिर उसकी शोभा और उपयुक्तता की बात ही क्या कही जाय!

पूर्व-इतिहास।

पाठकों को यह बात विदित होगी कि यह प्रदर्शनी कांग्रेस की ओर से की गई थी। यूरोप में औद्योगिक उन्नति का आरम्भ प्रदर्शनियों से हुआ है। इसी प्रथा का अवलम्ब करके कांग्रेस ने भी इस देश में प्रतिवर्ष प्रदर्शनी करना आरम्भ किया है। हर्ष की बात है कि हमारे मुखियाओं का ध्यान देश की औद्योगिक स्थिति की ओर गया है। कांग्रेस की पहली प्रदर्शनी सन् १९०१ ई० में

कलकत्ते में हुई थी। उस समय कूचबिहार के महाराजा प्रेसिडेण्ट थे। दूसरी प्रदर्शनी सन् १९०२ में अहमदाबाद में हुई। उसको बड़ौदा के विद्वान् तथा देशहितैषी महाराजा श्रीमान् सयाजीराव ने खोला था। तीसरी प्रदर्शनी सन् १९०३ में मद्रास में हुई। मैसोर के महाराजा उसके अध्यक्ष थे। गत १९०४ के दिसम्बर में बम्बई में लार्ड लैमिंग्टन महोदय ने जिस प्रदर्शनी को खोला वह कांग्रेस की चौथी प्रदर्शनी है। यह सबसे अधिक रमणीय, शोभास्पद, विस्तृत और शिक्षादायक हुई है।

हेतु और लाभ।

प्रदर्शनी से यह लाभ है कि देश के व्यापार, कृषि, कलाकुशलता आदि भिन्न भिन्न उद्योगों में कितनी उन्नति हुई है और अब किस प्रकार अधिक उन्नति की जा सकती है, इस विषय का विचार जागृत हो कर लोगों के मन में कुछ उद्योग करने के लिये उत्साह उत्पन्न होता है। बम्बई की प्रदर्शन-कमेटी के चेअरमन (सभापति) मि॰ ठाकरसी ने कहा है कि "इस प्रदर्शनी का उद्देश्य यह है कि सब लोगों को भारतवर्ष के कारख़ाने, उद्योग और कला-कुशलता आदि का नमूना दिखलाया जाय। इसी के साथ अन्यान्य देशों की कारीगरी भी प्रदर्शित की जाय। इससे हमारे कारीगरों को नये नये नमूने दिखाई देंगे। वे अपने प्रचलित कारख़ानों की उन्नति करने के लिये उत्तेजित होंगे, और अन्य लोग भी कुछ न कुछ ज्ञान अवश्य प्राप्त करेंगे।" यथार्थ में प्रदर्शनी को उद्योग-शिक्षा की शाला ही कहना चाहिये।

रचना।

ऊपर लिखा गया है कि प्रदर्शनी का स्थान समुद्र के किनारे ओवल नामके मैदान में है। इस के सामने सेक्रेटेरियट की, यूनिवर्सिटी (राजाबाई) टावर की और हाईकोर्ट की इमारतें हैं। प्रदर्शनी में भिन्न भिन्न पदार्थों को व्यवस्थित रीति से रखने के लिये भिन्न भिन्न स्थान (कोर्ट) बनाये गये हैं। प्रदर्शनी की भूमि लम्बवर्तुलाकार है, और उसका विस्तार २००० फ़ुट लम्बा और ६०० फ़ुट चौ[ड़ा] है। इसमें छोटी बड़ी सौ इमारतें बनी हुई हैं जि[न] में भांति भांति के पदार्थ रक्खे गये हैं। दूकानें [भी] बहुत सी लगी हुई हैं। उनके असंख्य पदार्थों [के] अतिरिक्त अनुमान १००० लोगों के द्वारा दो ला[ख] से अधिक पदार्थ प्रदर्शित किये गये हैं। प्रदर्श[नी] का मुख्य द्वार ठीक राजाबाई टावर के सामने ब[ना] हुआ है। इस द्वार में जालीदार नक़्शा का काम कर[के] सुन्दर मेहराबें बनाई गई हैं। रात के समय य[हां] बिजली की रोशनी की जाती है। उसकी अनुप[म] शोभा का वर्णन हम शब्दों में नहीं कर सकते। हम उसका एक चित्र ही यहां प्रकाशित कर दे[ते] हैं। पाठक, इस अद्भुत दृश्य को ओर अवश्य देखि[ये]। जिस प्रदर्शनी के द्वार ही का वर्णन करने में हमा[री] लेखनी असमर्थ है, उसकी सम्पूर्ण रचना, विस्त[ार] और पदार्थों का वर्णन कैसे किया जा सकता है?

दर्शक जब प्रदर्शनी के मुख्य द्वार पर प[हुं]चता है तब वह उसके अद्भुत विस्तार को दे[ख] कर ऐसा विस्मित हो जाता है कि वह इस ब[ात] का निर्णय ही नहीं कर सकता कि मैं यहां [क्या] देखूं और किधर से देखना आरम्भ करूं। ठ[ीक] यही दशा इस समय हमारे मन की है। प्रदर्श[नी] के अगणित पदार्थों का यथोचित वर्णन कि[स] प्रकार किया जाय? यदि हम प्रत्येक पदार्थ [का] वर्णन यथाक्रम लिखें तो सरस्वती में स्थान ही न [मिल] दिया जायगा; और यदि संक्षेप में वर्णन करें [तो] बहुत सी बातें छूट जायँगी। अतएव हम प्र[थम] प्रदर्शनी के मुख्य मुख्य भागों तथा वहां के प्रदर्शि[त] मुख्य मुख्य पदार्थों का नाम-निर्देश करके [उन] विशेष भागों ही का वर्णन करेंगे। इससे पढ़नेवा[लों] को प्रदर्शनी की कल्पना भली भांति हो सकेगी।

विभाग और वर्णन।

यदि दर्शक प्रदर्शनी के मुख्यद्वार पर पहुंच[कर] अपनी दाहनी ओर से प्रदर्शनी की लम्ब-वर्तुला[कार] भूमि की प्रदक्षिणा करे तो उसको मुख्य मुख्य जो [विभाग] दिखाई देंगे उनका संक्षिप्त वर्णन नीचे लिखा जाता [है]।

१—खनिज पदार्थ।

यहां भिन्न भिन्न धातु जैसे लोहा, पीतल, कांसा, तांबा, सीसा आदि के बने हुए पदार्थों का संग्रह है। यहां सोने की कसौटी का एक कांटा है। उससे सोने का वज़न मालूम हो जाता है और यह भी मालूम हो जाता है कि असल सोना कितना है और मिलावट कितनी है। यह कांटा अमृतसर के एक कारीगर का बनाया हुआ है।

२—वनस्पति-संग्रह।

यहां वनस्पति के बने हुए खाने पीने के पदार्थ हैं। इस जगह लकड़ी का एक कटघरा है। उसमें शक्कर का बना हुआ ३० मन का एक सिंह है। उस पर इस प्रकार से रङ्ग दिया गया है कि दर्शकों को वह जीते सिंह की तरह दिखाई देता है। इसी के पास शक्कर का एक महादेव का मन्दिर भी देखने लायक़ है।

३—बम्बई के आर्टस्कूल का मण्डप।

विद्यार्थियों को धातु, लकड़ी आदि की जो कारीगरी सिखलाई जाती है उसीके नमूने इसमें रक्खे हुए हैं। यह मण्डप ताजमहल के नमूने का है और उसे आर्टस्कूल के विद्यार्थियों ने ही बनाया है। इसीके पास अन्धों की एक शाला है।

४—बेसिल मिशन का ईंटों का घर।

मङ्गलोर की ईंटें, खप्पर, मिट्टी के बर्तन आदि प्रसिद्ध हैं। इस घर में इन्हीं पदार्थों के नमूने प्रदर्शित किये गये हैं।

५—विक्टोरिया टेक्निकल इन्स्टिट्यूट का कोर्ट।

इसको इन्स्टिट्यूट के विद्यार्थियों ने ही तैयार किया है और इसमें उन्हींके बनाये हुए पदार्थों के नमूने रक्खे हैं।

६—बम्बई के आदमजी पीरभाई के कारख़ाने में जो डेरे बनते हैं उनका नमूना दिखलाने के लिये एक ७२००० रुपये का सजा सजाया डेरा यहां लगा हुआ है।

७—जुलाहों का कारख़ाना।

यहां सूरत के अनाथालय और अहमदनगर के मिशनस्कूल के बालक करघों पर काम करते हुए दिखाई देते हैं। बालकों की उम्र ७-८ वर्ष से अधिक नहीं है।

८—यन्त्रों और कलों का संग्रह।

यहां छापेख़ाने की कलें, रङ्ग देने के यन्त्र, एसिटेलिन ग्यास उत्पन्न करने की कलें, बर्फ़ बनाने और पानी साफ़ करने के यन्त्र, बिजली के पंखे, यञ्जिन और बायलर आदि हैं।

९—कृषिविभाग।

इस विभाग के व्यवस्थापक गवर्नमेण्ट के कृषि-विभाग के अधिकारी मि० नाइट हैं। यहां हर एक प्रकार के अनाज, बीज, पौधे, फल, फूल, तरकारी आदि का संग्रह किया गया है। कृषि के उपयोगी खाद और नूतन औज़ारों के नमूने भी रक्खे गये हैं। आबपाशी के यन्त्र भी यहां हैं। यहां इन सब पदार्थों का केवल संग्रह ही नहीं किया गया है, वरन् उनका उपयोग भी प्रत्यक्ष रीति से प्रेक्षकों को वहीं समझा दिया जाता है। इन प्रयोगों के द्वारा किसानों को लाभ पहुंचाने की विशेष व्यवस्था की गई है। यह विभाग भारत के किसानों को बहुत लाभदायक है।

१०—वनविभाग।

इसमें विशेषतः बम्बई के जङ्गलों में पैदा होनेवाले पदार्थों का अधिक संग्रह है।

११—रजवाड़ों के पदार्थ-संग्रहालय।

मीरज, भावनगर, कोल्हापुर, मैसोर, बड़ोदा, जयपुर आदि राज्यों से आये हुए पदार्थ यहां भिन्न भिन्न स्थानों में रक्खे हैं।

१२—हास्योत्पादक पदार्थ-संग्रह।

इसको अङ्गरेजी में लाफ़िंग गैलरी कहते हैं। यहां तरह तरह के शीशे रक्खे हुए हैं। उनमें दर्शकों की नाक, मुँह, भौंह, सिर आदि अवयव अद्भुत प्रकार के दिखाई देते हैं। स्वयं अपने रूप की विलक्षण विकृति को देखकर देखनेवाले हँसते हँसते लोट पोट हो जाते हैं।

१३—रत्नशाला।

नाम ही से प्रसिद्ध है। इस विभाग में लाखों रुपयों की संपत्ति भरी हुई है! दर्शक मन ही मन ललचाकर रह जाते हैं!! भारत का सौभाग्य!!!

१४—स्वास्थ्यविद्या-विभाग।

इसका सब बन्दोबस्त बम्बई की म्युनिसिपाल्टी के हेल्थ आफ़िसर टर्नर साहिब ने किया है। यहां स्वास्थ्यरक्षा सम्बन्धी नई नई कलों का संग्रह है और प्रत्यक्ष प्रयोग दिखलाकर व्याख्यान देने की व्यवस्था की गई है।

१५—गाड़ीख़ाना, १६—सीने की और क़सीदा काढ़ने की कलें।

निकट ही केम्प कम्पनी की दूकान है। वहां एक ऐसी वस्तु का संग्रह किया गया है कि जो इस समय सारी दुनिया में अप्राप्य है। उसका नाम रेडियम है। इस धातु का वर्णन पाठकों ने सरस्वती की किसी गत संख्या में अवश्य पढ़ा होगा।

१७—स्त्रियों की कला कुशलता का विभाग।

बम्बई की प्रदर्शनी का यह विभाग अत्यन्त प्रेक्षणीय तथा प्रशंसनीय है। इस विभाग की प्रेसिडेण्ट लेडी जमसेटजी जिजीभाई, वाइस प्रेसीडेण्ट लेडी पेटिट, मिसेस बदरुद्दीन तैयबजी और मिसेस चन्दावरकर हैं। सात स्त्रियां इस विभाग की सेक्रेटरी हैं, १ मिसेस लुक़मानी, २ मिसेस कोठारे, ३ मिसेस टाटा, ४ मिस हसन अली फ़ैज़ी, ५ मिसेस रानडे, ६ मिस मानकजी करसटजी और ७ मिस नौरोजी पाटक। इन्हीं स्त्रियों ने स्वतन्त्रता पूर्वक इस विभाग की व्यवस्था की है। यह विभाग दिसम्बर की १० तारीख़ को लेडी लेमिंगृनद्वारा खोला गया था। बम्बई के गवर्नर लार्ड लेमिंगृन ने कहा है कि "इस प्रदर्शनी के सब पदार्थ अच्छे हैं ही; परन्तु स्त्रियों के विभाग में जो पदार्थ रक्खे गये हैं वे अवर्णनीय हैं।" यथार्थ में उद्योग-वृद्धि और स्वतन्त्र कार्यक्षमता की दृष्टि से यह विभाग भारत की महिलाओं के लिये अत्यन्त भूषणास्पद है। इस विभाग का एक चित्र अन्यत्र प्रकाशित है। जी चाहता है कि इस विभाग के प्रत्येक पदार्थ का थोड़ा सा वर्णन लिखा जाय; परन्तु स्थल-सङ्कोच के भय से लेखनी को बहुत आगे बढ़ने से रोकना पड़ैगा।

इस विभाग में कुछ देशी और कुछ विदेशी स्त्रियों के बनाये हुए भांति भांति के पदार्थ व्यवस्थित रीति से रक्खे गये हैं। उनमें से कुछ पदार्थों का उल्लेख हम यहां करते हैं। पहले तो दरवाज़े के भीतर जाते ही पोत और गुरियों की बनी हुई सुन्दर सुन्दर झालरें टँगी हुई दिखाई देती हैं। ये सब प्रायः पारसी स्त्रियों की बनाई हुई हैं। दीवारों पर विविध रङ्गों के चित्र इस स्थान की शोभा को बढ़ा रहे हैं। राजा रविवर्मा के लक्ष्मी और सरस्वती के चित्रों को नूतन वस्त्रालङ्कार से भूषित देख लक्ष्मीबाई ठाकुर की प्रशंसा किये बिना किसी से रहा नहीं जाता। एक चित्र में भारत माता के समीप, कांग्रेसदेवी को, अपनी नूतन कन्या प्रदर्शनी को लिये हुए, भारत के भावी गौरव की सूचना करती हुई देख, प्रत्येक विचारशील दर्शक का मन क्षण भर चिन्ता में डूब जाता है। मिस घोषाल का बनाया हुआ एक बङ्गाली बुढ़िया का चित्र, रत्नाबाई का बनाया हुआ काग़ज़ का मकान, मिसेस कावसजी का, नारियल के बाल से, बनाया हुआ मनुष्य का सिर—ये पदार्थ देखने योग्य हैं। इस स्थान के मध्य में इङ्गलैण्ड के राज घराने की स्त्रियों की कारीगरी और क़सीदे के कुछ नमूने कांच की अलमारियों में रक्खे हुए हैं। इनमें स्वर्गवासिनी महारानी विक्टोरिया के लिये प्रिंसेस विक्टोरिया का बनाया हुआ चित्र विचित्र एवं प्रशंसा करने योग्य है। चटगांव की रानी ने स्वयं अपने हाथ से एक टेबल क्लाथ (मेज़ पर बिछाने का कपड़ा) बनाकर भेजा है। इस देश के भिन्न भिन्न ज़नाना मिशन, अनाथालय, फ़ीमेलस्कूल, आर्टस्कूल आदि की लड़कियों तथा स्त्रियों की बनाई हुई इतनी वस्तुएं यहां रक्खी गई हैं कि उनका वर्णन करना कठिन है। इस स्थान में भिन्न भिन्न जाति की स्त्रियों की अनेक मूर्तियां वस्त्रालङ्कार से भूषित रक्खी हुई हैं। उनको देखने से प्रत्येक जाति के रहन सहन और पहनाव ओढ़ाव का अच्छा परिचय होता है। यहां विशेष ध्यान में ...

योग्य एक बात यह है कि कुछ पारसी स्त्रियां क़सीदा, फ़ीता, लेस, पट्टी आदि का काम स्वयं अपने हाथों से कलों पर करके दर्शकों को दिखलाया करती हैं। इससे दर्शकों को इस विषय का साक्षात् ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

१८—सूती कपड़े, १९—चित्रकारी कलाभवन आदि।

इस स्थान पर आतेही प्रदर्शन की लम्बवर्तुलाकार प्रदक्षिणा समाप्त हो जाती है।

विशेष स्थान।

उक्त प्रदक्षिणा करते करते जो स्थान छूट गये थे, उनमें से कुछ विशेष रमणीय स्थानों का उल्लेख नीचे किया जाता है।

१—यन्त्रों के विभाग के पास एक वाटरशूट अथवा जलपतन-क्रीड़ा का विभाग है। लकड़ी का एक बहुत ऊंचा पुल बना है। उसके नीचे एक तालाब है। पुल पर से छोटी छोटी डोंगियां, कल के सहारे, अत्यन्त वेग से फ़िसलती हुईं तालाब में धम से जा गिरती हैं। इस क्रीड़ा का वर्णन शब्दों से नहीं किया जा सकता। इसका स्वयं अनुभव ही करना चाहिये।

२—इङ्गलिश इलेक्ट्रिकल कम्पनी का गुम्बज़। इसमें बिजली की रोशनी से अनेक सुन्दर सुन्दर चित्र दिखाई देते हैं।

३—बिजली का फ़वारा।

प्रदर्शनी की विस्तीर्ण भूमि में रात्रि के समय जब सब विद्युद्दीप प्रकाशित हो जाते हैं तब इस फ़वारे की सहस्रों धाराओं में से प्रतिबिम्बित होनेवाले लाल, हरे, नीले, पीले, बैंगनी, सुनहरी आदि भाँति भाँति के रङ्गों की अप्रतिम शोभा दिखाई देती है। उस समय वहां सज बज कर घूमनेवाली बम्बई की अनेक जाति की रमणियों को देख इन्द्रभुवन के वर्णन का स्मरण आता है।

आय-व्यय आदि।

इस प्रदर्शनी के आयव्यय आदि का लेखा भी विचार करने योग्य है—

व्यय।

इमारतें	१५००००)
रोशनी	४००००)
यन्त्र	२००००)
छपाई	६५००)
आफ़िस	१७०००)
मुतफ़र्क़ात	४९२००)
	३,०२,७००)

आय।

जो सामान बेचा जायगा उसकी क़ीमत	५१०००)
१७ जनवरी तक टिकट की बिक्री ...	१६८०००)
चन्दा	३२०००)
किराया	२४०००)
	२,७५,०००)

प्रदर्शनी फ़रवरी को १० तारीख़ तक खुली रहेगी। पर, यह लेख हम जनवरी में हीं लिख रहे हैं। तब तक बीस पचीस हज़ार रुपये टिकटों की बिक्री से और वसूल होंगे। इस हिसाब से तीन लाख के लगभग आय होगी।

तारीख़ १७ जनवरी तक प्रदर्शनी के दर्शकों की संख्या ३३०४७२ थी। माधवराव सप्रे

कलकत्ते की काल-कोठरी।

[गत अङ्क के आगे]

साढ़े ग्यारह बजे, जितने आदमी ज़िन्दा बचे थे सब, बदहवास होने को हुए। जिसके मुँह में जो आया सो उसने बका। मानापमान का ख़याल जाता रहा। पानी पर लोगों की प्रीति अब कम हुई। हवा, हवा, हवा, की आवाज़ सबके मुँह से निकलने लगी। गारद के ऊपर, सिराजुद्दौला के ऊपर और राजा मानिकचन्द नामक कलकत्ते के नये गवर्नर के ऊपर बहुत ही ख़राब ख़राब गालियों की बौछार होने लगी।

आशा थी कि इस प्रकार बेइज़्ज़ती होते देख गारद के सिपाही ज़रूर गोली छोड़ेंगे। इसलिए कोठरी के लोग दौड़ दौड़ कर खिड़की के पास आने लगे, जिसमें पहली ही गोली से उनका काम तमाम हो। परन्तु गोली नहीं चली। सबको हताश होना पड़ा। अभागों को इस तरह मरना बदा ही न था। इस प्रकार बेबस होकर कितने हो मुर्दों के ऊपर ज़मीन पर गिर गये और वहीं पर पड़े पड़े मौत के मुँह में प्रविष्ट हुए। जिनमें कुछ शक्ति बची थी उन्होंने खिड़की की ओर दौड़ लगाई और दूसरों की पीठ, और किसी किसी के सिर पर भी, होते हुए वे वहां पहुँच गये। वहां पर उन्होंने खिड़की के सीकचों को इतने ज़ोर से जा पकड़ा कि फिर वे उस जगह से किसी प्रकार हिलाये नहीं हिले। जो लोग इस बोझ और दबाव को नहीं सहन कर सके वे गिर गये और गिरते ही उनका दम निकल गया। इस समय उस कमरे में निहायत सख़्त बदबू पैदा हो गई थी। यद्यपि मेरे ऊपर बहुत बोझ था, तथापि इस बदबू के कारण मैं अपना सिर नीचे न कर सकता था; दुःसह दुःख सह कर भी मैं खिड़की की ओर उसे उठाये हो रहता था। मेरे प्रियतम दोस्त, वज्र को भी विदीर्ण करने वाली मेरी यह कहानी सुनकर तुमको मुझ पर अवश्य दया आवैगी। इसके कहने की तो मुझे कोई ज़रूरत ही नहीं। साढ़े ग्यारह बजे से दो बजे सुबह तक तीन आदमियों का बोझ मैं सँभाले रहा; तीन आदमी बराबर मुझ पर सवार रहे। अपने घुटने मेरी पीठ पर अड़ा कर, एक मेरे सिर पर लदा था; एक डच सारजण्ट मेरे बायें कन्धे पर था; और एक फ़ौजी गोरा मेरे दाहने कन्धे पर! पीछे के दोनों को पसुलियों में अपनी अँगुलियां घुसेड़कर उन्हें तो मैं कभी कभी नीचे गिरा भी देता था; परन्तु मेरा वह दोस्त, जो मेरे सिर पर था, किसी तरह मुझसे हिलाया नहीं हिला। उसने खिड़की की शलाका को ख़ूब ही मज़बूत पकड़ रक्खा था। मैं इस कई मन के बोझ से चूर हो गया होता; परन्तु बचा इस कारण से कि सब तरफ़ से मु पर दबाव था। इसीलिए मैं गिरा नहीं; पत्थर समान जहां का तहां खड़ा रह गया।

यह दुर्दशा देर तक मैंने बरदाश्त की; पर क्रम क्रम से वह असह्य होने लगी। नैराश्य ने मु सब तरफ़ से घेर लिया। जीवन मुझे भारी भ मालूम होने लगा। मैंने अपने पाकेट से चा निकाला और अपना काम तमाम करना चाहा परन्तु आत्महत्या का ख़याल करके मेरा हाथ र गया। अपनी कायरता पर मुझे खेद हुआ। फि से मुझमें एक नई शक्ति ने प्रवेश किया। पर तीन आदमियों के नीचे वहां पर मैं सुबह तक नहीं सका। मैंने खिड़की को छोड़ना चाहा। मेरे पा केरी नामक एक जहाज़ी अफ़सर था; लड़ाई उसने बड़ी बहादुरी दिखलाई थी। उसके पास उसकी स्त्री भी थी। इन दोनों में इतना प्रेम कि बहुत मना करने पर भी वह स्त्री अपने पति साथ इस कालकोठरी में चली आई थी। केरी मैंने अपनी जगह देनी चाही। मैं वहां से ह परन्तु, अफ़सोस, केरी वहां न पहुंच सका। मैं हटतेही उस डच सारजण्ट ने मेरी जगह छीन तथापि केरी ने मेरा बड़ा उपकार माना। अब दोनों मरने के लिए तैय्यार हुए। खिड़की छोड़ हम दोनों पीछे हट आये। केरी की हालत अ थी। वह अधिक देर तक खड़ा न रह सक विवश होकर उसे लेट जाना पड़ा और लेटते उसका प्राण-पखेरू उड़ता हुआ। इस समय क़रीब क़रीब बेहोश था। मुझे सुख दुःख का ज्ञान था। मेरी घबराहट बढ़ी। मुझे चक्कर लगा। इसलिए मैं लेट गया। मैंने देखा मेरे ही बुड्ढे पादरी बेलामी की लाश पड़ी थी वहीं उनके बेटे की भी। बेटा लफ्टिनेण्ट बाप बेटे ने, हाथ में हाथ रखकर, मौत पाई लेटने पर मुझे इतना होश था कि मरने पर देर में मैं भी औरों की तरह पैरों से कुचला जाऊं इससे मैं कुछ डर गया। डरकर मैं सहसा

उठ खड़ा हुआ, और कमरे के किनारेवाले उस चबूतरे पर चला गया जहां मैं एक बार पहले जा चुका था। वहां पहुँचकर जो मैं गिरा तो फिर मेरे होश हवास एकदम चलते हुए। फिर मैं बेसुध होकर वहीं पड़ा रहा।

बेहोशी की हालत में इस भयावने ब्लैक-होल में, क्या क्या हादसे हुए, मैं नहीं जानता। जो लोग होश में रहे उनका बयान ऐसा अत्युक्ति से भरा हुआ है कि उस पर हरगिज़ विश्वास नहीं आता। जैसे जैसे लोग मरते गये, हवा कुछ अधिक मिलती गई। इसी लिए कुछ आदमी मौत से बचे और अन्त तक होश में भी बने रहे। मैं नहीं मरा। परन्तु मुझे बचाने में केवल ईश्वर ही सहायक हुआ। जब सुबह के पाँच बज गये और बहुत गिड़-गिड़ाने पर भी गारद ने उस काल-कोठरी का दर-वाज़ा नहीं खोला, तब लोगों को मेरी याद आई। उन्होंने समझा कि यदि मैं कहता सुनता तो शायद दरवाज़ा खोल दिया जाता। लूशिंगटन और वालकाट ने ढूंढ़ना शुरू किया। मैं मुर्दों के बीच में पड़ा था। मेरी कमीज़ को देखकर उन्होंने मुझे पहचाना। उनको मालूम हुआ कि तब तक मुझ में कुछ दम बाक़ी है। इस लिए वे मुझे खिड़की के पास ले गये। परन्तु अपना प्राण किसको प्यारा नहीं? अतएव खिड़की के पास मुझे जगह नहीं मिली। अन्त में कप्तान मिलस को मेरी हालत पर दया आई। वे खिड़की के पास से हट गये और उनकी जगह पर मैं रख दिया गया। इस वक्त ६ बजा था। नवाब सोकर उठ चुका था। रात को मौत ने उस कोठरी के भीतर जिस निर्दयता से लोगों को अपना शिकार बनाया था उसका हाल नवाब को सुनाया गया। उसने यह जानना चाहा कि हम लोगों का सरदार, अर्थात् मैं, जीता बचा या नहीं। इस बात को जानने के लिए एक जमादार दौड़ा आया। लोगों ने मुझे उसके सामने किया, और कहा, कि यदि दरवाज़ा खोल दिया जाय तो मैं शायद बच जाऊं। आख़िर ब्लैक-होल का दरवाज़ा खुला। परन्तु खुलने के पहले ही, खिड़की से आनेवाली प्रातःकालीन वायु ने, मुझे सजीव कर दिया था। होश में आकर जो मैंने आँख खोली, मेरा कलेजा फटने लगा; मेरी आँखें फिर बन्द हो गईं। अपने चारों ओर मैंने अनर्थ हुआ देखा! हा, ऐसी भयावनी नरहत्या! सब तरफ़ मुर्दे ही मुर्दे!! लाश के ऊपर लाश!!! उस दृश्य का वर्णन करने का मैं यत्न न करूंगा। मेरी आँखों में आँसू उमड़ आये हैं। ज़रा ठहरो; मैं अब आगे नहीं लिख सकता।

* * * * *

कोई २० मिनट में मुर्दों को हटा कर रास्ता बनाया गया। तब हम लोग एक एक करके बाहर आये। मुझे ज़ोर से बोख़ार था। मैं खड़ा न रह सका। इस लिए वहीं घास पर लेट गया। इतने में नवाब का हुक्म आया कि मैं फ़ौरन ही उसके सामने पेश किया जाऊं। परन्तु मैं चल थोड़े ही सकता था। इस लिए दो आदमियों ने मुझे थाँभा। मैं धीरे धीरे चला। रास्ते में एक जमादार ने बहुत आत्मीयता दिखला कर मुझ से कहा, कि मुझे नवाब को ठीक ठीक बतलादेना चाहिए कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी का ख़ज़ाना क़िले में किस जगह छिपा रक्खा है। उसने कहा कि यदि मैं न बताऊंगा तो मैं तोप से उड़ा दिया जाऊंगा। परन्तु मुझ पर इस धमकी ने ज़रा भी असर नहीं किया। मैं, उस समय, मौत की राह ही देख रहा था। वह महा निर्दयी और ज़ालिम नवाब मौत से अधिक अच्छा और क्या पारितोषिक मेरे लिए दे सकता था?

मैं नवाब के सामने हाज़िर किया गया। पास ही लूट के माल का एक ढेर पड़ा था। उसमें से एक बड़ी सी किताब उठवा कर उस पर मुझे बैठ जाने का हुक्म मिला। मैं बैठ गया; परन्तु बहुत कोशिश करने पर भी मेरे मुंह से आवाज़ न निकली। मेरी ज़बान सूख गई थी। यह देख कर नवाब ने पानी मँगाया। पानी पीने पर वाक्शक्ति फिर मुझे प्राप्त हुई। मैं बोला। अपने और अपने

साथियों पर रात की बीती बातें में कहने लगा। पर उन हृत्कम्पकारी बातों को सुनने से नवाब ने इन्कार किया। उसने मुझे रोक दिया, और ख़ज़ाने की बातें पूछनी आरम्भ कीं। उसने कहा मैंने सुना है कि बहुत सा ख़ज़ाना क़िले में गड़ा हुआ है। अगर तुम मुझसे कोई मेहरबानी चाहते हो तो उसे बतला दो। मैंने कहा यह बिलकुल झूठ बात है; यह ख़बर सरासर ग़लत है। क़िले में ख़ज़ाना नहीं है; और यदि हो भी तो मैं नहीं जानता। गत रात को दिये हुए नवाब के अभय-वचनों का मैंने कई बार स्मरण दिलाया। परन्तु सब व्यर्थ हुआ। दोहाई तिहाई देने पर भी मेरी बात का विश्वास किसीको न आया। मैं क़ैद रक्खा गया। नवाब की ख़ानगी फ़ौज का जो जनरल था उसके मैं सिपुर्द हुआ। मेरे साथ कोर्ट, वालकाट और वरडेट साहब भी क़ैद रक्खे गये। शेष सब, जिनको मौत ने उस रात को न पूछा था, छोड़ दिये गये। केरी साहब की मेम की रिहाई अलबत्ते नहीं हुई। वह बहुत कम उम्र और ख़ूबसूरत थी। काल-कोठरी से निकाली गई लाशें बड़ी ही बेपरवाही से एक ख़न्दक में फेंक दी गईं और उन पर मिट्टी डाल दी गई।

मेरे ऊपर जो इतनी सख़्ती हुई उसके कारण थे। एक तो यह था कि और लोगों के भगजाने पर मैंने क़िले को बचाने की कोशिश की थी; और मैं बस भर लड़ा भी ख़ूब था। दूसरा यह कि नवाब को यह शक हो गया था कि क़िले में ख़ज़ाना है और मैं उसका भेद जानता हूं। तीसरा यह, कि अमीचन्द ने मेरी शिकायत नवाब से की थी। अमीचन्द को हम लोगों ने क़ैद कर लिया था। मैं चाहता तो क़िले की गवर्नरी मुझे मिलते ही मैं उसे रिहा कर देता; क्योंकि मैं जानता था कि उस पर अन्याय हुआ है; पर उस समय जल्दी में मैं यह बात भूल गया। इसीलिए अमीचन्द ने मुझे माफ़ नहीं किया; और माफ़ करना वह जानता भी नहीं। जो तीन आदमी मेरे साथी बनाये गये उनसे भी अमीचन्द की लाग डाट थी।

२१ जून को सवेरे हम लोग एक बैलगाड़ी [...] पड़ाव को पहुंचाये गये। वहां हमारे बेड़ियां [...] गईं। हम चारों एक छोटी सी छोलदारी के [...] रक्खे गये। इतनी छोटी छोलदारी कि हम [...] "नीमे दरूँ नीमे बरूँ"। दैव की गति तो देखि[...] रात को मूसलधार पानी बरसा। पर काल-कोठ[री] की अपेक्षा इस छोलदारी को हमने स्वर्ग सम[झा।] इसमें हमें नन्दन वन का सुख मिला। अब तक [...] बुख़ार था। आज बुख़ार जाता रहा और उ[...] गमन के साथ मेरे सारे बदन पर सैकड़ों फो[ड़ों] का आगमन हुआ। २२ तारीख़ को सुबह हम लो[ग] वैसे ही बेड़ियां पहने हुए, प्रचण्ड धूप में, नदी [...] किनारे एक खुले हुए बरामदे में घसीटे गये। [...] मेरे तीन साथियों के बदन पर भी फोड़े नि[कल] आये। काल-कोठरी की कराल यन्त्रणायें [...] फोड़ों के रूप में प्रकट हो गईं। इस जगह हमको मुरशिदाबाद ले जाने का हुक्म हुआ। [...] मुरशिदाबाद नहीं देखा; इस लिए मेरे साथ [...] कर देख आओ। मुझे इस वक़्त, लिखने की फ़ु[रसत नहीं] है। पढ़ने के लिए तुम को फ़ुरसत करनी हो[गी।]

२४ को तीसरे पहर हम लोग नाव में स[वार] हुए। नाव थी बड़ी, पर पुरानी थी। लूट का [...] भी कुछ उसमें लदा था। थोड़ी दूर जाकर उ[सका] एक तख़्ता टूट गया। इस कारण उसमें पानी [...] लगा। तिस पर भी लोगों ने उसका पिण्ड [न] छोड़ा। हमारा बिछौना था बाँसों का एक [...] सा चट्टा। वही बिस्तरा, वही पलँग। बाँस [...] से नहीं थे; कोई छोटा था, कोई बड़ा। वह[ां] लेटे कभी कभी हम लोग आधे पानी में बले [...] थे और आधे सूखे रहते थे। हम लोग प्रायः [...] स्वर थे; बदन पर बहुत ही कम कपड़ा था। [...] वक़्त हाथ पैर जोड़ कर, हम लोगों ने टाट की [...] बोरियों के दो एक टुकड़े माँग लिये थे। धू[प] [...] बारिश से बचाने के वही हमारे एक मात्र स[...] थे। हमारे खाने के लिए सिर्फ़ चावल; और [...] के लिए वही नदी का पानी। यद्यपि हमारे [...]

फोड़ों से ढक गये थे और पैर लोहे से लदे थे, तिस पर भी हम लोगों ने यह चारा पानी अपने लिए ग़नीमत समझा। मरने से हम लोग बच गये यही हमारे लिए क्या कम था? इसी चावल ने हमारी जान बचाई। क्योंकि उस दशा में यदि हमें मद्य और माँस मिलता तो हम लोग कभी ज़िन्दा न रहते।

जब हम लोग हुगली पहुँचे तब मैंने चिन्सुरा के डच गवर्नर विसडम को एक पत्र भेजा। लूट का जो माल था उसमें कुछ किताबें भी थीं। उनमें से मैंने, अपनी गारद के लोगों से, एक किताब माँग ली। उसके एक कोरे पन्ने पर यह पत्र मैंने लिखा। हमारी दुर्दशा का हाल सुनकर गवर्नर को दया आई। उसने कपड़े लत्ते, खाने पीने का सामान, और कुछ रुपये पैसे भी भेजे। तीन नावें बराबर, एक दूसरे के बाद, वहां से छोड़ी गईं। परन्तु हमलोगों तक एक भी नहीं पहुँची! रास्ते में बहुत सी दिल्लगी की बातें हुईं; परन्तु उनको मैंने प्रत्यक्ष मिलने पर कहने के लिए रख छोड़ा है। हां, यहां पर, मैं इतना अवश्य कहूंगा कि मेरे हाथ फोड़ों से ख़ाली थे। इसलिए मुझे, कुछ समय तक, इस नाव में, बीमारदारी का काम करना पड़ा था। मैं अपने बीमार और गलित-देह दोस्तों को अपने हाथ से खिलाता था।

जब हमलोग शान्तिपुर पहुँचे तब नाव में बेहद पानी भर गया। वह चलने लायक़ न रही। इस लिए गारद में से एक आदमी ज़मींदार के पास दो एक हलकी नावें माँगने के लिए भेजा गया। परन्तु ज़मींदार ने उसे ख़ूब पीटा और गाँव से निकाल दिया। इस बात का वहां किसीने विश्वास ही न किया, कि नवाब के क़ैदियों को ले जाने के लिए नावें दरकार थीं। जब वह आदमी लौट आया और ज़मींदार की गुस्ताख़ी का हाल उसने बयान किया, तब हमारी गारद का जमादार ग़ुस्से से लाल हो गया। सब लोग नाव से नीचे उतरे और हथियारबन्द होकर ज़मींदार को सज़ा देने के लिए चले। इतने में एक आदमी को एक ऐसी बात सूझी जो मेरे लिए मृत्यु थी। उसने जमादार से कहा कि वह मुझे अपने साथ, इस बात का सबूत देने के लिए ले चलै, कि सचमुच ही अङ्गरेज़ क़ैदियों के लिए नावें दरकार हैं। मुझे फ़ौरन ही चलने के लिए हुक्म हुआ। मैंने अपने फोड़े दिखलाये और कहा कि मेरे लिए चलना सर्वथा असम्भव है। मेरे फोड़ों के ऊपर तक बेड़ियां थीं; मैं पैर हिला तक नहीं सकता था। मैंने प्रार्थना की कि यदि मेरा जाना बहुत ही ज़रूरी है तो मेरी बेड़ियां थोड़ी देर के लिए निकाल ली जाँय। वे लोग अपनी आँखों से देख रहे थे कि मैं हिल न सकता था। परन्तु मेरी प्रार्थना का वही फल हुआ जो फल एक ख़ूंख़ार शेर से प्रार्थना करने अथवा हवा से हाथ जोड़ने में होता। मैं चलने क्या, रेंगने के लिए, लाचार किया गया। मुझे इस बात की याद दिलाई गई कि मैं कलकत्ते के क़िले में नहीं हूं, और मेरा फ़र्ज़ इस समय यही है कि मैं हुक्म की तामील करूं। मैं रास्ते पर लाया गया। जी कड़ा करके मैं चला। उस समय दोपहर होने में कुछही देर थी। धूप ख़ूब कड़ी थी। मेरे पैरों से ख़ून का नाला बहने लगा। पग पग पर मैं बेहोश होकर ज़मीन पर गिरने से अपने शरीर को रोकने की चेष्टा करता था। वैसा दर्द मुझे कभी नहीं भोगना पड़ा। मैं उसका बयान नहीं कर सकता। उसे मेरा जी ही जानता है।

जब हमलोग ज़िले की कचहरी के पास पहुंचे तब हमने ज़मींदार को अपनी फ़ौजफाटा समेत मुक़ाबिले के लिए तैयार पाया। परन्तु जब नवाब की गारद ने मुझे दिखलाया, और चार लाख रुपए मेरी क़ीमत बतलाई, तब ज़मींदार ने अपनी ग़लती क़बूल की। उसने प्रतिकूलता तत्काल छोड़ दी और शान्तिपुर से नावें मंगा देने का वचन भी दिया। परन्तु जमादार ने उसे बाँधकर नाव पर भेजना चाहा। इस पर ज़मींदार ने बहुत हाथ पैर जोड़े। अन्त में, इस तकलीफ़ के बदले ख़ातिर ख़्वाह पारितोषिक देने पर उसे रिहाई मिली।

नाव से यह जगह कोई आध मील थी। मैं म्रियमाण दशा में था। गारदवालों ने जिस कठोरता और निर्दयता का व्यवहार मुझसे किया उस पर उनको भी पीछे से तरस आया। कुछ देर आराम करने के बाद मुझे वापस ले चलने को उन्हें हिम्मत हुई। उनका कलेजा रक्त-मांस का हरगिज़ न था; सख़्त पत्थर का था। परन्तु उनको भी दया आई। कुछ दूर तक वे मुझे गोद में ले गये। कुछ दूर तक मुझे उन्होंने दोनों तरफ़ से थाँभा; तब मैं चल सका। धूप से बचने के लिए उन्होंने अपनी ढालों से मुझ पर छाया की। भगवान, तुम ऐसा दुःख दुश्मन को भी मत देना। जहां हम लोग गये थे वहां शान्तिपुर का हमारा नायब गुमाश्ता मौजूद था। मेरी ऐसी दुर्दशा देख वह फूट फूट कर रोने लगा। उसने केलों का एक गुच्छा मेरी नज़र किया। उसमें से आधा, रास्ते में, मेरी गारद ने लूट खाया।

हम लोग फिर रवाना हुए। ज़मींदार ने वादा किया था कि नावें फ़ौरनही आवेंगी। देखते देखते आँखें फूट गईं, पर एक भी नाव नहीं आई। तब लाचार होकर मछली मारने की एक डोंगी में हम चारों लादे गये। हमारे साथ गारद के कुल दो आदमी रहे। अधिक रहने से डोंगी के डूबने का डर था। इस दिन जून की आख़िरी तारीख़ थी। इस डोंगी में हम लोगों को जो बाँस का बिछौना मिला वह पहले से कुछ नरम था; परन्तु जगह बहुतही कम थी। यहां तक कम कि हम लोग अच्छी तरह हिल न सकते थे। हिलने से हमारी बेड़ियां हमारे फोड़ों को फोड़ने लगती थीं। तकलीफ़ सख़्त थी। यहां से सात दिन में हम लोग मुरशिदाबाद पहुँचे। रास्ते में ख़ूब पानी बरसा; कभी कभी धूप भी बहुत तेज़ हुई। हम लोगों को पानी भी सिर पर लेना पड़ा और धूप भी। इनसे रक्षा पाने का कोई उपाय न था। इस सफ़र में हम लोगों को सुख भी मिला। सुख क्या, उस हालत में, नियामत कहना चाहिए। हमारी गारद के एक आदमी की कृपा से, हमको, पीछे से, कभी कभी दो चार केले, प्याज़, चबेना, गुड़ और करैले मिल जाते थे। उनके साथ हमारा भात मज़े में गले से नीचे उतर जाता था। वे हमारे लिए बहुत लज़ीज़ चीज़ें थीं।

७ जुलाई को हम लोग क़ासिमबाज़ार पहुंचे। वहां फ़्रांसवालों की कोठी थी। ला साहब उसके एजण्ट थे। उनको मैंने एक चिट्ठी भेजी। ला साहब उसे पाकर फ़ौरन मेरे पास आये और चिट्ठी ले जानेवाले गारद के आदमी को उन्होंने इनाम दिया। उन्होंने हम पर बड़ी कृपा की; ख़ूब सहानुभूति दिखलाई; और देर तक दुख सुख की बातें कीं। कुछ देर के लिए उन्होंने हमको उतरवाना चाहा और इनाम भी ख़ूब देने का वादा किया। गारद ने यह बात क़बूल न की। उसने कहा ज़मीन पर उतारने से उसका सिर न रहेगा। में कपड़े लत्ते, खाने का सामान, और कुछ रु[पये] देकर ला साहब बिदा हुए। हम लोगों ने उनको कोठी के पासवाले नदी के किनारे को, धन्यवाद देते और कृतज्ञता प्रकाश करते हुए, छोड़ा।

अङ्गरेज़ी खाने की चीज़ों को देख कर [न] रहा न गया। हम लोगों ने ख़ूब खाया। फल इसका शीघ्रही मिला। सबने कुछ न कुछ तकलीफ़ उठाई। मेरी दाहनी टाँग और जाँघ में सूजन आ गई। क़ासिमबाज़ार वाली अङ्गरेज़ी कोठी के पास से जब हम लोग गुज़रे तब मन की अजब हालत हो गई। चेहरों पर उदासी छा गई। दुःख [और] वेदना बढ़ गई। ७ जुलाई की शाम को ४ बजे मुरशिदाबाद पहुंचे और एक खुले हुए अस्तबल में रख दिये गये। यह अस्तबल शहर में नवाब के महलों के पासही था। नाव से इस अस्तबल तक लाये जाने में मुझे अपार दुःख हुआ। ... और मर्मकृन्तक वेदना से विवश होकर मेरी आँखों से आँसू टप टप गिरने लगे। हा, मैं एक ... मुजरिम की तरह लाया गया। और शहरवालों ने यह तमाशा देखा! इस अपमान, इस विपत्ति ...

सङ्कट को मेरी आत्मा न बरदाश्त कर सकी। फोड़ों में दर्द भी बढ़ा और टाँग की सूजन भी अधिक हो गई। इस क्लेश-परम्परा ने मेरे धैर्य्य को जड़ से नाश कर दिया।

इस अस्तबल में एक तरफ़ मुसल्मानों का पहरा खड़ा हुआ और दूसरी तरफ़ हिन्दुओं का। नवाब के मुरशिदाबाद लौटने तक हम को इस महा घृणित जगह में पड़े रहने का हुक्म हुआ। मैं अपनी मुसीबतों का कहां तक वर्णन करूं। दूर दूर से लोग हमको देखने आते थे और सुबह से शाम तक इतनी भीड़ रहती थी कि हम लोग दुबारा गला घुट कर मरने से बहुत ही बचे। यहां पहुंचने पर मुझे ज्वर आया। दो दिन में वह उतरा। तब मेरी टाँग और जाँघ की सूजन बढ़ी और धीरे धीरे उसने गठिया का रूप धारण किया। मैं और भी विपत्ति में फँसा। मैं क्या कहूं, तुम ख़ुद ही समझ देखो कि मेरी बेड़ियों ने इस नये अभ्यागत की कैसी ख़ातिरदारी की! हज़ार प्रार्थना करने और गिड़गिड़ाने पर भी मेरी वह बिचारी टाँग बेड़ी से वियुक्त न की गई। सुख और सन्तोष की इतनी बात यहां अवश्य हुई कि डच और फ़रासीसियों की जो कोठियां क़ासिमबाज़ार में थीं, उनके एजण्टों ने हमारी बड़ी मदद की। हमारी रिहाई के लिए उन्होंने बहुत प्रयत्न किया। हमारे खाने पीने का सामान भी वही लोग भेजते रहे; और हमसे मिलने और हमको धैर्य देने के लिए वे रोज़ आते भी रहे। उनकी मेहरबानी को हम लोग आमरण कदापि नहीं भूल सकते।

आरमीनिया के व्यापारियों ने भी हमारे साथ बहुत अच्छा बर्ताव किया। हेस्टिंग्ज़ और चेम्बर्स के हम लोग बहुत ही कृतज्ञ हैं। फ़रासीसी और डच लोगों की कोठियों के अधिकारियों की ज़मानत पर आरमीनिया के ये व्यापारी छोड़ दिये गये थे। परन्तु हमारे दुर्दैव से, हमारे लिए इनकी ज़मानत मंज़ूर नहीं हुई।

११ जुलाई को नवाब सिराजुद्दौला मुरशिदाबाद वापस आया। उसके साथ बन्दूसिंह नामक उसका एक कामदार भी आया। उसके आने पर हम लोग एक छकड़े में उसीके घर पहुँचाये गये। मैं ज़मीन पर पैर नहीं रख सकता था; इस लिए छकड़े में लादा गया। वहां हमने सुना कि लौटते समय हुगली में नवाब ने हम लोगों को याद किया था, और यह सुनकर वह नाराज़ हुआ था कि क्यों हम लोग इतना जल्द मुरशिदाबाद भेजे गये। उसने वहां पर वाट्स और कालट आदि साहबों को रिहाई भी दे दी थी। इससे सूचित हुआ कि उस की इच्छा हम लोगों को भी छोड़ देने की थी। यह समाचार हमारे लिए बहुत ही आनन्ददायक था।

बन्दूसिंह के यहां भी हम लोग एक खुले बँगले में रक्खे गये। परन्तु यहां भीड़ से हम लोग बचे। इसलिए ताज़ी हवा से तबीयत को कुछ फ़रहत हुई। बन्दूसिंह का बर्ताव हमारे साथ अच्छा था। वह रोज़ यह कह कर धीरज देता था कि हम लोग शीघ्र ही छोड़ दिये जायँगे। १५ जुलाई को हम लोग हुक्म सुनने के लिए क़िले में पहुंचाये गये। एक घण्टे तक फाटक के बाहर धूप में हम सब खड़े रहे। यहां हमने देखा कि नवाब के कितने ही अमीर और अमला, जो एक घण्टा पहले, बड़ी शान व शौकत से क़िले के भीतर गये थे, बड़ी बेइज्ज़ती के साथ निकाले गये, और अपने काम से बरख़ास्त भी कर दिये गये। हमारे लिए हुक्म हुआ कि आज हम लोग नवाब के सामने पेश न किये जायंगे। अतएव हमको फिर उसी पहले अस्तबल में आना पड़ा; और एक रात फिर वहां बितानी पड़ी। यह अस्तबल क़िले के पास था। हम वहां इस लिए रक्खे गये कि ज़रूरत पड़ने पर शीघ्रही हम नवाब के सामने हाज़िर किये जायँ।

१६ जुलाई को सबेरे एक बुढ़िया हमारी गारद के पास आई और कोई आध घण्टा बातचीत करती रही। यह बुढ़िया नवाब अलीवर्दीखां की बेगम, अर्थात् सिराजुद्दौला की दादी, की लौंडी थी। जब वह चली गई तब हमने गारद के सिपाहियों से उसके आने का कारण पूछा। उन्होंने कहा कि

कल रात को एक दावत थी। उसमें बेगम ने हम लोगों की बहुत सिफ़ारिश की, और नवाब सिराजुद्दौला से कहा, कि वह हमको छोड़ दे। नवाब ने भी छोड़ देने का वादा कर लिया है। कहने की ज़रूरत नहीं, यह सुनकर हम लोगों के आनन्द की सीमा न रही। परन्तु यह आनन्द थोड़ी ही देर के लिए था। क्योंकि दोपहर को इस सुखाशा पर पाला पड़ गया। हमने सुना कि नवाब के दस्तख़तों के लिए एक हुक्मनामा तैयार किया गया है, जिसके मुताबिक़, बेड़ियों से लदे हुए हम लोग, अलीनगर के गवर्नर राजा मनिकचन्द के पास भेज दिये जावेंगे। कलकत्ते को लेकर सिराजुद्दौला ने उसका नाम अलीनगर रक्खा था।

यह ख़बर नहीं थी, हमारे ऊपर वज्रपात था। मानिकचन्द को हम लोग ख़ूब जानते थे। उसके बराबर निर्दयी, मक्कार और लुटेरा शायद ही कोई दूसरा हो। उसके हाथ से जीते बचना हम लोगों ने असम्भव समझा। इसलिए जीवन से हम लोग निराश हो गये। आशा ही सब दुःखों का मूल है। निराश होने पर दुःख अपना प्रभाव नहीं दिखा सकता। हम लोग इस निराशा के कारण, बेफ़िकर से हो गये। और दोपहर को खाना खा कर सो गये। उस दिन की सी नींद, मैं सच कहता हूं, मुझे पहले कभी नहीं आई थी।

पाँच बजे गारद ने हमको जगाया और कहा कि, थोड़ी देर में, नवाब मोतीझील नामक अपने महल को जायगा; और अस्तबल के सामने से होकर निकलेगा। तैयार होकर हमने गारद से कहा कि सामने का रास्ता वह साफ़ रक्खे, जिसमें हम लोग नवाब को देख सकें। नवाब यथासमय आया। हम लोगों ने झुककर सलाम किया। जब वह बिलकुल हमारे सामने आ गया तब उसने अपनी पालकी खड़ी करा दी और हमको अपने पास बुलाया। हम लोग फ़ौरन आगे बढ़े, और नज़दीक जाकर मैंने संक्षिप्त वाक्यों में अपनी दुर्दशा का वर्णन किया; और रिहाई के लिए प्रार्थना की। हमारी उस हृदयविदारी और करुणाजनक हालत पर, हैवानों का सा कलेजा रखनेवाले उस नवाब को भी दया आई। वह कुछ बोला तो नहीं, परन्तु यह बात उसके चेहरे पर झलक आई। अपने अफ़सरों को उसने हुक्म दिया कि हमारी बेड़ियाँ काट दी जायँ; कोई हमारा अपमान न करने पाये और जहां हम चाहें वहां पहुँचा दिये जायँ। यह हुक्म देकर वह चलता हुआ। ज्यों ही हमारी बेड़ियां काटी गईं, हम लोग नाव पर सवार होकर क़ासिमबाज़ार पहुंचे। वहां डच लोगों की कोठी में हमारी बड़ी ख़ातिरदारी हुई। उन लोगों ने हमको बहुत अच्छी तरह रक्खा। कोई तकलीफ़ नहीं होने पाई।

दोपहर को जो यह ख़बर उड़ी थी कि हम लोग कलकत्ते भेजे जायँगे, उसका कारण था ... लोगों ने नवाब को सुझाया था कि मेरे पास बहुत रुपया है। इससे जो मैं मानिकचन्द के पास भेज दिया जाऊं तो वह, किसी न किसी ढंग से, रुपया ज़रूर मुझ से ऐंठ लेगा। मगर नवाब ने इस सलाह को पसन्द न किया। उसने कहा कि काफ़ी तकलीफ़ मिल चुकी; यदि मेरे पास कुछ रुपया अभी बाक़ी है तो वह मैं अपने पास ही से रक्खे रहूं। इस मेहरबानी का कारण चाहे अलीवरदीख़ां की बेगम हो; चाहे नवाब। पर मैं समझता हूं कि हमारी रिहाई उन दोनों ही की कृपा का फल था।

मेरे दोस्त, इस प्रकार, अन्त को मैंने रिहाई पाई। जब से मैंने उस नरनाशी ब्लैक-होल में पैर रक्खा, तब से, इस समय तक, मैंने तुमको अपनी मर्मभेदक कहानी सुना कर, ज़रूर तुम्हारे हृदय को चोट पहुँचाई होगी। अतएव मैं तुमसे क्षमा माँगता हूं और अधिक न लिख कर क़लम को यहीं नीचे रखता हूं।

राजा युधिष्ठिर का काल।

सरस्वती की नवम्बर १९०४ की संख्या में प्राचीन भारतवर्ष के इतिहास के लेखक कोई चित्तूर निवासी वकील, वी. गोपाल आइयर, बी. ए., बी. एल. के विषय में, तथा उनके इतिहास में दिये हुए पाण्डवों के काल के विषय में, कुछ लिखा गया है। वकील साहब ने जो यह सिद्ध करने का यत्न किया है, कि युधिष्ठिर को हुए सिर्फ़ ३००० (तीन हज़ार) वर्ष के लगभग हुए, उसके विषय में, हम कुछ लिखा चाहते हैं। उसीसे वकील साहब की प्राचीनज्ञता का कुछ परिचय हो जायगा।

प्रथम तो, सबसे बड़े आश्चर्य और खेद की बात यह है, कि बहुतेरे प्राचीन विषयों पर विचार करने वाले, और लिखनेवाले, विशेषतः यूरोपियन लोग, इस बात का हमेशा यत्न करते हैं कि भारतवर्ष की प्राचीन बातें, जहां तक हो सके, खींच खांच कर, ईसा के कुछ ही पहले बतलाई जायँ। किसी समय में हमें हमारे इतिहास के पाठक लोग यह सिखाते थे कि वेदों को प्रणीत हुए ३००० वर्ष से अधिक हुए। अब यह काल आया है कि युधिष्ठिर को हुए लगभग ३००० वर्ष हुए। ऐसा हमारे भारतवासी प्राचीनतत्वज्ञ कहने लगे हैं। कदाचित् और अधिक खोज से यह होगा कि प्राचीन बातों को अर्वाचीनत्व देने का यत्न, जो अत्रस्थ और परस्थ विद्वान लोग कर रहे हैं, वह निष्फल प्रतीत होगा। आज, हम, यदि यह कह दें, कि युधिष्ठिर को हुए लगभग ७ हज़ार वर्ष हो गये तो हमारे प्राचीनतत्वकोविद लोग एकबार ही घबरा उठेंगे; और उसे असम्भव सा समझ मेटने का यत्न करेंगे। क्योंकि हमारे भारत की प्राचीनता को देख उनका चित्त उद्विग्न सा होता है। और वे यह नहीं सह सकते कि भारतवर्ष इतने प्राचीन काल में उन्नत अवस्था में था। परन्तु हम इस बात की परवा नहीं करते, क्योंकि, हम सच्चे भारतवासी हैं। हमारी प्राचीनता में कुछ भी सन्देह नहीं। और जहां हमारी उन्नति में हज़ारों वर्ष की गणना एक साधारण बात है, वहां हमें परदेशियों की शताब्दियों की गणना पर क्योंकर विश्वास करना चाहिए? एक प्राचीन तत्ववेत्ता कहते हैं कि विक्रमादित्य कोई था ही नहीं! वाह! इससे यह सूचित हुआ कि भारत-वासी लोग निरे मूर्ख थे, जो फ़र्ज़ी संवत् बना लिया करते थे! कहिए, अब, हम, जो इस भारतवर्ष के पुत्र हैं, क्योंकर इस बात को सच मानें कि विक्रमादित्य न कभी यहां जन्मा, न रहा? अस्तु। हमें खेद है कि हमारे अङ्गरेज़ी पढ़े लोग, जो पुरानी बातों की विचारणा करते हैं, विदेशियों के मतों पर और लेखों पर बहुत अधिक विश्वास करते हैं। इसीसे स्वयं भी वे उन्हींके समान प्रलाप करने के अधिकारी होते हैं।

ग्वालियर में, कुछ वर्ष पहिले, एक बड़े विद्वान् पण्डित हो गये हैं। उनका नाम विसाजी रघुनाथ लेले था। पण्डितजी सारे महाराष्ट्र देश में सायनवाद के उत्पादक के नाम से बहुत प्रसिद्ध थे। वे सायनमताभिमानी ही नहीं, परन्तु उसके प्रवर्तक हो गये हैं। वे केवल इस बात को सिद्ध करने के लिए, कि महाभारत के युद्ध के समय सायनपद्धति ही प्रचलित थी, उस युद्धकाल के ग्रह, महाभारत के आंतरीय प्रमाणों द्वारा (Internal evidence) स्पष्ट कर गये हैं। और उसीके सम्बन्ध में महाभारतीय युद्ध का काल, अर्थात् पाण्डवों का काल भी, वे स्पष्ट कर गये हैं। उसेही हम नीचे देते हैं—

इवल्ली के प्रसिद्ध जैन देवालय के बनाये जाने का काल उस मन्दिर के शिलालेख पर खुदा है। वह काल तीन निराले शब्दों द्वारा स्पष्ट किया गया है जिसमें उसकी गणना में भ्रम, या भूल, न हो। वह लेख इस प्रकार है—

त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः। सप्ताब्दशतयुक्तेषु
३० + ३००० = ३०३० ; (७ × १००) = ७०० +

शतष्वब्देषु पंचसु। पंचाशत्सु कलौ काले, षट्सु पंचशतेषु च।
१०० + ५ + ५० = ८५५ ; ६ × ५०० = ५०६

समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्॥

इसमें तीन निराले कालों से मन्दिर के बनने का काल दिया गया है। पहला भारतीय युद्ध का ३०३० ; दूसरा कलि का ८५५ ; और तीसरा शक जातीय राजाओं का ५०६। इस अनुक्रम से यह बात स्पष्ट होती है कि कलि से २१७५ वर्ष पहले महाभारत का युद्ध हुआ था। अर्थात् वह द्वापर का अन्तिम चरण था।

यह वर्तमान काल तक और भी स्पष्ट करके दिखाया गया है—

युधिष्ठिर का राज्याधिकार

४८	युद्ध						
३१७५	३१२७	कलि					
३५२४	३४७६	३४९	शक नृप				
३०३०	२९८२	८५५	५०६	इवल्ली का देवालय *			
५२१९	५१७१	३०४४	२६९५	२१८९	विक्रम		
५३५४	५३०६	३१७९	२८३०	२३२४	१३५	शालिवाहन	
७१७९	७१३१	५००४	४६५५	४१४९	१९६०	१८२५	वर्तमान

इस कालनिर्णय में पण्डित लेले ने अपने आयुष्य के ४० वर्ष खर्च किये थे। इस गणित को राव बहादुर प्रो० केरो लक्ष्मण छत्रे ने, जो कि दक्षिण हिन्दुस्तान के बड़े गणितज्ञ थे, अपने प्रतिष्ठापत्र द्वारा ठीक बतलाया है। उन्होंने लिखा है कि शालिवाहन शक के ५३०६ वर्ष पहले पाण्डव थे। यह प्रतिष्ठापत्र १८८३ ई० का लिखा हुआ है। अर्थात् वर्तमान समय से ५३०६+१८२५=७१३१ वर्ष पहले पाण्डव, और उनमें युधिष्ठिर, प्रतिष्ठित थे। नामी वकील साहब यदि इस शिलालेख की ओर ध्यान दें तो उनको प्राचीन तत्वदृष्टि के अधिक विस्तृत होने की सम्भावना है।

गणपति जानकीराम दुबे।

---

* यह देवालय कलि की ९वीं शताब्दि में प्रथमशङ्कराचार्य के समय में बना था।

आँख।

[२]
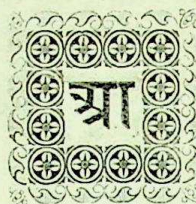
लोक की किरण जिस पदार्थ ... प्रवेश कर रही है उसकी स... पर लम्ब खींचा जाय तो ता... पदार्थ में उस किरण का ... के साथ बना हुआ कोण, ... पदार्थ में बने हुए कोण से बड़ा होगा। 'क ख' ताल में 'म' मोमबत्ती की किरण जा रही ... वह 'अ' 'इ' स्थानों पर उपर्युक्त नियमानुसा... दो बेर मुड़कर 'न' नेत्र में पहुंची। अतएव ... नेत्र को, 'म' अपने स्थान में नहीं किन्तु 'न' ... सिलसिले में 'म[1]' पर दिखाई देगी। अर्थात् त्रि... में देखे जाने से, पदार्थ, उसकी चोटी की त... किरणों के वक्रीभवन से, बदले हुए दिखाई देते ... प्रकाश को दो बेर मोड़ देने का यह गुण, ताल ... विषय में जो कुछ कहा जायगा, उसका आधार ...
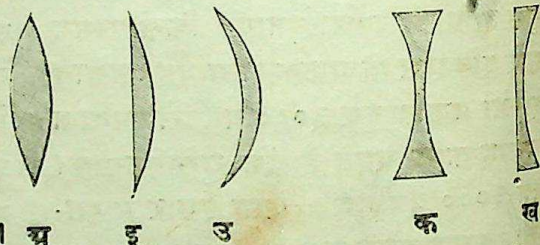
(चित्र ४)

ताल ६ प्रकार के होते हैं और उन्हें दो श्रे... में विभक्त कर सकते हैं। इनके गुणों के विच... लिए "अ" और "क" का ही विचार बस है ... क्योंकि उस उस समूह के और और तालों के ... उनके ही सदृश हैं।

केन्द्रा...
- अ उभयोन्नतोदर
- इ समोन्नतोदर
- उ मध्यस्थूल अर्धचन्द्र

केन्द्रा...
- क उभय नतोदर
- ख समनतोदर
- ग मध्यकृश अर्धचन्द्र

उन्नतोदर ताल—यदि दो वृत्त एक दूसरे को काटें तो जो भूमि दोनों वृत्तों में समान होगी वही उभयोन्नतोदर ताल होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। इन दोनों वृत्तों के केन्द्र, गुलाई के केन्द्र, और उन दोनों केन्द्रों को जोड़नेवाली ताल में होकर जानेवाली रेखा प्रधान धुरी कहलाती है। काचके दोनों किनारों से समान दूरी पर, प्रधान धुरी पर जो बिन्दु हो उसे दर्शन केन्द्र कहना उचित होगा। ऐसी और कोई रेखा जो दर्शनकेन्द्र में होकर जाय, किन्तु गुलाई के केन्द्रों से दूर रहे, उसे गौण धुरी कहेंगे। प्रधान धुरी एक ही होती है; गौण धुरी अनन्त हैं। अनन्त सरल रेखाओं के मिलने से वक्र रेखा वा वृत्त बनता है। अतएव अ इ उ तालों को हम अनन्त त्रिपार्श्वों के, एक के आधार में दूसरे तथा दूसरे के आधार में तीसरे के, जुड़ने से बना हुआ मान सकते हैं। क ख ग तालों को इसके विरुद्ध चोटी की तरफ़ जुड़े हुए मानलें। अब यह समझना कठिन न होगा कि उन्नतोदर ताल केन्द्राकर्षक क्यों होते हैं, और नतोदर केन्द्रापसारी क्यों होते हैं। क्योंकि त्रिपार्श्व में किरणें दो दफ़ा मुड़कर आधार की तरफ़ जाती हैं। उन्नतोदर में जुड़े अनन्त त्रिपार्श्वों का आधार बीच की तरफ़ और नतोदर में ऊपर की तरफ़ होता है। इसी लिए उन्नतोदर में किरणें बीच में आती हैं और नतोदर में ऊपर की ओर उड़ जाती हैं।

(१) मान लीजिए कि किसी उन्नतोदर ताल पर बहुत दूर के पदार्थ की किरणें पड़ रही हैं—इतनी दूर से कि वह एक स्थान से प्रचलित न दिखाई देकर समानान्तर दिखाई देती हों, जैसे सूर्य की किरणें, तो उन किरणों में से जो किरण प्रधान धुरी पर जाती है वह तो मानों समानान्तर ताल में होकर जा रही है और बिना वक्र हुए निकल आती है। इससे कुछ दूर की किरण, नियमानुसार दो दफ़ा मुड़ती है और मध्यकिरण से समानान्तरता नष्ट होने पर उससे मिलती है। उससे अधिक दूर की किरण, अधिक झोंकवाले त्रिपार्श्व में टकराने से, अधिक झोंक खा कर मुड़ती है, क्योंकि ताल की झोंक केन्द्र से ऊपर की तरफ़ बढ़ती जाती है। इसी लिए यह मुड़कर पहली दो किरणों से उसी स्थान पर मिलती है जहां वे मिली थीं। ऐसे ही अधिक अधिक दूर की किरणें, अधिक अधिक झोंक खाकर, प्रधानधुरी के ऊपर, या नीचे, एक बिन्दु 'अ' पर मिलती हैं।
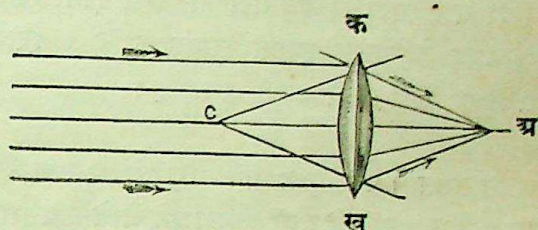
(चित्र ५)

क ख ताल। अ अंशुनाभि

यों समानान्तर किरणजाल केन्द्राकृष्ट किरणजाल बनकर एक बिन्दुपर मिलता है। इस बिन्दु का नाम अंशुनाभि है। वास्तव में यह सूर्यका चित्र है। उन्नतोदर ताल ही "आतिशी शीशा" कहाता है। इस नाभि में आलोक ही नहीं, उष्णता भी इकट्ठी होकर जलाने का काम दे सकती है। ताल पर जिस तरफ़ से किरणें आती हैं उसके दूसरी तरफ़ यह बनता है। जितनी काँच की गुलाई अधिक होगी, उतनी ही यह नाभि छोटी और उष्ण होगी। यह नाभि सच्ची है अर्थात् तालके पीछे कपड़ा या काग़ज़ रखने से दिखाई देगी।

(२) अब मान लीजिए कि आलोक का पदार्थ (मोमबत्ती) अधिक समीप आ गया है; किन्तु अंशुनाभि से दूर है। समानान्तर किरणों की अपेक्षा इनमें एक दूसरे से कम अन्तर है, इसी लिए ताल के दूसरी ओर निकल कर यह उतनी जल्दी केन्द्राकृष्ट नहीं होतीं, किन्तु अंशुनाभि से हट कर अगाड़ी मिलती हैं। (असमाप्त)

पुस्तक परीक्षा ।

रोमन-शिक्षा । पं० साधुशरण पांडे, हिन्दू कालेज, काशी, कृत । दाम आध आना । रोमन लिखना सीखने के लिए यह पुस्तक बनाई गई है ।

❀

लक्ष्मी-उपदेश-लहरी । मासिक पुस्तक है. औरंगाबाद, गया, से निकलती है । वार्षिक मूल्य १) है । दो वर्ष से जारी है । गद्य और पद्य दोनों रहते हैं । बाबू गोरेलाल इसके सम्पादक हैं । इसमें उन्नति के लिए अभी बहुत जगह है ।

❀

शिक्षालता । ७४ पृष्ठ की पद्यमय पुस्तक है । दाम आठ आने । इसे बाबू रामभजन चौबे ने बनाया है और शिवहर के हेड मास्टर बाबू रामदास राय ने प्रकाशित किया है । अङ्गरेज़ी कवियों ने शिक्षा और उपदेश पर जो अच्छी अच्छी कवितायें लिखी हैं उन्होंका इसमें अनुवाद है । कोई कोई कविता व्रजभाषा में है और कोई कोई साधारण बोलचाल की भाषा में । उद्देश्य और विषय इसके दोनों अच्छे हैं । परन्तु इसकी कविता शायद किसी किसी को कम पसन्द आवै ।

❀

लिपिबोध । कानपुर के पास एक गाँव मसवानपुर है । वहां पण्डित गौरीशङ्कर भट्ट रहते हैं । आपने हिन्दी-लिपि में जो कुशलता प्राप्त की है उसे पाने का आज तक किसी को सौभाग्य नहीं हुआ । लिपि-सम्बन्धिनी एक छोटी सी पुस्तक आपने इसके पहले भी प्रकाशित की थी । परन्तु यह लिपिबोध उससे कहीं बढ़कर है । इस पुस्तक के दो खण्ड हैं । एक आकृति खण्ड; दूसरा विवरण खण्ड । दोनों के दाम १।-) होंगे । परन्तु विवरण खण्ड अभी नहीं छपा । केवल आकृति खण्ड छपा है जिसके दाम ॥।=) हैं । इस खण्ड में ५०० के ऊपर अक्षरों की आकृतियां हैं । अक्षर, अक्षरांश, मात्रा और अङ्क इत्यादि नाना प्रकार से लिख कर दिखलाये गये हैं । उन सब के पैमाने भी दिये हैं । कोई कोई अक्षर खूब बेलबूटेदार बन गया है । अक्षर क्या हैं एक एक चित्र हैं । जो अङ्गरेज़ी अक्षरों के प्रकार और सौन्दर्य पर मु[ग्ध] हैं उनको जानना चाहिए कि हिन्दी के अक्षर, [किसी] बातों में, अङ्गरेज़ी के अक्षरों से किसी प्रकार [कम] नहीं है । हां, हिन्दी जाननेवालों में गुणग्राहक[ता] की कमी है । इसी लिए हिन्दी की लिपि-वि[द्या] का प्रचार नहीं होता । हिन्दी के हितैषियों [को] चाहिए कि भट्टजी के आकृति-खण्ड को लेकर उनके उत्साह को बढ़ावें जिसमें वे विवरण ख[ण्ड] को भी शीघ्र ही प्रकाशित कर सकें । कई रा[जा] रईस और सभा-समाजों ने भट्टजी को सहा[यता] देकर अपनी गुणग्राहकता दिखलाई भी है ।

❀

दरिद्रता से श्रेय । ऐलन साहब एक विद्वान [अंग]रेज़ हो गये हैं । वे बहुत बड़े लेखक थे । उ[न्होंने] अङ्गरेज़ी में एक पुस्तक लिखी है । उसका ना[म] "फ्राम पावर्टी टु पावर" । उसी के पहले [भाग] का यह हिन्दी-अनुवाद है । इसके अनुवादक [ला]ला मुंशीलाल, एम० ए० हैं । आप गवर्नमेण्ट से [पेन्शन] पाते हैं और लाहौर में रहते हैं । पुस्तक का [दाम] ।) है । इसमें ऐलन साहब के – दुःख का उप[योग], विचार-शक्ति, आरोग्य-सिद्धि, परमानन्द [और] ऐश्वर्य का अनुभव आदि कई निबन्धों का अ[नुवाद] है । सब निबन्ध पढ़ने और विचार करने ला[यक] हैं । कोई कोई बातें तो इसमें बहुत ही अच्छी [कही] गई हैं । एक जगह पर लिखा है—"जो म[नुष्य] अपनी वर्तमान दशा पर सन्तुष्ट नहीं है वह [दरिद्र] है और जो मनुष्य अपनी थोड़ी सी सम्पत्ति [से] सन्तुष्ट है वह वस्तुतः धनाढ्य है । और जो [मनुष्य] थोड़ा सा धन पास होने पर भी दाता और [उदार] है और उसे औरों के लिए व्यय करता है, वह [और] भी अधिक धनाढ्य है" । कहिए, कैसे अच्छे [विचार] हैं । पुस्तक उपादेय है । यदि इसकी भाषा [कुछ] अधिक सरल होती तो और भी उत्तम होता ।
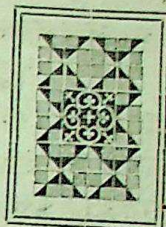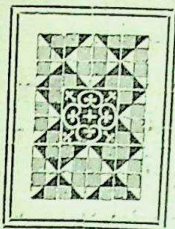
भाग ६] मार्च, १९०५ [संख्या ३

विविध विषय।

एक ख़बर सुनकर तबीयत बहुत ही ख़ुश हुई। बम्बई की तरफ़ कई बड़े बड़े विद्वानों ने मिलकर एक वैज्ञानिक-कोश बनाने का निश्चय किया है। यह कोश दो चार में नहीं, किन्तु चौदह भागों में ख़तम होगा। कोई शास्त्र, कोई विज्ञान, इस कोश से बाहर न रक्खा जायगा। इसमें सबके पारिभाषिक शब्दों का अर्थ मराठी में दिया जायगा। इस कोश के बनने में १५ हज़ार रुपये से कम न ख़र्च होंगे। परन्तु यह पुस्तक भी अनमोल होगी। इसके प्रकाशित हो जाने पर इस से प्रायः सारे भारतवर्ष को फ़ायदा पहुंचैगा। जो लोग देवनागरी अक्षर पढ़ सकते हैं—चाहै वे बङ्गाली हों, चाहै पञ्जाबी और चाहै गुजराती—वे सब, अब, अङ्गरेज़ी वैज्ञानिक पुस्तकों का अपनी अपनी भाषा में अच्छी तरह अनुवाद कर सकेंगे। इस कोश में अङ्गरेज़ी शब्दों के समानार्थक शब्द यद्यपि मराठी में होंगे, तथापि उनमें से तीन चौथाई से भी अधिक संस्कृत के शब्द रहेंगे। अतएव यह कोश संयुक्तप्रान्तवालों के भी काम का होगा; और बहुत काम का होगा। इस कोश के दो भाग छप भी चुके हैं। उनके सामने आज तक छपे हुए हिन्दी और बँगला आदि भाषाओं के ऐसे कोश और ऐसी परिभाषायें बिलकुल ही तुच्छ हैं।

* *
*

जापान में एक हज़ार से अधिक समाचारपत्र और सामयिक पुस्तकें निकलती हैं। टोकियो में सर्वसाधारण के लिए जो पुस्तकालय है उसमें पाँच लाख पुस्तकें हैं। उनमें से एक हज़ार योरप की भाषाओं में हैं। जब जापानी लोग किसी दूसरी भाषा की पुस्तकों का अनुवाद करते हैं तब वे मनमानी स्वाधीनता दिखाते हैं। वे शाब्दिक अनुवाद की बिलकुल परवा नहीं करते। केवल मतलब की तरफ़ उनका ध्यान रहता है। उसीको वे अपने तौर पर ज़ाहिर करते हैं। बहुत सी बातों को बदल कर वे उन्हें अपने देश की चाल ढाल के अनुसार कर देते हैं। विदेशी नामों को वे बदल डालते हैं और उनकी जगह पर वे जापानी नाम रख देते हैं।

योरप की भाषाओं के किसी किसी नाटक का अनुवाद उन्होंने इतना विभिन्न किया है कि उसके अभिनय के समय यदि मूल नाटककार हाज़िर हो तो वह शायद ही इस बात को जान सके कि वह जापानी अभिनय उसीके रूपक की छाया है।

* *
*

इलाहाबाद के म्योर कालेज में एक ऐतिहासिक समाज स्थापित हुआ है। कुछ दिन हुए उसका नया अधिवेशन था। उसमें अध्यापक थीबो ने एक व्याख्यान इस विषय पर दिया कि प्राचीन इतिहास के जानने के लिए कितनी सामग्री है और वह कहां कहां से किस तरह मिल सकती है। श्रोता बहुत से विद्यार्थी थे। व्याख्याता ने ईजिप्ट, आसीरिया, बाबिलोनिया और चीन के पुराने इतिहास के विषय में बहुत कुछ कहा। इस देश के पुरातन इतिहास के विषय में आपने कहा कि यद्यपि इस बात की बहुत कुछ गवाही मिलती है कि हिन्दुस्तानी सभ्यता भी पुरानी है, तथापि हिन्दुओं ने ऐतिहासिक बातों की तरफ़ कम ध्यान दिया है। यह अफ़सोस की बात है। साहब ने सूचना दी कि हिन्दुस्तानियों में से कोई विद्वान्, जो थोड़े बहुत प्रमाण मिलते हैं उनके आधार पर, एक पुराना इतिहास लिखने का यत्न करे तो अच्छा हो। आपने यह भी कहा कि किसी किसी हिन्दुस्तानी का यह ख़याल है कि योरपवाले जान बूझ कर इस देश की सभ्यता की प्राचीनता को नहीं स्वीकार करते और इस बात को भी वे नहीं मानते कि किसी समय वह सभ्यता बहुत बढ़ी चढ़ी थी। इस ख़याल को थीबो साहब ने बिलकुल ही ग़लत बतलाया। उन्होंने कहा, ऐसा समझना भ्रम है। हिन्दुस्तान की सभ्यता के विषय में जितनी सामग्री इस समय प्राप्त है, यदि कोई उससे अधिक ढूंढ़ निकाले और उससे यह बात सिद्ध कर दे कि वह सभ्यता जितनी पुरानी समझी जाती है उससे अधिक पुरानी है, तो योरप के विद्वान् प्रसन्नतापूर्वक उसे स्वीकार कर लेंगे। इस बात को मान लेने में उन्हें जो ख़ुशी होगी वह और किसी बात के मान लेने में न होगी।

* *
*

कलकत्ते में एक संस्कृत कालेज है। वह बहु पुराना और प्रतिष्ठित कालेज है। गत दिसम्बर विद्यार्थियों को इनाम बांटा गया था। इस निमित्त सभा हुई थी। सभापति थे डाक्टर ब्लोच। डा साहब बङ्गाल गवर्नमेंट के पुरातत्ववेत्ता हैं एशियाटिक सोसायटी की भाषा-विज्ञान-शाखा मन्त्री हैं। आपने अपनी वक्तृता में यह बतलाया योरप में लोग संस्कृत किस तरह सीखते हैं।

* *
*

आपके कथन का आशय यह है कि योरप बहुत कम लोग संस्कृत सीखने की परवा करते जरमनी में २१ विश्वविद्यालय हैं। उन सब में संस पढ़ाने का प्रबन्ध ज़रूर है; परन्तु बहुत कम विद्या संस्कृत पर व्याख्यान सुनने जाते हैं। फिर कि लिये गवर्नमेंट इतने संस्कृत-अध्यापक रखती है नई नई बातों की खोज के लिए; विद्या से जो अलौकिक आनन्द मिलता है उसकी प्राप्ति को सु करने के लिए; भिन्न भिन्न भाषाओं के पारस्परि सम्बन्ध को जानने के लिए। पाणिनि के बिना (एक जर्मन विद्वान्) को कौन जानता? संस्कृ अद्भुत व्याकरण को न जानने से भारतवर्ष योरप की भाषाओं का सम्बन्ध कैसे मालूम होत इसीसे योरप के विद्वान् पुरानी संस्कृत—वै संस्कृत—की तरफ़ विशेष ध्यान देते हैं। कल्प कीजिए कि योरप का कोई विद्यार्थी संस्कृत सीख चाहता है तो वह रघुवंश समाप्त होतेही आरम्भ कर देगा, क्योंकि भाषाओं के तारतम्य ज्ञान प्राप्त करने के लिए वैदिक संस्कृत की अधिक आवश्यकता है।

* *
*

वेद पढ़ने का एक और भी कारण है। सा की, और इतिहास की भी, दृष्टि में वेद सबसे पु पुस्तक है। उसके परिशीलन से उन लोगों के स

की बहुत सी बातें मालूम होती हैं जो भारतवर्ष और योरप के वर्तमान निवासियों के पूर्वज थे। वेद के बाद का भी संस्कृत-साहित्य कोई कोई पढ़ते हैं; परन्तु लोगों का चित्त पुराने ग्रन्थों ही की तरफ़ अधिक खिंचता है। जिस तरह वनस्पति और जीवधारियों से सम्बन्ध रखनेवाले शास्त्र के पढ़ने और विचार करने से आनन्द मिलता है उसी तरह इस बात का पता लगाने से भी आनन्द मिलता है कि हमारे पूर्व पुरुष पहले कहां रहते थे, किस तरह रहते थे, क्या खाते पीते थे और क्यों, तथा कब, वे अपनी पुरानी जगहों को छोड़ कर नई जगहों में जा रहे थे। इसी का नाम ऐतिहासिक खोज है। इसी में योरप के विद्वान् अधिक श्रम करते हैं। यह एक ऐसा विषय है कि इसकी तरफ़ इस देश की पुरानी चाल के पण्डितों का बिलकुलही ध्यान नहीं है। क्या ही अच्छी बात हो यदि इस कालेज के, और हिन्दुस्तान के दूसरे कालेजों के भी, संस्कृत के विद्यार्थियों में इस प्रकार की खोजक वृत्ति जागृत हो जाय। यदि एक दो विद्यार्थी इस काम के लिए यहां से विलायत भेजे जांय और वहां वे योरप के संस्कृतज्ञ विद्वानों के पास रहकर पुरातत्व के खोजने के काम में सहायता दें तो बड़े आनन्द की बात हो।

* *
*

हिन्दुस्तान के पुराने इतिहास का पता लगाने के लिए पुराने ताम्रपत्र और शिलालेखों का पढ़ना बहुत ज़रूरी बात है। आज तक इस तरह के जितने लेखों का पता लगा है उनकी नक़लें उन्हीं अक्षरों में छप गई हैं। संस्कृत के नये विद्वानों को चाहिए कि ध्यानपूर्वक वे उनको देखें, पढ़ें और विचार करें, जिसमें सब प्रकार के पुराने अक्षरों को वे पढ़ने और उनका मतलब समझने लगें। उन्हें चाहिए कि पहले वे कम पुराने लेखों को पढ़ें; क्योंकि उनकी लिपि वर्तमान देवनागरी लिपि से बहुत कम भिन्नता रखती है। फिर, धीरे धीरे, उन्हें और पुराने लेख पढ़कर सब प्रकार के प्राचीन लेखों के पढ़ने का अभ्यास कर लेना चाहिए। उनको पाली और प्राकृत भाषा भी सीखनी चाहिए। पाली और प्राकृत के कोश और व्याकरण अङ्गरेज़ी में छप गये हैं। अतएव बहुत कम परिश्रम से ये विद्यायें सीखी जा सकती हैं। बस, पुरातत्वज्ञ होने के लिए यही सामग्री दरकार होती है।

* *
*

इस संख्या में निराशबन्धु ओषधालय का एक विज्ञापन छपा है। उसे पढ़िए। इस ओषधालय की कई ओषधियों से हमने लाभ उठाया है।

बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री।

आज बिहार की हिन्दी-साहित्य-वाटिका श्री-विहीन क्यों देख पड़ती है? वह साहित्य-वाटिका जिसमें अनेक गुल खिले थे, आज पुष्प-शून्य क्यों हो रही है? इस रमणीय वाटिका के सुन्दर नव-वृक्षों के पत्र-पल्लव किधर चले गये? शाखा प्रशाखायें इस प्रकार विशीर्ण क्यों पड़ी हैं? आज यह वाटिका भयावनी क्यों हो रही है? इस साहित्य-वाटिका को सुशोभित करनेवाला, नेत्रों को जुड़ानेवाला, हरित लताओं से परिपूर्ण तथा पुष्प-रत्नों से भूषित हिन्दी-साहित्य-वृक्ष मृतवत् क्यों खड़ा है?

दो चार दिन भी नहीं हुए कि इस साहित्य-वाटिका की क्यारियों को उजाड़ कर पण्डित अम्बिकादत्त व्यास, बाबू साहिबप्रसादसिंह, महाराजकुमार बाबू रामदीनसिंह, पण्डित गोपीनाथ कुमर आदि चल ही चुके थे कि आज, हा काल! जो दो एक पुष्प-रत्न रह गये थे उनको भी तू ने नाश कर दिया। साहित्य-वाटिका अब सूनी पड़ी है। जो वाटिका कोकिलों के मधुर स्वरों से गूँज रही थी, आज कौओं के क्रूर और अश्रवणीय कलरवों से श्मशान हो रही है।

प्यारे पाठको! हिन्दी के परम भक्त, अनन्य-प्रेमी, सच्चे दास, योग्य सुपुत्र, जिन्होंने अपनी माता हिन्दी की सेवा अनेक विपत्तियां झेलने पर भी अपने अन्तिम दिन तक अचल प्रेम और निःस्वार्थ

भाव से की—वही बाबू अयोध्याप्रसाद, वही हिन्दी के रत्न, वही आपके मित्र, अब इस असार संसार में नहीं हैं! जिन्हों ने हिन्दी की उन्नति के हेतु अपना सर्व्वस्व—तन, मन और धन—अर्पण कर दिया था; जिन्होंने अनेक कटु-वचन सुनने पर भी अपने जीवन के प्रधान उद्देश्य खड़ी बोली में पद्य बनाने के आन्दोलन को नहीं छोड़ा; जिन्होंने सहस्रों रुपये ख़र्च हो जाने पर भी हिन्दी की उन्नति के हेतु किसी कार्य्य से मुँह नहीं मोड़ा; वही बाबू अयोध्याप्रसाद आज हिन्दी को अनाथ कर, खड़ी बोली के पद्य को अपने मित्रों की सहायता तथा सहानुभूति पर छोड़कर, अपने मित्रों को शोक-सागर में डुबोकर, ४ जनवरी, १९०५, को बाबू हरिश्चन्द्र, पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, और व्यासजी आदि मित्रों की मण्डली में जा मिले। हाय, हाय, इसके थोड़े ही दिन बाद विहारबन्धु के पुराने सम्पादक पण्डित केशवराम भट्ट भी विहार की साहित्य-वाटिका पर और भी अधिक कुठाराघात करके बाबू अयोध्याप्रसाद के अनुगामी हो गये।

बाबू साहब की उम्र ४६।४७ वर्ष की थी। आपकी अन्तिम यात्रा के पूर्व्व ही आपकी धर्म्मपत्नी को प्लेग उठा ले गया था। आप भी अपनी सहधर्म्मिणी के पीछे चल दिये। ईश्वर दोनों प्राणियों की आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

बाबू साहब के पिता का नाम बाबू जगजीवन लाल था। बाबू अयोध्याप्रसाद अपने पिता के द्वितीय पुत्र थे। प्रथम पुत्र का नाम बाबू महावीरप्रसाद था और तृतीय का बाबू द्वारिकाप्रसाद है। इन लोगों का निवास-स्थान पहले ज़िला बलिया के सिकन्दरपुर में था। मुज़फ्फ़रपुर में बाबू जगजीवन लाल ने आकर वास किया था। वे धनी आदमी नहीं थे। किन्तु पुस्तकें बेचने की एक दूकान उनकी थी जिसके कारण सुखपूर्व्वक उनके दिन बीतते थे। बाबू अयोध्याप्रसाद हिन्दी, फ़ारसी घर पर पढ़कर ज़िलास्कूल में अङ्गरेज़ी पढ़ने लगे। कहते हैं कि बचपन ही से इनकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। हिन्दी के समाचारपत्र आदि पढ़ने की रुचि लड़कपन ही से इनमें थी। जब आप एण्ट्रेन्स क्लास में जाने को थे तभी आपके पिता की मृत्यु हो गई। कई कारणों से पिता की मृत्यु के बाद इनको अध्ययन छोड़ना और पुस्तक-विक्रय की दूकान के कार्य्य को देखना पड़ा। फिर आप कुरहनी के माइनरस्कूल के हेडमास्टर नियुक्त हुए और बहुत दिनों तक वह रहे। उस काम को छोड़कर बाबू साहब मुज़फ्फ़रपुर में रहने और सिविलियन साहबों को हिन्दी पढ़ाने लगे। एक साहब की कृपा से उन्हें कचहरी में एक नौकरी मिली। कचहरी के कई विभागों में रहकर अपनी कार्य्यदक्षता से बाबू साहब कलेक्टर साहब के पेशकार हुए। इस पद पर आज ... वर्ष से आप काम करते थे।

बाबू साहब हिन्दी और फ़ारसी के विद्वान् ... ही। इसके अतिरिक्त अङ्गरेज़ी में भी आप ने अच्छी योग्यता सम्पादन कर ली थी।

बाबू साहब चरित की उदारता, कर्त्तव्यनिष्ठा, असाधारण धैर्य्य और साहस आदि सद्गुणों से विभूषित थे। जिस कार्य्य में आप लग जाते थे और जिस कार्य्य को आप सत्य और उत्तम समझते थे उसको आप बिना किये नहीं रहते थे। यही कारण था कि बाबू साहब का अपने मित्रों से अक्सर मत-भेद हो जाता था *।

* मुज़फ़्फ़रपुर से एक सज्जन और और बातों के सिवा, जो इस चरित में आ गई हैं, यह भी लिखते हैं:—"बाबू अयोध्याप्रसाद को बहुत आदमियों के साथ बैठना या उनसे मिलना पसन्द न था। वे समालोचक भी थे। उनकी समालोचना से घर बाहर का कोई भी आदमी न छूटा होगा। वे कभी कभी लोगों पर ... भी लिखा करते थे। वे परले दरजे के हठी थे। पचीसी ... जाने बाद वे साधु-समागम और साधु-सत्कार भी करने लगे ... उनका बनवाया हुआ एक शिवालय भी है। उनका जितना ... था सब विलक्षण था"। बाबू साहब के हठी और विलक्षण होने का एक प्रमाण यह है कि आप लोगों की ख़ानगी चिट्ठियों तक छाप छाप कर उनकी ग़लतियां बताते थे। उनके कुछ कार्डों की हमने एक मिसल बना रक्खी है जिससे उनके स्वभाव की विलक्षणता ख़ूब ज़ाहिर होती है।

सं० स०

हिन्दी भाषा के लिए बाबू साहब ने वे काम किये जिनको बहुत थोड़े ने ही किया होगा। हिन्दी भाषा की उन्नति के हेतु उन्होंने इतना द्रव्य ख़र्च किया जितना कितने राजा महाराजों ने भी नहीं किया। तभी तो कहना पड़ता है कि बाबू साहब की अकाल-मृत्यु से हिन्दी-साहित्य को जो हानि हुई है उसकी पूर्ति होना कठिन प्रतीत होता है। बाबू साहब के जीवन का प्रधान उद्देश्य हिन्दी की उन्नति ही करना था। यह बात बहुतों को शायद खटकेगी; किन्तु इस बात की सत्यता का प्रमाण वे ही दे सकेंगे जिनको बाबू साहब के साथ वार्तालाप अथवा पत्रव्यवहार करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ होगा। खड़ी बोली के पद्य के प्रचार हो जाने ही को वे अपने जीवन का प्रधान उद्देश्य समझते थे। जिस प्रकार भक्त को अपने उपास्य देवता के चरण-कमल का दर्शन ही जीवन का उद्देश्य जान पड़ता है, उसी प्रकार बाबू साहब खड़ी बोली के पद्य का प्रचार हो जाना ही अपने जीवन का उद्देश्य समझते थे। इसके लिए वे सदा व्यस्त रहते थे। जहां कहीं इसके विरुद्ध कुछ छपता था वहां वे इसके आन्दोलन की पूरी फ़ाइल भेजकर शास्त्रार्थ करने पर तय्यार हो जाते थे। तात्पर्य्य यह है कि आप बराबर इसी चिन्ता में रहते थे कि खड़ी बोली में पद्य का पूर्ण प्रचार हो जाय। इसके लिए सब प्रकार ख़र्च करने और कष्ट सहने को भी वे प्रस्तुत रहते थे। जब मुझसे आप मिलते थे, चाहे उनके डेरे पर, अथवा आफ़िस में, अथवा रास्ते में, उनका प्रथम प्रश्न यही होता था कि—"कहिये कुछ नई लिटररी न्यूज़ (Literary news) है?"। बाबू साहब का यह प्रश्न मुझको जन्मभर स्मरण रहेगा।

हिन्दी-भाषा में प्रेम का बीज बाबू साहब के हृदय में बचपन ही में पड़ा था। सन् १८७७ ई० में बाबू साहब ने "हिन्दी-व्याकरण" लिखकर प्रकाशित किया, जिसके द्वितीय संस्करण को खड्गविलास प्रेस ने छापा है। यह व्याकरण एक निराले ढङ्ग का है। इसको बाबू साहब ने अङ्गरेज़ी व्याकरण की रीति पर लिखा है। ग्रियर्सन साहब इनके व्याकरण के विषय में लिखते हैं—

"It contains a number of points which have not been dealt with in any other Hindi Grammar written in the Vernacular. It seems to be written in intelligible language and well-adopted for school purposes."

अर्थात् इस व्याकरण में कई ऐसी बातें हैं जो किसी दूसरे हिन्दी-व्याकरण में नहीं पाई जाती हैं। यह पुस्तक उत्तम और सरल भाषा में लिखी गई है और स्कूलों के लिए परमोपयोगी है।

इस व्याकरण के अन्त में बाबू साहब ने लिखा है कि छन्दो-विचार का प्रकरण दूसरे भाग में छपेगा। उसी साल बाबू साहब का ध्यान इस विषय पर आकर्षित हुआ कि जिस ठेठ हिन्दी (खड़ी बोली) में हिन्दी के गद्य लिखे जाते हैं, उसी में पद्य न लिखे जाकर व्रजभाषा में लिखे जाते हैं, यह हिन्दी-साहित्य में एक बड़ी भारी त्रुटि है। अतएव बाबू साहब ने चाहा कि जिस बोली में गद्य लिखा जाता है उसीमें पद्य भी बनें। क्योंकि मन के सब भावों का आविर्भाव, जब तक खड़ी बोली में पद्य न बनेंगे, तब तक नहीं हो सकेगा। सन् १८८७ में बाबू साहब ने "खड़ी बोली पद्य," भाग को लिखा और छपवाकर बिना मूल्य बाँटा। उसकी भूमिका में आप लिखते हैं—"सन् १८७७ ई० में मैंने 'हिन्दी-व्याकरण' लिखा था कि जिसके अन्त में 'छन्दो-विचार' के विषय में दूसरे भाग में लिखने की मैंने सूचना दी थी। मैं भाषा छन्द को हिन्दी-छन्द नहीं मानता हूं और इसी लिये छन्दो-विचार लिखने के पहले हिन्दी छन्द, जिसको मैं मानता हूं, इस पुस्तक में दिखलाता हूं......... खड़ी बोली के व्याकरण में व्रज भाषा को जगह देना और व्रज भाषा शब्दों को हिन्दी में Poetical License समझना हिन्दी व्याकरण को, मेरी समझ में, भूल है। ......चन्द की हिन्दी को मैं 'पुरानी हिन्दी' और आधुनिक हिन्दी को 'खड़ी बोली'

कहता हूं"। इस पुस्तक के छपने पर इस विषय में हिन्दोस्थान पत्र में कई लेख खड़ी बोली और ब्रज भाषा के पद्य के पक्ष और विपक्ष में प्रकाशित हुए थे। उस आन्दोलन में जितने लेख समाचारपत्रों में छपे थे उनको बाबू साहब 'खड़ी बोली आन्दोलन' नामक पुस्तक में पुस्तकाकार छपवाते थे। इसके कोई ७२ पृष्ठ छप चुके हैं। आशा है कि मुज़फ्फ़रपुर की हिन्दी-भाषा प्रचारिणी सभा शेष को छपवाकर इस पुस्तक को पूरा करेगी। बाबू साहब ने खड़ी बोली, अथवा हिन्दी, के पाँच भेद माने थे—(१) ठेठ हिन्दी, (२) पण्डित स्टाइल की हिन्दी, (३) मुन्शी स्टाइल की हिन्दी, (४) मौलवी स्टाइल की हिन्दी और (५) यूरेशियन स्टाइल की हिन्दी। "खड़ी बोली पद्य"-भाग, में प्रथम तीनों स्टाइलों के पद्य संग्रहीत हैं। और उसके दूसरे भाग में, जिसको बाबू साहब ने सन् १८८९ ई० में छपवाया था, मुख्यतया शेष दोनों स्टाइलों के पद्य हैं। सन् १८८९ ई० में "खड़ी बोली पद्य"-भाग, को श्रीमान् फ्रेड्रिक पिनकाट साहब द्वारा सम्पादित कराकर लन्दन में बाबू साहब ने बहुत खर्च करके छपवाया और बिना मूल्य बाँटा। यही प्रथम पुस्तक हिन्दी साहित्य के विषय में थी जो लन्दन में छपी थी। फ्रेड्रिक साहब की सम्पादकीय टिप्पणी पढ़ने योग्य है। बाबू साहब के पाँचों स्टाइलों पर टिप्पणी करके पिनकाट साहब लिखते हैं—

"His object is to induce his countrymen to abandon the use of the archaic Braj dialect in their poetic effusions, and to persuade those who favour Urdû to use Nâgarî instead of Arabic letters for their verses. In fact, he purposes a compromise; one party is asked to abandon a cherished dialect of their language, and the other party to give up a customary method of writing it. By conforming to the compiler's suggestion, all parties meet on the common ground of the **Kharî Bolî* or "correct speech," understood by all, and living, growing, and changing, with the daily requirements of advancing civilization. It is certainly a grand occupation, worthy of the fullest realization, for it would unite the mental efforts of a great province, and remove the greatest obstacle to the intellectual development of Northern India."

खड़ी बोली पद्य की समालोचना लन्दन के Overland Mail में भी छपी थी। श्रीमान् फ्रेड्रिक पिनकाट साहब ने जो चिट्ठियां विलायत से बाबू साहब के पास भेजी थीं उनमें एक जगह वे लिखते हैं—

"Your endeavour to induce your countrymen to employ Khari Boli in Poetry in preference to Braja Bhasha is worthy of all praise and encouragement. When Poetry is written it should certainly be in the best and most elegant form of spoken language at the time it is written. Chand Bardai wrote in the language he spoke; so did Kabir; so did Tulsi Das; so did Nanak; and so do all poets who speak out the thoughts of their hearts. It is only artificial versifiers who make up verses about feelings which are not their own, who waste their time in composing in old, archaic or peculiar forms of speech. The result is that the taste of the people becomes corrupted, and more attention is paid to the sound of the verse, than to its sense......The goodness of Poetry depends more on the ideas expressed than on the language used. Too many modern Indian writers seem to think that a collection of high sounding words, in measured lines, constitutes Poetry, hence they prefer the older forms of Hindi to give dignity to their compositions."

बाबू अयोध्याप्रसाद के खड़ी-बोली आन्दोलन का सम्पादन पण्डित भुवनेश्वर मिश्र करते थे। पण्डितजी को समय कम रहता है। इस कारण उस का सम्पादन बाबू साहब की ज़िन्दगी में समाप्त नहीं हो सका। मुज़फ्फ़रपुर के बाबू युद्धविक्रमराय भी बाबू साहब को इसके प्रकाशन में सहायता देते थे। बाबू साहब ने उसके शेष भाग को छपवा कर प्रकाश करने की प्रतिज्ञा की है, जिसके लिए ...

* खड़ी बोली का अर्थ साहब नहीं समझे। स० सं०।

खड़ी बोली के प्रेमी-मात्र के धन्यवाद के पात्र होंगे। बाबू साहब यहां के कलकृर साहब से बाबू अयोध्याप्रसाद के पुत्र को कुछ सहायता दिलाने में भी परामर्श कर रहे हैं, जिसके लिए आपको धन्यवाद है। मुज़फ्फ़रपुर के डिस्ट्रिक्ट बोर्ड को उचित है कि Literary pension की भाँति बाबू अयोध्याप्रसाद के पुत्र को कुछ सहायता दे। आशा है कि हम लोगों के सुयोग्य ज़िलाधीश मिस्टर लेविंज (Mr. Levinge) इस पर विशेष ध्यान देंगे।

खड़ी बोली के विषय में "चम्पारणचन्द्रिका" और "हिन्दोस्थान" में भी आन्दोलन हुआ और उक्त बाबू साहब की उत्तेजना से बाबू गोविन्द प्रसाद ने खड़ी बोली के कई उत्तमोत्तम पद्य चम्पारणचन्द्रिका में छपवाये। उक्त पत्र में बाबू साहब ने यह भी सूचना दी थी कि जो खड़ी बोली पद्य में श्रीरामचन्द्र का यश वर्णन करेगा उसको प्रति पद्य के लिए एक एक रुपया पुरस्कार मिलेगा। बङ्गाली लोग भी पहले मिथिला-भाषा में कविता करते थे और तिरहुत के पण्डित विद्यापति मिश्र की कविता को उस समय वे लोग आदर्श समझते थे। किन्तु पीछे से उन लोगों ने अपनी बोलचाल की भाषा में कविता करनी शुरू की जिसके कारण आज बङ्गाली-साहित्य की इतनी उन्नत्ति हुई है। अतएव यदि चेष्टा की जाय और खड़ी बोली में पद्य बनाये जांय तो हिन्दी-साहित्य की भी वैसी ही उन्नति हो सकेगी। बाबू अयोध्याप्रसाद ने बहुत खर्च और बहुत परिश्रम करके लोगों का ध्यान इस सुधार की ओर आकर्षित किया। इसके लिए वे हिन्दी के पठित-समाज मात्र के धन्यवाद के पात्र हैं। यह मुज़फ्फ़रपुर,—नहीं बिहार,—के लिये अत्यन्त गौरव की बात है। हर्ष का विषय है कि बाबू साहब खड़ी बोली पद्य की उन्नति का "श्रीगणेशायनमः" ख़ुद देख गये। काशी की नागरीप्रचारिणी सभा ने भी बाबू साहब के अत्यन्त परिश्रम और पत्र व्यवहार और प्रस्ताव करने पर खड़ी बोली में पद्य बनने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है। यह विषय अब विवाद का नहीं रहा। तब भी देखते हैं कि किसी किसी के मस्तक में यह बात अब तक नहीं घुसती। बाबू राधाकृष्ण दास जी ने नागरीप्रचारिणी पत्रिका की दिसम्बर १९०० की संख्या में स्वीकार किया है कि उक्त बाबू साहब ही इस आन्दोलन के पिता और अगुआ हैं और बाबू श्यामसुन्दरदास, भारतमित्र, पण्डित श्रीधर पाठक और श्रीराधाचरण गोस्वामी आदि ने भी उनको इसका अगुआ क़रार दिया है।

इधर भी बाबू साहब ने हिन्दी की उन्नति के हेतु कई काम किये। बङ्गाल के श्रीमान् लेफ्टिनेण्ट गवर्नर साहब की सेवा में उन्होंने एक मेमोरियल इस विषय का भेजा कि प्रायमरी (प्रारम्भिक) और मिडल परीक्षा की पाठ्य पुस्तकें केवल देवनागरी अक्षरों में छापी जाँय; उर्दू में न छापी जाँय; क्योंकि बिहार की कचहरियों में केवल नागरी अक्षर जारी हैं। बाबू साहब बर्दवान के महाराज के पास भी एक मेमोरियल के साथ डेप्युटेशन ले गये थे। महाराजा ने दिल्ली-दर्बार के समय हिन्दी के विद्वानों की एक सभा करने में सहायता देनी स्वीकार भी की थी। किन्तु बाबू साहब के द्वारा बहुत चेष्टा की जाने पर भी काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा ने सभा करना तो दूर रहा एक सूचना छपवा दी कि सभा करनी आवश्यक ही नहीं है। काशी की सभा के डेप्युटेशन में बाबू साहब दिल्ली भी गये थे; किन्तु उस डेप्युटेशन ने जो कार्य्य किया वह उसकी सभा ही जानती है। बाबू साहब समय समय पर अनेक छोटी पुस्तकें और लेख आदि भी छपवाते और बाँटते रहे-जैसे "मौलवी साहब के छन्द भेद", "खड़ी बोली के अधिकारी" आदि। कई प्रसिद्ध लेखकों के लेखों पर बाबू साहब की समालोचनायें भी निकलीं। जब पण्डित श्रीधर पाठक जी मुज़फ्फ़रपुर में आबपाशी कमीशन के साथ गये थे, तब बाबू साहब ने अपनी और यहां के कई सज्जनों की ओर से

पण्डित जी को हिन्दी के सुलेखक होने के उपलक्ष्य में एक "एड्रेस" भी दिया था।

बाबू साहब के कई लेख लिखे पड़े हैं। आप हिन्दी का सिलसिलेवार इतिहास छपवाना चाहते थे। उसके लिए आपने बहुत सी सामग्री इकट्ठी भी करली थी। स्थानीय हिन्दीभाषा-प्रचारिणी सभा तथा आरा की सभा का परम धर्म्म है कि बाबू साहब की एक उत्तम जीवनी और उनका अधछपा हुआ "खड़ी बोली आन्दोलन" आदि छापने का प्रबन्ध करें।

बाबू साहब के एक पुत्र क़रीब १० वर्ष का है। ईश्वर उसको चिरञ्जीव रक्खे।

चौधरी पुरुषोत्तमप्रसाद शर्म्मा।

शिशिर-पथिक।

[एक पथिक स्वदेश को लौट रहा है। इसने थोड़ी ही उम्र में सेना के अफ़सर, एक मेजर, के कहने में आकर अपना देश छोड़ा; घर में किसीसे कहा भी नहीं। तब से निरन्तर अङ्गरेज़ी सेना के साथ साथ वह एक देश से दूसरे देश में भ्रमण करता रहा। उसकी नवागता वधू बहुत दिनों तक उसके आसरे में रही; अन्त में निराश होकर अपने पिता के घर आकर वह रहने लगी। वहां पर उसने अपने वृद्ध पिता की सेवा तथा पथिकों के सत्कार का व्रत लिया। दैव-संयोग से आज स्वयं उसका पतिही पथिक के रूप में उसके सामने आकर उपस्थित हुआ है।]

[१]

विकल, पीड़ित पीय-पयान ते
चहुँ रह्यौ नलिनी-दल घेरि जो,
भुजन भेँटि तिन्हें अनुराग सोँ
गमन-उद्यत भानु लखात हैं।

[२]

तजि तुरन्त चले, मुख फेरि के,
शिशिर-शीत-सशंकित जीव हीँ;
विहग आरत बैन पुकारते
रहि गये, पर ताहि सुनी नहीं।

[३]

तनि गये सित ओस-वितान हू,
अनिल झार बहार धरा परी,
लुकन लाग लगे घर बीच हैं
विवर भीतर कीट पतङ्ग से।

[४]

युग भुजा उर बीच समेटि कै
लखहु आवत गैयन फेरि ये
कँपत कम्बल-बीच अहीर हू
भरमि भूलि गई सब तान है।

[५]

तम भयङ्कर कारिख फेरि कै
प्रकृति दृश्य कियो धुँधलो सबै;
बनि गये अब शीत-प्रताप ते
निपट निर्जन घाट अरु बाट हू।

[६]

पर चलो यह आवत है, लखो,
विकट कौन हठी हठ ठानि कै?
चुप रहैं, तब लौं जब लौं कोऊ
सुजन, पूछनहार मिलै नहीँ।

[७]

शिथिल गात, महा गति मन्द है
चहुँ निहारत धाम विराम को;
उठत धूम लख्यौ कछु दूर पै,
करत श्वान जहाँ रव घोर हैं।

[८]

कँपत आइ भयो छिन में खड़ो
युग कपाट लगे इक द्वार पै;
सुनि परयौ "तुम कौन!" कह्यौ तबै,
"पथिक दीन दया इक चाहतो"

[९]

खुलि गये झट द्वार धड़ाक से
धुनि परी मधुरी यह कान में।
"निकसि आइ बसौ यहि गेह में
पथिक वेगि सकोच विहाइ कै"

[१०]
पग धरयौ तब भीतर भौन के
अतिथि आवन आयसु पाइ कै,
कठिन-शीतज-ताप-विघातिनी
अनल दीर्घ-शिखा जहँ फँकती ।

[११]
चपल दीठि चहूँ दिसि जाइ के
पथिक की पहुँची इक कोन में;
वय-पराजित जीवन-जंग में
दिन गिनै नर एक परो जहाँ ।

[१२]
सिर-समीप सुता मन मारि कै
पितहिं सेवति सील सनेह सों
तहँ खड़ी नत गात, कृशाङ्गिनी
लसति वारि-विहीन मृणाल सो ।

[१३]
लखि फिरी दिसि आवनहार के
विमल आसन इङ्गित सों दयो;
अतिथि बैठि असीस दयो तबै
"फलवती सिगरी तुव आस हो" ।

[१४]
मृदु हँसी, करुणा-रस-संगिनी
तरुनि आनन ऊपर धारि के
कहति "हाय पथी ! सुनु बावरे,
न तरु नीरस में फल लागई ।

[१५]
"गति लखी विधि की जब वाम मैं
जगत के सुख सोँ मुख मोरि कै,
पितृ-निदेश निवाहन, औ सदा
अतिथि सेवन, को व्रत मैं लयो ।

[१६]
"अब कहो निज नाम, चले कहां ?
कहहु आवत हौ कित तेँ, इतै ?
विचलि कै चित के किहि वेग सोँ
पग धरयौ पथ तीर अधीर ह्वै ?

[१७]
"अखिल-आस-अमी रस सींचि के
सतत राखति जो तन-बेलि हीं,
पथिक ! बैठि अरे तुव बाट को
युवति जोवति है कतहूँ कोऊ ?

[१८]
"नयन कोउ निरन्तर धावहीं
तुमहिं हेरन को पथ बीच में ?
श्रवण-बाट कोऊ रहते खुले
कहु, अरे, तुव आहट लेन को ?

[१९]
"कहु कहूँ तोहिं आवत जानि कै,
निकटता तुव प्रेम-प्रदायिनी
प्रथम पावन कारण होत है
* चरन-लोचन-बीच बदाबदी ?

[२०]
"करि दया, भ्रम जो सुख देत है
सुमन-मञ्जुल-जाल बिछाइ कै
कठिन, काल, निरंकुश निर्दयो
छिनहिं छीनत ताहि निवारि कै ?"

[२१]
दबि गयो उन बैननि-भार सों
पथिक दीन, मलीन, थको भयो;
अचल मूर्त्ति बन्यौ, पल एक लौं
सब क्रिया तन की मन की रुकी ।

[२२]
बदन पौरुष-हीन विलोकि के
नयन नीरन उत्तर दै दयो—
"तव यथार्थ सबै अनुमान है
अति अलौकिक देवि दयामयी" !

---

* पहले निकट पहुँचने के लिए आँख और पैर के बीच बाज़ी लगती है; अर्थात् आँख के स्थान विशेष पर पहुँचने के पहले ही पैर पड़ जाता है जो कि मनुष्य के गिरने का कारण होता है। अतएव यहां लटपटाती हुई चाल से अभिप्राय है। रा० गु०

[२३]

अचल नैननि सो सुनिहारते
पथिक को अपनी दिसि देखि के,
इमि लगी कहने फिरि कामिनी
अति पवित्र दया-व्रत-धारिणी ।

[२४]

"कुशलता न अहै यहि में कछू,
अरु न विस्मय की कछु बात है;
*दिवस जो दुख की दिसि खेवही
गति लखैं मग में उलटी सबै"।

[२५]

उभय मैान रहे कछु काल लैां;
पथिक ऊपर दीठि उठाइ कै
इक उसास भरी गहरी जबै
यह कढ़ी मुख ते वचनावली—

[२६]

"अवनि-ऊपर देश-विदेश मैं
दिवस घूमत ही सिगरे गये;
मिसिर, काबुल, चीन, हिरात की
चरण धूरि रही लिपटाइ है।

[२७]

"पर-दशा-दिशि-मानस-योगिनी
लखि परी इकली भुव बीच तू।
यह विशेष विचारि सुनावहूं
सुतनु ! मो तनु पै जु व्यथा परी।

[२८]

"मन परै दुख की जब वा घरी
पलटि जीवन जो जग में दयो
चतुर "मेजर" के वश हैां, अहो
जब कियो अपनो सुख-नाश मैं।

[२९]

"हित-सनेह-सने मृदु बोल सोँ
जब लियो इन कानन फेरि मैं।
स्वजन और स्वदेश-स्वरूप को
करि दयो इन आँखिन ओट हा!

[३०]

"अब परैं सुनि वाक्य यही हमैं
'धरहु, मारहु, सीस उतारहू'
दिवस रैन रहै सिर पै खरी
अति कराल छुरी अफ़ग़ान की।

[३१]

"पथिक हो, यह आस हिये धरे,
मम वियोगिनि भामिन को अजैां
अपर-लोक-पयान प्रयास ते
मम-समागम-संशय रोकि है।

[३२]

"कहुँ यहीँ इक मन्मथ गांव है
जहँ घनी बसती विधु-वंश की
तहँ रहे इक विक्रमसिंह जो
सुवन तासु यही रनवीर है।"

[३३]

कहत ही इन बैनन के तहां
मचि गयो कछु औरहि रंग ही;
वदन अञ्चल-बीच छिपावती
वह परी गिरि भूतल भामिनी।

[३४]

असम साहस वृद्ध कियो तबै,
उठि धरयो महि मैं पग खाट तें,
"पुनि कहो" कहि बारहि बार ही
पथिक को फिरि फेरि निहारई।

[३५]

आशा त्यागी बहु दिनन की नेकु ही मैं पुरावै
लीला ऐसो जगत प्रभु की, भेद को कैान पावै!

---

* जो संसारसागर में अपने दिनों को दुःख की ओर खे रहे हैं वे मार्ग में दूसरी वस्तुओं को (जैसा नैाका पर चढ़ के चलते समय देख पड़ता है) दूसरी ओर (उलटे) अर्थात् सुख की ओर जाती हुई देखते हैं। तात्पर्य्य यह कि जो लोग संसार में दुःख भोग रहे हैं वे समझते हैं कि उनको छोड़ कर और सब लोग सुख पा रहे हैं। यह मनुष्य का स्वभाव है। स्त्री का पति विदेश से नहीं फिरा, इससे वह पथिक को समझाती है कि अपनी प्रिया ही से मिलने वह जा रहा है। रा० शु०

देखो, नारी सुकृत-फल को बीच ही माँहि पायो;
भूलो प्यारो, निज-प्रियतमा-पास आयो, सुहायो।

रामचन्द्र शुक्ल।

वसन्त-वर्णन।

(कालिदास के ऋतुसंहार से)

[१]

प्रफुल्लचूताङ्कुरतीक्ष्णसायको द्विरेफमालाविलसद्धनुर्गुणः।
मनांसि वेद्धुं सुरतप्रसङ्गिनां वसन्तयोद्धा समुपागतः प्रिये॥

❋

बौरे रसाल लसैं नव अंकुर
सो मनु बानन कौ बन छायौ
भौंरें जु भौंरन की सुठि माल
सोई परतिंचा कौ भाव जनायौ
प्यारिन सों रस रंग के हेतु
रहै जिनकौ जी सदा ललचायौ
ऐसे युवान के हीय कों बेधिबे
जोधा वसन्त प्रिये! अब आयौ

[२]

द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः।
सुखाः प्रदोषा दिवसाश्च रम्याः सर्वं प्रिये चारुतरं वसन्ते॥

❋

खिल रहे कुसुम द्रुमालि, अम्बु तल
पद्म जाल छविधाम लसै
युवतीं अधिक सकाम, पवन में
वन उपवन मधुगंध बसै
लगैं सुखाली साँझ दिवस की
तरुनाई से ताप नसै
प्रिये! सभी हो रहा मनोहर,
अहो आज ऋतुराज विषै

[३]

वापीजलानां मणिमेखलानां शशाङ्कभासां प्रमदाजनानाम्।
चूतद्रुमाणां कुसुमान्वितानां ददाति सौभाग्यमयं वसन्तः॥

❋

विमल बावड़ी वारि, विविध मणि
जटित चारु कटि तागड़ियां
त्यों शशि सुखद मयूख, सुरत
अभिलाष भरीं नव नागरियां
मुकुलित मधुमद मिलित, मदनव्रत-
सहकारी सहकार खरे
प्रिये! आय इनको करता यह
ऋतु वसन्त सौभाग्य भरे

(क्रमशः)

श्रीधर पाठक।

सरस्वती-अष्टक*।

[१]

अन्य हिन्दी सेवकों ने यत्न कर अविराम
हार मानी निज हृदय में; लिया जब विश्राम।
धन्य धन्य सरस्वती तू, पत्रिका अभिराम
जन्म ही के वर्ष तू ने कर दिखाया काम॥

[२]

नागरी का है किया तू ने विशेष प्रचार
वरन हमको चाहिये कहना, किया उद्धार।
किस प्रकार कृतज्ञता को हम दिखावें आज?
धन्य केवल कह सकें हैं; ऋणी सकल समाज॥

[३]

है नहीं यद्यपि वयस्का; बड़ा तेरा ज्ञान
पा लिया है आज तू ने परम उच्च-स्थान।
बुद्धिमत्ता, विज्ञता से दिन ब दिन सम्मान
बढ़ रहा है देश भर में पास, दूर, समान॥

[४]

देश के साहित्य-सेवक मानते हैं मान
वृद्ध, बालक, बालिका भी हैं करें तव ध्यान।
हैं सभी तेरे अनुग्राहक महामतिमान
हैं गुणग्राहक प्रवर जो देश के विद्वान॥

---

* लेखक के विशेष आग्रह से हम इस कविता को प्रकाशित करते हैं—स० सं०

[५]
जगत के साहित्य-वन से पुष्परज को लाय
मधुर मधु मधुमक्षिका की भाँति आप बनाय।
नागरी-साहित्य-रस-मधु-भृङ्गवर-समुदाय
हैं जहां तक तू उन्हें देती सदा हर्षाय ॥

[६]
कैान होगा जो न लेगा उस सुधा का स्वाद
छोड़ प्रान्तिक-गर्व अपना और व्यर्थ विवाद ?
जो सुभागी चख सकेंगे वह रसाल प्रसाद
वे कदापि नहीं करेंगे नागरी-प्रतिवाद ॥

[७]
नागरी की वाटिका में कल्प-वल्लि समान
तू किया करती अमृतफल मास मास प्रदान।
सर्व्व साधारण प' उनका हो प्रभाव महान
यह विनय मेरा करें स्वीकार श्रीभगवान ॥

[८]
चन्द्रमा की भाँति तेरा नित्य नित्य विकाश
ख़ूब फैलै विश्व में; हो शुभ्र भू-आकाश।
वर्षगाँठ करोड़ अपनी तू गिनै सहुलास
देख तुझको हो प्रसन्न सदैव 'सत्कविदास' ॥

सनातन शर्म्मा सकलानी।

रम्भा।

[१]
रूपवती यह रम्भा नारी;
सुरपति तक को यह अति प्यारी।
रति, धृति भी, दोनों बेचारी
इसे देख मन में हैं हारी ॥

[२]
इसके हाव हृदयहारी हैं;
हारी इससे सुरनारी हैं।
गति इसकी सबसे न्यारी है;
छबि नयनों को सुखकारी है ॥

[३]
जब यह अद्भुत भाव बताती;
वसन इधर से उधर हटाती।
नाभि-नवल-नीरज दिखलाती;
स्तनतट से पट को खिसकाती ॥

[४]
मुनि भी मोहित हो जाते हैं;
प्रचुर ताप तन में पाते हैं।
इसकी लीला कही न जाती;
गति इसकी न समझ में आती ॥

[५]
पहनी पारिजात की माला;
हरित वस्त्र सिर ऊपर डाला।
कर पल्लव किस भाँति उछाला;
श्रुति-कुण्डल क्या ख़ूब निकाला।

[६]
वेश विचित्र बनाया इसने;
मुख-मयङ्क दिखलाया इसने।
भृकुटी धनुषाकार मनोहर;
अरुण दुकूल बहुत ही सुन्दर ॥

[७]
मञ्जु-मृणाल-पराजयकारी
वाम बाहु आभूषणधारी।
किस प्रकार लटकाया इसने;
कमलों को शरमाया इसने ॥

[८]
कटि इसकी न भङ्ग हो जावे;
चलते कहीं न यह गिर जावे।
इससे त्रिबली-बन्ध बनाया;
विधि ने यह चातुर्य्य दिखाया ॥

[९]
इसका कुच-नितम्ब-विस्तार
सचमुच है अत्यन्त अपार।
दृष्टि युवकजन की जो जाती,
थक कर वहीं पड़ी रह जाती ॥
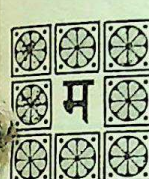
[१०]
शुक के सम्मुख जानेवाली;
सरस भाव बतलानेवाली।
नव-यौवन-मद से मतवाली;
सुर-नर-मुनि-मन हरनेवाली ॥

[११]

इसका चित्र सभी को भाया ;
रविवर्म्मा ने विशद बनाया ।
कौशल उसमें ख़ूब दिखाया ;
रुचिर रूप अच्छा उपजाया ॥

मलाबार ।

मलाबार का पुराना नाम केरल देश है। केर नारियल को कहते हैं। नारियल इस देश में बहुत होता है। इसीलिए इसका नाम केरल पड़ा। इस समय जितना भूभाग मलाबार के अन्तर्गत है, केरल कहने से उससे अधिक का बोध होता है; क्योंकि और भी दो एक ज़िलों की गिनती केरल में हो है।

मलाबार मदरास हाते का एक ज़िला है। वह १०° १५′ और १२° १८′ उत्तर अक्षांश और ७५° १४′ और ७६° ५२′ पूर्व देशांश के बीच में है। उसके उत्तर में दक्षिणी कनारा; दक्षिण में कोचीन और ट्रावनकोर के राज्य; पूर्व में कुर्ग और नीलगिरि पर्वत; और पश्चिम में अरब का समुद्र है। उसका क्षेत्रफल ५,७६५ वर्ग मील और आबादी २,५००,००० है। बोली वहां की मलयालम या मलयाली है। रहनेवाले वहां के मलाबारी या मलयाली कहलाते हैं। प्राचीन मलय पर्वत इसी ज़िले के अन्तर्गत है। यहां चन्दन बहुत होता है। मलयाली शब्द मलयाचल या मलयाचली का अपभ्रंश जान पड़ता है।

मलाबार के दो भाग हैं। उत्तरी मलाबार और दक्षिणी मलाबार। उत्तरी का सदर स्थान टेलिचरी है और दक्षिणी का कालीकट। पर ज़िले का सबसे बड़ा अधिकारी कालीकट ही में रहता है। वह मैजिस्ट्रेट भी है; कलेकृर भी है; और पोलिटिकल एजण्ट भी है। कालीकट और टेलिचरी के सिवा पालघाट, कनानूर, बेपुर और बड़ागरा भी मलाबार के मशहूर शहर हैं। पर इन सब में कालीकट ही सबसे बड़ा है। वह बन्दरगाह भी है। वहां फ़ौज भी रहती है और बन्दरगाह का एक अफ़सर भी रहता है। कालीकट जाने के दो मार्ग हैं। एक थल की राह से, दूसरा जल की राह से। थल की राह से जाने में कालीकट तक बराबर रेल मिलती है। ख़ास कालीकट में मदरास रेलवे का स्टेशन है। जल की राह से जाने में, बम्बई में, जहाज़ पर सवार होना पड़ता है और रत्नागिरी, कारवार, मँगलोर, कनानूर और टेलीचरी होते हुए कालीकट को जाना पड़ता है।

मलाबार पहाड़ी देश है; पहाड़ी ही नहीं, जङ्गली भी है। समुद्र के किनारे किनारे पश्चिमी घाट पर्वत, ३००० से लेकर ७००० फ़ीट ऊंचा, बराबर चला गया है। वह बहुतही निबिड़ जङ्गल से व्याप्त है, जिसमें शेर, भालू, भेड़िये, हाथी और हिरन भरे पड़े हैं। इन जङ्गलों के भीतर, दूर दूर तक, समुद्र की खाड़ियों का जल भरा रहता है। मैदानों में भी जल को बहुत अधिकता है। कोटा, माही और पूर्णा इत्यादि नदियां भी इस ज़िले को अपने पानी से तर किया करती हैं। पानी, जङ्गल और पहाड़ों से प्रायः कोई भी कोना इसका नहीं बचा। यह प्रदेश हमेशा हरा बना रहता है; और नारियल, इलायची, सुपारी और केले के स्वाभाविक और अस्वाभाविक घने घने बनों और उपवनों से अपनी नैसर्गिक शोभा को सदैव बढ़ाया करता है। यहां के मलयानिल से दूर दूर तक का देश सौरभमय हो जाता है। इस प्रदेश ने संस्कृत कवियों को काव्य-रचना के लिए इतना मसाला दिया है कि शायदही कोई ऐसा कवि हुआ होगा जिस ने मलय और मलयानिल पर दो चार श्लोक न कहे हों। इसी मलयानिल-मण्डित देश के राजा के साथ, मलयस्थली में विहार करने की सिफ़ारिश, इन्दुमती से कालिदास, इस प्रकार, करते हैं—

ताम्बूलवल्लीपरिणद्धपूगास्वेलालतालिङ्गितचन्दनासु ।
तमालपत्रास्तरणासु रन्तुं प्रसीद शश्वन्मलयस्थलीषु ॥

मलाबार का मुख्य नगर कालीकट है। यह बहुत बड़ा शहर है। इसके दक्षिण-पूर्वी भाग में मोपला मुसल्मानों की बस्ती है; उत्तर-पश्चिमाञ्चल में पोर्चुगीज़ लोग रहते हैं; जेल, ज़िले की कचहरियां और रोमनकैथलिक गिरजाघर भी उधर ही हैं। इस भाग में एक बहुत बड़ा तालाब है। मलयालियों की बस्ती अलग है। जेल के पास क्रिस्तानों का समाधिस्थान है। यहां पर मलाबार के कलेक्टर और मैजिस्ट्रेट कानली साहब गड़े हुए हैं। १८५५ ईसवी में मोपला लोगों ने आपका .खून कर डाला था। कानली साहब की अदालत में इन लोगों का एक मुक़द्दमा चला। पर जिस पक्षवालों की हार हुई उन्होंने न्यायकारी साहब ही को भाले से छेद डाला। कानली साहब की हत्या होने पर देशी फ़ौज मँगाई गई। मगर मोपलों ने उसे भी मार भगाया। तब गोरों की पलटन आई; उसने इन लोगों का पारिपत्य किया। कालीकट के जिस महल्ले में मोपला लोग रहते हैं उसका नाम मालापुरम् और जिसमें हिन्दू रहते हैं उसका नोलमपूर है। कालीकट में सफ़ाई बहुत रहती है। वहां के मकान, उनके बरांडे, और नारियल तथा अनेक प्रकार के लतापत्रादिक से वेष्टित स्वच्छ वाटिकायें देखकर तबीयत .खुश हो जाती है। ग़रीब से ग़रीब आदमियों के मकान भी मैले नहीं रहते।

यह वही कालीकट है जहां से किसी समय सैकड़ों तरह की छींटें विलायत को जाती थीं। जो कपड़ा कालीकट से जाता था उसका नाम, योरपवालों ने, कालीकट के नामानुसार "कैलिको" रक्खा था। यह "कैलिको" शब्द अब तक प्रचलित है। ११ मई १४९८ ईसवी को सबसे पहले योरप के पोर्चुगीज़ प्रवासी वास्कोडगामा ने कालीकट के किनारे पैर रक्खा। उस समय यह नगर दक्षिण भारत की अमरावती था। वहां सैकड़ों ऊंचे ऊंचे मकान और मन्दिरों के शिखर आकाश में बादलों से बात करते थे। १५०९ ईसवी में, पोर्चुगीज़ों के सेनानायक डान फरनानडो कौटीन्हो ने ३००० सिपाही लेकर कालीकट पर हमला किया; परन्तु वह .खुद मारा गया और उसकी फ़ौज, जो कटने से बची, वह भग खड़ी हुई। १५१० में पोर्चुगलवालों ने इस नगर पर फिर धावा किया और इस बार इसे लूट लिया। परन्तु पीछे से उनको भागना पड़ा और बहुत कुछ नुक़सान भी उठाना पड़ा। १५१३ में कालीकट के ज़मोरिन-राजा ने पोर्चुगीज़ों से सन्धि कर ली और उनको क़िला बन्दी करके एक कोठी खोलने की अनुमति भी दे दी। १६१६ में अङ्गरेज़ों ने भी अपनी कोठी यहां खोली। टीपू ने कालीकट को कई बार जीता और विध्वंस कर दिया। नगर को उसने जला दिया। अनेक स्त्रियों की गरदन पर उनके बच्चों को बांध कर, दोनों को एक साथ ही, फाँसी दे दिया; और शेष को हाथियों के पैरों से कुचला दिया! परन्तु पीछे से टीपू के सेनापति को ९०० आदमियों के साथ अङ्गरेज़ों ने क़ैद कर लिया और १७९२ ईसवी में मलाबार सदा के लिए अङ्गरेज़ी झण्डे की छाया में आ गया।

शङ्कराचार्य्य की जन्मभूमि कालडी गाँव भी मलाबार ही में है। वह पूर्णा नदी के किनारे है। इस नदी का पानी इतना स्वच्छ, मधुर और रोगहारक है कि शायद ही और किसी नदी, तालाब या कुवें का होगा। दूर दूर के आदमी इसका जल पीने के लिए ले जाया करते हैं। इस नदी के किनारे सैकड़ों गाँव हैं। इन गाँवों के निवासी इस नदी में अकसर सुबह से शाम तक ग़ोते लगाया करते हैं। भावुक ब्राह्मण दिन भर इसके तट पर बैठे हुए सन्ध्यावन्दन और पूजन पाठ में निमग्न रहा करते हैं। मलाबारी लोग, स्त्री और बच्चों समेत, त्रिकाल स्नान करते हैं। मलाबार की आब हवा गरम है। के कारण स्नानाधिक्य से उनको कोई कष्ट नहीं होता। यहां की नदियों और तालाबों में मिट्टी का सर्वदा अभाव है। इस कारण, बार बार नहाने से इन लोगों के कपड़े मैले नहीं होते।

मलाबार का जो भाग अधिक पार्वतीय है वह नारियल के निबिड़ जङ्गलों से भरा हुआ है। समुद्र के किनारे किनारे सिवा नारियल के ऊंचे ऊंचे वृक्षों के और कुछ नज़र नहीं आता। नारियल का वहां सबसे अधिक व्यापार होता है। उसका तेल निकाला जाता है; उसके जटाओं की चटाइयां और रस्से रस्सियां बनती हैं; और उसके पत्तों के पंखे और छाते बनते हैं। जो भाग कम पार्वतीय है उस में चावल बहुतायत से होता है। सुपारी, इलायची, जायफल, जायपत्री और लौंग भी वहां ख़ूब होती हैं। क़हवा भी बहुत होता है।

मलाबार में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का अधिक प्रभुत्व है। प्रायः घर की स्वामिनी वही होती हैं। उनके पति उनके घर आते हैं; वे पति के घर नहीं जातीं। वहां पर मातृवंश ही स्थावर जंगम सम्पत्ति का वारिस माना जाता है; पितृवंश नहीं माना जाता। अथवा यों कहिए कि लड़का अपनी मां का कहलाता है, बाप का नहीं कहलाता।

मलाबारी स्त्री-पुरुषों में कोई कोई बातें बहुत ही विलक्षण हैं। यहां के नंबूरी ब्राह्मणों में सिर्फ़ सब से बड़े लड़के का विवाह होता है। उसीकी सन्तति वारिस मानी जाती है। इन ब्राह्मणों में स्त्रियां बहुत वर्षों तक बे-ब्याही रहती हैं। कभी कभी चालीस चालीस पचास पचास वर्ष की बूढ़ी बूढ़ी कुमारिकाओं का व्याह होता है! कोई कोई ब्याही ही बूढ़ी हो कर मर जाती हैं। नायर जाति की शूद्र-स्त्रियों के साथ कभी कभी और वर्णवाले भी विवाह कर लेते हैं। पर इन लोगों के पति नाम के लिए पति होते हैं; अपनी स्त्रियों पर उनका बहुत कम अधिकार रहता है! बहन और बहन की सन्तति ही का स्वामित्व सारी सम्पत्ति पर रहता है। मलाबारियों को एक सम्प्रदाय थियार नाम से प्रसिद्ध है। इन लोगों के भी रीति रवाज नम्बूरियों के ऐसे होते हैं।

तार द्वारा ख़बर भेजने का यन्त्र।

विद्या और बुद्धि के बल से मनुष्य ऐसे ऐसे काम कर सकता है जिनको देखने अथवा सुनने से आश्चर्य होता है। पानी को आग पर चढ़ाने से उससे भाफ निकलने लगती है। उस भाफ में इतना बल आ जाता है कि यदि पानी के ऊपर कोई ढक्कन हो तो वह उसे उछाल कर फेंक देती है। इसी भाफ से रेल का यञ्जिन चलता है और कलकत्ते से कानपुर, जो लगभग ७०० मील दूर है, २१ घण्टे में वह डाक पहुंचा देता है। अर्थात् यदि आज सन्ध्या होते होते कलकत्ते में चिट्ठी डालें तो कल उसी समय वह कानपुर पहुँच जायगी। परन्तु रेल की चाल तार के सामने कुछ भी नहीं है। कलकत्ते से कानपुर तार में ख़बर भेजने से पांच मिनट भी नहीं लगते!
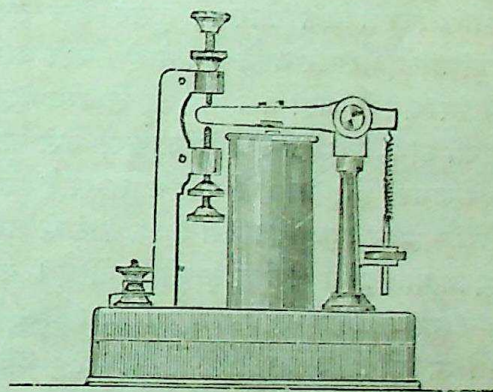
बिजुली के बल से तार चलता है। बिजुली से कहीं कहीं रेल तक चलने लगी है। तार में जो बिजुली काम आती है वह प्रायः ताँबा, जस्ता, तूतिया और पानी के मेल से उत्पन्न की जाती है। एक काँच अथवा चीनी-मिट्टी के बरतन में नीचे ताँबे का एक टुकड़ा रख दिया जाता है। उसके एक छोर में तार का टुकड़ा लगा कर बरतन के ऊपर निकाल लिया जाता है। ताँबे के टुकड़े के

ऊपर लगभग डेढ़ पाव के तूतिया डाला जाता है। तूतिया के ऊपर लकड़ी का बुरादा भर कर और तार लगा हुआ जस्त का एक टुकड़ा रखकर बरतन में पानी भर दिया जाता है। इस प्रकार कई दिन तक रखने से उसमें बिजुली की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। ऐसे बरतनों को 'बैटरी' कहते हैं। आवश्यकता के अनुसार वे बरतन एक दूसरे से तार द्वारा जोड़ दिये जाते हैं। जितनी अधिक बिजुली की शक्ति दरकार होती है, उतनी ही लंबी बैटरी बनानी पड़ती है। यह बैटरी, तार घर में, तार के यन्त्र से तार ही द्वारा जोड़ दी जाती है।

रेल के किनारे किनारे खम्भों पर जो तार लगे हुए हैं, वे, जहां के तारघर से उनका सम्बन्ध है वहां, पतले पतले तांबे के तारों से जोड़कर यन्त्र में लगा दिये जाते हैं। तार के यन्त्र से मिली हुई एक पीतल की चाभी सी होती है, उसे 'की' कहते हैं। 'बैटरी' का एक छोर उसमें लगा रहता है और दूसरा छोर भूमि में। 'की' को दबाने से बिजुली की धारा तारके एक छोर से दूसरे छोर तक, सैकड़ों मील, बराबर बहने लगती है। वही धारा दूसरे तारघर में, जहां उस तार का सम्बन्ध होता है, उसी क्षण, तार के यन्त्र में जाकर, उसे खटखटाने लगती है। तार के एक बहुत सादे यन्त्र का चित्र ऊपर दिया है। उसमें एक छोटे से खम्भे के ऊपर पीतल की एक छड़ सी लगी है। उस छड़ के नीचे ढोल के आकार की एक वस्तु है, उसमें ऊपर से पतला तार लिपटा है। उसके भीतर चुम्बक लगा है। चुम्बक में जब बिजुली की धारा आती है, तब वह पीतल की छड़ नीचे खिँच आती है और जब वह चली जाती है तब वह छड़ फिर अपनी जगह पर जा रहती है। इसी खींचाखींच के कारण, उस पीतल की छड़ का किनारा, आगे की ओर, दो पेचों के बीच में, कभी नीचे जाता है, कभी ऊपर। इसी नीचे ऊपर जाने में जो खट खट शब्द होता है उसीके अक्षर मान लिये गये हैं। यदि एक बार धीरे से शब्द हो तो 'ई' और एक बार धीरे से होकर साथ ही एक [cut off] ज़ोर से भी शब्द हो तो 'अ'। इसी प्रकार वर्णमाला के सब अक्षरों की कल्पना कर ली गई है। अक्षरों से शब्द बनते हैं और शब्दों में प्रतिदिन एक [cut off] तारघर से हज़ारों ख़बरें भेजी जाती हैं।

तार के सादे यन्त्रों में एक ही मनुष्य बैठ[cut off] तार का काम कर सकता है; परन्तु ऐसे भी [cut off] अब निकले हैं जिनमें चार चार मनुष्य एक [cut off] साथ बैठकर एक ही तार के ऊपर जुदी [cut off] चार ख़बरें भेज सकते हैं। यही नहीं; कोई [cut off] यन्त्र ऐसे हैं जिनमें ख़बरें जैसी की तैसी [cut off] से छप भी जाती हैं। साधारण यन्त्रों में [cut off] चालीस शब्द से अधिक एक मिनट में नहीं [cut off] सकते; परन्तु एक प्रकार के यन्त्र निकले हैं जो [cut off] मिनट में ५०० शब्द तक तार में भेज सकते [cut off] इन बातों को सोचने से बुद्धि नहीं काम कर[cut off] जिस विद्वान ने तार चलाने की युक्ति निक[cut off] उसको धन्य है। यदि तार न होता तो रेल [cut off] चलना कठिन हो जाता। तारघरों में घण्टियां [cut off] रहती हैं। तार आने के समय यदि तारबाबू [cut off] होता है तो वह घण्टी का बजना सुनकर [cut off] पड़ता है।

तार की कोई कोई अद्भुत बातें सुनकर [cut off] ही आश्चर्य होता है। विलायत में बड़े बड़े [cut off] गरों ने निज के तारघर खोल रक्खे हैं। लण्ड[cut off] एक बार एक साहब रात को अपनी दूका[cut off] आये। दूकान के भीतर तारघर था और [cut off] सिपाही वहीं सोता था। साहब चिल्लाते [cut off] किवाड़ खटखटाते रहे; परन्तु वह सिपाही न [cut off] इस तारघर का सम्बन्ध, ग्लासगो में जो एक [cut off] दूकान साहब की थी, उससे था। लण्डन [cut off] यह तारघर था वहां एक दूसरा तारघर [cut off] और वह भी ग्लासगो से सम्बन्ध रखता [cut off] साहब ने इस दूसरे तारघर से ग्लासगो [cut off] भेजा। ग्लासगो में जब तार पहुँचा तब [cut off] साहब के तारघर में भेजा गया। वहां से [cut off]

ख़बर लण्डन आई। लण्डन में साहब की दूकान के भीतर तारघर में जब घण्टी बजी तब वह सिपाही जगा और साहब के लिए उसने किवाड़ खोला। किवाड़ खुलाने के लिए कितना झगड़ा करना पड़ा। परन्तु इतनी दूर ख़बरें आने जाने में बहुत देर नहीं लगी। केवल दस मिनट में सब हो गया!

अब इटली के मारकोनी साहब ने विना तार ही के तार की ख़बर भेजने की युक्ति निकाली है। सरस्वती में, इस बेतार के तार का भी, किसी समय, वृत्तान्त देने का विचार है।

कुण्डलिनी।

कूजन्ती कुलकुण्डली च मधुरं मत्तालिमालास्फुटं
वाचः कोमलकाव्यबन्धरचनाभेदादिभेदक्रमैः।
श्वासोच्छ्वासविवर्तनेन जगतां जीवो यया धार्य्यते
सा मूलाम्बुजगह्वरे विलसति प्रोद्दामदीपावली॥

षट्चक्रनिरूपण।

अर्थात् कोमल काव्य की रचना के क्रमानुसार, मत्त भ्रमरवत्, मधुर मधुर तानों का आलाप करती हुई, जो, समस्त सांसारिक जीवों के प्राण, श्वासोच्छ्वास के आवागमन द्वारा, धारण किये रहती है, प्रदीप्त दीपावली के समान उस कुण्डलिनी का घर मूलाधार की कमल रूपी गुहा है।

साधारण मनुष्यों की इन्द्रियों से अतीत इस कुण्डलिनी का वर्णन हम बहुत थोड़े में करना चाहते हैं। परन्तु, इस विषय में कुछ लिखने के पहले हम यह बतलाना आवश्यक समझते हैं कि योग क्या चीज़ है; क्योंकि कुण्डलिनी केवल योगियों की ही ज्ञानगम्य वस्तु है। योगसिद्ध योगी ही उसे जान सकते हैं।

चित्त की वृत्ति को रोकने के अनन्तर उसे अपने ही में लय करके, आत्म-स्वरूप के अनुभव में निमग्न हो जाने पर मनुष्य की जो स्थिति होती है, उसे योग कहते हैं। योग के आठ अङ्ग हैं। यथा—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। सच बोलने, चोरी न करने, दूसरे की चीज़ पाने की इच्छा न रखने और वीर्य्य की रक्षा करने का नाम यम है। सन्तोष, पवित्रता, जप, तप और ईश्वर के भजन-पूजन को नियम कहते हैं। अष्टाङ्ग योग की सहायक कुछ विशेष प्रकार की बैठकों को आसन कहते हैं। श्वासोच्छ्वास की स्थिरता को प्राणायाम कहते हैं। चित्त को आत्मरूप में लीन करने और इन्द्रियों को विषयों से पराङ्मुख करने का नाम प्रत्याहार है। जहां इच्छा हो वहीं चित्त को स्थिर कर देना धारणा कहलाती है। धारणा के अखण्ड अनुभव का नाम ध्यान है। ध्यान और धारणा का सम्बन्ध हो जाने पर जब मन का लय हो जाता है और किसी दूसरी वस्तु का अनुभव नहीं होता, तब जो स्थिति होती है, उसे समाधि कहते हैं। वही योग की चरम सीमा है। यम और नियम के मेल को वैराग्यकला; आसन और प्राणायाम के मेल को अभ्यासकला; धारणा, ध्यान और समाधि के मेल को संयम; और प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, इन चारों, के मेल को समाधिकला कहते हैं। अभ्यासकला का नाम हठयोग और समाधि तथा वैराग्यकला का नाम राजयोग है।

हठयोग में ८४ आसन होते हैं। उनमें से १८ मुख्य हैं। उनमें से भी सिद्धासन और वज्रासन की महिमा विशेष है। मलेन्द्रिय और मूत्रेन्द्रिय के बीच में बायें पैर का तलवा, शिश्न के ऊपर दाहना पैर और छाती के ऊपर चिबुक, अर्थात् ठुड्ढी, रखकर निश्चिन्त भाव से दोनों भौंहों के मध्यभाग को देखते रहने का नाम सिद्धासन है। और, मलत्यागेन्द्रिय और शिश्न के बीच की सीवन को बांये पैर की एँड़ी से दबाकर उस पर दाहना पैर रखकर बैठने का नाम वज्रासन है। इन दोनों आसनों से मूलबन्ध की सिद्धि होती है। इन आसनों

के द्वारा सीवन को ज़ोर से दवाने के अनन्तर, मलत्यागेन्द्रिय का आकुञ्चन करके, अपान, अर्थात् अधोगामी वायु, का नीचे जाना रोक कर उसे ऊपर ले जाने को योगी मूलबन्ध कहते हैं।

आसनों की सिद्धि हो जाने पर प्राणायाम किया जाता है। वह तीन प्रकार का है—पूरक, कुम्भक और रेचक। श्वास-वायु को नाक के रास्ते से धीरे धीरे खींचने को पूरक, मस्तकरूपी कुम्भ में उसे भर रखने को कुम्भक और धीरे धीरे उसे नाक की ही राह से छोड़ने को रेचक कहते हैं। १२ सेकण्ड तक पूरक करके, पचास सेकण्ड तक कुम्भक करने के बाद, कोई पचीस सेकण्ड में रेचक करना सध जाने पर कनिष्ठ प्रकार का प्राणायाम होता है। इस प्राणायाम का बारह गुना अभ्यास बढ़ने से प्रत्याहार होता है। प्रत्याहार का बारहगुना होने से धारणा होती है। धारणा के बारहगुना काल को ध्यान कहते हैं। और ध्यान के बारहगुना अभ्यास को समाधि कहते हैं। अर्थात् एक दिन रात (२४ घण्टे) तक श्वास-वायु को मस्तक में बन्द रखने का नाम ध्यान और बारह दिन तक अखण्ड ध्यान में मग्न रहने का नाम समाधि है।

योगियों ने १२ चक्रों की भावना की है—६ शरीर में और ६ की मस्तक में। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध और अग्नि—ये चक्र शरीर के भीतर कल्पना किये गये हैं। मस्तक में जो ६ चक्र हैं उनमें से पहला त्रिकुट नामक है। वह दोनों भौंहों के कुछ ऊपर है। और चक्र उसके आगे हैं। जो चक्र सब के ऊपर है उसका नाम मेरुशिखर अथवा सहस्रार चक्र है। इन चक्रों के स्थान, रङ्ग, दल, दलों के अक्षर, और देवता माने गये हैं। उनका विवरण हम नीचे के कोष्ठक में देते हैं—

चक्रों के नाम	स्थान	रङ्ग	दलों की संख्या	दलों के अक्षर	देवता
मूलधार	गुद	लाल	४	व से स तक	गणेश
स्वाधिष्ठान	शिश्न की जड़	पीला	६	ब से ल तक	ब्रह्मा
मणिपुर	नाभि	नीला	१०	ड से फ तक	विष्णु
अनाहत	हृदय	लाल-पीला-मिश्रित	१२	क से ठ तक	रुद्र
विशुद्ध	कण्ठ	धुँधला-धूसर	१६	अ से अः तक	जीवात्मा
अग्नि	भौंहों का बीच	बिजुली के समान	२	ह और क्ष	परमात्मा
मेरुशिखर (सहस्रार)	ब्रह्मरन्ध्र	चमकीला अवर्णनीय	१०००	ओंकार	एक अनिर्वचनीय चिन्मय शक्ति

इन चक्रों में भिन्न भिन्न प्रकार के कमलों की भावना की गई है और उनके प्रत्येक दल—प्रत्येक पखुड़ी—में एक एक अक्षर अङ्कित किया हुआ माना गया है। इस चक्र-कल्पना को विशद करने के लिए हम, यहां पर, एक मानवचित्र देते हैं। उसमें सब चक्र यथास्थान दिखलाये गये हैं। इन चक्रों के बीच में, नीचे से ऊपर तक, एक सर्पिणी बनी है। वही कुण्डलिनी है। उसका एक चित्र हम अलग देते हैं।

योगिजन कहते हैं कि पीठ की हड्डी, अर्थात् मेरुदण्ड या रीढ़, के एक इस तरफ़ और एक उस तरफ़, ऐसी दो छोटी छोटी नलियां हैं। उनके भीतर से दो तरह के ज्ञानतन्तु-प्रवाह बहा करते हैं। इन नलियों में से एक का नाम इड़ा और

का पिङ्गला है। इनके बीच में एक ग्रैर नली है। योगी उसे सुषुम्ना कहते हैं। जिसे वे कुण्डलिनी कहते हैं वह सुषुम्ना के सबसे नीचे के भाग में रहती है। जैसे सर्पिणी कुण्डलाकार बैठती है वैसे ही यह भी अपने स्थान में कुण्डली—घेरे—किये हुए बैठी रहती है। इसकी कुण्डलियों की संख्या साढ़े तीन मानी गई है। इसका आकार तिकोना होता है। योग की साधना करके योगिजन इस सोई हुई कुण्डलिनी को जगाते हैं। उसके जगाने के लिए ही योग का अभ्यास किया जाता है। अभ्यास बढ़ने [illegible] कुण्डलिनी जागृत हो उठती है। जागृत होने पर, सर्पिणी जैसे एक जगह पर स्थिर नहीं रहती, वैसे ही यह भी चञ्चलता दिखाने लगती है। सुषुम्ना नाड़ी पोली होती है। इस लिए उसी के भीतर ही भीतर वह सिर की तरफ़ चढ़ने लगती है; ग्रैर जिन चक्रों का वर्णन ऊपर किया गया है उनको भेद करते हुए, ब्रह्मरन्ध्र तक वह चली जाती है। जैसे जैसे वह ऊपर की ग्रोर जाती है तैसे ही तैसे योगियों के सांसारिक बन्धन ढीले होते जाते हैं ग्रैर भिन्न भिन्न प्रकार की अनेक अलौकिक शक्तियां उनको प्राप्त होती जाती हैं। यहां तक कि शरीर ग्रैर मन से योगियों का सम्बन्ध बिलकुल ही नष्ट हो जाता है ग्रैर वे परमानन्द में मग्न हो जाते हैं। इस अवस्था को पहुँचने पर उन्हें परमात्मा का शुद्ध रूप देख पड़ने लगता है।

वज्रासन ग्रैर सिद्धासन का अभ्यास होने पर मूलबन्ध की सिद्धि होती है। मूलबन्ध सध जाने पर अपान-वायु का अधोगमन बन्द हो जाता है। तब वह ऊपर की ग्रोर जाने लगता है ग्रैर मार्गमें सोई हुई कुण्डलिनी को ज़ोर से धक्का देता है। उसके धक्कों से वह क्षुब्ध हो कर धीरे धीरे जग उठती है ग्रैर अपनी कुण्डलियों को खोल कर सीधी हो जाती है। उस समय सुषुम्ना का द्वार खुल जाता है ग्रैर प्राण तथा अपान वायु का योग होने से योगी को बहुत कष्ट होता है। जगने पर कुण्डलिनी हृदय के नीचे की वायु को पीकर हड्डी, शिरा ग्रैर मांस के रस को चूसती है; प्राण-वायु को अधोगामी ग्रैर अपान-वायु को ऊर्ध्वगामी करती है; ग्रैर पूर्वोक्त चक्रों का भेद करती हुई ऊपर चढ़ जाती है। यथोक्त रीति से जब योगी इस कुण्डलिनी को सहस्रार चक्र में पहुँचा देता है तब उसे जो आनन्द मिलता है वह अवर्णनीय है। उस चक्र में कुण्डलिनी को ठहरा रखना ही योगी का सबसे बड़ा कर्तव्य है। मोक्ष का साधनीभूत, महातेजों का तेज, योगद्रुम का अद्भुत फल, परमानन्द का अधिष्ठान ग्रैर अनादि तथा अक्षय्य परमात्मसंज्ञक तत्व वहीं रहता है। वहां रहनेवाले अनिर्वचनीय परमात्मा का अवलोकन करने के लिए ही यह अखण्ड अध्यवसाय किया जाता है।

सुषुम्ना नाड़ी के नीचे के सिरे के पास मज्जा का एक टुकड़ा है। उसका भी आकार तिकोना है। यह बात शरीर-शास्त्र के जाननेवालों ने अपनी आँखों देखी है। उसे ही योगियों ने कुण्डलिनी माना है ग्रैर जिन भिन्न भिन्न चक्रों की उन्होंने कल्पना की है वे भी एक प्रकार के मज्जाकन्द ही हैं। मनुष्य के शरीर में सहस्रशः ज्ञानतन्तु फैले हुए हैं। उन सब का सम्बन्ध मस्तक से है। मस्तक ही में ज्ञान का भण्डार है। वही ज्ञानतन्तुओं की राजधानी है। ज्ञानतन्तुओं के द्वारा दो प्रकार के ज्ञानप्रवाह बहा करते हैं। एक ग्राहक, दूसरा अभिसारक। ग्राहक प्रवाह बाहरी ज्ञान को मस्तक में पहुँचाता है। ग्रैर अभिसारक मस्तक से ज्ञान को बाहर ले आता है। पृष्ठरज्जु, मेरुदण्ड, या रीढ़ का ऊपरी भाग गोल है। पर वह सिरके भीतरी भाग से मिला हुआ नहीं है। सिरके भीतर जो एक प्रकार का रस है उसीके ऊपर वह गोला तैरा करता है। ज्ञान को लेने या देने का काम वह वहीं समाप्त कर देता है।

संसार में कई प्रकार की शक्तियां है। उनमें से विद्युत् अर्थात् बिजुली की शक्ति भी एक शक्ति है। यह शक्ति विलक्षण है। जिस शक्ति के बल से किसी पदार्थ के सब परमाणु एकही साथ, एक

ही तरफ़, जाने लगते हैं उसे बिजुली की शक्ति कहते हैं। श्वासोच्छ्वास से शरीर के परमाणुओं की धारा या वृत्ति एकही तरफ़ बहती है। और, मन जब इच्छामय हो जाता है तब ज्ञानप्रवाह को भी बिजुली ही की शक्ति के समान एक शक्ति प्राप्त होती है। अर्थात् जब इच्छा का प्रवाह ज्ञानतन्तुओं में बहने लगता है तब उसमें थोड़ी बहुत बिजुली की शक्ति आ जाती है। शरीर की सब शक्तियां जब मन के आधीन हो जाती हैं, और एक तरफ़ यथेच्छ प्रवाहित होने लगती हैं, तब शरीर एक तरह की बिजुली की बैटरी (ख़ज़ाना--कोश) बन जाता है। यह बात प्राणायाम करने से सिद्ध होती है। उससे शरीर की सब क्रियायें यथानियम होने लगती हैं और एक प्रकार की शक्ति का प्रवाह बह उठता है।

ज्ञानतन्तुओं के ही मार्ग से सब प्रकार का ज्ञान होता है। इन तन्तुओं का जाल मन ने ही बनाया है। इसलिए योगियों का कथन है कि यदि मन इस जाल को तोड़ दे तो और मार्ग से भी सब बातों का ज्ञान हो सके। वह मार्ग वही पूर्ववर्णित इच्छा, शक्ति, या बिजुली का प्रवाह है। ऐसा होने से आप ही आप ज्ञान होता रहैगा और उसे शरीर के आधीन न रहना पड़ैगा।

सुषुम्ना नाड़ी रीढ़ के भीतर होती है। उसका मुँह नीचे बन्द रहता है। यदि वह खुल जाय और उसके भीतर से ज्ञानप्रवाह बहाते बनै तो ज्ञान-तन्तुओं से काम लेने की ज़ुरूरत न रहे। जितने पूर्वज्ञान हैं सब मूलाधार चक्र में रहते हैं। कल्पना कीजिए कि हमने १९०४ की प्रदर्शनी बम्बई में देखी। उसमें देखे गये पदार्थों का ज्ञान मूलाधार में अङ्कित रह जाता है। और भावना या क्रिया की शक्ति से वह फिर नया हो उठता है, अर्थात् प्रति-बिम्बित हो जाता है। उस शक्ति ही का दूसरा नाम कुण्डलिनी है। अब यदि, मन को स्थिर करके उससे किसी एकही वस्तु की बहुत अधिक भावना या चिन्तना की जाय तो मूलाधार चक्र सन्तप्त हो उठे और उसकी गरमी से कुण्डलिनी नामक श[क्ति] जग पड़े। तब इच्छा की प्रबलता से यदि वह सुषु[म्ना] के भीतर कर दी जा सके और ऊपर की ओर [...] के आगे दूसरे मज्जा-चक्र को भेदती हुई वह ब्रह्मा[ण्ड] तक पहुँच जाय तो विलक्षण बातों का ज्ञान [हो]ने लगे। उस समय ज्ञानप्राप्ति के लिए ज्ञानतन्तु[ओं] की अपेक्षा न रहे। बहुत अधिक अभ्यास बढ़ने [से] अनन्त जन्मों में एकत्र की गई शक्ति का स[...] यदि, इस तरह, सुषुम्ना के मार्ग से मस्तिष्क [तक] पहुँचाया जा सके तो मन ज्ञानमय अथवा वि[...]च्छक्तिमय हो जाय। जगत् में जितनी वैद्युति[क] शक्ति है उसका उससे एकत्व हो जाय। अतएव [...] अपने मन को इस स्थिति को पहुँचा दे उ[से] सर्वज्ञ होने में कोई सन्देह न रहे।

कुण्डलिनी जब ईप्सित स्थान को पहुँच ज[ाती] हैं तब योगी को सारा संसार ही ज्ञानमय देख प[ड़ने] लगता है। कुण्डलिनी को जागृत करने ही से पर[मा]त्मज्ञान की देदीप्यमान शिखा उसके सामने ज[लती] सी लगती है। अतीन्द्रियशक्ति और परमज्ञान [की] प्राप्ति होती है। जहां कहीं कोई अलौकिक [...] देखने में आवे वहां समझना चाहिए कि ज्ञा[नतः] अथवा अज्ञानतः कुण्डलिनी का थोड़ा बहुत प्र[वाह] सुषुम्ना में अवश्य हो गया है। योगियों का ऐसा मत है। उनका साक्ष्य इसी प्रकार का है।

स्कूली किताबें।

[ग]ये वर्ष, मार्च की सरस्वती के [...] में, रीडर्स के विषय में हमने [...] टिप्पणी लिखी थी। पाठकों ने [...] देखा होगा। गवर्नमेण्ट को [...] रीडर्स दरकार हैं, यथा—

(क) लोअर प्राइमरी, अर्थात् सबसे नीचे [के] दरजों के लिए विज्ञान और कहानियों[की] एक रीडर।
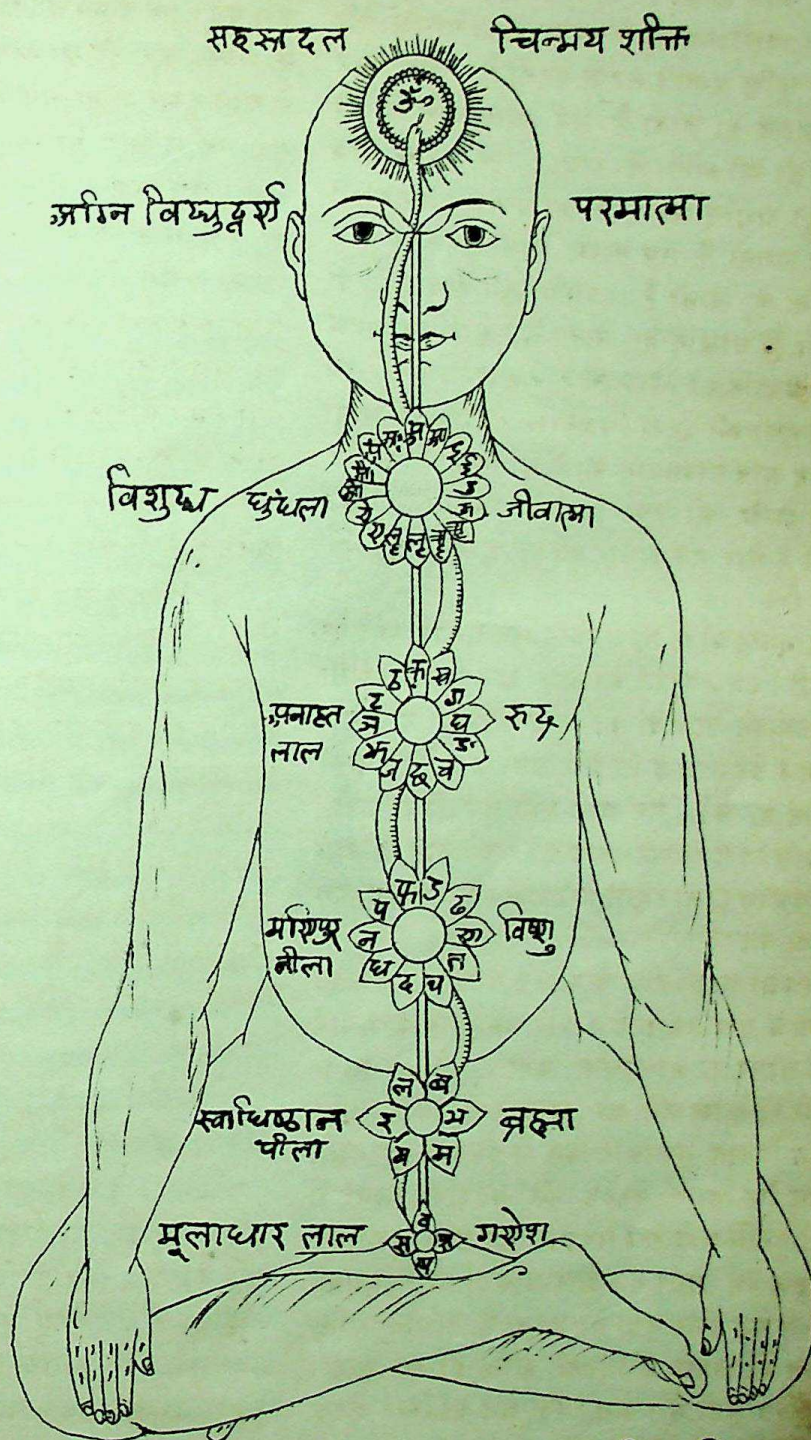
शरीरान्तरस्थ कुण्डलिनी
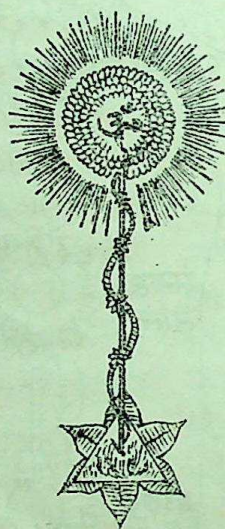
(ख) अपर प्राइमरी, अर्थात् मँझले दो दरजों के लिए क़िस्से कहानियां, जीवनचरित, नीति-मूलक उपदेश और कविता आदि से भरी हुई एक रीडर।

(ग) मँझले और मिडिल (सबसे ऊपर के दो दरजों) के लिए एक विज्ञान-रीडर। इसके दो भाग दरकार हैं। पहला भाग मँझले दरजों के लिए और दूसरा ऊपर के दरजों के लिए।

प्रत्येक रीडर दो दो वर्ष तक पढ़ाने के लिए चाहिए। इन तीन प्रकार की रीडर्स के लिए गवर्नमेण्ट ने इनाम देने का इश्तहार दिया। प्रत्येक रीडर के बनानेवालों में से सबसे अच्छी तीन रीडर्स बनानेवालों को पाँच पाँच सौ रुपया उसने देना मंज़ूर किया। अर्थात् प्रति रीडर के लिए १५००, और तीनों के लिए ४५०० रुपये गवर्नमेण्ट ने खर्च करना चाहा। इन रीडर्स को गवर्नमेण्ट ने ऐसी भाषा में माँगा जो हिन्दू और मुसल्मान दोनों समझ सकें और बिना किसी कठिनता के नागरी और फ़ारसी दोनों अक्षरों में लिखी जा सकें।

गवर्नमेण्ट के इश्तहार को पढ़कर रीडर्स लिखने की धूम मच गई। अनेक बाबू, पण्डित, मुन्शी और साहब लिखने पर उतारू हुए। फ़रवरी से लेकर अगस्त तक लोग रीडर्स लिखने में जुटे रहे। आज्ञा थी कि (क) और (ख) रीडर्स फ़ारसी के भी अक्षरों में छपा कर भेजी जायँ और नागरी के भी अक्षरों में। और उनका तरजुमा भी अङ्गरेज़ी में भेजा जाय। अर्थात्, एक एक रीडर की तीन तीन रीडर्स बनें। परन्तु ८ अगस्त के गज़ट में हुक्म हुआ कि इन रीडर्स का अङ्गरेज़ी तरजमा तो अवश्यही हो; पर नागरी और फ़ारसी दोनों अक्षरों में उनको छपाना आवश्यक नहीं। दो में से एक ही प्रकार के अक्षरों में छपाने से काम निकल जायगा। साथ ही यह भी कहा गया कि जिसकी ख़ुशी हो वह दोनों अक्षरों में भेजे। परन्तु नागरी और फ़ारसी अक्षरों में लिखी गई रीडर्स की भाषा में, विशेष करके पद्य में, यदि अन्तर हो तो, जिस भाग में अन्तर हो वह भाग दोनों अक्षरों में छपाकर भेजा जाय। जान पड़ता है किसीको एक ही भाषा, दोनों अक्षरों में लिखने में कठिनता मालूम हुई; और यह कठिनता पद्य लिखने में और भी अधिक बढ़ गई। इसीसे शायद गवर्नमेण्ट को यह नया नियम बनाना पड़ा।

पहले हुक्म था कि अगस्त में सब रीडर्स डाइरेकृर साहब को भेज दी जायँ। परन्तु रीडर्स बनानेवालों के सुभीते के ख़याल से यह मुद्दत बढ़ा दी। आज्ञा हुई कि आक्टोबर के अन्त में किताबें भेजी जायँ।

एक पादरी साहब ने गवर्नमेण्ट को याद दिलाई कि (क) और (ख) रीडर्स में ऐसे पाठ भी रहें जिनमें शराब, अफ़ीम, गाँजा और भाँग इत्यादि की हानियां बतलाई गई हों। पादरी साहब की चिट्ठी गवर्नमेण्ट ने ९ जुलाई के गज़ट में रीडर्स बनानेवालों के जानने के लिए छापी। इस गज़ट में गवर्नमेण्ट ने और भी एक नई बात बतलाई। उसने (क) रीडर का विस्तार भी बतलाया। यदि ये सब बातें पहले ही से बतला दी जातीं तो बहुत अच्छा होता।

यथासमय, आक्टोबर में, रीडर्स भेजी जाने लगीं। पर एक आध लिखनेवाले ने गवर्नमेण्ट से फिर भी समय बढ़ाने की प्रार्थना की! पर इस बार यह प्रार्थना नामंज़ूर हुई। सब रीडर्स पहुंच जाने पर, उनकी जाँच के लिए, गवर्नमेण्ट ने एक कमिटी बनाई। उसमें उसने ये मेम्बर रक्खे—

साहब {
१ माननीय मिस्टर आर० जी० हार्डी, सी० एस० आई०, रेविन्यू बोर्ड के सीनियर मेम्बर (सभापति)
२ डाकृर जी० एफ़० डब्लू० थीबो, पी० एच० डी०, प्रिंसिपल म्योर कालेज।
३ मिस्टर जे० मरे, एम० ए०, स्कूलों के इन्स्पेकृर, मुरादाबाद।
४ डाकृर ए० एच० इविंग, एम०ए०, पी. एच. डी., इलाहाबाद।
}

हिन्दू

६ पण्डित सुन्दरलाल साहब, बी० ए०, इलाहाबाद।
७ पण्डित कालीदत्त साहब दुबे, एम० ए०, स्कूलों के असिस्टण्ट इन्स्पेकृर, बनारस।
८ बाबू राधारमण साहब, एम० ए०, डेप्युटी कलेकृर, पीलीभीत।

मुसलमान

९ सैयद ज़ैनुद्दीन साहब, एम० ए०, डेप्युटी कलेकृर, मैनपुरी।
१० शेख़ इबादुल्ला साहब, एम० ए०, स्कूलों के असिस्टण्ट इन्स्पेकृर, शाहजहांपुर।

ये सब साहब १५ नवम्बर १९०४ को, म्योर सेंट्रल कालेज, इलाहाबाद में इकट्ठे हुए। २७ रीडर्स उनके सामने पेश हुईं। उन पर उन्होंने २८ नवम्बर तक विचार किया; और २९ नवम्बर को, कमिटी के मन्त्री मरे साहब ने, गवर्नमेण्ट को एक रिपोर्ट भेजकर, इस काम से फ़रागत पाई। जितनी रीडर्स विचार के लिए उपस्थित की गईं उनकी एक फ़ेहरिस्त हम नीचे देते हैं—

(क)

१ न्यू नेचर रीडर, भाग १। मिस्टर हैरी बानबेरी, बी० ए०, हेडमास्टर, जुबिलीहाईस्कूल, लखनऊ की बनाई।
२ जनरल रीडर, लोअर प्राइमरी। लिखनेवाले का नाम नहीं दिया गया। प्रकाशक मैकमिलन कम्पनी।
३ इण्डियन प्रेस रीडर, भाग १। मिस्टर ई० जी० हिलकृत, प्रकाशक इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।
४ लोअर प्राइमरी रीडर। लिखनेवाले का नाम नहीं दिया गया। प्रकाशक इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।
५ हिन्दुस्तानी रीडर। "सिगमा" की बनाई।
६ लोअर प्राइमरी क्लासेज़ रीडर। "बी० एस० आर०" (B. S. R.) की बनाई।
७ लोअर प्राइमरी रीडर। बाबू रामजीदास भार्गव, सम्पादक, "अवध रिव्यू," लखनऊ की बनाई।
८ लोअर प्राइमरी रीडर। राय देवीप्रसाद, बी० ए०, बी० एल०, कानपुर की बनाई।
९ लोअर प्राइमरी रीडर। बाबू "दुर्गा परशाद अनुवादक (पेंशनर) की बनाई।
१० लोअर प्राइमरी रीडर। मुंशी सन्नूलाल गु बलन्दशहर की बनाई।
११ मख़ज़न इख़लाक़। मुंशी बांकेबिहारीलाल बरेली कृत।
१२ लोअर प्राइमरी रीडर, भाग १-२। बाबू हीरा लाल, पोस्टमास्टर (पेंशनर), अलीगढ़ कृत
१३ लोअर प्राइमरी रीडर। पण्डित "इक़बाल किशन," स्कूलों के असिस्टण्ट इन्स्पेकृर, रुहेलखण्ड डिवीज़न की बनाई।
१४ पहली, दूसरी और तीसरी रीडर्स। ला नत्थनलाल, बलन्दशहर की बनाई।
१५ लोअर प्राइमरी रीडर। पण्डित गिरवरसहाय पांडे, उन्नाव की बनाई।

(ख)

१ न्यू जनरल रीडर। मिस्टर हैरी बानबेरी, बी० ए० हेड मास्टर, जुबिली हाई स्कूल, लखनऊ कृत
२ जनरल रीडर। "बी० एस० आर०" (B. S. R.) कृत।
३ अपर प्राइमरी जनरल रीडर। बाबू रामजीदास भार्गव, सम्पादक, "अवध-रिव्यू," लखनऊ कृत
४ अपर प्राइमरी जनरल रीडर। लिखनेवाले का नाम नहीं दिया गया। प्रकाशक इण्डियन प्रेस इलाहाबाद।
५ अपर प्राइमरी रीडर। पण्डित मनोहरलाल ज़ुत्शी एम० ए०, मौलवी महम्मद उसमान अयूब बी० ए०, और पण्डित काशीराम, एम० ए० –ट्रेनिङ्ग कालेज, इलाहाबाद की बनाई।
६ अपर प्राइमरी जनरल रीडर। राय देवीप्रसाद बी० ए०, बी० एल०, कानपुर कृत।

(ग)

१ न्यू नेचर रीडर, भाग २-३। मिस्टर हैरी बानबेरी बी० ए०, हेड मास्टर, जुबिली हाई स्कूल, लखनऊ की बनाई।

२ सायन्स रीडर। लिखनेवाले का नाम नहीं दिया गया। प्रकाशक मैकमिलन कम्पनी।

३ सायन्स रीडर। "बी० एस० आर०" (B. S. R.) कृत।

४ अपर प्राइमरी और सेकण्डरी रीडर्स। बाबू रामजीदास भार्गव, लखनऊ कृत।

५ इण्डियन प्रेस रीडर्स २-३। मिस्टर ई० जी० हिल कृत।

६ अपर प्राइमरी और सेकण्डरी रीडर्स। राय देवीप्रसाद, बी० ए०, बी० एल०, कानपुर कृत।

इस प्रकार १५+६+६=२७ रीडर्स लिखी गईं, अथवा कमिटी के सामने पेश हुईं। (ग) रीडर्स में नम्बर ३ को छोड़कर और सब दो दो भागों में थीं। (क) और (ग) रीडर्स में से, इण्डियन प्रेस के लिए, हिल साहब की लिखी हुई किताबों की कमिटी ने ख़ूब तारीफ़ की और गवर्नमेण्ट से सिफ़ारिश की कि स्कूलों में वही जारी की जायं। इन दो प्रकार की रीडर्स में से नीचे की रीडर्स के लिए इनाम की योजना हुई—

(क)—१ हिल साहब की रीडर
२ मैकमिलन कम्पनी की रीडर
३ बाबू रामजीदास की रीडर

(ग)—१ हिल साहब की रीडर
२ मैकमिलन कम्पनी की रीडर
३ बानबेरी साहब की रीडर

(क) के विषय में कमिटी की राय हुई कि इस प्रकार की रीडर्स के योग्य कविता, उर्दू और हिन्दी में, नहीं है। इससे जो कविता नम्बर १ (क) में है वह निकाल डाली जाय और "ईसाप्स फेबल्स" की तरह की छोटी छोटी कहानियां उसकी जगह रख दी जाँय।

(ग) सिर्फ़ अङ्गरेज़ी में हैं। कमिटी ने सिफ़ारिश की कि नम्बर १ का तरजमा बहुत ही महावरेदार देशी भाषा में किया जाय, जिसमें यह न जान पड़े, कि वह अङ्गरेज़ी का तरजमा है।

(ख) रीडर्स में से कोई रीडर, कमिटी की नज़र में, जारी करने लायक़ नहीं समझी गई। अधिक मेम्बरों की राय में बाबू रामजीदास की किताब औरों से अच्छी जँची। इस लिए कमिटी ने उसके लिए इनाम दिलाने की सिफ़ारिश की और यह भी कहा कि यदि इससे अच्छी और कोई किताब न मिले तो यही जारी कर दी जाय। पर यदि यह जारी की जाय तो फ़ारसी के शब्द कम कर दिये जायं; उर्दू कवियों की क्लिष्ट कविता सरल कर दी जाय; और अङ्गरेज़ी साहित्य के आधार पर लिखे गये पाठों को कम करके हिन्दुस्तान के इतिहास और रामायण-महाभारत आदि के आधार पर कुछ पाठ रक्खे जायं। परन्तु कमिटी ने गवर्नमेण्ट को सलाह दी है कि (ख) रीडरें फिर लिखाई जायं और उनके लिए दुबारा इनाम दिये जाने की घोषणा हो तो अच्छा है।

कमिटी की रिपोर्ट पढ़कर लफ्टिनेण्ट गवर्नर ने उसे बहुत बहुत धन्यवाद दिया और कहा कि इनाम देने के लिए शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर को लिख दिया जायगा। परन्तु जो रीडर्स जारी होने को हैं उनके विषय में पीछे से हुक्म दिया जायगा।

इस तरह एक वर्ष बाद इस रीडरी झमेले का फ़ैसला हो गया। जारी होनेवाली रीडरों के विषय में अब गवर्नमेण्ट का आख़िरी हुक्म आना बाक़ी है।

जापान में स्त्री-शिक्षा।

एक अङ्गरेज़ी मासिकपुस्तक में जापान पर एक लेख निकला है। उसमें स्त्री-शिक्षा का बहुत ही अच्छा, बोधप्रद और उपयोगी वर्णन है। उसमें लिखा है कि बौद्धमत का प्रचार होने के पहले जापान में स्त्री और पुरुष दोनों बराबर समझे जाते थे। पुरुषों से स्त्रियों का दरजा किसी प्रकार कम न समझा जाता था। औरों की तो बात ही क्या है; रानियां और राजकुमारियां तक बाहर निकलती थीं; घोड़ों पर सवार होती थीं; और दूर दूर तक शिकार खेलने निकल जाया

करती थीं। पुरुषों की तरह वे भी युद्ध-विद्या सीखती थीं; हथियार बाँधती थीं; लड़ने जाती थीं; और फ़ौजों का नायकत्व भी करती थीं—फ़ौजों का "कमाण्ड" करती थीं। युद्ध ही में वे निपुण न होती थीं। और और बातों में भी वे योग्यता दिखाती थीं। वे कविता करती थीं और बड़ी बड़ी किताबें लिखकर इस बात को मानो वे सप्रमाण सिद्ध कर देती थीं कि स्त्रियां पुरुषों से किसी विषय में कम नहीं हैं। आत्मिक उन्नति की तरफ़ भी उनका ख़याल रहता था। धर्म्म और कर्तव्य को वे सब से अधिक प्रधानता देती थीं।

जब बुध और कनफ़ुशस के धर्म्म ने जापान में प्रवेश किया तब स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में कुछ परिवर्तन हो गया। स्वदेशप्रीति, कर्तव्यपालन, दैव पर विश्वास, दयाभाव, धर्म्मोत्साह और सजातियों तथा सम्बन्धियों का आदर—स्त्रियों में पहले से अधिक उदय हो उठा। परन्तु इन धर्म्मों ने एक नई बात पैदा कर दी। वह यह कि लोग, तब से, स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा हीन समझने लगे। उनका यह भी ख़याल हो गया कि स्त्रियां स्वभाव ही से पापात्मा होती हैं। सब यही समझने लगे कि आज्ञापालक और नम्र होना ही स्त्रियों का प्रधान धर्म्म है। उनको सिर्फ़ इतनी ही शिक्षा देना उचित समझा जाने लगा जितने से वे घर-गृहस्थी के काम काज अच्छी तरह कर सकें; सीने, बुनने और रंगने के सब काम कर सकें; घर को सुसज्जित रख सकें; और गीत-वाद्य से अपने घरवालों और आये गये मेहमानों को प्रसन्न कर सकें।

कुछ काल के अनन्तर जापान में जब उन लोगों की प्रभुता बढ़ी जो युद्धजीवी, अर्थात् क्षत्रियधर्म्म के अनुयायी, थे तब स्त्रियों की स्थिति में फिर परिवर्तन हुआ। पहले की अपेक्षा उनका सम्मान बढ़ा। वे पुरुषों की सहयोगिनी समझी जाने लगीं। गाने बजाने के साथ नाचना भी स्त्रियों के लिए आवश्यक हुआ। क्षत्रियों की स्त्रियों ने शस्त्र चलाना भी सीखा। ख़ञ्जर से काम लेने में उन्होंने विशेष विज्ञता प्राप्त की। सब स्त्रियां अपने सलूके भीतर ख़ञ्जर बाँधने लगीं। यह ख़ञ्जर शत्रुओं मारने के भी काम में आने लगा और बाँधनेवा स्त्रियों के भी। सतीत्वहरण या किसी प्रकार दुःसह अपमान होते देख स्त्रियां अपने ख़ञ्जर अपने कलेजे में धँसाने से न हिचकने लगीं। हथि यार चलाने की शिक्षा स्त्रियों को घर ही में जाती थी स्त्रियों के लिए जो गुण आवश्यक हैं उनमें तो वे किसी प्रकार त्रुटि न होने देती थीं; पर, समय आने पर, अपने हथियारों के ब अपने पति की सहायता करने और अपनी इ बचाने में भी वे क़सर न करती थीं।

जब शोगन जातिवालों का प्रभुत्व बढ़ा लिखना पढ़ना, विशेष रूप से, स्त्रियों को सि लाया जाने लगा। समुराई सम्प्रदाय की के लिए स्कूल और कालेज खुल गये। पर सम्प्रदाय की स्त्रियों की शिक्षा की तरफ़ कम रहा। इससे किसी किसी का यह ख़याल हो कि स्त्रियों को ऊंची शिक्षा देना हानिकारक है। डर हुआ कि बहुत पढ़ जानेसे स्त्रियां बिगड़ जायँ अपने को पुरुषों की बराबरी का समझने लगें घमण्डिनी हो जायँगी। और विवाह होने पर पतियों को प्रसन्न न रख सकेंगी। परन्तु बड़े लोगों के यहां की स्त्रियां बराबर शिक्षा पाती रहीं कोई घर पर, कोई स्कूल में। सास, ससुर, और पुत्र की आज्ञा मानना, सब से उदार रखना, क्रोध न करना, मैली कुचैली न रह झूठ न बोलना और घर का कामकाज दिल कर करना—ये सब बातें स्त्रियों के हृदय में अ तरह अङ्कित की गईं।

आजकल तो जापान में स्त्री-शिक्षा ने बहुत ज़ोर पकड़ा है। बौद्धधर्म्म के प्रचार के पहले स्त्रि की वहां जो स्थिति थी उससे भी उनकी आज की स्थिति ऊंची हो गई है। जापानियों का यह ख़याल है कि जिसकी स्त्री शिक्षित नहीं है पूरा पूरा सुख कदापि नहीं मिल सकता; उ

जीवन ग्रानन्द से नहीं व्यतीत हो सकता; उसे गृहस्थाश्रम का मज़ा हरगिज़ नहीं प्राप्त हो सकता। मिकाडो ने क़ानून जारी कर दिया है कि सात वर्ष की उमर होने पर लड़कियों को मदरसे भेजना ही चाहिए। न भेजने से मा बाप को दण्ड होता है। हर गांव ग्रोर हर शहर में लड़कियों के लिए स्कूल हैं। उनमें दिनों दिन लड़कियों की संख्या बढ़ती जाती है। हर शहर में लड़के ग्रोर लड़कियों के लिए हाई स्कूल ग्रोर नार्मलस्कूल खुले हैं; कहीं कहीं पर लड़कियों के लिए अलग ग्रोर लड़कों के लिए अलग हैं। कालेज ग्रोर विश्वविद्यालय तक लड़कियों के लिए हैं; वे योरप ग्रोर अमेरिका के कालेज ग्रोर विश्वविद्यालयों से किसी बात में कम नहीं हैं। मामूली लिखने पढ़ने के सिवा शरीर-रक्षा के नियम भी स्कूलों में सिखलाये जाते हैं ग्रोर जिस प्रकार की शिक्षा स्त्रियों को अधिक लाभ-दायक या ग्रावश्यक है उसकी तरफ़ विशेष ध्यान दिया जाता है। टोकियो में जो लड़कियों का विश्व-विद्यालय है उसमें जो अध्यापक ग्रोर अध्यापिकायें हैं उनकी योग्यता को देख कर योरपवाले भी ग्राश्चर्य्य करते हैं। स्त्रियों ने बहुत सी सभायें स्थापित कर रक्खी हैं। उनमें वे समाज, साहित्य ग्रोर देशहित ग्रादि की बातों पर विचार करती हैं। पुस्तकालय ग्रोर क्लब भी स्त्रियों के अलग हैं। जापानी स्त्रियों में एक बात ऐसी है जो शायद ही किसी दूसरे देश की स्त्रियों में पाई जाती हो। वह स्वदेश प्रीति है। पुरुषों के हृदय में जैसे अपने देश की अखण्ड प्रीति सतत वास करती है वैसे ही स्त्रियों के हृदय में भी उसका अखण्ड वास है। यही कारण है जो रूस-जापान युद्ध में अपने देश की सहायता के लिए स्त्रियों की कौन कहै, छोटी छोटी लड़कियां तक, अपने जेब ख़र्च से रुपये पैसे बचा कर भेज रही हैं। स्त्रियां अपने ज़ेवर बेच रही हैं, सिर के बाल काट काट बाज़ार भेज रही हैं ग्रोर ग्राधे पेट रह कर पति-पुत्र से भी अधिक प्यारे अपने देश की सहायता के उपाय सोच रही हैं। जापान-नारी, तुम धन्य हो।

मैं कैसे डाक्टर हो गया।
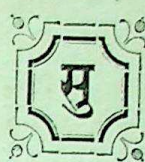
सुनते हैं, अमेरिका में एम० ए०, बी० ए०, एम० डी०, डी० सी० एल० ग्रादि पदवियां मोल बिकती हैं; ग्रोर बहुत सस्ते भाव बिकती हैं। हमारे देश में भी ये पदवियां ग्राने लगी हैं। कुछ दिन हुए एक अमेरिकन एम० डी० की पदवी प्राप्त करनेवाले बङ्गाली बाबू के सम्बन्ध में, अङ्गरेज़ी अख़बारों में, बहुत कुछ "भवति न भवति" हुई थी। अङ्गरेज़ी के प्रसिद्ध विलायती अख़बार "टिट-बिट्स" में एक मनुष्य, जो शायद एक कल्पित व्यक्ति है, अपने विषय में यों लिखता है—

दूसरों के नाम के पीछे दो दो चार चार अक्षरों की लांगूल लगी हुई देख कर मुझे बड़ा ही डाह होता था। केम्ब्रिज ग्रोर ग्राक्सफ़र्ड की "डिगरियां" मेरे लिए वैसी ही अप्राप्य थीं जैसे चन्द्रबिम्ब के पर्वत-शिखर। जैसे जैसे मेरी उम्र बढ़ने लगी तैसे ही तैसे डाह की मात्रा भी मेरे मन में वृद्धि पाने लगी। "डाक्टर ग्राफ़ सिविल लाज़" (डी० सी० एल०) में कैसे हो जाऊं? यही चिन्ता दिन रात मुझे सताने लगी।

ग्राह! मेरी नस नस में ग्रानन्दातिशय का प्रवाह एक दिन सहसा उमड़ उठा। मैंने प्रातःकाल अपने मेज़ पर एक नीला लम्बा लिफ़ाफ़ा पाया। उस पर बड़ी ही मनोहर लाख की लाल लाल कई मोहरें लगी थीं। तुरन्त ही मैंने उसे फाड़ा। भीतर उसके एक छपा हुआ लम्बा काग़ज़ निकला। देखने में वह बहुत ही सुन्दर था। उस पर इलिनस प्रान्त के चिटालोंगा-विश्वविद्यालय के सभापति के दस्त-ख़त थे। उसमें लिखा था कि वह विश्वविद्यालय, थोड़ी फ़ीस लेकर, डाक्टरों की कुछ पदवियां उन विद्वानों को देने के लिए प्रस्तुत है जिन्होंने क़ानून, विज्ञान, साहित्य ग्रोर डाक्टरी में ख़ूब नाम पैदा किया हो। उसमें, ग्रागे, यह भी था कि कई लोगों की सिफ़ारिश पर मेरा नाम भी ऐसे उम्मेदवारों की सूची में दर्ज कर लिया गया है।

अपने हृदय के उच्च अभिलाष को पूरा करने, और जन्मभर डाक्टर कहलाये जाने, की ख़ुशी का अवसर आ गया। मैं आनन्द से फूल उठा। एक फ़ार्म पर, जो उस पत्र के साथ ही आया था, झट मैंने अपना नाम, धाम, उम्र, और विद्या की नाप जोख लिख कर उसे भेज दिया और कुल ३० रुपये फ़ीस, जो माँगी गई थी, रवाने कर दी। एक महीने तक, बड़ीही उत्सुकता से राह देखने पर, एक दिन, एक फ़ुट लम्बी सर्टीफ़िकेट मेरे मेज़ पर आ गिरी। चिटालोंगा विश्वविद्यालय की प्रवेशिका परीक्षा पास करके मैं "अण्डर ग्रैजुयट" हो गया! साथ ही इसके सभापति जी का पत्र भी आया। उसमें आपने बहुत ही मेहरबानी और हमदर्दी ज़ाहिर की थी। पत्र के साथ क़ानूनी किताबों की नामावली भी नत्थी थी। सभापतिजी ने लिखा था कि इन किताबों को एक बार देख जाने ही से डाक्टरी परीक्षा में मैं पास हो जाऊंगा। तीन महीने से अधिक इसके लिए दरकार न होंगे।

मैंने सोचा कि यल० यल० बी० होने के लिए कम से कम दो वर्ष दरकार होते हैं। डी० सी० यल० होने के लिए तो ८ भी कम हैं। इस लिए मैं ने सभापति जी को सैकड़ों धन्यवाद दिये और उनके नियमों को मैंने स्वीकार कर लिया। परन्तु क़ानूनी परीक्षा के पहले एक और परीक्षा देनी होती है। उस झगड़े से निवृत्ति पाने के लिए सभापति जी ने कृपापूर्वक ६० रुपए की दूसरी फ़ीस मंज़ूर कर ली; और मैं वह परीक्षा देने से बच गया।

अब मैं किताबें याद करने बैठा। तब तक मेरी दूसरी फ़ीस इलिनस पहुँच गई। इस पर मेरे नाम एक और पत्र वहां से आया। उसमें लिखा था कि क़ानूनी सवालों का जवाब देने में बड़ा झगड़ा होगा। इस लिए क़ानून के किसी विशेष विषय पर केवल एक लेख लिख कर मैं भेज दूं। मेरे सदृश विद्वान् की परीक्षा इतनी ही बस होगी। न विषय ही मेरे लिए कोई चुना गया; और न किताब ही कोई चुनी गई। यह सोने में सुगन्ध हुई। मैंने क्या किया सो सुनिए। "साधारण क़ानून" नामक एक मोटी किताब का एक पूरा प्रकरण, मोती के समान सु[ंदर] हुरूफ़ों में नक़ल करके, मैंने भेज दिया। उस[के] साथ मुझे तीसरी फ़ीस, १२० रुपए की, भे[जनी] पड़ी। यह आख़िरी फ़ीस थी, यह जानकर मैं [बहुत] भी ख़ुश हुआ।

मेरी अभिलाषा-पूर्ति का समय निकट आ[या।] मेरे मन की सब से ऊँची उमङ्ग सिद्ध होने [पर] आई। मैं बड़ी ही उत्सुकता से दिन बिताने ल[गा।] उत्सुकता क्या थी, पूरा पूरा बोख़ार था। अ[न्त में वह] दिन आया। मेरा धैर्य, मेरा रुपया, मेरा श्रम-स[फल] हुआ। चिट्ठीरसां ने मुझे, एक दिन, सवेरे ही, [एक] बहुत वज़नी नीला लिफ़ाफ़ा दिया। इसके भी[तर] मेरा जीवन-सर्वस्व, मेरा डिप्लोमा, मिला। मैं "डा[क्टर] आफ़ सिविल लाज़" (डी० सी० यल०) हो ही ग[या।]

पौधों में रसप्रवाह।

डार्विन की इवोल्यूशनल (ev[olu]tional) उपपत्ति वैज्ञानिक सं[सार] में बड़ी प्रतिष्ठा के साथ [मानी] जाती है। जिसको हम प्र[ाण]रहित पदार्थ (dead mat[ter]) समझते हैं उससे वृक्ष, वृक्ष से पशु, और पशु [से] मनुष्य हो गये। यही इस उपपत्ति का सारांश [है।] इसके प्रतिपादन में डार्विन ने मानव-शरीर [और] पशु-शरीर में बहुत समता दिखलाई है। पशु-श[रीर] और वृक्ष-शरीर में भी बहुत से शारीरिक [व्यापार] एकसे होते हैं। इसमें आश्चर्य ही क्या है। [सारा] संसार प्राणमय है। जिसकी आत्मा सुप्ताव[स्था में] है उसे हम मृतपदार्थ समझते हैं। परन्तु उस [अ]वस्था से जगने की सम्भावना है। जब वह [धीरे धीरे] कुछ सज्ञानता प्राप्त कर लेगा तब ऊपर उठ[ने की] इच्छा करेगा। इच्छा करने से वह जागृत होगा [और] हम उसे प्राणवान् कहने लगेंगे। पर्वत की [ऊँची] चोटी से पत्थर का टुकड़ा लुढ़कता हुआ नीचे

पड़ा। चकनाचूर हो कर वह मिट्टी में मिल गया। वही पत्थर समय पाकर घास के रूप में परिणत हुआ। निर्जीव पदार्थ सजीव हुआ। सोता हुआ प्राणी अपनी इच्छा से जागृत हो उठा। "मुझमें ऊपर उठने की शक्ति है" यह समझ कर वह ऊपर को बढ़ने लगा। घास से बढ़ते बढ़ते वह बड़ा भारी वृक्ष हो गया। अचल वृक्ष से उन्नति करते करते वह जङ्गम पशु हो गया। चार पैरों से चलनेवाले पशु से वह अपनी इच्छा के बल द्वारा दो पैरों से चलनेवाला मनुष्य हो गया। अब शायद, एक दिन, वही मानव-शरीर आकाश में क़िस्से कहानियों की परियों की भांति उड़ने लगेगा। इसी उपपत्ति के सहारे अमेरिका की हेलन विलमैन्स नामक ग्रन्थ-कर्त्री ने मनुष्य का दीर्घायु—दीर्घायु ही क्यों अमर—हो सकना सिद्ध करने का प्रयत्न किया है! वाह क्या चमत्कार है! अध्यापक बसु ने तो अपनी किताब "रिस्पान्ज़ इन दी नानलिविङ्ग" (Respone in the non-living) में यह सिद्ध ही कर दिया है कि लोहे, सोने, आदि तक में भी जान है। फिर हम पशु-शरीर और वृक्षों में किसी प्रकार की समता को देखकर क्यों आश्चर्य करें?

पशु जो ख़ुराक खाता है उसका सारभाग ख़ून बनकर रुधिर-वाहक नलियों द्वारा उसके शरीर भर में फैल जाता है। उसीकी शक्ति से पशु इधर उधर कूदता फिरता है। पौधे की ख़ुराक रस-रूप में परिणत हो कर उसे हरा भरा रहने की शक्ति प्रदान करती है। पशु-शरीर का रक्त वृक्ष-शरीर का रस है। पशुओं के रुधिर-प्रवाह की भांति पौधों में भी रस-प्रवाह होता है। रस, जोकि वास्तव में पौधों का रक्त है, बड़े वेग से उसकी नलियों द्वारा प्रवाहित होता है। यह वेग, यह बल, उस वेग से कहीं अधिक है, जो हाथी को रुधिर-वाहक नलियों में रक्त प्रवाहित करता है। इङ्गलैण्ड के एक तत्व-वेत्ता ने एक बड़ी आश्चर्यकारक जाँच की थी। उसने एक बड़ी लम्बी नली को नये अंगूर की एक शाखा में, जिसे उसने पृथक् कर लिया था, पहना कर देखा तो मालूम हुआ कि यह रस ४४ फ़ीट ऊंचा चढ़ गया। फ्रांस के शारीरिक विज्ञान के ज्ञाताओं को यह बात बड़ी आश्चर्यकारिणी मालूम हुई। उन्होंने इस अङ्गरेज़ तत्ववेत्ता का विश्वास न करके जब स्वयं आज़मायश की तब अङ्गरेज़ तत्ववेत्ता की बात को ठीक पाकर वे चकित हो गये। डी कैनडोल नामक तत्ववेत्ता ने मालूम किया कि वह वेग जिससे कि पौधे की नलियों में रस चढ़ता है वायु के ढाई गुने दबाव के बराबर है। यह दबाव तौल में जल के पचासी फ़ीट ऊँचे सतून के बोझ के बराबर होता है!

अस्तु। रस प्रवाह में, जो वनस्पतियों में अदृश्य भाव से रहता है, एक बड़ी बलवती शक्ति मालूम हुई है। यह शक्ति बड़े से बड़े पशु के दृश्यमान रुधिर-प्रवाह की शक्ति से कहीं बढ़ कर है। अनेक शारीरिक-विज्ञान-वेत्ताओं ने लिखा है कि जिस वेग से घोड़े की जांघवाली अति विशेष रक्त-प्रवाहक नली में रुधिर प्रवाहित होता है, उससे पांच गुने वेग से, और जिस वेग से कुत्ते की उसी नली में ख़ून बहता है उससे सात गुने अधिक वेग से, अंगूर की नलियों में रस ऊपर को चढ़ता है। हृदय बड़े तीव्र वेग से रक्त-प्रवाहक नलियों में रुधिर प्रवाहित करता है। पर वह भी इतनी शक्ति नहीं रखता है जितनी शक्ति पौधों में रस को ऊपर चढ़ाने के लिये काम आती हैं।

इस लिए यह सिद्ध हुआ कि पौधों की वे नलियां जो मुटाई में बाल से भी कम हैं, जानवरों की उन नलियों से जो अंगुली से भी ज़्यादह मोटी हैं, अधिकतर शक्तिमती होती हैं। तत्ववेत्ता हेल्स ने यह जानना चाहा कि देखें कितनी शीघ्रता से यह रस चलता है। इसके लिए उसने पृथ्वी में एक गहरा गड्ढा खोद कर एक वृक्ष की छोटी सी जड़ को खोल दिया; फिर पानी से भरी हुई एक शीशे की नली में उसने उसको डाला। तब उस नली को उसने पारे में डुबो दिया। इसके बाद उसे मालूम हुआ कि आध इञ्च प्रति मिनट के हिसाब से पारा चढ़ रहा है।

कई पौधों में रस इतनी जल्दी बनता है और इतनी जल्दी बहता है कि थोड़ी ही देर में बहुत सा निकाल लेना कोई असाधारण बात नहीं है। Sugar maple (शुगर मेपल) नामक वृक्ष से, जो कनाडा देश के पहाड़ों पर बहुतायत के साथ उगता है, एक डोल रस प्रतिदिन निकलता है। कनाडा में जितनी शकर ख़र्च होती है उसका सबसे बड़ा हिस्सा इसी वृक्ष के रससे बनाया जाता है। वृक्ष में वहां वाले एक मोटे सूजे से दो चार इञ्च गहरा छेद कर देते हैं। उस छेद में वे एक नल लगा देते हैं। इस नल के द्वारा रस टपक टपक कर एक डोल में इकट्ठा हो जाता है। फिर इस रस को आग पर रख कर वे भाप के रूपमें उड़ा देते हैं। रस उड़ जाने पर कड़ाही के तले शकर बैठ रहती है। इसका रङ्ग भूरा होता है। फिर वे इसकी टिकियाँ बना लेते हैं। साल भर में एक से दो सेर तक शकर एक वृक्ष के रस से बनती है। इस रस को सड़ाने से एक प्रकार की अति उत्तम शराब भी तैयार होती है। गरम देशों में एक प्रकार की खजूर होती है। इससे बड़ी अच्छी बनी बनाई शराब प्राप्त होती है। इस देश में इस शराब को ताड़ी कहते हैं। ताड़ी और कुछ नहीं हैं, केवल शराब पैदा करनेवाली खजूर का रस है। यह खजूर पश्चिमी आफ्रीक़ा में पैदा होती है। इस रस जब निकलता है तब बेनशे का और मीठा होता है, परन्तु थोड़े ही घण्टों बाद उस की बड़ी नशीली शराब बन जाती है। एक वृक्ष से यह बहुत पैदा होती है और बहुत ख़र्च भी की जाती है। आफ्रीक़ा देश के हबशी अपनी तूँबियां इस वृक्ष के अधोभाग की शाखों की जड़ों में लटका देते हैं। वह बड़ी जल्दी इस रस से भर जाती हैं। ये शाखायें इसी काम के लिए, पैदा होने के थोड़े ही दिनों बाद, काट डाली जाती हैं। हमारे देशमें भी नीम का रस बहुत काम आता है। परन्तु यह कम पैदा होता है और केवल पुरानी नीमों से निकलता है। वनस्पतियों के रस-प्रवाह में बहुत ही ज़ियादह शक्ति होती है। रस भी उनमें बहुत ज़िया[दह] निकलता है। स्काट साहब का कथन है कि [व]संत ऋतु में भूर्ज वृक्ष (Birch tree) से इ[तना] रस निकलता है जो तौल में उस वृक्ष के बरा[बर] होता है।

ऐसी बातों को देखकर ख़याल होता है कि [पौधों] में इस रस-प्रवाह का कारण क्या है? कोई [कोई] तत्ववेत्ता केवल शारीरिक या रासायनिक शक्ति ही को इसका कारण बतलाते हैं। पर कोई [रस-]प्रवाहक नलियों के आकर्षण को और कोई [कोई] शृङ्खलाबद्ध विद्युदाघात को भी इसका का[रण] मानते हैं।

परन्तु ये सारी युक्तियाँ केवल एक ही आ[घात] से धूल में मिल जाती हैं। यदि इन शक्तियों [में] कोई शक्ति पौधों के रस-प्रवाह का कारण [है] तो शुष्क वृक्ष को, जिसके तन्तुजाल में कुछ [विका]र न हुआ हो, इन शक्तियों के प्रयोग द्वारा [फिर] से हरा भरा कर देना कोई दुष्कर कर्म न हो[ता]। परन्तु आनन्द की बात है कि शारीरिक-वि[ज्ञान-]वेत्ताओं के मुकुट-मणि ब्रिशट ऐसे विज्ञान वि[शा]रद ऐसी ग़लती में नहीं पड़े। ब्रिशट का क[थन है] कि पौधों के रस-प्रवाह का वही कारण है जो [जान]वरों के रुधिर-प्रवाह का है। डीकैनडोल के [मत] में पौधों में रस के ऊपर चढ़ने का कारण [सजीव] होने से उसकी नसों का सिकुड़ना है। वनस्प[तियों के] रस-प्रवाह को अच्छी तरह देखने के उपरान्त अ[किल] रिचार्ड नामक पण्डित (Achille Richard) [रस-]प्रवाह की शक्ति की समता कीड़ों के रुधिर-प्र[वाह] की शक्ति से करता है। एक जर्मन तत्ववे[त्ता के] मतानुसार, हम, सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा, पौधों [की] नलियों को अपना रस ऊपर चढ़ाने के लि[ए] सिकुड़ते हुए देख सकते हैं। यह तत्ववेत्ता इस [रस के च]ढ़ने का कारण पौधों में प्राण होना बतलाता [है]। इतने प्रमाणों के सामने पौधों में सजीवता [मानने] में आगा पीछा करने का कोई कारण नहीं [है। इस] लेख में जो कुछ लिखा गया है उसकी सत्य[ता]

जाँच हर कोई सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा कर सकता है*।

सूर्य्यनारायण दीक्षित।

सप्ताश्चर्य्य।
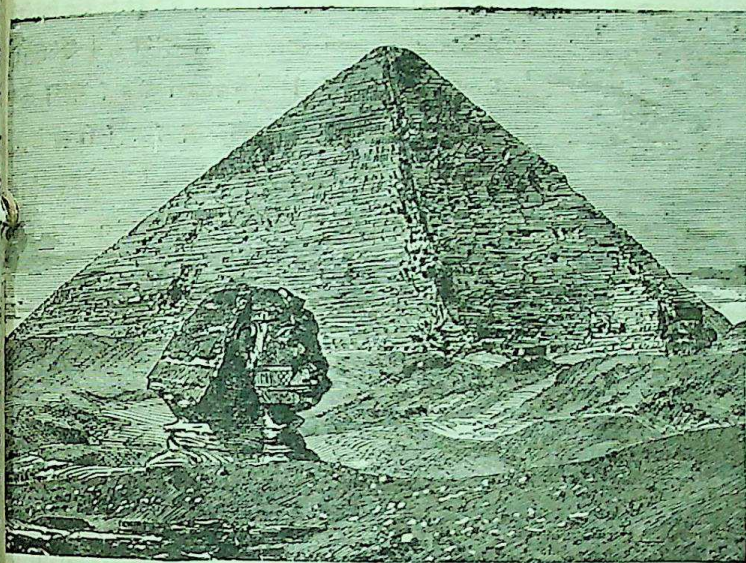
[मिश्र के पिरामिड नामक मीनार]

अँगरेज़ी अथवा योरप की दूसरी भाषाओं का विद्वान् कोई विरला ही होगा जिसने "सप्ताश्चर्य्य" (Seven-Wonders) का नाम न सुना हो। लेकिन इनमें क्या क्या शामिल हैं, वे कहां कहां हैं और उनमें क्या विशेषता है, यह बहुत कम लोग जानते होंगे। "सप्ताश्चर्य्य"—यह नाम असल में ग्रीक विद्वानों का प्रसिद्ध किया हुआ है। वे इसमें इनको गणना करते थे।

१ मिश्र के पिरामिड।
२ बाबुल का शहर।
३ ज्यूपिटर देवता की मूर्ति।
४ इफीसस नगर में डायना देवी का मन्दिर।
५ मासोलस का मक़बरा।
६ अलैक्ज़ेंड्रिया के फ़ैरो।
७ रोड्स नगर की विशाल मूर्ति।

इससे यह न समझना चाहिए कि इनके सिवा संसार में कोई और अद्भुत पदार्थ है ही नहीं; न यह, कि सबसे अधिक आश्चर्य्यजनक केवल यही हैं। ज़रा ध्यान देने से यह विदित होगा कि इनमें केवल मनुष्य को बनाई हुई वस्तुओं की गणना है। "नयागरा जल-निपात" के समान प्राकृतिक आश्चर्य्यों का कुछ ज़िक्र ही नहीं है। सप्ताश्चर्य्यों में केवल बहुत पुराने समय की चीज़ें गिनाई गई हैं। उस समय से अब तक, हज़ारों वर्ष में, मनुष्य ने जो अद्भुत अद्भुत रचनायें की हैं उनकी गिनती ही नहीं की गई। इन दो बातों के अतिरिक्त इस गणना में एक और दोष है। वह यह कि "सप्ताश्चर्य्य" नाम का प्रसिद्धकर्ता ग्रीस का एक विद्वान् था। इस कारण केवल ग्रीस अथवा उसके समीपवाले देशों की चीज़ें इस गणना शामिल हैं। पुराने समय के और और देशों के आश्चर्य्य—जैसे चीन की दीवार,

चीन की दिवार।

* "The Universe" नामक पुस्तक से अनुवादित।
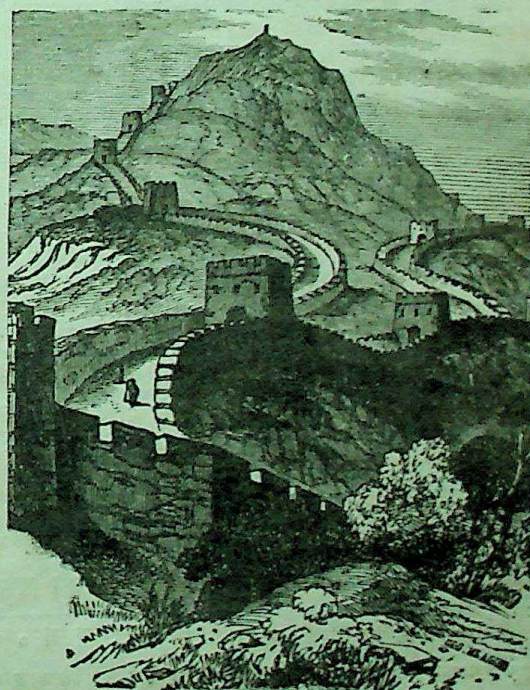
यलोरा के गुफामन्दिर; या उसको अपेक्षा थोड़ा आधुनिक काल लीजिये तो, आगरे में ताजबीबी का रौज़ा इत्यादि, जो इन सातों में से कई एकों से कहीं बढ़कर हैं, गिनती में आये ही नहीं। संक्षेपतया, कहने का तात्पर्य यह, कि पाठक
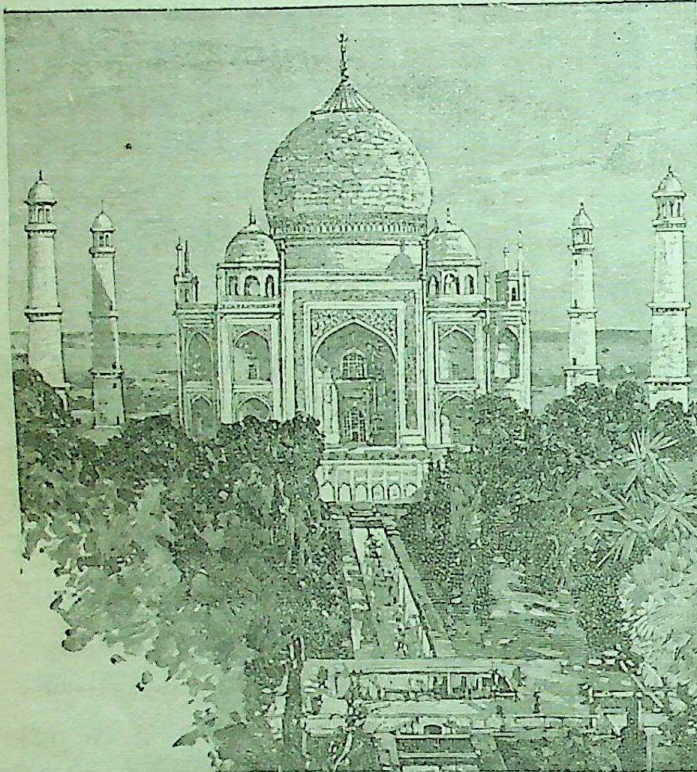
ताजमहल।

कदापि यह न समझें कि, बस दुनिया में महा अद्भुत पदार्थ यही सात हैं; और वे भी पुराने समय के ग्रीस इत्यादि के कारीगर बना गये सो बना गये; न किसी और देशवालों में आश्चर्य्य-कारक पदार्थ बनाने की शक्ति रही और न आधुनिक मनुष्यों में ऐसा सामर्थ्य कि उनके समान वे कुछ कर सकें। बात केवल यह है कि, एक ग्रीक विद्वान ने जो जो चीज़ें देखी थीं; उनमें से सात* उसे बहुत अद्भुत जचीं। उनका हाल लिखकर उसने उनका, और साथ ही, अपना प्रसिद्ध कर दिया। तथापि ये सातों चीज़ें बड़ी ही अद्भुत हैं। इस कारण उनका सं[illegible] हाल अवश्य मनोरञ्जक होगा। आज उनमें मिश्र के पिरामिडों का वृत्तान्त दिया जाता है

पिरामिड ज्यामिति-विद्या की [illegible] प्रकार की ठोस शकल का नाम है। उस[illegible] बनावट यों होती है कि नीचे का भाग चौड़ा, और जैसा जैसा ऊंचा होता जा[illegible] है वैसा ही तङ्ग, होता है। यह इमा[illegible] चौकोन नीव पर या उससे कम या अधि[illegible] कोनेदार नीव पर भी उठाई जा सक[illegible] है*। परन्तु विशेषकर पिरामिड चौक[illegible] ही देखे जाते हैं।

जान पड़ता है, पूर्वकाल में, हर [illegible] के लोग इस प्रकार की इमारतें बहुत ब[illegible] थे; क्योंकि पिरामिड के आकार की इमा[illegible] हिन्दुस्तान, मेक्सिको (अमेरिका में) इंग्लै[illegible] फ़्रांस इत्यादि और और देशों में भी [illegible] जाती हैं। मिश्र में तो सैकड़ों, बल्कि ह[illegible] पिरामिड हैं। तमाम संसार के पिरा[illegible] में मिश्र के गिज़ा नामक स्थान के [illegible] पिरामिड बहुत प्रसिद्ध हैं। एक तो इतने बड़े हैं कि कोसों से पहाड़ के तुल्य दि[illegible] देते हैं। दूसरे उनके चारों ओर तो बालू[illegible] मैदान है। परन्तु स्वयं वे पत्थर के बने [illegible] फिर पत्थर की अनेक शिलायें इतनी बड़ी [illegible] भारी हैं जिनका आजकल की बोझ उठाने[illegible] कलों से भी उठाया जाना कठिन है। पत्थर [illegible] कैसे लाये गये? बिना किसी प्रचण्ड कल के [illegible] वे इतनी उँचाई पर कैसे पहुंचाये गये? इन [illegible]

* क़रीब क़रीब सभी मज़हबों और सम्प्रदायों में ७ का अङ्क कुछ अद्भुत प्रभावशाली समझा जाता है। इसीसे सात ही अद्भुत पदार्थ रक्खे गये हैं। पुराने ज़माने के ज्यौतिष में सात ही ग्रह गिने जाते थे। इसीसे सप्ताह सात दिन का हुआ। [illegible] सात भांवरें होती हैं। और हर काम के लिए यह अङ्क [illegible] ही शुभकारक समझा जाता है।

* गोल नीव पर भी पिरामिड होता है और [illegible] (cone) कहलाता है।

को सोच कर बुद्धि चक्कर खाने लगती है। यह बात भी दृष्टान्त देने योग्य है कि ये अद्भुत इमारतें उस समय यहां बनाई गईं थीं, जिस समय के कला-कौशल सम्बन्धी न कोई और चिन्ह ही मौजूद हैं, और न कोई ऐसी पुस्तकें ही हैं जिनमें उनका वर्णन हो। ये चार हज़ार वर्ष से भी अधिक पुराने कूते जाते हैं, और २८०० वर्ष से तो किसी प्रकार कम नहीं। इतने पर भी इनके अन्दर कमरों मे जो रङ्गीन काम और वेल बूटे इत्यादि बने हुये हैं उनसे जान पड़ता है कि वे आज बनाये गये हैं। इनके अन्दर से सन्दूकों में भरी हुई जो लाशें निकली हैं वे ऐसी अच्छी और परिपूर्ण दशा में हैं मानों वे कल की हैं। किस मसाले से यह अपूर्व बात पैदा की गई, इसका पता आधुनिक वैज्ञानिकों को कुछ नहीं लगता। इन लाशों को देखने से यह भी साबित होता कि उस काल के मनुष्य शरीर में आजकल के मनुष्यों से कुछ अधिक लम्बे चौड़े या अधिक हृष्ट पुष्ट न थे। हमी लोगों की तरह वे भी साधारण आदमी थे। इन पिरामिडों का सा असाधारण काम केवल अतुल श्रम और उद्योग का परिणाम है। सच है, कौन सा कार्य ऐसा कठिन है जो मनुष्य को श्रम से साध्य न हो?

ये पिरामिड नाइल नदी के पानी से घिरे हुए एक त्रिकोणाकृति भूमि पर बने हैं। पहले पहल वे केरो बन्दर से, यानी ५ मील के फ़ासिले से, दिखाई पड़ते हैं। दूर से उन्हें देखने में, एक अद्भुत प्रकार का एक तरफ़ झुका हुआ एक पहाड़ सा दिखाई देता है; मानों एक तरफ़ की नीव कुछ धँस गई हो। जब नज़दीक पहुँचो तब नीव, एक दूसरे से पृथक् देख पड़ती है और पिरामिडों की छोटाई बड़ाई क्रमशः मालूम होने लगती है। इनके लिए मिश्र के उत्तरी पहाड़ों से पत्थर लाये गये थे। वे पहाड़ खुश्की से ६०० मील और नदी की राह से ७०० मील दूर हैं! अनुमान किया जाता है कि नदी ही की राह से पत्थर लाये गये होंगे; क्योंकि खुश्की से लाना तो, एक प्रकार, बिलकुल ही असम्भव जान पड़ता है।

पहले पहल इनका हाल ग्रीस देश के प्रसिद्ध विद्वान हेरोडोटस ने अपने जगत् प्रसिद्ध इतिहास में लिखा है। यह इतिहास, उसने, ईसा के ४४५ वर्ष पहले, लिखा था। अतएव इस इतिहास को बने क़रीब ढाई हज़ार वर्ष हो चुके! इससे पुराना इतिहास और किसी भाषा में नहीं पाया जाता। इस ग्रन्थ में प्रशंसनीय बात यह है कि लेखक ने हर स्थान में यह साफ़ तौर पर लिख दिया है, कि कौन बात उसकी आंखों देखी है, कौन उसने किसके मुंह से जानी या सुनी है और कौन किन किताबों से उसने ली है। इतिहास इसीको कहते हैं; और हिरोडोटस ही इतिहास का जन्मदाता है। इसीसे वह योरपीय विद्वानों में इतिहास-पिता (Father of history) नाम से प्रसिद्ध है। यह इतिहास वास्तव में तो ग्रीक और फ़ारस वालों के युद्ध का हाल है; परन्तु इसमें उस समय के प्रसिद्ध देशों और उनके निवासियों का भी संक्षिप्त विवरण पाया जाता है।

हिरोडोटस से मेम्फ़िस नगर के पुजारियों ने बतलाया कि, सब से बड़ा पिरामिड चिआप्स नामक मिश्र के बादशाह ने अपनी क़ब्र के लिये ईसा के क़रीब ९०० वर्ष पहले बनवाया; एक लाख आदमी, २० वर्ष तक, उसके बनाने में लगे रहे; और चिआप्स की लाश पिरामिड के नीचे एक कमरे में रक्खी गई। उन्होंने यह भी बतलाया कि इस कमरे के चारों ओर एक तहख़ाना है जहां नाइल नदी का पानी ज़मीन के नीचे नीचे एक सुरंग से जाता है।

दूसरा पिरामिड सिफ़रन नाम के राजा ने बनवाया। यह चिआप्स का भाई था और उसके बाद गद्दी-नशीन हुआ। तीसरा पिरामिड पिसेरिनस नामक, चिआप्स के पुत्र, ने बनवाया।

बड़े पिरामिड की बुनियाद ५५०,००० मुरब्बा फ़ीट है। वह चौकोन बना है और एक एक दीवार

७६५ फ़ीट, यानी २५५ गज़, लम्बी है । उँचाई उसकी ४७४ फ़ीट, अर्थात् १५८ गज़, है । असल में उसकी उँचाई ५०२ फ़ीट थी; मगर दो एक खण्ड उसके गिर गये । पिरामिड की बनावट यों है कि एक के ऊपर एक चबूतरे बनाये गये हैं; इस प्रकार से कि ऊपर वाला चबूतरा अपने नीचे वाले से कुछ छोटा है । इस कारण, देखने में वह सीढ़ियों की एक क़तार सी मालूम होती है । इस प्रकार की सब २०३ सीढ़ियां हैं । सीढ़ियों की उँचाई जितना ऊपर जाइए घटती जाती है, और ज्यादा से ज्यादा ४ फुट ८ इञ्च और कम से कम १ फुट ८ इञ्च है । किसी किसी पत्थर के टुकडे की लम्बाई तीस तीस फुट है । इन पत्थरों की तराश और इनपर पालिश ऐसा है कि उसे देखकर आजकल के वैज्ञानिक चक्कर में आते हैं । पिरामिडों पर जब सूर्य्य की रोशनी पड़ती है तब दूर से बर्फ़ का पहाड़ सा दिखाई पड़ता है । यह चमत्कार जिस मनुष्य ने एक बार देख लिया वह आमरण उसे कभी नहीं भूलेगा । हिरेडोटस को इनके बनाने की तरकीब यह बताई गई कि, कारीगरों ने एक बहुत सादी लकड़ी की कोई कल बनाई थी । पहला चबूतरा बन जाने पर उस चबूतरे पर रक्खी हुई कल पर पहले पत्थर चढ़ाया गया । दूसरा चबूतरा बन जाने के बाद उस पर कल चढ़ाई गई और उसके द्वारा दूसरे से तीसरे पर, तीसरे से चौथे पर और इसी तरह क्रमशः चढ़ाते चले गये । पाठक, ज़रा ध्यान तो दीजिये । तीस तीस फ़ीट की विशाल शिला एक लकड़ी की कल से दो दो सौ गज़ ऊपर चढ़ाना; जोड़ाई ऐसी कि कहीं ज़रा भी फ़र्क़ न आने देना; सिमेण्ट ऐसा कि बिलकुल पत्थर से पत्थर को मिला देना ! कैसा अद्भुत काम है ! कोई पत्थर कहीं भी ज़रा टेढ़ा मेढ़ा ऊँचा नीचा नहीं । बिना विशेष ध्यान से देखे जोड़ाई का कहीं पता ही नहीं लगता ।

दूसरे, और कुछ छोटे, पिरामिड की नीव सब तरफ़ ६८४ फ़ीट, याने २२८ गज़, और उँचाई ४५६ फ़ीट है । तीसरा पिरामिड उँचाई में फ़ीट और लम्बाई-चौड़ाई में हर तरफ़ ३३० है । यह पिरामिड है तो सबसे छोटा, मगर से अधिक ख़ूबसूरत पहले यही था । यह, क़िस्म के पत्थर से, जो केवल एक ख़ास जगह है, ढका हुआ था । यह बात प्लीनो नामक रोम के इतिहासकार की किताब से मालूम प है । पर अब तो इस के ऊपर का पत्थर बहुत निकल गया है । यहां पर और भी कई एक छोटे पिरामिड हैं ।

अनुमान किया जाता है कि मिश्र के राजा का यह क़बरिस्तान था । और जिस राजा ने जि दिन राज्य किया उतना ही बड़ा पिरामिड बनवा सका । जैसे मुसलमान मक़बरा बनवा वैसे ही, जान पड़ता है, मिश्र के पुराने नि पिरामिड बनवाते थे; क्योंकि वहां जगह सैकड़ों पिरामिड मौजूद हैं । इनमें किसी कि में ईसा के १४-१५ सौ वर्ष पहले तक के लि पाये जाते हैं ।

पहले यह अनुमान किया जाता था कि मिड बिलकुल ठोस हैं । परन्तु अब, पुरात विद्वानों ने खोदकर, उनमें रास्ता ढूंढ नि है । बड़े पिरामिड का रास्ता नीव से ४७ ऊंचे पर मिला है । इस रास्ते का दरवाज़ा छोटा, ३½ फ़ीट वर्ग है; और अन्दर की १०० फ़ीट तक कुछ ढलुआँ जा कर फिर दा तरफ़ मुड़ा है । यहां से फिर चढ़ाई शुरू होती इस चढ़ाई पर बहुत दूर जाकर रानी का मिलता है । यह कमरा १७ फ़ीट लम्बा, १७ चौड़ा और १२ फ़ीट ऊंचा है । इससे एक और गया है । उसपर १२० फ़ीट की चढ़ाई है राजा का कमरा मिलता है । यह कमरा आलीशान है । यह ३७ फ़ीट लम्बा, १७ चौड़ा और २० फ़ीट ऊंचा है । इसकी दीवारें सङ्गमरमर की हैं; उनपर बहुत ही अच्छा है और हर एक पत्थर का टुकड़ा नीव से

बराबर एकसाँ है। उसमें कहीं जोड़ नहीं। छत सब चिकने लाल सङ्गमरमर की शिलाओं की है। यह शिलायें भी बेजोड़ हैं। इस कमरे के एक सिरे पर ७ फ़ीट ४ इञ्च लम्बा और ३ फ़ीट चौड़ा लाल पत्थर ही का एक तावूत है। इसीमें उस ज़माने के सब से बड़े राज्य का महाराजा दफ़न किया गया था। हा! आज उसकी हड्डियां तक वहां नहीं हैं!

१८१७ ई० में कप्तान कविग्लिया नामक एक इटाली निवासी पुरातत्ववेत्ता ने बड़े पिरामिड के अन्दर की खूब ही जांच परताल की। बड़ी मुशकिलों से उसने एक तीसरा कमरा ढूंढ़ निकाला। यह कमरा ६६ फ़ीट लम्बा, २७ फ़ीट चौड़ा और १५ फ़ीट ऊंचा है। इसके बीच में ५ फ़ीट गहरा एक गढ़ा सा निकला; परन्तु उसमें कोई लाश नहीं निकली।

इन सब कमरों की दीवारों पर रोमन और अरबी नाम खुदे हुए हैं, जिससे जान पड़ता है कि योरोपीय विद्वानों से पहले रोमन और अरब लोगों ने इन कमरों में प्रवेश किया था।

चिआप्स का पिरामिड इतना बड़ा है कि अगर उसके ७४२२ टुकड़े किये जायं तो उसका बड़ा कमरा एक टुकड़े में आ जाय। फिर, अगर, बीच की दीवारों की चौड़ाई इत्यादि के लिये गुञ्जाइश निकाल लीजिये तो उसमें ऐसे ऐसे तीन हज़ार सात सौ कमरे हो सकते हैं! इसी से अनुमान होता है कि शायद इसमें हज़ारों ही कमरे और होंगे, क्योंकि इसके अन्दर सब ठोस होने के लिये कितने सामान की ज़रूरत होती, इसका अन्दाज़ा करना ही बहुत मुश्किल बात है।

११९६ ई० में मिश्र के मुसल्मान सुलतान सलादीन के बेटे ने एक छोटा सा पिरामिड खुदवाना आरम्भ किया। उसके सामान से एक और इमारत तय्यार कराने की ग़रज़ से ऐसा किया गया था। एक बड़ी सेना ८ महीने तक खोदती रही। उसने खोद खोद कर पत्थर का एक ऊंचा पहाड़ सा लगा दिया; परन्तु वह पिरामिड आज तक जैसा का तैसा मौजूद है। उस खोदखाद से उसके आकार प्रकार को ज़रा भी हानि नहीं हुई।

दूसरे और तीसरे पिरामिड में भी कमरे मिले हैं। दूसरे पिरामिड के कमरे में, जिसकी लम्बाई ४६ फ़ीट ३ इञ्च, चौड़ाई १६ फ़ीट ३ इञ्च, ऊँचाई २३ फ़ीट ६ इञ्च है, एक तावूत मिला। उसकी हड्डियां भली प्रकार जाँचने से बैल की मालूम पड़ीं। यह इतिहास-प्रसिद्ध बात है कि मिश्र के पुराने निवासी बैल पूजते थे। इन हड्डियों का मिलना शायद इसी पूजन से सम्बन्ध रखता हो। इस कमरे में अरबी का एक लेख मिला है, जिससे जान पड़ता है कि मिश्र का एक अरब बादशाह इसमें घुसा था।

तीसरे पिरामिड का रास्ता पहले पहल हौवर्ड वाईज़ नामक एक अंग्रेज़ ने, १८३४ ई०, में ढूढ़ निकाला और वहां से राजा मेसोनिस का कफ़न और लाश, ३५०० वर्ष पड़े रहने के बाद, विलायत के अजायब घर में उसने लाकर रक्खा।

सब पिरामिडों के अन्दरूनी कमरों में मिश्र की पुरानी लिपि में कुछ लेख हैं। इस लिपि को एरलोग्राफ़ी कहते हैं। उसमें अक्षरों के स्थान में तसवीरें सी होती हैं। योरप के विद्वानों ने बड़े श्रम से इन लेखों का मतलब बैठाया है। उससे मिश्र के पुराने इतिहास का बहुत कुछ पता लगा है। यह काम कितना कठिन था यह इस बात से प्रकट होगा, कि इस भाषा की कोई किताबें मौजूद नहीं; और इस समय यह न कहीं लिखी जाय, न बोली जाय। इन पिरामिडों के अन्दर रोशनी तो बिलकुल पहुँच ही नहीं सकती और हवा का भी ज़रा कठिनाई से गुज़र है। ये विद्याव्यसनी विद्वान मशालों की रोशनी से टटोलते टटोलते, और कूड़ा कर्कट साफ़ करते करते कमरों में पहुंचते, वहां उस बेजानी हुई भाषा की वे नक़ल करते, या उसका फोटो लेते, और फिर बाहर आकर बरसों उसका मतलब निकालने का प्रयत्न करते थे! बहुतों ने तो अपना स्वास्थ्य इसी

में ग़ारत कर दिया; और मिश्र के इतिहास के बारे में अगर कुछ भी वे ठीक ठीक दुनिया के बता सके तो अपने को उन्होंने उतने ही कृतकृत्य समझा। यही विद्या की सच्ची आराधना है। इस कार्य में इङ्गलैण्ड, जर्मनी और फ्रांस के विद्वानों ने विशेष चेष्टा की। जैसा कह चुके हैं, इन लोगों के पहले रोम और अरब के निवासी वहां गये थे। परन्तु वहां अपना तुच्छ नाम खोद आने के सिवा इनको यह न सूझी कि कुछ पुराना इतिहास खोजने का वे प्रयत्न करें। देखिए विद्यादेवी की सेवा ही के प्रभाव से आज कल अंगरेज़, फ्रेञ्च और जर्मन आदि उस सौभाग्य और सभ्यता को पहुँचे हैं, जो न किसी देश को कभी नसीब हुई, और न कभी किसी को कल्पनाशक्ति उसका अनुमान कर सकी।

ये पिरामिड मनुष्य के श्रम के, सचमुच, महा अद्भुत उदाहरण हैं। पर खेद यह सोच कर होता है कि सारा श्रम एक व्यर्थ काम में उपयोग किया गया। हिरिडोटस ने लिखा है कि इस काम में बड़े बड़े यञ्जिनियरों के अतिरिक्त, एक लाख मज़दूर ३० वर्ष तक लगे रहे। हर तीसरे वर्ष ये लाख आदमी निकाल कर और एक लाख नये लगाये जाते थे। इन पिरामिडों पर स्वयं लिखा है कि कई हज़ार दिरम इन मज़दूरों को केवल प्याज़ रोटी देने में लगता था। उस ज़माने के दस्तूर के मुताबिक़ ये बेचारे सब कुली ज़बरदस्ती पकड़े हुए बेगारी थे, और कोड़ों के बल काम करते थे। यह सारा ज़मीन आसमान क्यों एक किया गया? जिसमें एक मुर्दा ऐसी जगह दफ़न हो जहां किसी का गुज़र न हो!!!

पिरामिडों में शिल्पकौशल की पराकाष्ठा है। उससे बढ़कर काम ध्यान ही में नहीं आसकता। उसकी बराबरी भी करना आज कल असम्भव सा है। इनके अन्दर मनुष्यों, जानवरों और पदार्थों की पत्थर पर खुदी हुई हर क़द की असंख्य मूरतें हैं। दीवारों की मूरतें ऐसी सुन्दर बनी हुई हैं मानों कल बनाई गई हैं। भीतरी भागों की दीवारों के पत्थर, पालिश और चिकनाई में, अद्वितीय

मिश्र उन देशों में से है जहां सभ्यता ने सब से पहले क़दम रक्खा। सभ्यता किसे कहते हैं, इसका ठीक ठीक अर्थ करना कठिन है। पर पुराने समय के सम्बन्ध में सभ्यता का यह अर्थ लेना चाहिये, कि जहां सामाजिक और राजनैतिक नियमों से कुछ कुछ काम होने लगा था; लोग क़सबे या गांव बसा कर उनमें रहने लगे थे; अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये लोग पृथक पृथक समाजों में बँट गये थे, अर्थात् बढ़ई, लोहार, जुलाहा, पुजारी इत्यादि पेशे हो गये थे। जिस देश के अधिकांश लोग केवल प्याज़ और रोटी पर गुज़र करते थे और आधे नङ्गे रहते थे; जहां बेगारियों से कोड़े के बल काम लिया जाता था; जहां बादशाह को अधिकार था जिसका माल या जिसकी स्त्री वह चाहै छीन ले; जहां गुलामों का व्यापार होता था और उनकी जान सर्वथा मालिक के हाथ में थी; जहां बैल और दूसरे जानवरों की पूजा बड़ी धूमधाम से की जाती थी, वह देश कहां तक सभ्य था, यह सोचने की बात है। हां उस समय के उन योरप निवासियों की अपेक्षा वे ज़रूर सभ्य थे जो बन्दरों की तरह बिल्कुल नङ्गे रहते थे; हर मनुष्य शिकार करके उसे हो खा जाता था; खाल निकाल कर अपना ओढ़ना बनाता था; दरख्तों की खोहों या ज़मीन में गढ़ों में घुस रहता था और हमेशा आपस में मारकाट किया ही करता था। न कोई सामाजिक नियम था; न कोई राजा था; न कोई प्रजा थी। अस्तु, मिश्र के प्राचीन निवासी सभ्य रहे हों, या नहीं, पर इसमें कोई शक नहीं कि पिरामिड बनानेवाले के समान पुरातन लोगों के अद्भुत और आतङ्कजनक शिल्पकार्य को देखकर आश्चर्य अवश्य होता है।

गिरिजादत्त वाजपेयी

आँख।

[३]
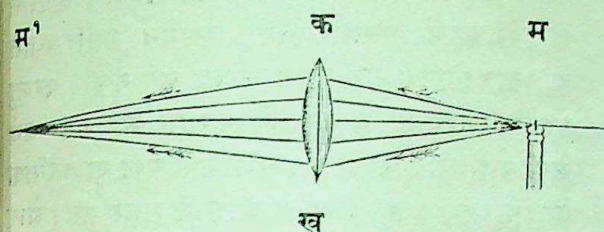
(चित्र ६)

क ख ताल। म प्रकाश का संयोगी केन्द्र म१ और म१ का म है।

यहां 'म१' को म का संयोगी केन्द्र कहना पड़ता है, अर्थात् यदि मोमबत्ती 'म१' पर हो तो छाया चित्र 'म' पर और वह 'म' पर हो तो 'म१' पर होगा। ऐसी नाभियों की कोई संख्या नियत नहीं। उनके लिए यही नियम है कि आलोक का पदार्थ अंशुनाभि के जितना समीप हो, उसका संयोगी केन्द्र उतना ही दूर होगा—"विपरीते विपरीतम्"। उपपत्ति यह है कि पदार्थ से आनेवाली किरणें ज्यों ज्यों अधिक केन्द्रापसारी होती जायँगी त्यों त्यों उनकी छायाकिरणें अधिक केन्द्रापसृत होकर दूर पर मिलेंगी।

(३) अब कल्पना कीजिए कि 'म' मोमबत्ती ताल के समीप आते आते अंशुनाभि पर आ गई। तो (१) में जो कह चुका हूं उसके अनुसार इसमें से निकलनेवाली किरणें ताल के पार जाकर समानान्तर हो जायँगी और कहीं भी उनका चित्र न बनेगा। वास्तव में अनन्तता और अंशुनाभि ये दोनों (२) के अनुसार परस्पर संयोगी केन्द्र हैं; अनन्तता से आई किरणें अंशुनाभि पर मिलती हैं और अंशुनाभि से चली हुई अनन्त दूरी पर मिलती हैं। चित्र ५ देखिए।

(४) अब तक हमने जिन नाभियों वा चित्रों का वर्णन किया है वे सच्चे हैं अर्थात् जिधर से ताल पर किरणें आती हैं उसके दूसरी ओर काग़ज़ वा परदा लगाने से वे दिखाई देती हैं। किन्तु, यदि आलोक का पदार्थ अंशुनाभि और ताल के बीच में आ जावे तो और ही तमाशा होगा; अर्थात् झूठी नाभि बनेगी। हम देखते आये हैं कि किरणें ज्यों ज्यों ताल के समीप आती गईं, त्यों त्यों केन्द्र से छायाकिरणों की अपसारण की मात्रा बढ़ती गई। यहां तक कि अंशुनाभि के प्रकाश की किरणें समानान्तर हो गईं। अब अधिक समीप आने से बाहर निकलनेवाली किरणें और भी केन्द्रापसृत होंगी (चित्र ७) देखिए। अतएव चित्र बनने के बजाय देखनेवाला यह समझेगा कि ये किरणें 'म' से न आकर 'म१' से आई हैं, जहां पर अपसर्पिणी रेखायें बढ़ाने से मिलती हैं। यह भ्रममात्र है; यह चाक्षुष छल है।

तो उभयोन्नतोदर ताल के ये गुण हुए—(१) धुरी के समानान्तर रेखाओं का सच्चा चित्र अंशुनाभि पर और अंशुनाभि से चलनेवाली किरणों का चित्र, दूसरी ओर निकल कर, अनन्त दूरी पर बनता है। (चित्र ५) (२) अंशुनाभि से दूर के पदार्थों का चित्र दूसरी ओर अंशुनाभि के समीप, और समीप के पदार्थों का दूर पड़ता है। ऐसी नाभि संयोगी केन्द्र कहलाती है (चित्र ६) (३) अंशुनाभि और ताल के बीच के पदार्थों का चित्र झूंठा, और जिधर पदार्थ होता है उधर ही, बनता है। (चित्र ७ को नीचे देखिए) अब तक आलोक को एक बिन्दु से आता
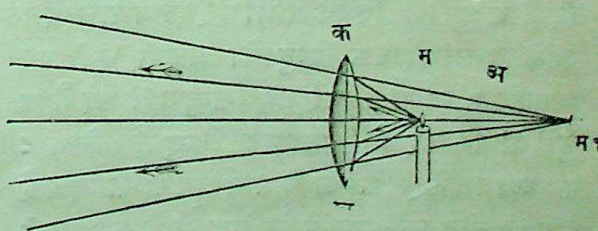
चित्र ७

क ख ताल। म मोमबत्ती, अंशुनाभि भ और ताल के बीच में है। इससे झूंठा चित्र म१ बनता है।

मान कर इस विलक्षण ताल के गुण समझाये गये हैं। अब मान लीजिए कि आलोकदायक पदार्थ

गणितबिन्दु न हो कर कोई बड़ा पदार्थ है। पहले मोमबत्ती के आलोकबिन्दु ही को हम देख रहे थे; उस समय यदि हम ध्यान देते तो स्वयं मोमबत्ती के भी चित्र बनते हुए देखते। अस्तु, जिन पाठकों ने बिन्दु-चित्र को ध्यान से पढ़ा है वे पदार्थ-चित्र को भी ठीक ठीक समझ जायँगे।

(१) समानान्तर किरणों का आना सूर्य से वा किसी ऐसे ही विप्रकृष्ट पदार्थ से हो सकता है। अतएव अंशुनाभि पर बना चित्र किसी बिन्दु की नहीं किन्तु सूर्य की मूर्त्ति है। यह चित्र रङ्ग में और तेज में भी सूर्य के समान ही है। चित्र काच के समीप होने के कारण वह छोटा है और अपनी समीपता के अनुसार तेज रखता है। इतना और जान लीजिए कि यह चित्र उलटा है, किन्तु सूर्य के गोल होने से उलटेपन से कोई क्षति नहीं। विशेष हाल पहले कहा ही गया है।

(२) यदि कोई पदार्थ किरणाकर्षक ताल के सामने प्रधान धुरी से दूर रक्खा जाय तो ताल के दूसरी ओर परदा डालने से उसी पदार्थ का उलटा चित्र दिखाई देगा। रङ्ग, ढङ्ग और सफ़ाई में यह बहुत ही ठीक उतरता है; यह पदार्थ की ठीक नक़ल है; इसमें दोष है तो यही कि वह उलटा है। इसकी बनावट समझना बहुत सहज है। नाभियों के विचार में प्रधान धुरी के विषय में जो कहा गया है, गौण धुरी के विषय में भी वही सब सच है। पहले आलोकदायक बिन्दु को प्रधान धुरी पर मानकर मीमांसा की गई थी, किन्तु यहां कई गौण धुरियों पर कई आलोकदायक बिन्दु हैं। चित्र ८ पर ध्यान देने से किरणों के मार्ग ख़ूब साफ दिखाई देंगे। प्रत्येक धुरी गुलाई के केन्द्र में होकर जाती है; अतएव प्रकट है कि जिस धुरी का एक सिरा ऊपर होगा उसका सिरा ताल में हो कर निकलने के बाद नीचे जायगा। अतएव 'अ' बिन्दु की सब किरणें गुलाई के केन्द्र में होकर उस बिन्दु से आने वाली धुरी के दूसरे सिरे पर 'अ' में कहीं होगी। अर्थात् अ¹ 'अ' का संयोग केन्द्र, अर्थात् चित्र है। योंही 'क' का चित्र 'क¹' पर बनता है। अब देखि[ए] 'अक' पदार्थ के प्रत्येक बिन्दु का चित्र (संयो[गी] केन्द्र) अपनी अपनी धुरी पर बन गया अर्थ[ात्] अ¹ क¹ छोटा और उलटा चित्र बन गया। छो[टा] इसलिए कि पदार्थ की अपेक्षा ताल के वह अधि[क] समीप है और उलटा इसलिए कि गौण धुरि[यां] पदार्थ और उसके चित्र के बीच में ताल की गुला[ई] के केन्द्र पर परस्पर काटती हैं।
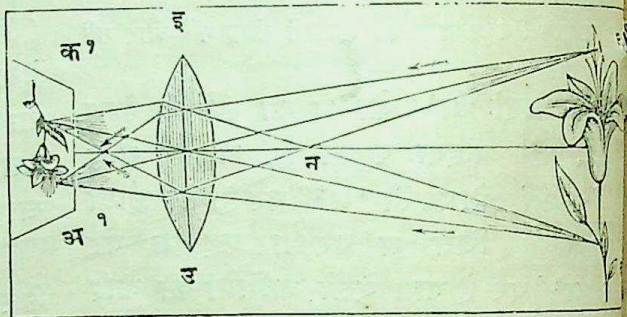
चित्र ८

इ उ ताल। न अंशुनाभि।

अ क पदार्थ का उलटा छायाचित्र अ¹ क¹

कोई यह न समझे कि उन्नतोदर ताल में उ[स का] सच्चा चित्र पदार्थ से छोटा ही होता है; नहीं [यदि] पदार्थ समीप हो तो चित्र बड़ा भी हो सकता [है।] संयोगी केन्द्रों के परस्पर सम्बन्ध याद रखने [से] जान पड़ेगा कि यदि चित्र ८ में वास्तव पदार्थ अ¹ [क¹] होता तो उससे निकलकर किरणें पहले की त[रह] मार्ग पर चलती हुई 'अक' पर बड़ा चित्र बनातीं [।] उन्नतोदर ताल पास के पदार्थों का उलटा [बड़ा] [और] दूर और दूर के पदार्थों का उलटा चित्र स[दा छोटा] डालते हैं।

यह सिद्धान्त विज्ञानशास्त्र में बहुत काम [का] है। इन सच्चे चित्रों के अतिरिक्त ये ताल [झूंठे] चित्र भी बनाते हैं। जब पदार्थ ताल [और] अंशुनाभि के बीच में होता है तब झूंठा [चित्र] वैसेही बनता है जैसे चित्र ७ में उपकेन्द्र [पर] झूंठी नाभि बन गई थी। चित्र ९ को देखने [से] प्रतीत होगा कि पदार्थ 'अक' की किरणें [...]
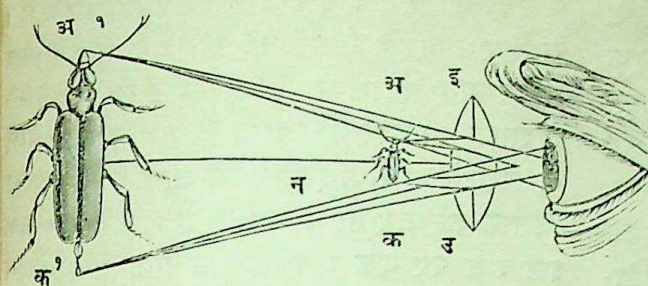
चित्र ९

इ उ ताल। न अंशुनाभि
अ क पदार्थ का सीधा, बड़ा, झूठा,
चित्र अ१ क१।

निकलती बेर ताल से टकराती हुई जब दूसरी ओर निकलती हैं तब वे अपसारिणी बन जाती हैं अर्थात् उलटे गोपुच्छ के आकार में हो जाती हैं। उनके आंख में पहुंचने पर यह भ्रम होता है कि किरण जाल 'अ' से न चल कर अ' से चला है जहां कि बढ़ाने पर यह मिल जायगा और जो इस अवसर्पि-किरण-जाल का शिखर है। अतएव 'अक' पदार्थ का बढ़ा हुआ चित्र अ१ क१ दिखाई देता है। यह चाक्षुष भ्रम ही है। यह न परदे पर देखा जा सकता है और न वास्तव में ही। वास्तव चित्र सदा उलटा होता है किन्तु उसके विरुद्ध यह सदा सीधा और बड़ा होता है। सीधा इस लिये होता है कि पदार्थ से आनेवाले किरण मुड़ कर भी आंख तक आते आते परस्पर नहीं काटते; और बड़ा इसलिए कि यह चित्र 'अ' 'क' में होकर जानेवाली गौण धुरियों के सम्पातबिन्दु से पदार्थ की अपेक्षा अधिक दूर है।

अवनतोदर तालों की भी दो चार बातें सुन लीजिए। पहले कह चुके हैं कि नतोदर ताल की मुटाई बीच में बहुत छोटी होती है। उन्नतोदर काच में दोनों पार्श्वों का एक दूसरे की ओर झुकाव केन्द्र से छोरों की तरफ बढ़ता जाता है; किन्तु यहां उलटी बात है। इसीलिए फल भी उलटा है। अर्थात् उन्नतोदर ताल किरणों को दो बेर उसी तरफ़ को मोड़ कर प्रधान धुरी की ओर केन्द्राकृष्ट करते हैं। वैसेही ये दो बेर मोड़कर केन्द्र से अधिक दूर कर देते हैं। चित्र १० देखिए। ताल में होकर जानेवाली किरणें दो दफ़ा मुड़ कर आधार की ओर खिच आती हैं। उन्नतोदर ताल में आधार बीच में और नतोदर में ऊपर होता है। इन सब पहले कही हुई बातों को याद करके कह सकते हैं कि पदार्थ "अ क" से आनेवाली किरणें दो बेर मुड़ कर अधिक अपसृत हो जाती हैं। इस मोड़ से यह फल हुआ कि किरण जाल "अ१" बिन्दु से आता हुआ प्रतीत होता है। इसी प्रकार क से आनेवाली किरणें "क१" में आती ज्ञात होती हैं। फल यह हुआ कि एक छोटा चित्र असत्य अ१ क१ पर दिखाई देता है। यह चित्र असत्य है और गुलाई के केन्द्र के पास होने से छोटा है। नतोदर ताल में यही हो सकता है।
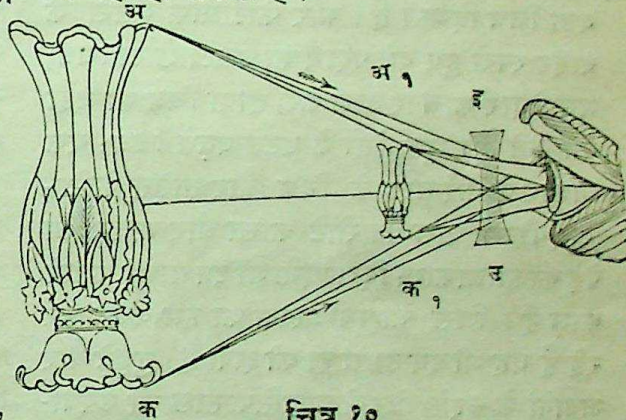
चित्र १०

इ उ ताल
अ क पदार्थ का छोटा झूठा चित्र अ१ क१

तालों के बारे में जो कुछ कहना था हम कह चुके। जो कुछ है उससे आंख से सम्बन्ध नहीं और उसके लिखने का यह स्थान भी नहीं है। तथापि जिन तालों ने इतनी देर तक हमारे साथ रह कर ज्ञानोपदेश दिया उनसे इतनी जल्दी बिदा भी नहीं हो सकते। अतएव इतना और जान लीजिए कि ताल अपने गुणों से हम को सहस्रों काम देते हैं; और वैज्ञानिक उनके गुणों का बखान कर यश लेते हैं।

उन्नतोदर ताल सूर्य की किरणों की गर्मी आकृष्ट करके जलाने का काम देते हैं। यदि भरी हुई बन्दूक़ पर उनको यों रख दीजिए कि बारूद उनकी अंशु-नाभि पर हो तो मध्यान्हकाल में वे "फ़ायर" भी कर देते हैं। पानी भरे हुए गोल काच के घरके अन्दर रक्खी हुई मछलियां मर जाती हैं। समुद्र में जो रोशनीघर होते हैं उनमें दीपक के चारों ओर समोन्नत ताल यों रक्खे रहते हैं कि दीपक उनकी अंशु-नाभि में हो। अतएव ये काच आलोक की किरणों को समानान्तर करके दूर दूर तक प्रकाश का प्रतिस्फलन कर देते हैं। समीप रक्खे हुए छोटे पदार्थ का बड़ा चित्र बताने के लिए ख़ुर्दबीन का और दूर के पदार्थों का चित्र समीप बताकर दूरबीन का काम भी यही काच देते हैं। मैजिक लैण्टर्न में भीतर रक्खे हुए छोटे पदार्थों का बाहर की ओर यही बड़ा चित्र दिखाते हैं। और फोटोग्राफ केमेरा के बाहर रक्खे हुए बड़े पदार्थ का उलटा छोटा चित्र, मसालेदार काचपर डाल कर, छाया चित्र भी यही बना देते हैं। भूत प्रेतों के घटते बढ़ते चित्र; एक आकार के कई तरह के चित्र और तड़ित् फोटो; ख़ुर्दबीन में बाल को सोटे कासा और मच्छर को पेड़ कासा आकार; दिखा देना भी इन तालों का ही काम है। जिस चाक्षुष प्रत्यक्ष का हम वर्णन कर रहे हैं वह भी इन तालों ही की कृपा है। बुड्ढे और जवानों के चश्मे, जिनसे प्राकृतिक ताल की उपयोगिता बढ़ती जाती है, इन्हीं तालों से बनते हैं।

जब पाठक तालों के विषय में इतनी बातें जान गये हैं तब यह समझना कुछ भी कठिन नहीं है कि "आंख" एक प्रकार का "केमेरा आबसेक्यूरा" है। आंख में वही प्रक्रिया होती है जो चित्र १ और चित्र २ में दर्शित हैं। बाहर के पदार्थों की किरणें आँख के काच में हो कर बीच में परस्पर काटती हुई रेटिना रूपी पर्दे पर उलटा छोटा सच्चा चित्र बनाती हैं। यहां तक पदार्थ विज्ञान का काम है। जब यह उलटा चित्र रेटिना पर पड़ता है तब वहां पर पदार्थ का प्रकम्पन स्नायुओं के प्रकम्पन में परि-णत हो जाता है। इस बात को ज़रा समझ चाहिए। पहले वैज्ञानिकों का यह मत था प्रकाशवान् पदार्थ में से कई छोटे छोटे कण दिशाओं की ओर फेंके जाते हैं और वे असीम से सरल रेखाओं में दौड़ते चले जाते हैं। किन्तु विज्ञान का और ही सिद्धान्त है। सब वैज्ञा इस बात पर एक मत हैं कि एक अत्यन्त और सूक्ष्म पदार्थ ईथर नामक है। इसे संस्कृत वैज्ञानिकों का आकाश कह सकते हैं। आ केवल शब्द-गुण का ही नहीं है; किन्तु भिन्न प्रकम्पनों से भिन्न भिन्न तरङ्ग उसमें आलोक, उ और शब्द उत्पन्न कर सकते हैं।

आलोकदायी पदार्थों में से बन्दूक़ की गो की तरह कोई चीज़ नहीं छूटती। उस पदा कण बिलकुल नहीं चलते। किन्तु अपनेही पर एक प्रकार का प्रकम्पन करते हैं। उस ह से आसपास के ईथर में प्रकम्पन की तरङ्गें, रस्सी के एक छोर को हिलाने से दूसरे छोर कम्प होता है, वैसी उठती हैं। वही प्रकम्पन च हुआ हमें आलोक की भावना देता है। ऐसेही भिन्न प्रकार के प्रकम्पन उष्णता वा शीत का देते हैं। प्रकम्पन एक ही है। किन्तु आंख, वा त्वचा के भेद से तीन भेद हो जाते हैं। प्रकम्पमान किरणों की तेजी मन्दी से रङ्ग का होता है। जो किरणें प्रति सेकण्ड ४५८ अयुता (दश लाख गुना दश लाख) कम्प भोगती हैं लाल होती हैं। और जो ७२७ अयुतायुत प्र पाती हैं, वे बैंगनी होती हैं। इस प्रकार सेकण्ड १,९०,००० मील चलनेवाली आलो किरणें अपने कम या ज्यादह प्रकम्पन के अनु लालनारङ्गी, पीत, हरित, आसमानी, नीला, इन सात अकृत्रिम रङ्गों में प्रगट होती हैं।

सूर्य के प्रकाश को श्वेत मत समझिए। में ये सातो रङ्ग हैं। पदार्थों में भिन्न भिन्न होने का कारण यह है कि जो पदार्थ और रङ्ग किरणें शोषकर, जिसकी किरणें प्रतिफलित क

उसी रङ्ग का है। वृक्ष का पत्ता ग्रैार रङ्गों की किरणें शोषकर केवल हरी किरणें प्रतिफलित करता है। ये किरणें ग्रांख में टकरा कर हरा ज्ञान उत्पन्न करती हैं। ग्रब हम फिर पहली बात पर ग्रागये। पदार्थ ने जिस रङ्ग की किरणें ग्रैार रङ्ग की किरणों के शोषकर प्रतिफलित की हैं वे ग्रांख में ताल के पार पहुँचीं। कहना नहीं होगा, किरणें सूक्ष्म प्रकम्पन मात्र हैं। यह प्रकम्पन रेटिना में उलटा चित्र बना देगा। वहां पर इस प्रकम्पन के धक्के से चाक्षुष ज्ञानतन्तु में प्रकम्पन शुरू हो जायगा जो मस्तिष्क तक पहुंचकर ज्ञान उत्पन्न करने का सहायक होगा। यह न समझना चाहिए कि उस भीतर बने हुए चित्र के कोई देखता है। वह मस्तिष्क में देखने की शक्ति है। ज्ञानतन्तु-प्रकम्पन के साथ साथ चाक्षुष प्रत्यक्ष की चेतना हो जाती है। बस। ज्ञानतन्तु-प्रक्रिया के साथ मानसिक प्रक्रियायें होजाया करतीं हैं। यहां भी पदार्थ के प्रकम्पन के होने से मानसिक ज्ञान "मैं देखता हूं"-हुग्रा। इस प्रकार वैज्ञानिक नियमों के ग्रनुसार चित्र बनकर उसके प्रकम्पन के साथ साथही ज्ञान होने का नाम ईक्षण, ग्रवलोकन, दर्शन वा रूप-संवेदन है।

ज्ञान-प्रकार।

हमें ग्रांख से स्वभावतः एक रङ्गदार सतह ही का ज्ञान होता है; ग्रैार कुछ नहीं। यह जान पड़ता है कि यह सतह हमारे समीप है वा हम पर प्रभाव डालती है, किन्तु उस सम्बन्ध में ग्रनुभव ग्रैार तर्क करने से हम ग्रपने ज्ञान के बहुत बढ़ा सकते हैं। यह बात "लाक" ग्रादि कई दार्शनिकों ने ग्रनुमान की थी; किन्तु १७०९ ई० में "ग्रवलोकन का नया सिद्धान्त" नामक ग्रन्थ में पहले पहल "बर्कले" ने ही यह सिद्ध किया कि हमें रैखिक ग्रर्थात् रेखा-सम्बन्धिनी दूरी का ज्ञान ग्रांखों से होता ही नहीं। सामने देखती बेर हमें रङ्गदार सतह का ज्ञान होता है सही, किन्तु वह कितनी दूर पर है, सो हम नहीं कह सकते। उक्त दार्शनिक ने ग्रपनी खोज में पहले ग्रवलोकन के विषय में इन प्रश्नों का विचार किया है—ग्रांख से, स्वभाविक रीति पर, हम क्या देखते हैं? किस इन्द्रियके द्वारा हमें पदार्थों के प्रथम गुण ज्ञात होते हैं? त्वक् ग्रर्थात् त्वचा ग्रांख की कहां तक सहायता करती है? बर्कले का सिद्धान्त यह है कि ग्रांख से हमें ख़ाली रङ्ग जान पड़ता है। यह सिद्धान्त उसने पदार्थों के (१) दूरत्व (२) ग्राकृति ग्रैार (३) स्थान की गवेषणा से निकाला है।

[ग्रसमाप्त।

पुस्तक परीक्षा।

पञ्चाङ्ग। देहली के ज्योतिषी पण्डित चिम्मन लाल पञ्चाङ्ग बनाने में बहुत कुशल जान पड़ते हैं। हर साल कई तरह के पञ्चाङ्ग उनके यहां से निकलते हैं। उन्होंने संवत् १९६२ के तीन पञ्चाङ्ग हमारे पास भेजे हैं; एक जंत्री भी भेजी है। दो पञ्चाङ्ग देशी मोटे काग़ज़ पर बड़े बड़े ग्रक्षरों में हैं; एक पतले काग़ज़ पर। पञ्चाङ्ग पण्डितों के काम के हैं। सरस्वती के ग्राहकों को, तीन महीने तक, सिर्फ़ ग्राध ग्राने का टिकिट भेजने से ज्योतिषी जी ग्रपने पञ्चाङ्ग इत्यादि बिना मूल्य देने कहते हैं।

❀

चतुरा की चतुराई। यह एक उपन्यास है। इसे स्वामी विश्वेश्वरानन्द सरस्वती ने बनाया है ग्रैार हिन्दीप्रदीप के सम्पादक श्रीपण्डित बालकृष्णजी ने शुद्ध किया है। मूल्य इसका ।=) ग्रैार मिलने का पता—शिवराम ग्रैाषधालय प्रेस, प्रयाग, है। इसमें स्वामी जी ने एक वेश्या (!) की कल्पना करके उसे सैाजन्य ग्रैार शिष्टता का ग्रादर्श बनाया है ग्रैार उसके द्वारा उसके प्रेमी के बुरे कामों से बचाया है। जगह जगह पर स्वामी जी ने उपदेश दिये हैं। ग्रन्त में एक लेक्चर के ग्रन्तर्गत धर्म्म, ग्रर्थ, वेद, वेदान्त, समाज ग्रैार

राजनीति आदि सब की बातें कह कर आपने वेद पढ़ने, ब्रह्मचर्य्य रखने, सत्य बोलने, ईश्वर को मानने, विद्योपार्जन आदि करने के लिए अपील की है। स्वामी जी की प्रायः सभी बातें मानने लायक़ हैं। बड़े हर्ष की बात है कि हमारे सन्यासी महात्मा हिन्दी में पुस्तकें तो लिखने लगे।

✻

सारस्वतसर्वस्व। मिश्र गोविन्दनारायण कुमड़िया रचित। मूल्य १) रुपया। पुस्तककार [६५ क्रास स्ट्रीट, कलकत्ता] से प्राप्य। यह पुस्तक बड़े खोज से लिखी गई है। इसमें सारस्वत सम्प्रदाय के ब्राह्मण आदि चारों वर्णों की उत्पत्ति, स्थान, गोत्र, प्रवर इत्यादि का सप्रमाण वर्णन है। यह सारस्वतों के सिवा और लोगों के भी देखने लायक़ है। इसके लिखने में लेखक ने बड़ा परिश्रम किया है।

✻

महिलामहत्व। स्वामी विश्वेश्वरानन्द कृत। २ आने में, शिवराम औषधालय प्रेस, प्रयाग, से प्राप्य। इसमें अहिल्या बाई और तुकाजीराव हुलकर के राजकार्य की बातें है। पुस्तक अच्छी है।

✻

बालशिक्षादर्पण। दाम एक आना। इसे मास्टर कन्हैयालाल, गोपाल मन्दिर, काशी ने लिखा है। वही इसे बेचते हैं। इसमें नागरी की वर्णमाला, पहाड़े, सवैया, ड्योढ़ा इत्यादि और छोटे छोटे ज़बानी सवालों के क़ायदे हैं।

✻

रत्नकरण्डश्रावकाचार। जैनग्रन्थरत्नाकर का छठा रत्न है। इसमें संस्कृत श्लोकों का अन्वय है और उसीके साथ हिन्दी में अर्थ भी दिया हुआ है। पुस्तक जैनियों के काम की है। छपाई, काग़ज़ और जिल्द सब बातें अच्छी हैं। इसमें मंझोले सांचे के ६६ पृष्ठ हैं। धर्म्म, सम्यक् दर्शन, वीतराग आदि का लक्षण और विवेचन, इसमें बहुत अच्छी तरह से किया गया है। मिलने का पता श्रीयुत पन्नालाल जैन, गिरिगांव, बम्बई।

✻

भारतभगिनी। मिस्टर रोशनलाल, बी० ए० बारिस्टर, लाहौर, की पत्नी श्रीमती हरदेवी इस का सम्पादन करती हैं। पण्डित हेमराज वैद्य इसके उपसम्पादक हैं। यह मासिक पत्रिका है और कई वर्ष से निकलती है। इसमें स्त्रियों के पढ़ने लायक लेख रहते हैं। अब इसे महीने में दो बार निकालने का विचार किया गया है। इसलिए प्रतापगढ़ की रानी श्रीमती रघुराज कुँवरी ने १९० रुपये दिये हैं। और भी कई शिक्षित स्त्रियों ने इसकी सहायता की है। स्त्रीशिक्षा के पक्षपातियों को चाहिए कि इस पत्रिका को लेकर श्रीमती हरदेवी के उत्साह को बढ़ावें। इसके लेखों और छपाई में उन्नति की आवश्यकता है।

भाग ६] अप्रैल, १६०५ [संख्या ४

विविध विषय।

सरस्वती की किसी पिछली संख्या में हमने एस्पराण्टो भाषा के विषय में कुछ लिखा है। इस भाषा का प्रचार दिनों दिन अधिक होता जाता है। इस देश में भी लोग इसे सीखने लगे हैं। इसका प्रचार हो जाने से भिन्न भिन्न देशों के रहने और भिन्न भिन्न भाषाओं के बोलनेवाले बहुत आसानी से आपस में पत्र-व्यवहार कर सकेंगे। विदेशी व्यापारियों को इससे बहुत फ़ायदा होगा। हिन्दुस्तानियों के सुभीते के लिए सलेम के आदिनारायण चेट्टियार इस भाषा की किताबें भी बेचने लगे हैं। इस भाषा का आज हम एक नमूना देते हैं। महिम्न-स्तोत्र में एक श्लोक है—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यात् ऋजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

अर्थात् जितनी नदियां और जितने नद इत्यादि हैं उनका पानी जैसे, किसी न किसी तरह, समुद्र में पहुँचता है, उसी तरह सांख्य, योग और वेदान्त आदि मार्गों का अवलम्बन करके और भिन्न रुचि के कारण अपने अपने मार्ग को अच्छा समझ करके—चाहे वे मार्ग सीधे हों चाहे टेढ़े—हे ईश! सब मनुष्य अन्त में आप ही तक पहुँचते हैं।

एक सज्जन ने इसका अनुवाद अङ्गरेज़ी में इस तरह किया है—

Every one of the different religions of the world has its own view-point and each religion claims goodness and wisdom for itself. But whatever be the path chosen, whether one selects a direct one or a circuitous one, just as he pleases, You, O God! are the goal as the ocean is the goal of all rivers.

यह मज़मून स्पराण्टो भाषा में इस प्रकार लिखा जायगा—

La diversaj religioj de la mondo, ciu elvenas el malsama vid-punkto, kaj ciu demandas por si bonegecon kaj sanegecon. Sed kio ajn estu la

vojo, rekta au malrekta, kiun oni elektos lau sia plezuro, Vi, ho Dio! estas ilian solan finon, kiel la oceano estas la sola fino de la riveroj.

* *
*

इस देश के बड़े बड़े विद्वानों तक के ग्रन्थ धनाभाव के कारण बहुधा वे छपे पड़े रहते हैं। उनको कुछ मिलना तो दूर रहा, उलटा उन्हें गाँठ से देना पड़ता है, तब उनकी पुस्तकें छपती हैं। पर योरप में स्त्रियां तक पुस्तकों की बदौलत लाखों रुपये कमाती हैं। और विज्ञान या दर्शन आदि गहन विषयों की पुस्तकों की बदौलत नहीं; उपन्यासों की बदौलत। मिडिल-मार्च नामक उपन्यास के लिए जार्ज इलियट को १२०,००० रुपये और डेविड ग्रीव के लिए हम्फ्रे वार्ड को २७०,००० रुपये मिले हैं! ऐसी कई स्त्रियां इङ्गलैण्ड में हैं जिनको पन्द्रह पन्द्रह बीस बीस हज़ार रुपये साल की आमदनी सिर्फ़ उनकी एक एक दो दो पुस्तकों से है!

* *
*

कलकत्ते की जिस साहित्य-सभा पर फ़रवरी की सरस्वती में हमने एक नोट प्रकाशित किया है, वह हिन्दी का एक कोश बनाने की चेष्टा कर रही है, व्याकरण बनाने की नहीं। यह भी अच्छी बात है। कोश की भी ज़रूरत है।

* *
*

समुद्र की लहरों में सोना भरा है। इस बात का निश्चित पता लग गया है। पश्चिमी देशों के बड़े बड़े ज्ञानी और विज्ञानी पण्डितों ने इस बात को "जांचा और सही पाया" है। इस सोने को बटोरने के लिए कम्पनियां तक खड़ी हो गई हैं। उसको ईंटें बनकर बाज़ारों में आना सिर्फ़ बाक़ी है। सागर को अब रत्नाकर ही नहीं, सुवर्णाकर भी कहना चाहिए।

* *
*

रूस में एक आदमी है। उसका नाम है मचनाऊ। वह दुनिया में सब से लम्बा है। उसकी लम्बाई ९ फुट ८ इञ्च है। कोई साढ़े छ हाथ ऊंचा! मामूली उचाई से दूनी! आज-कल वह लण्डन की सैर कर रहा है। वहां पर एक लघुकाय आदमी है। उसका नाम चिकुइटा है। वह सिर्फ़ १ फुट ८ इञ्च ऊंचा है!!! यही वामन देवता दैत्यराट् मचनाऊ की मुलाक़ात सब से कराते हैं! जितना चार आदमी एक दिन में खाते हैं, उतना मचनाऊ एक दिन में स्वाहा कर जाते हैं। आपको जिस स्त्री ने पसन्द किया है वह मामूली नाप-जोख की है।

* *
*

"ज़माना" उर्दू की एक मासिक पुस्तक है। वह बरैली से छपकर आती है और कानपुर से प्रकाशित होती है। उसमें अच्छे अच्छे लेख रहते हैं। बहुत करके मुसलमान, काश्मीरी और कायस्थ ही उसमें अधिक लिखते हैं। उसके सम्पादक एक नव-युवक कायस्थ हैं। आप कानपुर ही में रहते हैं। आप से मिलने का यद्यपि हमें सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ, तथापि "ज़माना" से आप की योग्यता का परिचय हमको हो गया है। आपकी इच्छा है कि हम "ज़माना" में कुछ लिखें। परन्तु कई कारणों से हम आपकी इच्छा को पूरी नहीं कर सके। इसका हमको खेद है। आपने जनवरी के "ज़माना" में एक ख़बर छापी है। वह हिन्दीवालों के जानने लायक़ है। इस लिए हम उसकी नक़ल प्रकाशित करते हैं। ख़बर यह है—"भारतमित्र के नामवर एडिटर मुन्शी बालमुकुन्द साहब गुप्त वेद के ज़माने से लेकर इसलामी अ़हद तक हिन्दुस्तानी ज़बान की हालत और उसके इनक़लाब के मुतअ़ल्लिक़ एक निहायत ही क़ीमती किताब लिख रहे हैं। इसमें ब्रजभाषा, उर्दू और हिन्दी की सिलसिलेवार तारीख़ होगी और (मुसन्निफ़) उर्दू-हिन्दी की आयन्दा हालत पर भी अपनी राय ज़ाहिर करेंगे। चूंकि उर्दू की एक बे नज़ीर तारीख़ (आबेहयात) मुल्क में मौजूद है लेहाज़ा किताब का ज़ियादा हिस्सा संस्कृत, हिन्दी और मौजूदा हिन्दी के ज़िक्र से ममलू होगा। हमको उम्मीद है कि उस

तसनीफ़ आम इल्म-दोस्त हज़रात के लिए एक ग़ैरमामूली दिलचस्पी का बायस होगी"। हमारी राय तो यह है कि अगर कोई इस तरह की अच्छी किताब सचमुच ही बने तो वह ग़ैरमामूली दिलचस्पी का ही बायस न हो बल्कि ग़ैरमामूली फ़ायदे का भी बायस हो। हमारी यह भी राय है कि उस वे नज़ीर तारीख़, आबेहयात, का बोलचाल की हिन्दी भाषा और नागरी हुरूफ़ों में अगर तरजुमा हो जाय तो वह और भी ज़ियादह ग़ैरमामूली दिलचस्पी और फ़ायदे का बायस हो।

* *
*

नये नये मासिक पत्रों को देखकर हमारे सतयुगी हिन्दीप्रदीप को ईर्षा उत्पन्न हुई है। जिसे हम अब तक श्रद्धेय समझते आये हैं, और अब भी समझते हैं, उसमें ईर्षा, द्वेष, मद, मत्सर, कुढ़ या चिढ़ की मात्रा चाहै जितनी बढ़ जाय, हमारी भक्ति और हमारी श्रद्धा उस पर से अणु-रेणु भर भी कम होने की नहीं। यदि नये पत्रों में चटकीलापन और चमक-दमक देख पड़े; अथवा यदि कदाचित् उनके लेखों में कोई छटा या अनुपमता आ जाय तो उसके लिए वे प्रशंसा के पात्र नहीं। प्रशंसा का पात्र प्रदीप ही है। क्योंकि जो कुछ इस नई सृष्टि ने सीखा है वह उसने प्रदीप ही के प्रकाश में सीखा है। हमारी समझ में इन नये पत्रों और पत्रिकाओं के झकोर से यदि, दैव न करै, प्रदीप बुझ भी जाय तोभी उसको खुश ही होना चाहिये। क्योंकि "शिष्यादिच्छेत्पराभवम्"—यह प्रदीप के ही समकक्ष किसी पुराने पण्डित की आज्ञा है। गुदड़ी में लाल और ज़मुर्रद पिरोये रहने की घोषणा सुनकर भी यदि किसी के असंस्कृत हृदय में उनके पाने की इच्छा न उत्पन्न हो, अथवा यदि वे उसे ढूंढ़े ही न मिलें, तो उसीका दुर्भाग्य समझना चाहिए। प्रदीप की शिखा यदि कुछ ऊंची हो जाय तो, अधिक प्रकाश फैल जाने से, शायद आज कलके मन्दाक्ष मनुष्य उनको ढूंढ़लें।

———

श्रीगुरु तेग़बहादुरजी।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

भर्तृहरि।

संसार में आकर हर एक आदमी को दूसरे की सहायता की ज़रूरत रहती है, क्योंकि ईश्वर ने लौकिक जगत में एक से एक का ऐसा सम्बन्ध कर दिया है कि बिना दूसरे की सहायता के किसी कार्य का होना कठिन नहीं वरन् असम्भव है। इन सब सहायकों अथवा मित्रों में सबसे अधिक ज़रूरी कौन है? हमारी समझ में तो इनमें सबसे अधिक ज़रूरी चीज़ वही है जो हमें इस जन्म में भी सुख देती है और मरने पर, जब हमारे सब मित्र और सहायक हमें छोड़ देते हैं, तब हमारे साथ जाती है। वह कौन चीज़ है? "धर्म्म"। अहा, इस स्वर्गीय शब्द में कैसा जादू का सा असर है। क्यों न हो, जब ऐसे सच्चे मित्र का नाम सुनकर हमें आनन्द न होगा तब कब होगा। पर हम आपसे पूछते हैं कि क्या इस विश्वासी मित्र के साथ हम भी वैसा ही वर्ताव करते हैं? जैसे यह मरने पर हमारे साथ जाता है वैसे ही क्या मृत्यु को तुच्छ समझकर हम भी इस की वैसी ही रक्षा करते हैं? "धर्म्म एव हतो हन्ति, धर्म्मो रक्षति रक्षितः"—क्या महात्माओं का यह वाक्य हमारे हृदय पर अङ्कित है? क्या धर्म्माभिमानी भारतवर्ष में अपने सच्चे मित्र के नाम पर प्राण-बलिदान देनेवाले लोग वर्तमान हैं? हा शोक! प्राणों का बलिदान देना तो दूर रहा, हम कृतघ्नों से तुच्छ स्वार्थ का बलिदान भी तो नहीं दिया जाता। हा! धर्म्मरूपी मित्र, तू भी हमारे पुरखाओं की करनी याद करके आँसू बहाता है। पर नहीं, हमारे कृतघ्न हृदय मरु-भूमि नामक बालू के

मैदान हो गये हैं। वह तेरे अविश्रान्त आँसुओं की झड़ी से भी कुछ नहीं पसीजते। अच्छा कोई न कोई दिन तो ऐसा आवेहीगा जब हम तेरी मित्रता का बदला दे सकेंगे। इसलिए इस समय तेरे सच्चे भक्त, तुझपर प्राण बलिदान देनेवाले, महात्मा गुरु तेग़बहादुरजी की जीवनी की चर्चा कर हम अपनी कृतघ्नता पर थोड़ा मुलम्मा चढ़ाते हैं और उस समय का आसरा देख रहे हैं कि जब यह लोहे पर का मुलम्मा पारस के संसर्ग से सच्चा सोना होगा।

हमारे चरित्रनायक, धर्म्म के सच्चे मित्र, गुरु तेग़बहादुर शूरवीर गुरु हरगोविन्दजी के सबसे छोटे पुत्र थे। संवत् १६७८ को आश्विन बदी ३, रविवार, को अमृतसर में इनका जन्म हुआ था। लड़कपन में बालकों का स्वभाव जैसा चपल होता है इनका वैसा न था। यह बचपन ही से बड़े गम्भीर और बुद्धिमान थे। जब इनकी अवस्था ९ वर्ष की हुई तब हरगोविन्दजी ने संवत् १६८६, कुआँर १५, में कर्तारपुर निवासी एक खत्री की कन्या गुजरीजी से इनका विवाह कर दिया। हमारे चरित्रनायक का पिता पर बड़ा प्रेम था। वह कभी भी हरगोविन्द जी का साथ नहीं छोड़ते थे। यहां तक कि युद्ध में भी अपने पिता ही के साथ रहते थे। जब गुरु हरिरायजी को गद्दी देकर हरगोविन्दजी मरने लगे तब तेग़बहादुर की माता ने पति से रोकर कहा कि "महाराज, आप तो चले, तेग़ा का क्या प्रबन्ध किया?" इस पर हरगोविन्दजी ने अपने हाथ का एक रूमाल, मोती की एक माला और एक तलवार देकर तेग़बहादुर की माता से कहा, "तुम धीरज रक्खो, तेग़ा धर्म का सच्चा मित्र और धर्म के नाम पर जान क़ुरबान करनेवाला गुरु होगा। मेरी इन चीज़ों को अपने पास रक्खो। जब तेग़ा के भाग्योदय होने का समय आवे तब उसे यह मेरी निशानियां दे देना"—इत्यादि। अस्तु, गुरु हरगोविन्दजी के स्वर्ग सिधारने के पीछे तेग़बहादुर की माता उन्हें साथ लेकर बकाला ग्राम में जा रहीं और माता और पुत्र चुपचाप अपना समय बिताने लगे।

इधर जब गुरु हरिकृष्णजी के मरने का समाचार बकाला ग्राम में पहुंचा तब गुरु की गद्दी के प्रधा[न] प्रधान शिष्य आपही गुरु बन बैठे और भोले भा[ले] सिक्खों से पुजवाने लगे। तेग़बहादुर भी इन लो[गों] की यह काररवाई देख रहे थे, पर उन्होंने चुपचा[प] बैठे रहना ही उचित समझा। चूंकि हरिराय[जी] का बड़ा लड़का रामराय भी हरिकृष्णजी की मृ[त्यु] के थोड़े ही दिन पीछे निस्सन्तान मर गया था इसलिए गद्दी के वाजबी हक़दार तेग़बहादुर ही थे। पर उन्होंने यह समझकर कि, जब समय आवे[गा] तब मुझे आपही गद्दी मिल जायगी, नवीन गु[रु] मण्डलियों से कुछ भी छेड़ छाड़ नहीं की।

इन्हीं दिनों टण्डानिवासी एक सिक्ख [का] जहाज़, जो माल से लदा हुआ था, हिन्द [महा]सागर में भँवर के चक्कर में आ गया। उस[ने] उसी समय यह मानता मानी कि यदि इस भँ[वर] से मेरा जहाज़ बच जायगा तो मैं ५०० अशर[फ़ी] गुरु साहब की भेंट करूंगा। अस्तु जब उस[का] जहाज़ भँवर से बचकर यथोचित स्थान [पर] निर्विघ्न पहुंच गया तब ५०० अशरफ़ी ले[कर] वह गुरु की भेंट को चला। बकाला ग्राम में आ[कर] घर घर गुरु देख वह बड़ा चकित हुआ और [वह] सोच में पड़ गया कि इनमें से सच्चा गुरु कौन [है] जिसे मैं भेंट दूं। अन्त को उसने निश्चय कि[या] कि सबसे मिलकर सबों को एक एक अशरफ़ी [भेंट] दूं, जो सच्चा गुरु होगा वह आपही मेरी प्रति[ज्ञा] के अनुसार भेंट मांग लेगा। अतएव उसने इन स[ब] नक़ली गुरुओं के दर्शन कर करके उन्हें एक ए[क] अशरफ़ी भेंट दी। कोई कुछ भी न बोला। [अन्त] को जब सब गुरुओं से वह मिल चुका तब उ[सने] पूछा कि "यहां और भी कोई गुरु की गद्दी [का] हक़दार है?" इस पर उसे मालूम हुआ कि [गुरु] हरगोविन्दजी के लड़के तेग़बहादुरजी भी [यहां] रहते हैं। पर उनके यहां गद्दी नहीं है। इस सि[क्ख] ने तुरन्त हमारे चरित्रनायक से भेंट की और [उन्हें] एक अशरफ़ी निकालकर उन्हें वह भेंट देने लगा।

तेग़ाजी बोले कि "भाई तुमने पाँच सौ अशरफ़ी की मानता मानी थी, एक अशरफ़ी क्यों देते हो।" इतना सुनते ही वह सिक्ख गद्गद् हो तेग़ाजी के चरणों पर गिर पड़ा और बोला कि "महाराज, आप प्रगट होकर इन लालची गुरुओं की ठगविद्या से सिक्खों को क्यों नहीं बचाते ?" इस पर जब तेग़ाजी ने अनिच्छा प्रकट की और कहा कि "मैं यहीं मज़े में हूं" तब वह सिक्ख तुरन्त उनके मकान के कोठे पर चढ़ गया और चिल्ला चिल्ला कर कहने लगा—"गुरु लब्या, गुरु लब्या"—अर्थात् गुरु मिल गये। उसकी चिल्लाहट सुनकर बहुत से सिक्ख इकट्ठे हो गये और उसने सबों से सच्चे गुरु के प्रकट होने का समाचार कह सुनाया। और जब इसी समय तेग़ाजी की माता ने भी हरगोविन्दजी की निशानी, अर्थात् रूमाल, तलवार और मोती की माला पेश की, तब तो तेग़ाजी के सच्चे गुरु होने का किसी को सन्देह न रहा और संवत् १७२१ के वैशाख मास में तेग़ाजी को सबों ने गद्दी पर बिठलाकर अपना एकमात्र सच्चा गुरु माना। तब से हमारे चरित्र-नायक गुरु तेग़बहादुर कहलाये जाने लगे।

जब यह सम्वाद देशान्तरों में फैला तब तो हर एक सङ्गतों से हज़ारों सिक्ख इनके दर्शनों को आने लगे और बहुत दिनों के बाद अपने सच्चे गुरु का दर्शन कर सबों ने अपने को धन्य माना। जब नवीन गुरुमण्डली के मुखिया धीरमल वग़ैरह ने गुरु तेग़बहादुर का प्रताप चमकता देखा, तब वे लोग ईर्षा से जलने लगे और जब कुछ न बन पड़ा तब उन्होंने रात के समय गुरु साहब के मकान पर चढ़ाई कर, सब माल असबाब लूट लिया और जब तेग़ाजी उन्हें मना करने लगे तब धीरमल ने उन पर बन्दूक़ दाग़ दी। पर भाग्यवश हमारे चरित्रनायक बच गये। जब सवेरा हुआ और सिक्खों ने गुरु की इस दुर्दशा का हाल सुना तब वे सब बड़े ही क्रोधित हुए और तेग़ाजी के मना करते रहने पर भी तलवार बन्दूक़ लिए बरजोरी धीरमल वग़ैरह के मकानों में घुस गये और उनका सब माल असबाब धन दौलत छीन कर उनके मकानों में आग लगा दी। यदि धीरमल भागकर कर्तारपुर न चला गया होता तो उसकी एक बोटी भी साबित न बच पाती। इसके पीछे गुरु तेग़बहादुर भ्रमण करते हुए अमृतसर पहुंचे। जब वहां के "दर्बार साहब" के पुजेरियों ने सुना कि गुरु तेग़-बहादुर आये हैं तब इस भय से कि कहीं यह दर्बार साहब दख़ल न कर बैठें, उन्होंने वहां का फाटक बन्द कर दिया और उन्हें मन्दिर में जाने से रोक दिया। इस पर हमारे शान्तचित्त चरित्रनायक कुछ न बोले और अमृतसर नामक तालाब में स्नान कर निकट ही एक वृक्ष के नीचे जा बैठे और वहां के पुजेरिओं को शाप दिया कि "जाओ, तुम लोगों में आपस में सदा बैर बना रहेगा और तुम कौड़ी कौड़ी के लिए झगड़ते रहोगे"। अस्तु, आज तक उनका यही हाल है। केवल वहीं क्यों, हिन्दुओं के सब तीर्थस्थानों में पण्डों का यही हाल है। भङ्ग छानने, दम मारने और भोले भाले यात्रियों को ठगकर पैसा कमाकर कौड़ी कौड़ी के लिए फ़ौज-दारी करने ही में इनका समय व्यतीत होता है। तीर्थ के पण्डे मानों वहां के प्लेग हैं। वहां यात्रियों के जाने की देरी है, कि बस, फिर वे उनसे ऐसे चिपट जाते हैं कि बिना यथोचित भेंट लिए पिण्ड नहीं छोड़ते।

इसके बाद घर लौटते समय जब तेग़बहादुर बल्ले ग्राम में पहुंचे तब वहां बहुत सी औरतें इनके दर्शनों को आई और इन्हें विविध प्रकार के धन रत्नादिक भेंट देकर उन्होंने आशीर्वाद ग्रहण किया। गुरु तेग़बहादुरजी की यादगार के लिए इस ग्राम में प्रति वर्ष माघ सुदी १५ को एक मेला लगता है, जहां बहुत सी औरतें सङ्गत के दर्शनों को आती हैं। इसके पीछे संवत् १७२२ के जेठ महीने में गुरु साहब कीर्तिपुर पहुंचे। वहां सिक्खों ने इनका बड़ा सत्कार किया और हज़ारों रुपये नक़द तथा बहुत से मूल्यवान रत्न इत्यादि इन्हें भेंट दिये, जिससे हमारे चरित्रनायक का ख़ज़ाना भर

गया और लङ्गर सदा गरम रहने लगा। फिर संवत् १७२२ के आषाढ़ मास में इन्होंने सतलज के किनारे मकवाल ग्राम की ज़मीन ख़रीद ली और उस जगह का नाम अनन्दपुर रखकर वहां बहुत से सिक्खों को बसा दिया। इसी समय के लगभग धीरमल ने औरङ्गज़ेब के पास गुरुआई की गद्दी का दावा किया। पर वहां कुछ सुनाई न हुई।

संवत् १७२२, माघ सुदी १५, को गुरु साहब अपने सब साज सामान और शिष्यों के साथ तीर्थ करने निकले और मथुरा, आगरा, प्रयाग, विन्ध्याचल इत्यादि होते हुए काशी पहुंचे और लक्खी चबूतरे पर, जहां उनकी यादगार में एक मकान बना हुआ है, जा ठहरे। वहां कुछ दिन रहकर वे गया गये। वहां जयपुर के राजा जयसिंह से इनकी भेंट हुई। यह शाहंशाह औरङ्गज़ेब की आज्ञा से सेना लेकर आसाम को विजय करने जा रहे थे। चूंकि आसाम के लोग बड़े जादूगर होते थे और जयसिंह पहले एक बार उनसे हार चुके थे, इसलिए तेग़बहादुरजी को करामाती जानकर इन्हें उन्होंने अपने साथ ले जाना चाहा। हमारे चरित्रनायक ने पहले तो उनके साथ जाना मंज़ूर नहीं किया, पर जब वे बहुत ज़िद करने लगे तब वे उनके साथ हो लिए और अपनी स्त्री वग़ैरह को पटने में एक विश्वासी शिष्य के यहां छोड़ दिया। फिर राजा के साथ मुंगेर, मुर्शिदाबाद होते हुए वे ढाके में पहुंचे। वहां बहुत से लोगों ने इनके दर्शन कर इन्हें धन रत्नादि भेंट दिये। यहां पर जिस मकान में गुरु साहब टिके थे, वहां अब तक उनका एक पलङ्ग सिक्खों द्वारा पूजा जाता है। इसके बाद आसाम पहुंचने पर वहां जयसिंह और आसाम के राजा से घनघोर युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में गुरु तेग़बहादुर के सिक्ख लोग भी अपने गुरु के साथ राजा जयसिंह की ओर से लड़े थे। अन्त को शूर वीर राजा जयसिंह के उत्साह और सिक्ख जवानों की बहादुरी से आसाम का राजा हार गया और गुरु तेग़बहादुर के पैरों पर गिर कर उसने क्षमा माँगी और औरङ्गज़ेब की आधीनत[illegible] क़बूल की। इस युद्ध में राजा जयसिंह के हाथ [illegible] लूट का माल असबाब लगा था उसमें से उस[illegible] सात लाख की अशरफ़ियां और जवाहिरात तेग़बहा[illegible] दुरजी को भेंट दिये। इसी बीच में गुरु तेग़बहा[illegible] दुर के घर पुत्र होने का सम्वाद आया, जिसे सु[illegible] कर वे बड़े ख़ुश हुए और आसाम के राजा [illegible] क़िले ही में ख़ूब जलसे और नाच रङ्ग हुए। आसाम का राजा भी हमारे चरित्रनायक के गु[illegible] से मुग्ध हो उनका शिष्य हो गया और गुरु साह[illegible] की आज्ञा से एक ऊंचे ढीहे पर "दमादमा साह[illegible] नाम की एक सङ्गत बनवा दी जो अब तक मौजू[illegible] है। इसके अलावा उन्हें अपने यहां ठहराकर उस[illegible] उनका बहुत कुछ सत्कार किया और चूंकि [illegible] निस्सन्तान था इसलिए एक दिन चौपड़ खेल[illegible] समय प्रसन्न होकर तेग़बहादुरजी ने उसे पुत्र हो[illegible] का वरदान दिया और फिर वहां कुछ दिन रह[illegible] जगन्नाथजी होते हुए वे पटने लौट आये। आसा[illegible] के इस राजा का नाम रामराय था जिसने थोड़े [illegible] दिन पीछे एक बड़े सुन्दर पुत्र का मुंह देखा[illegible] इस मौक़े पर हज़ारों रुपये की अशरफ़ियां [illegible] जवाहिरात इसने गुरु तेग़बहादुरजी को भेंट [illegible] भेजे। महीना भर पटने में रहकर गुरु तेग़बहा[illegible] जी वहां से काशी, हरिद्वार होते हुए चैत्र [illegible] द्वादशी, संवत् १७२४, को कीर्तपुर अपने घर लौ[illegible] आये। बहुत दिनों के बाद गुरु का दर्शन पा[illegible] सिक्ख लोग बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें बहुत [illegible] सामान भेंट में दिया। इसी समय गुरु साहब[illegible] अपने एकमात्र पुत्र गोविन्द को पटने से बुला[illegible] उसे हिन्दी, फ़ारसी और गुरुमुखी पढ़ाना [illegible] किया और साथ ही कसरत, कुश्ती, घोड़े [illegible] सवार होना, तलवार चलाना, और तीरन्दाज़ी [illegible] विद्या भी इन्हें सिखाई जाने लगी। यह भी [illegible] चित्त लगाकर इन विद्याओं को सीखते थे कि [illegible] ही दिनों में यह हर फ़न में निपुण हो गये।

इसी समय के लगभग दुराचारी औरङ्गज़ेब, जो ज़बरदस्ती हिन्दुओं को मुसल्मान बनाता था, और भी अत्याचारी हो गया और उसके इस अत्याचार से प्रजा त्राहि त्राहि करने लगी। अन्त को जब इसने सिक्खों पर भी ज़ोर .ज़ुल्म करना आरम्भ किया और उन्हें ज़बरदस्ती मुसल्मान बनाना चाहा, तब बहुत से सिक्ख गुरु तेग़बहादुर की शरण में जा पुकारने लगे, जिनके साथ औरङ्गज़ेब की हज़ारों हिन्दू प्रजा भी थी। जब हमारे धर्म्मात्मा चरित्र-नायक ने शरणागतों की यह आपत्ति देखी तब उन्होंने सब को इकट्ठा करके कहा कि "तुम लोग औरङ्गज़ेब से जाकर कहो कि पहले हमारे गुरु तेग़बहादुर को मुसल्मान बनाइये, तब हम लोग भी बिना उज्र. मुसल्मान हो जायँगे"। जब सब लोगों ने औरङ्गज़ेब से जाकर ये बातें कहीं तब उसने फ़ौरन हमारे चरित्रनायक को बुलवा भेजा। हमारे धर्म के सच्चे मित्र तेग़बहादुरजी, जो इस मौके का रास्ता ही देख रहे थे, फ़ौरन दिल्ली जाने के लिए तैयार हो गये और चूंकि उन्होंने धर्म के नाम पर प्राण बलिदान देने का सङ्कल्प कर लिया था, इसलिए अपने पुत्र गोविन्दसिंह को सब बातें समझा बुझा कर, संवत् १७२४, आषाढ़ बदी १३, को दिल्ली की ओर रवाने हो गये और राह में कई रोज़ बिताकर आगरे पहुंचे। जब औरङ्गज़ेब ने इनके आने में देरी होती देखा तब झुंझलाकर फ़ौरन इनकी गिरफ़्तारी का इश्तिहार दे दिया। गुरु तेग़बहादुरजी आगरे ही में थे, इसी बीच में बादशाही सवारों ने इन्हें मय पाँच शिष्यों के पहरे में कर लिया और दिल्ली लाकर कोतवाली में, जहां गुरु साहब के नाम पर अब तक एक गुरुद्वारा बना हुआ है, इन्हें नज़र-बन्द रक्खा। दूसरे दिन बादशाह औरङ्गज़ेब ने इन्हें सामने बुलाकर कहा कि—"तुम सिक्खों के गुरु कहलाते हो, तो क्या करामात रखते हो? या तो अपनी कोई करामात दिखलाओ या 'पाक दीन इसलाम' क़बूल करो"। इस पर हमारे धर्म्म-वीर ने उत्तर दिया कि "हिन्दू और मुसल्मान दोनों ही ख़ोदा के बनाये हैं, दोनों ही को वह कर्मानुसार समान फल देता है। यदि उसे मुसल्मानी मज़हब ही प्यारा होता, तो हिन्दू धर्म को वह पैदा क्यों करता? मुसल्मानी धर्म में हमारे ऋषियों के धर्म से कुछ उत्तमता नहीं है। फिर हम क्योंकर अपने सनातन धर्म को छोड़कर तुम्हारा नया मज़हब क़बूल कर सकते हैं? सुनो, ईश्वर ने तुम्हें हिन्दू और मुसल्मान दोनों का बादशाह बनाया है। एक दिन तुम्हें भी अपने दुष्ट कर्मों का फल भोगना पड़ेगा। तुम्हें अपने धर्म्म का ऐसा पक्षपात कर बेचारे निर्बल हिन्दुओं को सताना उचित नहीं है। क्या तुम्हारी बादशाहत सदा क़ायम रहेगी? संसार में कोई चीज़ भी एक सी क़ायम नहीं रहती। एक दिन ऐसा आवेगा कि इन्हीं हिन्दुओं के आगे तुम्हारी सन्तानों को सर झुकाना पड़ेगा। अभी से चेत जाओ। नहीं तो याद रक्खो कि तुम्हारे इस अत्याचार का बदला हिन्दू लोग बड़े भयङ्कर रूप से लेंगे। इसके अलावा जो तुम करामात दिखाने की बात कहते हो, सो हमसे नहीं हो सकती। हमें जादूगरों की ठगविद्या नहीं आती। परमात्मा के स्वाभाविक नियमों में कोई दख़ल नहीं दे सकता"। हमारे धर्मवीर की ये बातें सुनकर दुष्ट औरङ्गज़ेब झल्ला उठा और आज्ञा दी कि इन्हें क़ैद कर सख्त तकलीफ़ पहुंचाओ और जब तक यह मुसल्मान होना क़बूल न करें इन्हें प्राणान्त कष्ट दो।

अस्तु, निर्दयी मुसल्मानों ने गुरु साहब को क़ैद कर हर तरह से क्लेश पहुंचाना आरम्भ किया। यहां तक कि उनके पाँचों शिष्यों को भी बड़ी निर्दयता से मारना शुरू किया। उनमें से एक को गुरु साहब के सामने ही आरे से चिरवा डाला। दूसरे को खौलते हुए पानी की देग में डालकर मार डाला। और बाक़ी के तीनों को भी सूली दे दी। और तेग़बहादुर से कहा कि अब भी समझ जाओ, नहीं तो तुम्हारी भी यही दुर्दशा होगी। हमारे धर्म्मात्मा चरित्रनायक ने इन दुष्टों की बात का कुछ जवाब न दिया और आँख मूँद

कर परमात्मा का भजन करने लगे। तब गुरु तेग़बहादुरजी को क़ैदख़ाने से निकालकर लोग बादशाह के सामने ले चले। जब बादशाह ने उन्हें देखा तब वह बोला कि "क्यों जनाब, अब भी आप राह पर आये या नहीं? अब भी मान जाओ, नहीं तो क़तल किये जाओगे।" औरङ्गज़ेब की यह बात सुनकर हमारे धर्मवीर ने शान्तभाव से उत्तर दिया कि "मैं दूसरी राह पर क्यों आने लगा। जिस राह पर एक बार पैर रख चुका वही मञ्ज़िल पर पहुंचायेगी। तू क़त्ल करने को बार बार मुझे क्या धमकी देता है। असली तेग़बहादुर को आग नहीं जला सकती, तलवार नहीं काट सकती। इस नाशवान शरीर को अगर तैंने टुकड़े टुकड़े भी कर डाला तो उससे मेरी क्या हानि होगी। आत्मा अमर है। उसे लैाकिक शक्ति कष्ट नहीं पहुंचा सकती"। हमारे दृढ़प्रतिज्ञ धर्म्मवीर की बातों ने दुष्ट औरङ्गज़ेब के क्रोध में घी का काम किया। उसने हुक्म दिया कि गुरु का सिर फ़ौरन धड़ से अलग कर दिया जाय। अस्तु, सिपाही लोग इन्हें क़त्ल करने के स्थान पर ले गये और हमारे चरित्र-नायक ने अगहन सुदी ५, संवत् १७३२, को स्नान करके अपनी पोशाक पहिनी और वहीं एक वटवृक्ष के नीचे बैठकर ग्रन्थसाहब का पाठ करने लगे। और ज्योंहीं उन्होंने परमात्मा के ध्यान में सीस झुकाया त्योंहीं जल्लाद की तलवार ने उसे एक झटके में धड़ से अलग कर दिया और सच्चे धर्म्मवीर गुरु तेग़बहादुर की पवित्र आत्मा परलोक को प्रस्थान कर गई।

जब गुरु साहब के धर्म्म के नाम पर यों बलि-दान होने की चर्चा फैली तब दिल्ली भर में बड़ा हल्ला मचा और हमारे चरित्रनायक की लाश को घेरकर लाखों हिन्दू खड़े हो गये और औरङ्ग-ज़ेब को गालियां देने लगे। इसी बीच में एक झाड़ू देनेवाला वहां आया और सब लोगों की आँख बचाकर गुरु तेग़बहादुर का सर ले भागा और पञ्जाब में उनके पुत्र गोविन्द को दे आया। गोविन्दसिंह इस झाड़ूबरदार की काररवाई से बड़े ख़ुश हुए और उसे अपना शिष्य बनाकर जीवां से जवानसिंह बना दिया। औरङ्गज़ेब ने गुरु साहब का धड़ चैाक में चील कैावों के खिलाने को रखवा दिया। पर ठीक सन्ध्या के समय एक सिक्ख इनका धड़ उठाकर अपने घर ले आया और बादशाह के डर से इनकी लाश समेत अपने मकान में आग लगाकर गोविन्दसिंह के पास भाग गया। इसी जगह पर गुरु तेग़बहादुरजी के नाम से रिकाबगञ्ज नाम का एक मकान बना हुआ है, जो अब तक मैाजूद है। और जिस स्थान पर हमारे धर्म्मवीर ने शान्तिभाव से बैठकर अपना सिर कटवाया था, वह सीसगञ्ज कहलाता है। क़ैदख़ाने में रहती समय इन्होंने बहुत से जोशीले और वैराग्य-पूर्ण भजन बनाये थे जो ग्रन्थसाहब के कोरे पृष्ठों पर लिख दिये गये।

वेणीप्रसाद

वसन्तराज।

[१]

सुयश-गान करो भगवन्त का;
सुखद है अब राज्य वसन्त का।
कठिन शीत पड़ा दिन रात जो;
अब नहीं खलता जलजात को॥

[२]

हिम-निपात हुआ अब दूर है;
सुख चराचर को भरपूर है।
त्रिविध शीतल-मन्द-सुगन्धित;
बह रही अब मारुत है नित॥

[३]

शिशिर में तरु जो बिन पर्ण थे;
हरित वर्ण हुए सज वे सभी।
सुमन-सज्जित आज समाज है;
सब कहीं सुखमामय साज है॥

[४]

वन-विहार-निमित्त वसन्त के;
उचित स्वागत की अभिलाष से।
निज तपोवल से तरु-वल्कली *
सुरपुरी सम की सुवनस्थली।

[५]

रजनि में नभ ज्यों अभिराम है;
कुसुम-संयुत त्यों महिधाम है।
प्रणय में रवि के हिम-कामिनी;
अब लगी द्रवने दिन-यामिनी॥

[६]

सरस † हो नदियाँ भरने लगीं;
ग्रहण यौवन का करने लगीं।
अब न वे दुख से, दुबली लगें;
नव-वधू-तन-तुल्य भली लगें॥

[७]

नित परस्पर-प्रेम-सुधा-सनी;
नव युवा जन रीति रचें घनी।
मदन-पूजन ‡ से नित नित्य वे;
सब हुए मन में कृतकृत्य वे॥

[८]

तरुण, बालक, वृद्ध प्रमोद में,
रजनि-वासर मग्न विनोद में।
रुचिर फाग मची सब ओर है;
न सुख का जग में अब छोर है॥

[९]

मधुप हैं कुसुमों पर गूँजते;
विहग हैं विटपों पर कूजते।
हृदय में अपने अति तुष्ट हो;
सब कथा कहते ऋतु राज की॥

[१०]

तनिक भी दुख का मिलता नहीं
अब पता, पुर-कानन में, कहीं।
अति-समीप सभी सुख-साज है;
सकल-सौख्य-धनी ऋतुराज है॥

[११]

नृपति पुण्य-चरित्र जहाँ रहै;
सुख-समृद्धि-समीर वहाँ बहै।
यदपि हो सब उन्नति आप से;
समझिए नृप-पुण्य-प्रताप से॥

[१२]

विजय हो जिसको सब चाहते;
चरित हो जिसका सुसराहते।
अवनि में चिर राज्य करै वही;
विनय, हे परमेश्वर! है यही॥

सनातन शर्म्मा सकलानी।

रसालपञ्चक।

[१]

जो कोउ दूर सों आवैं थके,
तिन के दुख दूर करैं ततकाल।
दै निज शीतल छाँह मनोहर,
हेतु बिना सुख देत कमाल॥
कौन तिहारी कहै महिमा जन-
मोदन जो लखि होत निहाल।
पाहनहू सों हनै तेहि को तुम,
देत अमी फल धन्य रसाल॥

[२]

यद्यपि तोसों रहै अति दूर पै,
राखै हरो, करि छाँह ललाम।
त्यों जनमोदन एहो रसाल!
बिलोकि दवागिन ग्रीषम घाम॥

---

* (क) वस्त्राभरण-रहित वल्कल-धारी ऋषिगण;
(ख) पत्र-पुष्प-रहित वल्कलशाली तरुवर।

† बर्फ़ गलने के कारण सजल होकर।

‡ वसन्तऋतु में भगवान मदन को पुष्प-चन्दनादि से पूजने की प्रथा सनातन से है। 'वसन्तोत्सव' तथा 'मदन-महोत्सव' साथ ही साथ होते हैं।—रत्नावली।

आँसुन धार बहावत है चहुँधा
तुम्र ताप निवारन काम।
एक अकारण मित्र तिहारो,
अहैं जगमें रस मैं घनश्याम ॥

[३]

फटकारि कै दूर भगावत है,
खल काक उलूकन को सबकाल।
फल उन्नति हेतु उपाय घने,
रचि प्रान समान करै प्रतिपाल ॥
जनसीदन जो कछु पाक्यौ गिरै,
फल पाय तिन्हें अति होत निहाल।
धनि है एहि बाग़ को माली, अहो
जिन सेवै सुजीवन सींचि रसाल ॥

[४]

सेवत हैं तुम कों तब लौं जब लौं,
फल पूरो लहैं रस खानि सों।
देखतही फलहीन तुम्हे तजि देहैं,
अहो! निज निस्पृह बानि सों ॥
मानि हैं ना उपकार, इन्हें जन-
सीदन सोच न है तुम्र हानि सों।
एहो रसाल न भूलो कभू इन,
कोयल की मधुरी बतियानि सों ॥

[५]

आतप सीत समै बरपाकृत,
पावत हू नित कष्ट अनेक।
औरन को उपकार करौ हो,
अहो सहकार! हरै नहिँ टेक ॥
है सब तोँ में भलो गुन पै,
जनसीदन एक यहै अविवेक।
काक उलूकन को निज पास,
बसाय करौ फल नष्ट कितेक ॥ ५ ॥

जनार्दन झा।

वसन्त।

जय वसन्त रसवन्त सकल-सुख-सदन सुहावन
मुनि-मन मोहन भुवन तीन जिय-प्रेम गुहावन
जय सुन्दर स्वच्छन्द भावमय हिय प्रति परसन
जयनन्दन वन सुरभित सुखद समीरन सरसन
जय मधुमाते मधुप-भीर कों चहुं दिसि छोरन
ललित लतान वितानन में दुति-दलहिं विथोरन
जय अनूप आनन्द अमित अति अटल प्रदरसन
जय रस-रङ्ग-तरङ्ग वेलि अलबेलिन बरसन
करिवे स्वागत आप हरन-त्रयताप सकल थल
जड़ जङ्गम जग-जीव जनौ जाग्यौ जोवन-जल

जो तरु विथित-वियोग सदां दरसन तव चाह
नौचि नौचि कच-पातनि अश्रु-प्रवाह प्रवाहत
देखहु किशलय नहीं आंखि अति अरुण भयीं
रोवत रोवत हाय! थके अब टेर सुनौ किन!
तुम्हरी दिसिहि निहारि पुलकि तन पात हिल
करसों मानहुँ मिलन तुमहिँ निज ओर बुलाव
बौरे नहीं रसाल बने बौरे तव कारन
बलिहारी तव नेह-नियम-निठुराई धारन!
तुमसौ कठिन कठोर और जग दूसर दीख न
साँचौ किय निज नाम "पञ्चशर को शर तीखन"!

तोहू मृदुल स्वभाव धारि जो प्रेमिन भावत
करनौ वाकी ओर जाहिसों प्रेम लगावत
लखि तुम्हरे पद-कञ्ज रञ्ज सब भूलि भूलि तन
साजि साजि सँग ललित लहलहो लौनी लति
भांति भांति के विटप-पटनि सजि वे ही आव
कोऊ फल कोउ फूल मुदित मन भेटहिँ लावत
"जयति" परसपर कहत पसारत आपनि डार
मनहु मत्त मन मिलन मित्रकर कर गर डाल
आवहु आवहु वेगि अहो ऋतुगन के नरपति
तरुवृन्दनि को लखहु आप शोभा की सम्पति
वह देखौ नव कली भली निज मुखहि निका
लगि लगि वात-प्रभात गात अलसात सम्हा

प्रथम समागम-समर जीति मुख मुदित दिखावति
लहकि लहकि जनु स्वाद लैन को भाव बतावति
मुखहि मोरि जमुहाति भरी तन अतन-उमङ्गन
जोम-जुवानी जगे चहत रस-रङ्ग-तरङ्गन
वह देखौ अलि-पुञ्ज कली-कल-कुञ्ज गुँजारत
मानहु मोहन मनहि मदन को मन्त्र उचारत
ठौर ठौर मधु-अन्ध भयो वह देखौ झूमत
कबहूँ जापर वापर यों सबही पर घूमत ४०

फूलत कच-कचनार अपार अनार हजारन
किंशुक जाल तमाल विसाल रसाल-पसारन
वह देखौ कुल-वकुल घिरयो जो आकुल मधुपन
चोरत चहुंवा चित्त निचोरत चारु मधुरपन
कहुँ पटल के पुहुप चटकि चटकत चित चायन
बौरे आँनद मनहुँ प्रेम बौरे मन भायन
जगत-जननि कौ महा अमङ्गलमूल लजावन
मानहुँ सब जग-वन्दन वन्दन-वार सजावन
मुकुलित अम्ब कदम्ब कदम्बनि पै कलकूजत
"केहू केहू" मोर अलापत आशा पूजत ५०

देखहु निज आगमन-छटा जमुना-जल-कूलन
सटकि कुञ्ज वन सघन घटा नव फूलै कूलन
द्रुम-डारन के बीच चपल-चहचही-चुहूकनि
कोयल-कीर-कपोत-कलित कल-कंठ-कुहूकनि
मानहुँ करि श्रुति-पाठ धरम की धुजा उड़ावत
"हे भारत! अब उठौ तजौ आलस" समझावत
सुबोल द्विज अपर डहडही डारन बोलत
कर सायल मन-हरनि हरनि सँग इत उत डोलत
दुबरी गहि मुख तृनहि सुरभि चहुँ दिसि जहँ जोवति
श्री गोविन्द गुपाल कृष्ण सुधि करि जनु रोवति ६०

भरे सरोवर स्वच्छ नील जल नलिन रहे खिलि
सारस हंस चकोर घोर सब सोर करैं मिलि
सरस सुगन्धित जुही चुई परिमल शुचि धावत
पुष्प-धूल धूसरित हीय सब सूल नसावत
ऋतु-सुमौलिमनि! अहो! यहां के हरहु त्रितापन
प्रेमवन्त! गुनवन्त! करहु सुख-शान्ति सु-थापन

हमहूं एक गमार गाम-रस-पुलकित तन मन
जासों हमरो कह्यो सुन्यो छमियो सब भगवन!
महिमा अपरमपार पार को पावत पूरन
सत्यवर्ननातीत गीत तव करत सुपूरन ७०

सत्यनारायण।

विचारशील प्राणी।

[१]

जग में किसका प्रताप छाया है?
जिसने मस्तक सदा नवाया है।
द्वेष, ईर्षा कभी नहीं आई;
जीत जिसने घमण्ड पर पाई॥

[२]

दुःख में भी जो शान्तियुक्त रहा;
जिसने सङ्कट में भी न झूठ कहा।
गाली सुनकर जो मौन रहते हैं;
कष्ट पाकर भी कुछ न कहते हैं॥

[३]

जिनको प्राणी जगत के प्यारे हैं;
औ दयापात्र हैं, दुलारे हैं।
जो समय पर सहायता देते;
किन्तु बदले में कुछ नहीं लेते॥

[४]

जो न थकते हैं; काम करते हैं;
धर्म-पथ पर सदा विचरते हैं।
अपने मातापिता के अनुचर हैं;
प्राण-आधार सुख-सरोवर हैं॥

[५]

पाप करते न तन, वचन, मन से;
शुद्ध रहते शरीर चेतन से।
लोभवश हो नहीं कुमार्ग लिया;
पाप भाया न कुछ कुकर्म किया॥

[६]

जो उचित है उसीको करते हैं ;
उसके विघ्नों से कुछ न डरते हैं ।
मरते मरते भी सच का दम भरते ;
काल से भी कभी नहीं डरते ॥

[७]

जिनका जीवन पवित्र तारा है ;
भूले भटकों का एक सहारा है ।
प्रेम करते हैं सबके प्यारे हैं ;
डर किसीका न डरके मारे हैं ॥

[८]

नम्र, कोमल हैं और जो ज्ञानी ;
अपने मर्य्याद के न अभिमानी ।
भक्ति ईश्वर की, जीसे करते हैं ;
उसके नियमों प जो विचरते हैं ॥

[९]

जोकि सच्चे हैं और उद्योगी ;
काम करते हैं सत्य उपयोगी ।
उनका जग में प्रताप है छाया ;
है पताका उन्हींका फहराया ॥

कृष्णजीसहाय ।

मेरी चम्पा ।

मैं अपना पूरा पता आपसे नहीं बताऊंगा । उसे सुनकर आप मेरी हँसी उड़ायेंगे । पर मैं आपही लोगों में से किसी न किसी पाठक के साथ युक्तदेश के एक बहुत बड़े नगर में रहता हूं । मुझपर जो कुछ बीती है उसे मैं आप लोगों को यहां पर सुनाना चाहता हूं ।

मेरे पिता एक बहुत बड़े साहूकार थे । उनकी देउढ़ी पर दिनरात भीड़ लगी रहती थी । दल के दल सन्त्री बन्दूकों पर सङ्गीनें चढ़ाये वहां पर पहरा देते थे । मुनीमख़ाने का आँगन चाँदी के से मढ़ा हुआ था । उसके बीच में एक छोटा कामदार हौज़ था, जिसमें एक सोने के फौवारे मोतिओं की लड़ी सी जल की धारा छूटा कर थी । रुपये की ठनाठन सुनते सुनते कान बहरे जाते थे । लक्ष्मीजी के चरणकमलों की छाया वहां पर लोग बड़े सुख से रहा करते थे । पिता का बड़ा नाम था ।

परन्तु कालवश पिताजी का स्वर्गवास हुआ में १९ वर्ष का नौजवान माता लक्ष्मी की गोद में दिया गया । परन्तु मेरी बुद्धि बहुत ओछी थी लक्ष्मी की चञ्चलता का तो विचार मैंने किया न और न उनकी पूजा ही करना मैं जानता था—उ मैंने उनका अपमान करना आरम्भ किया । मेरे से यार दोस्तों ने अवसर पाकर मुझे घेर लि उनकी कुसङ्गति में पड़कर मैं धन को पानी तरह बहाने लगा । भोग विलास और वाहि खुराफ़ात बातों में दिन बड़े आनन्द से बीतने ल काम काज सब ढीला पड़ गया । चञ्चला ल और भी अधिक चञ्चल हो उठीं । अन्त में बिलकुल चली ही गईं । सब कहीं सन्नाटा छा ग सुख का स्वप्न चट से टूट गया । यार दोस्त हवा हो गये । मैंने संसारसागर के बिचले टा धूप से जलते हुए विशाल रेते पर अपने को अ निःसहाय पड़ा पाया ।

पर अब क्या हो सकता था । अपने किये पछताना,—बैठे बैठे हाय हाय करना,—हाथ मल कर रोना—इनसे भी कुछ लाभ न देख प जो लोग मेरे सुख के दिनों में मेरे बड़े "हित मैं एक एक करके उन सबों से सहायता गया । पर सबने मुझे धता बताया । निदान पीटते, हाय हाय करते, थोड़ा बहुत माल अस जो बचा खुचा रह गया था, उसे बेचबाच क बहुत थोड़ी पूंजी मेरे हाथ लगी, उसेही एक छोटी सी गली में एक बहुत ही छोटा सा

किराये पर लेकर वहीं में रहने लगा, और ज्यों त्यों करके अपने निर्धन जीवन को बिताने का मनसूबा मैंने ठान लिया।

जब मैं करोड़पति था, जब लक्ष्मी की नरम गोद में लेटा रहता था, दिन तब भी बीत जाते थे; और, अब, दिनभर में दो मुट्ठी चने, या ऐसा ही कुछ और रूखा सूखा भोजन पाकर, एक अँधेरी सी कोठरी में, एक टूटी खटिया पर पड़ा रह कर भी—अब भी—मेरे दिन बीतने लगे—वे मेरे लिए ठहरे नहीं। अब भूख भी ख़ूब लगती थी, और अचरज की बात यह है कि निकृष्ट भोजन भी मुझे अच्छा लगता था। अब जोंक के समान चूस कर लोहू पी जानेवाले ख़ुशामदी मेरे अन्न में साझा नहीं लगाते थे। पुस्तकों के पढ़ने का शौक तब तक मुझे नहीं हुआ था *। समय काटने का कुछ और उपाय न पाकर मैं अपने कोठे पर खिड़की के सामने बैठा बैठा बाँसुरी बजाया करता था। इसी तरह कुछ दिन बीत गये। तब मेरे शून्यमय जीवन पर एक दूसरी प्रकार की छाया आ पड़ी।

मेरी गली बहुत तङ्ग, बहुत ही छोटी थी। उस में रहनेवाले लोग भी बहुत ग़रीब थे। मेरे घर के ठीक सामने ही एक स्त्री रहती थी। वह विधवा थी और बहुत सीधी सादी थी। उसने भी पहले अच्छे दिन देखे थे। परन्तु अब उसका भाग खोटा हो गया था। बेचारी चरखा कात कर बड़ी कठिनाई से पेट पालती थी। उसके एक बेटी थी। वह अपनी मा के काम काज में सहायता देती थी। दोनों मा-बेटी दिनभर चरखा काता करतीं थीं और तीसरे पहर एक बार सूत को कहीं ले जाकर बेच आया करती थी। ये लोग मेरी ही जाति के थे। कन्या साक्षात् लक्ष्मी का स्वरूप थी। इस समय खिलती हुई कली की तरह उसका यौवन विकसित होने लगा था। एक दिन यह बाला मेरे नेत्रों के सामने पड़ गई। उसे देखते ही मेरा लू का सा मारा हुआ जला भुना हृदय भी सरसब्ज़ हो उठा। जी में यही होने लगा कि यह मुझे मिल जाय तो फिर एक बार, अपने लिए नहीं, इस सुन्दर फूल की कली के लिए, अपने टूटे भाग्य की परीक्षा लूं। फिर, नये सिरे से, जीवन की टूटी नाव को संसार-सागर के लहरों में ले चलूं—इस सुन्दर फूल को हृदय से लगाकर फिर जीऊँ। पर हाय, मैं अभागा, दरिद्र, गुणहीन, जिसे अपने पेट तक भरने का सामर्थ्य नहीं, जिसका नाम नगर नगर में बदनाम हो रहा है,—हाय, मुझे ऐसी दुराशा!

परन्तु आशा बड़ी मायाविनी है। आशा दुर्बल के हृदय में भी पहाड़ हटा देनेवाली शक्ति ले आती है। आशा ने न माना। वह मुझे फुसलाने लगी। उसने कहा, पूछ तो देखो। किससे पूंछूं, चम्पा की मा से?—मेरी हृदयवासिनी का नाम चम्पा है। कैसा प्यारा नाम है!—चम्पा की माके सामने अपना मुँह कैसे दिखाऊं। वह मेरा नाम सुनते ही मुझे दुरदुरा देगी। मेरे कलङ्क ने मेरे अच्छे गुणों पर भी स्याही चढ़ा रक्खी है। अच्छा, चम्पा ही से पहले पूछूं! लज्जा ने कहा, छिः, छिः, तुम बड़े खोटे हो। अब भी तुम्हारी खुटाई नहीं गई। मैंने कहा, ठीक है, चम्पा से बोलना उचित नहीं। परन्तु आशा! वह क्यों मानने लगी? उसने फिर मेरे मन को उत्तेजना दी। उसने कहा, चम्पा तेरी लक्ष्मी है, चम्पा तेरे अंधेरे हृदय का दीपक है, चम्पा न मिली तो तेरा जीना ही वृथा—यमुनाजी में जाकर डूब मर। मैंने फिर अपना हृदय टटोला। हृदयने कहा बांसुरी हाथ में लेकर अपनी गोपी को बुला। मैंने वैसा ही किया। बहुत मन लगा कर मैं अपनी बाँसुरी में तान छोड़ने लगा। अपने मन को घोल घोलकर मैं बाँसुरी के सुर में मिला देने लगा। चम्पा, चम्पा, चम्पा,—चम्पा ध्यान, चम्पा ज्ञान, चम्पा प्राण—चम्पा मेरे जपने की माला हो गई। पाठक, आप मुझ पर हंसिये मत। मैं अपना हृदय खोलकर

* परन्तु अब मेरे घर में एक बहुत बढ़िया लाइब्रेरी हो गई है,—और जब से "सरस्वती" पत्रिका निकलने लगी तब से उस का भी मैं ग्राहक बन गया हूं—उसकी मैंने बहुत बढ़िया जिल्दें बँधवा रक्खी हैं।

आपको दिखा रहा हूं। इस समय आप को कुछ उदारता दिखानी चाहिए।

चम्पा के लिये मैं पागल हो गया। और चम्पा, क्या उसने मेरी पुकार नहीं सुनी? क्या मेरी बाँसुरी की ध्वनि उसने नहीं समझी? क्या मेरे हृदय की तान उसके हृदय तक नहीं पहुंची? नहीं, नहीं, कुछ भी नहीं हुआ। चम्पा को मेरे लिये कुछ भी परवा नहीं। मेरा हृदय शिथिल होने लगा। पर फिर भी आशा ने मेरा साथ नहीं छोड़ा। वह मेरे कान में फिर मन्त्र फूंकने लगी। मेरी बाँसुरी फिर बड़े चावसे मेरे हृदय की वेदना गाने लगी। यों ही कुछ दिन बीत गये। चांदनी से खिलते हुए आकाश में जैसे मेघमाला के साथ चन्द्रमा आंख-मिचौनी खेला करता है, मेरे हृदय के भीतर आशा पापिनी उसी भांति गड़बड़ मचाने लगी—नये नये खेल खेलने लगी। उसके साथ साथ, मेरा दुर्बल हृदय कभी हँसने लगा, कभी रोने। परन्तु मेरे हृदयाकाश में प्रायः अंधेरा ही रहा। आशा की ज्योति भी उस घने अंधकार में क्षीण सी देख पड़ने लगी।

इसी भांति बड़े दुःख से और भी कुछ दिन बीत गये। मेरा हृदय भी नित्य नियमित समय पर बाँसुरी के सुर के साथ टपक टपक कर चूने लगा। निदान एक दिन अंधेरे आकाश में एक चमकता हुआ तारा देख पड़ा। मेरी खिड़की के सामने चम्पा के घर की खिड़की भी खुली देख पड़ने लगी। मैंने सोचा चम्पा भीतर खड़ी खड़ी मेरी पूजा ले रही होगी। फिर क्या था! मेरा हृदय और भी मत्त हो कर गाने लगा। कुछ दिनों बाद चम्पा ने झांक कर एक आध बेर मेरे घर की ओर देखा। मेरा उत्साह और भी बढ़ गया। इसी समय मैंने देखा, एक दूसरी स्त्री चम्पा के घर आती जाती है। मुझे यह भी जान पड़ा कि वह चम्पा की माँ का काता हुआ सूत उसके घर से मोल ले जाती है। मैंने धीरे धीरे उससे मित्रता करली। उसे बुला-कर चम्पा के घर का समाचार मैं पूछने लगा। मैंने सुना कि चम्पा के देह का वस्त्र चीथड़े चीथड़े हो गया है, पर धन के अभाव से वह एक साड़ी तक मोल नहीं ले सकती। मैंने झट दो रुपये लेकर उसे दिये और कहा कि इनसे तुम उसके लिए वस्त्र ले दो परन्तु मेरा नाम न बताना। बुढ़िया चम्पा की माता को वे रुपये देने गई; परन्तु उसने नहीं लिये। वह नरमी से उसने कहा कि "बहन, दिन मेरे बहुत से हैं; पर मैंने अब तक कभी भिक्षा नहीं मांगी। जब तक बन पड़ेगा अपने हाथ पैरों के पसीने से जो कुछ मिलेगा, मैं उसीसे दिन काटूंगी। मुझे तुम ऐसी लालच मत दिखाओ। राम चाहेंगे तो कभी इस दुख का भी अन्त हो ही जायगा। चम्पा को किसी अच्छे घर में दे डालूं तो फिर मुझे कुछ चिन्ता न रहेगी"। मैं चम्पा की माता की यह आत्म-मर्य्यादा देख दङ्ग हो गया, और सोचने लगा, क्यों न हो, वह नीच घर की थोड़े ही है। फिर उस वृद्धा से मैंने कहा "तुम एक काम करो। चम्पा की माँ को समझा कर ये रुपये उसे उधार कह कर दे आओ और चम्पा के लिए वस्त्र लेकर जो कुछ बचे उससे उसे रूई मोल ले दो और कह दो कि इससे नियम से अधिक सूत कात कर, जो पैसे बचें उन्हें तुम्हें लौटा दिया करे, जिससे धीरे धीरे वह अपना ऋण चुका दे। तब तो इसका नाम भीख न होगा"।

मैंने जैसा कहा था वैसाही हुआ। चम्पा की माने रुपये उधार लिये और चम्पा के लिये एक नया मोटा वस्त्र मोल ले दिया। इससे मेरे हृदय को जो आनन्द मिला उसका वर्णन मैं कैसे करूं। परन्तु, नहीं, मुझे और भी अधिक आनन्द मिलना था। चम्पा मेरी चाल समझ गई और उसके लिये उसकी माता के लिये मैं जो दुःख सहता था, वह उस बुढ़िया ने चम्पा से एक दिन कह दिया। इन्हीं दिनों से चम्पा मेरे हृदय को समझ गई। इसी समय पास के कई मन्दिरों में नित्य सन्ध्या के समय बड़ी धूमधाम से ठाकुर जी की झांकी हुआ करती थी। सब स्त्री-पुरुष सभी झांकी को जाया करते थे। चम्पा

और उसकी माता भी कभी कभी जाया करती थीं। मैं भी अवसर पाकर दूर से उनके पीछे हो लेता था और मेरा प्यासा हृदय चम्पा के मुख-चम्पक की झांकी में मग्न हो जाता था। चम्पा ने मेरी यह करतूत भी देख ली और शायद मेरे मन की बात भी समझ ली। परन्तु मुझ पर वह नाराज़ नहीं हुई क्योंकि कभी कभी मन्दिर में एक आध बार बड़े चाव से वह मेरी ओर निहारा करती थी। मेरा मन-चकोर उसके चन्द्र-मुख को देख देखकर फूला नहीं समाता था। अपने मन की कृतज्ञता को मैं बाँसुरी के द्वारा उस तक पहुंचा देता था। इसी रीति से कुछ दिन और बीत गये। हम दोनों का प्रेम बढ़ता ही गया। पर आज तक हम लोग एक दूसरे से कभी बोले नहीं।

अब एक बात और हुई। चम्पा की मां से एक धनवान वैश्य ने चम्पा को मांगा और धन से वह उस की सहायता भी करने लगा। चम्पा की मां ने अपने दुःख के साथी चरखे को अलग उठा रक्खा। वैश्य अधेड़ था। कुछ दिन हुए उसकी पहली स्त्री मर गई थी। इस लिए उसने चम्पा से अपनी सगाई करना चाहा। चम्पा की माता भी राज़ी हो गई। ये बातें छिपी नहीं रहीं। मेरे कलेजे पर पहाड़ का एक बड़ा भारी टुकड़ा टूट पड़ा।

परन्तु कुछ और ही होना था। अपने विवाह का समाचार सुनकर चम्पा गुलाब के समान लाल हो गई। उसके सिर में चक्कर आने लगा। वह अपनी माता की गोद में अचेत हो कर गिर पड़ी। उसकी माता बहुत घबराई और उसके मुख पर पानी के छींटे देने लगी। परन्तु चम्पा कुछ सचेत होते ही फूट फूट कर रोने लगी। इससे माता समझ गई कि चम्पा इस विवाह से राज़ी नहीं है। फिर भी, उसने अपनी बेटी को बहुत कुछ समझाया बुझाया। परन्तु इससे चम्पा के हृदय की आंधी बढ़ने ही लगी। वह बहुत ही विकल हो गई। माता बेचारी क्या करती,—चम्पा उसे प्राण से भी प्यारी थी,—ठीक ठीक बात तो उसने कुछ समझी नहीं। परन्तु कुछ हीला हवाला करके सगाई तोड़ दी। दुखड़े का चरखा फिर पहले की भाँति चलने लगा। परन्तु जिस वैश्य ने विवाह का प्रस्ताव किया था वह बहुत चिढ़ गया। उसने चम्पा की माता को खुल्लम खुल्ला बहुत कुछ भला बुरा सुनाया। वह बेचारी कुछ उत्तर नहीं दे सकी। उपहार की सब वस्तु लैटाकर उसने घर के किवाड़ बन्द कर लिये। उस वैश्य ने कुछ ही दिनों में बड़ी धूम से दूसरी जगह अपना विवाह कर लिया। परन्तु सगाई टूट जाने से चम्पा की मा को मुहल्लेवालों में कुछ लज्जा सी होने लगी। इससे उस घर को छोड़कर वह एक दूसरी जगह उठ गई। चम्पा का अदर्शन मुझे खलने लगा। परन्तु पता लग जाने पर मैं भी फिर उसके घर के पास ही जाकर रहने लगा।

अब मुझे अपने मन में बड़ी ग्लानि होने लगी। मैं सोचता, चम्पा, तूने मेरे लिए फिर अपने सिर पर दुख का बोझा लाद लिया। पर मुझमें इतना भी सामर्थ्य नहीं कि मैं तेरी माँ से जाकर तुझे माँग सकूं! धिक्कार है मेरे इस जीवन को! इसी समय आशा फिर कहीं से बिजली की तरह लपक कर मेरे सामने आ खड़ी हुई और उसने कहा, "रे मूर्ख, पौरुष बिना कुछ नहीं होता। बाँसुरी ही अकेली तेरी सहायता नहीं कर सकती। तू भी तो कुछ कर!" मैं क्या करूं। मेरी बुद्धि काम नहीं करती। उसकी धार बिलकुल घिस गई थी। परन्तु आशा—आशा—हां, एक आशा ही मेरी आधार हो रही थी। उसने ही फिर मेरे साथ अच्छा सलूक किया। उसने कई दिन रगड़ रगड़ कर मेरी घिसी घिसाई बुद्धि को कुछ तेज़ कर दिया। मैं उठकर अपने पिता की बहिओं को जाँचने लगा। मैंने पिताजी के लहलहाते हुए खेत को उजाड़ कर दिया था। परन्तु आशा कहती थी "ढूंढ़, ढूंढ़, सम्भव है कि एक एक बिखरे दानों को समेटकर तुझे कुछ थोड़ी सी पूंजी फिर मिल जाय"। और हुआ भी ऐसा ही। कालपी के एक महाजन के नाम मेरे पिता के कुछ रुपये निकले।

उसने उन्हें वापस नहीं किया था। मैंने तुरन्त उस के पास जाने का विचार किया, और थाली लोटा जो कुछ बचा खुचा रह गया था, सब बेच बाच कर मैं यात्रा की तैयारी करने लगा।

परन्तु चम्पा को अपने मन की बात कैसे कहूं? चलने के पहले उससे कह जाना चाहिए कि मैं तेरे ही लिए इतना परिश्रम कर रहा हूं। तू ठाकुरजी से बिनती करती रहिओ कि मेरी मनोकामना पूरी हो जाय। मैं फिर पूंजी पाकर व्यापार करूं और तब---और तब—चम्पा!—, हाय, क्या भगवान मेरी सुनेंगे!—

उस दिन कोई नहान था। चम्पा भी अपनी माता के साथ यमुना नहाने गई थी। मैं इसी अवसर पर, गठरी को कन्धे पर डाल, लोटा डोरी हाथ में ले, पथिक के वेष में, खोजते खोजते, चम्पा जिस घाट में स्नान करने गई थी उसके सामने, सड़क पर जाकर खड़ा रहा। कुछ देर में मेरी मनोमूर्त्ति घर लौटी और मुझे सामने इस वेष में देख कुछ चकित सी हो गई। परन्तु एक बार आकाश की ओर देख, एक लम्बी साँस भर कर, अपनी माता के साथ आगे बढ़ चली। जाती समय फिर एक आध बेर उसने मेरी ओर देखा—फिर हम दोनों के नेत्र एक हुए। उसके मुख की द्युति से मुझे जान पड़ा कि चम्पा मेरे हृदय की बात समझ गई होगी। अस्तु, उसे जगदीश्वर की शरण में छोड़, उनका नाम स्मरण करते करते, मैंने कालपी की सड़क पकड़ी।

राह में मुझ पर जो कुछ बीती, यहां लिखने की कुछ आवश्यकता नहीं है। उसे सुनते सुनते आप उकता जायँगे, इससे मैं वह सब नहीं लिखूं-गा। परन्तु मेरा कालपी जाना व्यर्थ हुआ। महा-जन का पता तो लगा, पर वह बेईमानी कर गया। उलटा मेरे पिता के नाम उसने कुछ रुपये निकाले। मेरे बहुत हाथ पैर जोड़ने पर उसे दया आ गई और उसने मुझे जेलखाने भिजवा दिया। डेढ़ महीने तक मैं जेलखाने में पड़ा रहा। जब छुटा, मेरे पास एक टका भी न था। निदान, विपत्ति मारा, क्या करूं, कहां जाऊं, सोचते सोचते आगे बढ़ा। सामने सड़क पर एक सराय मि मेरी दशा उस समय कङ्गालों से भी निकृष्ट रही थी। भठियारे ने मुझे अपने यहां टिकने ही दिया। परन्तु मेरी दुर्दशा पर एक बनिये को दया आई। उसने मुझे एक मुट्ठी भुने हुए चने को दिये और एक कुञ्जी हाथ में देकर कहा, जा सामने वह बाग़ है, ताला खोलकर उसके भी जाकर सो रहो। वह ज़मींदार का बाग़ीचा है। उसमें कोई नहीं रहता है। मैंने उससे कुञ्जी ले और तुरन्त बाग़ीचेवाले घर में घुस गया। जाते देख भठियारा और बनिआ दोनों ठठ हँसने लगे और आपस में न जाने क्या कहने मैंने सोचा ये लोग मुझसे कोई दिल्लगी करते हैं; पर बाहर जाड़े में ठिठुर कर तो मुझसे रहा जाता। मैं बेधड़क किवाड़ खोलकर भी घुसने लगा। इतने में वह बनिया एक दिया ले आया और कहने लगा, मकान सूना है, अकेले लगैगा, यह दियासलाई लो, दिये में तेल भर इसे जलाकर सोना। मैंने कहा दिये की ज़रूरत नहीं। बनिये ने कहा, भैय्या, सचेत से दिया जलने देना, इस मकान में एक भूत है। मैंने कहा मेरे लिए अब मरना ही अच्छा भूत क्या करेगा, बहुत करेगा मेरा गला घोंट गा। सो भी मुझे मंज़ूर है। निदान मैं भीतर गया। एक कमरे में पलंग बिछा था। उस पर बिछौना भी पड़ा था। मैं उसे बिछाकर, कम्मल लपेटकर, सुख से पड़ रहा। परन्तु नहीं आई। मैं सोचने लगा, भूत मेरा क्या लेगा। मुझे अब जीने की इच्छा नहीं है। इत में किसी ने किवाड़ों में धक्का दिया। मैंने "कौन?"

पाठक, भूतों की कहानी सुनकर आप कि लो, यह अब बकवाद करने बैठा, लड़ कहानी कहने लगा है। परन्तु आप चाहे मेरी

पर विश्वास कीजिए, चाहे न कीजिए, यह आप का अधिकार है। मुझ पर जो बीती है सो मैं कहे डालता हूं।

मैंने भीतर से कहा "कौन?" परन्तु कहीं कुछ नहीं। बाहर, बाज़ार में, चौकीदार पुकार रहा था "जागते रहो! जागते रहो!" फिर किवाड़ों में धक्का लगा। साहस ने कहा 'कुछ नहीं' है। इतने में किसी के आगे बढ़ने की आहट सुन पड़ी। किवाड़ तो खुले नहीं, पर तौभी कोई आगे बढ़ने लगा। साहस चुप हो गया। शब्द साफ़ सुन पड़ता था। कोई भ्रम की बात नहीं रही। कलेजा डरसे धड़ धड़ काँपने लगा।

किसी के चलने का शब्द अब फिर बहुत स्पष्ट सुन पड़ने लगा। इतने में बड़े ज़ोर से किवाड़ खुल पड़े। सामने एक अपरूप मूर्त्ति आविर्भूत हो गई। एक पतला दुबला लम्बा काला सा मनुष्य मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। उसके चेहरे में एक लम्बी काली डाढ़ी लटक रही थी। मुँह उसका बिलकुल सूखा, भौंहें लटकती हुईं, आंखों से कुछ तेज, कुछ धुँधली एक अद्भुत् प्रकार की ज्योति निकल रही थी। उसके कन्धे पर एक लाल दुपट्टा पड़ा था और सिर पर महाराष्ट्रों की सी एक पगड़ी थी। कमर में एक धोती बांधे हुए था, जिसके किनारे मरहठी ढंग के, लाल और बहुत चौड़े, थे। उसके हाथ में नाइयों का सा कुछ असबाब और एक छोटी सी लुटिया थी। मुझे पहले यह सन्देह हुआ कि क्या यही यहां का भूत है। यह तो मनुष्य ही सा देख पड़ता है। परन्तु मनुष्य हज़ार दुबला पतला हो, इसके समान दुबला होना असम्भव है। और न मैंने कभी इतना लम्बा मनुष्य ही देखा है। मैं पलंग पर बैठा यह सोचही रहा था कि वह जीव फिर धीरे धीरे चलने लगा। एक बड़ा लम्बा हाथ बढ़ा कर उसने चिराग़ की ज्योति उज्वल कर दी। तब हाथ की चीज़ों को ज़मीन पर रख, उसने हजामत बनाने का सब सामान बाहर निकाला और बड़ी फुर्त्ती से एक पैना अस्तुरा निकाल कर सिल्ली पर तेज़ करने लगा।

उसकी इस क्रिया को देखकर सिरसे पैर तक मैं पसीने पसीने हो गया और मनही मन सोचने लगा कि क्या आज इसीके अस्तुरे से मेरी मानवी लीला की समाप्ति लिखी है! उसने मुझे हाथ से इशारा करके अपने पास बुलाया। मैंने सोचा कि यदि मैं इसकी आज्ञा न मानूं तो सम्भव है कि अभी मेरे गले पर अस्तुरा फेर दे। परन्तु यह भी सोचने लगा कि कहीं आज्ञा मानने पर भी मुझे न मार डाले। फिर उसी क्षण मुझे स्मरण हुआ कि अब जीने से क्या लाभ, मरना ही अच्छा, परन्तु—हरे, हरे, क्या किसी की मृत्यु इस भांति भी सम्भव है! जो हो, वह मूर्त्ति मुझे फिर बुलाने लगी और इस बार मैं बड़े साहस से अपना कलेजा दृढ़ कर के उठा और उसके सामने जा बैठा। वह मूर्त्ति भी तुरन्त लुटिया से जल लेकर मेरे सिर पर मलने लगी और बड़ी फुर्त्ती से मेरा सिर सफ़ाचट कर के मेरी डाढ़ी, मोंछ, यहाँ तक कि भौंहों के बाल भी, सब मूड़ दिये। मैं थर थर काँप रहा था। जब उसने सब मूड़ लिया, मैं सोचने लगा कि अब गरदन पर छुरी फेरने की पारी आ पहुंची। परन्तु जान पड़ता है कि अब मुझ पर से उसका अधिकार जाता रहा। वह उठ खड़ा हुआ। फिर पहले की सी धीमी चाल से वह द्वार की ओर लौटने लगा। तीन ही क़दम आगे बढ़ कर वह रुक गया, और मेरी ओर घूम कर बड़ी कातरता से उसने अपने सिर और अपनी डाढ़ी पर हाथ फेरा। जब मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया तब कुछ दुःखित सा होकर वह फिर तीन पग आगे बढ़ा और तब फिर मेरी ओर घूमकर अपने बालों पर हाथ फेरने लगा। मैंने सोचा, हे भगवान, यह कैसी बात है? क्या यह मुझे अपने बाल मूड़ देने को कह रहा है? इस समय साहस मेरे हृदय में फिर लौट आया। मैंने सोचा, यह निःसन्देह मेरी हानि नहीं करेगा। करना होता तो अब तक कुछ कर ही डालता। क्या जानें इसी की

सहायता से मुझे चम्पा मिल जाय। बस, मैंने तुरन्त उसे हाथ से इशारा करके बुलाया। और वह भी बड़े आनन्द का भाव दिखाता हुआ लौट कर मेरे सामने आ बैठा। मैंने कभी नाई का काम तो नहीं किया था, परन्तु यथाशक्ति उसकी हजामत बनाने में मैं लगा। जिस क्रम से उसने मुझे मूंड़ा था, उसी क्रम से मैंने भी, खूब अच्छी तरह से, उसकी हजामत बनाई। जब मेरा काम हो गया, मैंने अपने सामने एक भयङ्कर, घृणास्पद, बन्दर की सी मूर्त्ति बैठी पाई। परन्तु वह अब बड़ा प्रसन्न जान पड़ता था। उसने खनखनाते हुए एक प्रकार के तीव्रस्वर से कहा, "भैया, तू ने आज मोकूं बचाय लयो। आज मेरो जेलखानो छूट गयो। अब मेरो जे कायो पलट जायगो। कह, तोकूं कछू चाहिये?" मेरे मुख से निकल पड़ा 'चम्पा, मेरी चम्पा'। उस ने उत्तर दिया, 'अच्छा, तू घर कूं लौट जा, अपने नगर में, पीपावारे पुलके पास, अगली चौथ के दिना तेरी इच्छा पूरी होवैगी। तोकूं बड़ी माया मिलेगी। तेरी चम्पा भी तोकूं मिल जायगी। तब एक बिरियां फिर मेरी सुध लीजिओ। काऊ ब्राह्मण के हाथ तें गयाजी में मेरे नाम से एक पिण्डा दिवाय दीजो"। मैंने बड़े हर्ष से उसकी आज्ञा स्वीकार कर ली। वह तुरन्त मेरे आंखों के सामने हवा में मिल गया। मैं भौचक्का सा रह गया।

बाक़ी रात मैंने ज्यों त्यों कर काटी। एक पल भर के लिए भी आँख न लगी। जब सवेरा हुआ, मैं जीता जागता बनिये की दूकान पर आया। तब लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने अपनी सारी कथा कह सुनाई। मेरा घुटा हुआ सफ़ाचट चेहरा और सिर देखकर सब लोगोंने मेरी बात सत्य मानी। परन्तु उन लोगों ने कहा, तुम्हें हम अभी यहां से जाने न देवेंगे, दो चार दिन इसी मकान में तुम्हें अभी ठहर कर दिखाना होगा कि इसमें अब भूत नहीं है। मैं तो अब घर लौटने के लिये उत्सुक हो रहा था; परन्तु किसी ने मुझे न जाने दिया। और २।३ दिन मुझे उसी मकान में रहना पड़ा। इसी बीच में जिनका मकान था, ज़मींदार भी दल बल लेकर मेरा दर्शन करने और एक रात मेरे साथ वहां निर्विघ्न रह कर प्रसन्न हुए। उन्होंने मुझे अच्छे अच्छे वस्त्र दिये और पचास रुपये नक़द देकर बड़े प्रेम से विदा किया।

मैं भी झटपट अपने देश को लौट आया। चौथ के दिन, भोर होते ही, बड़ी व्यग्रता से वाले पुल के सामने जा कर खड़ा हुआ। अब कोई नहीं जागा था। कुछ देर में लोग आने लगे। तीन भिखमँगे कँगले भी पुलके सामने बैठे और "धर्म्म की राह पर" चिल्लाने लगे। सभों को दो एक पैसे दिये। उनमें से एक के एक पैर नहीं था। उसकी जगह एक लकड़ी पैर खटखटाता हुआ वह चलता था।

अभी सवेरा हुआ ही था। अधिकतर ही वहां पर से आने जाने लगे थे। मैंने सोचा आज कोई दैवी घटना होगी। कोई बड़ा कोई सेठ साहूकार वा कोई राजामहाराजा मुझे अपने हृदय से लगा लेगा। परन्तु ऐसा भी मनुष्य वहां नहीं आया। दिन चढ़ने लगा अपने स्थान से नहीं हटा। परन्तु किसी ने मेरी नहीं ली। खड़े खड़े मैं घबरा गया। दूर से एकटँगा फ़क़ीर मुझे देख रहा था। एक बार मेरे पास आया। मैंने जेब से एक पैसा निकाल उसके हाथ में दिया। वह 'भला हो' कह खटखटाता हुआ फिर एक ओर जाकर बैठा।

अब मुझे भूख सताने लगी। पास एक मि वाले से बहुत निकम्मी गुड़ की कुछ मिठाई मैंने जलपान किया और पुल के सामने लगा। दोपहर बीत गई। तीसरा पहर भी परन्तु तब भी किसीने मुझ पर दया नहीं मेरा हृदय घबराने लगा। परन्तु आशा मुझे समझाने लगी। उसने कहा, अधीर क्यों होते अभी तो दिन बाक़ी है; देखो न क्या होता है।

फिर आशा को हृदय में रख कर टहलने लगा। देखते देखते साहब लोगों की बग्घियां हवा खाने को निकलने लगीं;—मैंने सोचा, हो न हो लाट साहब या कोई और बड़े अङ्गरेज़ मुझे आज किसी भारी ओहदे पर नियुक्त करेंगे। परन्तु, हाय, सूर्य अस्त होने लगा। काले गोरे किसी साहब ने मेरी ओर आंख तक उठाकर नहीं देखा। देखता था वही लँगड़ा भिखारी। मुझे वहां दिन भर खड़ा देख कर वह मन ही मन आश्चर्य करने लगा। एक बार फिर वह मेरे पास आया; परन्तु साहस कर वह कुछ पूछ न सका। मैंने उसे देख कर चिड़-चिड़ा कर सोचा यह बड़ा पापी है। फिर मेरे पास आया है। परन्तु किसीसे बोलने की रुचि मुझे उस समय तनक भी नहीं थी। एक पैसा उसके सामने फिर फेंक कर मैं वहां से हट कर दूसरी जगह जा खड़ा हुआ। सन्ध्या हो गई। पुल पर अँधेरा छा गया। बाज़ार में दीपक जलने लगे। मेरा सिर चक्कर खाने लगा। मैं बेदम सा हो गया। आशा मायाविनी अब भी कुछ कान के पास फिस-फिसाने लगी। मैंने झिड़ककर उसे हटा दिया। वह अलग खड़ी होकर मेरी दशा देख देख मुसकराने लगी। लोग सब एक एक करके वहां से उठ गये। भिखमँगे भी सब चले गये। नहीं गया केवल वही लकड़ी के पैरवाला भिखारी। वह फिर खट खट करता हुआ मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। मुझे बड़ी एकाग्रता से वह देखने लगा। उसे देखकर मेरी देह में आग लग गई। मैं जल भुन कर झिड़ककर बोल उठा, क्यों बे, फिर तू मेरे पास आया। चल, दूर हो, मेरे सामने से हट जा। परन्तु वह नहीं हटा। मेरी रुखाई से कुछ दुखी सा होकर वह बोला, लाला, खफ़ा मत हो। तुम्हें मैं यहां तड़के से देख रहा हूं। अब मुझसे नहीं रहा जाता। सवेरे मैंने तुमको ख़ुश ख़ुश देखा था; पर ज्यों ज्यों दिन बीतने लगा, तुम चिड़चिड़े से होते गये। तुम किस की राह देख रहे हो? उसकी बातें सुनकर मुझे फिर क्रोध चढ़ आया; परन्तु उसका एकाग्र और विनीत भाव देखकर क्रोध की ज्वाला ठण्ढी पड़ गई। मेरे सिर की गर्मी ने बड़े वेग से चक्कर देकर मुझे, वहीं, सरकारी लालटेन के पास, बिठला दिया। मुझ में बोलने तक की शक्ति नहीं रही। परन्तु उस लँगड़े भिखारी ने मेरा साथ न छोड़ा। वह भी मेरे सामने बैठकर बड़े विनय से मेरे मन की बात खींचकर निकालने की चेष्टा करने लगा। मैंने एक लम्बी साँस भरकर कहा, तुम्हें मेरे झगड़ों से क्या काम। तुम फ़क़ीर आदमी अपने घर की राह लो। यों कहकर मैंने फिर एक पैसा दिया। उसने कहा, लालाजी, भगवान आपको तन्दुरुस्त रक्खे। आपने तो आज मुझे कई पैसे दिये; पर मेरे जी की खल-बली नहीं गई। आप सवेरे से यहां पर पड़े हैं, यह क्या मामला है? क्या किसीने यहां पर आप से मिलने कहा था और नहीं आया। इसीसे आप उदास हो गये? मैंने कहा, हां। उसने पूछा वह कौन है? मैंने कहा सो मैं नहीं जानता।

उसने कहा, तुम उसे नहीं जानते तो किसने तुमसे यहां आने कहा था? मैं क्या उत्तर देता! मैंने कहा, मैंने सपना देखा था कि कोई मुझसे यहां आज मिलेगा—

भिखारी बोला—और तुम्हें सेठ लछमीचन्द का ख़ज़ाना दे देगा! अच्छी कही! भला, आप ऐसे लोग भी इन वाहियात बातों के लिए इतनी तक-लीफ़ उठाते हैं? सपना तो सपना ही है। उसका क्या ठिकाना।

मैंने बड़े दुःख से आह भरकर कहा, बाबा, तुम सच ही कहते हो। जान पड़ता है मैंने योंही इतनी तकलीफ़ उठाई है। मैंने सपना देखा था कि कोई यहां पर आकर मुझे दौलत का पता बता देगा।

लँगड़े ने कुछ ज़ोर से हँसकर कहा, यह तो वह मेरीवाली बात हो गई। लालाजी, पहले मैं लँगड़ा नहीं था। मैं रेल का जमादार था। एक बार अञ्जन के नीचे गिरकर मेरा पैर कट गया। तभी से मेरी यह दशा हो गई है। सुनिये; एक दफ़ा मैंने

भी सपना देखा था कि———मण्डी में——— वाले साहूकार के बाग़ीचे में———जगह, मैालश्री के नीचे, एक पत्थर की पटिया बिछी है, वहां ख़ज़ाना गड़ा है। मैं दूसरे ही दिन वहां दौड़ा दौड़ा गया, पर कहीं कुछ नहीं। देखा, दो साँप बैठे हैं; मुझे देख वे फनकार मार मुझ पर आ लपके; मैं बाप रे बाप करके चिल्लाता हुआ भाग आया। सपने पर विश्वास करने का तो यही फल हुआ कि जान जाते जाते बच गई।

लँगड़े की कथा सुनकर मेरा कलेजा यों धड़-धड़ाने लगा जैसे लोहार की धौंकनी चलती हो। उसने जो पता बताया वह मेरे पिता ही का बाग़ था। वह एक समय मेरा ही था। अब दूसरों के हाथ जाकर उजाड़ पड़ा हुआ है। मेरे मन में आई कि हो न हो वहां अब तक धन गड़ा होगा। नाई राम ने इस लँगड़े के मुख से उसीका पूरा पता बताया है। और वह है भी मेरे ही पिता का धन। चलो, उसे भी देख लें। यों सोचकर पहले कुछ स्वस्थचित्त होकर मैंने उस भिखारी को धन्यवाद दिया और कहा, अच्छा, तुम जैसा कहते हो वही सही। मैं घर जाता हूं।

दूसरे दिन सवेरा होते ही मैंने फावड़ा, गैंती आदि इकट्ठी कर लीं और रात को अपने पुराने बाग़ में भिखारी के बताये हुए स्थान पर पहुंचा। वहां पर वह शिला पड़ी थी; परन्तु किसी साँप ने मुझे उसके उठाने से नहीं रोका। शिला के नीचे कुछ खोदने पर एक लोहे की चादर मिली। उसके नीचे—अहः हः—हे भगवान, तू बड़ा दयालु है, तेरी महिमा अपरम्पार है—मुझे जान पड़ा कि मैं अलीबाबा की चोरोंवाली गुफा में आ गया।

अस्तु, मैं फिर बड़ा धनी हो गया। फिर मेरी कोठी चल निकली। फिर मेरे नौकर चाकर, गाड़ी घोड़े, मकान, बग़ीचे—सब हो गये। उस बाग़ को दुगना मोल देकर मैंने फिर ले लिया। और चम्पा,—मेरी चम्पा,—जब कभी कोठी के काम काज से सावकाश मिलता, मैं छिपकर, वेष बदलकर अपने पुराने ठौर पर पहुंच जाता और बाँसुरी की सु[illegible] अपने हृदय को अपनी प्यारी के हृदय तक प[illegible] देता। जब उसने देखा कि मैं फिर लौट आय[illegible] तब अपना पहला सलज्जभाव छोड़कर एक [illegible] बेर वह मेरे सामने होकर दूर से दर्शन देती [illegible] मेरे आनन्दमय मुख को देखकर प्रसन्न होती।

निदान कुछ दिनों पीछे मैंने उचित रीत[illegible] चम्पा की माता के पास उसे व्याहने का सं[illegible] भेजा। साथ ही अपनी उस पुरानी सूतव[illegible] बुढ़िया के हाथ चम्पा से भी चुपचाप अपना स[illegible] हाल कहला भेजा। अब भला चम्पा की माता [illegible] नाहीं करती।

पर अब कहानी बढ़ाने से कुछ फल नहीं। [illegible] इतना ही आपसे कहना है कि बड़े धूमधाम से [illegible] चम्पा का पाणिग्रहण किया। चम्पा,—मेरी चम्पा [illegible] लजाती हुई मेरे हृदय से आ लगी।

* * * *

पाठकगण, मैं बाँसुरी बजा लेता हूं। परन्तु [illegible] कविता बनानी नहीं आती। आप लोगों में से [illegible] यदि कवि हों तो मेरी चम्पाकली के गुणों पर [illegible] कविता लिख कर मुझे सुना दीजिए। दे[illegible] उसके विशुद्ध प्रेम ने मुझे किस ठौर से किस [illegible] पर पहुंचा दिया है। अहो, विशुद्ध प्रेम स्व[illegible] पारिजात है,—नहीं, उससे भी बढ़कर [illegible] विशुद्ध प्रेम अनिर्वचनीय है।

आप कहेंगे कि जिसकी कृपा से मुझे [illegible] सुख मिला, इतनी सम्पत्ति मिली, उस लँगड़े [illegible] दार का मैंने क्या किया। आप सत्य कहते हैं, [illegible] के योग्य पारितोषिक देना असम्भव है। वह [illegible] बाग़ में रहता है। मैंने उसकी सेवा के लिए [illegible] नौकर रखवा दिये हैं। उसे काम काज कुछ [illegible] करना पड़ता। केवल चम्पा के दो बालकों को [illegible] में बिठलाकर उन्हें वह नाई भूत की कहानी सु[illegible] करता है*।

पार्वतीनन्[illegible]

* टामस कारलाइल अनुवादित एक जर्मन कहानी [illegible] लेकर लिखी गई।

क्या चिड़ियां भी सूँघती हैं ?

क्या चिड़ियों में भी घ्राण-शक्ति होती है ? क्या चिड़ियां भी सूँघती हैं ? क्या चिड़ियों को भी सुगन्ध-दुर्गन्ध का ज्ञान होता है ? इस विषय में पश्चिमी देशों के विद्वान् आज कल अपनी अक़ल लड़ा रहे हैं। वे तरह तरह के तजरुबे कर रहे हैं। तरह तरह की चिड़ियां पाल कर वे उनकी परीक्षा कर रहे हैं। चिड़ियों के मग्ज़ की परीक्षा करके उन्होंने इस बात का पता लगाया है कि घ्राण-शक्ति के ज्ञान-तन्तु उनमें होते तो हैं परन्तु बहुतही सूक्ष्म रूप में होते हैं। उनकी दशा ऐसी नहीं होती कि उनके द्वारा चिड़ियों को घ्राणज ज्ञान हो सके। सामुद्रिक चिड़ियों की अपेक्षा ज़मीन पर रहने और वहीं अपना शिकार ढूंढ़ कर पेट भरनेवाली चिड़ियों में घ्राणेन्द्रिय का आकार कुछ बड़ा होता है। पर अभी तक यह बात विज्ञानियों के ध्यान में नहीं आई कि यह इन्द्रिय घ्राण का ज्ञान कराने ही के लिए है अथवा इससे और भी कोई काम निकलता है।

मांस खानेवाली चिड़ियों की परीक्षा से यह बात सिद्ध हुई है कि यदि यह इन्द्रिय उनमें हो भी तोभी वे उससे घ्राण लेने का फ़ायदा नहीं उठातीं। उसकी सहायता से वे अपनी ख़ुराक का पता सूँघ कर नहीं लगा सकतीं। अगर किसी जानवर की लाश किसी चीज़ से छिपा दी जाय या किसी चीज़ की आड़ में कर दी जाय तो गीध, कौवे और चील्ह वग़ैरह मांसभक्षी चिड़ियां उसे नहीं ढूंढ़ सकतीं। सूँघ कर वे उसका पता नहीं लगा सकतीं। डाक्टर ग्यूलेमार्ड ने इस बात को परीक्षा से सिद्ध किया है। बहुत मौक़ों पर ऐसा हुआ है कि शिकार किये हुए जानवर को वे घर नहीं ले जा सके। भारी होने के सबब से उसे वे अकेले नहीं उठा सके। इस हालत में उन्होंने उस जानवर का पेट फाड़ कर उसकी आंतें वग़ैरह फेंक दी हैं और लाश को वहीं पास किसी गढ़े में छिपा दिया है। आदमियों को साथ ले कर लाश उठा ले जाने के लिए जब वे लौटे हैं तब उन्होंने देखा है कि सैकड़ों मांसखोर चिड़ियां आलायश वग़ैरह के पास बैठी हैं। पर वहीं, ज़रा दूर पर, गढ़े के भीतर छिपाई हुई लाश के पास वे नहीं गईं। उसका कुछ भी पता उनको नहीं लगा। यदि उनमें घ्राण-शक्ति होती तो सूंघ कर वे ज़रूर उसे ढूंढ़ निकालतीं।

अलेग्ज़ाण्डर हिल साहब ने अनाज खानेवाली चिड़ियों की घ्राण-शक्ति की परीक्षा की है और उसका नतीजा उन्होंने प्रकाशित किया है। उन्होंने अनाज की एक छोटी सी ढेरी लगाकर उसके भीतर रोटी के टुकड़े रख दिये। इन टुकड़ों को उन्होंने पहले ही से हींग, कपूर, लैवेण्डर इत्यादि उग्र गन्धवाली चीज़ों से ख़ूब लपेट दिया। अनाज चुनने के लिए उन्होंने एक भूखे मुर्ग़े को छोड़ा। उसने चुनते चुनते रोटी पर चोंच मारी और उसके भीतर उसने चोंच प्रवेश कर दी। एक सेकण्ड में उसने चोंच खींच ली और गरदन ऊपर उठाकर उसे ज़रा हिलाया। बस, फिर वह खाने लगा और रोटी के टुकड़ों को एक एक करके खा गया। इस जांच से अच्छी तरह यह न मालूम हुआ कि मुर्ग़े को गन्ध से घृणा है या प्रीति। इस कारण हिल साहब ने एक और जांच की। इस बार की जांच पहले से अधिक कड़ी थी।

उन्होंने छलनी की तरह के एक बर्तन को उलटा करके उसके ऊपर दाना रख दिया। बरतन के नीचे क्लोरोफार्म (ज्ञाननाशक दवा जिसे सुँघा कर डाक्टर लोग चीड़ फाड़ का काम करते हैं) में डुबो-कर एक स्पञ्ज का टुकड़ा उन्होंने रक्खा। तब दाना चुगने के लिए उन्होंने एक मुर्ग़ी को छोड़ा। जब थोड़ा दाना चुगने से रह गया तब उस चिड़िया ने बरतन के ऊपर धीरे धीरे चोंच मारना शुरू किया। उसने बार बार अपना सर ऊपर को उठाया और बाज़ू फैलाये। इससे यह ज़ाहिर हुआ कि

क्लोरोफ़ार्म का कुछ असर उस पर ज़रूर हुआ। परन्तु जब उन्होंने मुर्ग़ के उसी तरह चुगने के लिए छोड़ा तब उस हज़रत ने ज़रा भी इस बात का चिन्ह नहीं ज़ाहिर किया कि उस पर क्लोरोफ़ार्म का कुछ भी असर हुआ हो। इसके बाद परीक्षक ने प्रूज़िक ऐसिड के छलनी के नीचे रक्खा। यह बहुत ही तीव्र और उग्रगन्धी तेज़ाब है। फिर मुर्ग़ महाशय चुगने के लिए छोड़े गये। तेज़ाब की तेज़ी का ख़याल करके हिल साहब वहां से हट आये। कुछ देर तक उस वीर मुर्ग़ ने मामूली तौर पर झट झट दाना चुगा। किसी तरह की कोई ग़ैर-मामूली बात उसमें नहीं देख पड़ी। पर ज़रा देर बाद उसे चक्कर आने लगा। एक टांग के दूसरी पर रखकर वह खड़ा हो गया। बार बार अपनी चोंच के वह ऊपर उठाने लगा। फिर कुछ देर में वह वहां से हट आया और अपने रहने की जगह चला गया। वहां अपना सर नीचे झुका कर और पंख फैला कर वह खड़ा रहा। दस मिनट तक वह इस हालत में रहा। इसके बाद वह उस छलनी के पास फिर वापस आया। पर दुबारा दाना चुगने की कोशिश उसने नहीं की। देखने पर मालूम हुआ कि उसकी चोटी ख़ून से भीगी हुई थी।

इन परीक्षाओं से इस बात का अच्छी तरह पता नहीं लगा कि चिड़ियों में घ्राण-शक्ति होती है अथवा नहीं। और होती है तो कितनी होती है; किस किस चिड़िया में होती है; और किस में कम और किस में अधिक होती है। इस विषय की जांच जारी है। आशा है कि कुछ दिनों में कोई निश्चित सिद्धान्त स्थिर हो जाय।

जालन्धर का कन्या-महाविद्यालय।

लाला देवराज ने अपने कन्या-महाविद्यालय की रिपोर्ट हमारे पास समालोचना के लिए भेजी है। यह रिपोर्ट १९०३-०४ की है। इसके साथ ही आपने आश्रम, अनाथालय और विद्यालय के अध्यापक-अध्यापिकाओं के फ़ोटोग्राफ़ भेजने की भी कृपा की। इस रिपोर्ट को पढ़कर और फ़ोटोग्राफ़ों को देख आरमी प्रेस, कानपुर, के मालिक, हमारे मि बाबू सीताराम इतना प्रसन्न हुए कि उन्होंने तत्क २०) रुपये पुरस्कार के तौर पर विद्यालय को दिये।

स्त्रीशिक्षा की बड़ी ज़रूरत है। इस विषय सब की एक राय है। मतभेद चाहे इसमें हो किस तरह की और कितनी शिक्षा लड़कियों देनी चाहिए; पर शिक्षा देने की आवश्यकता सम्बन्ध में कोई मत-भेद नहीं हो सकता। स्त्रि को शिक्षा देना ही चाहिए। और शिक्षा शब्द विशेष व्यापक मान कर, पढ़ने लिखने के सि उसमें कला-कौशल, गृह-प्रबन्ध, स्वास्थ्य-रक्षा शिशु-पालन इत्यादि विषयों को भी शामि समझना चाहिए।

जालन्धर के कन्या-विद्यालय का जन्म १८ में हुआ था। पहले वर्ष इसमें सिर्फ़ ८ लड़कि थीं और ख़र्च के लिए सिर्फ़ ५०) रुपये थे! प इसके उत्साही सञ्चालकों ने विद्यालय के काम इतना उत्साह दिखाया और इतना यत्न और प श्रम किया कि दिन पर दिन इसकी तरक़्क़ी हो गई। यहां तक कि इस समय, इसमें, तीन अ एक और सात अध्यापिकायें हैं; डेढ़ सौ के क़री लड़कियां पढ़ती हैं; और वे सब ११ जमातों बँटी हुई हैं।

इस विद्यालय की एक मुख्य सभा है। निय नुसार उसकी रजिष्टरी हुई है। हर चौथे वर्ष सभा के सभासदों का फिर से चुनाव होता इस वर्ष इसमें २४ सभासद हैं। वे सब प्रति पुरुष हैं। उनमें रईस, विद्वान्, व्यापारी, व अध्यापक आदि सभी हैं। श्रीमती सुभद्रा नाम की एक साध्वी स्त्री भी हैं। वे अकोला (ब से आई हैं और विद्यालय का जो आश्रम, बोर्डिङ्ग हाउस है, उसकी वे अवैतनिक

सुपरिण्टेण्डेण्ट हैं। इस मुख्य सभा के, इस समय, लाला देवराज, रईस, सभापति हैं; लाला बद्रीदास, एम० ए०, वकील, मन्त्री हैं; लाला रामकृष्ण, वकील, विद्यालय के प्रबन्धकर्ता हैं; और लाला सन्तराम, नार्मल स्कूल के हेड माष्टर, बोर्डिङ्ग हाउस के प्रबन्धकर्ता हैं। इस विद्यालय से लाला देवराज का बहुतही घनिष्ट सम्बन्ध है; वही उसका जीवन हैं; उसकी उत्तरोत्तर उन्नति के लिए वे सदैव सचेष्ट रहते हैं। दूसरे कार्य-कर्ता भी बड़े उत्साह के साथ अपना अपना काम करते हैं और विद्यालय को लाभ पहुंचाने में ख़ूब तत्परता दिखाते हैं।

जालन्धर के रईस चैाधरी भागमल की लड़की इसी विद्यालय में पढ़ती थी। उसकी शिक्षा से प्रसन्न होकर चैाधरी साहब ने उसे कुछ पुरस्कार देना चाहा। लड़की से उन्होंने पूछा कि परमेश्वरी, तुझे क्या चाहिए। आप जानते हैं, लड़की ने क्या माँगा? कपड़े, ज़ेवर या अपने काम की और कोई चीज़ उसने नहीं माँगी। माँगी उसने विद्यालय की इमारत के लिए ज़मीन! चैाधरी साहब ने इसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया और इमारत के लिए काफी ज़मीन दे दी। अब रुपये की ज़रूरत पड़ी। बहुत सा रुपया भी एक लड़की ही की कृपा से मिला। गुरुदासपुर की पार्वती बाई ने ८००) रुपये भेजे और धीरे धीरे और भी रुपया भेजकर विद्यालय के मकान का कुल ख़र्च अपनी तरफ़ से देने का उसने वचन दिया। श्रीमती पार्वती ने भी इसी विद्यालय में शिक्षा पाई है। इस समय विद्यालय की इमारत कोई १०,०००) रुपये की लागत की हो गई है। लड़कियों के इस विद्याप्रेम, देशहित और समाज को मङ्गलाकांक्षा से पुरुषों को सबक़ सीखना चाहिए। इस प्रकार इस विद्यालय का मकान तो निज का हो गया है; पर इसका बोर्डिङ्ग हाउस अभी तक किराये के ही मकान में है। लड़कियों पर इस पाठशाला की शिक्षा का विलक्षण असर पड़ता है। हम देखते हैं कि श्रीमती सावित्री, श्रीमती पार्वती, श्रीमती सरस्वती और श्रीमती गोमती आदि लड़कियां, शिक्षा समाप्त करने पर, इसीमें अध्यापिका का काम करने लगती हैं और इसके परिवर्तन में एक कौड़ी भी वेतन नहीं लेतीं। कितनी हो लड़कियां विवाह हो जाने पर यद्यपि अध्ययन-अध्यापन छोड़ने को विवश हो जाती हैं, पर विद्यालय छोड़ने पर भी वे उसे नहीं भूलतीं और यथा-शक्ति उसकी सहायता किया करती हैं।

दस अध्यापक और अध्यापिकाओं के सिवा इस विद्यालय में एक ऐसी भी स्त्री हैं जो पहली और दूसरी जमात की लड़कियों को, मिट्टी की चीज़ें बना कर, उनके द्वारा शिक्षा देती हैं। विद्यालय के अधिकारी पदार्थ-विज्ञान की भी शिक्षा देने का विचार कर रहे हैं। आवश्यक यन्त्र मँगा लिये गये हैं। योग्य अध्यापक मिलने पर इस प्रकार की शिक्षा भी आरम्भ हो जायगी। एक छोटी सी विचित्र-शाला, अर्थात् पदार्थ-संग्रह, भी यहां है। उसकी सहायता से किंडरगार्टन प्रणाली के अनुसार शिक्षा दी जाती है और पदार्थों का परिचय भी नमूने दिखलाकर कराया जाता है। इस तरह वैज्ञानिक पाठ पढ़ाने में बड़ी सुविधा होती है। इस पाठशाला की लड़कियों को शान्ति-पाठ, स्वस्ति-वाचन और पुरुष-सूक्त भी पढ़ाये जाते हैं। वे शिखरिणी छन्द को शुद्धता पूर्वक बिना यतिभंग के पढ़ सकती हैं। संगीत-शास्त्र में भी शिक्षा दी जाती है; सोना पिरोना भी सिखलाया जाता है; अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थ—मिठाई और खटाई इत्यादि—का बनाना भी सिखलाया जाता है; शरीर-रक्षा, और आवश्यक चिकित्सा-सम्बन्धी पाठ भी दिये जाते हैं। इस विद्यालय की लड़कियों के योग्य कुछ पाठ्य पुस्तकें भी तैयार हो गई हैं और शेष के तैयार कराने का प्रबन्ध जारी है। एक बाला-समाज भी है। हर बुधवार को उसमें लड़कियां इकट्ठा होती हैं और उपयोगी विषयों पर बात चीत करती हैं। प्रसिद्ध पुरुषों के जीवन-चरित, लाभदायक कहानियां और उपदेशपूर्ण कवितायें भी लड़कियों को

सिखलाई जाती हैं। हफ्ते में एक बार कविता-पाठ होता है। उस समय लड़कियों के दो भाग कर दिये जाते हैं। तब कण्ठ किये हुए छन्दों का पाठ आरम्भ होता है और एक भाग दूसरे को हराने की कोशिश करता है। कहते कहते जिसके पास कविता की सामग्री ख़तम हो जाती है उसकी हार समझी जाती है। विद्यालय की लड़कियों के हाथ की बनाई हुई चीज़ें प्रदर्शिनियों में भेजी जाती हैं। १९०३ में पञ्जाब के शिक्षा-विभाग ने जो प्रदर्शिनी की थी उसमें इस विद्यालय को दूसरे दरजे का सरटिफिकट मिला था।

इस विद्यालय में पांच वज़ीफ़े हैं। तीन वज़ीफ़े तीन स्त्रियां देती हैं और दो वज़ीफ़े दो पुरुष। एक वज़ीफ़ा तीन रुपये महीने का है; शेष चार दो दो रुपये महीने के। सब से ऊंचे दरजे की जो लड़की संस्कृत की परीक्षा में सबसे अच्छी रहती है, उसे राय बहादुर पोहलूमल एक सोने का पदक हर साल देते हैं। एक चांदी का पदक भी हर साल एक सज्जन अपनी पत्नी की यादगार में देते हैं। कोई १००) रुपये की क़ीमत की चीज़ें हर साल लड़कियों को इनाम में दी जाती हैं।

यह कन्या-महाविद्यालय एक और उत्तम काम करता है। इसकी लड़कियां अध्यापिकाओं का काम करने योग्य हो जाती हैं। गत सात वर्ष में २५ लड़कियां ऐसी निकली हैं जिनमें से कई इसी विद्यालय में अध्यापिका का काम कर रही हैं; कई ने अपने अपने घर पर पाठशालायें खोली हैं; और कई बिजनौर, वज़ीराबाद, मुजफ्फ़रनगर और जम्बू आदि की पाठशालाओं में अध्यापिका नियत हो कर लड़कियों को शिक्षा दे रही हैं। श्रीमती कर्म्मदेवी और श्रीमती सावित्री इसी विद्यालय की पढ़ी हुई हैं। विवाह हो जाने के कारण पहली लड़की को तो दो तीन वर्ष तक विद्यालय में अध्यापिका का काम करने पर उसे छोड़ना पड़ा; पर सावित्री अभी तक, बड़ी योग्यता से, अध्यापन का काम कर रही हैं।

इस विद्यालय से एक हिन्दी मासिक प[त्रिका] भी निकलती है। उसका नाम पाञ्चाल-पण्डिता [है।] लाला देवराज उसके सम्पादक हैं और श्री[मती] सावित्री बाई सहायक सम्पादक। विद्यालय [की] लड़कियां भी इसमें लेख लिखती हैं। इस विद्या[लय] ने एक छोटा सा पुस्तकालय भी खोल रक्खा [है] और स्त्रियों के पढ़ाने लायक़ पुस्तकों के रखने [और] उनके बेचने का भी इसने प्रबन्ध किया है।

एक बात इस विद्यालय में बहुत अच्छी [है;] वह इसका आश्रम अर्थात् बोर्डिङ्ग हाउस है। [इस] समय इसमें ४० के क़रीब लड़कियां हैं। श्री[मती] सुभद्रा देवी आश्रम की लेडी सुपरिण्टेण्डेण्ट [हैं।] वे आश्रम की लड़कियों को सदाचरणशीला ब[नाने,] उनको सब तरह का आराम पहुंचाने और [उनके] अध्ययन में किसी प्रकार का व्यत्यय न आने दे[ने के] लिए वे दिल से कोशिश करती हैं। दूर दूर [की] लड़कियां यहां रहती हैं। उनके खाने पीने [और] दवा पानी का यहां बहुत अच्छा प्रबन्ध है। [एक] अनाथालय भी यहां है। उसमें अनाथ बालि[काओं] का भरण-पोषण होता है और उनको विद्याल[य में] शिक्षा दी जाती है।

इस विद्यालय को देखकर अनेक प्रति[ष्ठित] पुरुषों ने प्रसन्नता प्रकट की है। पञ्जाब के शि[क्षा-] विभाग के डाइरेक्टर, स्कूलों के इन्स्पेक्टर [लाला] नन्दकिशोर, असिस्टण्ट कमिश्नर लाला टेक[चन्द] और लेडी हरनामसिंह इत्यादि की दी हुई सा[र्टि-] फिकटें पढ़कर तबीयत खुश हो जाती है और [लाला] देवराज को शतमुख से प्रशंसा करने को [जी] चाहता है। विद्यालय के काम और प्रब[न्ध की] लफ़्टिनेण्ट गवर्नर तक ने प्रशंसा की है।

कन्या-महाविद्यालय का मूल धन रु० २५,[…] ९-० है। १९०३-०४ में रु० ४,३०७-४-० की [आमदनी] हुई और रु० २,२७१-१५-६ व्यय हुआ। जो [काम] यह विद्यालय कर रहा है और जो वह करना [चाहता] है उसके लिए अधिक रुपया दरकार है। स्त्री[-शिक्षा] के हितैषियों को चाहिए कि यथा-शक्ति वे [...]

सहायता करें। क्योंकि उसका अस्तित्व दान ही पर अवलम्बित है और विद्यादान सब दानों से श्रेष्ठ है।

महाराजा सूरजसिंह और बादलसिंह की लड़ाई।

संसार में यह बात प्रत्यक्ष देखने में आती है कि यदि कोई आदमी निर्बल हो जाता है तो और लोग उसको पद-च्युत कर उसके स्थान को छीन लेने के लिए तत्पर हो जाते हैं। यह दोष केवल मानुषी ही नहीं किन्तु प्राकृतिक भी प्रतीत होता है।

इस साल, पृथ्वी पर, ठाकुर जाड़ासिंह का प्रचण्ड कोप देखकर, मनुष्यों को भय हुआ। इस का कारण जानने की परम उत्कण्ठा हुई। किसी ज्योतिषी ने यह स्थिर किया कि महाराजा सूरज-सिंह इस साल रोगग्रस्त हैं। उनके तप्त-काञ्चन तुल्य शरीर में एक बहुत बड़ा घाव हो गया है! मनुष्य प्रतिदिन अपने कार्य्य से निवृत्त होकर आराम करता है। तब भी वह कभी न कभी रोगी हो जाता है। देवता तक सदा छुट्टी लेकर अपनी अपनी देवाङ्गनाओं के साथ विहार करते हैं। विष्णु भगवान तो प्रतिवर्ष चार मास की "प्रिवि-लेज़ लीव" (रियायती छुट्टी) लेकर, हिन्दुस्तान के बड़े बड़े अँगरेज़ अफ़सरों की तरह, अपने स्वास्थ्य-भवन क्षीरसागर को वायुपरिवर्तन के निमित्त चले जाते हैं।

परन्तु हमारे महाराजा सूरजसिंह को एक दिन की भी छुट्टी मिलनी दुस्तर है। तिस पर न कहीं आना न जाना। एक जगह बैठे बैठे यदि वे रोगग्रस्त हो जाँय तो कोई आश्चर्य्य की बात नहीं। फिर भी उनके असीम साहस को तो देखिये, कि रोगी होकर भी आप अपने काम में लगे रहते हैं। यह नहीं कि दो चार महीने की "मेडिकल लीव" लेकर किसी अच्छे स्वास्थ्यसम्पन्न स्थान को चले जायँ।

परन्तु, नहीं, प्रथम तो यदि वे छुट्टी पर जायँ तो उनके कठिन कार्य्य का भार किसको दिया जाय। द्वितीय यह कि उस सच्चिदानन्द परमेश्वर के राज्य में ऐसा अन्याय नहीं होता कि किसी अयोग्य पुरुष को अनुचित अधिकार दिया जाय और वह मनमाना न्याय करके कुछ का कुछ कर डाले।

महाराज सूरजसिंह को पीड़ित देखकर, राजा बादलसिंह ने उनके अटल अधिकार को छीन लेने की इच्छा से अपने "कमाण्डर-इन-चीफ़" ठाकुर जाड़ासिंह को आगे भेज दिया। पीछे अपनी सेना एकत्र कर आपने जहां तहां अपने डेरे डाल दिये और पानी, ओले, बजरी इत्यादि के रूप में आपने गोले-गोलियां बरसाना आरम्भ कर दिया। परन्तु सूरज-सिंह महाराज के केवल मुसकुराने ही से अपने को परास्त जानकर उसने राजा हिमराज से सहायता माँगी। उन्होंने भी "गहरी रक़म" मारने के लालच से ३।४ मास के अन्तर में १५।१६ सेनायें "ग्रेट कोल्ड आरमी कोर" (Great cold army corps) को भेज दीं। उनमें से कुछ सेनाओं ने ७।८ मार्च को बड़े वेग से धावा किया। हिमराज ने जिन देश-देशान्तरों में शाप के कारण स्वयं जाना अयोग्य समझा, वहां उन्होंने अपने भाई तुषार, उर्फ़ पालाराम, को भेज दिया। इन्होंने भी जहां तहां पिण्डारियों की तरह भूमि को ख़ूब मरुस्थल बनाया।

अब सूरज महाराज की सहायता को बसन्त-सिंह और ग्रीष्मराज को आया देखकर हिमराज और पालाराम कुछ शिथिल हो गये हैं। परन्तु बादलसिंह रूस की तरह अपनी हठ को अब तक नहीं छोड़ते।

इसमें कुछ सन्देह नहीं है कि यदि दो राज्यों में लड़ाई होती है तो प्रजा को असहनीय कष्ट भोगना पड़ता है। उदाहरण के लिए पाठकों को

रूस और जापान के घोर संग्राम का हृदय-विदारी वृत्तान्त विदित ही है। रूस में जैसे अनर्थ और उपद्रव हो रहे हैं वे भी छिपे नहीं हैं। इसी प्रकार सूरजसिंह और बादलसिंह की लड़ाई से प्रजा को दारुण कष्ट हुआ है। कृषिकारों में हाहाकार मच गया है। दुर्भिक्ष की सम्भावना प्रतीत होती है।

अन्त में, वर्तमान रूस व जापान के युद्ध के समान इस युद्ध की भी शीघ्र शान्ति न होते देख कर, हम परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह इन दोनों नरेशों के बीच मध्यस्थ होकर उचित न्याय कर दे।

परन्तु बादलसिंह ने जो पूर्ण अधिकार पाने के लिए युद्ध किया है वह हमको मंज़ूर नहीं है। क्योंकि यद्यपि हमको महाराज सूरजसिंह के कठिन राज्य में कभी कभी दुःख भोगने पड़ते हैं, तथापि वे न्यायी राजा हैं। पर बादलसिंह के सार्वकालीन राजा होने में बड़ा ही अन्धेर हो जायगा। उनका अनुशासन चार ही मास के लिए बस है।

हे सूरज महाराज! मैं आपके समीप आपके समाचार जानने के निमित्त आने को असमर्थ हूं। क्योंकि आपके देश जाने के लिए उचित सवारी नहीं मिल सकती। इससे ईश्वर से नम्रतापूर्वक यही प्रार्थना है कि वह आपको शीघ्र आरोग्य प्रदान करे जिसमें आप स्वयं अपने शत्रु को पराजित करने में समर्थ हों और अपने यथापूर्व दर्शनों से प्रजा के मुरझाये हुए हृदय-कमल को आल्हादित करें!

बदरीदत्त पांडे।

युधिष्ठिर का समय।

गत वर्ष एप्रिल की सरस्वती में वराहमिहिर के विषय में मेरा एक लेख निकला था। उसमें प्रसङ्गागत युधिष्ठिर का समय भी संक्षेप से लिखा गया था। परन्तु उस समय, कई कारणों से, वह लेख जल्दी में पूरा करना पड़ा, और अनवधान से युधिष्ठिर का [illegible] अशुद्ध लिख गया। उसके प्रकाशित हो जा[ने के] बाद मुझे बहुत अफ़सोस हुआ, और एक स[्वतन्त्र] लेख लिखने की इच्छा हुई, पर वह इच्छा [अब] तक न पूरी होने पाई। युधिष्ठिर के समय में बड़े विवाद उपस्थित हैं, देशी किंवा विदेशी [पुरा]तत्ववेत्ताओं के मत भिन्न भिन्न संदेहों से भरे हैं। इसके कई कारणों में मुख्य कारण यही है [कि] महाभारत और विष्णुपुराण आदि में, जो उस स[मय] की ग्रहस्थिति लिखी है, उसमें सूक्ष्म-दृष्टि से वि[चार] करने में बहुत अन्तर मालूम होता है। फिर भी [मैं] यह नहीं कह सकता कि ग्रहगति के विषय में लो[गों] को आज कल जितना ज्ञान है, उतना ज्ञान म[हा]भारत के समय में भी रहा होगा। आज क[ल] विदेशी पुरातत्वज्ञों का यह भी मत है कि स[मग्र] महाभारत एक समय का बना नहीं है, और न [एक] ग्रन्थकार का ही है। इसके सत्यासत्य के वि[षय] में मैं कुछ नहीं कह सकता। यदि यह सत्य [है] तो सम्भव है कि महाभारत में बहुत कुछ उ[लट] पुलट हो गया है। इस दशा में यह भी कहना प[ड़ता है] कि उसकी सभी बातें श्रद्धास्पद नहीं हो सक[तीं]। तौभी डूबते हुए को तिनके का सहारा भी [बहुत] होता है। जो ग्रहस्थिति, वर्तमान समय में, पु[राणों में] लिखी हुई उपलब्ध होती है, वही, बाहरी प्रम[ाणों] की अपेक्षा, टटोलने में बहुत कुछ उपयोगी [मानी] जा सकती है। और, आज तक, जिन लोगों ने युधि[ष्]ष्ठिर का समय टटोलने का श्रम उठाया है [उन] सभी ने महाभारत में लिखे हुए प्रमाणों को [ही] मूल मानकर अपनी अपनी अकल दौड़ाई है। प[र] मज़ा यह है कि उन्हीं प्रमाणों के सहारे चलने[वालों] में बड़ा मतभेद है। उनकी एक-वाक्यता क[रना] कठिन काम है। तथापि यहां पर कुछ लोगों के [मत] संक्षेप से लिखकर, अपना मत मैं पीछे लिखूं[गा]। इस समय किसी के मत की आलोचना करना [मुझे] उचित नहीं है, क्योंकि सभी के मत परस्पर [विरो]चित ही हो रहे हैं।

वङ्गदेश में बङ्किमचन्द्र नामक एक बड़े प्रतिष्ठित लेखक हो चुके हैं। विष्णुपुराण के आधार पर उनका मत यह है—

"यावत्परीक्षितो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम्।
एतद्वर्षसहस्रन्तु ज्ञेयं पञ्चदशोत्तरम्॥"

महापद्मः तत्पुत्राश्च एकवर्षशतमवनीपतयो भविष्यन्ति।
नवैव तान् नन्दान् कौटिल्यो ब्राह्मणः समुद्धरिष्यति।
तेषामभावे मौर्य्याश्च पृथ्वीं भोक्ष्यन्ति।
कौटिल्य एव चन्द्रगुप्तं राज्येऽभिषेक्ष्यति॥" अर्थ—

महापद्म और उसके पुत्रगण सौ वर्ष राज्य करेंगे। कौटिल्य नामक ब्राह्मण नन्दवंशियों को नष्ट करेगा। उनके अभाव में मौर्य्यगण राज्य भोग करेंगे। कौटिल्य ही चन्द्रगुप्त को राज्याभिषिक्त करेगा। इस तरह युधिष्ठिर से लेकर चन्द्रगुप्त तक १११५ वर्ष हुये। "चन्द्रगुप्त विख्यात राजा था। वह और मासिडन का अलकज़ाण्डर समसामयिक थे। अलकज़ाण्डर ने प्रथम ३२५ ईसवी में भारतवर्ष पर आक्रमण किया था और चन्द्रगुप्त ने ३१५ ईसवी में राज्याधिकार पाया था। इसलिए ३१५ उक्त १११५ में जोड़ देने से ३१५+१११५=१४३० वर्ष ईसाके पहले महाभारत-युद्ध के सिद्ध होते हैं। और पुराणों में भी इसी प्रकार की कथा है। मत्स्य और वायुपुराण में उक्त १११५ के स्थान में ११५० वर्ष लिखे हैं। इस तरह महाभारत हुए १४६५ वर्ष होते हैं। विष्णुपुराण से जो १४३० वर्ष होते हैं, यही ठीक मालूम होता है।" यह बङ्किमचन्द्र का मत है। इसके सिवा उन्होंने और भी कई युक्तियों, तथा ज्योतिष से, भी महाभारत का समय सिद्ध करने की चेष्टा की है। पर उसमें उन को सन्तोष नहीं हुआ। इसलिए उनके मन्तव्य मात्र को मैंने यहां लिख दिया है। जिनको इच्छा हो वे उनके कृष्णचरित्र में सब बातें देख सकते हैं। उस में पृष्ठ १९ से २७ तक यह विषय है।

बम्बई में एक "हिन्दू-यूनियन क्लब" है। उसमें आजकल के विचारदक्ष पुरुष भिन्न भिन्न विषयों पर वक्तृता दिया करते हैं। उसी सभा में सन् १८८७ की १७ फ़ेब्रुअरी को एक सुप्रसिद्ध वक्ता, लेखक और ज्योतिषी श्रीयुक्त जनार्दन बालाजी मोड़क, बी० ए०, ने महाभारत युद्ध के समय के विषय में एक प्रबन्ध मराठी में पढ़ा था। उसके कुछ अंश का अनुवाद नीचे दिया जाता है—

"भारत-युद्ध-काल में मङ्गल, वृहस्पति और चन्द्र आदि ग्रहों की अवस्थिति के सम्बन्ध में, महाभारत में, इस प्रकार की उक्तियां हैं। जैसे—

(१) 'कृत्वा चाङ्गारको वक्रं ज्येष्ठायां मधुसूदन।
अनुराधां प्रार्थयति मैत्रं सङ्गमयन्निव॥
उद्योगपर्व, १४३ अध्याय।

(२) मघा चाङ्गारको वक्रः श्रवणे च वृहस्पतिः।
भीष्मपर्व, ३ अध्याय।

(३) विशाखायाः समीपस्थौ वृहस्पतिशनैश्चरौ।
भीष्मपर्व, ३ अध्याय।

(४) मघाविषयगः सोमस्तद्दिनं प्रतिपद्यते।
भीष्मपर्व, १७ अध्याय।

इन चार श्लोकों में से पहले दो श्लोकों में मङ्गल की क्रम से ज्येष्ठा और मघा नक्षत्र में अवस्थिति वर्णित है। और दूसरे तथा तीसरे श्लोकों के अनुसार वृहस्पति यथाक्रम श्रवण और विशाखा नक्षत्र में अवस्थित थे। पहला श्लोक सन्धि करने के लिए आये हुए कर्ण की उक्ति श्रीकृष्ण से है। दूसरा श्लोक युद्ध के पहले ही व्यास की धृतराष्ट्र से उक्ति है। महाभारत के अनुसार कुरु-सभा से श्रीकृष्ण के लौट आने पर २४वें दिन युद्धारम्भ हुआ है। इन २४ दिनों में मङ्गल का मघा नक्षत्र से ज्येष्ठा नक्षत्र, अर्थात् नौ नक्षत्र, या १२० अंश, गमन किसी प्रकार सम्भव नहीं है। क्योंकि मङ्गल की दैनिक गति प्रायः आध अंश मात्र है। वृहस्पति का श्रवण और विशाखा के समीप स्वाती नक्षत्र में अवस्थान व्यासजी ने कहा है। स्वाती से श्रवण १०७ अंश के अन्तर पर है, और वृहस्पति की गति का मान प्रति दिन प्रायः ९ कला है। सुतरां वृहस्पति का एक काल में स्वाती और श्रवण नक्षत्र में रहना

सम्भव नहीं है। पाठक पूछेंगे कि एकही काल में मङ्गल और बृहस्पति की, दो प्रकार की स्थिति, परस्पर दो दूरस्थ नक्षत्रों का अवस्थान लिख कर, बतलाने में क्या स्वतोविरोध नहीं उपस्थित हुआ? इन द्विविध अवस्थानबोधक श्लोकों की एक-वाक्यता कैसे सिद्ध हो सकती है? हमारी समझ में जिस समय एक काल में एकही ग्रह की दो भिन्न नक्षत्रों में स्थिति वर्णित है, उस समय एक नक्षत्र को तारात्मक और दूसरे को विभागात्मक नक्षत्र मान लेने से सब विरोध दूर हो जायगा। आकाश में क्रान्तिवृत्त (रविमार्ग) के उत्तर और दक्षिण कुछ तारापुञ्ज देख पड़ते हैं। इन तारा-समूहों का नाम नक्षत्र है। अश्विनी, भरणी आदि इनके नाम हैं। ज्योतिषशास्त्र में इन्हीं को तारात्मक नक्षत्र कहते हैं। ये तारागण परस्पर समान दूरी पर नहीं हैं। और न इनके आकार ही समान हैं। अश्विनी आदि २७ नक्षत्रों में, रोहिणी, आर्द्रा, पुनर्वसु, मघा, चित्रा, स्वाती, ज्येष्ठा और श्रवण इन आठ नक्षत्रों की योगतारायें खूब प्रकाशमान हैं। सब नक्षत्र परस्पर समान दूरी पर नहीं हैं। इसलिए ज्योतिषियों के सुभीते के लिए क्रान्तिवृत्त के ३६० अंशों को २७ भागों में विभक्त करके उसके प्रत्येक भाग (अर्थात् १३ अंश २० कला) की नक्षत्र-संज्ञा कल्पना की गई है। इन नक्षत्रों को विभागात्मक नक्षत्र कहते हैं"।

इस तरह ज्योतिष सम्बन्धी बहुत सी बातें लिख कर मोड़क महाशय एक स्थान में लिखते हैं—"पर्व सङ्ग्रहाध्याय के लेखानुसार यद्यपि महाभारत युद्ध पांच हज़ार वर्ष की घटना जान पड़ती है, तोभी, उस युद्ध के आरम्भ काल में, ग्रहों की जैसी स्थिति महाभारत में लिखी है, उसके अनुसार वह कुछ अधिक सात हज़ार वर्ष पहले की सिद्ध होती है।" लेख के अन्त में आप फिर लिखते हैं—"पाठकों के सुभीते के लिये स्थूलरूप से भारत-युद्ध का काल निर्णीत हो चुका। सूक्ष्म रूप से गणना करने से शक के पहले ५३० वर्ष अर्थात् वर्तमान समय से ७१२२ वर्ष पहले भारत का युद्ध हुआ। प्रोफ़ेसर केरो लक्ष्मण छत्रे ने इस गणना की विशुद्धता स्वीकृत की थी।" इस प्रकार लिख कर आपने शान्ति का अवलम्बन किया है।

शंकर बालकृष्ण दीक्षित नामक एक दक्षिणी ज्योतिषी अपने एक मराठी ग्रन्थ में महाभारत के प्रमाणों द्वारा इस काल की सविस्तर आलोचना में प्रवृत्त हुए थे। दीक्षित महाशय अब इस लोक में नहीं हैं, पर उनका विचार इस समय हमारे सामने उपस्थित है। इस विचार में दीक्षित जी ने अन्य मतों की सविस्तर आलोचना की है, और सबको अशुद्ध ठहराया है। एक विसाजी रघुनाथ लेले हैं। सुनते हैं उन्होंने इस काल के अनुसन्धान में बहुत परिश्रम किया था। दीक्षित जी ने उनकी उक्ति के हरएक पाराग्राफ़ का खण्डन किया है। उनका मत सुनिए—

"कर्ण और व्यास दोनों की उक्ति में ग्रहस्थिति है। उसमें कोई ग्रह दो दो नक्षत्रों पर कहे गये हैं। चन्द्र की स्थिति भी दो नक्षत्रों में कही गई है। युद्ध का आरम्भ जिस दिन हुआ है उस दिन चन्द्र की स्थिति इस प्रकार बतलाई गई है—

मघाविषयगः सोमस्तद्दिनं प्रत्यपद्यत।

भीष्मपर्व, अ०

युद्ध के अन्तिम, अर्थात् १८वें दिन, तीर्थयात्रा से बलराम आये। तब उन्होंने कहा—

चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च मे निःसृतस्य वै।
पुष्येण संप्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः॥

गदापर्व, अ०

इससे युद्धारम्भ के दिन रोहिणी किम्वा मृगशिर होता है। उनसे भारत-युद्धकाल की गणना में ग्रहों की स्थिति दो दो नक्षत्रों पर देखी जाती है। यथा—

चन्द्र—रोहिणी किंवा मृग और मघा।
मङ्गल—मघा और अनुराधा किंवा ज्येष्ठा।
गुरु—विशाखा के पास और श्रवण।

दो दो नक्षत्रों पर ग्रहों की स्थिति कही जाने से जान पड़ता है कि एक नक्षत्र सायन विभागात्मक और दूसरा निरयण विभागात्मक है"।

इत्यादि बहुत कुछ विचार करने के बाद, आपने सायन-निरयण-गणना के आधार पर, भारत के समय का वर्तमान आदि निकाला है और ग्रहस्पष्ट करके कई सङ्गतियां बतलाने की चेष्टा की है। अन्त में आपने सब का फल यह निकाला है कि वर्तमान समय से ७१३२ वर्ष युद्ध हुए हो चुके। इस गणना करने में इनकी प्रवृत्ति का मुख्य कारण यह था कि ये सायन मत के पक्षपाती थे। इसी लिए रामायण, महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों में सायन पक्ष के प्रमाण ढूंढ़ने में इन्होंने जन्मभर जासूसी की। जहां कहीं सायनमतसाधक गणित का अंश देखने में आता तहां ये उसको झट गिरफ़ार कर लेते। अपने सिद्धान्तों को ये प्रायः सामयिक मराठी पत्रों में प्रकाशित किया करते थे। इन्होंने कोई ग्रन्थ नहीं लिखा कि उनकी सब बातें एक जगह देखने में आ सकें। महाभारत का समय भी इन्होंने सायन-गणना से ही किसी प्रकार सिद्ध किया है। मिस्टर दीक्षित ने बड़े अभिनिवेश से उसका खण्डन करके उसकी सब भूलें दिखलाई हैं।

बम्बई प्रान्त के प्रसिद्ध गणितज्ञ व्यंकटेश बापूजी केतकर 'आसन् मघासु मुनयः' इस वराहमिहिर के श्लोक का अर्थ यह करते हैं कि युधिष्ठिर शक विक्रम के पहले २५२६वें वर्ष में चलता था। पाण्डव, शक के पूर्व (२५२६ + १३५ =) २६६१ वर्ष में वर्तमान थे। शक के पहले २६६२वें वर्ष में मार्गशीर्ष और पौष में, अर्थात् ईसवी सन् के पहले २५८५वें वर्ष में, नवम्बर की ८ तारीख़ से युद्ध शुरू हो कर २५वीं तारीख़ को समाप्त हुआ है। सारणी से उस समय के निरयण ग्रह भी इन्होंने सिद्ध किये हैं और नक्षत्रों की स्थिति भी दिखलाई है। परन्तु मिस्टर दीक्षित ने इसका भी भली भांति खण्डन किया है।

पूर्वोक्त दोनों महाशयों के गणित की, तथा प्रसङ्गागत और कई प्रमाणों की, आलोचना करते हुए दीक्षितजी ने अन्त में विष्णुपुराण के "यावत्परीक्षितो जन्म"—इस श्लोक के मत से ईसा के १४३१ वर्ष पहले पाण्डवों का काल निश्चित किया है। दीक्षित महाशय एक बहुत बड़े विचारशील गणितज्ञ हो गये हैं। उनकी आलोचना तथा ज्योतिष सम्बन्धी विषयों का निरूपण देखकर हर्षयुक्त आश्चर्य होता है। दक्षिण में, साम्प्रत काल में, ऐसा एक भी विद्वान् ज्योतिषी नहीं हुआ। दीक्षितजी ने इस युद्ध के विषय में अपना कोई मत स्पष्टरूप से नहीं लिखा। उन्होंने केवल इतना ही लिखा है कि अनुमान से शक के पहले १५०० से लेकर ३००० वर्ष के बीच में पाण्डवों का काल मालूम होता है। वह इससे प्राचीन नहीं हो सकता।

पाठक, देखा, किस प्रकार महाभारत के प्रमाणों पर अटकलें लगाई गई हैं और भिन्न भिन्न काल निकाले गये हैं। इस दशा में किस विचारशील मनुष्य की श्रद्धा इन बातों पर हो सकती है? ऐसे ही और कई महानुभावों ने अपनी अपनी अटकल दौड़ाई है। पर कृतार्थ कोई नहीं हुए। आज कल के उपन्यासी तिलिस्म की तरह जिन बातों को मूल मानने से विचार के विस्तार का अन्त ही नहीं, उनकी उलझन में पड़ना भी व्यर्थ है। अस्तु।

स्वर्गीय डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र के मत से इस युद्ध का काल ईसा के पहले बीसवीं सदी है। और सुप्रसिद्ध दत्त महोदय के विचार से ईसा के १२५० वर्ष पहले है।

कुछ दिन हुए मद्रास-प्रान्त के वी. गोपाल आइयर, बी० ए०, बी० एल०, ने एक छोटा सा ग्रन्थ लिखा है। उसका नाम Chronologly of Ancient India है। इस ग्रन्थ के तीन भाग हैं। प्रथम में कलियुग के आरम्भ पर विचार किया है। दूसरे में महाभारत के युद्ध पर। और तीसरे में चारों युगों के प्रमाणों पर। इस पुस्तक के लिखने में उक्त महाशय ने बड़ी योग्यता दिखलाई

है। आधुनिक मत के विद्वान् जिस प्रकार विचारों को फैलाते हैं वह प्रकार इसमें खूब देख पड़ता है। चाहे हमारे यहां के प्राचीन विचारों के विरुद्ध ही इसके मत क्यों न हों, पर मैं इस ग्रन्थ की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। पुस्तक बहुत उपादेय हुई है। इसमें नाना प्रमाणों के द्वारा युधिष्ठिर का समय लगभग ३००० वर्ष, और महाभारत बनने का समय ईसा के ११९३ वर्ष पहले, स्थिर किया है। इसकी सब बातें बहुत विचारपूर्वक लिखी गई हैं। इनको झटपट कोई खण्डन भी नहीं कर सकता। यह मत गत वर्ष के नवम्बर मास की सरस्वती के "विविध विषय" में भी संक्षेप से लिखा गया है। और वराहमिहिर की बृहत्संहिता के—

"आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्यराज्ञश्च" ॥

इस श्लोक का अर्थ भी उक्त आइयर महाशय के मतानुसार वहां लिखा गया है। इसका अर्थ आप यों करते हैं। 'षड्द्विकपञ्चद्वियुतः' अर्थात् २६ × २५ के गुणा करने से जो हो उसको बुद्ध के निर्वाण समय, अर्थात् ५४३ में, जोड़ देना चाहिए। क्योंकि इस श्लोक में 'शक' शब्द से गौतमबुद्ध का ग्रहण किया गया है। परन्तु यह भ्रममूलक है। इस श्लोक में 'शक' शब्द का अर्थ गौतमबुद्ध का कभी नहीं हो सकता; क्योंकि हमारे यहां के ज्योतिष ग्रन्थों में संवत् से विक्रम का और शक से शालिवाहन का ही शक लिया जाता है। और इसीके आधार पर अहर्गण आदि का गणित करके ग्रहों को ज्योतिषी स्पष्ट किया करते हैं। वराहमिहिर ने अपने 'पञ्चसिद्धान्तिका' नामक ग्रन्थ के आदि में ही अहर्गण साधने के विषय में लिखा है—'सप्ताश्विवेदसंख्यं शककालमपास्य' अर्थात् ४२७ शक को घटा कर गणित करना चाहिए। यदि यहां भी शक से गौतम का अर्थ लिया जाय तो कहिए गणित में कैसे एकवाक्यता हो सकती है? बृहत्संहिता के टीकाकार भट्टोत्पल, जो वराहमिहिर के चार सौ वर्ष पीछे हुए हैं, उक्त 'षड्द्विकपञ्चद्वियुतः श
कालः'। का अर्थ लिखते हैं कि वर्तमान शक
२५२६ जोड़ देने से वर्तमान समय से लेकर यु
ष्ठिर के गताब्द होते हैं। षट्द्विकपञ्चद्वि का
२५२६ है। इनके गुणन (अर्थात् २५ × २६
अर्थ जो आइयर महाशय ने किया है वह कि
प्रकार सम्भव नहीं है। न किसी ने टीका-टि
में ऐसा अर्थ ही लिखा है और न व्याकरण ही
रीति से २५ और २६ के गुणने का अर्थ कि
प्रकार सिद्ध हो सकता है। आइयर महाशय
श्लोक की सङ्गति करने में भूले हैं। इ
उनका गौतम बुद्ध का समय भी अशुद्ध ही
उक्त अङ्कों के गुणने का अर्थ, नहीं मा
उन्होंने कहां से निकाला है। उसे सुनकर आ
होता है।

गत फरवरी मास की सरस्वती में एक
"राजा युधिष्ठिर का काल" नामक पण्डित
पति जानकी राम दुबे, बी० ए०, का निकला
इस लेख में उक्त आइयर महाशय के निर्ध
युधिष्ठिर के काल को न मानकर विसाजी र
लेले के (जिनके विषय में मैं ऊपर लिख आया
मतानुसार यह दिखलाया गया है कि युधि
वर्तमान समय से ७१३१ वर्ष पहले वर्तमान
आइयर के मत से युधिष्ठिर का काल जो
वर्ष सिद्ध होता है, उस पर आपने बहुत अफ़
प्रकट किया है, और दुःख ही की बातों से अ
लेख का अर्धाधिक अंश पूर्ण किया है। परन्तु
यर के मत का खण्डन आपने नहीं किया। इ
कारण नहीं मालूम पड़ता। लेले का मत
से जो ऊपर लिखा गया है उसका खण्डन
बाल कृष्ण दीक्षित ने किया है। पण्डित ग
जी ने लेले के जिस गणित को अपने लेख में
लाया है उसका उल्लेख शंकर दीक्षित के ग्र
नहीं है। और न उसका खण्डन ही है। वह
इवली नामक स्थान के जैन मंदिर के शिलाले
निकला है। शिलालेख के श्लोक यों लिखे गये

"त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः ।
३०+३०००=३०३० ;
सप्ताब्दशतयुक्तेषु शतेष्वब्देषु पञ्चसु ।
(७×१००)=७००+१००+५+
पञ्चाशत्सु कलौ काले, षट्सु पञ्चशतेषु च ।
५०=८५५ ६+५००=५०६
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्" ॥

"इसमें तीन निराले कालों से मन्दिर के बनने का काल दिया गया है। पहला भारतीय युद्ध का ३०३०; दूसरा कलि का ८५५; और तीसरा शक जातीय राजाओं का ५०६। इस अनुक्रम से यह बात स्पष्ट होती है कि कलि से २१७५ वर्ष पहले महाभारत का युद्ध हुआ था"। इस प्रकार लेले के गणित की व्याख्या करके कुछ दूर चलकर गणपति जी फिर लिखते हैं। 'इस काल-निर्णय में पण्डित लेले ने अपने आयुष्य के ४० वर्ष ख़र्च किये थे। इस गणित को राव बहादुर प्रो० केरो लक्ष्मण छत्रे ने, जोकि दक्षिण हिन्दुस्तान के बड़े गणितज्ञ थे, अपने प्रतिष्ठापत्र द्वारा ठीक बतलाया है। उन्होंने लिखा है कि शालिवाहन शक के ५३०६ वर्ष पहले पाण्डव थे। यह प्रतिष्ठापत्र १८९३ ई० का लिखा हुआ है। अर्थात् वर्तमान समय से ५३०६+१८२५=७१३१ वर्ष पहले पाण्डव और उनमें युधिष्ठिर प्रतिष्ठित थे।"

पूर्वोक्त श्लोक का सम्बन्ध, अन्वय लगाने से, 'सप्ताब्दशतयुक्तेषु शतस्वब्देषु पञ्चसु' यहां पूरा होता है; और 'पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतेषु च' इसका एक सम्बन्ध होता है। इस हिसाब से पहले श्लोक में भारत युद्ध के गत वर्ष और दूसरे में शक के गत वर्ष निकलते हैं। अर्थात् जब ३७३५ कलि-वर्ष और ५५६ शक वर्ष बीत गये थे तब वह मन्दिर बना है। यह शिलालेख का मतलब है। पाठक, अब देखिये, इन श्लोकों का कैसा विलक्षण सम्बन्ध लेले महाशय ने किया है। आपने तीन प्रकार का समय अर्थात् ३०३० भारत युद्ध, ८५५ कलि और ५०६ शक सिद्ध किया है। जब मूल श्लोकों के ही अर्थ का अनर्थ किया गया है, तब उससे निकले हुए भारत समय का क्या ठिकाना है? जो निकल आवे वही सही। शायद इन श्लोकों के विलक्षण अर्थ करने ही में लेले ने अपने आयुष्य के ४० वर्ष लगाये होंगे। क्योंकि लेले महाशय के इस टटोल का कोई ग्रन्थ तो है नहीं। और शङ्कर बालकृष्ण ने जो उन का मत लिखा है उसको देखने से तो यह नहीं मालूम होता कि इस गणित में लेले के ४० वर्ष क्या ४० दिन भी लगे हों। विचारने की बात है कि, लेले महाशय ने महाभारत, विष्णुपुराण तथा पूर्व-लिखित सब विचारकों के विचारों को उलांघ कर एक नये नख़रे से युधिष्ठिर के समय का फ़ैसला करना चाहा है। शिला लेखके इन श्लोकों से वास्तव में भारत का समय निकलता है; पर लेले महाशय उसे नहीं निकाल सके। आश्चर्य तो यह है कि पण्डित गणपतिजी ने इस गणित पर कैसे विश्वास कर लिया; क्योंकि गणित के विषय में बिना जाँच किये सहसा विश्वास कर लेने से बड़ी हानि होती है।

जिस शिलालेख का ऊपर उल्लेख आया है वह दक्षिण के चालुक्यवंशी राजा पुलकेशी (दूसरे) के समय का है। वह दक्षिण में कलादगी ज़िले के एहोले की पहाड़ी पर बने हुए जैनमन्दिर में मिला है। उसको फ्लीट साहब ने इण्डियन आण्टिक्वेरी में प्रकाशित करके उसके पूर्व-लिखित श्लोकों के अर्थ की बड़ी भारी आलोचना की है। उन्होंने उनके अनेक प्रकार के अर्थ किये हैं। इन अर्थों में से लेले के अर्थ का ऐसा भी अर्थ हो सकता है। पर उसका खण्डन भी फ्लीट साहब ने किया है। अन्तमें उन्होंने वही अर्थ स्थिर किया है जो मैं लिख आया हूं। अर्थात् कलिके ३७३५ और शक के ५५६ वर्ष बीतने पर मन्दिर बना है। इण्डियन आण्टिक्वेरी में उक्त श्लोक जो रोमन में लिखे हैं, उनमें—

'सप्ताब्दशतयुक्तेषु श (ग) तेष्वब्देषु पञ्चसु' *।

* Vide, Indian Antiquary, Vol 8., p. 242.

इस प्रकार लिखा है। 'गतेषु' पाठ ठीक है। क्योंकि 'शतेषु' की सङ्गति कहीं नहीं लग सकती। और सम्भव है कि 'ग' ही 'श' के स्थान में शिलालेख में लिखा रहा हो। क्योंकि 'ग' भ्रामक होने पर वह शिलालेखों में प्रायः तालव्य शकार पढ़ा जा सकता है। अब—'त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु' के अनुसार क्रम से अङ्क हुए—

	और पञ्चाशत्सु कलौ— के अनुसार—
३०	
३०००	
७००	५००
५	५६
मन्दिर के कलिवर्ष = ३७३५	मन्दिर के शकवर्ष = ५५६

मन्दिर के कलिवर्ष, ३७३५ में, मन्दिर के शक वर्ष ५५६ घटाने से, ३१७९ बाक़ी बचे। अतएव ज्ञात हुआ कि शक के ३१७९ वर्ष पूर्व भारत युद्ध हुआ था। अब ३१७९ में वर्तमान शक१८२६ जोड़ देने से ५००५ होते हैं। वर्तमान कलि के गत वर्ष इतने ही हैं। यदि इनसे ईसा के वर्तमान वर्ष १९०५ घटा दें तो ईसा के पूर्व महाभारत का समय निकल आवेगा। इस प्रकार ५००५—१९०५ = ३१०० वर्ष सिद्ध होते हैं।

इस तरह इस गणित से महाभारत का समय साफ़ निकल आता है और सब बातों की एकवाक्यता भी हो जाती है। इससे सिद्ध है कि द्वापर के अन्त में युद्ध हुआ और तभी (अर्थात् कलि के आदि से) युधिष्ठिर के जय पाने से उनका शक भी चलना प्रारम्भ हुआ। वृद्धगर्ग का वाक्य है कि 'कलिद्वापरसन्धौ तु स्थितास्ते पितृदैवतम्।' अर्थात् कलि और द्वापर की सन्धि में सप्तर्षि मघा नक्षत्र पर थे। इसी वाक्य को मूल मानकर वराहमिहिर ने अपनी बृहत्संहिता में लिखा है कि—"आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ" अर्थात् युधिष्ठिर के राज्यकाल में सप्तर्षि मघा नक्षत्र पर थे। परन्तु इस श्लोक में उस समय का युधिष्ठिर-शक जो २५२६ लिखा है, उसके अनुसार गणित करने से ६५३ वर्ष कलि के [व्यतीत] होने पर भारत का युद्ध मानना पड़ता है। युधिष्ठिर का भी समय है। इतने ही वर्ष [के] राजतरङ्गिणीकार कल्हण ने भी भारत का [समय] लिखा है। परन्तु उक्त वृद्धगर्ग के वाक्य के अनु[सार] अर्थात् कलि के कुछ ही पहिले, जो समय नि[श्चित] होता है वही ठीक* मालूम देता है। और शि[ला]लेख के अनुसार भी गणित करने से उसकी [एक]वाक्यता होती है।

सप्तर्षि नक्षत्र अश्विनी से लेकर रेवती त[क] एक नक्षत्र पर सौ सौ वर्ष तक रहते हैं। इस [प्रकार] २७०० वर्ष में उनका एक चक्र पूरा होता है। [यह] सौ सौ वर्ष तक हर नक्षत्र पर रहना पुरा[णों में] भी लिखा है। यथा भागवत् में, "तयोस्तु [मध्ये] नक्षत्रं दृश्यते यत्समं निशि। तेनैते ऋषयो [युक्ताः] ...

---

* वृद्ध गर्ग ने कहा कि द्वापर की सन्धि में वहां पर थे वह तो आप ठीक मानते हैं! पर विख्यात गणित ज्योतिषी वराह-मिहिर युधिष्ठिर का शक २५२६ लिखकर, ... होने का समय ६५३ वर्ष कलि के व्यतीत होने पर जो बत... और जिसकी पुष्टि कल्हण के समान विख्यात इतिहासकार ... उसे आप ठीक नहीं मानते। क्यों? प्रमाण देना चाहिए था ... इतिहासकार और ज्योतिषियों की अपेक्षा एक अप्रसिद्ध ... लेखक की बात पर क्यों अधिक श्रद्धा? इसी से मन्दिर ... के समय महाभारत हुए कोई ४००० वर्ष के लगभग हो चुके ... उसी के शिलालेख से सूचित है। इतनी पुरानी बात ... लेखक ने ठीक ही लिखा—इसका क्या प्रमाण? कहां से ... भारत का समय मिला? युगों की उमर लाखों वर्ष की है ... एवं द्वापर और कलि की सन्धि कुछ दो चार वर्ष की तो ... जा सकती। इससे गर्ग की उक्ति में समय की स्थूलता ... पर वराह-मिहिर की उक्ति में यह बात नहीं। उन्होंने ... ठीक अङ्क दे दिये हैं। फिर वृद्ध-गर्ग की बात क्यों ... विश्वसनीय हुई? ये पुरानी ऐतिहासिक बातें ऐसी ... उनकी एकवाक्यता करने में बड़ी बड़ी कठिनाइयां ... पं० गिरिजाप्रसादजी ने इस विषय पर खूब विचार ... आशा है वे सब साधक बाधक प्रमाणों का विचार करके ... के शक को फिर, किसी समय, निर्विवाद सिद्ध करेंगे।

सं० स०

तिष्ठन्त्यब्दशतं नृणाम्" । इन्हीं प्रमाणों के अनुसार वराहमिहिर ने लिखा है कि "एकैकस्मिन्नृक्षे शते शतं ते चरन्ति ऋक्षाणाम् ।" परन्तु हमारे यहां सिद्धान्तों में नक्षत्रों की स्वतः गति का अभाव लिखा है। इसीलिये सिद्धान्त-तत्व-विवेककार कमलाकर भट्ट इन सप्तर्षियों की गति का खण्डन करते हैं। कश्मीर में पहले सप्तर्षि संवत् चलता था। अतः वहां की हस्तलिखित पुस्तकों में, तथा प्राचीन पञ्चाङ्गों में, इसका लेख मिलता है। वहां इस संवत् का प्रारम्भ कलि के २५ वर्ष बीतने पर माना जाता है* ।

अब मैं लेख को अधिक बढ़ाना नहीं चाहता। विचारशील पाठक समझ गये होंगे कि महाभारत के प्रमाणों को मूल मानकर जिन जिन महाशयों ने समय निर्णय किया है वे सब परस्पर विरुद्ध हैं। और "आसन मघासु—," इस वचन से भी ठीक ठीक विश्वासयोग्य गणित नहीं होता। केवल पूर्वोक्त शिलालेख सेही विश्वासयोग्य समय निकलता है। परन्तु लेले महाशय के अनुसार पण्डित गणपति जानकीरामजी ने उसका जो विलक्षण अर्थ लिखा है वह कभी नहीं माना जा सकता। उक्त शिलालेख से ३७३५ कलि और ५५६ शक वर्ष फ्लीट साहब के लेखानुसार और मेरे भी विचार से निकलते हैं। वर्तमान काल में कलि के गत वर्ष ५००४ और शक १८२६ हैं। अब यदि उक्त मंदिर के कलि और शक वर्ष क्रम से वर्तमान में हम घटा दें तो शेष वर्तमान् काल से मन्दिर के बनने का समय निकल आवैगा। पर दोनों में शेष अङ्क समान ही आवेंगे। यह गणित की युक्ति से सिद्ध है। और इसी से सत्यता की भी प्रतीति होती है। जैसा, ५००४—३७३५=१२६९। और १८२६—५५६=१२६९। दोनों तरह से एक ही अङ्क प्राप्त हुए, अर्थात् इस समय से मंदिर बने १२६९ वर्ष हो चुके।

इस गणना में १ अङ्क का अन्तर पड़ता है। अर्थात् शक जो ५५६ हैं उनमें ६* के स्थान में ७ मानने से दोनों स्थानों में तुल्य शेष बचता है। इसी प्रकार पंडित गणपति जी लिखित गत कलि ८५५ और गत शक ५०६ यदि वर्तमान कलि और वर्तमान शक में हम घटावें तो भी बाक़ी तुल्य ही बचना चाहिए। परन्तु वैसा नहीं होता। देखिए—५००४—८५५ = ४१४९। और १८२६ —५०६=१३२०। शेष समान नहीं है। इसलिए गणित में प्रत्यक्ष विरोध होने से यह मत सर्वथा त्याज्य है। जब से बम्बई में पञ्चाङ्ग-सभा हुई है तभी से दक्षिण प्रान्त के ज्योतिषियों ने बड़ा हलचल मचा रक्खा है। सब लोग अपने अपने मतानुसार पञ्चाङ्ग-व्यवस्था लिख लिखकर अख़बारों में प्रकाशित करते हैं। एक महाशय ने सायन—निरयण की व्यवस्था मराठी में लिखी है। उसमें लेले के आविष्कृत रामायण और महाभारत के सायन समर्थक प्रमाण दिये गये हैं। और भारत युद्ध का काल भी, जो उक्त ग्रन्थों से ७।८ हज़ार वर्ष निकाला है गया, लिखा गया है। मतलब यह कि लेले महाशय का यह भ्रम शंकर बालकृष्ण दीक्षित को छोड़कर अभी तक और किसी के दिमाग़ में नहीं घँसा। इसलिए दक्षिणियों में लेले महाशय के गणित पर वेद-वाक्यों से भी बढ़कर श्रद्धा टपक रही है। इस अनर्थ का निवारण ईश्वर ही के आधीन है।

गिरिजाप्रसाद द्विवेदी।

---

* इस विषय का एक श्लोक मिलता है। जैसा—"कलेर्गतैः सायकनेत्र (२५) वर्षैः सप्तर्षिवर्यास्त्रिदिवं प्रयाताः। लोके हि संवत्सर-पत्रिकायां सप्तर्षिमानं प्रवदन्ति सन्तः"। See Dr Buhler's Kashmir Report, p. 60.

* यह जो १ का अन्तर रहता है सो क्यों? शायद शिलालेख ही में ग़लती हो; या पढ़नेवालों ने ग़लती की हो।

सं० स०

कविवर लछीराम ।

अयोध्या के प्रसिद्ध कवि कवि-वर लछीराम का नाम सरस्वती के पाठकों ने सुना होगा। सरस्वती के चैाथे भाग की छठी संख्या के १९६ ग्रैार १९७ पृष्ठों में कविवरजी का कुछ ज़िकर भी ग्रा चुका है। कुछ दिन हुए इनका शरीरान्त हो गया। भादों बदी ११ मङ्गल, सम्वत् १९६१, को सरयू के किनारे ग्रयोध्या में इन्होंने इस लोक से प्रस्थान कर दिया।

लछीरामजी ब्रह्मभट्ट थे। इनकी कविता पर प्रसन्न हो कर ग्रयोध्या-नरेश महाराज मानसिंह ने इनको अपने यहां रख लिया। महाराज मानसिंह के न रहने पर वर्तमान ग्रयोध्या-नरेश ने भी इनका पूर्ववत् ग्रादर बना रक्खा। ग्रतएव यह वहीं रहे। परन्तु यद्यपि यह ग्रयोध्या-राज के कवि थे तथापि ग्रैार ग्रैार राज-दरबारों में भी यह जाया करते थे। बस्ती के राजा शीतलाबख़्श ने चरथी नाम का एक गाँव, हाथी ग्रैार वस्त्राभूषण इत्यादि देकर लछीरामजी का सत्कार किया था। मल्लापुर के राजा मुनीश्वरबख़्शसिंह, रामपुर-मथुरा के राजा महेश्वरबख़्शसिंह, ग्रैार गिद्धौर के महाराज रावणेश्वर प्रसादसिंह भी इनका सम्मान करते थे; इनकी कविता सुनते थे; ग्रैार समुचित बिदाई देते थे। महाराजा टीकमगढ़ (ग्रोरछा) ग्रैार महाराजा दरभङ्गा तक इनको मानते थे। श्रीनगर-नरेश श्रीमान् राजा कमलानन्दसिंह के पास लछीरामजी बुढ़ापे में गये थे। राजासाहब के नाम पर लछीरामजी ने जो "कमलानन्दकल्पतरु" नामक ग्रन्थ बनाया, उसका उल्लेख सरस्वती में हो चुका है। इस ग्रन्थ-रचना के उपलक्ष्य में कविराजजी को हज़ारों रुपये नक़द ग्रैार बहुमूल्य वस्त्राभरण देकर श्रीनगर-नरेश ने अपनी उदारता ग्रैार गुणग्रहणता दिखलाई।

कमलानन्दकल्पतरु के सिवा चरणचन्द्रिका, रामचन्द्रभूषण ग्रैार सरयू-लहरी इत्यादि ग्रैार भी कई ग्रन्थ इन्होंने बनाये हैं। ये पुरानी प्रथा के थे। ग्रलङ्कार-शास्त्र में ख़ूब प्रवीण थे। कवित इनकी बहुत ग्रच्छी होती थी।

लछीरामजी ग्रयोध्या में रहते थे। वहां उ एक राम-मन्दिर बनवाया। कई कुवें उन्होंने ख ग्रैार कई बाग़ लगवाये। अपनी जाति के बहु लड़कों के पढ़ने का उन्होंने प्रबन्ध कर दिया। हैं एक ग्राध पण्डित भी उन्होंने, इस लिए, थे ग्रैार एक पाठशाला भी खोली थी। इनके नैा वर्ष का एक पुत्र है। वह ग्रैार उसकी मां ग्रयो में हैं।

लछीरामजी के शिष्य यज्ञराज कवि ने गुरु, कविवरजी, का एक फ़ोटो भेजा है ग्रैार ल रामजी के शोक में एक कविता भी भेजी है। वरजी के विषय में हमने ऊपर जो कुछ लिख उसी कविता के ग्राधार पर है। लछीरामज चित्र से मालूम होगा कि यद्यपि ग्राप पुरा के कवि थे, ग्रैार पुराने ही ढङ्ग की पगड़ी ग्रैार लाठी बाँधते थे, तथापि पुरानी चाल के की जगह ग्राप नई चाल के बूट पहनते थे चीज़ों से बूढ़े कविवर भी नहीं बचे।

ग्रब हम यज्ञराज कवि की शोकप्रकाश न कविता का कुछ ग्रंश नीचे देते हैं। जगह कम के कारण हम उनकी पूरी कविता को नहीं शित कर सके। ग्रतएव कविजी, इसके लिए, कृपापूर्वक क्षमा करें।

श्री कविवर लछिराम हाय वैकुण्ठ सिधारे
यज्ञराज तव शिष्य सुनत दुख लह्यौ ग्रपार
बैठि गयो करि हाय कहूँ कछु सूझत नाहीं
किधैां साँच कै झूँठ हाय बूझैां क्यहि पाहिं
मुख तें कढ़े न बैन नयन ग्राँसू बह भर भ
ग्रावन लगी उसाँस गात काँपैं सब थरथ
होय नहीँ मन धीर पीर उर ग्रसहन बा
भाँति भाँति की उठै चित्त मैं चिन्ता गाढ़ी

जीवन जानि अनित्य लह्यौ धीरज मन माँहीं।
लछिराम को मरन सोचिबे लायक नाहीं ॥

मरन सोचिबे योग जाहि मारैं भुजङ्ग डँसि।
पावक जरि जल डूबि मरैं विष खाय मारि असि॥

सुजश नाम विख्यात नहीं जाको जग माहीं।
मानुष तन जो पाय सुकृत कीन्हों कछु नाहीं ॥

यहि विधि के सब जीव मरैं पर जमपुर जाहीं।
इन सबको सुनि मरन साधु जन अति पछिताहीं॥

सरस सकल साहित्य ईस कवि ताहि पढ़ायौ।
रचना रुचिर कवित्त माँहिं बहु प्रेम बढ़ायौ ॥

मानसिंह द्विजदेव जगत विख्यात अवधपति।
सुनि कवित्त दै दान रीझि सनमान कियौ अति॥

श्रीयुत सबगुन-धाम श्रीनगर को सिरताजा।
कमलानन्द सरोज सराहत सुकवि समाजा ॥

बूढ़ेपन मैं मिल्यौ आय इनसों कविराजा।
करत बारतालाप दुहुन कों दोउ सुख साजा ॥

भूपति कमलानन्द दान दीन्हों बहुतेरो।
अङ्कमालिका भेंटि कियौ सनमान घनेरो ॥

एक एक रचि ग्रन्थ इते भूपन कों दीन्हों।
दै कवित्त लै वित्त चित्त सबको हरि लीन्हों ॥

गरजनि सिंह समान सभा मैं श्री कविवर की।
सुनत ससंकित सहमि कौन की मति नहि थरकी॥

रचना रुचिर कवित्त युक्ति साँचे मैं ढारयौ।
जनु रसिकन के हेतु मैन को बान सँवारयौ ॥

अचल अवध के बीच राममन्दिर बनवायौ।
वन प्रमोद जहँ सीयराम अतिसै सुख पायौ ॥

सदा औधपुर वास सुखद सरजू जल सेवा।
लषन राम सिय छोड़ि और दूसर नहिं देवा ॥

प्रतापगढ़ (अवध) के भगवन्त कवि ने लछीरामजी की मृत्यु पर एक पद्य कहा है। उसे भी हम नीचे प्रकाशित करते हैं—

यंस निज सुत मैं प्रसंस जगतीके तल
रचनाशकति राखे शिष्यनि के हद मैं।
सूझि भगवन्त मैं सुबूझि कवि ज्ञानिन मैं
रीझि राखे नृपनि औ खीझ वैरी सद मैं ॥
कवि लछिराम कीनी चातुरी चलत एती
बानी बरबानी ग्यान राखे वेद नद मैं।
धन राखै भौन मैं सुगुन सब सामुहे मैं
तन राखै चौकट औ मन राम पद मैं ॥

अन्तःसाक्षित्व विद्या।

जिस विद्या के बल से आदमी दूसरे के दिल का हाल जान लेता है, जिसके बल से आदमी दूसरे के मन में–दूसरे के अन्तःकरण में–घुस सा जाता है, जिसके बल से आदमी गैब की बात जान जाता है, जिसके बल से आदमी भूत, भविष्य और वर्तमान को हस्तामलकवत् देखने लगता है, उसे अन्तःसाक्षित्व, अन्तर्ज्ञान या परोक्षदर्शन-विद्या कहते हैं। उसी का ही नाम इल्मगैब है। पर वह है क्या चीज़? क्या वह विज्ञान है, या कला है, या एक तरह का पेशा है? कुछ भी हो, वह एक ऐसी अद्भुत शक्ति है जो बहुत कम आदमियों में पाई जाती है। वह ईश्वर का ऐसा अलौकिक प्रसाद है जो किसी विरले ही पुण्यवान् पुरुष को मिलता है।

पुरानी पुस्तकों में लिखा है कि भारतवर्ष के प्राचीन ऋषि-मुनि त्रिकालदर्शी थे; योगि-जन अन्तर्ज्ञानी थे और अब भी जहां कहीं वे हैं दूसरे के दिल का हाल जान सकते हैं; हज़ारों कोस दूर होनेवाली घटनाओं का अनुभव कर सकते हैं; और भविष्यत् को अपनी हथेली पर रक्खा हुआ सा देख सकते हैं। परन्तु ऐसे उदाहरण विरल—बहुत ही विरल हैं। अधिकता ऐसेही उदाहरणों की है जिन की परीक्षा करने से कपट, छल, धोखेबाज़ी और

किसी तरह पैसा कमाने की युक्ति के सिवा और कोई बात देखने में नहीं आती है।

कोई सात वर्ष हुए तब हम झांसी में थे। वहां एक कम उम्र के पण्डित आये। आप योग-शास्त्री के नाम से प्रसिद्ध थे। शायद आप अब तक विद्यमान हैं और कहीं इसी तरफ़ के रहनेवाले हैं। झांसी में आप एक गवर्नमेण्ट पेन्शनर, बंगाली बाबू, के यहां ठहरे। आपकी विद्या की चर्चा खूब होने लगी। लोग आपके पास दौड़ दौड़ जाने लगे। बड़े बड़े वकील, डाक्टर और मास्टरों को अपनी त्रिकालदर्शिता से आपने मोहित कर लिया। सब के प्रश्नों का उत्तर आप देने लगे और प्रायः सब लोग सन्तुष्ट, प्रसन्न और चकित हो हो कर आपके पास से लैाटने लगे। फ़ीस आप की सिर्फ़ एक रुपया थी। हमको भी हमारे मित्रों ने योगशास्त्रीजी के दर्शन करने के लिए विवश किया। खैर, हम जाने को और पण्डितजी से कुछ पूछ कर कृतार्थ होने को भी राज़ी हुए।

एक दिन शाम को हमने अपने पण्डित श्रीयुक्त वासुदेव शास्त्री को साथ लिया। उनका कनिष्ठ पुत्र नारायण भी हम लोगों के साथ हुआ। योग-शास्त्रीजी के स्थान पर जब हम पहुँचे तब आप शौच गये थे। शौच से निपट कर आपने कटि-स्नान किया। तब आप हम लोगों के पास आये। आगत-स्वागत होने के बाद हमने आपकी संस्कृतविद्या की थाह लेने के इरादे से कुछ कहा। उसका उत्तर आप ने सिर्फ़ "अनुग्रह, अनुग्रह" के रूप में दिया। तब हमने, एक रुपया आप के हाथ में रक्खा और कहा कि हमारे विषय में आप कुछ कहिए। इस पर योग-शास्त्रीजी हमको मकान के भीतर, अपने आसन के पास, ले गये। परन्तु हमारे साथ वासुदेव शास्त्री और उनके चिरञ्जीव नारायण को लेजाने से आपने इनकार किया। हमने वासुदेव शास्त्री से कहा कि यह शर्त हम मंज़ूर किये लेते हैं। अगर हमको इन के अन्तःसाक्षित्व से सन्तोष हुआ तो आप हमारे बाद इनसे जो कुछ पूछना हो पूछ आइएगा। उन्होंने कहा हमें कुछ नहीं पूछना है; हम इनसे [...] हो से परिचित हो चुके हैं। अस्तु।

हम योगशास्त्रीजी के आसन के पास बैठे [...] कुछ ध्यानस्थ से हुए और हमारे भविष्य से स[...] रखनेवाली बातें कहने लगे। हमने सुनकर [...] कि आप पहले हमारे प्रश्नों का उत्तर देकर अ[...] विद्या में हमारी श्रद्धा उत्पन्न करें। तब आप [...] होनेवाली बातें कहें। ऐसा करने से आपकी उ[...] में हमें अधिक विश्वास होगा। इस पर वे कि[...] तरह राज़ी हुए। तब हमने फ़ारसी के—

> चु अज़ क़ौमे यके बेदानिशी कर्द
> न केहरा मञ्ज़िलत मानद न मेहरा।

इस मिसरे को याद किया और कहा कि [...] लाइए हमारे मन में किस भाषा का कौन सा [...] है। यह एक ऐसा पद्य था जो उन योगिराजजी [...] भी विलक्षण तरह से घटित होता था। [...] हमने कई मिनट तक मनन किया, पर वे मह[...] इसे न बता सके। इस प्रश्न में वे बेतरह फ़ेल हु[...] तब हमने उनसे ये प्रश्न किये—

(१) हमारे कितने विवाह हुए हैं?

(२) हमारी कितनी स्त्रियां इस समय जी[...] हैं?

(३) हमारे सन्तति कितनी हुई—कितने ल[...] कितनी लड़कियां?

(४) उस में से कितनी इस समय विद्यमान [...]

हज़ार प्रयत्न करने पर भी योगशास्त्रीजी [...] प्रश्नों का ठीक ठीक उत्तर न दे सके। जब उनके उ[...] बहुत ही अण्ड बण्ड होने लगे, तब हमने उनसे [...] कि आपके इतने ही उत्तर काफ़ी हैं। और भी ह[...] कई प्रश्न किये, पर वे बराबर फ़ेलही होते ग[...] उस समय उनके मनकी क्या हालत हुई होगी [...] तो वही जानते होंगे; पर अपने असामर्थ्य के प्र[...] में उन्होंने हमारा रुपया वापस कर दिया। ह[...] बहुत कहने पर भी उन्होंने उसे न लिया। [...] असामर्थ्य का कारण उन्होंने यह बतलाया कि [...]

हमने सुबह से कई आदमियों के प्रश्नों का उत्तर दिया है; इससे हमारी अन्तर्ज्ञान-शक्ति क्षीण हो गई है। उन्होंने हमसे वादा किया कि उसी दिन रात को आठ बजे वे हमारे मकान पर पधारेंगे और हमारे जन्मपत्र को देख कर हमारे प्रश्नों का उत्तर देंगे। रात को ११ बजे तक हमने उनका रास्ता देखा। पर आप नहीं पधारे। दूसरे दिन सुबह हमको ख़बर मिली कि योगशास्त्रीजी महाराज रात को १२ बजे की रेल से भूपाल के लिए रवाना हो गये!

परन्तु सब की हालत ऐसी नहीं होती; सब की विद्या उत्तर देते देते क्षीण नहीं हो जाती। जो लोग थियासफ़ी-समाज की "थियासफ़िस्ट" नामक सामयिक पुस्तक के नियमित पढ़नेवाले हैं; जिन्होंने कम्बरलैण्ड साहब के दिखलाये हुए अन्तः-साक्षित्व-विद्या-सम्बन्धी चमत्कारों का वर्णन पढ़ा है; जिन्होंने अमेरिका के डाक्टर डाड्स के अलौकिक कृत्यों को सुना है—वे जान सकते हैं, वे कह सकते हैं, वे विश्वास कर सकते हैं कि अन्तर्ज्ञान विद्या का इस भूमण्डल से बिलकुल ही लोप नहीं हो गया। अब भी उसके होने के प्रमाण कहीं कहीं मिलते हैं। परन्तु, हां, बहुत विरल मिलते हैं।

इस समय हिन्दुस्तान में भी इल्म ग़ैब का जानने-वाला एक प्रसिद्ध पुरुष है। उसकी अन्तर्ज्ञानविद्या बहुत बढ़ी चढ़ी है। १८९२ ईसवी में यह पुरुष जीवित था। मालूम नहीं अब वह है या नहीं। उस समय उसकी उम्र सिर्फ़ ३५ वर्ष की थी। इससे कह सकते हैं कि वह बहुत करके अब तक ज़िन्दा होगा। अस्तु हम उसे ज़िन्दा ही समझ कर उसके विषय में दो चार बातें लिखते हैं।

इस पुरुष का नाम गोविन्द चेट्टी है। यह मदरास हाते के कुम्भकोण नगर से ६ मील पर वालिकमन नामक गाँव में रहता है। कुम्भकोण, साउथ इण्डियन रेलवे का एक स्टेशन है। गोविन्द चेट्टी की मातृ-भाषा तामील है। वह संस्कृत भी थोड़ी जानता है। उस प्रान्त में उसका बड़ा नाम है। वह भूत, भविष्य और वर्तमान को सामने रक्खा हुआ देखता है। अर्थात् वह त्रिकालज्ञ है। एक बार उसके विषय में "थियासफ़िस्ट" में एक लेख छपा था; उसमें उसके बतलाये हुए अनेक अद्भुत उत्तरों का ज़िकर था। कर्नल पीकाक नामक एक साहब एक दिन उससे मिलने गये। वे उसकी अद्भुत विद्या को देखकर अवाक्, चकित और स्तम्भित हो गये। उन्होंने "मदरास मेल" नामके अङ्गरेज़ी समाचार पत्र में अपने अनुभव का सविस्तर वृत्तान्त प्रकाशित किया है। उसकी नक़ल और भी कई अख़बारों में छप चुकी है। मदरास हाते के उत्तरी विद्या-विभाग के इन्स्पेक्टर ने भी गोविन्द चेट्टी से मिलकर जिन अचम्भे की और अलौकिक बातों का अनुभव किया है उनका वर्णन उन्होंने भी छपा दिया है।

इस अद्भुत ज्योतिषी, अन्तर्ज्ञानी या योग-शास्त्री से मिलने, एक बार, एक महाराष्ट्र पण्डित गये। वे सिर्फ़ इसी निमित्त, कोई ५०० मील दूर अपने घर से, वहां पहुँचे। जाने के पहले उन्होंने उससे पूछने के लिए अपनी डायरी में बहुत से प्रश्न लिख लिये। जब वे गोविन्द चेट्टी के घर पहुँचे तब उन्होंने देखा कि उसके यहां कई आदमी, सैकड़ों तरह के प्रश्न करने के लिए, बैठे हैं। वे अपने साथ एक दुभाषिये को ले गये थे। वह तामील-भाषा का अनुवाद अङ्गरेज़ी में और अङ्गरेज़ी का तामील में करता था। गोविन्द चेट्टी का रँग काला, शरीर सशक्त, मोंछ विरल थे। वह सिर्फ़ धोती पहने था और एक अँगौछा कन्धे पर रक्खे था। उसकी बात चीत और मुखचर्य्या से मालूम हुआ कि वह बहुत क्रोधी भी है और लोभी भी है। जो लोग वहां जमा थे उनमें से जिस ने उसको ख़ातिर-ख़ाह रुपया नहीं दिया उसे उसने अपने कमरे से निकल जाने को कहा और उसके प्रश्नों का उसने उत्तर नहीं दिया।

जब इस महाराष्ट्र पण्डित की बारी आई तब इससे गोविन्द चेट्टी ने पूछा कि तुम कहाँ से आये

और क्या चाहते हो। इसका उत्तर मिलने पर उसने कहा कि यदि मैं तुम्हारी सब बातों का ठीक ठीक जवाब दूं तो तुम मुझे क्या दोगे ? महाराष्ट्र गृहस्थ ने कहा कि यदि आप ऐसा करेंगे तो मैं आपकी कीर्ति को महाराष्ट्र देश भर में फैलाऊंगा और यथाशक्ति आपको कुछ दूंगा भी। कुछ देर तक विचार करके चेट्टी ने आगन्तुक पण्डित के स्वभाव, आचरण और विद्वत्ता आदि की तारीफ़ की। फिर उन्हें वह अपने ख़ास कमरे में ले गया। वहां उसने पूछा कि तुम्हारे प्रश्न कहां हैं। पण्डित ने कहा कि वे हमारी डायरी में लिखे हुए हैं और वह डायरी हमारी इस बैग के भीतर है। यह सुनकर गोविन्द ने एक चौथाई तख्ते काग़ज़ पर पेन्सिल से उन प्रश्नों का जवाब लिखना शुरू किया और बिना रुके या बिना किसी सोच विचार के, वह अधाधुन्ध लिखता ही गया। इस बीच में वह प्रष्टा से कभी सामने पड़ी हुई कौड़ियों को कहता था छुओ; कभी किसी पुस्तक के किसी अक्षर पर कहता था हाथ रक्खो; कभी कुछ संख्याओं का जोड़ पूछता था; कभी कुछ करता था, कभी कुछ। और यह सब करके वह तरह तरह के चमत्कार दिखलाता जाता था। अङ्कों का जोड़ लगवा कर वह बतला देता था कि वह इतना हुआ; या वह अमुक संख्या से कट जाता है; या उसमें अमुक अङ्क इतनी दफ़ा आया है। पर इतना करके भी वह अपने हाथ के काग़ज़ को बराबर रँगता ही जाता था। दोनों काम उसके साथही होते थे। जब वह उस काग़ज़ के दोनों तरफ़ लिख चुका तब उस पर उसने उस पण्डित के दस्तख़त कराये और उसे उसने उस दुभाषिये के हवाले किया। तब उसने वे लिखे हुए प्रश्न मांगे। पण्डित महाशय ने अपनी "हैण्ड बैग" खोली और अपने प्रश्न गोविन्द चेट्टी को उन्होंने सुनाये। उनका अनुवाद दुभाषिये ने तामील में किया। उनमें से कुछ प्रश्न ये थे—

१. मेरी स्त्री का नाम क्या है ?
२. मेरा पेशा क्या है ?
३. मेरी कविता कौन है ?
४. मेरे मन में फूल कौन है ?
५. मेरे मन में पक्षी कौन है ?
६. मेरी और मेरी स्त्री की उम्र कितनी है
७. जस्टिस महादेव गोविन्द रानडे इस स[मय] क्या कर रहे हैं ?

सब प्रश्न सुनकर गोविन्द चेट्टी ने कहा कि तुम्हारे सब प्रश्नों का उत्तर दे दिया है। तुम [उस] काग़ज़ को पढ़ो जिसे मैंने तुम्हारे दुभाषिये [के] सिपुर्द किया है। याद रखिए प्रश्न बतलाये [ही] नहीं गये। पर उनका उत्तर पूछनेवाले के दस्तख़त के रूप में सील-मोहर होकर पहले ही से तैयार हो गया। दुभाषिये ने उत्तरों को एक एक क[रके] पढ़ना और उनका अङ्गरेज़ी में अनुवाद करना [शुरू] किया। फिर क्या था, पूछनेवाले पण्डित महा[शय] आश्चर्य्य, आतङ्क, भक्ति और श्रद्धा के समुद्र में डूबने उतराने। उनके जितने सवाल थे उन[सब] का सही जवाब उनको मिला। गोविन्द चेट्टी [की] इस अद्भुत अन्तःसाक्षित्व विद्या को देखक[र] चकित हो गये और पत्र-पुष्प-तुल्य पांच रुपये उ[स] सामने रखकर वे उस अलौकिक ज्योतिषी से [विदा] हुए। उनकी इस भेंट को गोविन्द चेट्टी ने [आदर] पूर्वक स्वीकार कर लिया।

परोक्षदर्शिता का यह उदाहरण इस देश[का] है। योरप में भी ऐसे ऐसे उदाहरण पाये जाते [हैं]। इस समय, योरप में, कम्बरलैण्ड साहब का [बड़ा] नाम है। यह कहते हैं कि मुझ में कोई ऐसी अद्[भुत] शक्ति नहीं जो औरों में न हो। किसी सि[द्धि] किसी अलौकिक विद्या, के बल से हम दूस[रों के] दिल का हाल नहीं मालूम करते। जो शक्ति [मुझ] में है वह और भी बहुत आदमियों में होती है। यदि वे कोशिश करें, तो वे भी दूसरों के मन [की] बातें जान सकें। दूसरों के ख़यालात को जान[ना] एक प्रकार की बहुत सूक्ष्म स्पर्शन-शक्ति पर [अव]लम्बित है। जब कोई आदमी कुछ ख़याल क[रता]

है, किसी चीज़ की भावना करता है, तब उस पर कुछ ऐसे चिन्ह उत्पन्न हो जाते हैं जिनसे उस ख़याल का पता लग जाता है—भावना की गई उस चीज़ का ज्ञान हो जाता है। कोई आदमी, बिना इस तरह के चिन्हों के प्रकट किये किसी वस्तु पर अपना चित्त स्थिर नहीं कर सकता; किसी चीज़ का ध्यान नहीं कर सकता; किसी विचार में लीन नहीं हो सकता। ऐसा कर सकना सर्वथा असम्भव है। इन चिन्हों का ज्ञान उसको तो नहीं होता जिस पर वे प्रकट होते हैं, पर चित्त की बात जानने की कोशिश करनेवाले को हो जाता है। विचार, ध्यान, भावना, या ख़याल का कोई रूप नहीं। वे देखे नहीं जा सकते। परन्तु शारीरिक चिन्हों से उन का पता ज़रूर लग जाता है। मैं जब किसीके चित्त पर अङ्कित हुए ख़याल को पढ़ने लगता हूं तब मेरी आंखों के ऊपर रूमाल बांध दिया जाता है। वह सिर्फ़ इस लिए जिसमें मेरा चित्त ग्रैार किसी चीज़ की तरफ़ न चला जाय। किसी दूसरे कारण से नहीं। मैं ग्रैारों के हाथ को सिर्फ़ छू कर उनके मनका हाल बतला सकता हूं। यहां तक कि बिना छुए ग्रैार बिना आंख बन्द किये भी ग्रैारों के दिल की बातें मैं जान सकता हूं। परन्तु चिन्हों ही के द्वारा। हाथ पैर का हिलाना, होंठ का फड़कना, पसीने का निकलना, पलकों का गिरना, इत्यादि ऐसे चिन्ह हैं जिनसे चित्त की बात जानने में बड़ी मदद मिलती है। यह उक्ति ख़ुद कम्बरलैण्ड साहब के मुंह की है। योरप में जितने बादशाह हैं प्रायः सब ने कम्बरलैण्ड साहब की अन्तर्ज्ञान (Thought reading) विद्या का अनुभव किया है ग्रैार उसे सही पाया है। इन्होंने हज़ारों अद्भुत अद्भुत चमत्कार दिखलाये हैं। उनमें से दो एक का ज़िक्र हम यहां पर करना चाहते हैं। इन्होंने योरप के बादशाहों ग्रैार रानियों आदि के सामने जो परीक्षायें दी हैं, जो कौतुक दिखाये हैं, उनका संक्षिप्त वर्णन आजकल "पियर्सन्स मैगज़ीन" में छप रहा है।

एक दिन कम्बरलैण्ड साहब "पियर्सन्स मैगेज़ीन" के दफ़्तर में पधारे। वहां आप की परीक्षा हुई। एक आदमी से कहा गया कि वह कल्पना करे कि उसके किसी अंग में दर्द हो रहा है। उसने वैसाही किया। साहब की आंखें रूमाल से बांध दी गईं। उन्होंने उस आदमी का हाथ पकड़ा। पकड़ते ही उनके शरीर में एक वैद्युतिक धारा सी बही। उन का हाथ पहले कुछ इधर उधर घूमा। फिर उसने फ़ौरन ही उस आदमी के बांये कान का निचला हिस्सा पकड़ लिया। बस वहीं उस आदमी ने दर्द होने की भावना मन में की थी। इस बात को देख कर देखनेवाले अचरज में आ गये। वे चकित हो उठे। वहां पर, उस समय, एक ग्रैार आदमी बैठा था। उससे कहा गया कि तुम भी किसी चीज़ की भावना करो। उसने एक चीज़ की तसवीर की भावना करनी चाही। सफ़ेद काग़ज़ का एक मोटा तख़्ता दीवार पर लगा दिया गया। कम्बरलैण्ड साहब ने उस आदमी का हाथ अपनी कलाई पर रक्खा ग्रैार उससे कहा कि तुम काग़ज़ की तरफ़ देखो ग्रैार भावना करो कि तुम उस पर अपनी भावित वस्तु की तसवीर खींच रहे हो। उसने वैसाही किया। वह उधर उसकी भावना करने लगा, यह इधर हाथ में पेन्सिल लेकर उस भावना का चित्र उतारने लगे। एक मिनट में यह परीक्षा पूरी हो गई। देखा गया तो मालूम हुआ कि वह चित्र सड़कों पर गड़े हुए एक लालटेन का था। उसी की भावना उस मनुष्य ने की थी; परन्तु उसे सोचते समय उसके ब्रैकेट का ख़याल उसे नहीं रहा था। इससे साहब ने जो तसवीर बनाई उसमें भी ब्रैकेट न था। इस अद्भुत शक्ति को देख कर सब लोग हैरत में आगये। इनके सिवा ग्रैार भी कई प्रमाण उन्होंने अपने अन्तर्ज्ञान के दिये।

योरप के धनकुबेर राथ्सचाइल्ड के यहां एक दिन जलसा था। हमारे राजेश्वर एडवर्ड, सप्तम, भी उसमें शरीक थे। कम्बरलैण्ड साहब भी वहां

उस समय हाज़िर थे। राजेश्वर ने उनके अन्तर्ज्ञान की परीक्षा करनी चाही। उन्होंने लङ्का में मारे गये एक बे-पूंछ के हाथी की भावना की। कम्बरलैण्ड ने तत्काल ही उसका चित्र खींच दिया, पर पूंछ उन्होंने नहीं बनाई। पूछने पर मालूम हुआ कि राजेश्वर ने पूंछ की भावना ही नहीं की; क्योंकि वह उस हाथी के थोही नहीं।

हमारे राजेश्वर की वर्तमान महारानी अलेग्ज़ण्डरा एक दफ़ा डेनमार्क में, अपने पिता के यहां, थीं। वहां भी किसी मौक़े पर कम्बरलैण्ड साहब पहुँचे। महारानी ने महल के किसी दूसरे हिस्से में रक्खे हुए एक फ़ोटो की भावना की और यह चाहा कि कम्बरलैण्ड साहब उसे वहां से उठा लावें। साहब ने कहा, बहुत अच्छा। वे ग्रीस के शाहज़ादे जार्ज के साथ फ़ौरन वहां गये और उस फ़ोटो को लाकर उन्होंने उसे महारानी के हाथ में दे दिया। इस अलौकिक शक्ति को देखकर सब लोग स्तम्भित से हो गये।

एक दफ़ा रूस के ज़ार ने एक रूसी शब्द की भावना की। कम्बरलैण्ड रूसी भाषा बिलकुल ही नहीं जानते। परन्तु उस शब्द को उन्होंने तद्वत् लिख दिया।

कम्बरलैण्ड साहब ने ऐसे ही अनेक रा महाराजा, और धनी मानी आदमियों के मन बातों को बतलाकर, लिखकर, चित्र द्वारा कर, अपनी अद्भुत अन्तर्ज्ञान-विद्या की सत्यता सिद्ध कर दिखाया है।

मूक प्रश्नों का उत्तर देने और मनकी बात लाने में केरल प्रान्त के ज्योतिषियों का इस दे बड़ा नाम रहा है। सुनते हैं अब भी वहां इस के अच्छे अच्छे पण्डित पाये जाते हैं। और कहीं कहीं ऐसे ऐसे अन्तर्ज्ञानियों का नाम पड़ता है। शाही ज़माने में लखनऊ में भी इस त के आदमी थे जो दूसरे के मन का हाल बतला थे। कोई १० वर्ष हुए हमारे मित्र बाबू सीता को लखनऊ में ऐसा ही एक वृद्ध मनुष्य मि था। वह इन से बिलकुल अपरिचित था। प वह इनका पुराना इतिहास सब बतला गया इनके मन की बातों को उसने इस तरह सही कहा मानो वह इनके हृदय के भीतर घुसकर उ मालूम कर आया था। परन्तु लोगों का विश्व इस विद्या से उठता जाता है। क्योंकि इसके धूर्तता अकसर छिपी हुई मिलती है।
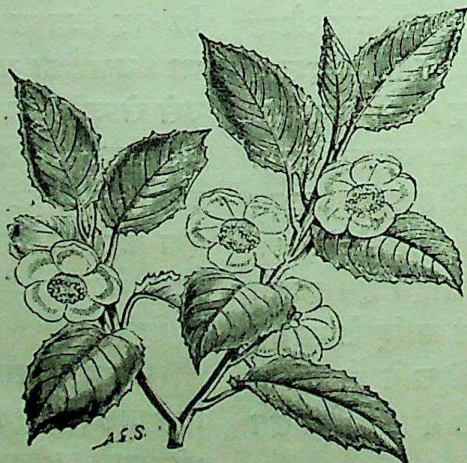
भाग ६] मई, १९०५ [संख्या ५

विविध विषय।
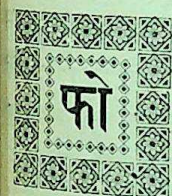
फोटो के चित्र अब तार और टेलिफोन द्वारा भेजे जाने लगे हैं। एक फोटो भेजने में आध घण्टा लगता है। अतएव अभी इसमें अधिक उन्नति दरकार है। रूस जापान की लड़ाई के कल के चित्र आज के समाचारपत्रों में नहीं छप सकते। आशा है कि यह दिक़त शीघ्र ही मिट जायगी।

***

पाठकों को उस विलक्षण ज्योति की बात मालूम होगी जो X (यक्स) किरणों के नाम से प्रसिद्ध है। डाकृर ब्रेट के पुत्र की दृष्टि ठीक इन्हीं किरणों के समान है। यह लड़का १७ वर्ष का है। वह अपनी आँखों से मनुष्यों के शरीर के भीतर की हड्डियां, नसें और रङ्ग आदि सब देख सकता है। इस अलौकिक दृष्टि से वह अपने पिता के चिकित्सा-व्यवसाय में खूब सहायता करता है।

***

परलोकवासी ग्लैडस्टन साहब की भतीजी, श्रीमती स्टुअर्ट, ने वैज्ञानिक-संसार में बड़ी खलबली मचा दी है। उसका कथन है कि जिस प्रकार का भाव मनुष्य के मनमें रहता है उसी के अनुसार उस भाव का एक ख़ास रङ्ग का आकार होता है। ऐसे रङ्गीन सूक्ष्म आकार को, जो मनुष्य के शरीर से निकलता रहता है, वह देख सकती है। एक विद्वान् ने अपनी एक पुस्तक में इस विषय की पूरी आलोचना की है। उस पुस्तक में उन्होंने अनेक चित्र भी दिये हैं। उन में उन्होंने दिखलाया है कि भिन्न भिन्न प्रकार के मनुष्यों के हृदयङ्गम भावों के आकार का रङ्ग भी भिन्न भिन्न प्रकार का होता है।

***

ऊपर के तीनों नोट चौधरी पुरुषोत्तमप्रसाद शर्म्मा ने भेजे हैं।

***

ट्रांसवाल की प्रीमियर नामक खान से एक हीरा निकला है। दुनिया में इस समय जितने हीरे हैं यह उन सब से बड़ा है। बड़ाई में इसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता। नाप में यह ४३ इञ्च ×

२¼ इञ्च है। इसका वज़न ३,०३२ कैरट है ! यह इस समय लण्डन में है। ट्रांसवाल से भेजने के समय ७५,००,००० रुपये का इसका बीमा हुआ था। इसका नाम रक्खा गया है कुलीनन।

* *
*

संस्कृत में कथासरित्सागर एक बहुत बड़ा और अनूठा ग्रन्थ है। इसे एक अद्भुत उपन्यास कहना चाहिए। इसमें अनन्त कथायें हैं। वे सब शृङ्खलाबद्ध हैं। उन कथा-रूपिणी नदियों का यह समुद्र है। इसकी कथाओं के आशय के आधार पर संस्कृत में अनेक ग्रन्थ बने हैं। इसके आदि-कर्ता गुणाढ्य कवि हैं। यह ग्रन्थ पहले पिशाच भाषा में था। इसका प्रथम नाम वृहत्कथा था। इसमें एक लाख श्लोक थे। पर यह ग्रन्थ अब नहीं मिलता। विद्यमान कथासरित्सागर इसीका सारांश है। इसके कर्ता सोमदेव भट्ट हैं। उन्होंने पचीस हज़ार श्लोकों में यह संक्षिप्त कथासागर बनाया है। महाकवि क्षेमेन्द्र ने वृहत्कथा की कथाओं को बहुत ही संक्षिप्त करके वृहत्कथामञ्जरी नाम की एक पुस्तक लिखी है। परन्तु वह इतनी अधिक संक्षिप्त है कि कथाओं का स्वारस्य कम हो गया है।

* *
*

संस्कृत में कथासरित्सागर के दो संस्करण हमने देखे हैं। एक निर्णयसागर का, दूसरा जीवानन्द विद्यासागर का। पहला पद्य में है। वह सोमदेवकृत पद्यग्रन्थ का छपा हुआ संस्करण है। दूसरा गद्यात्मक है। उसका गद्य अत्यन्त सरल है। पण्डित जीवानन्द ने सोमदेव के पद्य-प्रबन्ध से इस गद्य-ग्रन्थ की रचना की है। इसे पढ़ने में ज़रा भी प्रयास नहीं पड़ता। विद्यार्थी तक इसे समझ सकते हैं। इबारत बहुत ही रंगीन और मनोहारिणी है। सरलता में तो वह कहीं कहीं पर हितोपदेश और पञ्चतन्त्र की इबारत को भी मात करती है।

* *
*

इसका पहला अनुवाद हिन्दी में निकले कोई आठ वर्ष हुए। वह पण्डित कालीचरण और पण्डित क्षमापति वाजपेयी के द्वारा मुंशी नवलकिशोर के लिए लिखा गया था। उन्हींके प्रेस में वह छपा है। क्षमापति जी से हमारा ख़ूब परिचय है। कवि[ता] का मर्म्म जानने में आप अद्वितीय हैं। शायद [ही] कोई काव्य ऐसा हो जो आपने न देखा हो। [ऐसे] विद्वान् और सहृदय पण्डित की सहायता से कि[या] गया अनुवाद अच्छा होना ही चाहिए। पर ज[हां] विद्वत्ता मोल ली जाती है वहां त्रुटियां अवश्य [ही] आ जाती हैं। इससे यह अनुवाद भी किसी कि[सी] बात में निर्दोष नहीं है। परन्तु इस अनुवाद में [मूल] का कोई भी भाव, यथासम्भव, नहीं जाने पा[या] और जहां तक हमने देखा, अनुवाद में भूलें [भी] नहीं हैं। इसका मूल्य भी बहुत कम है।

* *
*

कुछ दिनों से इसी कथासरित्सागर के [एक] और अनुवाद की धूम है। यह अनुवाद भी हि[न्दी] में हो रहा है। बनारस के श्रीरामकृष्ण वर्मा [इस] अनुवाद को लिख रहे हैं और हर महीने इस[का] एक एक भाग निकाल रहे हैं। तीन वर्ष में [यह] अनुवाद ख़तम होगा। हर एक भाग का [अ]लग दाम ॥-) है। पर साल भर का हमें मा[लूम] नहीं। इस अनुवाद के पहले ८ पृष्ठ, नमूने के [तौर] पर, एक सामयिक पुस्तक के साथ, क्रोड़पत्र के [रूप] में, हमारे पास पहुँचे हैं। उनसे मालूम हुआ [कि] इस पुस्तक का नाम "कथा सरित्सागर का भाषा[]नुवाद" है। हमारी समझ में संस्कृत, अङ्गरेज़ी, फ़ारसी, ग्रीक, लैटिन, हेब्रू आदि सभी भा[षायें] हैं। इससे सिर्फ़ भाषानुवाद कह देने से हि[न्दी] भाषानुवाद का बोध नहीं होता। यों तो पु[स्तक] ही हिन्दी में है। यदि भाषा शब्द भी निकाल [दिया] जाय तो भी लोग पढ़कर जान लेंगे कि अनु[वाद] की भाषा हिन्दी है। पर यदि इसका नाम हि[न्दी] कथासरित्सागर, या कथासरित्सागर का हि[न्दी] भाषानुवाद, या इसी तरह का कुछ और नाम [होता] तो अच्छा होता।

* *
*

इस नमूने के हमने दो पृष्ठ पढ़े। शुरू में ही एक जगह लिखा है—"जिस समय प्रणाम करनेवाले देवताओं के मस्तकों पर इनके चरण के नखों की आभा पड़ती है तो यही जान पड़ता है कि मानो भगवान् चन्द्रशेखर को प्रसन्नता से उन लोगों ने भी एक एक अर्द्ध चन्द्र अपने अपने मस्तक पर प्राप्त किया है"। इस विषय में हमारी एक प्रार्थना है। मस्तक पर नखों की आभा पड़ने से कोई प्रतिबिम्ब नहीं दिखाई दे सकता। क्योंकि मस्तक पारदर्शी नहीं होता। हां यदि मस्तक पर कोई चमकीला मुकुट रक्खे हो, या कोई मणि इत्यादि धारण किये हो, तो प्रणाम करते समय नखों का प्रतिबिम्ब उन पर पड़ सकता है। मालूम नहीं, संस्कृत के किस संस्करण से श्रीरामकृष्ण वर्म्मा ने यह अनुवाद किया है। जीवानन्द के संस्करण में तो मूल वाक्य इस प्रकार है—"यस्य च चरणनखाग्रप्रतिबिम्बित-चूड़ामणयः प्रसादलब्धार्द्धचन्द्रा इव भान्ति सुरासुराः"। इससे स्पष्ट है कि "मणयः" (मणियां) का अनुवाद होने से रह गया है। इसी से यह त्रुटि आ गई है। इसी वाक्य का अनुवाद मुंशी नवलकिशोर के संस्करण में इस तरह किया गया है—"मुकुटों पर जड़ी हुई मणियों में जिनके चरणों के नखों के प्रतिबिम्ब पड़ने से देवता तथा दैत्य लोग चन्द्रशेखर से मालूम होते हैं"। इन अवतरणों से यह भी सिद्ध है कि बनारस के नये अनुवाद में "सुरासुराः" में से सुरों का अर्थ ले लिया गया है और असुरों का छोड़ दिया गया है। पर असुर भी चाहिए। क्योंकि शङ्कर के प्रणत भक्तों में असुर भी हैं। एक बात और भी है। "जिस समय........ आभा पड़ती है तो यही जान पड़ता है"—इस वाक्य में जिस समय के साथ, 'तो' का आना ज़रा खटकता है। 'तो' की जगह यदि 'उस समय' न हो तो 'तब' हो सही। पर 'तो' का आना 'जो' या 'यदि' के ही साथ अच्छा लगता है। यदि हमारे सदृश अल्पज्ञों के वाक्यबन्ध में शिथिलता आ जाय तो विशेष आश्चर्य्य की बात नहीं। पर हिन्दी के नामी लेखकों के लेख में यह बात न होनी चाहिए।

राजा रामपालसिंह, सी० आई० ई०।

सरस्वती के पांचवें भाग की पांचवीं संख्या में कालाकांकर के अधिपति राजा रामपालसिंह का जीवनचरित प्रकाशित हो चुका है। जैसा वहां पर कहा गया है, इस प्रान्त के राजा और तअल्लुक़ेदारों में, विद्यादेवी का प्रवेश बहुत ही कम है। लक्ष्मी और सरस्वती का सापत्न्यभाव प्रायः सब कहीं देखा जाता है। सरस्वती की तो इन पृथ्वीपालों पर इतनी कृपा है कि बहुतेरे अपना नाम भी, अच्छी तरह, सही सही नहीं लिख सकते। परन्तु रामपालसिंह नाम में कुछ ऐसी विशेषता है कि उसमें इस नियम का व्याघात पाया जाता है। एक राजा रामपालसिंह का चरित पाठक पढ़ चुके हैं। आज एक दूसरे राजा रामपालसिंह का चरित उनको सुनाया जाता है। इन्हों ने भी लक्ष्मी-सरस्वती के सापत्न्यकलंक की कालिमा को अपनी उज्वल कीर्ति से धो डाला है।

सुलतानपुर और रायबरेली होते हुए जो रेलवे लाइन बनारस से लखनऊ को जाती है उस पर निगोहां नाम का एक स्टेशन है। वहां से पांच मील दूर कुर्री सुदौली नामक एक राजधानी है। वह रायबरेली के ज़िले में, सदर स्टेशन से २५ मील दूर, है। इस चरित के नायक राजा रामपालसिंह, सी० आई० ई०, उसी राज्य के स्वामी हैं। अवध प्रान्तके अन्तर्गत रायबरेली ज़िले में क्षत्रियों की बहुत अधिकता है। ये क्षत्रिय प्रायः बैस सम्प्रदाय के हैं और त्रिलोकचन्द के वंशज कहलाते हैं। ये राजा साहब भी इसी वंश के अङ्कुर हैं।

राजा साहब के पूर्वपुरुष कालोराय नामक थे। उनके तीन पुत्र हुए:—हरसिंह राय, नरसिंह

राय और वीरभानु। इनमें से हरसिंह राय नहट में, नरसिंह राय नरसिंहपुर में और वीरभानु विहर में रहे। हरसिंह राय की चौथी पुश्त में अभयचन्द्र हुए। उन्होंने सुदौली को अपना निवासस्थान बनाया। अभयचन्द्र की चौथी पुश्त में सिदकसिंह हुए। उनको तत्कालीन दिल्ली-सम्राट ने राजा की पदवी दी। उसी समय से सुदौली के भूपति राजा कहलाने लगे। सिदकसिंह की चौथी पीढ़ी में राजा हिन्दपालसिंह हुए। उनके कोई पुत्र न था। इस लिये उन्होंने रामपाल सिंह जी को गोद लिया। रामपालसिंहजी का जन्म १८६७ ईस्वी में हुआ था और १८६८ ईस्वी में आपने राजा हिन्दपालसिंह के गोद की शोभा बढ़ाई।

रामपालसिंहजी को गोद लेने के थोड़ेही दिनों बाद राजा हिन्दपालसिंह का परलोक हो गया। अतएव राज्य का प्रबन्ध कोर्ट आफ़ वार्ड्स के द्वारा होने लगा; क्योंकि रामपालसिंहजी के वयस्क होने तक यही प्रबन्ध ज़िले के हाकिमों को उचित जान पड़ा। परन्तु ऐसा होने से रामपालसिंहजी के विद्याध्ययन में व्यत्यय नहीं आया। आप पहले रायबरेली के ज़िला स्कूल में पढ़ने के लिये भेजे गये। वहां आप केवल एक वर्ष रहे। वहां के स्कूल की पठन-पाठन-प्रणाली से सर सैयद अहमद के द्वारा स्थापित अलीगढ़ के मोहामेडन कालेज की प्रणाली अच्छी समझी गई। इस लिये श्रीमान् वहां भेजे गये। वहां आप १८७७ ईस्वी में भरती हुये। इस कालेज में प्रविष्ट होकर आपने पढ़ने लिखने में बहुत परिश्रम किया। किसी ने कहा है—

सुखार्थी च त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी च त्यजेत्सुखम्।
सुखार्थिनः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम्॥

इस उक्ति के आप उदाहरण स्वरूप बन गये। सुखेप्सा को बिलकुल ही तिलाञ्जलि देकर आप अध्ययन में तन्मनस्क हुए। कुशाग्रबुद्धि आप स्वभाव ही से थे; पढ़ने लिखने में आपका जी भी बेहद लगता था; परिश्रम भी आप खूब करते थे। अतएव इसका फल भी आपको यथेच्छ मिला। १८८५ ईस्वी में कलकत्ता विश्वविद्यालय की प्रवेशिका परीक्षा में आप योग्यता के साथ उत्तीर्ण हुए। उत्तीर्ण क्या हुए, अवध के तअल्लुक़ेदारों का आपने गौरव बढ़ाया। यह, इस प्रान्त में, गवर्नमेन्ट के पहले 'वार्ड' थे, जिन्हों ने अपने विद्यानुराग और परिश्रम का ऐसा अच्छा परिचय दिया। इन के विद्याग्रहण-सम्बन्धी उत्साह, और परीक्षा-साफल्य, के उपलक्ष्य में इनको सर सैयद अहमद खां का मेडल मिला—

चकास्ति योग्येन हि योग्यसङ्गमः।

यह बहुत ही अच्छा हुआ।

घाघरा के किनारे, गोंडा ज़िले में, एक धन... नामक रियासत है। यह रियासत बहुत प्राचीन और प्रतिष्ठित है। यहीं १८८५ ईस्वी में रामपालसिंहजी का विवाह हुआ। पत्नी भी, भाग्यवश आपको अपने अनुरूप और अनुकूल मिली। रानी साहब विशेष बुद्धिमती, स्वकार्यदक्ष और पतिपरायणा हैं। इसीसे पति-पत्नी में प्रगाढ़ स्नेह रहता है। ऐसी सहधर्म्मचारिणी पाकर राजा दिलीप के विषय में कही गई कालिदास की नीचे लिखी हुई उक्ति को पालन करना रामपालजी ने भी अपना धर्म्म माना—

कलत्रवन्तमात्मानमवरोधे महत्यपि।
तया मेने मनस्विन्या लक्ष्म्या च वसुधाधिपः॥

परन्तु—"अवरोधे महत्यपि"—अर्थात् "बहुत रानियों के रहते भी"—इन शब्दों को आपने अपने अनुकरण योग्य नहीं समझा।

वैवाहिक उत्सव समाप्त होते ही रामपालसिंहजी फिर अलीगढ़ गये और फिर पूर्ववत् मनोनिवेशपूर्वक अध्ययन करने लगे। १८८७ ईस्वी में आपने कलकत्ता-विश्वविद्यालय की एफ़० ए० परीक्षा सफलतापूर्वक पास की। यहीं पर आपने

विद्वत्व की सीमा की समाप्ति नहीं समझी। आपने बी० ए० में भी पढ़ना शुरू किया और तीसरे वर्ष की क्लास के उल्लंघन करके आप चौथे वर्ष की क्लास में पहुंचे। आपका यह गाढ़ संकल्प था कि कुछ महीने इस क्लास में भी रह कर बी० ए० पास कर लें; परन्तु इसी बीच में आपका राज्य "कोर्ट आफ़ वार्ड्स" के प्रबन्ध से छूट गया। इस लिये, विवश होकर, आपको कालेज छोड़कर, राज्य प्रबन्ध देखने के लिये, घर आना पड़ा।

जिस समय रामपालसिंह जी को राजत्व प्राप्त हुआ उस समय आपकी राजधानी में राजत्वसूचक वस्तुओं का संग्रह बहुत कम था। इस लिए राज्याधिकार मिलने पर आपने उन सब वस्तुओं का संग्रह आरम्भ किया और थोड़े ही दिनों में श्रीमान् ने सारी राजकोय वस्तुओं से अपनी राजधानी को अलंकृत कर लिया। प्राचीन राजमन्दिर भी वर्तमान समय और प्रथा के अनुसार न होने के कारण उसका भी आपने उद्धार करना आवश्यक समझा। शीघ्र ही सब सामग्री प्रस्तुत हो जाने पर उसका भी काम आरम्भ हुआ। एक नया प्रासाद बनने लगा। इसका बहुत सा भाग समाप्ति को पहुंच गया है; परन्तु अभी तक काम जारी है। आशा है, शीघ्र ही उसकी समाप्ति पूरे तौर पर हो जायगी। बन जाने पर आपका यह प्रासाद बहुत ही दर्शनीय होगा।

राजा रामपालसिंह जी ने बड़ी योग्यता से राज्य का काम काज देखना प्रारम्भ किया। थोड़े ही दिनों में आपके प्रजापालन आदि की कीर्ति-कौमुदी दूर दूर तक पहुंच गई। रियासत के प्रबन्ध और राज-धर्म्म के निर्वाह में आपने—

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः॥
तस्य सम्वृतमंत्रस्य गूढ़ाकारेङ्गितस्य च।
फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव॥

इत्यादि दिलीप के विषय में रघुवंशोक्त कालिदास की उक्तियों को उदाहरणवत् माना। और तदनुकूल ही आपने, आज तक, यथासम्भव अपना व्यवहार और आचरण रक्खा है।

राज्य तो आप को प्राप्त हुआ; परन्तु तदानुषंगी दोषों को आपने दूर ही से परित्याग किया—

न मृगयाभिरतिर्न दुरोदरं न च शशिप्रतिमाभरणं मधु।
तमुदयाय न वा नवयौवना प्रियतमा यतमानमपाहरत्॥

न आपने मृगया ही में अत्यन्त आसक्ति की; न मधु ही में; न खेलही कूद में; और न नवयौवना प्रियतमा ही में। प्रजापालन, राजधर्म्मानुकूल आचरण और विद्या-व्यासङ्ग ही को आपने अपना सर्वस्व माना। कालेज छोड़ते ही आपने सरस्वती की पूजा का विसर्जन नहीं किया। आप उसकी आराधना बड़े प्रेम से करतेही रहे और अब भी करते हैं; जिसका फल यह हुआ कि अङ्गरेज़ी और फ़ारसी, इन दोनों भाषाओं में, आपकी व्युत्पत्ति बढ़ती हो गई; और संस्कृत में भी आपको अभ्यास हो गया। जब आपकी ख्याति गवर्नमेण्ट के कान तक पहुंची तब उसने भी आपको दूसरे श्रेणी का आनररी मैजिस्ट्रेट नियत करके आपका उचित आदर किया,—यहां तक कि उसने, आनररी मैजिस्ट्रेटी के साथ, आपको आनररी मुन्सफ़ी भी दे दी।

राजा रामपालसिंहजी ने अपनी प्रजा के हित और आराम के लिए देहात में बैंक खोल दिये हैं। वहां से लोगों को बहुत कम सूद पर रुपया मिलता है। इससे प्रजा को बहुत सुबिधा हो गई है; वे लोग महाजनों से ठगाये जाने से बचते हैं और कृषि इत्यादि का काम अच्छी तरह से करके सब लाभ उठाते हैं। इसके लिए वे श्रीमान् को अन्तःकरण से धन्यवाद देते हैं। राजा साहब ने देहाती बैंकों के विषय में एक लेख भी अङ्गरेज़ी में, कुछ दिन हुए, लिखा था। खेती के महकमे के डाइरेक्टर मोरलैण्ड साहब ने इस लेख की बहुत प्रशंसा की है।

श्रीमान् रामपालसिंहजी अपने राज्य ही का सुप्रबन्ध करके चुप नहीं रहते। स्वदेश के हित के

लिए आप और भी अनेक उपयोगी विषयों में तन, मन, धन से सहायता करते हैं। आपने काशी के सेंट्रल हिन्दू कालेज की सहायता की है; प्रयाग के मैकडानल हिन्दू बोर्डिङ्ग हौस की सहायता की है; और क्षत्रिय-महासभा की भी आपने बहुत कुछ सहायता की है। क्षत्रिय-महा-सभा का तो आपको एक स्तम्भ ही कहना चाहिए।

राजा रामपालसिंहजी समुद्र-यात्रा, विधवा-विवाह और स्त्री-शिक्षा के बहुत बड़े पक्षपाती हैं। और साथ ही आप बाल-विवाह और बहु-विवाह के नितान्त विरोधी क्या, नितान्त द्रोही, हैं।

राजा साहब को हिन्दी से भी प्रगाढ़ स्नेह है। आप हिन्दी का आदर ही नहीं करते; किन्तु उस के समाचारपत्र और ग्रन्थों को पढ़ते भी हैं। आपके दफ़्र के सब काग़ज़ात हिन्दी ही में रक्खे जाते हैं और अरज़ियां इत्यादि भी प्रायः हिन्दी ही में दी जाती हैं।

राजा रामपालसिंहजी अत्यन्त नीतिपरायण, सत्यशील और उदारचेता हैं। सच कहने से आप कभी नहीं डरते; और देश के हित के लिए हाकिमों के प्रसन्न अथवा अप्रसन्न होने की शङ्का न करके, आपको जो कुछ उचित जान पड़ता है, वही करते और कहते हैं। सर अण्टोनी मेकडानल के शासन-काल में, जब कौंसिल में कोर्ट आफ़ वार्ड्स् का बिल पेश था, तब राजा साहब ने निर्भय होकर अपनी सम्मति पायनियर में प्रकाशित की थी और बिल की कई एक बातों का बड़ी ही योग्यता से खण्डन किया था। इस चातुर्य्य और इस योग्यता से बिल का प्रतिवाद किसी दूसरे भूमिस्वामी से नहीं किया गया; यद्यपि कई एक व्यक्ति कौंसिल के मेम्बर भी थे। लाट साहब श्रीमान् के लेख से बहुत प्रसन्न हुए थे। तभीसे वे श्रीमान् की विशेष प्रतिष्ठा भी करने लगे थे। जिस समय आबपाशी-कमीशन की बैठक लखनऊ में थी, उस समय आपने उसके सम्मुख जो साक्षी दी थी वह सुनकर सुननेवाले आनन्द से पुलकित हो उठे थे। आपसे और माननीय डी० टी० राबर्ट्स् साहब से [...] विषय में कुछ विवाद भी हुआ था। आपकी सा[...] में साद्यन्त देशहित और युक्तिवाद भरा हुआ था।

आपकी नीति कुछ कुछ अकबर की ऐसी है। आप मुसल्मान, बौद्ध, जैन, ईसाई और पार[...] इत्यादि धर्म्मों के अनुयायियों का समान आ[...] करते हैं। किसीसे आप द्वेष-भाव नहीं रखते। साफ़ तौर पर अभी तक किसीको यही नहीं प्रत[...] हुआ कि आपका मत कौन सा है। हां, यह अव[...] विदित होता है, कि आपका झुकाव समाज[...] संशोधन की ओर अधिक है। आप बहुत दिनों से थियासफ़िकल सोसाइटी के सभासद हैं औ[...] "फ्री-मेसन" भी हैं। आपका विचार इङ्गलै[...] जाने का भी है। भारतवर्ष में तो आप बहु[...] देशाटन करने जाया करते हैं।

राज्य के काम काज और पढ़ने लिखने से [...] आपको अवकाश मिलता है तब आप टेनिस खे[...] हैं; व्यायाम करते हैं; दूर दूर तक पैदल टह[...] निकल जाते हैं; और आखेट भी करते हैं। प[...] हमारी प्रार्थना है कि आप "अहिंसा परमोधर्म[...]" के सिद्धान्त का अवलम्बन करके मृगया में जी[...] हिंसा न करें। आपको पशु-पक्षियों की भी वै[...] ही रक्षा करनी चाहिए जैसी कि आप अपनी प्र[...] की करते हैं। यद्यपि राजाओं को परम्परा से आखे[...] की रुचि होती चली आई है और लाभ भी [...] बतलाये जाते हैं; तथापि दिग्विजयी अशोक [...] कोई ऐसा वैसा राजा था जिसने हिंसा न कर[...] को मनाई भरतखण्ड के सब भागों में ऊंचे ऊं[...] शिलाओं पर खोदवा दी थी।

दिल्ली में, जब श्रीमान् सातवें यडवर्ड [...] तिलकोत्सव का उत्सव और दरबार हुआ था, [...] राजा रामपालसिंह बड़े आदर से निमन्त्रित [...] गये थे। वहां पर आपका समुचित सम्मान भी हु[...] था। आपके अनेक प्रशंसनीय कार्य्यों से प्र[...] होकर राजराजेश्वर के जन्मदिन के उत्सव में, [...] वर्ष, गवर्नमेण्ट ने आपको सी० आई० ई० की उप[...]

दे कर आपकी प्रतिष्ठा को और भी बढ़ा दिया है। आप इलाहाबाद विश्वविद्यालय के 'फ़ेलो' भी हैं।

ऐसे सुयोग्य, चतुर, विद्वान, नीतिनिपुण और उदाराशय राजा की हम अन्तःकरण से दैनन्दिन अभिवृद्धि चाहते हैं और आशा रखते हैं कि अन्यान्य तअल्लुक़ेदार और भूपति भी आपके सद्गुणों का अनुकरण करने की चेष्टा करेंगे।

पृथ्वीपालसिंह।

सम्पादक।

मेरी घरवाली जब जीवित थी तब ललिता के लिए मुझे कुछ चिन्ता न थी। तब मैं ललिता की अपेक्षा ललिता की माता ही की धुन में अधिक लगा रहता था।

तब ललिता के खेल और उसकी मीठी मीठी मुसक्यान को देखकर, उसकी तोतली बातों को सुनकर, और उसके प्यार ही को सब कुछ समझकर, मुझे सन्तोष हो जाता था। जब तक अच्छा लगता मैं उसे लेकर खेलाया करता; रोते ही उसे उसकी मा की गोद में डाल कर अपना पिण्ड छुड़ा लेता। आगे उसके पालने पोसने का बड़ा भारी झंझट उठाना पड़ेगा सो बात कभी मेरे मन में नहीं आई थी।

निदान, मेरी स्त्री असमय में मर गई। और वह कन्या अपनी माता की गोद से छूट कर मेरी गोद में आ गिरी—मैंने उसे उठाकर अपने कलेजे से लगा लिया।

परन्तु, माता से बिछुड़ी कन्या को दुगने स्नेह से पालना मेरा धर्म्म है, इस बात को मैंने अधिक सोचा था; या पत्नीहीन पिता की परम यत्न से रक्षा करनी चाहिये इसका ललिता ने अधिक अनुभव किया था,—यह मेरी समझ में ठीक ठीक नहीं आया। क्योंकि, छ वर्ष की ही होते न होते वह गृहस्थी के काम काज में प्रवीण होने लग गई। साफ़ जान पड़ने लगा कि नन्ही सी कन्या अपने पिता की एक मात्र आधार बनने की चेष्टा कर रही है।

मैंने, मनही मन हँसकर, उसके हाथों में आत्म-समर्पण कर दिया। मैं देखता था कि मैं जितना ही निकम्मा और असहाय हो जाता, उसे उतना ही अच्छा लगता। मैं आप अपने कपड़े या टोपी उतार कर धरता तो वह ऐसा मुंह बना लेती मानों मैं उसके अधिकार में ज़बरदस्ती हाथ डाल रहा हूं। बाप के बराबर इतना बड़ा खिलौना पहले उसे कभी नहीं मिला था। इसीलिये बाबा को [illegible] खाकर, पिलाकर, कपड़े पहनाकर, बिछौने पर सुलाकर, दिनभर वह आनन्द में मग्न रहती थी। सिर्फ़ शिक्षा-वली और सुताप्रबोध पढ़ाते समय ही मेरे पितृत्व को वह सचेत कर देती थी।

पर, कभी कभी मेरे मन में यह चिन्ता आ जाती थी कि कन्या का सुपात्र से विवाह करने के लिए धन का प्रयोजन होगा—मेरे पास इतना रुपया कहां? मैं उसे भरसक पढ़ाता तो था, परन्तु सोचता कि यदि वह किसी निरे मूर्ख के हाथ पड़ जाय तो उसकी क्या दशा होगी?

धनार्जन में मैंने ध्यान लगाया। सरकारी दफ़्तर में नौकरी करने की अवस्था तो अब न रही थी। और, दफ़्तरों में घुसने की योग्यता भी नहीं थी। इससे बहुत सोच विचार कर मैं ग्रन्थ रचने लगा।

बांस की नली में छेद करने से उसमें न तेल रक्खा जा सकता है, न पानी ठहर सकता है। धारणा-शक्ति उसमें बिलकुल नहीं रहती; उससे संसार का कोई काम नहीं चल सकता; परन्तु फूंकने से बेदाम की बांसुरी ख़ूब बजती है। मैं अच्छी तरह जानता था कि जिस हतभाग्य की बुद्धि संसार के किसी काम में नहीं काम देती, वह मनुष्य पुस्तक निश्चय ही अच्छी लिख लेगा। इसी साहस पर मैंने एक प्रहसन लिख डाला। लोग उसे अच्छा कहने लगे और एक नाटकवाले ने उसका अभिनय भी कर दिखाया।

सहसा निर्मल यशोनीर का स्वाद पाकर मैं ऐसी आपत्ति में फँस गया कि प्रहसन मुझसे छुटता ही न था। दिन भर व्याकुल-चित्त और सोच से भरे हुए मुख से मैं प्रहसन लिखने लगा।

ललिता आकर, प्यार से, हँसती हुई पूछने लगी, "बाबा, नहाओगे नहीं ?"

मैं हुंकार देकर गर्ज उठा—"अभी जा, अभी दिक़ मत कर"।

बेचारी का मुँह, फूंक कर बुझाये गये दीपक के समान अँधेरे से छा गया। वह अनादर से फूलते हुए हृदय को लेकर कब वहां से चली गई, मुझे जान भी न पड़ा।

मैं दासी को हटा देता, नौकर को मारने दौड़ता, भिखारी ऊंचे स्वर से यदि भीख मांगता तो लाठी लेकर मैं उस पर जा टूटता। मेरी बैठक सड़क के किनारे ही पर थी। सड़क की ओर एक खिड़की खुली रहती थी। मेरे पुस्तक लिखते समय कोई भोलाभाला राही खिड़की में होकर यदि मुझसे राह पूछता तो मैं उसे जहन्नुम नाम की किसी मशहूर जगह में जाने को कहता। हाय, कोई यह नहीं समझता था कि मैं एक बड़ाही मज़ेदार प्रहसन लिख रहा हूं।

परन्तु मज़ा जितना और यश जितना मिलने लगा, उसके परिमाण से धन कुछ भी न मिला। उस समय धन की बात स्मरण भी नहीं थी। इधर ललिता के योग्य लड़के दूसरे दूसरे मनुष्यों की कन्याओं से ब्याहे जाने लगे,—इस पर मेरा ध्यान नहीं गया।

पेट में जब तक ज्वाला नहीं धधकती तब तक चैतन्य नहीं होता। परन्तु वैसा भी अवसर आ पहुंचा। ज़ाहिरगांव के तअल्लुक़ेदार ने ज़ाहिरमित्र नामक एक समाचारपत्र निकाल कर मुझे उसकी सम्पादकी पर बुला भेजा। मैंने यह नौकरी स्वीकार कर ली।

कुछ दिनों तक मैंने ऐसे प्रबल वेग से लिखा कि राह चलते लोग मुझे, मेरी ओर अँगुली उठा उठा कर, बताने लगे और मैं अपनेको जेठ की दुपहरी के सूर्य के समान दुर्निरीक्ष्य समझने लगा।

ज़ाहिरगांव के पास ही एक बाहरगांव है। दोनों गांवों के तअल्लुक़ेदारों में बड़ी भारी प्रतिस्पर्द्धा थी। पहले बात बात में लाठी चल जाया करती थी। अब दोनों ओर मजिस्ट्रेट साहब ने मुचलका लिखवा कर लाठी चलना बन्द कर दिया है। लाठी तो बन्द हो गई, परन्तु लाठी चलाने वाले लठियलों की जगह पर बेचारा मैं नियुक्त हुआ। सब लोग कहने लगे कि मैंने लट्ठबाज़ ख़ूनियों का नाम रख लिया।

मेरे लेखों की वाक्यवर्षा से बाहरगांववालों का सर ऊंचा करना कठिन हो गया। उनकी ज़ात पर, उनके कुल पर, उनके पूर्वपुरुषों के इतिहास पर, सब पर, मैंने स्याही लेप दी।

इस समय मैं बड़े सुख से था। ख़ूब मोटा तगड़ा हो गया था। मुँह पर से हँसी हटाये न हटती थी। बाहरगांववालों के पुरखाओं पर कटाक्ष करके मैं तरह बेतरह के मर्म्मान्तक वाक्यबाण छोड़ता और सारा ज़ाहिरगांव हँसते हँसते लोट पोट हो जाता।

अन्त में बाहरगांव से भी बाहर-मित्र नामक एक पत्र निकला। वह किसी बेढब बात को युक्ति या पेंच पांच से नहीं कहता था। वह ऐसे प्रचण्ड उत्साह से, ऐसी कोरी, महाविरेदार और ठेठ भाषा में गालियां देता कि छापे के अक्षर तक भी मानों कानों में उन गालियों को चिल्ला चिल्ला कर भरने लगते। इस लिए दोनों गांवों के लोग उसकी बातों को बहुत अच्छी तरह समझ लेते।

परन्तु, मैं, पुराने अभ्यास के अनुसार, ऐसे मज़े से, ऐसे कूट कौशल से, विपक्षियों पर आक्रमण करता था कि शत्रु-मित्र कोई भी यह न समझ सकते कि मेरी बातों का मर्म क्या है। इसका फल यह हुआ कि जीत होने पर भी लोग मेरी ही हार समझते। इससे, विवश होकर, सुरुचि के

विषय पर मैंने एक उपदेश-पूर्ण लेख लिखा। मैंने देखा, बड़ी भारी भूल मैंने कर डाली। क्योंकि जो वस्तु यथार्थ ही अच्छी है उसकी हँसी उड़ाना जैसा सहज है, वैसा उपहास्य विषय की हँसी उड़ाना सहज नहीं है। हनुवंशवाले* मनुवंशवालों की जैसे सहज में हँसी उड़ा सकते हैं, मनुवंशवाले हनुवंशवालों की हँसी करके उतनी सफलता नहीं पाते। इसी लिए सुरुचि को अँगूठा दिखाकर उन लोगों ने देश से निकाल दिया है।

मेरे प्रभु अब मेरे प्रति और उतना आदर नहीं दिखाते थे। सभा समाज में भी मेरा उतना सम्मान नहीं रहा। राह में चलते समय भी लोग मुझसे नहीं बोलते थे। यहां तक हुआ कि मुझे देखकर कोई कोई हँसने भी लगे।

इतने दिनों में मेरे प्रहसनों की बात भी लोग बिलकुल भूल गये। अकस्मात् मुझे जान पड़ा कि मैं एक दियासलाई के बराबर हूं। ज़रा देर सुलग कर एक दम अन्त तक मैं जल गया हूं। मन मेरा ऐसा निरुत्साह हो गया कि सिरको कूटडालने पर भी एक पंक्ति का लेख भी उससे न निकलता। मैंने सोचा कि जीने में अब कुछ सुख नहीं है।

ललिता उस समय मुझसे डरा करती थी। बिना बुलाये एकाएक मेरे पास आने का वह साहस नहीं करती थी। वह जान गई थी कि मज़ेदार बातें लिख सकनेवाले बाप से मट्टी का खिलौना अधिक अच्छा होता है।

एक दिन मैंने देखा कि बाहरगांव का बाहर-मित्र मेरे तअ़ल्लुकेदार को छोड़कर मेरे ही ऊपर सतुआ बांध कर उतारू हुआ है। उसने कितनी ही भद्दी भद्दी बातें छाप दी हैं। मेरे परिचित मित्र मेरे पास आये और सब कोई, एक एक कर के, मुझे वह पत्र हँसते हँसते सुना गये। कोई कोई कहने लगे कि इसका विषय चाहे जैसा हो, भाषा में अवश्य बड़ी बहादुरी दिखलाई गई है। अर्थात् भाषा से यह साफ़ जान पड़ता है कि बेतहाशा गालियां दी गई हैं। दिन भर में कोई बीस मनुष्यों के मुँह से वही बात मेरे सुनने में आई।

मेरे घर के सामने एक छोटा सा बगीचा था। सन्ध्या समय बड़े चिन्तित चित्त से मैं वहीं अकेला घूम रहा था। पक्षिगणों ने घोंसलों में लौट कर और अपने कलरवों को बन्द करके जब स्वच्छन्दता से सन्ध्या की शान्ति में आत्मसमर्पण कर दिया, तब मैंने अच्छी तरह से समझ लिया कि पक्षियों में रसिक लेखक नहीं हैं और उनमें रुचि के विषय में तर्क नहीं होता।

मन में केवल यही सोचने लगा कि उस आक्रमण का क्या उत्तर दिया जाय। भद्रता में विशेष कठिनाई यह है कि सब कहीं के लोग उसे नहीं समझते हैं। अभद्रता की भाषा उससे अधिक परिचित है। इसीसे मैं सोचने लगा कि उसी प्रकार का एक मुहतोड़ उत्तर लिखना चाहिए। मैं किसी तरह हार नहीं मानूंगा।

ठीक उसी समय, सन्ध्याके अँधेरे में, एक छोटे से कण्ठ का स्वर मैंने सुना और साथ ही किसी कोमल और गरम सी वस्तु ने मुझे छुआ। मेरा मन उद्वेग से इतना अनमना हो रहा था कि उस क्षण उस स्वर और उस स्पर्श को जान कर भी मैंने नहीं पहचाना।

परन्तु दूसरे ही क्षण वह मधुर स्वर मेरे कान में फिर सिञ्चित हुआ। वह सुधास्पर्श मेरे कर-तल में फिर सञ्जीवित हुआ। मेरी कन्या ने धीरे धीरे मेरे पास आकर मीठे हलके स्वर से कहा—"बाबा!" कोई उत्तर न पाकर मेरे दहिने हाथ को लेकर एक बार अपने कोमल ललाट पर फेर कर वह फिर धीरे धीरे घर को लौटने लगी। ललिता ने बहुत दिनों से मुझे नहीं बुलाया था। अपनी इच्छा से आकर उसने मेरा इतना आदर बहुत दिनों से नहीं किया था। इसीसे आज उस स्नेह-स्पर्श से मेरा हृदय एकाएक बहुत व्याकुल हो उठा; वह कण्ठ तक उमड़ आया।

* वानर।

थोड़ी देर बाद मैंने घर लौटकर देखा, ललिता बिछौने पर लेटी है। शरीर क्लिष्ट हो गया है। नेत्र कुछ मुँदे से हैं। दिन के अन्त में पेड़ पर से झरे हुए फूल के समान वह पड़ी है। सिर पर मैंने हाथ रखकर देखा तो उसे बहुत गरम पाया। गरम साँस निकल रही है; ललाट पर की नसें फूल रही हैं। मैंने समझ लिया कि वह सन्ताप की तपन से कातर होकर, प्यासे अन्तःकरण से, एकबार पिता का स्नेह, पिता का प्रेमाभिषिक्त आदर, पाने गई थी। पर पिता उस समय बाहर-मित्र के लिए एक ख़ूब कड़ा जवाब देने की कल्पना में मग्न थे।

मैं ललिता के पास जा बैठा। कुछ न बोलकर ज्वरसन्तप्त अपने दोनों करतलों से मेरा हाथ खींच कर, उस पर अपना कपोल रख, वह चुपचाप सो रही।

ज़ाहिरगाँव और बाहरगाँव के जितने पत्र थे उन सभों को लेकर मैंने जला दिया। मैंने कोई उत्तर नहीं लिखा। हार मान कर कभी किसीको इतना सुख नहीं मिला होगा।

जब कन्या की माता मर गई थी, तब मैंने उसे अपनी गोद में खींच लिया था। आज उसकी विमाता को भी आग में झोंककर, मैंने फिर उसे अपने हृदय से लगा लिया। मैं अपने देश को लौट आया। तब से, अवाच्य बकने में, 'बर्क' के बाबा की भी वक्तृत्व-शक्ति का मात करनेवाले पत्रों को मैं अपने पास तक नहीं फटकने देता।*

पार्वतीनन्दन।

मित्रपञ्चक।

[१]

आगे विनीत बनते निज कार्य से ही;
निन्दा परोक्ष करते डरते न वेही।
बातें महामधुर नित्य नई बनाते;
ऐसे अनेक अब मित्र यहां दिखाते॥

[२]

है एक मित्र वह भी कुछ लोभ भी हो,
उत्साहयुक्त करता परकार्य भी हो।
सच्ची न किन्तु जग में वह मित्रता है,
स्वार्थानुराग रहता मन में जहां है॥

[३]

है सर्वथा न जिनके कुछ लोभ जी में;
हैं स्वार्थ जो समझते परकार्य ही में।
जो मित्र के सुख सुखी, दुख में दुखी हैं;
सच्चे सुमित्र जगतीतल में वही हैं॥

[४]

गाते परोक्ष गुण; दोष सदा छिपाते;
देते शरीर तक; लोभ कभी न लाते।
ऐसे सुमित्र हम किन्तु कहीं न पाते;
आते न दृष्टि-पथ और सुने न जाते॥

[५]

प्रायः यही गति महीतल में दिखाती;
है स्वार्थ-सिद्धि तज और न नीति भाती।
है अल्प किन्तु इसको समझो सुशिक्षा;
हे मित्र! मित्र करिये न बिना परीक्षा॥

कन्हैयालाल पोद्दार

अन्योक्ति-सप्तक।

[१]

जे मदमाते मलिन्द अनन्द भरे
बिहरे गज-गण्ड-थलीन में।
जे रस राते अघाय अघाय पिये
मकरन्द थलीन थलीन में॥
जे द्विजश्याम सुधा कै सुधा रसलीन
रसालन की अवलीन में।

* रवीन्द्र बाबू की कहानी का भावानुवाद।

ते अब हाय बितावत द्यौस
गलीन गलीन करील-कलीन में ॥

[२]

ए हो नीरधर हम नेहधर चातक हैं
रटनि हमारी घटिहै न कहूँ फेरि फेरि।
भौंर कैसी दौर हम दौरिहैं न ठौर ठौर
द्विजश्याम सुमन-समूहनि कों घेरि घेरि ॥
चुनिकै अँगारन चकोर तौर लेहैं नाहिँ
मोरहूं को तौर लै न नाग खैहैं हेरि हेरि।
प्यास मरि जैहैं, द्वार और के न जैहैं, यांहीं
जनम बितैहैं, नाम रावरो ही टेरि टेरि ॥

[३]

ए हो भौंर बौर बौर ठौर ठौर दौरि दौरि
तौर तौर यदपि अथोर रस लीन्यो है।
द्विजश्याम सेवती कदम्बन कुसुम्भ गुम्फ
कीन्हे ते प्रसंग अंग अंग रंग भीन्यो है ॥
पंकज कली की अवली की चाह नीकी करि
कुन्द मालती की मधुराई मन दीन्यो है।
पर सुधासंगी ह्वै, न छोड़िया लवङ्गीलता,
प्रीति कै अभङ्गी जाहि अंगीकार कीन्यो है ॥

[४]

ए री लवङ्गलता सुन री द्विज
श्याम न चूक समै यह आयो।
रङ्क ज्यों पारस त्योंहीं अरी
अपने बड़े भागन ते इन्हैं पायो ॥
लीजिये आदर सों झुकि कै
अरु कीजिये जो इनके मन भायो।
येई मलिन्द मरन्द सो तुन्द
जिन्है अरविन्दन शीश चढ़ायो ॥

[५]

नीरस डारन पै बसि कोकिल
तौ लगि द्योस बिताइबो कीजै।
तौ लगि काकन केरो कलाकल
आकुल कानन सों सहि लीजै ॥
कोऊ अबै निरधारनहार न
पारस काँच बिचार लहीजै।
जौ लगि आवै वसन्त न पारखी
तौ लगि तू द्विज श्याम सहीजै ॥

[६]

तेरे ते चाहनहार मलिन्द हैं
वृन्द के वृन्द सदा सुखदाई।
कौमुदिनी बक हेलन सो
करती हक नाहक तू मलिनाई ॥
ये नहिँ जानते जो गुन तेरो
तूही कह तेरो कहा घटि जाई।
हे द्विज श्याम ये फेरि अरी
पछिताइहैं पीछे गँवार कहाई ॥

[७]

जे मुकता मुकता-पटली-तट
लीन चुने द्विज श्याम यशोवत।
जे तिय संग सने सुख सो
तट देवतरङ्गिनी के रहे सोवत ॥
जे कलपद्रुम डारन बैठि
अपारन सैारभ को सुख जोवत।
सम्प्रति तेई मराल विहाल
सेवार के जाल परे दिन खोवत ॥

श्यामनाथ शर्म्मा।

सृष्टि-विचार।

परलोकवासी स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका में बड़ा नाम पैदा किया है। भक्तियोग, ज्ञानयोग, राज-योग आदि विषयों पर उनके व्याख्यान सुनकर अमेरिकावासी मुग्ध, चकित और स्तम्भित हुये हैं। स्वामीजी ही

के प्रताप से अमेरिकावाले भारतवर्ष के वेदान्त की महिमा भी कुछ कुछ जानने लगे हैं। स्वामीजी के मुख्य मुख्य व्याख्यान छप चुके हैं और, हिन्दी को छोड़कर, मराठी, गुजराती तथा बँगला आदि दूसरी भाषाओं में वे अनुवादित भी हो चुके हैं। इन व्याख्यानों के अनुवाद को प्रकाशित करने का सौभाग्य हिन्दी को अभी तक नहीं प्राप्त हुआ है। स्वामीजी के कई व्याख्यान अभी तक अप्रकाशित पड़े थे। वे अब "प्रबुद्ध-भारत" नामक अङ्गरेज़ी मासिकपत्र में निकलने लगे हैं। इनमें से एक व्याख्यान सृष्टि-विचार के विषय में है। इस व्याख्यान का भावार्थ ही हमारे इस लेख का आधार है। स्वामीजी के व्याख्यानों में यह एक विलक्षणता है कि गूढ़ से गूढ़ बातें भी समझ में आजाती हैं। महा कठिन विषयों को, उनका कुछ भी ज्ञान न रखनेवालों को भी, युक्ति से, समझाना स्वामीजी ही का काम था। देखिए, उन्होंने सृष्टि की रचना आदि का कैसा अच्छा विवेचन किया है।

जगत् दो प्रकार का है, बाहरी और भीतरी। इन दोनोंहीं प्रकार के जगतों से, हम, सच्चे सिद्धान्तों का पता, परीक्षाद्वारा, पाते हैं। परीक्षायें भी दो प्रकार की हैं, बाहरी और भीतरी। बाहरी परीक्षाओं से जो सच्चे सिद्धान्त निकलते हैं उन सिद्धान्तों के समुदाय को पदार्थ-विज्ञान विद्या कहते हैं। और भीतरी परीक्षाओं से जो सिद्धान्त निकलते हैं उनकी गिनती मनोविज्ञान और अध्यात्म विद्या में होती है। यदि कोई सिद्धान्त सब प्रकार सच्चा है तो उसके सच होने का प्रमाण बाहरी जगत् में भी मिलना चाहिए और भीतरी जगत् में भी। बाहरी विषयों का मेल भीतरी विषयों से मिल जाना चाहिए और भीतरी विषयों का मेल बाहरी विषयों से मिल जाना चाहिए। पदार्थ-विज्ञान के सच्चे सिद्धान्तों का प्रतिबिम्ब अन्तर्जगत्, अर्थात् भीतरी सृष्टि, किम्वा भीतरी जगत्, में दिखलाई देना चाहिए; और अन्तर्गत् के सच्चे सिद्धान्तों की प्रतिमा पदार्थ-विज्ञान, अर्थात् बाहरी विश्व, में दिखाई देनी चाहिए। तिस पर भी, प्र[illegible] समय, हम देखते हैं कि बाहरी और भीतरी—दो[illegible] प्रकार के—सिद्धान्त परस्पर नहीं मिलते। [illegible] में बहुधा परस्पर विरोध पाया जाता है। [illegible] के इतिहास में एक ऐसा समय था जब भीत[illegible] सिद्धान्त सबसे अधिक श्रेष्ठ माने जाते थे; [illegible] लिए वे बाहरी सिद्धान्तों को दबा कर स[illegible] प्रधान बन बैठे थे। अब एक ऐसा समय आया [illegible] कि बाहरी जगत् के ज्ञाता, अर्थात् पदार्थ विज्ञा[illegible] वादी, प्रबल हो उठे हैं; और उन्होंने मनोविज्ञा[illegible] और अध्यात्मविद्या के आचार्य्यों के सिद्ध कि[illegible] हुए अनेक सिद्धान्तों को असिद्ध ठहराने का य[illegible] किया है। जहां तक मेरी अल्प बुद्धि काम दे[illegible] है, मैं समझता हूं कि मनोविज्ञान के जितने वा[illegible] विक और सत्य सिद्धान्त हैं, वे सब, बाहरी ज[illegible] से सम्बन्ध रखनेवाले आजकल की पदार्थ-वि[illegible] विद्या के वास्तविक और सत्य सिद्धान्तों से ब[illegible] मिलते हैं।

ईश्वर ने प्रत्येक मनुष्य को यह शक्ति नहीं [illegible] कि प्रत्येक विषय में वह अपना सानी न रख[illegible] प्रत्येक विषय में वह अद्वितीय नहीं हो सक[illegible] और, न ईश्वर ने प्रत्येक जाति को ही इतनी श[illegible] और इतनी योग्यता दी है कि वह अकेली ही [illegible] प्रकार की विद्या और सब प्रकार के विज्ञान [illegible] प्रधानता प्राप्त कर सके। योरपवाले, इस सम[illegible] बाहरी जगत् से सम्बन्ध रखनेवाले विज्ञान में वि[illegible] पारदर्शी हैं; परन्तु उनके पूर्वज अन्तर्जगत् [illegible] सम्बन्ध रखनेवाली अध्यात्मविद्या में बहुत ही [illegible] थे। पूर्वी देशों में रहनेवालों की दशा इससे उ[illegible] थी। वे बाह्य जगत्, अर्थात् पदार्थविज्ञान [illegible] विशेष कुशल न थे; परन्तु अन्तर्जगत्, अ[illegible] आत्मा और मन से सम्बन्ध रखनेवाली विद्या, [illegible] वे विशेष कुशल, व्युत्पन्न और विज्ञ थे। इसीलि[illegible] पूर्वी देशों का पदार्थ-विज्ञान शास्त्र पश्चिमी दे[illegible] के पदार्थ-विज्ञान शास्त्र से नहीं मिलता। [illegible] इसीलिए, पश्चिमी देशों की अध्यात्मविद्या [illegible]

देशों की अध्यात्मविद्या से भी नहीं मिलती। परन्तु दोनों देशों के विज्ञानियों के सिद्धान्त ठीक हैं। ठीक इसलिए हैं कि सत्य ही का अवलम्बन करके वे स्थिर किये गये हैं। इसलिए, जैसा हम ऊपर कह आये हैं, सच्चे और वास्तविक सिद्धान्त, चाहे वे जिस विद्या से सम्बन्ध रखते हों, परस्पर विरोधी न होने चाहिएं। उन सबका मेल मिल जाना चाहिए। अन्तर्जगत् के सिद्धान्त बाह्य जगत् के सिद्धान्तों के प्रतिकूल न होने चाहिएं; और बाह्य जगत् के सिद्धान्त अन्तर्जगत् के प्रतिकूल न होने चाहिएं।

आज कल के पदार्थ-विज्ञानवादी और ज्योतिषियों ने सृष्टि के सम्बन्ध में जो कल्पनायें, जो मत, जो सिद्धान्त स्थिर किये हैं उनको हम लोग जानते हैं। हम सब लोग यह भी जानते हैं कि वे मत और वे सिद्धान्त योरप के वेदान्तियों के दिल को कैसा दुखाते हैं; विज्ञान-सम्बन्धी छोटे से छोटे आविष्कार भी, बम के गोले के समान, उनके घर पर कैसा गिरते हैं; और वे इन वैज्ञानिक परीक्षाओं और आविष्कारों को तुच्छ सिद्ध करने का हमेशा कैसा यत्न किया करते हैं। हम, आज, यहां पर, भरतखण्ड के आचार्य्यों की मनोविज्ञान विद्या के अनुसार यह दिखलाना चाहते हैं कि सृष्टि के सम्बन्ध में उनके विचार कैसे थे। उनको सुनकर आपको बड़ा आश्चर्य्य होगा। आप देखेंगे कि आज कल के नवीन से नवीन आविष्कारों के साथ, उन का मेल कैसी विलक्षणता से मिलता है। जहां कहीं, किसी बात की कमी पाई जायगी, वहां आप देखेंगे कि वह कमी आजकल के विज्ञान में है; आजकल के सिद्धान्तों में है; भारतवर्ष के प्राचीन सिद्धान्तों में नहीं।

हम लोग सब 'नेचर' शब्द को काम में लाते हैं। 'नेचर' का अर्थ आदि-शक्ति अथवा आदि-माया है। संस्कृत विद्या के प्राचीन विद्वानों ने इस 'नेचर' शब्द के भावार्थसूचक दो नाम रक्खे हैं। एक प्रकृति जो 'नेचर' शब्द का अनेक अंश में समानार्थक है। दूसरा अव्यक्त। जिसका भेद न हो सके, जो प्रत्यक्ष न देखा जा सके, उसे अव्यक्त कहते हैं। अव्यक्त ही से सब कुछ व्यक्त होता है—निकलता है। तत्व, परमाणु, पदार्थ, शक्ति, मन, मनोव्यापार और बुद्धि इत्यादि की उत्पत्ति उसीसे होती है। भारतवर्ष में अध्यात्म विद्या के जाननेवाले तत्वज्ञानी मुनियों ने, हज़ारों वर्ष हुए, यह कह दिया था कि मन भी एक भौतिक पदार्थ है। इस बात को सुनकर पश्चिमी विद्वान् चौंक पड़ते हैं। इस समय के पश्चिमी देहात्मवादी, अर्थात् देह ही को सब कुछ समझनेवाले, क्या करने का यत्न कर रहे हैं? वे इस बात को सिद्ध करने का यत्न कर रहे हैं कि जैसे देह प्रकृति से उत्पन्न हुई है वैसे ही मन भी प्रकृति से उत्पन्न हुआ है। मनोव्यापार, अर्थात् विचार, भी प्रकृति ही से सम्बन्ध रखते हैं। क्रम क्रम से हमको इसका भी ज्ञान हो जायगा कि बुद्धि भी प्रकृति ही से उत्पत्ति पाती है। प्राचीन योगियों ने प्रकृति अथवा अव्यक्त को तीन प्रकार की शक्तियों का समान-स्थल माना है। इन शक्तियों का नाम सत्व, रज और तम है। तम सबसे अधम शक्ति है; उससे सांसारिक वस्तुओं की ओर मन का आकर्षण होता है। तम से रज का स्थान कुछ ऊंचा है; उसके योग से मन सांसारिक वस्तुओं से हट जाता है। सत्व सबसे ऊंचा है; वह तम और रज दोनों को अपने वश में रखता है। अर्थात् मन को वह न तो संसार की ओर झुकाता ही है और न उससे हटाता ही है। इसलिए, खिँच जाना और हट आना, ये जो दो शक्तियां हैं, वे जब सत्व के बल से स्तम्भित हो जाती हैं तब जगत् में सब चल विचल बन्द हो जाती है; सृष्टि के क्रम में विच्छेद हो जाता है; कुछ भी उत्पन्न नहीं होता। जब तक सत्व का असर रज और तम पर बराबर रहता है तब तक सृष्टि नहीं होती; ज्यों ही उसके बल में अन्तर आया त्यों ही रज और तम में से एक दूसरे से अधिक सशक्त हो उठा; चाञ्चल्य आरम्भ हुआ;

और सृष्टि का क्रम फिर पहले का सा हो गया। कालचक्र के अनुसार यह दशा, समय समय पर, हुआ करती है। अर्थात् सत्व की तुल्य-बलता में कभी कभी बाधा आ जाती है। तुल्य-बलता में विघ्न पड़ते ही ये सब शक्तियां फिर एक दूसरे से मिल जाती हैं और उनके मेल से उत्पत्ति पाकर यह जगत्, किम्वा जगत् के पदार्थों का समुदाय, फिर प्रकट हो जाता है। इसके साथ ही यह भी है कि जितने पदार्थ हैं उन सबका झुकाव सत्व की तुल्य-बलता की ओर रहता है। क्योंकि उनकी स्वाभाविक अवस्था वही है। इसलिए एक न एक दिन वे फिर उस दशा को पहुँच जाते हैं और उनके वहां पहुँचते हो प्रलय हो जाती है; सारी सृष्टि ध्वंस हो जाती है। कुछ काल के अनन्तर, फिर, स्वाभाविक स्थिति में विघ्न पड़ता है; उत्पन्न होकर, फिर, सृष्टि धीरे धीरे तरङ्गवत् बाहर निकल आती है। जितनी हलचल है, जितने पदार्थ जगत् में हैं, सब तरङ्गों के रूप में हैं। उनकी उन्नति और अवनति हुआ ही करती है।

किसी किसी तत्ववेत्ता का यह मत है कि कुछ काल के लिए सारी सृष्टि ध्वंस हो जाती है। परन्तु कोई कोई कहते हैं कि सारी सृष्टि एक साथ ही ध्वंस नहीं होती; किन्तु एक एक लोक एक एक बार ध्वंस होते हैं। अर्थात् जिस समय हमारे इस सूर्य से सम्बन्ध रखनेवाला लोक विध्वंस होकर अपनी पहले की अव्यक्त स्थिति को पहुँच जायगा, उस समय, इसके समान और करोड़ों लोक अव्यक्त स्थिति से बाहर निकले रहेंगे। अर्थात् उनका पूरा विकास रहेगा। उनकी सृष्टि में ज़रा भी बाधा न आवैगी। यह दूसरा ही मत हमें पसन्द है। हम भी यही समझते हैं कि यह ध्वंस सारी सृष्टि का एक ही साथ नहीं होता। भिन्न भिन्न लोकों की भिन्न भिन्न अवस्था रहती है। परन्तु सृष्टि का नियम एक ही है। प्रकृति का समय समय पर विकास और लय हुआ करता है। जब प्रकृति अपनी पूर्वावस्था को पहुँच जाती है, अर्थात् जिस समय सत्व का तुल्य-बलत्व रहता है उस अवस्था का नाम प्रलय है। भारतवर्ष के ईश्वरवादी महात्माओं ने प्रकृति के इस विकास और लय को, यथाक्रम, ईश्वर का श्वास और उच्छ्वास माना है। अर्थात् अपने श्वास के साथ ईश्वर इस सृष्टि को बाहर प्रकट कर देता है; और उच्छ्वास के साथ उसे फिर अपनी कुक्षि में लीन कर लेता है। ध्वंस अथवा लीन होने पर इस सृष्टि का क्या होता है? वह परमाणुरूप में वहीं रहती है। वह अपने कारण में लीन हो जाती है। कारण और काल का बन्धन उसे लगा ही रहता है; उससे उसे छुटकारा नहीं मिलता। मान लीजिये कि यह सारी सृष्टि—जितने लोक हैं सब साथ ही—लय होने के लिए सिकुड़ने लगे, और सिकुड़ कर यहां तक छोटे हो गये, कि हम लोग एक कण अथवा परमाणु के समान हो गये तो हमको इस परिवर्तन का—इस लय का—कुछ भी ज्ञान न होगा; क्योंकि हम से सम्बन्ध रखनेवाले जितने पदार्थ हैं वे सब एक ही साथ सिकुड़कर छोटे हो जायँगे। जो कुछ है वह सब, इसी प्रकार, लय को प्राप्त हो जाता है और यथा समय फिर उत्पन्न होता है। कारण का नाश नहीं होता। कारण से फिर कार्य की उत्पत्ति होती है; और यह उत्पत्ति और लय सदा इसी भाँति हुआ करता है।

सृष्टि का सबसे अधिक आश्चर्यकारक अंश वह है जिसे हम लोग, इस समय, स्थूल पदार्थ कहते हैं। अध्यात्म विद्या के जाननेवाले प्राचीन पण्डित स्थूल पदार्थों को भूत कहते थे। भूत का भावार्थ है बाहरी तत्व। उनके मत में एक तत्व नित्य है; उसका नाश नहीं होता। दूसरे तत्व इसी एक से निकलते हैं। इस तत्व का नाम आकाश है। आजकल के विद्वान् जिसे ईथर कहते हैं उसके और आकाश के अर्थ में बहुत कुछ समता है; परन्तु दोनों का अर्थ बिलकुल ही एक नहीं है। इस आकाश तत्व के साथ कुछ और भी रहता है। उसे प्राण कहते हैं। प्राण के विषय में हम आ

विस्तारपूर्वक कहेंगे। यह आकाश और यह प्राण नित्य हैं। उनका नाश नहीं होता। वे मिलते हैं; फिर मिलते हैं; और फिर मिलते हैं; और सब तत्व—सब भूत—उन्हींसे बनते हैं। कल्प के अन्त में सारे तत्व घटकर परमाणुमय हो जाते हैं और इसी आकाश और इसी प्राण में, अर्थात् जहां से आये थे, लौट जाते हैं। ऋग्वेद सबसे पुराना ग्रन्थ है। उससे अधिक पुराना ग्रन्थ संसार में नहीं है। उसमें एक जगह सृष्टि का बहुत ही अच्छा वर्णन है। यह वर्णन कविता के समान हृदयग्राही और सुन्दर है। वहां लिखा है—"जिस समय किसी पदार्थ का अस्तित्व अथवा अनस्तित्व न था; जिस समय अन्धकार, अन्धकार ही के ऊपर लहरें ले रहा था; उस समय क्या था?" इस प्रश्न का वहीं उत्तर भी है कि—"वह, उस समय, निश्चल था"। यह प्राण उस समय था; परन्तु, उसमें किसी प्रकार की चल विचल न थी, उसका आन्दोलन बन्द हो गया था। उसमें तरङ्गों का उठना बन्द हो गया था। अनन्त समय बीत जाने पर जब कल्प का आरम्भ होता है, तब उसमें आन्दोलन उत्पन्न होता है; उसमें कम्प होता है। कम्प अथवा आन्दोलन उत्पन्न होने पर लहरें उठने लगती हैं और उनके द्वारा प्राण आकाश को, एक के पीछे एक, अनगिनत धक्के देता है। इन धक्कों से सूक्ष्म परमाणु घने हो जाते हैं; और जैसे जैसे उनमें घनता आती जाती है वैसे ही वैसे भिन्न भिन्न तत्वों की उत्पत्ति होती जाती है। हम लोग इन बातों का भाषान्तर प्रायः बड़ी ही विलक्षणता से किया हुआ, कहीं कहीं, देखते हैं। भाषान्तर करनेवाले न तो तत्ववेत्ताओं ही की सहायता की परवा करें और न भाष्यकारों ही के किये अर्थ की तरफ़ देखें। और वे स्वयं इतनी बुद्धि नहीं रखते कि इन बातों को अच्छी तरह समझ सकें। मूढ़ और मन्द-मति लोग संस्कृत के दो चार शब्द सीखते हैं और ग्रन्थों का अनुवाद करने लगते हैं। वे तत्वों का अनुवाद अग्नि, जल, वायु आदि करते चले जाते हैं। यदि वे भाष्यकारों की टीकायें पढ़ें और उनके समझने का यत्न करें तो उन्हें मालूम हो जाय कि वहां अग्नि और वायु आदि से अभिप्राय नहीं है।

प्राण जब बल-पूर्वक धक्के देने लगता है तब आकाश से तरङ्गें उठने लगती हैं। ये तरङ्गें ही वायु है। इसी प्रकार वायु में भी आन्दोलन होने लगता है और क्रम क्रम से वेग बढ़ते जाने के कारण परमाणु एक दूसरे से रगड़ खाते हैं। इस घर्षण से आग उत्पन्न हो जाती है। आग से परमाणु पिघल उठते हैं और उन द्रवीभूत परमाणुओं से पानी की उत्पत्ति होती है। पानी जम कर सान्द्रता—घनता—पैदा करता है। इसी घनता से नाना प्रकार के द्रव्य—पदार्थ—उत्पन्न होते हैं। आकाश में आन्दोलन उत्पन्न होने से वायु की सृष्टि हुई। वायु से अग्नि हुई। अग्नि से जल हुआ। जल से द्रव्य हुए। यह उत्पत्ति का क्रम है। जिस प्रकार यह सृष्टि उत्पन्न होती है, ठीक उसी प्रकार वह नष्ट भी हो जाती है। जितने द्रव्य हैं सब, किसी समय, पिघल कर आग हो जायँगे। आग में आन्दोलन अर्थात् तरङ्ग उत्पन्न होंगे। ये तरङ्ग जब बन्द हो जायँगे तब इस कल्प का लय हो जायगा। यथा समय यह, फिर, उत्पन्न होगा और फिर आकाश में लीन हो जायगा। इसी प्रकार उत्पत्ति और लय होता रहता है। आजकल के ज्योतिषी कह रहे हैं कि इस सूर्य और इस पृथ्वी की अवस्था में ऐसा ही अन्तर हो रहा है। यह हमारी सान्द्र और सघन पृथ्वी, किसी दिन, गल कर द्रव हो जायगी और द्रव होकर, यथा क्रम, अपने पूर्वस्थान, आकाश में, पहुँच जायगी। आकाश की सहायता के बिना प्राण कुछ नहीं कर सकते। प्राणों का काम केवल आन्दोलन उत्पन्न करना है। वे केवल चल विचल उत्पन्न करनेवाले हैं। जितनी शक्तियाँ हैं, जितने विचार हैं, जितनी चञ्चलता है, सब प्राणों की करतूत है। और जितने शरीरवान् पदार्थ हैं, जितने जड़ द्रव्य

हैं, सब आकाश के रूपान्तर हैं। प्राण अकेले नहीं रह सकते; और एक मध्यस्थ के बिना कुछ कर भी नहीं सकते हैं। प्राण, अपनी प्रत्येक अवस्था में, जब वे विशुद्ध प्राण हैं और किसीसे कुछ सरोकार नहीं रखते हैं, तब स्वयं आकाश ही के भीतर रहते हैं। जब वे गुरुत्वाकर्षण और केन्द्र-त्यागी आदि प्राकृतिक शक्तियों के रूप में देखे जाते हैं तब उनके साथ स्थूल द्रव्य अर्थात् शरीर-वान् पदार्थ अवश्य रहते हैं। आपने शक्ति को साकार वस्तु के बिना कभी न पाया होगा; और न साकार वस्तु ही को शक्ति के बिना पाया होगा। इन दोनों का अन्योन्याश्रय है। जिन्हें हम शक्ति और साकार वस्तु कहते हैं वे इन्हीं सूक्ष्म प्राण और आकाश के इन्द्रिय-गोचर रूपान्तर हैं। प्राणों को आप अङ्गरेज़ी में जीवन कह सकते हैं—सजीव शक्ति कह सकते हैं। परन्तु मनुष्य ही के जीवन तक आप उनकी सीमा न कर दीजिए; और अङ्गरेज़ी शब्द 'स्पिरिट' अर्थात् आत्मा से भी आप उन्हें अलग रखिए। आत्मा और प्राणों में अन्तर है।

सृष्टि आदि और अन्तहीन है। वह होती है और यथासमय आकाश में लीन हो जाया करती है। न उसका आदि है न उसका अन्त। वह सतत है।

इस विषय में एक बात बड़े मज़े की याद आई है। योरप के कोई कोई तत्ववेत्ता कहते हैं कि हम लोगों के होने ही से यह जगत् है; अर्थात् जगत् का अस्तित्व हमारे अस्तित्व के ऊपर अवलम्बित है। यदि हम न हों तो यह जगत् भी न रहै! यही बात, बहुधा, एक और ही प्रकार से कही जाती है। ये तत्ववेत्ता कहते हैं कि यदि जगत् में रहनेवाले सब मनुष्य मर जायँ; कोई सज्ञान और इन्द्रियविशिष्ट मनुष्य और दूसरे जीव न रहैं, तो सृष्टि का भी क्षय हो जाय! ऐसा कहना सिद्धान्त के सर्वथा विरुद्ध है। उसे असत्य सिद्ध करना बहुत ही सरल बात है। परीक्षाओं और प्रमाणों से इस मत की असारता सिद्ध क[illegible] दी गई है। योरप के तत्ववेत्ता सृष्टि के लय [illegible] सृष्टि की उत्पत्ति के नियमों को तो जानते [illegible] परन्तु तत्वविद्या को ठीक ठीक नहीं जानते; [illegible] के सूक्ष्म सिद्धान्तों को नहीं जानते। उसकी थोड़ी सी झलक भर उनको मिल गई है।

भारतवर्ष के पुराने तत्वदर्शी विद्वानों के वि[illegible] में हम पहले एक और ही बात का विचार कर[illegible] चाहते हैं। ये महात्मा कहते हैं कि जितने स्थू[illegible] पदार्थ हैं सब सूक्ष्म परमाणुओं से बने हैं। स्थू[illegible] रूप में जो कुछ साकार है, शरीरी है, देह-विशिष्ट है, सब परमाणुओं के मेल से उत्पन्न हुआ है। [illegible] परमाणुओं का नाम है तन्मात्रा। हम एक फू[illegible] सूँघ रहे हैं। हमारी नाक से वह कुछ दूर पर है। उसके सुगन्ध का ज्ञान होने के लिए हमारी ना[illegible] से किसी पदार्थ का स्पर्श अवश्य होना चाहिए। फूल जहां था वहीं है। वह हमारी ओर चल[illegible] आता हुआ नहीं दिखाई देता। इसलिए बि[illegible] किसी वस्तु का नाक से स्पर्श हुए फूल की सुगन्धि का ज्ञान हमको नहीं हो सकता। और सुगन्ध [illegible] आ रही है। अतएव नाक को कुछ अवश्य स्प[illegible] करता है। जो वस्तु फूल से आती है और ना[illegible] को स्पर्श करती है वही तन्मात्रा है। वही फूल [illegible] सूक्ष्म परमाणु हैं। ये परमाणु इतने सूक्ष्म हैं [illegible] यदि लाखों वर्ष तक वे निकलते रहैं तो भी फू[illegible] का अत्यल्प अंश भी कम न हो। प्रकाश के लि[illegible] भी यही कहा जा सकता है; उष्णता के लिए [illegible] यही कहा जा सकता है; और संसार की स[illegible] वस्तुओं के लिए यही कहा जा सकता है। [illegible] तन्मात्राओं के भी विभाग किये जा सकते हैं और उन विभागों के भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म वि[illegible] किये जा सकते हैं। भिन्न भिन्न आचार्यों के [illegible] भिन्न मत हैं। तात्पर्य्य सबका एक ही है। [illegible] लिए इस विषय में हम और अधिक कहने [illegible] आवश्यकता नहीं समझते। हमारे लिए इतना [illegible] जानना काफ़ी है कि जितने स्थूल पदार्थ हैं [illegible]

बहुत ही छोटी छोटी वस्तुओं के योग से बने हैं। पहले स्थूल पदार्थ हैं; उनको हम स्पर्श भी कर सकते हैं। फिर सूक्ष्म पदार्थ हैं; वे हमारी इन्द्रियों को स्पर्श करते हैं; नाक, कान, आँख आदि का उनसे संयोग होता है। आकाश-व्यापी "ईथर" की लहरें हमारी आँखों को स्पर्श करती हैं। वे हमको देख नहीं पड़ती हैं; परन्तु हम यह जानते हैं कि आँखों को उनका स्पर्श होना ही चाहिए। बिना उनके स्पर्श के हम प्रकाश अथवा और किसी वस्तु को देख ही नहीं सकते। क्योंकि, प्रकाश की उत्पत्ति 'ईथर" की लहरों ही से है। इन तन्मात्राओं का क्या कारण है? अध्यात्म विद्या के जानने वाले हमारे प्राचीन आचार्य्य इसका बड़ा ही अद्भुत और अचम्भे में डालनेवाला उत्तर देते हैं। वे इन तन्मात्राओं का कारण आत्म-ज्ञान अथवा अन्तर्बोध बतलाते हैं। वही इन सूक्ष्म परमाणुओं का कारण है; वही हमारी इन्द्रियों का भी कारण है।

अच्छा, ये इन्द्रियां क्या वस्तु हैं? देखिए, ये हमारी आँखें हैं; परन्तु देखने का काम आँखों का नहीं है। मस्तिष्क में जो ज्ञानागार है उसे निकाल डालिए; आँखें जहां की तहां बनी रहेंगी; आँखों के परदे सब यथास्थित रहेंगे; पदार्थों का चित्र भी उन पर खिँचता रहेगा; परन्तु, तिस पर भी, आँखों को कुछ न देख पड़ेगा। इसलिए देखने की इन्द्रिय नेत्र नहीं; नेत्रों का होना गौण है; नेत्र, देखने में, सहायता ही भर देते हैं। देखने की इन्द्रिय ज्ञानतन्तु हैं। ज्ञानतन्तुओं का अधिष्ठान मस्तिष्क में है। आँखों के समान नाक भी एक यन्त्र है। सुगन्ध प्राप्त कराने में वह सहायता भर देती है; पर सुगन्ध ज्ञान की असल इन्द्रिय भी ज्ञानतन्तु हैं। नाक, कान, आदि अवयव बाहर से देखने भर के लिए हैं। भिन्न भिन्न प्रकार के ज्ञानों का अनुभव करानेवाले तन्तु जुदे ही हैं। वही ज्ञानवाहक तन्तु सच्ची इन्द्रियां हैं।

आँख के लिए एक, कान के लिए दूसरी, नाक के लिए तीसरी—ऐसे ही और भी—इन्द्रिय होने की क्या आवश्यकता है? एक ही से सबका काम क्यों नहीं चलता? क्योंकि, ऐसा होना सम्भव ही नहीं। यदि एक ही से सबका काम निकल जाता तो, जब मन का योग एक वस्तु से होता, तब सारी इन्द्रियां अपना अपना काम करती रहतीं; अर्थात् सब इन्द्रियों को एक वस्तु का साथ ही ज्ञान होता। इसे हम ज़रा अधिक स्पष्ट करके कहते हैं। देखिए, हम आपसे बात चीत कर रहे हैं और आप सुन रहे हैं; इस समय, आपको यह ख़बर नहीं है कि यहां पर और क्या हो रहा है। क्योंकि आपके मन ने सुनने की इन्द्रिय के साथ संयोग कर लिया है और देखने की इन्द्रिय से अपना सम्बन्ध तोड़ दिया है। यदि एक ही इन्द्रिय होती तो मन साथ ही सुनता भी और देखता भी; वह साथ ही सुनता भी, देखता भी और सूँघता भी; ये सब बातें साथ ही न करना उसके लिए असम्भव हो जाता। यही कारण है जो प्रत्येक इन्द्रिय के लिए पृथक् पृथक् अवयव बनाये गये हैं। प्राणियों की गुण-धर्म्म-सम्बन्धिनी अर्वाचीन विद्या से यह बात सिद्ध है। इस बात को हम ज़रूर मानते हैं कि हम साथ ही सुन भी सकते हैं, और देख भी सकते हैं। परन्तु इसका कारण यह है, कि जब ऐसा होता है, तब मन का कुछ संयोग देखने की इन्द्रिय से रहता है और कुछ सुनने की इन्द्रिय से। उसका योग बँट जाता है। इसलिए ऐसा होता है।

ये इन्द्रियां हैं क्या पदार्थ? आँख, कान, नाक आदि अवयव स्थूल (साकार—भौतिक) पदार्थों से बने हैं। उनकी इन्द्रियां भी भौतिक अर्थात् स्थूल पदार्थों से बनी हैं। ज्ञानतन्तुओं के रूप में मस्तिष्क उनकी निवास-भूमि है। भिन्न भिन्न प्रकार की भौतिक शक्तियों में प्राणों को परिणत करने के लिए जैसे यह शरीर भौतिक पदार्थों से बना है, वैसे ही ज्ञानात्मक सूक्ष्म शक्तियों में प्राणों को परिणत करने के लिए ये इन्द्रियां भी आकाश, वायु, तेज आदि तत्वों से बनी हैं। मन को मिला

कर इन सब इन्द्रियों का नाम है लिङ्ग शरीर अथवा सूक्ष्म शरीर। लिङ्ग शरीर आकारवान् है; क्योंकि जो कुछ भौतिक पदार्थों से बनता है उसका आकार अवश्य होता है।

इन्द्रियों के आगे, अर्थात् उनके अनन्तर, मन है। चित्त की आन्दोलिनी, किम्वा अनस्थिर, किम्वा तरङ्गवती वृत्ति का नाम मन है। मन, चित्त की चञ्चला वृत्ति है। यदि आप तालाब में पत्थर फेंकेंगे तो, फेंकने के साथ ही, पानी में पहले आन्दोलन उत्पन्न होगा और फिर प्रतिबन्ध। ज़रा देर पानी कम्पित होगा और कम्पित होकर पत्थर की प्रतिबन्धकता करने लगैगा; पत्थर को रोकने लगैगा। चित्त पर जब किसी वस्तु का चिन्ह होने लगता है अर्थात् उसपर उसका ठप्पा उठने लगता है, तब उसमें स्पन्दन होता है, अर्थात् वह कुछ कँप सा उठता है—वह कुछ तरङ्गित सा हो जाता है। इसी तरङ्गित, इसी कम्पित, इसी स्पन्दित, इसी आन्दोलित अवस्था को मन कहते हैं। विविध भाँति के ज्ञान की प्रतिमाओं को, मन, और भीतर ले जाकर, बुद्धि को देता है। बुद्धि के आगे अहङ्कार है। अहङ्कार का अर्थ है आत्म-सज्ञानता, किम्वा आत्म-वृत्ति। 'अहं,' 'मैं,' 'हम' शब्द उसीके सूचक हैं। अहङ्कार के आगे महत् है। महत् अर्थात् सूक्ष्म बुद्धि (विज्ञता—सदसद्विचार-शक्ति) प्रकृति के अस्तित्व का सबसे अधिक श्रेष्ठ रूप है। इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहङ्कार और महत्, इनमें से प्रत्येक, अपने से पहलेवाले का परिणाम है। तालाब के उदाहरण में, जितने आघात होते हैं, सब बाहर से आते हैं। परन्तु मनोरूपी तालाब में बाहर से भी धक्के लग सकते हैं और भीतर से भी। महत् के आगे पुरुष अर्थात् आत्मा है। वह विशुद्ध है। वह सब प्रकार पूर्ण है। वही द्रष्टा है; वह अकेला ही सब कुछ देखता है। उसीके लिए ये सब इतने झंझट हैं।

आत्मवान् मनुष्य खड़े खड़े संसार के सब व्यापार देखता है। स्वभाव से वह मलिन नहीं है; स्वभाव से वह अविशुद्ध नहीं है। मलिनता का केवल आरोप उसपर है। अध्यास, आभास अथवा प्रतिबिम्ब को देखकर उसपर अविशुद्धता का आरोप किया जाता है। स्फटिक के पास लाल पुष्प रखने से जैसे स्फटिक का भी रङ्ग लाल दिखाई देने लगता है, वैसे ही मलिन वस्तुओं के आभास से आत्मा भी मलिनता-युक्त भासित होता है। वास्तव में न स्फटिक ही लाल है और न आत्मा ही मलिन है। मान लीजिए कि आत्मायें अनेक हैं; और प्रत्येक आत्मा पूर्ण और विशुद्ध है। पर नाना प्रकार के स्थूल और सूक्ष्म भौतिक पदार्थ अपने अपने आभास से, अपने अपने प्रतिबिम्ब से उसे रङ्ग विरङ्गा बना रहे हैं। यह क्यों ऐसा होता है? प्रकृति क्यों ऐसे खेल खेलती है? आत्मा की उन्नति ही के लिए प्रकृति यह सब करती है। यह सारी सृष्टि आत्मा की भलाई ही के लिए है। इसलिए है, कि जिसमें आत्मा इन सब झगड़ों से मुक्त हो जाय; जिसमें फिर कभी उसपर कोई रङ्ग न चढ़े। यह संसार एक प्रचण्ड पुस्तक है। मनुष्य के सामने फैलाकर इसलिए रक्खी गई है, जिसमें मनुष्य उसे पढ़े, और अपनी मायाजनित मूर्खता से छुटकारा पाकर, अन्त में, सर्वज्ञ और सर्व-शक्तिमान् होकर, संसाररूपी पुस्तक को बन्द करके, उससे वह अलग हो जाय।

हम यहां पर आपसे एक बात कहना चाहते हैं। वह यह है कि अध्यात्मविद्या के जाननेवाले हमारे कोई कोई प्रसिद्ध आचार्य्य ईश्वर के अस्तित्व को उस प्रकार नहीं मानते जिस प्रकार आप मानते हैं। भारतवर्ष की अध्यात्मविद्या के जाननेवाले महात्माओं में कपिल पिता के तुल्य हैं। वे ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते। उनके मत में पौरुषेय अर्थात् व्यक्तिभूत ईश्वर की बिलकुल आवश्यकता नहीं है; अकेली प्रकृति ही सब कुछ कर सकती है। परन्तु वे एक विशेष प्रकार का ईश्वर मानते हैं। वे कहते हैं, कि हम सब [illegible] मुक्त होने के लिए, हज़ारों यत्न करते हैं। यदि [illegible]

मुक्त हो जायँ तो, एक निश्चित काल तक के लिए, हम प्रकृति में लीन हो सकते हैं। लीन रहने का समय बीत जाने पर हम फिर प्रकृति से बाहर निकल आ सकते हैं और उसके स्वामी हो सकते हैं; उसपर अपनी सत्ता चला सकते हैं। फिर वह हमारा कुछ नहीं कर सकती। इस अवस्था को प्राप्त होने पर हम सर्वज्ञ और सर्व-शक्तिमान् हो सकते हैं; और सर्वज्ञता तथा शक्तिमत्ता के अर्थ में ईश्वर कहलाये जा सकते हैं। हम भी, आप भी और एक महातुच्छ मनुष्य भी, इस प्रकार जुदे जुदे कल्पों में ईश्वर हो सकते हैं। कपिल जी कहते हैं कि ऐसा ईश्वर कुछ काल के लिए हो सकता है, अनन्त काल के लिए नहीं। सर्वज्ञ और सर्व-शक्तिमान् अविनाशी ईश्वर सदा के लिए नहीं हो सकता। ईश्वर यदि अविनाशी और नित्य माना जाय तो इस मानने में एक बड़ी भारी कठिनाई आ पड़ती है। वह यह कि, ऐसा ईश्वर या तो बद्ध होगा, या मुक्त। जो ईश्वर सब प्रकार के प्राकृतिक बन्धनों से मुक्त है वह सृष्टि की रचना के झंझट में कभी न पड़ैगा; क्योंकि उसके लिए सृष्टि-रचना की कोई अवश्यकता नहीं। और यदि वह सांसारिक बन्धनों से बद्ध है तो वह सृष्टि की रचना कर ही न सकैगा; वह स्वयं अशक्त होगा। इसलिए ऐसे सर्वज्ञ और ऐसे सर्व-शक्तिमान् ईश्वर का होना असम्भव है जो नित्य अर्थात् अविनाशी हो। अतएव, आचार्य कपिल का मत है, कि हमारे दार्शनिक और धार्म्मिक ग्रन्थों में जहां ईश्वर शब्द आया है वहां उन मानुषिक जीवात्माओं से मतलब है जो मुक्त होगये हैं। जितने मनुष्य-जातीय प्राणी हैं, सबका लय होकर, किसी समय, एक महान् मानवी प्राणी हो सकता है।

सांख्य के आचार्य कपिल सब आत्माओं की एकरूपता पर विश्वास नहीं करते। उनकी विवेचना अपूर्व है। भरतखण्ड के दार्शनिक महात्माओं में वे पिता के तुल्य माने जाते हैं। बौद्ध दर्शन, तथा और भी जो कुछ है सब उन्हीं के विचारों का परिणाम हैं। उनके सिद्धान्त को बौद्ध लोगों ने ग्रहण कर लिया है; इसी लिए वे कहते हैं कि केवल आत्मायें ही मुक्त होंगी।

सांख्य के अनुसार सब आत्मायें मुक्त हो सकती हैं और मुक्त होकर अपनी सर्वज्ञता और सर्व-शक्तिमत्ता को प्राप्त कर सकती हैं। इस बात का विचार करने से यह प्रश्न उठता है कि आत्माओं को यह बन्धन कब और कहां से मिला? सांख्यकार कहते हैं कि यह बन्धन अनादि है। यदि इसका आदि नहीं है तो अन्त भी न होना चाहिए। और यदि यह बन्धन अनादि और अनन्त है तो उससे छुटकारा भी कभी नहीं हो सकता। वे कहते हैं कि यह अनादि सम्बन्ध सतत नहीं है; बराबर लगातार नहीं है। प्रकृति अवश्य अनादि और अनन्त है; परन्तु आत्मा को उसी प्रकार अनादि अनन्त नहीं कह सकते। प्रकृति में एकत्व नहीं है; व्यक्तित्व नहीं है; अविभक्तता नहीं है। उसमें अनेकता का भाव विद्यमान है। प्रकृति की उपमा नदी से दी जा सकती है। नदी में सदैव नया पानी आया करता है और जितना पानी आता है उसके समूह का नाम नदी है। उसके पानी का परिवर्तन हुआ करता है; वही पानी उसमें हमेशा नहीं रहता। प्रकृति का भी यही हाल है। प्रकृति में जो कुछ है उसमें हेर फेर हुआ ही करता है; परन्तु आत्मा में कोई हेर फेर नहीं होता। इस लिए परिवर्तनशील प्रकृति के बन्धन से, अपरिवर्तनशील अर्थात् सदा एक रस रहनेवाला, आत्मा छूट सकता है।

इस विषय में सांख्यकार का एक सिद्धान्त बड़ा ही अनोखा है। वे कहते हैं कि यह अनन्त सृष्टि उसी नियम, उसी कल्पना, उसी अनुसन्धान के अनुसार रची गई है जिसके अनुसार मनुष्य अथवा एक छोटे से छोटे प्राणी की रचना होती है। जिस प्रकार मनुष्यों में मन है, उसी प्रकार सृष्टि में भी मन है। जब यह सृष्टि उत्पन्न होती है तब वही पदार्थ इसमें अवश्य होने चाहिए। वही पदार्थ अर्थात् पहले महत्, फिर अहङ्कार, फिर

इन्द्रिय, फिर सूक्ष्म पदार्थ, फिर स्थूल पदार्थ, फिर जगत्। सांख्य के अनुसार इस समग्र सृष्टि का एक शरीर है, एक पिण्ड है। उसमें हम पहले स्थूल पदार्थ देखते हैं, फिर सूक्ष्म; उनके आगे सर्वव्यापी चित्त; उसके आगे सर्व-साधारण अहन्ता अर्थात् अहङ्कार; उसके आगे सर्वात्मिका बुद्धि। यह सब प्रकृति के भीतर है; यह सब प्रकृति का प्रसार है; यह सब प्रकृति का प्रतिविम्ब है। इसमें से कुछ भी उसके बाहर नहीं। हमलोगों में से प्रत्येक मनुष्य इस अद्भुत प्रकृति का, इस अद्भुत सृष्टि का, एक अंश है। उत्पन्न होकर यह सृष्टि अनन्त भागों में बँट जाती है। इसी लिए मनुष्य, पशु, पक्षी, नदी, पर्वत आदि, स्थावर जङ्गम दोनों विभागों के, अनन्त रूप देखे जाते हैं। हमने अपना स्थूल शरीर अपने पूर्वजों से पाया है; इस लिए हम में जो सज्ञानता है वह हमारे पूर्वजों की सज्ञानता ही का अंश है। इस सज्ञानता के भाग विभाग होते ही जाते हैं। हमारी शारीरिक और मानसिक सम्पत्ति पैतृक सम्पत्ति है। हमारा शरीर हमारे पूर्वजों के शरीर का ही अंश है; इस लिए हमारी सज्ञानता और अहन्ता आदि की सारी सामग्री भी हमारे पिता, पितामह आदि की सज्ञानता और अहन्ता ही का अंश है। यह अंश बराबर, इसी प्रकार, चला जायगा। अपने पूर्वजों से सज्ञानता का अत्यल्प अंश पाकर हम प्रकृति की सर्वव्यापी सज्ञानता से उसकी वृद्धि कर सकते हैं। प्रकृति में महत्, बुद्धि, अहन्ता आदि अखण्ड भण्डार भरा पड़ा है; उससे हम यथाशक्ति अपनी आवश्यकतायें पूरी कर सकते हैं। इस सृष्टि में बहुत बड़ी मानसिक शक्ति इकट्ठी है जिससे हम सर्वदा थोड़ी बहुत लेते ही रहते हैं। परन्तु बात यह है कि इन शक्तियों का बीज पूर्वजों से मिलना चाहिए। बिना माता पिता से इनका बीज पाये हम इन शक्तियों की वृद्धि प्राकृतिक शक्तियों की सहायता से नहीं कर सकते। परम्परा से जो नियम चला आता है उसके अनुसार माता पिता के द्वारा आत्मा को अपेक्षित सामग्री दे दी जाती है। इस सामग्री से वह मन की मनमानी रचना कर सकता है।

इस रीति में, इस प्रणाली में, कितने विकास, कितने ही सङ्कोच और कितनेही फार होते हैं। जो कुछ हम देखते हैं सब प्र के विकास से उत्पन्न हुआ है। उसमें अनेक फार होकर, अन्त में, वह सब फिर प्रकृति हो लैाट जायगा। वह उसीमें लीन हो जायगा।
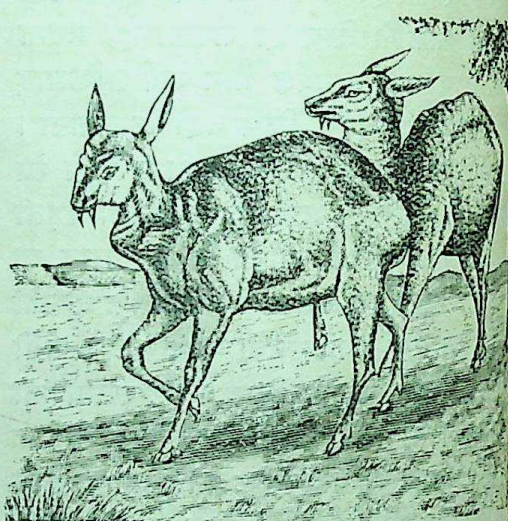
कस्तूरी-मृग।

कस्तूरी अत्यन्त सुगन्धित वस्तु जितनी सुगन्ध कस्तूरी में है है उतनी और किसी वस्तु नहीं होती। पहले तो प्राय कस्तूरी मिलतीही नहीं और मिलती भी है तो बहुत मँहगी मिलती है। कस्तू हिरन की नाभि में उत्पन्न होती है। जिस हि की नाभि में वह उत्पन्न होती है उसे कस्तूरी कहते हैं।

कस्तूरी-मृग हिमालय पहाड़ को छोड़कर कहीं नहीं पाया जाता। वहां पर भी वह उ जङ्गलों में विशेष रहता है जो लगभग आठ ह फुट की उंचाई पर होते हैं। उसकी पीठ का

भूरा और पेट का सफ़ेद होता है। उसके शरीर का पिछला भाग अगले भाग से अधिक भूरा, अर्थात् कालापन लिए, होता है। कस्तूरी-मृग तीन फुट लम्बा और दो फुट ऊँचा होता है। उसके कान लम्बे और सिर छोटा होता है। उसके पैर बहुत पतले होते हैं। कस्तूरी-मृग के ऊपर के दो दांत बहुत बड़े होते हैं; वे नीचे को बढ़ते हैं और मुंह के दोनों ओर निकले रहते हैं। उसकी पूंछ एक इञ्च से अधिक लम्बी नहीं होती। जो मृग छोटे होते हैं उनकी पूंछ बहुधा दिखलाई तक नहीं देती। बड़े होने पर कस्तूरी-मृग की पूँछ अच्छे प्रकार दिखलाई देती है; उसमें बालों का एक गुच्छा निकल आता है। ऐसेही मृगों की नाभि से कस्तूरी निकलती है।

कस्तूरी-मृग की मादी कभी कभी एक और कभी कभी दो बच्चे देती है। जून अथवा जुलाई महीने में, सालभर में एकही बार, वह जनती है। कस्तूरी-मृग के बच्चों के विषय में एक बात बहुत ही आश्चर्य की है। वह यह कि जब मादी दो बच्चे देती है तब वह दोनों को एकही पास नहीं रहने देती; एक को एक जगह और दूसरे को दूसरी जगह रख आती है; परन्तु दूध दोनो को यथा समय पिलाती है। कस्तूरी-मृग के बच्चे बस्ती में नहीं जीते। चाहे कोई उनको जितनी अच्छी तरह से रक्खे; और गाय अथवा बकरी का दूध पिला-कर जिलाने का चाहे जितना प्रयत्न करे; परन्तु तिस पर भी वे नहीं जीते। सुनते हैं, कस्तूरी-मृग को पालने का अनेक लोगों ने यत्न किया; परन्तु उनका परिश्रम निष्फल गया। इस मृग को पालने से यदि वह कुछ दिन जीता भी है तो अन्धा हो जाता है। जान पड़ता है, सदैव पहाड़ के ऊपर घने जङ्गलों में रहने के कारण बस्ती का जलवायु उसे हानि पहुँचाता है।

कस्तूरी-मृग, दिनभर, अपने रहने के स्थान में पड़ा रहता है। सन्ध्या होते ही वह बाहर निकलता है और रात भर में जो कुछ उसे मिलता है, उसे खाकर प्रातःकाल फिर वह अपने स्थान को लौट जाता है। छलांग मारने में यह मृग बहुत ही प्रवीण होता है; और जब दौड़ता है तब सीधाही दौड़ता है। पहाड़ की चोटियों पर वह निर्भय दौड़ा करता है; उसका पैर कभी नहीं फिसलता। वेग में आकर जब वह दौड़ता है तब उसकी एक एक छलांग पचास पचास साठ साठ फुट की होती है। जिस समय शिकारी उसे घेर लेते हैं, उस समय, भागने में, वह हवा से बातें करता है। पहाड़ों के एक कगार से दूसरे कगार पर वह तीर के समान जाता है और शिकारी उसे देखते ही रह जाते हैं। कस्तूरी-मृग के समान शीघ्र दौड़ने वाला जीव दूसरा नहीं है।

कस्तूरी-मृग की नाभि में कस्तूरी उत्पन्न होती है; वह नर ही के नाभि में होती है; मादी की नाभि में नहीं। मांस और चमड़े के बीच में एक थैली सी होती है; उसी में कस्तूरी भरी रहती है। उसके ऊपर चमड़े के कई परत रहते हैं। कस्तूरी के कण होते हैं और प्रत्येक कण बन्दूक के छर्रे के बराबर होता है। जब कस्तूरी नाभि से निकाली जाती है तब उसका रङ्ग कम काला होता है; परन्तु धीरे धीरे वह गहरा काला हो जाता है। जो मृग तरुण होने पर मारे जाते हैं, उनकी नाभि से लगभग आधी छटांक के कस्तूरी निकलती है। कम उमर के मृगों की नाभि में कस्तूरी भी कम निकलती है।

कस्तूरी ही के लिये इस मृग का शिकार किया जाता है। कोई कोई पहाड़ी लोग कुत्तों की सहा-यता से इसे पकड़ते हैं और कोई कोई जाल लगा कर उसमें इसे फाँसते हैं। इसे पकड़कर वे मार डालते हैं और पेट से कस्तूरी निकाल लेते हैं। नाभि के भीतर कस्तूरी की जैसी थैली निकलती है वैसी ही नक़ली थैली बनाकर कोई कोई उसके भीतर कुछ काला काला पदार्थ भर देते हैं और ऊपर से कस्तूरी का लेप लगाकर उसे कस्तूरी के

नाम से बेचते हैं; यहां तक कि पीने को तम्बाकू तक उसके भीतर भरी हुई पाई गई है। इस प्रकार की झूठी कस्तूरी बहुधा बिकने आया करती है। इसलिये मनुष्यों को उसे लेने में सावधान रहना चाहिए।

पूर्वी हिन्दी।

सरस्वती की किसी पिछली संख्या में हम डाक्टर ग्रियर्सन की हिन्दी-विषयक पुस्तक-माला का ज़िकर कर चुके हैं। इस पुस्तक-माला के एक एक खण्ड धीरे धीरे प्रकाशित हो रहे हैं। इसकी पांचवी जिल्द के दूसरे खण्ड में उड़िया और बिहारी भाषा (बोली) का वर्णन है; और उसके नमूने हैं। बिहारी बोली पुरानी प्राकृत-मागधी-की कन्या है। पर आज कल की हिन्दी से भी उसका बहुत साम्य है। अतएव इस प्रान्त के भाषा-प्रेमियों के भी जानने योग्य बहुत सी बातें उसमें हैं।

इस समय डाक्टर साहब की इस पुस्तकमाला की छठी जिल्द हमारे सामने है। इसमें पूर्वी हिन्दी का हाल है और उसके ५८ नमूने हैं। कोई कोई नमूना बहुत ही मज़ेदार है। वह इतना मनोरञ्जक है कि उसे पढ़ कर हँसी रोके नहीं रुकती। ये नमूने बिल्कुल देहाती बोली में दिये गये हैं। जो बोली देहात में स्त्रियां और अपढ़ आदमी बोलते हैं उसीके नमूने इसमें एकट्ठा किये गये हैं। जो कहानियां देहाती स्त्रियां शाम के वक्त, आग के पास बैठ कर, अपने लड़के लड़कियों को सुना कर उनको ख़ुश करती हैं उनके कई नमूने इसमें बहुत ही अच्छे हैं।

डाक्टर ग्रियर्सन ने हिन्दू-आर्य भाषाओं की एक मध्यवर्ती शाखा मानी है। उसी शाखा का नाम आपने पूर्वी हिन्दी रक्खा है। पुरानी अर्द्ध-मागधी को आपने पूर्वी हिन्दी की मां माना है। पटना प्रान्त की पुरानी भाषा मागधी और मथु[रा] प्रान्त की पुरानी भाषा सौरसेनी कहलाती है। इन दोनों के मेल से बनी हुई भाषा अर्द्धमाग[धी] है। इसीने पूर्वी हिन्दी को पैदा किया है। डा[क्टर] साहब ने इस पूर्वी हिन्दी के तीन भाग म[ाने] हैं—अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी। जिस प्रा[न्त] में जो बोली अधिकता से बोली जाती है उस[के] अनुसार उसका नाम रक्खा गया है।

पूर्वी हिन्दी नीचे लिखी हुई जगहों में बो[ली] जाती है—

(१) अवध में---हरदोई और फ़ैज़ाबाद के कुछ हिस्से छोड़ कर।

(२) युक्त प्रान्त में—बनारस और हमीरपुर[के] बीच में।

(३) पश्चिमोत्तर बुंदेलखण्ड, बघेलखण्ड [और] छोटा नागपुर में।

(४) मध्य-प्रदेश में—छत्तीसगढ़ तथा जब[ल]पुर और मंडला के ज़िलों में।

यह भाषा जिन खण्डों में बोली जाती [है] उनकी लंबाई कोई ७५० मील, चौड़ाई २५० मी[ल] और क्षेत्रफल १८७,५०० वर्ग मील है। कि[तने] आदमी कौन बोली बोलते हैं, इसका हिसा[ब] नीचे है—

अवधी	... ...	१६,०००,००
बघेली	... ...	४,६१२,७[illegible]
छत्तीसगढ़ी	... ...	३,७५५,३[illegible]
कुल जोड़	...	२४,३६८,०[illegible]

योरप में हंगरी, पोर्चुगल और बलगेरि[या] नाम के तीन छोटे छोटे देश हैं। अवधी बोल[ने] वालों की संख्या हंगरी के निवासियों की सं[ख्या] के; बघेली बोलनेवालों की संख्या पोर्चुगल [के] निवासियों की संख्या के; और छत्तीसगढ़ी बोल[ने] वालों की संख्या बलगेरिया के निवासियों [की] संख्या के लग भग है। योरप में आस्ट्रिया [...]

बहुत बड़ा देश है। मर्दुमशुमारी से सिद्ध है कि पूर्वी हिन्दी के कुल बोलने वालों की संख्या आस्ट्रिया के निवासियों से अधिक है। कुछ ठिकाना है। इस देश के छोटे छोटे प्रान्तों में योरप के कई देश समा जाते हैं!

अवधी का नाम बैसवारी भी है; क्योंकि बैसवारे ही में यह सबसे अधिक बोली जाती है। जिस प्रान्त में बैस शाखा के क्षत्रिय अधिक रहते हैं उसका नाम बैसवारा है। लखनऊ, रायबरेली और उन्नाव के ज़िलों में इस शाखा के क्षत्रियों की अधिकता है। डाक्टर साहब ने फ़तेहपुर का भी नाम दिया है; परन्तु हम अपने अनुभव से कह सकते हैं कि बैसवारे की और फ़तेहपुर की बोली में अन्तर है। पर व्याकरण सब कहीं का प्रायः एक ही है। अवध की बोली में जिन्होंने आज तक कविता की है उनमें तुलसीदास का नम्बर सबसे ऊपर है। तुलसीदास को ग्रियर्सन साहब बहुत बड़ा ग्रन्थकार मानते हैं। उनकी राय है कि किसी समय दुनिया भर के आदमी एक मत होकर तुलसीदास का नाम उसी रजिस्टर में लिखेंगे जिसमें कि जगत् के सबसे बड़े कवि और ग्रन्थकारों का नाम दर्ज है। इसमें कोई सन्देह नहीं। हम भी ऐसाही समझते हैं। हमारी भी यही राय है। इस बोली में जितनी पुस्तकें लिखी गई हैं और जितनी कविता हुई है न तो उतनी पुस्तकें ही हिन्दी भाषा-भाषियों की और किसी बोली में लिखी गई हैं और न उतनी कविता ही हुई है। कई अंगरेज़ और फ़रासीसी ग्रन्थकारों ने इस बोली पर प्रबन्ध लिखे हैं।

बघेली का माहात्म्य अवधी की अपेक्षा बहुत कम है। उसमें अच्छी अच्छी जितनी पुस्तकें बनी हैं सब प्रायः रीवां में बनी हैं। रीवां के ही दरबार में विद्वानों और कवियों का आदर अधिक होता रहा है। १५६३ ईसवी में प्रसिद्ध तानसेन महाराजा रामचन्द्र के यहां थे। असनी के हरिनाथ का भी इस दरबार में ख़ूब सम्मान हुआ था। महाराजा विश्वनाथ सिंह स्वयं अच्छे कवि थे; इस लिये कवियों और पण्डितों की उन्हें बड़ी चाह थी। उनका बनाया हुआ आनन्द-रघुनन्दन नाटक प्रसिद्ध है। महाराजा रघुराज सिंह ने तो काव्य-प्रियता में सबसे अधिक नाम पाया। उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं। उनका ज़िकर सरस्वती में हो चुका है। उनका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ आनन्दाम्बुनिधि नामक भागवत पुराण का अनुवाद है। एक पादरी साहब ने बाइबिल का अनुवाद बघेली बोली में किया है। पादरी केलाग ने भी अपने हिन्दी व्याकरण में इस बोली के विषय में कुछ लिखा है।

छत्तीसगढ़ी बोली की कई शाखायें हैं। जङ्गली अनार्य भी आर्यों की बोली बोलने लगे हैं। परन्तु इस प्रयत्न में वे अच्छी तरह कामयाब नहीं हुए। उनकी बोली आर्य और अनार्य बोलियों की खिचड़ी हो गई है। बिंझवारी, भुलिया और बैगानी आदि बोलियां उनमें मुख्य हैं। छत्तीसगढ़ी में नाम लेने योग्य भाषा-साहित्य नहीं है। वहां के प्रसिद्ध प्रसिद्ध गीत और क़िस्सों को बाबू हीरालाल काव्योपाध्याय ने अपने व्याकरण में लिखा है। यह व्याकरण छत्तीसगढ़ की बोली का है।

डाकृर साहब ने बोलियों के जो नमूने दिये हैं उनमें से बैसवारे की बोलियों के नमूनों को हमने ध्यान से देखा। हमारी जन्मभाषा बैसवारी ही है। इसीलिए हमने औरों की अपेक्षा उसीके नमूनों का विशेष विचार किया। इससे हमारा यह सिद्धान्त हुआ कि जिन लोगों ने डाकृर साहब को ये नमूने भेजे हैं या तो उनका इस प्रान्त से बहुत ही कम सम्बन्ध था, या उन्होंने ठीक ठीक नमूने एकत्र करने की ओर यथोचित ध्यान ही नहीं दिया। क्योंकि इन नमूनों में फ़रक जान पड़ता है। जिस बोली के वे नमूने हैं उसे लोग ठीक वैसा नहीं बोलते। सम्भव है, इस प्रकार की गड़बड़ और बोलियों के नमूने देने में भी हुई हो। हमारा इतना सौभाग्य कहां कि इस लेख को परम

विद्वान् डाकृर ग्रियर्सन साहब देखें। वे न सही, और ही लोग शायद इस पर विचार करें। अतएव हम बैसवारी बोली के एक आध नमूने की आलोचना करना चाहते हैं।

अवधी बोली देहात में कई प्रकार के अक्षरों में लिखी जाती है। उन अक्षरों का सर्वसाधारण नाम कैथी है। परन्तु सब अक्षर एक से नहीं होते। उनमें अक्सर थोड़ा बहुत भेद होता है। अतएव डाकृर साहब को चाहिए था कि उन सब लिपियों के भी नमूने वे इस पुस्तक में देते। गोंडा ज़िले की एक लिपि का जो नमूना उन्होंने दिया है वह काफ़ी नहीं। ऐसे कितने ही नमूने इस लिपि के हैं। और और भाषाओं की प्रायः सभी लिपिओं के नमूने आपने और और जिल्दों में दिये हैं। पर नहीं मालूम अवधी और बुन्देलखण्डी के दो चार नमूने आपने क्यों नहीं दिये? शायद मिलेही न हों। या उनके लिए कोशिश ही न की गई हो। या किसीने आपसे कह दिया हो कि और कोई नमूने ही नहीं हैं। ख़ैर।

डाकृर साहब कहते हैं कि रायबरेली ज़िले में वही बोली बोली जाती है जो प्रतापगढ़ ज़िले के पश्चिम में बोली जाती है। फ़रक़ इतना ही है कि रायबरेली की बोली में उर्दू के शब्द और महाविरे अधिक हैं; क्योंकि यह ज़िला लखनऊ से मिला हुआ है। डाकृर साहब की इस राय से हम सह[मत] नहीं। रायबरेली का जो भाग प्रतापगढ़ से मि[ला] हुआ है उसकी बोली में विशेष अन्तर नहीं है; परन्तु रायबरेली ज़िले के और भागों की बो[ली] पश्चिमी प्रतापगढ़ की बोली से बहुत अधिक भे[द] भाव रखती है। रायबरेली बैसवारे का केन्द्र है। इससे साहब को चाहिए था कि यहां की बोली [के] विषय में वे अधिक छान बीन करते। ज़िले [के] हाकिमों ने न मालूम किस आधार पर उन्हें लि[ख] दिया कि प्रतापगढ़ और रायबरेली की बोली प्राय[ः] एक सी है। हम अपने घर में रायबरेली की बोल[ी] कोई ३७ वर्ष से बोलते हैं। अतएव हम अ[पने] तजरुबे और अपनी निज की गवाही के आधार [पर] कह सकते हैं कि डाकृर साहब की राय सही न[हीं] है। डाकृर साहब को इस विषय में इतना भ्रम [हो] गया है कि उन्होंने रायबरेली, अर्थात् बैसवा[री] बोली के केन्द्रस्थल, का एक भी नमूना देने [की] ज़रूरत नहीं समझी। पश्चिमी प्रतापगढ़ की [जिस] बोली को उन्होंने रायबरेली की भी बोली बतला[या] है उसका उन्हों का दिया हुआ नमूना नीचे दे[ते] हम उसके बराबर बराबर उसका सही रूप [भी देते] हैं। पाठक देखलें कि दोनों में कितना अन्तर [है]।

प्रतापगढ़ के पश्चिम की अवधी बोली का नमूना।

याक घरे-माँ कथा कही जात-रही। पण्डित* जौन कथा कहत रहैं सगरे गाँव-का न्योतिन-रहै। सुनवैयन-माँ याक अहिरौ आवत-रहै। ऊ कथवा सुनतीं बेरा रवावा बहुत करै औ पण्डितौ वहि-का प्रेमी जान कै वहि-का नीकी तना बैठावैं औ खूब खातिर करैं। याक दिना पण्डितौ पूँछिन कि राउत तूँ रवावत बहुत हौ तुम-का काउ समुझ परत-है। तौ अहिरवा औरौ सेवाइ रवावै लाग औ कहिस कि महराज मोरे याक भैंसि

रायबरेली की बोली का नमूना।

याकन के घरमाँ कथा होति रहै। उन ग[ाँव] भरे का न्योता दीन रहै। सुनवैयन माँ एकु अहि[र] रहै। कथा सुनै की बेरिया वहु रवावा बहुत क[रै] जौ पण्डित कथा बाँचति रहैं उइ वहिका प्रे[मी] जानि कै निकी तना बैठावैं औ खुब खातिर क[रैं]। याक दिन पण्डित पूँछेन कि भगानि भाई [तुम] यतना रवावति काहे का हौ। तुम का का जानि प[रत] है। यह सुनि कै अहिरवा औरौ ज्वार ज्वार र[वावै] लाग। वह ब्वाला कि महराज मोरे एकु भैं[सि]

* यह ग़लत है। पण्डित न्योता नहीं देता; जिसके यहां कथा होती है वह देता है।

बिम्रान रही। कुछ वगद गवा औ ऊ वहुतै बेराम हुइ-गै औ पड़ौना-का नेकचाइ न देत रहो। तौ पड़ौना दिना भर चिच्यान औ साँहौं जूनी मरगा। तौन पण्डित वहै को नाईं तु हूँ दिना भ चुकरत-रहत-हौ। मैं-का डेर लागत-है कि कतहूँ तुहूँ न ओकरी नाईं मर जा।

बियानि रहै। वह नजराय गै औ पड़ौना का नगच्याय न देइ। पड़ौना दिन भरि चिल्लान औ सँफलो जून मरिगा। वही की तना पण्डित तुमहूँ दिन भरि चिल्लाति हौ। यहि ते महिँका डेरु लागत है कि कतौं तुमहूँ ना वही को नाहिंत मरि जाव।

इससे यह साफ़ ज़ाहिर है कि जो नमूना साहब ने दिया है उससे रायबरेली को बोली नहीं मिलती। पिछली बोली का तरीक़ा ही जुदा है—उसमें 'उ' और 'वा' को बहुत अधिकता है। उर्दू के शब्द उसमें एक ही दो हैं; सो भी अपभ्रंश के रूप में।

यही दशा लखनऊ के ज़िले की बोली की भी है। उसके नमूने साहब ने हिन्दी लिपि में नहीं दिये, क्योंकि वे उर्दू में लिखा कर साहब के पास भेजे गये थे। आपने उनका रूपान्तर अंगरेज़ी लिपि में ही दे कर सन्तोष किया है। पण्डित श्यामबिहारी मिश्र लखनऊ ज़िले के रहनेवाले हैं। साहब के दिये हुए एक नमूने को अब 'मिश्रजी के' नमूने से मिलाइए—

लखनऊ की (और बाराबंकी को भो) अवधी बोली का नमूना
(डाकृर साहब का दिया हुआ)

याक गांव मा याक लम्बरदार-के नान्ह-सारो बिटीवा रहै। जब व-को उमर सोरह सत्तरह बरिस-के भै, वह जून लम्बरदार-का वह-के बियाह-की फिकिर बाढ़ी। वह बेरिया नाऊ बाम्हन-कै बोलाय-कै लड़िकवा-का ढूढ़ै पठयन। थोड़े दिनन-मा याक लड़िका मिला। वह के साथ बिटीवा-कै बनावन्त बना, और बाम्हन पूछा गवा, और बियाह की तैयारी भै। लड़िकवा-कै बाप आवा और लेय देय के पाछे वत-कहाव होय लाग। हज़ार रुपैया बहुत कहे सुने तै-भवा। तब लम्बरदार राजी-खुशी-से घर गे और बरात-कै दिन बदा-गा। दुलहा-कै बाप पन्द्रह हजार सवाग लै-कै बड़ी धूम-धाम से दुलहिन-के घरे आवा और द्वारे-चार होय लाग। होम दच्छिना-के मागे-मा पण्डित-से तकरार भै, लाठी चलै लाग। बहुत मनई दूनो कैत घायल भयन। तब बरात रिसाय चली। वही समय-मा गाव-के भले-मानुस यकट्ठा-होइ-कै बरात मनाय-लायन। चौथे दिन बियाह भवा और भात बढ़ार

लखनऊ की ठीक अवधी बोली का नमूना।
(पण्डित श्यामबिहारी मिश्र का दिया हुआ)

याक गांव मँ याकै लम्बरदार के नान्हिसरी बिटिया रहै। जब वहिकी उमिरि स्वारा सत्रह बर्स कि भै तब लम्बरदार क वहि के बियाह कि फिकिरि बाढ़ी। वहे बेरिया नाऊ बाँमन क बोलाय क लरिका ढूँढ़ै पठइनि। थोरे दिनन में एकु लरिका मिला। वहि से बिटेवा क बनावन्तु बना औरु बाँमनु पूँछा ग औ बियाहे कि तयारी भै। लरिका क बापु आवा औ लेय देय क बतकहाव होय लाग। हज़ार रुपया बहुतु कहे सुने ठीक भ। तब लम्बरदार राजो खुसीते घरै गे औ बरात क दिनु बदा ग। दुलहा क बापु पन्द्रह हजार बराती लैकै बड़ी धूम धाम ते दुलहिनि के घरै आवा औरु दुवारे कि चारु होय लागि। होम दच्छिना के मांगै मँ पण्डित से तकरार ह्वै गै औ लाठी चलै लागि। बहुत मनईं दूनौं कैती घायल भे। तब बरात रिसाय चली। वहे बेरिया गाँव के भले मानुस यकट्ठा ह्वै कै बरात मनाय लाये। चौथे दिन बिवाहु भ औ

खुसी-से खायन; श्रौर बिदा-होय-कै श्रपने घर श्रायन।

बराती ल्वाग भातु बढ़ार खुसी ते खाइनि श्रौ बिदा ह्वै कै अपने घरै आये।

ईश्वर करै यही दशा श्रौर श्रौर बोलियों की भी न हुई हो। परन्तु इसमें डाकृर साहब का दोष कम है। जैसे नमूने उनको मिले वैसे उन्होंने दे दिये। अधिक दोष ज़िले के अफ़सरों श्रौर नमूना भेजनेवालों का है। मुमकिन है, इस ऊपर के नमूने की बहुत सी ग़लतियां फ़ारसी लिपि के कारण हुई हों। "लागि" में नीचे ज़ेर के छुट जाने से "लाग" हो जाना कोई बात ही नहीं।

डाकृर ग्रियर्सन ने लखनऊ ज़िले की बोली के दो नमूने दिये हैं। ऊपर का नमूना जहां का है वहीं पण्डित श्यामविहारी जी का घर है। अतएव उनका नमूना डाकृर साहब के नमूने से ज़रूर अधिक प्रामाणिक है। डाकृर साहब के नमूने में शब्द ग़लत हैं; वाक्य ग़लत हैं श्रौर वाक्यों का क्रम भी ग़लत है। जिस प्रान्त का नमूना है उसमें "सवांग" शब्द बोलाही नहीं जाता। "वह के साथ बिटीवा कै बनाबन्त" पहलेही बन गया; "ब्राह्मण पूछा गवा" उसके बाद! "श्रौर बियाह की तय्यारी" पहलेही हो गई; लेन देन की बात का फ़ैसला हुआ पीछे! न मालूम किसने ऐसी उलटी सीधी बातों से भरा हुआ बे सिर पैर का नमूना भेजा है। डाकृर साहब तो हिन्दुओं के रस्म जानते होंगे। उनको चाहिये था कि वे ऐसी तरतीबवार श्रौर बेहूदा बातें नमूने में न आने देते। जो विवाह १०००) में ठहरता है भला उसमें कहीं १५००० बराती आते हैं? यदि १५०००) रु० में भी कोई विवाह ठहरै तो भी शायदही इतने आदमी उस में आवैं। इस तरह का कथन एक प्रलापमात्र है। फिर कहीं लाखों में शायद एकही आध विवाह ऐसा होता होगा जिस में लाठी चलती हो। अतएव उसके ज़िकर की इस नमूने में क्या ज़रूरत थी? इसे पढ़कर विदेशियों के मन में यह सन्देह हो सकता है कि शायद हिन्दुस्तान में ऐसी ऐसी दुर्घटनायें बहुधा हुआ करती हों।

हमारी समझ में हिन्दुस्तान की सब बोलियों के ठीक ठीक नमूने कोई नहीं दे सकता। एक ज़िले में कई प्रकार की बोलियां बोली जाती हैं। दो दो चार चार कोस पर बोलियां बदली हैं। उनका भाव कोई कहां तक बतलावैगा?

यदि कदाचित् डाकृर साहब के देखने में यह लेख आ जाय तो हमारी प्रार्थना है कि इस स्पष्ट आलोचना के लिए वे हमें कृपापूर्वक क्षमा करें।

आकाशमण्डल।

[उत्तरार्द्ध]

कृष्णपक्ष को निर्मल रात में देखने से आकाशमण्डल में अनेक चमकते हुए पदार्थ देख पड़ते हैं। वे साधारणतः तारा, नक्षत्र या ग्रह कहलाते हैं। तारागण दो प्रकार के हैं—एक स्थिर तारे, दूसरे ग्रह। स्थिर तारात्रों में यह विशेषता है, कि वे, आकाशमण्डल में, जड़े से रहते हैं। यदि भिन्न भिन्न तारागणों के मध्य सीधी रेखायें मिलाकर रेखागणित-सम्बन्धी चित्र बनाये जायँ तो यह देखा जाता है, कि ये चित्र सैकड़ों वर्ष तक यथातथ्य बने रहते हैं। अर्थात् इनकी स्थिति में कभी कुछ अन्तर नहीं पड़ता। ग्रह स्थिर नहीं हैं; ये तारागणों के मध्य से अपने स्थान सदैव परिवर्तित करते रहते हैं। ग्रहों को छोड़कर आकाश में अपने स्थान परिवर्तन करनेवाले श्रौर भी पिण्ड हैं, जैसे चन्द्रमा, ग्रहों के उपग्रह, श्रौर पुच्छल तारे

२। देखने में ग्रहों और स्थिर तारात्रों में साधारणतः बहुत कम अन्तर मालूम पड़ता है। एक में दूसरे की अपेक्षा क्या विशेषता है? क्यों ज्योतिषी किसी को ग्रह, और किसी को स्थिर तारा कहते हैं? यह मालूम करना कठिन सा बोध होता है। इस बात की परीक्षा के लिए कि अमुक पिण्ड स्थिर है या अनस्थिर, आकाशमण्डल में, उसके स्थान-विशेष को, उसके आस पास के दूसरे तारागणों के स्थान से, मिलाना चाहिए। यदि घण्टे दो घण्टे किम्वा दिन दो दिन के पश्चात् उसकी स्थिति दूसरे तारागणों की अपेक्षा परिवर्तित मालूम पड़े, तो यह समझना चाहिए कि वह ग्रह है; अन्यथा स्थिर तारा है। एक दूसरी भी रीति है, जिससे हम लोग, शीघ्र, बिना दिन दो दिन ठहरे, कह सकते हैं, कि अमुक तारा स्थिर ग्रह है अथवा अनस्थिर तारा है। यदि दूरदर्शक यन्त्र से हम किसी स्थिर तारे को वेधते हैं, तो वह आकाश में केवल एक प्रज्वलित बिन्दु सा बोध होता है। चाहै दूरदर्शक यन्त्र कैसा ही उत्तमोत्तम क्यों न हो, उसका आकार ज्यों का त्यों बना रहता है। किन्तु यदि इस यन्त्र को किसी ग्रह की ओर हम लगाते हैं, तो उसके गोले का आकार कुछ बढ़ जाता है। इससे हम लोग तुरन्त कह सकते हैं कि यह ग्रह है। पर यह बात समीपस्थ बुध, शुक्र इत्यादि पांच ग्रहों की है। दूरस्थ यूरेनस और नेपच्यून के आकार में इस यन्त्र से कुछ विशेषता नहीं देख पड़ती। इनके स्थान परिवर्तन से ही इनका ग्रह होना सूचित होता है।

३। स्थिर तारे—बिना दूरदर्शक यन्त्र के सहारे केवल पांच ग्रह, अर्थात् बुध, शुक्र, मङ्गल, वृहस्पति और शनि देख पड़ते हैं। यूरेनस और दूसरे दो एक छोटे छोटे ग्रह बहुत ही तीव्र दृष्टिवाले पुरुष देख सकते हैं। जो और करोड़ों तारागण हम लोगों को बिना दूरदर्शक यन्त्र के नित्य देख पड़ते हैं वे स्थिर तारा हैं।

४। तेज—तारागणों में भिन्न भिन्न दरजे की चमक है। ज्योतिषी लोग तारागणों के विभाग उनके तेज के अनुसार करते हैं। १९ तारे, जो बहुत ही तेजोमय हैं, प्रथम वर्ग के कहे जाते हैं। उनमें से लुब्धक नामी तारा उत्तरीय गोलार्द्ध में सब से अधिक तेजोवान है। स्वाती (Arcturus) अभिजित् (Vega) ब्रह्म हृदय (Capella), रोहिणी (Aldebaran), रिजेल (Rigel), चित्रा (Spica) और आर्द्रा (Betelgeuze) भी प्रथम वर्ग के हैं। दूसरे वर्ग के तारात्रों में सप्तर्षि-तारा-पुञ्ज के ४ सबसे प्रज्वलित तारे मुख्य हैं। दूसरे के बाद तीसरे, चौथे और पांचवे वर्ग के तारे हैं। इसी तरह, इस समय, १२ वर्ग के तारागण मालूम हुए हैं। ईञ्जिलमैन (Engelmann) साहब के अनुसार पहले ९ वर्ग के तारागणों की संख्या इस प्रकार है—

प्रथम वर्ग १९	चतुर्थ वर्ग ४९०	सप्तम वर्ग १९९००
द्वितीय वर्ग ६५	पंचम वर्ग १४००	अष्टम वर्ग ६८०००
तृतीय वर्ग २००	षष्ट वर्ग ४९००	नवम वर्ग २४१०००

इससे मालूम होता है कि ज्यों ज्यों तारागणों का तेज कम होता जाता है त्यों त्यों उनकी संख्या बढ़ती जाती है। एक वर्ग के तारे अपने पिछले वर्ग के तारों से लग भग २½ गुना अधिक प्रकाशवान पाये जाते हैं। अतएव पहले वर्ग के किसी तारे का तेज षष्ट वर्ग के तारे के तेज से १०० गुना अधिक होता है। पांचवे वर्ग के तारागण बहुत ही मन्द तेज के होते हैं। छठे वर्ग के और भी मन्द होते हैं। सप्तमवर्ग के तारागण इतने मन्द होते हैं कि उन को सिर्फ़ बहुत ही तीव्र दृष्टि का मनुष्य, बिना दूरदर्शक यन्त्र के, देख सकता है।

५। आकाशगङ्गा—कृष्णपक्ष की किसी निर्मल रात में, आकाश में इधर उधर छिटकी हुई, एक प्रज्वलित धारा देख पड़ती है। इसे आकाशगङ्गा कहते ह। इसके तेजोमय विकाश का कारण इसमें के अनेक तारे हैं। उनमें से प्रत्येक तारा बहुत ही मन्द प्रकाशवाला है; किन्तु आपस की समीपता से वे सब एक प्रज्वलित मार्ग से जान पड़ते हैं। दूर दर्शक यन्त्र से इसके तारे पृथक् पृथक् तथा विशेष प्रकाशित देख पड़ते हैं।

६। नक्षत्र-पुञ्ज-नवोन ज्योतिषी नक्षत्र पुञ्जों का विभाग दूसरी रीति से भी करते हैं। कुल आकाश-मण्डल तारागणों से इस प्रकार भूषित है कि यदि प्रत्येक समूहके तारागणों का मिलाते हैं ता उनका आकार इस भूगोल-स्थित मनुष्य किम्वा और जीव जन्तुओं सा बोध होता है। इस रीति से प्रत्येक समूह के तारागण अपनो अपनी आकृति के अनुसार विशेष विशेष नाम से पुकारे जाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक पुञ्ज के अलग अलग काल्पनिक नाम रक्खे गये हैं। यथा, सप्तर्षि-समूह, ओरायन-नक्षत्र-पुञ्ज, सिंह-समूह इत्यादि।

पूर्वोक्त रीति से प्रत्येक तारा पुञ्ज बहुत अच्छी तरह अलग किया जा सकता है। पहले पुञ्ज का नाम लीजिये। फिर उस पुञ्जके प्रत्येक तारा के पहले एक अक्षर या अङ्क लगा दीजिये। इससे प्रत्येक पुञ्ज के सब तारे पृथक् पृथक् बतलाये जा सकते हैं। इस रीति से सन् १६०३ ई० में बेयर (Bayer) नामी ज्योतिषी ने खगोल का एक मान-चित्र प्रकाशित किया था। उसने नक्षत्र-पुञ्जों के प्रत्येक नक्षत्रों का नाम यूनानी वर्णमाला के अक्षरों के हिसाब से रक्खा। प्रत्येक पुञ्ज का जो सब से अधिक प्रकाशित तारा है उसका नाम उसने α (अलफ़ा-अ) और उससे कम प्रकाशवान तारे का नाम β (बीटा-ब) रक्खा। इसी प्रकार γ, δ, इत्यादि वर्णों के अनुसार उसने नाम रक्खे। जब यूनानी वर्णमाला के वर्ण हो चुके तब लैटिन वर्णमाला के वर्णों की उसने योजना की। फिर अङ्कों की भी योजना उसने की। नागरीप्रचारणी सभा द्वारा प्रकाशित विज्ञान कोश में केवल कुछ नक्षत्रों के नाम दिये गये हैं। शेष ज्यों के त्यों रक्खे गये हैं। बहुतों का तो उनमें नाम ही नहीं पाया जाता; वे साफ़ ही छोड़ दिये गये हैं। इसका अफ़सोस है। मैं भी उनका नाम ज्यों का त्यों रहने देता हूं। पर यूनानी वर्णों की जगह मैं अ, ब, स, द इत्यादि वर्ण काम में लाने का प्रयत्न करता हूं।

७। नक्षत्र-पुञ्जों का नाम इत्यादि जानना अ[वश्य]क है। इस लिए उनका कुछ वर्णन नीचे कि[या] जाता है।

पहले बड़े सप्तर्षि-समूह के नक्षत्रों का पह[चा]नना कुछ कठिन नहीं है। उत्तरीय खगोलार्द्ध [में] इनका समूह बहुत ही सुन्दर और सुप्रसिद्ध है। चित्र १ में इनका आकार वैसा ही दिया गया [है] जैसा कि वह आकाश में देख पड़ता है। चित्र [१] में, बड़े सप्तर्षि, छोटे सप्तर्षि और ध्रुव के भिन्न भि[न्न] ऋतुओं के स्थान-विशेष, आकार और गति [की] दिशा इत्यादि दिखलाई गई है। बड़े सप्तर्षि के [अ] और ब तारे ध्रुवदर्शक के नाम से प्रसिद्ध हैं। य[दि] ब और अ को मिलाकर एक सीधी रेखा अ की ओ[र] इतना बढ़ाई जाय, जितना कि ब और अ के बीच [की] दूरी का ५ गुना होता है, तो वह सीधी रेखा ध्रु[व] तारा के बहुत ही पास, क्या उसी से होती हुई, जा[ती है]। चित्र २ में कहे गये तारों के भिन्न भिन्न ऋतु[ओं] के अनुसार स्थान दिये गये हैं। इनसे सप्तर्षियों [का] पता, आकाश मण्डल में, शीघ्र लग सकता है। उन्हें देखकर उनके किनारे के दो तेजोमय तारों [को] बढ़ाकर ध्रुवतारे का पता आकाश में झट लगा[या] जा सकता है। यदि हम लोग रात को कि[सी] समय, या किसी साल किसी विशेष ऋतु में, [ध्रुव] तारे को देखते हैं, तो यह प्रायः स्थिर ही सा पा[या] जाता है। घूमता यह भी है, किन्तु इसके घुमा[व] की परिधि आकाश के इतने सूक्ष्म भाग में है, [कि] उसका घूमना जान नहीं पड़ता। पर यदि ह[म] बड़े सप्तर्षि के तारों को देखते हैं, तो इनकी ग[ति] अत्यन्त आश्चर्य्यदायक देख पड़ती है। ऐसा माल[ूम] होता है, कि मानो ये सातों तारे, एक जंजीर [से] जकड़े हुए हैं, जिसका एक छोर ध्रुव के हाथ में [है] और वह इन्हें अपने चारों ओर घुमा रहा है। कि[न्तु] जहां कहीं ये जाते हैं, इनके दो ध्रुवदर्शकों का मु[ख] ध्रुव ही की ओर घूम जाता है।
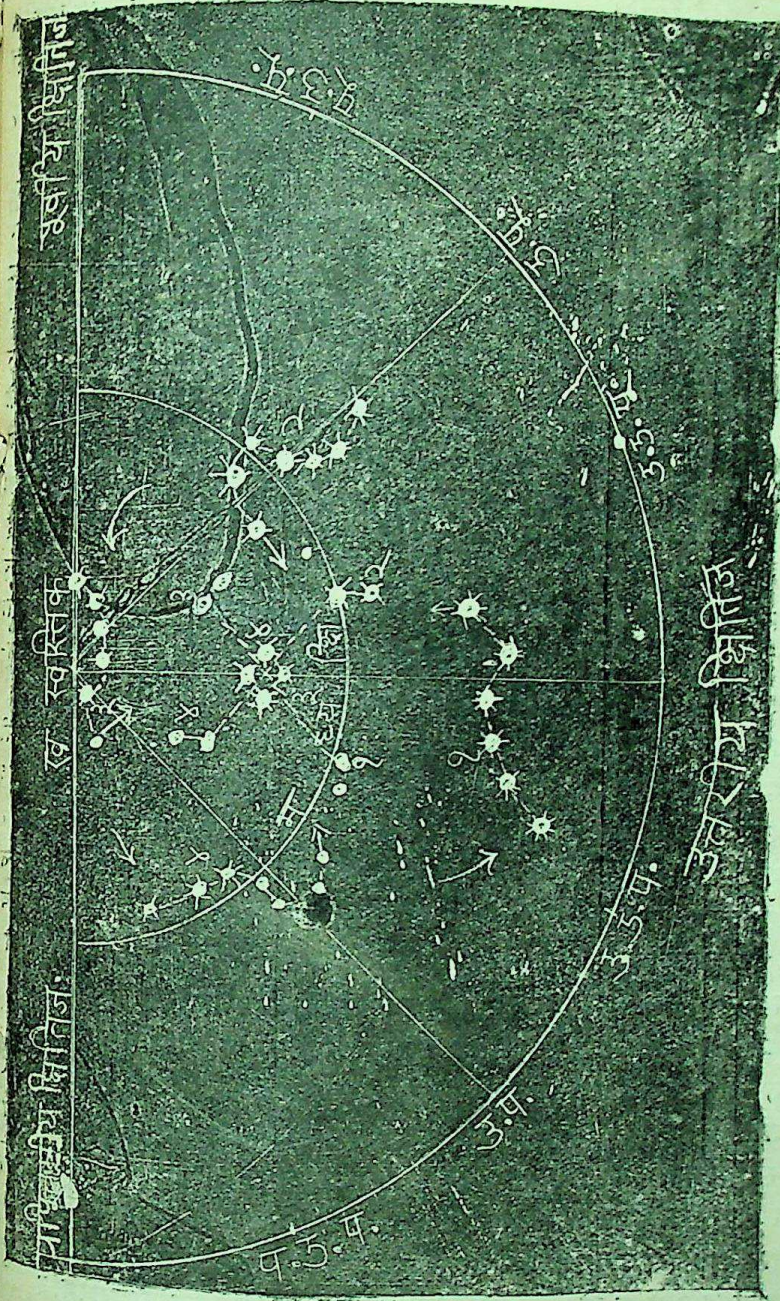
(चित्र २)—इस चित्र में बड़े सप्तर्षि, छोटे सप्तर्षि और ध्रुव इत्यादि की उँचाई और आकार इत्यादि निम्नलिखित ऋतुओं के अनुसार दिखलाये गये हैं—

आधी रात	११ बजे	१० बजे	९ बजे	बड़े सप्तर्षि का स्थान	छोटे सप्तर्षि का स्थान	ध्रुवतारा का स्थान
२१ सितम्बर	६ अक्तूबर	२२ अक्तूबर	६ नवम्बर	१	१	१
२१ दिसम्बर	५ जनवरी	२१ जनवरी	५ फ़रवरी	२	२	२
२३ मार्च	८ अप्रेल	२३ अप्रेल	८ मई	३	३	३
२२ जून	७ जुलाई	२२ जुलाई	७ अगस्त	४	४	४

यह ध्रुव तारा, छोटे सप्तर्षि का अ तारा है। (चित्र ३) इस नक्षत्र-पुञ्ज में भी ७ तारे हैं। उनमें से व और स बहुत (पर ध्रुव से कम) तेजोमय हैं; शेष मन्द हैं। आकाशीय ध्रुव, ध्रुवतारे के बहुत ही पास है; इसी कारण से इस तारे का नाम भी ध्रुव रक्खा गया है।

यदि बड़े सप्तर्षि के द नामी बड़े तारे को ध्रुव तारे में मिलाकर, उस सीधी रेखा को उतनी ही दूर ध्रुव तारे से आगे और बढ़ायें तो वह सीधी रेखा उस नक्षत्र-पुञ्ज की ओर पहुँचती है जो काशोपी समूह (cassiopcia) के नाम से प्रसिद्ध है (चित्र ३) अतएव बड़े सप्तर्षि और काशोपी-समूह आकाश-मण्डल में इस प्रकार स्थित हैं कि ध्रुव तारा उनके बीच में पड़ता है। इन समूहों को जब पाठक भली भांति पहचान लेंगे तब निम्नलिखित पुञ्जों के पहचानने में उन्हें बहुत सरलता होगी।

पूर्व भाद्रपद नामक नक्षत्र-समूह वर्गाकार है (चित्र ४) वसन्त और ग्रीष्म ऋतु में तो यह नहीं देख पड़ता किन्तु शरद और हिमर्तु में यह पुञ्ज सायङ्काल देख पड़ता है। बड़े सप्तर्षि के अ और द नामी तारों को ध्रुव से मिला कर यदि हम दो सीधी रेखायें खींचें तो ध्रुव से जितनी दूर काशोपी समूह है उससे उतनी ही दूर आगे हट कर इन दोनों सीधी रेखाओं के भीतर पूर्वभाद्रपद नक्षत्र-पुञ्ज का वर्ग-क्षेत्र आजाय और ये दोनों सीधी रेखायें उक्त समूह के वर्ग के व और उत्तरभाद्रपद के अ नामी तारों को स्पर्श करें (चित्र ४)

पूर्व भाद्रपद के वर्ग-क्षेत्र के तीन कोनों पर तो उसी पुञ्ज के अ व और स तारे हैं। किन्तु चौथे कोने पर उत्तर भाद्रपद का अ नामी तारा है। इस उत्तर भाद्रपद-पुञ्ज के व और स तारे उसी पुञ्ज के अ से थोड़े ही अन्तर पर हैं (चित्र ४) उत्तर भाद्रपद पुञ्ज के यदि व और स को मिला कर सीधी रेखा व स को स की ओर बढ़ावें तो वह परसेयस (Perseus) समूह के अ तारे से जा मिलती है। परसेयस-समूह के स और द तारे अ के इधर उधर हैं।

परसेयस-समूह के अ, उत्तर भाद्रपद-पुञ्ज के अ व और स तथा पूर्व भाद्रपद के अ व और स तारों को भली भांति पहचान लेने से नि[म्न]लिखित दूसरे समूह पहचाने जा सकते हैं।

परसेयस-समूह के अ स और द नक्षत्र मि[ल]कर एक ऐसा चाप बनाते हैं जो यदि उसी आ[कार] में कुछ दूर बढ़ाया जाय, तो प्रजापति-समूह के [अ] नामी तारे से जो ब्रह्महृदय के नाम से प्रसिद्ध [है] जा मिलता है। इस चाप के उन्नतोदर की [ओर] उसी पुञ्जका व तारा है, जो अलगो (Algol) [के] नाम से प्रसिद्ध है। यदि परसेयस-समूह के स [अ] और द तारों से बने हुए चाप को ऐसा बढ़ा[यें] कि वह चाप अलगो तारे की ओर नतोदर [हो] तो कुछ दूर जाकर वह चाप उसी समूह के य [और] क तारों से मिलेगा। यदि वही चाप उसी दि[शा] में थोड़ी दूर और बढ़ाया जाय तो वह कृत्ति[का] समूह के पास से जायगा (चित्र ५)।

यदि ध्रुव तारे को ब्रह्महृदय से मिलाकर उ[स] की ओर कुछ दूर हम बढ़ाते हैं, तो वह ओराय[न] समूह से मिलता है (चित्र ६)। इस समूह का [अ] यानी आर्द्रा नक्षत्र सब से अधिक तेजोमय और र[क्त] वर्ण है। ओरायन-पुञ्ज का कटिबन्ध द य और [क] नक्षत्रों से बना है तथा इस कटिबन्ध के चारों ओ[र] अ, स, और ल नक्षत्र मिलकर एक चतुर्भुज बना[ते] हैं। इन सात नक्षत्रों में अ और व प्रथम वर्ग [के] और शेष द्वितीय वर्ग के ज्योतिर्मय हैं। (चित्र [६])

ओरायन कटिबन्ध के तीन नक्षत्र द, य [और] क यदि क की ओर बढ़ाये जायं तो कुछ दूर [जा]कर सब नक्षत्रों से अधिक तेजस्वी लुब्धक न[क्षत्र] से मिलते हैं। यह तारा बड़े श्वान-समूह (Ca[nis] major) का सब से अधिक प्रकाशमान ता[रा] है। (चित्र ६)

ओरायन कटिबन्ध के पूर्वोक्त तीन तारे य[दि] द की ओर बढ़ाये जायँ तो वे उतनी ही दूर जा[कर] वृष-नक्षत्र-समूह के रोहिणी से मिलेंगे। रोहिणी वृष समूह का सबसे ज्योतिर्मय नक्षत्र है। (चित्र ...)

चित्र १

चित्र २

चित्र ४

चित्र ५

चित्र ६

चित्र ७

चित्र ८

चित्र ९

चित्रा
स्वाती
उत्तर फाल्गुनी
सप्तर्षि पुञ्ज

चित्र १०

लिरा समूह
अभिजित्
ध्रुवतारा
स्वाती
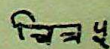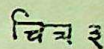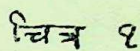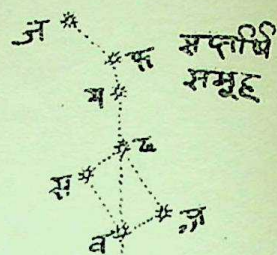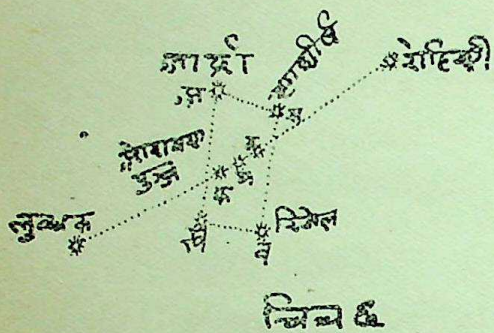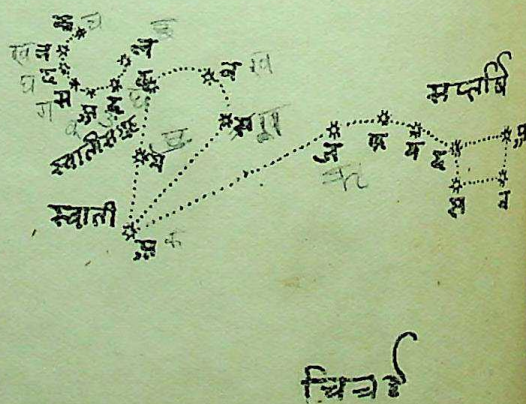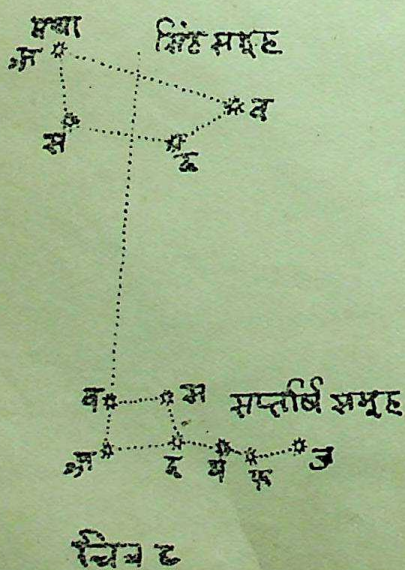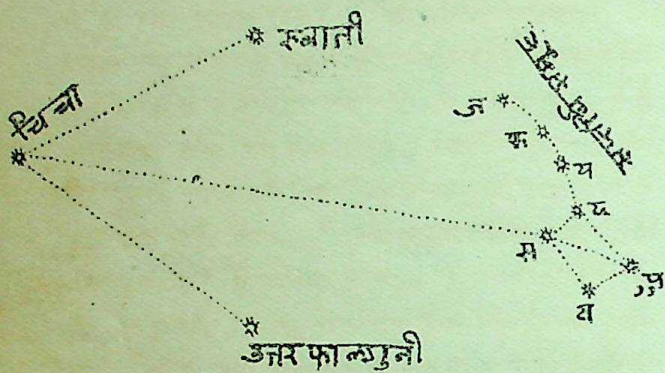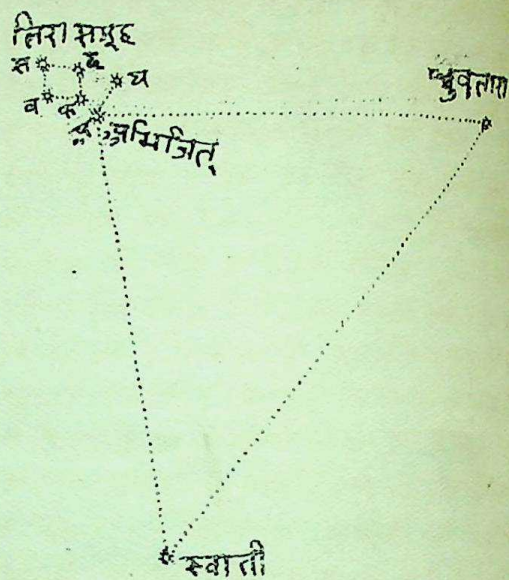
चित्र ११
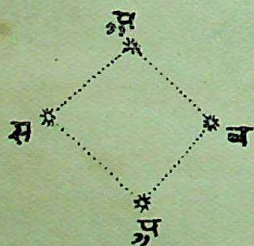
चित्र १२
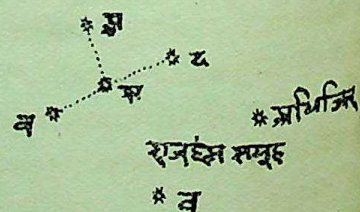
चित्र १३

यदि सप्तर्षि के द और व नक्षत्र कुछ दूर बढ़ाये जायँ तो उनसे गई हुई सीधी रेखा मिथुन राशि के नक्षत्र-पुञ्ज पहले और दूसरे पुनर्वसु से हो कर जायगी। यदि वह सीधी रेखा आकाश-मण्डल में उसी सीध में कुछ और दूर बढ़ाई जाय तो छोटे श्वान-समूह (Canis Minor) के प्रोसियान (Procyon) नामी नक्षत्र के पास से जायगी (चित्र ७) यह नक्षत्र भी प्रभा में प्रथम वर्ग का है।

यदि सप्तर्षि-समूह के अ और व नक्षत्रों को मिला कर अ व सीधी रेखा को व की ओर उसका दुगुना बढ़ावें तो वह सिंहस्थित नक्षत्र-समूह के मध्य से होकर जायगी (चित्र ८)। इस राशि के नक्षत्र-पुञ्ज का आकार अत्यद्भुत है। इनमें से (चित्र ८ में) ४ मुख्य नक्षत्र अ, व, स और द दिखलाये गये हैं। जिन में से अ मघा के नाम से प्रसिद्ध है। प्रभा में वह प्रथम वर्ग का है। शेष दूसरे वर्ग के हैं।

यदि सप्तर्षि के पुच्छ-भाग को चाप के आकार में उसके अधोभाग की ओर बढ़ाते हैं, तो वह प्रथम वर्ग के प्रभावान् स्वाती नक्षत्र से होता हुआ जाता है। स्वाती नक्षत्र, स्वाती-नक्षत्र-पुञ्ज का मुख्य तारा है, (चित्र ९) उसको छोड़ कर व, स, द और य भी चित्र ९ में दिखलाये गये हैं। उनमें से क, स, और द तो चतुर्भुज के कोनों पर, और य, अ, द, भुजा पर हैं।

स्वाती-पुञ्ज के समीप ही, उसके द कोने पर, तथा सप्तर्षि व, द, य और फ नक्षत्रों की सीध में, कोरोना बोरिएलिस (Corona Borealis) नक्षत्र पुञ्ज है। इस पुञ्ज के नक्षत्र अर्द्ध-वृत्ताकार हैं; उन में से सब से अधिक तेजोमय नक्षत्र दूसरे वर्ग का है। (चित्र ९)

यदि सप्तर्षि-समूह के अ और स नक्षत्रों को एक रेखा से मिलाकर एक ऐसी व अ रेखा खींचें जिसका उन्नतोदर स्वाती नक्षत्र की ओर हो तो यह रेखा कुछ दूर जा कर कन्या राशिवाले नक्षत्र-पुञ्ज के चित्रा नक्षत्र से मिलेगी। और सिंह-समूह का व अर्थात् उत्तरा फाल्गुनी, जो सिंह-पुञ्ज की पूंछ पर है, उस समत्रिबाहु त्रिभुज के उस कोने पर होगी, जिसके शेष दो कोनों पर चित्रा और स्वाती हैं। (चित्र १०)

उत्तरीय खगोलार्द्ध में, लिरा-समूह का अभिजित् नामी नक्षत्र भी एक बहुत ही तेजोमय नक्षत्र है। यदि ध्रुव तारा और स्वाती नक्षत्र के बीच एक सीधी रेखा खींचकर उसी कर्ण पर एक समकोन समद्विबाहु त्रिभुज बनावें तो समकोन बिन्दु पर अभिजित् नामी नक्षत्र पाया जायगा। और इस पुञ्ज के शेष नक्षत्र उसी कोने के समीप हो एक समानान्तर चतुर्भुज बनाते हुए पाये जायँगे जोकि व, स, द और क हैं। य उससे कुछ हट कर द की सीध में होगा। (चित्र ११)

अभिजित् और पूर्वभाद्रपद के वर्ग-क्षेत्राकार नक्षत्र-पुञ्ज के बीच में राजहंस नक्षत्र-पुञ्ज हैं। इस पुञ्जमें ५ मुख्य तारे हैं जिन की सापेक्षिक स्थिति बड़ी ही अपूर्व है। (चित्र १२)

अन्त में श्रवण-नक्षत्र-पुञ्ज को देखिये। यदि अभिजित् और राजहंस समूह के व नक्षत्र को मिलाकर एक सीधी रेखा बढ़ाई जाय तो वह श्रवण नक्षत्र के कुछ ऊपर से हो कर जायगी।

ऊपर उत्तरीय खगोलार्द्ध के कुछ नक्षत्रों का संक्षेप से वर्णन किया गया।

जीतनसिंह।

कुमारी तरुदत्त।

विधाता के नियम कुछ ऐसे टेढ़े हैं कि वे समझ में नहीं आते। बहुधा देखा गया है कि जो लड़कपन ही से बहुत बुद्धिमान होता है, या जिसमें किसी प्रकार की विचित्रता पाई जाती है, वह बहुत काल तक इस संसार में नहीं रहने पाता। उदाहरण में आज मैं पाठकों को तरुदत्त का कुछ हाल सुनाना चाहता

हूं। सब लोग जानते हैं कि बङ्गाल की स्त्रियों का, पढ़ने लिखने में, बड़ा अनुराग है। वे अपनी भाषा के अतिरिक्त पराई भाषाएं भी सीखती हैं और उन भाषाओं में विशेष विज्ञता भी प्राप्त करती हैं। यों तो पढ़ी लिखी सुबोध स्त्रियां उन में बहुत हुई हैं; परन्तु, तरुदत्त सी विचित्र कदाचित् ही कोई हुई हो। वह केवल इक्कीस वर्ष छै महीने इस संसार में जीवित रही। परन्तु इसी बीच में उसने अङ्गरेज़ी, फ्रेञ्च और संस्कृत भाषायें बहुत अच्छी तरह सीख ली थीं। इन तीनों भाषाओं के सिवा उसमें कविता-शक्ति भी बहुत विचित्र थी। और उसकी प्रसिद्धि का कारण भी यही शक्ति हुई।

बङ्गाल में बाबू गोविन्दचन्द्र दत्त एक विख्यात पुरुष हुए हैं। वे बड़े बुद्धिमान और साहसी मनुष्य थे। स्वजाति में उनका बड़ा मान था। उनके एक पुत्र और दो कन्याएं थीं। पुत्र का नाम अब्ज, उससे छोटी बहिन का नाम अरु और सब से छोटी का तरु दत्त था। अब्ज का देहान्त १८६५ ई० में चौदह वर्ष की अवस्था में ही हो चुका था। पिता के सन्तोष के लिये केवल अरु और तरु दत्त रह गई थीं। बड़ी बहिन अरु का जन्म १८५४ में हुआ था। वह तरुदत्त से अठारह महीने बड़ी थी। सन् १८५६ के मार्च महीने की ४ तारीख़ को तरुदत्त का जन्म, कलकत्ते में, हुआ था। बाबू गोविन्दचन्द्र दत्त ने एक सुन्दर उपवन बनवाया था। उस उपवन में एक घर भी बहुत अच्छा बना हुआ था। वहां एकान्त में तरुदत्त की बाल्यावस्था विद्या सीखने में बीती। योरोपीय सभ्यता इस बात को कभी न स्वीकार करेगी कि बाल्यावस्था में एकान्त में रह कर विद्या सीखना साध्य है। किन्तु तरुदत्त सी विचित्र बालिका के लिये यह बात सर्वथा साध्य थी। बाल्यावस्थाही से तरुदत्त की प्रकृति निराली थी। एकान्त में बैठकर तरुदत्त विद्या विषयक बातों पर ध्यान दिया करती थी। उसका समय इसी में अधिक बीतता था। लड़कपन में तरुदत्त की माता कन्याओं को अनेक पौराणिक कथाएं भी सुनाया करती थी। कन्याओं के विचार भी माता के उपदेश से बहुत अच्छे हो गये थे। जब तरुदत्त [illegible] वर्ष की हुई तब बाबू गोविन्दचन्द्र दत्त दोनों कन्याओं को लेकर योरप जाने को उद्यत हुए।

दत्त महाशय कन्याओं को लेकर सन् १८[illegible] के अन्त में योरप पहुंचे। वहां उन दोनों बहनों के पढ़ने का प्रबन्ध किसी फ्रेञ्च सहायता-प्राप्त स्कूल में किया गया। इसके बाद कन्याओं को लेकर दत्त महाशय प्रथम इटाली, पीछे इङ्गलैण्ड, को गये। दोनों बहनों ने कुछ काल तक केम्ब्रिज विद्यालय में स्त्रियों के विषय पर अच्छे अच्छे व्याख्यानों को ध्यानपूर्वक सुनकर मनन किया। अपने अन्तिम दिन तक तरुदत्त फ्रेञ्च भाषा की उत्तम ज्ञाता हो चुकी थी। वह अङ्गरेज़ी से बढ़कर फ्रेञ्च भाषा को प्यार करती थी। इसीसे अङ्गरेज़ी से फ्रेञ्च भाषा का उसको अधिक ज्ञान था। वह योग्यतापूर्वक इस भाषा को लिख पढ़ सकती थी। सन् १८७३ के नवम्बर महीने में दत्त महाशय कन्याओं को लेकर बङ्गाल लौट आये। यहां तरुदत्त के बचे हुए जीवन के चार वर्ष मानसिक चेष्टाओं और कल्पनाओं के स्वप्न देखने में बीते। उसकी कल्पना निस्सन्देह बड़ी मधुर थी जिसको वह प्रायः लेखनी द्वारा मूर्तिमान करके उस

आनन्द अनुभव करती थी। वह योरप से इस क़दर विद्या सीख आई थी जिसकी प्राप्ति से अङ्गरेज़ी और फ़्रेञ्च बालिकाएं सुशिक्षित समझी जा सकती हैं। परन्तु तरुदत्त के लिये यह भी कोई विचित्र बात नहीं थी। योरप से आकर तरुदत्त की रुचि संस्कृत सीखने में हुई। संस्कृत भाषा भी उसने बहुत जल्द सीख ली और उस भाषा के साहित्य-उपवन की कल्पनालता से अङ्गरेज़ी भाषा के वह संवारने लगो। तरुदत्त चाहतीं ते अपनी ही भाषा में लिख कर बहुत कुछ नाम पैदा करती। परन्तु, खेद है, कि मातृभाषा के साहित्य-प्रेमियें के निराश करके उसने अपने विचारें के प्रगट करने के लिये अङ्गरेज़ी भाषा का आश्रय लिया।

उसका पहला लेख, जब वह अठारह वर्ष की थी, बङ्गाल मैगज़ीन में लिकण्टी-डी-लिसिल (Leconte-de-Listle) नामक लेखक के विषय में प्रकाशित हुआ। तरुदत्त इस लेखक की लेखनी से बड़ी सहानुभूति रखती थी। कुछ दिनें के उपरान्त उसने "सिन्धु" नामक एक सुन्दर कविता लिखी जिसको पढ़कर इङ्गलैण्ड के कई सुकवि मुग्ध हो गये और एक विदेशी बालिका की बुद्धि की प्रशंसा करने लगे।

अपने अल्पकालिक जीवन में तरुदत्त ने दोबार घोर मानसिक कष्ट भी सहे। भ्राता का वियोग हुआ ही था कि सन् १८७४ में बीस वर्ष की अवस्था में अरु का भी प्राण-पखेरू तरु के छोड़कर परलोक चला गया। अब तरुदत्त संसार-यात्रा में अकेली रह गई। वह रात दिन, अब, एकान्त में रहने लगी। अरु तरुदत्त से कम सुबोध नहीं थी। यद्यपि उसकी आकांक्षाएं तरुदत्त की सी ऊंची नहीं थीं, तथापि वह योग्यता में उससे किसी प्रकार कम नहीं थी। दोनें बहने सङ्गीत-विद्या में भी बहुत अच्छा अभ्यास रखती थीं। किन्तु अरु का सङ्कल्प तरुदत्त का सा पक्का नहीं था। मैमैाइसिल-डी-अरवर्स (Mlle-de-Arverse) का वृत्तान्त खास अरु के चित्रादिकें द्वारा सुसज्जित करने के हेतु बनाया गया था। पर अरु ने कभी इस पुस्तक का एक पत्रा भी खोल करनहीं देखा।

सन् १८७६ में तरुदत्त-निर्मित "ए शीफ़ ग्लीण्ड इन फ्रेञ्च फील्ड्स" (A sheaf gleaned in French fields) नामक ग्रन्थ भवानीपुर के सप्ताहिक-सम्वाद प्रेस से प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक की समालोचना भी कई समालोचकोंने की। उनमें से एक का मत है कि इस ग्रन्थ में शक्ति और निर्बलता का विचित्र मेल है। कहीं कहीं प्रतिभा के बड़ी बड़ी कठिनाइयें से सामना करना पड़ा है। तब भी इस पुस्तक की विचित्रता पर आश्चर्य होता है। कहीं कहीं पर पद बड़े ही विचित्र बन गये हैं। और कहीं कहीं पर अङ्गरेज़ी छन्दः शास्त्र के नियम ठीक ठीक पालन नहीं हो सके हैं। कहीं कहीं लेखक की असावधानी झलकती है; पर साथ ही साथ उसकी बुद्धिमानी का परिचय मिलने से बहुत आनन्द भी प्राप्त होता है। इस पुस्तक में फ्रेञ्च भाषा के चुने हुए सैा कवियें की कविता का अनुवाद है।

तरुदत्त पुरातत्व के विषय में भी बहुत कुछ जांच किया करती थी। उसकी समालोचनाशक्ति भी बहुत अच्छी थी।

तरुदत्त की इस पुस्तक की चर्चा इङ्गलैण्ड से बढ़कर फ्रांस देश में होने लगी। एम-गार्सिन-डी-तासी (M. Garcin-de-Tassy) एक प्रसिद्ध पाश्चात्य लेखिका थी। वह तरुदत्त से कदाचित् ही बारह महीने बड़ी थी। क्लेरिसा बेडर (Mlle Clarissa Bader) तरु की एक मात्र प्रवासिनी मैत्रिणी थी। क्लेरिसा बेडर से मिलने पर उसने उस पुस्तक की बड़ी प्रशंसा की थी।

इन्हीं मैमैाइसिल क्लेरिसा बेडर ने प्राचीन हिन्दू स्त्रियें के समाज पर एक पुस्तक रची। उसका अनुवाद उसने अङ्गरेज़ी में अङ्गरेज़ी जाननेवाले हिन्दुस्तानियें के लिए कर डाला। इस संसार में पत्रव्यवहार करने के लिए यही महाशया तरुदत्त

की एक मात्र मैत्रिणी थी। वह इन्हींके पास फ्रेञ्च भाषा में अपना अन्तिम पत्र भेज सकी।

"ए शीफ़ ग्लीण्ड-इन-फ्रेञ्च फ़ील्ड्स" विलायत में समालोचना के लिए भेजा गया था। वहां एग्ज़ामिनर नामक पत्र बड़ा प्रसिद्ध है। सन् १८७६ के अगस्त मास में समालोचक मि. एडमण्ड गोसी कहीं उस पत्र के कार्यालय में जा पड़े। उस समय यह महाशय, समालोचना-योग्य उत्तम पुस्तकों की आलोचना न प्रकाशित होने से, प्रकाशकों की निन्दा कर रहे थे कि चिट्ठीरसां ने, हाथ में एक पैकेट दिया। उसके भीतर दो सौ पृष्ठ की एक छोटी सी पुस्तक थी। उसमें भूमिका या समर्पण कुछ भी नहीं था। वह रद्दीख़ाने में फेंक देने योग्य थी। किन्तु एग्ज़ामिनर के सम्पादक डब्ल्यु मिण्टो (W. Minto) ने मि. एडमण्ड गोसी के अनिच्छित हाथों में उस पुस्तक को ज़बरदस्ती देकर कहा—"देखिये, कदाचित् इसमें कोई विचित्रता दिखलाई पड़े"। मि. एडमण्ड गोसी उस पुस्तक की सूरत ही देखकर निराश हो गये थे। परन्तु उसके खोलते ही जब उनकी दृष्टि निम्नलिखित पदों पर पड़ी तब उनके आश्चर्य और आनन्द की सीमा न रही।

पाठकों के देखने के लिए वे पद हिन्दी अनुवाद सहित नीचे दिये जाते हैं।

Still barred thy doors! The far East glows,
The morning wind blows fresh and free.
Should not the hour that wakes the rose
Awaken also thee?
All look for thee, Love, Light and Song;
Light in the Sky deep red above,
Song in the lark of pinions strong
And in my heart true Love.
Apart we miss our nature's goal,
Why strive to cheat our destinies?
Was not my love made for thy Soul?
Thy beauty for mine eyes?
No longer sleep
Oh, listen now!
I wait and weep
But where art thou?

अभी तक तेरे किवाड़ बन्द हैं। सुदूर पूर्व दि[शा] चमक रही है। प्रातःकालीन समीर नवीन [और] स्वच्छन्द रूप से वह रहा है। क्या वह समय, [जो] गुलाब को जगाता है, तुमको भी नहीं जगावे[गा]?

प्रेम, प्रकाश और सङ्गीत सब तेरी प्रती[क्षा] कर रहे हैं। प्रकाश तो ऊपर लाल आकाश [में], सङ्गीत मज़बूत परवाले लवा में, और सच्चा [प्रेम] मेरे हृदय में।

हम दोनों वियोगी होने से प्रकृति के उद्दे[श्य] को नहीं प्राप्त कर सकते (तो फिर) क्यों [हम] अपने भाग्य को धोखा देने की हम चेष्टा कर[ें]? क्या मेरे प्रेम की उत्पत्ति तेरी आत्मा के लिए [न] थी और तेरी सुन्दरता मेरी आँखों के लि[ए]? अब अधिक न सोओ। अहा, सुनो तो! मैं प्रती[क्षा] करती हूं और रोती हूं। पर तू कहां है?

तरुदत्त का अन्तिम दिन अन्धकारमय [था]। अब वह लिखना छोड़कर केवल पुस्तकावलो[कन] में दिन बिताने लगी। उसके मरने के बाद उस[का] बनाया हुआ "एनशियण्ट बैलेड्स् ऐण्ड लीजेण्ड्[स] आफ़ हिन्दुस्तान" (Ancient Ballads [and] Legends of Hindustan) मि. एडमण्ड गो[सी] द्वारा प्रकाशित हुआ। अङ्गरेज़ी कविता में तरु[दत्त] ने जिस प्रकार पौराणिक कथाएं वर्णन की हैं [वह] प्रशंसनीय है। इक्कीस वर्ष छ महीने इस संसार [में] रहकर उसने जो काम किया उसे देखकर आश्च[र्य] तो अवश्य होता है; किन्तु ईश्वर की सृष्टि [में] सब बातें सम्भव और आश्चर्यमय हैं। उक्त पुस्[तक] में सावित्री, लक्ष्मण, सीता, ध्रुव, प्रह्लाद, सि[न्धु] इत्यादि कविताएं बड़ी सुन्दरता और सरसता [के] साथ लिखी गई हैं।

३० जुलाई का दिन तरुदत्त के लिए शोक[मय] था। उसने फ्रेञ्च भाषा में एक बहुत ही करु[णा] पूरित पत्र प्रवासिनो लेडी क्लैरिसा को लिखा[।] उसीके एक मास बाद १८७७ के ३० अगस्त [को]

तरुदत्त अपनी अटल कीर्त्ति को छोड़कर इस संसार से प्रयाण कर गई।

उमाशङ्कर द्विवेदी।

सवाई जयसिंह।

सरस्वती की इस संख्या में जयपुर के निर्म्माता जयसिंह का चित्र दिया जाता है। इनके पहले जयसिंह (मिरज़ा राजा) नामक एक और नरेश आमेर के सिंहासन को सुशोभित कर चुके थे। अतएव इन दोनों नरेशों में पृथक्त्व सूचित करने के लिए इनके नाम के पहले "सवाई" शब्द का प्रयोग किया गया। सवाई जयसिंह १६९९ ईसवी में गद्दी पर बैठे और ४४ वर्ष राज्य करके १७४३ ईसवी में परलोकगामी हुए।

जब सवाई जयसिंह ने आमेर का राज्य पाया तब औरङ्ग़ज़ेब की मृत्यु में ८ वर्ष शेष थे। उन्होंने शाही सेना के सेनानीत्व पद पर अधिष्ठित होकर दक्षिण में कई बार वीरता और योग्यता के काम किये। जब औरङ्ग़ज़ेब की मृत्यु हुई तब तख़्त के लिए झगड़ा उठ खड़ा हुआ। उसमें इन्होंने आज़मशाह के बेटे का पक्ष लिया। परन्तु धवलपुर की लड़ाई में इनके पक्षवालों का पराजय हुआ और शाह आलम (बहादुरशाह) को देहली का तख़्त मिला। विपक्षी का पक्ष लेने के कारण बादशाही सेना ने आमेर पर चढ़ाई करके उसे छीन लेना चाहा। परन्तु जयसिंह ने मुसल्मानों की दाल नहीं गलने दी। उन्होंने खड्ग हाथ में लेकर अपनी राजधानी में प्रवेश किया और मुसल्मानों को विफल मनोरथ होकर लौट जाना पड़ा।

इस समय देहली की बुरी दशा थी। अनेक झगड़े फ़साद होते थे। राज्य की सीमा प्रतिदिन कम होती जाती थी। बूंदी और उदयपुर से जयसिंह की भीषण शत्रुता थी; इधर बादशाह के भी ये कोपभाजन हो गये थे। अतएव इनको समय समय पर अनेक युद्ध, अनेक विवाद और अनेक प्रकार के साम, दाम, दण्ड, भेद के कामों में योग देना पड़ा। उनके वीरत्व, क्षत्रियत्व, नीतिपटुत्व इत्यादि विषयों में कुछ कहने के लिए इस लेख में स्थान नहीं है। उनके चित्र-सम्बन्ध में उनका कुछ परिचय करा देना ही बस है।

दो काम करके सवाई जयसिंह अपना नाम अमर कर गये। एक तो उन्होंने जयपुर को निर्म्माण किया; दूसरे मानमन्दिर बनवाकर ज्योतिष विद्या की उन्होंने विशेष उन्नति की। हिन्दोस्तान में जयपुर ही एक ऐसा शहर है जो नियमानुकूल बना है; जिसकी सड़कें ख़ूब लम्बी चौड़ी हैं; जहां सड़कों ने परस्पर एक दूसरी को यथास्थान काटा है। जयसिंह के दरबार में वङ्गदेश का रहनेवाला विद्याधर नामक एक विद्वान् था। उसीने इस शहर का नक़शा तैयार किया था। टाड साहब, राजस्थान में, ऐसा ही लिखते हैं। जयपुर की नीव १७२८ ईसवी में पड़ी थी।

जयसिंह को विद्या का बड़ा व्यसन था। ज्योतिषविद्या पर उनका सविशेष प्रेम था। उन्होंने देहली, जयपुर, उज्जैन, बनारस और मथुरा में मानमन्दिर बनवाकर वहां अपने बनाये यन्त्रों से यन्त्रशालायें स्थापित कीं। इन यन्त्रों की सहायता से ज्योतिषसम्बन्धी जो बातें ज्ञात होने लगीं उनको देखकर बड़े बड़े विद्वान् चकित हो गये। इनके पाण्डित्य की यहां तक ख्याति हुई कि देहली के बादशाह महम्मदशाह तक ने इनसे ज्योतिष विषयक कई काम लिए। सुनते हैं, पोर्चुगीज़ पादरी मैन्युयल ने इनसे कहा कि पोर्चुगल में ज्योतिष विद्या में बहुत कुछ उन्नति हो रही है। अतएव इन्होंने कई विद्वानों को उसके साथ पोर्चुगल के राजा यमैन्युअल के पास भेजा। यमैन्युअल ने झेवियर डि सिल्वा नाम के एक आदमी को जयपुर रवाना किया। उसने जयसिंह को पोर्चुगल के प्रसिद्ध ज्योतिषी डि ला हायर के सिद्धान्त समझाये।

पोर्चुगल के ज्योतिषी के सिद्धान्तों की परीक्षा जब जयसिंह ने की तब उनमें थोड़ी सी भूल निकली। समरक़न्द के शाही ज्योतिषी के सिद्धान्त भी जयसिंह को भ्रमपूर्ण मिले। जिन यन्त्रों का आविष्कार जयसिंह ने किया वे सचमुच अद्भुत और आश्चर्य-जनक हैं। ये यन्त्र अभी तक उनके मान-मन्दिरों में कहीं कहीं विद्यमान हैं। जो मानमन्दिर जयपुर में है उसकी नये सिरे से मरम्मत हुई है। उस की यन्त्रशाला बहुत अच्छी दशा में है; और सब यन्त्र अपना अपना काम कर सकते हैं। जयसिंह के सिद्धान्तों और यन्त्रों की परीक्षा डाकृर डब्ल्यू हण्टर इत्यादि कई पाश्चात्य विद्वानों ने की और सबको प्रायः निर्भ्रान्त पाया। महाराजा जयसिंह के समय की बनाई हुई सारिणी से ज्योतिषी लोग अभी तक काम लेते हैं। ज्योतिष और गणित विद्या में वे अद्वितीय थे। उन्होंने अनेक विद्वानों को अपने आश्रय में रक्खा था। हिन्दू, मुसल्मान, जैन, सब जाति के विद्वानों का वे आदर करते थे। विद्याधर पण्डित जैन ही था। उसीके सहयोग और सहाय से जयसिंह इतने मानमन्दिर बनाकर ज्योतिष विद्या की इतनी उन्नति कर सके।

जयसिंह के भाई विजयसिंह ने आमेर का राज्य छीन लेने की युक्ति लड़ाई थी। देहली से भी उसे पूरी पूरी सहायता मिलने का डौल था। परन्तु जयसिंह ने उसे बड़े ही कौशल से क़ैद कर लिया और फिर निष्कंटक होकर वे राज्य करते रहे।

सुनते हैं जयसिंह को नशे का बड़ा शौक़ था। उन्होंने अश्वमेध यज्ञ भी करने का विचार किया था। मरने पर उनकी तीन रानियां और बहुत सी उपरानियां उनके साथ सती हो गईं।

सवाई जयसिंह की मृत्यु के अनन्तर उनकी इकट्ठा की हुई पुस्तकों की बड़ी दुर्दशा हुई। उनमें से कुछ तो मूर्ख और अनधिकारी मनुष्यों को दे दी गईं। वे गली गली बेची गईं।

आँख।

[संख्या ३ के आगे]

पहले, दूरता स्वयं नहीं दिखाई दे सकती क्योंकि यह ऐसी रेखा है जिसके लम्बाव में आंख की तरफ़ होने के कारण एक छोर रेटिना पर है और दूसरा अदृश्य है। किन्तु हम [illegible] को देखते हैं; इसलिए यह किसी दूसरे भाव की मध्यस्थता से मन को सूचना द्वारा ज्ञान देती होगी; क्योंकि मन भावों के द्वारा ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है। उस समय के लोग कहते थे कि "चाक्षुष धुरी कोण बनाती है और उससे दूरत्व का ज्ञान होता है। किन्तु पदार्थों को दूर देखते समय तो ह[illegible] किसी कोण का ज्ञान नहीं होता। दोनों आंखों से किसी पदार्थ को देखकर जो हम उसकी दूरता का फैसला करते हैं सो केवल अनुभव का फल है और इसमें ३ सहायक हैं। (१) आंख में फेर फार [illegible] स्नायु-सम्बन्धी भावना; (२) मन में, धुंधलेपन [illegible] दूरता के जो भिन्न भिन्न दर्जे हैं उनमें, सदा [illegible] ज्ञान होने से कि पदार्थ का धुंधलापन दूरता के साथ बदला करता है, आदत से माना हुआ सम्बन्ध और (३) दूर-दृष्टि के समय आंख पर ज़ोर पड़ने की भावना। ये तीनों भाव मनमें अधिक या न्यून दूरता का विचार उत्पन्न करते हैं। यदि कोई जन्मान्ध देखने में समर्थ हो जाय, तो पहले पहल उसको नज़र से दूरता का ज्ञान न होगा। सूर्य और तारे, सुदूर और सुनिकट पदार्थ [illegible] सबही आंख में, अर्थात् मन में, प्रतीत होंगे। चक्षु वास्तव में रङ्ग मात्र का प्रत्यक्ष कराती है। जैसे कान से दूरता का ज्ञान नहीं होता वैसे इससे भी नहीं होता; दोनों दशाओं में त्वचा [illegible] पहली भावनाओं से ही दूरता का अनुमान होता है। बहुत काल तक इस बात का अनुभव करते रहने से कि त्वचा से जाने हुए कुछ भावों (दूरता, स्पृश्य, आकार, स्थूलता आदि) के साथ आंख के
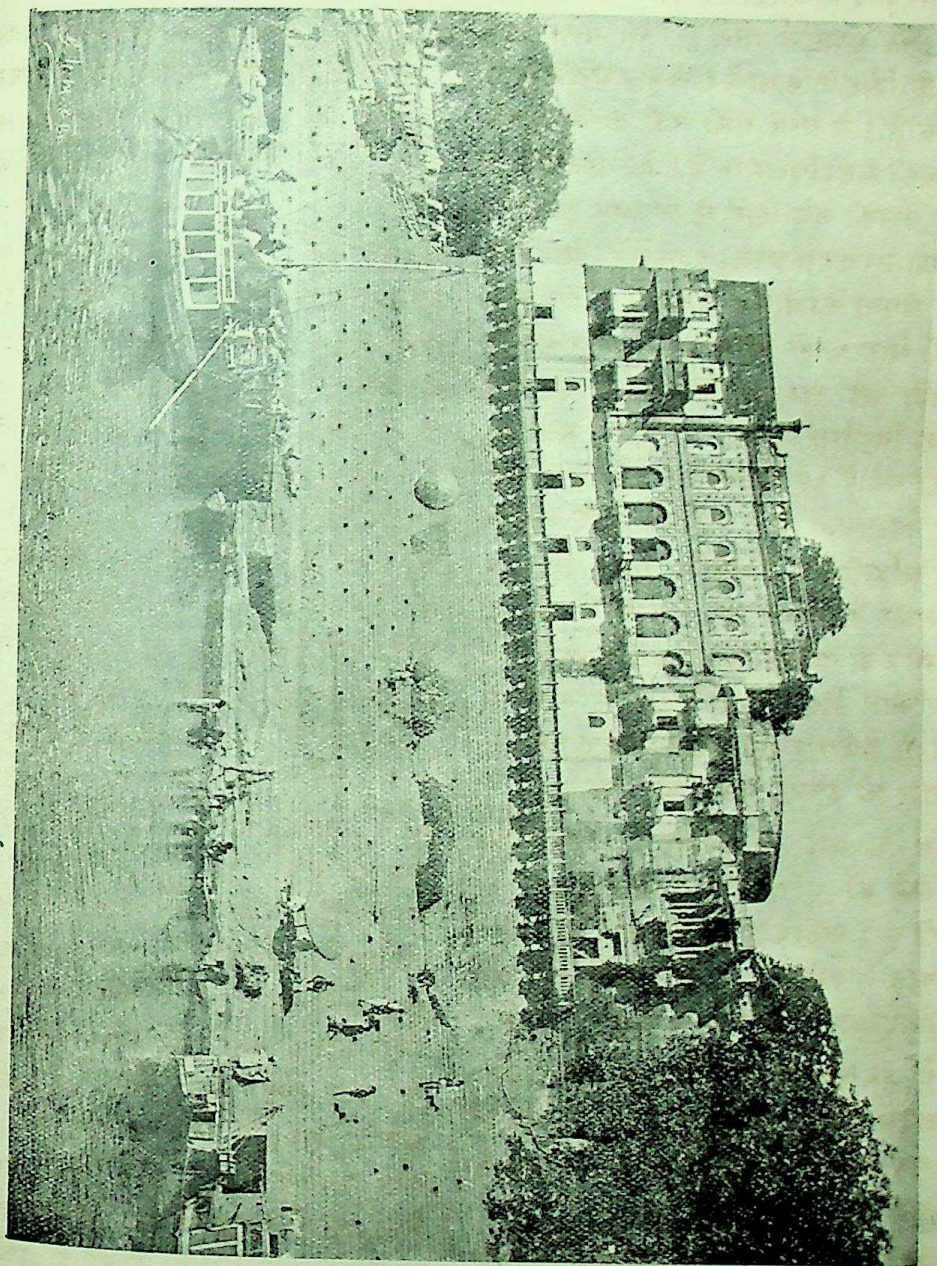
मानमन्दिर—काशी ।

भाव भी संबद्ध हैं, मैं, आंख के उन भावों के उपस्थित होने पर, उसी दम अनुमान करता हूं कि कौन से त्वचा के भाव, अभ्यास के अनुसार, अब मिलेंगे। सो यदि ठीक ठीक कहा जावे तो मैं न तो दूरता देखता हूं; न किसी पदार्थ को किसी दूरी पर देखता हूं। वह विस्तार और आकार जो मैं आंख से देखता हूं, त्वचा से छुए हुए आकार और विस्तार से बहुत भिन्न हैं।

दूसरे। जैसे हम दूरी देखते हैं, वैसेही हम आकृति देखते हैं। दृश्य आकृति, जो दिखाई देने वाले पदार्थ के सम्बन्ध में अपना स्थान बदलती ही रहती है, हमें स्पृश्य आकृति की सूचना देती है। स्पृश्य आकृति ही सच्ची है (१) दृश्य पदार्थ की आकृति वा विस्तार (२) उसकी बाह्य रेखाओं की सफ़ाई वा झिलमिलाहट, (३) उसके रङ्गों की तेज़ी वा धुंधलापन (४) बीच में स्थित पदार्थों का आकार, संख्या और स्थिति और (५) आंख के विन्यास-विशेष के विशेष संज्ञान—ये सब चाक्षुष चिन्ह हैं जो जीवों को सचेत करते हैं कि अपने देह को अमुक पदार्थ से, जो दूरी पर है, छुआने पर क्या भला वा बुरा फल होगा। दिखाई देनेवाले चिन्ह और स्पृश्य आकृतियों में यह सम्बन्ध सहज नहीं है। हम किसी पदार्थ की ठीक ठीक आकृति नहीं देखते, किन्तु कुछ रङ्गदार चिन्ह दिखाई देते हैं, जिनकी संख्या, अवलोकन क्षेत्र में, एक पदार्थ के लिए उतनी ही होने के कारण, हमें आंख से आकृति-ज्ञान का अभ्यास हो गया है।

तीसरे। अपने देह से भिन्न पदार्थों की सच्ची स्थिति वास्तव में अदृश्य है। कई बेर यह प्रश्न उठाया गया है, कि यदि रैटिना पर छायाचित्र उलटा होता है, तो हम पदार्थों को खड़ा क्यों देखते हैं? इस कठिनाई का कारण यह है कि मैं नहीं समझता कि स्पृश्य पदार्थ और दृष्टि से पाये हुए ज्ञान में कोई सम्बन्ध नहीं है। जो कुछ मैं देखता हूं वह प्रकाश और रङ्गों का भेद विशेष है; जो कुछ मैं छूता हूं वह कठोर वा मुलायम, गरम वा ठंढा, खरखरा या मृदु है। उन भावों का इन भावों से भला क्या संबन्ध है? 'ऊंचा' 'नीचा' 'ऊपर' 'तले' यह भेद हमको त्वक् से मालूम होता है। पदार्थ के चित्र में कोई गड़बड़ नहीं होती जब तक उसमें दृश्य पृथ्वी से दृश्य पैर समीप, और दृश्य सिर दूर प्रतीत होते हैं। अभ्यास से, ये अपने मुक़ाबिले के त्वक् के संवेदनों को सुझा देते हैं। वे पदार्थ, जिनका चित्र रेटिना के निचले भाग पर पड़ता है, आंख उठाने से साफ़ देख पड़ते हैं। इसी लिए हम उन्हें "ऊपर" समझते हैं। यों ही वे पदार्थ जो आंख के ऊपरी भाग पर चित्रित हैं, आंख नीची करने से साफ़ दिखाई देते हैं; अतएव वे "नीचे" माने जाते हैं। "बर्कले" अपनी मीमांसा को यह सिद्ध करके समाप्त करते हैं कि "विस्तार, आकृति आदि आंख से जाने हुए भाव त्वक् के उन भावों से बिलकुल भिन्न हैं जो इन्हीं नामों से प्रसिद्ध हैं। और दोनों इन्द्रियों में कोई भाव भी समान नहीं है। क्योंकि मैं आलोक और रङ्ग के सिवा कुछ नहीं देख सकता और वह, वा उनके अवान्तर भेद कदापि त्वक् के भाव नहीं है। हम स्पृश्य रेखा वा सतह में दृश्य रेखा वा सतह नहीं जोड़ सकते। इससे सिद्ध होता है कि ये दोनों भिन्न हैं। यदि अन्धे आदमी को आँख हो जाय तो वह उन पदार्थों को नहीं पहचानेगा जो उसे त्वक् से परिचित हैं। जैसे शब्द भावों के लिए चिन्ह हैं वैसे ही दृश्य आकार स्पृश्य आकारों के चिन्ह हैं। किन्तु यह प्रकृति की भाषा सर्वसाधारण और सरल है; क्योंकि बहुत जल्दी बाल्यावस्था में ही सीख ली जाती है। इसका फल यह है कि हम संसार के व्यवहारों में सचेत हो जायँ। दृष्टि वास्तव में "दूरदृष्टि" है; त्वक् से जो भाव प्रतीत होते हैं उन का आभास दृष्टि से हो जाता है।

[असमाप्त।

पुस्तक-परीक्षा।

नीलवसना सुन्दरी। फ्रांस उपन्यासों का घर है। वहां तरह बेतरह के उपन्यास निकला करते हैं। और थोड़े नहीं; सैकड़ों-हज़ारों। स्त्रियां तक ग़ज़ब के उपन्यास लिखती हैं। एम० ज़ोला के उपन्यास मनोविकारों के बहुत ही अधिक उद्दीपक हैं; यहां तक कि कोई कोई अश्लीलता की हद के पास तक भी पहुँच गये हैं। इन उपन्यासों के अङ्गरेज़ी-अनुवाद का प्रचार इङ्गलैण्ड में रोक दिया गया है। परन्तु इन्हीं की फ्रांस में बेहद और बेहिसाब महिमा है। इसी फ्रांस देश में जासूसी क़िस्सों का पहले पहल प्रचार हुआ। वहां से और और देशों में भी वह पहुँचा। बँगला में भी ऐसी ऐसी कहानियां निकलनी शुरू हुईं और चाह भी उनकी लोगों को ख़ूब हुई। बाबू पांचकौड़ी दे ने इस जासूसी-साहित्य में बड़ा नाम पैदा किया। गहमर (ज़िला ग़ाज़ीपुर) के निवासी बाबू गोपालराम की बदौलत इन जासूसी उपन्यासों का मज़ा हिन्दी जाननेवालों को भी नसीब हो गया। आप पांच वर्ष से जासूस नाम की एक मासिक पुस्तक निकाल रहे हैं। इसकी क़ीमत २) साल है। इस पुस्तक को बहुत लोग बड़े चाव से पढ़ते हैं।

यह नीलम परी, यह नीलाम्बरा रमणी, यह नीलवसना सुन्दरी भी बाबू गोपालराम ही की लेखनी से निकली है। पूर्वोक्त बाबू पांचकौड़ी दे की, इसी नाम की, बङ्गला पुस्तक का यह हिन्दी तरजुमा है। यह भी एक जासूसी क़िस्सा है। इस का रूप-रङ्ग और आकार प्रकार सब अच्छे हैं। छपाई भी अच्छी है; काग़ज़ भी अच्छा है। इसमें कई एक अच्छी अच्छी तसवीरें भी हैं। उनमें ख़ास ख़ास औपन्यासिक घटनाओं का दृश्य चित्र द्वारा दिखलाया गया है। भाषा रोज़मर्रा के बोलचाल की है। बहुत सीधी है; बहुत बामुहाविरा है। कोई कोई मुहाविरा तो ऐसा अच्छा है कि उसके कारण भाषा में सञ्जीवनी शक्ति आ गई है; वह ख़ूब सजीव हो उठी है। इसे निकले बहुत दिन हुए; एक तरह से यह पुरानी हो चुकी; तथापि हमने इसे पढ़ा। कहानी मनोरञ्जक है। पढ़ने में दिल लगता है। मनोमालिन्य, यदि हो तो, जाता रहता है। इसमें शुरू से आख़िर तक प्रायः आशिक़ माशूक़ ही के झमेले हैं। इनसे जिन्हें नफ़रत है वे शायद इसे पसन्द न करें। इसमें एक जगह लिखा है—"इन प्रेम-पचड़ों का मज़ा इस गँवार गोपाल को कहां मालूम है?" इसे पढ़कर हमें हँसी आ गई।

इसकी मूल कथा की दो एक बातें हमारी समझ में नहीं आईं। एक तो ज़होरुद्दीन का अपनी व्यभिचारिणी बीबी सुजान के पीछे रात को १२ बजे दौड़ना, उसे पकड़वाकर भी उसका कुछ भी पारिपत्य न करना, और उसका सिर्फ़ हार उतार कर घर वापस आना। दूसरी, बारहवें बयान में, देवेन्द्र पर एक अँधेरी गली में आक्रमण करके, वहाँ मुन्शी रक का पेंसिल से एक लम्बी चिट्ठी लिखकर देवेन्द्र की जेब में डालना। पर इसके लिए मूल ग्रन्थकार ही यदि दोषी हो तो हो सकते हैं।

बाबू गोपालराम ऐसी ऐसी किताबें लिखें। इनसे अगर और कुछ न होगा तो हिन्दी पढ़ने की ओर लोगों की रुचि अवश्य होगी। पर हम उनसे एक विनय करना चाहते हैं। वह यह कि साल में यदि वे १२ किताबें ऐसी लिखें तो एक आध और तरह की भी लिखने की कृपा करें। बँगला में अनेक अच्छी अच्छी पुस्तकें-नाटक उपन्यास और इतिहास आदि की-हैं। उनमें से यदि वे साल में एक दो भी अनुवाद करके प्रकाशित करदें तो बहुत उपकार हो। उन्हें लिखने में व्याकरण के नियमों का कुछ अधिक ख़याल रखना चाहिए और चित्रों की बनावट वर्णन के अधिक अनुकूल होना चाहिए।

नीलवसना का मूल्य २) है। पर जासूस के ग्राहकों को वह उपहार में दी जाती है। उपहार के नियम पूछने पर मालूम होंगे।

✻

भारतवर्ष की सभ्यता का इतिहास। श्रीयुक्त रमेश-चन्द्र दत्त कृत अङ्गरेज़ी ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद का यह पहला भाग है। अनुवादक इसके बाबू गोपाल-दास हैं। पर यह हमें नहीं मालूम कि किसने, कहां से और किस लिए इसे हमारे पास भेजा है। यह अनुवाद "हिन्दी-सम्वादपत्रों के सम्पादकों को सादर समर्पित" किया गया है। किन्तु सरस्वती सम्वादपत्र (News-paper) नहीं है। इस लिए यह उसके पास नज़र के तौर पर भी नहीं आ सकता। ख़ैर, कुछ भी हो, भेजनेवाले को धन्यवाद देकर हम इसे अपने संग्रह में रक्खे लेते हैं।

❀

Notes on Vegitarianism. अङ्गरेज़ी में यह एक छोटी सी पुस्तक है। इसका सम्पादन बाबू रामप्रसाद वर्म्मा ने किया है। डेढ़ आने इसके दाम हैं। अजमेर के वैदिक प्रेस में यह छपी है। इसमें मांस खाने के दोष और न खाने के गुणों का सप्रमाण विवेचन है।

❀

धर्म्म पत्र। मेरठ की सनातन-धर्म्म-रक्षिणी सभा इस नाम का एक मासिक पत्र निकालती है। इसके अङ्क हमारे पास आये हैं। इसका कुछ अंश हिन्दी और कुछ उर्दू में छपता है। दाम, वार्षिक १॥) है। इसकी हिन्दी अच्छी नहीं है। और और बातों की भी उन्नति की आवश्यकता है।

❀

हिन्दी-बँगला-वर्णमाला। वृन्दावननिवासी लाला राधारमणदास कृत। दाम दो आने। इसको पढ़ने से बँगला सीखने में सहायता मिल सकती है। पर, हमारी समझ में, इसमें बहुत सी भूलें हैं। 'कृश' का अर्थ किसान नहीं, दुबला है; 'इहारा' का अर्थ इसका नहीं, ये लोग है; 'पाई' का अर्थ मिला नहीं, पाता हूं या पाऊं है—इत्यादि।

❀

मारवाड़ियों से निवेदन। "सुदर्शन" सम्पादक पण्डित माधवप्रसाद मिश्र लिखित। वैश्योपकारक कार्य्यालय कलकत्ता से वितरित। मारवाड़ियों के यहां विवाह में गालियां गाई जाती हैं और ब्राह्मणों की स्त्रियों से पैरों में मेंहदी लगवाई जाती है। इस कुरीति को उठा देने के लिए यह निवेदन किया गया है। मारवाड़ियों को चाहिए कि वे इसे उठादें। इसके उठाने में उनकी बड़ाई और रखने में बुराई ही नहीं, किन्तु निन्दा भी है।

❀

आर्ष-ग्रन्थावली। पण्डित राजाराम ने लाहौर से इस नाम की एक मासिक पुस्तक, दिसम्बर १९०४ से, निकाली है। इसका वार्षिक मूल्य ३) है। इस में वेद, उपनिषद्, धर्म्म सूत्र, गृह्यसूत्र और श्रौतसूत्रों के संस्कृत और हिन्दी भाष्य छपते हैं। उद्योग अच्छा है।

❀

डाक्टर वर्म्मन की दवाइयां। कलकत्ते के डाकृर एस० के० वर्म्मन ने हमारे पास अपनी दवाइयों का एक छोटा सा बक्स भेजा है। इसमें हैज़ा, खांसी, कमज़ोरी, कोष्टबद्ध इत्यादि छ रोगों की दवाइयां हैं। बक्स बहुत सुन्दर है। दो एक दवाइयों की परीक्षा करने पर मालूम हुआ कि वे भी अच्छी हैं। यह बक्स, घर में, हर गृहस्थ के रखने लायक़ है।

❀

वार्षिक विवरण। आरा में एक नागरी-प्रचारिणी सभा है। यह भी हिन्दी को फ़ायदा पहुँचाना चाहती है। यह उसका तीसरा वार्षिक विवरण है। इसमें हिन्दी-भाषा का साल भर का संक्षिप्त इतिहास है। इसके सभासदों की संख्या बढ़ रही है। इसकी राय है कि सरस्वती में वेद-विरुद्ध लेख प्रकाशित होते हैं और किसी किसी लेख में अरबी फ़ारसी के शब्द रहते हैं। धन्यवाद !

❀

कविवर विप्रचन्द्र की रचना। पण्डित अक्षयवट मिश्र जी कलकत्ते के श्रीविशुद्धानन्द विद्यालय के प्रधान पण्डित हैं। आपने हमारे पास अपनी बनाई हुई संस्कृत की तीन पुस्तकें भेजी हैं। एक का नाम

स्तोत्रकुसुमाञ्जलि है। इसमें हिन्दी-अनुवाद सहित रामचन्द्र की स्तुति है। इसकी कविता बहुत ही सरस और मनोरम है। दूसरी पुस्तक का नाम पुष्पोपहार है। इसमें डुमरांव राजधानी के सज्जन-शिरोमणि पण्डित चन्द्रमणि शर्म्मा जी के स्वभाव आदि वर्णन पर २५ श्लोक हैं। इसकी भी कविता अच्छी है। श्लोकों का हिन्दी अनुवाद इसमें भी है। तीसरी पुस्तक का नाम श्रीराधामाधव-विलास है। इसमें संस्कृत दोहा छन्द में राधामाधव की लीला वर्णित है। यह पुस्तक औरों से बड़ी है; इसमें पांच सौ से ऊपर दोहे हैं। कागज़, छपाई इत्यादि सब उत्तम है। पर हिन्दी अनुवाद इसमें नहीं है। कविता इसकी भी अच्छी है। जहां जहां प्राचीन संस्कृत पद्यों की छाया लेकर कविता की गई है वहां और भी अधिक मनोरमता आ गई है। उदाहरणार्थ नैषध के चौथे सर्ग का ग्यारहवां श्लोक देखिए—

निविशते यदि शूकशिखापदे सृजति सा कियतीमिव न व्यथाम्।
मृदुतनोर्वितनोतु कथन्न तामवनिभृत्तु निविश्य हृदिस्थितः॥

इसीकी छाया लेकर विप्रचन्द्र जी ने बहुत ही अच्छा दोहा कहा है। सुनिए—

पदेऽपि विद्धं कण्टकं बहु दुःखं विदधाति।
वद सखि हृदि विद्धो जनः किं दुःखं न ददाति॥

✻

सरस्वती पञ्चाङ्ग। शीतलागली, आगरा, पण्डित व्रजनाथ शर्म्मा ने इसे प्रकाशित किया। यह सं० १९६२ का पञ्चाङ्ग है और डेढ़ आने बिकता है। छपाई साफ़ है। पञ्चाङ्ग काम का है।

✻

स्त्री-शिक्षा-विचार। बाबू वैद्यनाथ गुप्त, उपमन्त्री आर्यसमाज, मिर्ज़ापुर कृत। दाम दो आने। इस छोटी सी पुस्तक में यह दिखलाया गया है कि स्त्रियों को न पढ़ाने से क्या हानि और पढ़ाने से क्या लाभ है। लेखक ने इसे अपने पिता को अर्पण किया है और भूमिका में लिखा है कि मेरी उमर बहुत कम है। हमारी प्रार्थना है कि कुछ उमर और अधिक होने पर और तदनुसार विद्वत्ता भी कुछ और बढ़ जाने पर लेखक महाशय इस पुस्तक को और बढ़ा कर लिखें जिसमें यह पहले से अच्छी हो जाय।

मनोरञ्जक श्लोक।

एक पण्डित किसी राजा के यहां बहुत दिन तक ठहरे रहे। बिदाई न हुई। एक दिन सभा में आप खिन्नवदन बैठे थे। राजाने पूछा पण्डित जी, क्या सोच रहे हो? तब आपने यह श्लोक पढ़ा—

सुस्वादुयुक्तानि सुकोमलानि पत्नीकराग्राङ्गुलिपीड़ितानि।
किं किं ददामीति सुभाषितानि स्मरामि राजन् गृहभोजनानि॥

'और क्या क्या दूं?' इस तरह मीठे मीठे वचनों को सुनते हुए ख़ूब स्वादिष्ट, ख़ूब कोमल, पत्नी के करकमल से ख़ूब पीड़नपूर्वक बनाये गये, अपने घर के भोजनों का, राजा साहब, स्मरण हो रहा है।

भाग ६] जून, १९०५ [संख्या ६

विविध विषय।

लाहैार में दयानन्द सरस्वती के नाम से जो कालेज है उसके मालिकों ने एक बहुत ही अच्छा काम किया है। काम बिलकुल नया है ग्रैार बहुत उपयोगी है। इस कालेज में जापानी भाषा सिखलाने का प्रबन्ध हुआ है। इसके लिए जापान से एक जापानी अध्यापक भी आगया है। जो लोग कल-कारख़ाने का काम या कला-कौशल आदि सीखने जापान जाते हैं उन को पहले कुछ दिन तक जापानी भाषा सीखना पड़ता है। इससे उनका बहुत सा समय परकीय देश में योंहीं नष्ट जाता है। यह बात अब न होगी। जिसे जापान जाना होगा वह यहीं जापानी भाषा सीख कर जायगा। इससे यह भी लाभ होगा कि जापान पहुँचते पहुँचते वह जापानियों से उनकी भाषा में बात चीत कर सकैगा ग्रैार भाषा न जानने से जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है उनसे बचाव होगा।

* *
*

एक बात की ग्रैार बड़ी ज़रूरत है। वह भी यदि लाहैार के देशहितैषी ग्रैार उद्योगी पुरुष कर दें तो बड़ी बात हो। वह जापानियों की जू-जित्सू (युयुत्सु ?) नामक कसरत है। इस कसरत की बड़ी तारीफ़ हो रही है। इस पर अमेरिकावालों ने बड़ी बड़ी किताबें लिखडाली हैं। अमेरिका ग्रैार इङ्गलैण्ड आदि में इसको शिक्षा देने के लिए स्कूल भी खुल गये हैं। वहां लड़के, लड़कियां, स्त्री, पुरुष, सब इस कसरत को सीखते हैं। अमेरिका की फ़ौज तक में इसके सिखलाने का प्रबन्ध हुआ है। इससे शरीर के पट्ठे इतने मज़बूत हो जाते हैं ग्रैार ऐसे दाँव पेंच मालूम हो जाते हैं कि एक दुबली पतली स्त्री एक मज़बूत ग्रैार कसरती जवान को गिरा सकती है।

* *
*

अभी थोड़े दिन की बात है। रूस-जापान की जो लड़ाई हो रही है उसमें मकदन के पास, रूस ग्रैार जापान की फ़ौज का कुछ भाग, मैदान में, एक दूसरे के सामने आ गया। रूसी अफ़सर ने देखा कि जापानी अफ़सर देखने में ठिंगना, दुबला ग्रैार कमज़ोर है। इससे उस जापानी अफ़सर के साथ

अकेले लड़ने के इरादे से वह अपनी फ़ौज से अलग हुआ। यह देख कर जापानी अफ़सर ने भी वैसा ही किया। दोनों अफ़सर पास पास आ गये और तलवार से दाँव पेंच खेलने लगे। दो ही चार मिनट में जापानी ने एक ऐसा प्रहार किया कि रूसी अफ़सर की तलवार टूट कर ज़मीन पर जा गिरी। अब यदि जापानी चाहता तो रूसी का सिर धड़ से अलग कर देता। पर जापानी अन्याय करना नहीं जानते। वे धर्म्म-युद्ध करते हैं। अतएव जापानी अफ़सर ने भी अपनी तलवार फेंक दी और वह रूसी से शस्त्रहीन होकर भिड़ गया। मल्लयुद्ध होने लगा। पर जापानी के हाथ लगाने की देरी थी कि रूसी अफ़सर ज़मीन पर धड़ाम से चित आ गिरा। यह देखकर दोनों तरफ़ की फ़ौजों ने जापानी के लिए जयध्वनि की। इसके बाद दोनों अफ़सर अपनी अपनी फ़ौज में शामिल हो गये और लड़ाई शुरू हुई। इस मल्लयुद्ध में जापानी को जो जीत हुई वह जू-जित्सू के ही प्रताप से हुई।

* * *

फोर्ट लाकहार्ट और गुलिस्तान के बीच में शेरगढ़ी नामकी एक जगह है। १८९७ ईसवी में जब हमारे प्रभु अङ्गरेज़ों की लड़ाई आफ़रीदियों से जारी थी, ३६ नम्बर सिक्खों की पल्टन के २१ सिपाही शेरगढ़ी की रक्षा कर रहे थे। अचानक उनपर सरहद्दवालों ने धावा किया। पर बहादुर सिक्ख ज़रा नहीं घबराये। क़ैद हो जाने की अपेक्षा मर जाना उन्होंने अच्छा समझा। बड़ी वीरता से उन्होंने शत्रुओं का सामना किया और जीते जी उनको शेरगढ़ी के भीतर नहीं धँसने दिया। अन्त में वे इक्कीस के इक्कीस वीर लड़ते लड़ते काम आ गये। इस अद्भुत शौर्य से प्रसन्न होकर गवर्नमेण्ट ने सिक्खों के प्रधान शहर अमृतसर में, बीस हज़ार रुपये लगाकर सङ्गमरमर की एक सुन्दर इमारत, उन वीर सिक्खों की यादगार में, बनवाई है। इमारत बहुत सुन्दर है। उसके दोनों तरफ़ सामने, दो पत्थर लगे हैं। उन पर उन बहादुर सिपाहियों के नाम और उनकी तारीफ़ खुदी हुई है। एक पत्थर पर जो लेख है वह अङ्गरेज़ी में है; और दूसरे पर जो है वह गुरमुखी में। इस स्मारक मन्दिर का चित्र इस संख्या के साथ पाठकों को समर्पित है।

* * *

गत फ़रवरी की सरस्वती में डाक्टर ग्रियर्सन की संक्षिप्त जीवनी प्रकाशित हुई है। उसके तीसरे पैराग्राफ़ में लिखा गया है कि "उनका जन्म तारीख़ ७वीं जनवरी सन् १८५७ को हुआ, अतएव इस समय आपकी उमर ४८ वर्ष की है। यह भूल है। डाक्टर साहब का जन्म १८५१ ई० का है और इस समय आपकी उमर ५४ वर्ष की है।

* * *

बीमारों के लिए एक नई तरह की घड़ी बनाई गई है। म्यूनिच के एक अध्यापक ने उसे बनाया है। उसके "डायल" के पीछे बिजुली का एक लैम्प लगा रहता है। उसका लगाव, एक तार के द्वारा, बीमार की चारपाई से रहता है। चारपाई वाले तार के छोर में एक बटन लगा दिया जाता है। जब बीमार वक्त देखना चाहता है तब वह उस बटन को दबाता है। दबाते ही घड़ी की छाया ऊपर छत पर पड़ती है। छाया में घण्टे और मिनट के काँटे और निशान, बढ़े हुए आकार में देख पड़ते हैं। अर्थात् यदि एक इञ्च लम्बा काँटा है तो वह उससे कई गुना बड़ा देख पड़ता है। इस घड़ी के रखने से, बिना गरदन टेढ़ा किये, अर्थात् इधर उधर मोड़े, बीमार आदमी अपनी चारपाई पर चित लेटे लेटे वक्त मालूम कर सकता है।

* * *

लण्डन में चिड़ियों को गाना सिखलाने के लिए एक आदमी ने एक स्कूल खोला है। २ रुपये देने से वह एक चिड़िया को तीन गीत सिखला देता है। इस स्कूल में तीन कमरे हैं। हर कमरे में एक फ़ोनोग्राफ़ (गानेवाला) यन्त्र रक्खा है। जो चिड़ियां सीखने के लिए आती हैं वे इन्हीं कमरों
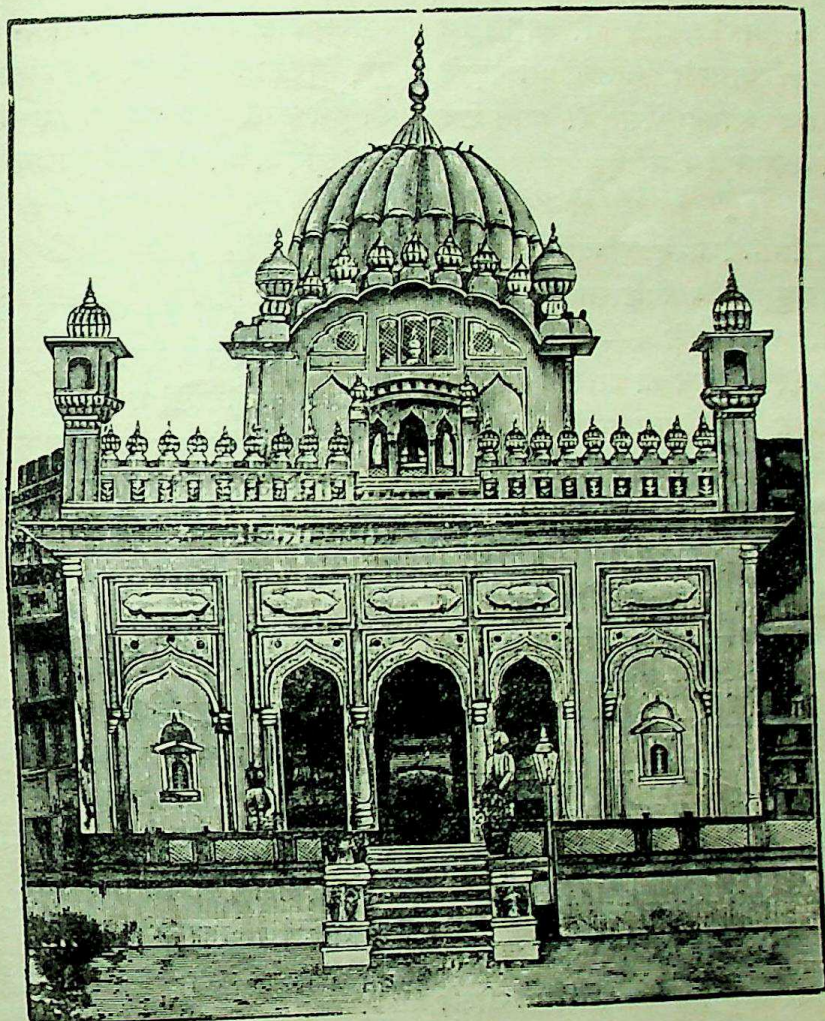
शेरगढ़ी का स्मारक मन्दिर।

में, बारी बारी से, रक्खी जाती हैं। एक चिड़िया पन्द्रह बीस रोज़ में तीनों गीत याद कर लेती हैं। जब से यह स्कूल खुला है तब से सिर्फ़ एक चिड़िया ऐसी कुन्द-ज़ेहन निकली है जिसको ये गीत याद नहीं हुए। और सबों ने उन्हें अच्छी तरह याद कर लिया। हिन्दुस्तान में आदमियों ही के लिए काफ़ी स्कूल नहीं; और जहां हैं भी वहां लोग पढ़ते नहीं। पर इङ्गलैण्डवाले चिड़ियों को पढ़ाने लगे हैं। कोई समय शायद ऐसा भी आवै जब वहां चिड़ियां भी वक्तृता देने लगें!

* * *

फ्रांस के विज्ञान-विशारद अध्यापक पोटर स्टीन्स ने एक अद्भुत यन्त्र निकाला है। उसके द्वारा वे अन्धों को आँखें देते हैं—अर्थात् उसकी सहायता से वे अन्धों में देखने की शक्ति फिर पैदा कर देते हैं। यहां तक कि जो जन्मान्ध हैं—जिन्होंने संसार की एक भी वस्तु नहीं देखी—उनको भी वे दृष्टिदान दे सकते हैं। स्टीन्स ने अपने इस अद्भुत यन्त्र की जाँच, डाक्टर केज़ की आँखों पर पट्टी बांध कर, कुछ दिन हुए, की और उसमें उनको पूरी सफलता हुई। डाक्टर साहब ने बन्द आँखों से कमरे की सब चीज़ों को देख लिया। अध्यापक स्टीन्स का मत है कि आदमी आँखों से नहीं देखता; किन्तु मग्ज़ (मस्तिष्क) अर्थात् मस्तक से देखता है। आदमी के मस्तक में, जहां सब शक्तियों के ज्ञान का ख़ज़ाना है, एक विशेष शक्ति है। वही देखनेवाले को सब चीज़ों के रूप, रङ्ग और आकार आदि का ज्ञान कराती है। देखी गई चीज़ों का सिर्फ़ अक्स आँख पर पड़ता है। आँख सिर्फ़ चीज़ों का अक्स (प्रतिबिम्ब) डालने के लिए है। आँख से मस्तक तक एक ज्ञान-तन्तु लगा है; वह तार का काम देता है। अक्स को वही मस्तक तक पहुंचाता है। उसके वहां पहुंचते ही, देखनेवाले को देखी हुई चीज़ का ज्ञान हो जाता है। यदि चीज़ों का अक्स बिना आँख और उस तन्तु-विशेष की सहायता के मस्तक तक, किसी तरह, पहुँच जाय तो मनुष्य को बिना आँख के भी सब पदार्थ देख पड़ने लगें। इसी भित्ति पर—इसी आधार पर—अध्यापक स्टीन्स ने अपना यन्त्र बनाया है। जिस तरह टेलिफ़ोन के द्वारा आवाज़ कान तक जाती है उसी तरह इस यन्त्र के द्वारा प्रकाश मस्तक तक पहुँचता है। इसकी परीक्षा अनेक विद्वानों ने की और सब स्टीन्स साहब की कामयाबी पर आश्चर्य-चकित हुए। विज्ञान चाहे जो करे। वह अन्धों को आँखें भी देने लगा। सम्भव है, किसी समय, वह मुर्दों को ज़िन्दगी भी देने की दया करे।

* * *

बन्दरों की बोली सीखने की कोशिश बहुत दिनों से हो रही है। अमेरिका के अध्यापक गार्नर जी जान से इसके पीछे पड़े हुए हैं। इस तरह की कोशिश करनेवालों में उनका नम्बर सबसे ऊंचा है। बहुत दिनों तक आप आफ़रीक़ा के जङ्गलों में बन्दरों के बीच रहे हैं। पर अभी तक बन्दरों के साथ बातचीत करने में आपको कामयाबी नहीं हुई है। अब आप दुबारा आफ़रीक़ा जाने को तैयार हैं। इस दफ़ा आप आफ़रीक़ा के पश्चिमी किनारे पर गेबून और केप लोपेज़ में अपना ख़ेमा रक्खेंगे। जो यन्त्र इस दफ़ा आप अपने साथ ले जायँगे वे बहुत क़ीमती और बहुत बड़े काम के हैं। उनमें से एक बहुत बड़ा फ़ोनोग्राफ़ भी है। यन्त्र बनाने में दुनिया में सब से अधिक नामवरी हासिल करने वाले एडिसन साहब ने इस फ़ोनोग्राफ़ को ख़ुद अपनी आँख के सामने बनवाया है। इसीमें बन्दरों की बोलियां भरी जायंगी। २७ मन वज़नी लोहे का एक पिञ्जड़ा भी गार्नर साहब अपने साथ ले जायंगे। उसीके भीतर बन्द हो कर, जङ्गल में बन्दरों के बीच, आप बैठेंगे और उनकी बातचीत और स्वभाव आदि की जानकारी हासिल करेंगे। साहब को पूरी उम्मेद है कि इस दफ़ा की जाँच में उन्हें ख़ूब कामयाबी होगी। एवमस्तु।

* * *

संस्कृत को सामयिक पुस्तकों में अभी तक संस्कृतचन्द्रिका ही नाम लेने योग्य थी। अब एक और हुई है। इसका नाम मित्रगोष्ठी-पत्रिका है। यह एक वर्ष से काशी से निकलती है। काशी में मित्रगोष्ठी नामक एक समाज है। वङ्गवासि-विद्वानों के उद्योग से उसका जन्म हुआ है। इसी मित्रगोष्ठी की यह पत्रिका है। इसमें अच्छे अच्छे लेख रहते हैं। इसीसे इसके प्रचार में सफलता भी हुई है। संस्कृत का इससे बहुत कुछ उपकार हो सकता है। अतएव संस्कृत भाषानुरागी-मात्र के आश्रय की यह पात्र है। यदि इसकी भाषा कुछ अधिक सरल हो जाय और इसमें क्लिष्ट विषय कम रहा करें तो और भी अच्छा हो। इस पत्रिका की चैत्र की संख्या में यह श्लोक है--

बाला तन्वी मृदुतनुरियं त्यज्यतामत्र शङ्का
दृष्टा काचिद् भ्रमरभरतो मञ्जरी भिद्यमाना।
तस्मादेषा रहसि भवता निर्दयं पीड़नीया
मन्दाक्रान्ता विसृजति रसं नेक्षुयष्टिः समग्रम् ॥

इसके विषय में लिखा गया है कि यह "विकट नितम्बा" नाम से प्रसिद्ध किसी स्त्री-कवि का है। परन्तु यह पद्य भानुदत्त मिश्र की रसमञ्जरी नामक पुस्तक में मिलता है। ऐसी पुस्तकों में उदाहरण के लिए जो पद्य दिये जाते हैं वे अक्सर और और पुस्तकों से ले लिये जाते हैं। पर भानुदत्त ने अपनी पुस्तक में जितने पद्य दिये हैं सब अपने ही बनाये दिये हैं। लिखा तो उन्होंने यही है। रसमञ्जरी के अन्त में आप कहते हैं—

तातो यस्य जनेश्वरः कविकुलालङ्कारचूड़ामणि—
र्देशो यस्य विदेहभूः सुरसरित्स्यन्देन सम्वेष्टिता।
पद्येनात्मकृतेन तेन कविना श्रीभानुना बोधिता
वाग्देवीश्रुतिपारिजातकुसुमस्पर्द्धाकरी मञ्जरी ॥

इसमें "आत्मकृतेन पद्येन" इस बात को दृढ़ करता है कि रसमञ्जरी में जितने पद्य हैं सब भानुदत्त के ही हैं। अतः पूर्वोक्त पद्य "विकट-नितम्बा" का होने में सन्देह है।

* * *

मित्रगोष्ठी-पत्रिका में "साहित्यरत्नावली" छपा करती है। इस अवली में प्राचीन संस्कृत कवियों का ज़िकर रहता है और उनकी कविता के उदाहरण भी रहते हैं। पर यह ज़िकर बहुत ही थोड़ा रहता है और कविता के उदाहरण भी सिर्फ़ एक ही आध स्थल के दिये जाते हैं। पत्रिका के पढ़नेवालों को इससे सन्तोष नहीं हो सकता। पत्रिका को अकसर वही लोग लेते होंगे जिनको संस्कृत से कुछ अनुराग है। ऐसे पाठक संस्कृत के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों के नाम आदि से स्वयं ही परिचित रहते हैं। इससे उनके लिए इस रत्नावली में कुछ विशेषता होनी चाहिए। यह लिख देना कि अमुक कवि को हुए लगभग इतने वर्ष हुए (या उसका समय बिलकुल ही ज्ञात नहीं); उसके इतने ग्रन्थ प्रचलित हैं; उनमें से अमुक ग्रन्थ के अमुक स्थल का एक नमूना यह है—विशेषता से बिलकुल ही ख़ाली है। इस तरह के उल्लेख से बहुत कम आनन्द मिल सकता है। क्षेमेन्द्र बहुत बड़ा कवि हो गया है। उसने न मालूम कितने ग्रन्थ लिखे हैं। एक पृष्ठ में उसके ग्रन्थ आदि का नाम लिखकर, चार पृष्ठ में उसके "दशावतारचरित काव्य" से रावणयात्रासम्बन्धी लगातार ५६ श्लोक, उसकी कविता के उदाहरण में, लिखदेने की गिनती साहित्यरत्नावली में पिरोने लायक़ रत्नों में नहीं हो सकती। यदि और कुछ न लिखिए तो इतना तो लिखिए कि इस कवि के जो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं उनमें किस किस चीज़ का वर्णन है और वह कैसा है। क्षेमेन्द्र के ग्रन्थों में बोधिसत्वावदानकल्पलता बहुत आदरणीय ग्रन्थ है। पर मित्रगोष्ठी पत्रिका की नवीं संख्या में उसका नाम देने के सिवा उसके विषय में एक अक्षर तक नहीं है। जिसने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं ऐसे कवि के किसी एक ग्रन्थ के किसी एक स्थल की कविता का अवतरण दे देने से उसकी योग्यता का बहुत ही कम अनुमान लोगों को हो सकता है। आशा है इन बातों का विचार इस पत्रिका के विद्वान् सम्पादक करेंगे। हमारी

अल्पबुद्धि में तो यह आता है कि जिन कवियों के विषय में अधिक बातें मालूम हैं उन्हीं पर प्रबन्ध लिखना और प्रत्येक प्रबन्ध को कुछ अधिक विस्तृत करना अच्छा होगा। यदि कई अङ्कों तक किसी प्रबन्ध को अपूर्ण स्थिति में रखना उचित न जान पड़े तो प्रत्येक अङ्क में प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों के एक ही दो ग्रन्थों को, या एकही दो विशेष बातों की, विवेचना हो सकती है।

* * *

ऊपर एक जगह "स्त्री-कवि" शब्द का प्रयोग आया है। इसे लिखते समय हमें एक और शब्द याद आ गया। वह शब्द "कविया" है। मुंशी देवीप्रसाद साहब ने महिलामृदुवाणी नाम की एक पुस्तक लिखी है। जिन स्त्रियों ने हिन्दी में पद्य रचना की है उन "काव्यकुशला कवियाकान्ताओं की काव्यरचना और जीवन-चरित्रों का" इसमें वर्णन है। यह "मृदुवाणी" बनारस से निकलनेवाली ग्रन्थमाला में प्रकाशित हुई है। इस बात को तो कवि ही जान सकेंगे कि इस पुस्तक की वाणी कहां तक मृदु है। पर हां राजपूताने की प्रान्तिक वाणी के पद्य जहां जहां पर हैं वहां वहां पर और प्रान्तवालों के सिर पर फटे बांस का सा प्रहार होने का डर है। "कवियाकान्ता" इस सामासिक शब्द पर हम कुछ नहीं कहते, पर कवि शब्द का स्त्री-लिङ्ग कविया विलक्षणता से ख़ाली नहीं है। इस नियम के अनुसार पति का स्त्री-लिङ्ग पतिया; यति का यतिया; अहि का अहिया और मुनि का मुनिया हुआ! इस पुस्तक के आरम्भ में एक छोटी सी भूमिका भी है। अफ़सोस है उसकी भाषा पर भी किसी ने विचार नहीं किया। उसमें एक जगह लिखा है—"हमने जो भाषाकवियों का इतिहास लिखने के लिये प्राचीन ग्रन्थों और कविवृत्तान्तों की खोज की थी तो उस प्रसंग में कुछ कविता ऐसी भी मिली जो काव्यकुशला कमलाओं के कोमल मुखारबिंदों की निकली हुई थीं।" शिव शिव!

प्रसिद्ध मूर्तिकार म्हातरे।
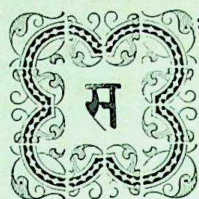
सरस्वती में इस देश के चतुर चित्रकार राजा रविवर्मा का जीवनचरित भी प्रकाशित हो चुका है और उनके कई मनोमुग्धकारी चित्रों का प्रतिबिम्ब भी पाठकों की भेंट किया जा चुका है। जिस प्रकार रविवर्मा ने चित्रविद्या में नाम पैदा किया है उसी प्रकार मूर्तिकार म्हातरे ने मूर्तिरचना में प्रसिद्धि पाई है। मिट्टी और पत्थर की मूर्तियां बनाने में आपका कौशल देखकर बड़े बड़े विज्ञानी आश्चर्य चकित होते हैं; विलायत तक के मूर्तिकार उनके सामने हार मानते हैं; गवर्नर और गवर्नरजनरल तक उनपर प्रशंसापत्रों की वृष्टि करते हैं। इस अल्पवयस्क, परन्तु महा-कुशल, मूर्तिकर्ता का हम संक्षिप्त जीवनचरित सरस्वती के पढ़नेवालों को सुनाते हैं।

श्रीयुक्त म्हातरे का पूरा नाम गणपतिराव काशिनाथ म्हातरे है। ये दक्षिण के रहनेवाले हैं। गणपतिराव इनका नाम है, काशिनाथ इनके पिता का, और म्हातरे इनके कुल का। ये सोमवंशीय क्षत्रिय हैं। इनका जन्म १८७५ ई० में हुआ। इनके पिता काशिनाथ केशव म्हातरे पूना में कमसरियट मोहकमे में कर्म्मचारी थे। गणपतिराव ने वहीं अपनी मातृभाषा मराठी सीखी। ये अपने माता पिता के चौथे लड़के हैं। उस समय इनका एक भाई पूना की वैज्ञानिक पाठशाला (College of Science) में पढ़ता था। वह घर पर कभी कभी अभ्यास के लिए चित्र खींचा करता था। उसे चित्र खींचते देख बालक गणपतिराव का चित्त उस ओर आकर्षित हुआ। लड़कपन ही से चित्र खींचने का उनको शौक़ पैदा हुआ। कुछ दिनों में उन्होंने नियमानुसार चित्रविद्या सीखकर चित्रकार होने का निश्चय किया। यथासमय उनके पिता ने पेन्शन ली और बम्बई में आकर वे रहने

लगे। गनपतिराव भी पिता के साथ बम्बई आये। किताबी विद्या सीखने में उनका चित्त न लगा। इसलिए उन्होंने बम्बई प्रान्त के पाँचवें क्लास तक पहुँच कर अङ्गरेज़ी पढ़ना छोड़ दिया। यह क्लास इस तरफ़ के पुराने मिडिल क्लास के बराबर है। पढ़ना छोड़कर १६ वर्ष की उमर, अर्थात् १८९१, में गणपतिराव ने बम्बई के सर जमशेदजी जीजा-भाई की शिल्पकला-पाठशाला (School of Arts) में प्रवेश किया। वहां, थोड़े ही दिनों में, उन्होंने चित्र खींचने, रङ्ग का काम करने, नमूने आदि बनाने में बहुत कुछ विज्ञता प्राप्त करली। जितनी परीक्षायें वहां होती हैं वे सब उन्होंने बड़ी नामवरी के साथ पास कीं। सब परीक्षाओं में उनका स्थान ऊँचा रहा; अनेक प्रशंसापत्र, अनेक उपहार, और अनेक पदक उनको मिले। इस समय उनके पास इतने प्रशंसापत्र (certificates) हैं, कि छापने पर, उनकी कोई ५० पन्ने की एक किताब हो गई है! गणपतिराव के बड़े भाई द्वारकानाथ ने भी इसी कला-भवन में शिक्षा पाई। चित्र बनाने और रंग का काम करने में उन्होंने भी वहां ख़ूब नाम पाया। उनको भी बहुत से प्रशंसा-पत्र और पदक मिले। अब वे एक प्रसिद्ध चित्र-कार हैं।

कला-भवन छोड़ने पर गणपतिराव ने मूर्ति बनाने की विद्या में विशेष प्रावीण्य प्राप्त करने का सङ्कल्प किया। इस विषय में म्हातरे महाशय को कला-भवन से बहुत ही कम सहायता मिली। कला-भवन के अध्यक्ष ग्रिफ़िथ साहब से उन्होंने कोई छ महीने तक ही शिक्षा पाई। मूर्ति बनाने की विद्या में जो कुछ उन्होंने सीखा सब अपने ही यत्न से और अपने ही घर पर सीखा। अतएव इस विद्या में जो कामयाबी उनको हुई है वह और भी आश्चर्यजनक और तारीफ़ के लायक़ है। उन्होंने सारे संसार को इस बात का पक्का सबूत दे दिया कि वे स्वयंसिद्ध मूर्तिकार हैं; मूर्तिविद्या उनकी स्वाभाविक सम्पत्ति है; उसे उन्होंने क़िसीसे सीखा नहीं। मूर्ति बनाने में उनकी कुशलता से प्रसन्न होकर १८९५ ईसवी में बम्बई की "आर्ट सोसायटी" नामक समाज ने उनको एक पदक दिया। १८९६ में उनको दो पदक मिले—मूर्तिविद्या के लिए उन्होंने "विक्टोरिया पदक" (Victoria Medal) पाया और चित्रविद्या के लिए "मेयो पदक" (Mayo Medal)। १८९५ से म्हातरे महाशय, बम्बई की आर्ट सोसायटी की प्रदर्शनी में, अपने बनाये हुए रङ्गीन चित्र और मूर्तियों के नमूने बराबर दिखलाते आये हैं, और अपनी कारीगरी के उपलक्ष्य में अनेक प्रशंसापत्र और उपहार उन्होंने पाये हैं।

परन्तु इस स्वयंसिद्ध मूर्तिकार की कारीगरी का अप्रतिम नमूना १८९६ में लोगों के दृग्गोचर हुआ। इस समय म्हातरे की उमर कुल २१ वर्ष की थी! यह नमूना एक स्त्री की मूर्ति है। उसका अङ्गरेज़ी नाम "To the Temple" है। हिन्दी में उसे "मन्दिराभिमुखी" कह सकते हैं। यह मूर्ति प्लास्टर आफ़ पेरिस (Plaster of Paris) नामक एक प्रकार के चूने की बनी है। एक रूप-वती तरुणी स्त्री पूजा की सामग्री हाथ में लेकर मन्दिर को पूजा करने जा रही है। ऐसे समय में जो भाव भावुक स्त्रियों के हृदय में उदित होते हैं वे इस मूर्ति की मुखचर्य्या और चाल ढाल से स्पष्ट देख पड़ते हैं। उसकी सुकुमारता, आनन्दित मुद्रा, साड़ी पहनने का तर्ज़, एक पैर का उठाना और सारे शरीरावयवों का यथास्थितपना देखकर स्वदेशी कारीगर ही नहीं विदेशी कारीगर तक दङ्ग हो गये। इसका आकार एक सजीव स्त्री के आकार के बराबर है। यह बम्बई के स्कूल आफ़ आर्टस् में रक्खी है। इसके फ़ोटो स्कूल के अध्यक्षों ने बड़े बड़े अधिकारियों के पास, यहां और विला-यत दोनों जगह, भेजे। जिसने उन्हें देखा सब तन्मय हो गये। प्रत्यक्ष मूर्ति की सुन्दरता फ़ोटो में नहीं आ सकती; परन्तु फ़ोटो ही को देखकर लोग म्हातरे महाशय के शिल्प-कौशल का गुणगान

करने लगे। वाइसराय और बम्बई के गवर्नर ने इस मूर्ति का फ़ोटो बड़े प्रेम और बड़े आदर से स्वीकार किया, और मूर्तिकार की बहुत प्रशंसा की। विलायत में सर जार्ज बर्डउड भारतवर्ष की कारीगरी का सबसे अच्छा ज्ञान रखते हैं। वे इस विषय के प्रमाण माने जाते हैं। "मन्दिराभिमुखो" की प्रतिमा के चित्र को देखकर वे इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने उसे अप्रतिम ठहराया। उन्होंने कहा कि इस मूर्ति में भारतवर्ष की स्त्रियों की पवित्रता और उन के गार्हस्थ्य जीवन की मनोहर छाया उनको प्रत्यक्ष देख पड़ी। इस प्रतिमा ने सबका चित्त आकृष्ट कर लिया; सबका हृदय हर लिया। स्कूल आफ़ आर्ट्स के प्रधान अध्यापक ने म्हातरे महाशय को स्वाभाविक प्रतिभावान् बतलाया। "टाइम्स आफ़ इण्डिया" ने भी उनकी ख़ूब तारीफ़ की। उन पर सब ओर से प्रशंसा-पुष्पों की वर्षा होने लगी। शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर ने गवर्नमेण्ट को रिपोर्ट की कि यह मूर्ति शिल्प-चातुर्य्य की पराकाष्ठा की व्यञ्जक है। महाराजा गायकवार की इच्छा को पूर्ण करने के लिए इस प्रतिमा को, गणपतिराव, बड़े प्रयत्न से बरौदा ले गये। उनको वहां बहुत कुछ मिलने की आशा थी। परन्तु "भाग्यं फलति सर्वदा"। कुल २०० रुपये उनको इस प्रतिमा के दर्शन की दक्षिणा गायकवार से मिली। गणपतिराव की इच्छा योरप जाकर मूर्ति बनाने की विद्या सीखने की बहुत थी। उनको आशा थी कि पाश्चात्य-शिक्षण-प्राप्त, शिल्पकर्म्म की योग्यता और आवश्यकता को समझनेवाले महाराज, उस विषय में, उनकी सहायता करेंगे। परन्तु उन्हें बरौदा से निराश लौटना पड़ा। ऐसी अद्वितीय मूर्ति को लेकर किसी राजा महाराजा ने म्हातरे महाशय के उत्साह को नहीं बढ़ाया। इसलिए लाचार हो कर उन्होंने, नाममात्र के लिए १२००) मूल्य लेकर, उसे स्कूल आफ़ आर्ट्स को दे दिया। अब यह मूर्ति इस स्कूल के अजायबघर में, और अनेकानेक प्रसिद्ध और प्रशंसित मूर्तियों के बीच, विराजमान है। वहां पर वह अपनी निराली छवि से दर्शकों के मन को मोहित करती है। इसका चित्र पाठ[कों] को, इस संख्या के साथ, भेंट किया जाता है।

शिल्पिशिरोमणि म्हातरे का दूसरा प्र[सिद्ध] काम सरस्वती को प्रतिमा है। इस मूर्ति को उन्होंने प्लास्टर आफ़ पेरिस की बनाया है। सरस्[वती] मयूर पर स्थित है और सितार बजा रही है। [इ]से सुन्दरता का आगार कहना चाहिए; अथवा मूर्ति-मती सुन्दरता ही कहना चाहिए। इस मूर्ति [का] तर्ज़ "मन्दिराभिमुखी" से भी अच्छा है। [यह] बहुत ही सरस बनी है। सरस्वती का मुकुट, उस की सौम्य-मुद्रा, उसके मुख और शरीर की सुन्द-रता और मयूर की आकृति अतिशय मनोरम है। इस मूर्ति ने म्हातरे महाशय की कीर्ति को [और] भी दूर दूर तक फैला दिया। उन्होंने [इसे] १९०० वाली पेरिस की प्रसिद्ध प्रदर्शनी में भेजा। वहां से उनको एक पदक आया और एक सुविख्यात सम्मान-सूचक प्रशंसापत्र (Honorable M[en]tion Diploma) भी प्राप्त हुआ। खेद की बात [है] कि यह मूर्ति पेरिस से लौटते समय रास्ते में [टूट] गई। इसे बन्द करने में बड़ी बेपरवाही हुई [जान] पड़ती है। यह एक अद्भुत मूर्ति थी और यो[रप] और अमेरिका के वर्तमान मूर्तिकारों की मूर्तियों से सुघरता में, सब प्रकार, विशेष थी, कम न[हीं]। इसका भग्नांश म्हातरे महोदय के कारख़ाने [में] अभी तक रक्खा है। टूटने के पहले इस सरस्वती-मूर्ति का जो फ़ोटो लिया गया था उसकी नक़[ल] यहां दी जाती है।

म्हातरे महोदय का तीसरा काम पार्वती [की] प्रतिमा है। यह भी प्लास्टर आफ़ पेरिस की [है]। यह मूर्ति शबरी (भिल्ल-भार्य्या) के भेष में [है]। अर्जुन को घोर तपश्चर्य्या करते देखकर सब दे[वता] डर गये। तब वे महादेव के पास गये, और [निवेदन] किया, कि युक्ति से आप अर्जुन को इस तपस्[या से] निवारण कीजिए। इसपर, भिल्ल का भेष बना[कर] शङ्कर, अर्जुन के पास गये। अपने भेष के अनु[रूप]

मन्दिराभिमुखी
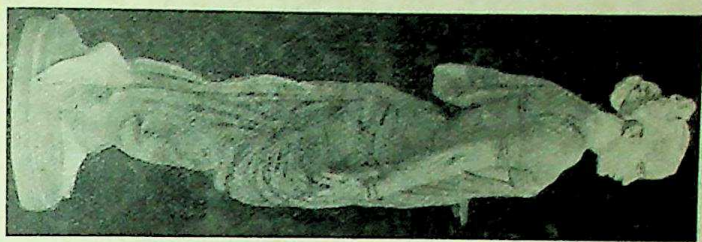
* शबरी *
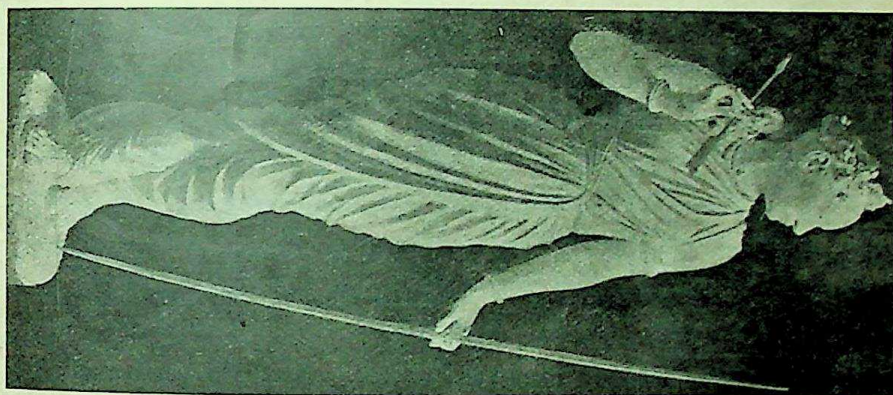
सरस्वती
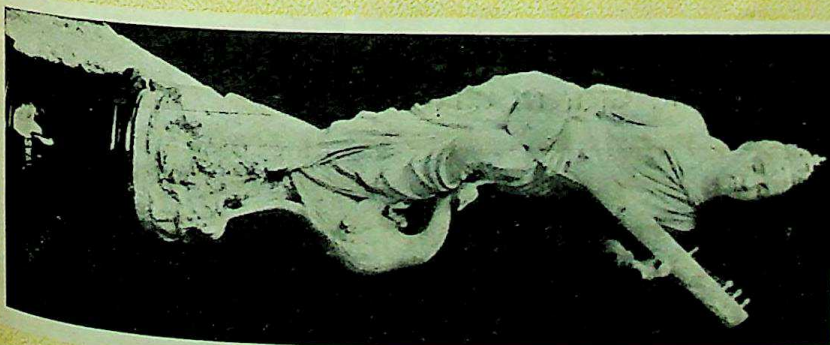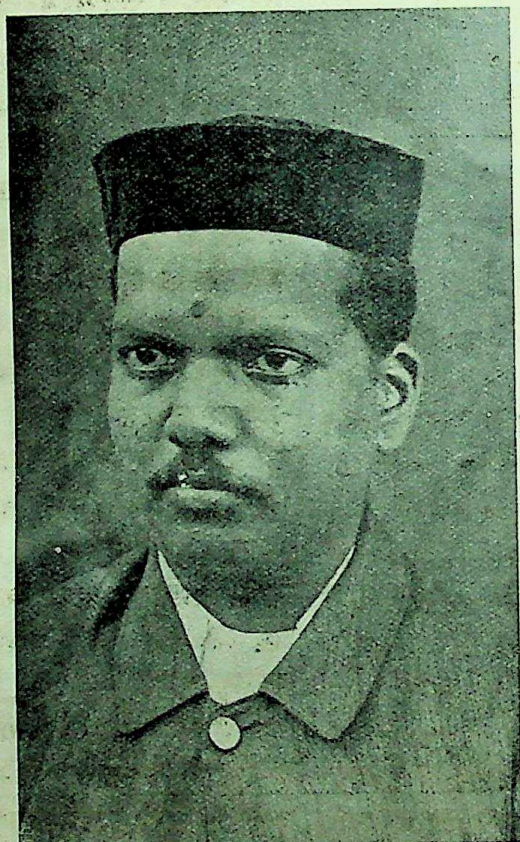
गणपति काशीराम म्हातरे।

पार्वती को भी शबरी बनाकर वे साथ ले गये। यह कथा महाभारत में है। इसी कथा का अवलम्बन करके मूर्तिकार म्हातरे ने पार्वती की प्रतिमा शबरी के रूप में बनाई है। इसकी सुन्दरता, वेशविन्यास, भावभङ्गी और वस्त्राभूषणों को देखकर देखनेवाले का चित्त मोहित हो जाता है। शिल्पकार्य्य में जो लोग कुशल हैं उनका मत है कि यह मूर्ति ऊपर वर्णन की गई दोनों मूर्तियों से बढ़कर है। यह पूरे आकार की है और इसे देखकर इस के सजीव होने का भ्रम होता है। देहली दरबार के समय, १९०३ की जनवरी में, लार्ड कर्ज़न ने जो प्रदर्शनी खोली थी, उसमें यह प्रतिमा दिखलाई गई थी। इसके लिए म्हातरे महाशय को पहले दरजे का इनाम मिला, और सोने का एक पदक भी उन्हें दिया गया। यह मूर्ति मूर्तिकार के कारखाने में रक्खी है और उसकी शोभा को बढ़ा रही है। इसके सौन्दर्य्य का कुछ कुछ अनुमान इसके चित्र से पाठकों को हो सकैगा। यह चित्र भी उनकी भेंट है। "कुछ कुछ अनुमान" हम इस लिए कहते हैं, क्योंकि असल का भाव नक़ल में कदापि पूरा पूरा नहीं आ सकता।

गणपतिराव म्हातरे ने इस उमर में और भी अनेक शिल्पकार्य किये हैं। उनमें से दो चार का उल्लेख हम नीचे करते हैं—

(१) कराची में एक धनवान सौदागर हैं। उनका नाम है एच० जे० रुस्तमजी। उनका बस्ट (अर्द्धाकृति प्रतिमा)। यह सङ्गमरमर का है। इस से रुस्तमजी इतने प्रसन्न हुए कि बस्ट की क़ीमत के सिवा आपने इनाम के तौर पर भी बहुत कुछ दिया।

(२) परलोकवासी वरजीवनदास माधवदास का सङ्गमरमर का बस्ट।

(३) "स्नानोत्तर" (After Bath) नाम की प्रतिमा। यह प्लास्टर आफ़ पेरिस की है। इसके लिए म्हातरे महाशय को भावनगर का रजतपदक मिला और साथ ही उन्होंने इनाम भी पाया।

(४) श्रीयुक्त यन० जी० वाड़िया के दो सङ्गमरमर के बस्ट।

(५) पारसियों के अस्पताल में रखने के लिए डाक्टर टी० बी० नारिमन का बस्ट। रायबहादुर यम० सी० मर्ज़बान इसे देखकर इतना प्रसन्न हुए कि इसकी क़ीमत के सिवा एक बहुमूल्य उपहार भी आपने दिया।

(६) पारसी लोगों के प्रधान देव ज़ोरैस्टर का बस्ट। सङ्गमरमर का।

(७) परलोकवासी रावसाहब विश्वनाथ नारायण माण्डलिक का प्लास्टर आफ़ पेरिस का बस्ट। इन रावसाहब की मूर्ति स्थापन करने के लिए बम्बई में एक कमिटी है। कमिटी ने मूर्ति बनाने का काम विलायत के एक प्रसिद्ध शिल्पकार को दिया। मूर्ति बनाने के पहले शिल्पकार ने मिट्टी का एक नमूना भेजा। वह नमूना माण्डलिक के फोटो से बिलकुल न मिला। इस पर कमिटी ने स्कूल आफ़ आर्टस् के प्रधान अध्यक्ष को नमूना बनाने का काम दिया। नमूना बना। परन्तु वह भी पसन्द न आया। तब लोगों को म्हातरे की याद आई। म्हातरे महाशय ने ऐसा अच्छा नमूना बनाया कि माण्डलिक के फ़ोटो से वह बिलकुल मिल गया। जब कमिटी ने उसे पसन्द कर लिया तब म्हातरे उसीके अनुसार सङ्गमरमर की मूर्ति बना देने के लिए प्रस्तुत हुए। परन्तु बड़े आश्चर्य्य की बात है कि कमिटी ने यह काम उन्हें न देकर उनके नमूने को उसी, पूर्वकथित, शिल्पकार के पास मूर्ति बनाने के लिए विलायत भेजा! देशी कला-कौशल की उसने ख़ूब क़दर की! विलायत के कारीगर को बनाने का ठेका देकर उसे तोड़ने का साहस शायद कमिटी को नहीं हुआ। यदि कमिटी यह लिखती कि तुम्हारा नमूना ठीक नहीं, इसलिए पसन्द नहीं आया, तो विलायती शिल्पकार महात्मा इस बात को शायद क़बूल भी न करते।

धीरे धीरे लोग म्हातरे महाशय की क़दर करने लगे हैं। यह सैाभाग्य की बात है। इस समय उनके कारख़ाने में कई काम हो रहे हैं। यथा—

(१) श्रीरघुनाथ नामक एक महात्मा की मूर्ति, सङ्गमरमर की, बैठी हुई स्थिति में।

(२) कोल्हापुर के दरबार के लिए महारानी विक्टोरिया का बस्ट, सङ्गमरमर का।

(३) अहमदाबाद की विक्टोरिया मेमोरियल कमिटी के लिए, महारानी विक्टोरिया की प्रतिमा। यह पूरे आकार की मूर्ति होगी और बहुमूल्य सङ्गमरमर की बनैगी। मूर्ति के ऊपर जो छत्र रहैगा उसकी बनावट इस देश की सी होगा। मूर्ति के नीचे बैठक भी रहैगी।

ये काम शायद अब तक ख़तम भी हो गये होंगे।

म्हातरे महाशय की यह हार्दिक इच्छा है कि वर्ष दो वर्ष के लिए वे योरप की सैर करें; और वहां रोम, पेरिस और लण्डन के प्रसिद्ध प्रसिद्ध सङ्गतराश और मूर्तिकारों के काम को देखकर अधिक अनुभव प्राप्त करें। इसके लिए द्रव्य दरकार है। व्यर्थ के चन्दों में फूंकने के लिए इस देश के धनवानों के पास कुबेर की सम्पत्ति टूट पड़ती है; परन्तु ऐसे ऐसे उपयोगी कामों के लिए उनकी गाँठ से एक फूटी कौड़ी भी नहीं निकलती। यह बड़े अफ़सोस की बात है; बड़ी लज्जा की बात है। म्हातरे महाशय की सहायता से सहायक की, देश की, और देशवासियों की, सबकी, शोभा होगी। उनकी इस इच्छा के पूर्ण होने के अभी कोई लक्षण नहीं देख पड़ते। यथाशक्ति वे स्वयं ही इसका प्रबन्ध कर रहे हैं। परन्तु इतने विस्तृत देश में ऐसे अलैाकिक मूर्तिकार की एक छोटी सी अभिलाषा को पूर्ण करनेवाले का न मिलना इस देश के लिए भारी कलङ्क का विषय है। जगदीश्वर इस शिल्पी को चिरञ्जीव रक्खे और अपनी शिल्प-कला से इस अधोगामी देश का सिर ऊँचा करने की उसे शक्ति दे!

ग्रीष्म।

[१]

हा हा! असह्य यह दुःख सहा न जाता;
प्राखर्य्य से बहुत ही सब को सताता।
आया प्रचण्ड यह, ज्ञात नहीं, कहां से,
क्या दण्ड है यह मिला विधि के यहां से!

[२]

क्या हैं हुए कुपित मन्मथ-भस्मकारी
आलस्य आँख अपनी सहसा उघारी?
अग्न्यस्त्र सूर्य अथवा हम पै चलाते;
पाते पता न हम क्यों इतना जलाते?

[३]

क्या वाड़वानल नया विधि का बनाया
तेरे निदेश-अनुसार यहां, महेश,
दारिद्र्य-सागर-निवास-निमित्त आया?
तो क्यों बढ़ै न फिर आतप-जात क्लेश!

[४]

क्या देश-बाल-विधवा-तन-तीव्र-ताप-
ज्वाला कराल इस आतप के बहाने
न्यायी नितान्त जगदीश्वर की पठाई,
आई कठोर इस भारत को जलाने?

[५]

क्या देश-भक्ति-मय तेज हमें, विधाता,
स्वस्थान से स्खलित हो गरमी दिखाता!
जैसे मनुष्य-जठराग्नि, ज्वरावतार
ले के, प्रसारित करै गरमी अपार।

[६]

क्या ग्रीष्म है भरत-भू-भ्रमणार्थ आया?
आः! तो उसे मृतक-मारण क्यों सुहाया?
जो आपही मृत उसे फिर मारना क्या?
आत्मज्ञ को दुख-सुखादि विचारना क्या!

[७]

हे देव-देव, मम बुद्धि नहीं ठिकाने;
क्या क्या प्रलाप मुख से निकले, न जाने।
है वस्तुमात्र तव जो जग में दिखाती
बेकाम एक न कहीं पर दृष्टि आती।

[८]

जो दुःख हेतु हमको जग में दिखाते,
वे ही अनल्प सुख भी बहुधा दिलाते।
जो ग्रीष्म यों न सब को अति ही तपाता,
तो "मानसून" फिर क्यों कर मेंह लाता ?

सनातनशर्म्मा सकलानी।

पुनः करो उद्योग।

[अङ्गरेज़ी कविता "TRY AGAIN"
का अनुवाद]

[१]

'T is a lesson you should heed,—
Try again.
If at first you don't succeed,
Try again.
Let your courage then appear,
For if you will persevere,
You will conquer, never fear,—
Try again.

※

देखो बात याद यह कर लो,—
पुनः करो उद्योग।
यदि तुम सफल न पहले हो तो,
पुनः करो उद्योग।
साहस को दिखलाओ अपने,
क्योंकि सदा साहस ही से
जीत सकोगे, भीत न होना,
पुनः करो उद्योग।

[२]

Once or twice though you should fail,
Try again.
If you would at last prevail,
Try again.
If we strive 'tis no disgrace
Though we may not win the race.
What should you do in that case ?
Try again.

※

बार एक दो सफल न हो यदि
पुनः करो उद्योग।
विजय चाहते हो जो तो तुम
पुनः करो उद्योग।
कोशिश करने में क्या लज्जा ?
यदि न सफलता आवे हाथ
तो क्या करना तुम्हें चाहिए ?
पुनः करो उद्योग॥

[३]

If you find your task is hard,
Try again.
Time will bring you your rewrd,
Try again.
All that other folk can do,
Why with patience should not you ?
Only keep this rule in view,—
Try again.

※

काम कठिन जो जान पड़े तो
पुनः करो उद्योग।
समय सफलता देगा तुमको;
पुनः करो उद्योग।
जिसे सभी करते हैं उसको
धीरज धर तुम क्यों न करो ?
इसी नियम को सदा याद रख,
पुनः करो उद्योग॥

गोविन्दशरण त्रिपाठी।

हंस-सन्देश ।

निषध देश का राजा नल, एक बार, वनविहार को निकला। नगर से कुछ दूर निकल जाने पर, एक उपवन में उसने एक मनोहर तालाब देखा। उसमें ख़ूब कमल खिल रहे थे। मछलियां खेल रही थीं; और अनेक प्रकार के जलपक्षी कलोल कर रहे थे। वहां पर उसने एक बहुत ही मनोरम हंस को देखा। राजा को वह इतना पसन्द आया कि उसने उसे सजीव पकड़ना चाहा। इस लिए उसने अपने निषङ्ग से एक सम्मोहन शर उस पर चलाने के लिए निकाला। शर को उसने शरासन पर रक्खा ही था कि उसने एक अलक्षित वाणी सुनी। उस वाणी का मर्म्म यह था कि—"हे नरेश, इस पर बाण मत छोड़। यह तेरा अभीष्ट सिद्ध करेगा। तेरी ही रूप-गुण-सम्पदा के अनुरूप यह तुझे एक त्रिभुवन-मोहिनी राज्यकन्या प्राप्त करावेगा। उसे तू अपनी महिषी बनाना"। यह सुनकर उस आकर्णकृष्ट बाण को राजा ने धनुष से उतार लिया।

नल की इस दयालुता पर वह हंस बहुत प्रसन्न हुआ। वह अपना स्थान छोड़कर नल के कुछ निकट आया और बोला—"हे निषधनाथ, ईश्वर तेरा कल्याण करे। तू ने मुझ पर दया दिखाई है। इसके बदले में मैं भी तेरी कुछ सेवा करना चाहता हूं। तू मुझे साधारण पक्षी मत समझ। मैं ब्रह्मा के रथ को खींचता हूं; इन्द्र के सिंहासन के पास बैठता हूं; जयन्त इत्यादि देव-बालकों के साथ खेलता हूं; और मन्दाकिनी के किनारे विहार किया करता हूं। तू ने अपने नृपोचित गुणों से इस भूमण्डल को स्वर्ग से भी अधिक सुषमाशाली कर रक्खा है। इसलिए कभी कभी मैं यहां भी घूमने आया करता हूं। मैं चाहता हूं कि जैसे और देवता मुझसे सख्य-भाव रखते हैं वैसे ही तू भी रख"। नल ने इस बात को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया। आज से तू मेरे प्राणों से भी अधिक प्यारा हुआ, यह कहकर राजा ने बड़े ही प्रेम से उस पक्षी के शरीर पर अपना कर-कमल फेरा। कुछ देर तक वे दोनों परस्पर प्रेमालाप करते रहे। अनन्तर नल के लिए ए[क] कन्यारत्न ढूंढ़ने के निमित्त, हंस ने, राजा [की] अनुमति पाकर वहां से प्रस्थान किया। राजा [भी] नगर की तरफ़ लौटा, परन्तु शरीर मात्र से; मन [से] नहीं। मन उसका हंस ही के साथ उड़ गया था।

हंस के वियोग में नल को बड़ा दुःख हुआ। दिन रात वह उसीका चिन्तन करने लगा। कि[सी] काम में उसका दिल न लगने लगा। इसी सम[य] वसन्त का आविर्भाव हुआ। इससे उसे और भी अधिक पीड़ा हुई। वसन्त विरहियों का वैरी है। अतएव दिल बहलाने के लिए, अपने उद्यान में एक बावली के किनारे राजा जा बैठा। वहां वह सैकड़ों तरह की भावनायें कर रहा था कि सहसा वही उसका परिचित हंस वहां आता हुआ उ[से] देख पड़ा। राजा को परमानन्द हुआ। उसे खो[ई] हुई निधि सी मिली। नल ने उस दिव्य हंस को अपने गोद में बिठाला। कुशल समाचार पूछने [के] अनन्तर राजा ने उसे अपने हाथ से मृणाला[दि] खिलाये। रास्ते की उसकी थकावट जाती रही। हंस से नल ने सुना कि स्वर्गलोक में जितने शह[र,] गांव और क़सबे हैं सबमें उसके यशोगीत गा[ये] जाते हैं। गन्धर्वनारी, किन्नरी और सुराङ्गनाओं को अब और किसी विषय के गीत अच्छे नहीं लगते। औरों को लोग सुनते भी नहीं। इससे गायक औ[र] गायिकायें अक्सर यहां आती हैं; उसके नये न[ये] चरित सुनती हैं; और, उन्हींके आधार पर श्लोक, ग़ज़ल और गीतों की वे रचना करती हैं।

मामूली बातें हो चुकने पर हंस ने मतलब की बात शुरू की, जिसे सुनने के लिए नल घबरा रहा था। उसने कहा मित्र, तेरे लिए एक अनन्य साधारण कन्या ढूंढ़ते ढूंढ़ते मुझे बड़ी हैरानी उठानी पड़ी। ऊपर जितने लोक हैं सबकी ख़ाक मैंने छान डाली। पर एक भी सर्वोत्तमा रूपवती

मुझे न देख पड़ी। तब मैंने ठेठ अमरावती की राह ली। वहां पर भी एक एक घर मैंने ढूंढ़ डाला। तिस पर भी मेरा काम न हुआ। मेरे चेहरे पर उदासी छा गई। मैं डरा। मुझे यह विश्वास होने लगा कि मेरी प्रतिज्ञा भङ्ग हो जायगी। मैं अपना प्रण न पालन कर सकूंगा। मुझे तेरे लायक़ कोई कामिनी न मिलेगी। जब अमरावती ही में नहीं, तब उसके होने की और कहां सम्भावना हो सकती है? इसी सोच विचार में मेरे मिनट, घण्टे और दिन जाने लगे। एक दिन मेरा जी बहुत ऊबा, इसलिए मैं देवराज की सभा में गया। मैंने कहा चलो वहीं चलकर कुछ देर जी बहलावें। वहां मैंने देखा कि सब देवता यथास्थान बैठे हैं। साहित्य-शास्त्री देवता, महाराजा अयोध्या के रसकुसुमाकर पर वाद विवाद कर रहे हैं। कोई इस नायिका में दोष निकाल रहा है, कोई उसमें। कोई कहता है रूप नहीं अच्छा; कोई कहता है भाव नहीं अच्छा। इसी तरह लोग अपनी अपनी हांक रहे हैं। इस खींचातानी को देखकर सुरेन्द्र ने कामेश्वर शास्त्री की तरफ़ देखा। इन शास्त्री महाराज का जन्म सृष्टि के आदि का है। पर, इतने बूढ़े हो जाने पर भी नायिकाओं के गुणदोष की पहचान में आप अपना सानी नहीं रखते। यही समझकर सुरेन्द्र महाराज ने आज्ञा दी कि शास्त्रीजी, अब आप भी कुछ कहिए। आपकी राय में कौन रमणी सबसे अधिक रूपवती है।

कामेश्वर जी ने सुरेश्वर की आज्ञा सिर पर रक्खी। अपनी पगड़ी के ढीले पेंचों को उन्होंने कड़ा किया। फिर उन्होंने वक्तृता आरम्भ की। आप बोले—

अमरराज, इनमें से एक भी नायिका मुझे अच्छी नहीं जँचती। सब में कोई न कोई दोष है। मेरी गृहिणी को यह घमण्ड था कि मैं बहुत ही रूपवती हूँ। इससे वह कभी कभी मुझे भी कुछ न समझती थी। एक बार उसका गर्वगर्भित व्यवहार मुझे दुःसह हो उठा। इस लिए मैंने उसके गर्व को दूर करना चाहा। मैं एक सर्वाङ्गसुन्दरी रमणी के खोज में निकला। इसमें मैं बहुत दिन तक हैरान रहा। आख़िर को मुझे कामयाबी हुई। विदर्भदेश के राजा भीम की कन्या दमयन्ती को देखकर मैं स्तम्भित हो गया। वैसी सुन्दरी मैंने कभी नहीं देखी थी। उसका चित्र मैं खींच लाया। उसे देखकर मेरी घरवाली की अक़ल ठिकाने आ गई। तब से उसका गर्व दूर हो गया और वह मुझे वक़्त पर रोटी देने लगी।

एक घण्टे तक, साहित्याचार्य्य कामेश्वर शास्त्री ने दमयन्ती के रूप का वर्णन किया। उस समय सुरेन्द्र सभा में अनेक सुन्दरियां बैठी हुई थीं। दमयन्ती का नखसिख वर्णन सुनकर उनकी अजीब हालत हुई। वे एक दूसरे का मुह ताकने लगीं। तिलोत्तमा का चेहरा काले तिल के समान काला पड़ गया। मदालसा का सौन्दर्य-मद उतर गया। सुलोचना ने अपने लोचन बन्द कर लिये। सुमध्यमा सखियों के मध्य में छिप गई। मेनका का मन मलीन हो गया। कलावती अपनी कलाओं को भूल गई। सुविभ्रमा का विभ्रम भ्रम में पड़ गया। शशिप्रभा निष्प्रभ हो गई। और चित्रलेखा चित्र के समान बैठी रह गई।

शास्त्री जी की बात सुनकर मैं बहुत ख़ुश हुआ। मैं वहां से फ़ौरन ही उड़ा। कोई दो घण्टे में मैं विदर्भपुरी में दाख़िल हुआ। वहां मैं दमयन्ती के प्राङ्गण में पहुंचा। उस जगह एक हौज़ था। उसमें एक फ़ौवारा था। उसकी चोटी पर मैं जा बैठा। कुछ देर में मुझे वहां दमयन्ती देख पड़ी। उसके रूप को देखकर मैं अचरज में आ गया। मित्र, इसके पहले मैंने वैसी सुन्दरी कहीं नहीं देखी थी। रूपवर्णन में शास्त्री जी की जड़ता का मुझे तब अन्दाज़ हुआ। कहां दमयन्ती का भुवनमोहन रूप और कहां शास्त्री जी का शुष्क वर्णन। दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर! आख़िर बूढ़े ही तो ठहरे।

मैंने देखा, दमयन्ती की दशा अच्छी नहीं। वह उदास है। इस लिए उसकी चिन्ता का कारण जानने की इच्छा से मैं वहीं ठहर गया। उस हौज़ के पास दमयन्ती के कई क्रीड़ा-हंस भी थे। उन्हीं के साथ मैं भी इधर उधर घूमने और दमयन्ती की चर्य्या अवलोकन करने लगा। मैं बीच बीच में मनुष्य की बोली बोलने लगा। उसे सुनकर दमयन्ती को बड़ा कौतूहल हुआ। वह मेरी तरफ़ बार बार देखने लगी। मैं यही चाहता था। इतने में एक विघ्न हुआ। दमयन्ती को खेदवती देख, एक सखी, उससे खेद का कारण पूछने लगी। वह बोली—

सखी, लवलीलता के समान तेरी गण्डस्थली पीली पड़ गई है। लाल कमल के समान अपने कोमल करपल्लव के बोझ से उसे क्यों तू तङ्ग कर रही है? देख, यह निष्करुण पिक अधखिली कलियोंवाली आमकी इस पतली शाखा को पीड़ित कर रहा है। क्यों नहीं तू उसे अपनी करतालिका से उड़ा देती? सुगन्ध के लोलुप ये भ्रमर खिले हुए फूलों को छोड़ कर तेरी तरफ़ आते हैं; पर, व्याकुल हो कर, वे पीछे हट जाते हैं। इससे जान पड़ता है कि सन्ताप से तेरा श्वास तप रहा है। तेरे कान में खोंसे हुए तमाल-दल को खींचने में जिसे तत्पर देख तुझे कुतूहल होता था वह हरिण-शावक तुझे खिन्नहृदय जान कर मुंह में रक्खे गये भी दर्भाङ्कुरों को नहीं खाता। करतल में रख-कर जिसे तू अनेक प्रकार की सरस बातें सिखलाती थी वह तेरा क्रीड़ाशुक, तुझे चुप देख, ऐसा मूक हो रहा है जैसे अभी नया जङ्गल से पकड़ आया हो। अपने इस केलिहंस को तो तू ज़रा देख। उसकी सहचरी आगे चलकर, बड़ी ही मधुर और रसभरी वाणी से उसे पुकार रही है। परन्तु वह उसके पास नहीं जाता। वह चाहता है कि तू अपने पाणिपल्लव से मृणाल का एक टुकड़ा उसकी चोंच में रख दे। क्या बात है, क्या कारण है, कि यह अतर्कित आई हुई पियराई कनकचम्पक के समान तेरी गौर कान्ति को बिगाड़ रही है? एक तो तू स्वयं ही दुबली पतली थी; तिस पर यह और दुबलापन क्यों? इस प्रकार सैकड़ों तरह की बातें दमयन्ती की सखी ने उससे पूछीं; परन्तु, उत्तर में दमयन्ती के मुंह से एक भी शब्द न निकला। वह पूर्ववत् चुपचाप बैठी रही। हां, एक लम्बी उसांस मात्र उसने ली। तब उसको एक और सखी जो दमयन्ती के मौनावलम्बन और दुबलपेन का कारण वह समझ गई थी। उसने कहा—

इसका पिता इसे एक योग्य वर को देना चाहता है। इस लिए उसने, कुछ समय हुआ अनेक चतुर चित्रकारों को बुलाया। उनसे उसने हज़ारों गुणसम्पन्न राजकुमारों के चित्र तैयार कराये। एक दिन वे चित्रफलक मेरी नज़र में पड़ गये। मुझ पर मूर्खता सवार हुई। मैं उनको इसके पास उठा लाई। इसने बड़े ध्यान से उनमें से एक एक को देखा। देखते देखते एक त्रिलोकी-तिलक पुरुष पर यह मोहित हो गई। तभी से इसकी हालत ख़राब है। तभी से यह अथाह चिन्ता-सागर में गोते खा रही है।

इसके शरीर के भीतर जलने के भय से इसका श्वास-वायु इससे दूर भग रहा है। और आंसुओं की धारा में डूब जाने के डर से नींद इसके नेत्रों के पास नहीं आती। उसीर का लेप लगाने से यह और अधिक सन्तप्त हो उठती है। कमलिनी-दल के पंखे को देख कर इसे क्रोध आता है। जिसने इसके हृदय में प्रवेश किया उसी सुभग का यह सतत स्मरण करती रहती है। इसका सन्ताप यदि देखो तो, इस तरह, दुर्निवार मालूम होता है। खिड़की की राह से चन्द्रमा को देखने में इस चञ्चलाक्षी को पीड़ा होती है। इस लिए यह अपना मुंह नीचे कर लेती है। पर ऐसा करने से इसका मुंह इसके वक्षःस्थल में प्रतिबिम्बित हुआ देख पड़ता है। उसे देख चन्द्रमा के धोखे यह बेतरह कँप उठती है। एक तो स्वभाव ही से यह सुकुमार और दुबली थी; फिर मनोज ने इसे और भी दुर्बल कर दिया। यह देख कर इसके हाथ के कङ्कणों को यह सन्…

हुआ कि अब यह हमारा बोझ न सह सकेगी। इसी लिए, देखो, वे ज़मीन पर जा गिरे हैं। "यह कुमुदनी इस पापिष्टा चांदनी से अभी तक प्रीति रखती है। सखी, इसको किसी वस्तु से ढक दे; जिसमें इसे चन्द्रकिरणों का स्पर्श न हो। नहीं तो, कहीं, इसे भी मेरे समान ज्वर न आजाय"। इस तरह यह बार बार कहा करती है। न इसे सघन वृक्षों की छाया से शीतल उद्यान में आराम मिलता है; न चन्दनचर्चित और मणिमण्डित अट्टालिका में आराम मिलता है; और न चन्द्रमरीचियों से धौत महल के भीतर आराम मिलता है। इस प्रकार दमयन्ती की गुप्त चेष्टाओं का वर्णन करके उसकी सखियां उस समय के अनुकूल उपचार करने लगीं। उन्होंने कमलिनीदलों की एक कोमल शय्या प्रस्तुत करके उस पर उसे लिटाया। पर बेचारी दमयन्ती को उस महाशीतल शय्या पर वैसा ही सन्ताप हुआ जैसा कि मार्तण्ड की प्रचण्ड किरणों से उत्तप्त हुए गढ़े में पड़ी हुई मछली को होता है। उसे बहुत ही व्याकुल देख उसकी सब से प्यारी सखी ने ताज़ी मृणाल-लता को उसके कण्ठ पर रक्खा कि कुछ तो उसे ठंढक पहुंचे। परन्तु हुआ क्या? उसके ताप की प्रचण्डता से वह मृणाललता नीलम के समान काली हो गई!

इस प्रकार दुर्निवार ताप से तपी हुई उस बाला को देख मुझे दया आई। मैं धीरे धीरे उसके पास गया और अपने पंखों से उस पर हवा करने लगा। मुझे इस तरह अपनी सेवा करते देख उसने अपनी दृष्टि मेरे तरफ़ फेरी। तब, अवसर पाकर, मैं ने उससे कहा—

तरुणि, जिस तरुण का तू चिन्तन करती है वह धन्य है। उसके पुण्य की सीमा नहीं। जो युवा तुमसे प्रेमबन्धन करने की अभिलाषा रखते हैं उनको मैं त्रिभुवन में सबसे बड़ा भाग्यशाली समझता हूं। सुन्दरि, सुरेन्द्र के समान देवता भी तुझे पाने की कामना करते हैं। तब, यदि, मनुष्यों में, तेरा प्रार्थित तरुण तुझे न मिले तो बड़े आश्चर्य्य की बात है। तेरे स्मरण के कारण, मन्दार-मालाओं से अलङ्कृत मणि-मन्दिरों में इन्द्राणी के साथ बात चीत करना भी इन्द्र को अच्छा नहीं लगता। क्षीर-सागर के ठीक बीच में रह कर भी, और सैकड़ों नदियों के द्वारा चरणस्पर्श किये जाने पर भी, तेरे सोच में, वारिपति वरुण को ज्वर चढ़ रहा है। तेरे कारण पञ्चशर से पीड़ित किया गया कुबेर आँखें बन्द करके, चन्द्रमौलि के पास से हटकर उनकी सखियों के पास चला जाता है। चन्द्रचूड़ की चूड़ा के चन्द्रमा की किरणें उससे नहीं सही जातीं। तेरे त्रैलोक्यमोहक तनु को देखकर भगवान अरविन्दबन्धु (सूर्य) को रागान्ध रोग हो गया है। इसीसे पृथ्वी के चारों ओर वे दिन रात गतागत किया करते हैं। गिरिजा को गिरीश के वाम भाग में बैठी हुई देखकर यदि तुझे स्पर्धा उत्पन्न हुई हो तो साफ़ साफ़ मुझसे तू वैसा कह दे। मैं तुझे, बहुत जल्द, उनके दाहिने भाग में बिठला दूं। अधिक कहना सुनना मैं व्यर्थ समझता हूं। यदि तू कहे तो मैं तुझे लेकर, दूसरी लक्ष्मी के समान, नारायण के अङ्क में, अभी बिठला आऊं। मैंने तेरे सामने बहुत से देवताओं के नाम लिए। त्रिलोकी में जितनी विलासिनी हैं उनके लिए वे सभी दुर्लभ हैं। कृपा करके अब तू मुझे बतला कि उनमें से किसे तू अपने पाणिपीड़न से सबसे अधिक भाग्य-वान बनाना चाहती है। मेरी ये मीठी मीठी बातें सुनकर तू मुझे कहीं पिंजड़े के शुक के समान, वृथा बकवादी मत समझना। मैं ब्रह्मा का वैमानिक हूं। मेरे लिए दुनिया में कोई वस्तु दुष्कर नहीं।

यह सुनकर उस मृगाक्षी को मेरी बातों पर विश्वास आ गया। और उसने उस फलक को, जिस पर तेरी तसवीर थी, बड़े प्रेम से अपनी छाती से लगाया। तुझ में, इस तरह, एकतान हुई उस बाला को देखकर मैंने अपना प्रयास सफल समझा। मैंने कहा—यह वीर युबक मधु है; तू माधवी है। यह कुमुदबन्धु है; तू कौमुदी है।

ऐसी अनुपमेय जोड़ी का सम्बन्ध चिरकाल तक सुखकारक हो! इस तरह उसको विश्वास दिला कर तेरे पास आने की इच्छा से ज्योंही मैं उड़ने को हुआ त्योंही उसने, अपने कम्बु-कण्ठ से उतार कर, यह हार मेरे गले में डाल दिया। चन्द्रमा की चन्द्रिका से भी अधिक निर्मल, तेरी प्रिया की दूसरी हृदय-वृत्ति के समान, यह मुक्तालता तेरे हृदय को आनन्दित करे!

इस माला को नल ने बड़े आदर से लिया। उसको स्पर्श करते ही उसका शरीर कण्टकित हो आया। उसे उस समय यह भावना हुई कि एक छेद होने के कारण इसको मेरी प्रियतमा के अङ्ग का स्पर्श हुआ। पर पञ्चशायक के शायकों से किये गये सैकड़ों छेदों को हृदय में धारण करके भी मुझे अभी तक उसके दर्शन तक नहीं हुए! मैं बड़ा ही अभागा हूं। कुछ देर तक वह ऐसी ही ऐसी चिन्ताओं में निमग्न रहा। जब वह उस चिन्तासमुद्र से उन्मज्जित हुआ तब, आनन्द से पुलकित होकर, अपने निर्व्याज मित्र, उस हंस को उसने हृदय से लगा लिया। कल्पवृक्ष मांगने से मांगी हुई चीज़ देता है और चिन्तामणि चिन्तन करने पर चिन्तित पदार्थ को पास पहुंचाता है। परन्तु बिना प्रार्थना और चिन्तना ही के मुझे एक अलौकिक प्रियतमा-रत्न प्राप्त कराने की चेष्टा करके तू ने इन दोनों को नीचे कर दिया। इस प्रकार राजा नल उस पक्षी से कह रहा था कि सायङ्काल का शङ्ख बजा और उसे सायन्तनी कृति के लिए, उठकर, महलों में जाना पड़ा*।

क्रोध।

याद रखिए, क्रोध से और विवेक से शत्रुता है। क्रोध विवेक का पूरा शत्रु है। क्रोध एक प्रकार की प्रचण्ड आंधी है। जब क्रोधरूपी आंधी आती है तब दूसरे की बात नहीं सुनाई पड़ती। उस समय कोई चाहे कुछ भी सब व्यर्थ जाता है। आंधी में भी किसी को नहीं सुन पड़ती। इस लिए ऐसी आंधी के स बाहर से सहायता मिलना असम्भव है। यदि सहायता मिल सकती है तो भीतर ही से सकती है। अतएव मनुष्य को उचित है कि पहले ही से विवेक, सुविचार और चिन्ता अपने हृदय में इकट्ठा कर रक्खे जिसमें क्रोध आंधी के समय वह उनसे भीतर ही भीतर सहाय ले सके। जब कोई नगर किसी बलवान् शत्रु घेर लिया जाता है तब उस नगर में बाहर से कोई वस्तु नहीं आ सकती। जो कुछ भीतर है है वही काम आता है। क्रोधान्ध होने पर बाहर की कोई वस्तु काम नहीं आती। इसलि हृदय के भीतर सुविचार और चिन्ता की आ श्यकता होती है।

क्रोध ऐसा बुरा विकार है कि वह सुवि को जड़ से नाश करने की चेष्टा करता है। बिष है; क्योंकि उसके नशे में भले बुरे ज्ञान नहीं रहता। वह मूर्तिमान् मत्सर है; उ कारण क्षुद्र से क्षुद्र मनुष्य का भी लोग म करने लगते हैं। क्रोधी प्रत्येक बात पर, प्रत्ये दुर्घटना पर, और प्रत्येक मनुष्य पर, बिना का अथवा बहुत ही थोड़े कारण से, बिगड़ उ है। यदि क्रोध का कारण बहुत बड़ा हुआ तो व उग्ररूप धारण करता है। और यदि उसका कार छोटा हुआ तो चिड़चिड़ाहट हो तक उस नौबत पहुंचती है। अतएव, या तो वह प्रच होता है या उपहासजनक। दोनों प्रकार से बुरा ही होता है। क्रोध मनुष्य के शरीर भयानक कर देता है; शब्द को कुत्सित कर दे है; आंखों को विकराल कर देता है; चेहरे आग के सामान लाल कर देता है; बात को बहुत उग्र कर देता है। क्रोध न तो मनुष्य ही का चिन्ह है और न स्वभाव के सरल आत्मा के शुद्ध होने ही का चिन्ह है। वह भीतरी

---

* सहृदयानन्द काव्य के आधार पर लिखित। स० सं०

अथवा मन की क्षुद्रता का चिन्ह है। क्योंकि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक क्रोध आता है; निरोग मनुष्यों की अपेक्षा रोगियों को; युवा पुरुषों की अपेक्षा बुड्ढों को; और भाग्यवानों की अपेक्षा अभागियों को। जो मनुष्य क्षुद्र हैं उन्हीं को क्रोध शोभा देता है; सज्ञान, उदार और सत्पुरुषों को नहीं।

जिसे क्रोध आता है वह उसे ही दुःखदायक नहीं होता; क्रोध के समय जो लोग वहां होते हैं उनको भी वह दुःखदायक हो जाता है। चार आदमियों के सामने किसी छोटे से अपराध पर नौकर चाकरों को बुरा भला कहना और उनपर क्रोध करना किसीको अच्छा नहीं लगता। इस प्रकार क्रोध करना और उचित अनुचित बोलना असभ्यता का लक्षण है। क्रोध ही के कारण स्त्री पुरुष में बिगाड़ हो जाता है। क्रोध ही के कारण मित्रों का साथ, सभा समाज का जाना, और जान पहचानवालों के साथ उठना बैठना असह्य हो जाता है। क्रोध ही के कारण सीधी सादी हँसी की बातों से भयानक और शोककारक घटनायें पैदा हो जाती हैं। क्रोध ही के कारण मित्र द्रोह करने लगते हैं। क्रोध ही के कारण मनुष्य अपने आपको भूल जाता है; उसकी विचार-शक्ति जाती रहती है; और बात चीत करने में वह कुछ का कुछ कहने लगता है। क्रोध ही के कारण मनुष्य, किसी वस्तु का चुपचाप ज्ञान प्राप्त न करके, व्यर्थ झगड़ा करने लगता है। जिनको ईश्वर ने प्रभुता दी है उनको क्रोध घमण्डी बना देता है। क्रोध सारासार विचार पर परदा डाल देता है; उपदेश और शिक्षा को क्लेशदायक कर देता है; श्रीमान् को द्वेष का पात्र कर देता है। जो लोग भाग्यवान नहीं हैं वे यदि क्रोधी हुए तो उन पर कोई दया नहीं करता। क्रोध अनेक बुरे विकारों की खिचड़ी है। उसमें दुःख भी है, द्वेष भी है, भय भी है, तिरस्कार भी है, घमण्ड भी है, अविवेकता भी है, उतावली भी है, निर्बोधता भी है। क्रोध के कारण दूसरों को चाहे जितना क्लेश मिले, तथापि जिस मनुष्य को क्रोध आता है उसीको सबसे अधिक क्लेश मिलता है; और उसीको सबसे अधिक हानि भी होती है।

क्रोध से बचने अथवा क्रोध को दूर करने के लिये क्रोध करना उचित नहीं। अपने ऊपर भी क्रोध करने से क्रोध बढ़ता है, घटता नहीं है।

क्रोध से बचने के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह अपने मन में दृढ़ता से पहले यह प्रण करे कि वह उस दिन क्रोध न करेगा, फिर चाहे उसकी कितनी ही हानि क्यों न हो। इस प्रकार प्रण करके उसे सजग रहना चाहिए। एक दिन बहुत नहीं होता। यदि वह एक दिन भी क्रोध को जीत लेगा तो दूसरे दिन भी वैसाही प्रण करने के लिए उसमें साहस आजायगा। तब उसे दो दिन क्रोध न करने के लिए प्रण करना उचित है। इस भांति बढ़ाते बढ़ाते क्रोध न करने का स्वभाव पड़ जायगा। क्रोध मनुष्य का पूरा शत्रु है। उसके कारण मनुष्य का जीवन दुःखमय हो जाता है। जिसने क्रोध को जीत लिया, उसके लिये कठिन से भी कठिन काम करना सहल है।

क्रोध को बिलकुल ही छोड़ देना भी अच्छा नहीं। किसीको बुरा काम करते देख उसे पहले मीठे शब्दों से उपदेश देना चाहिए। यदि ऐसे उपदेश से वह उस काम को न छोड़े तो उस पर क्रोध भी करना उचित है। जिस क्रोध से अपने कुटुम्बी, अपने इष्ट मित्र अथवा दूसरों का आचरण सुधरे; ईश्वर में पूज्य बुद्धि उत्पन्न हो; दया, उदारता और परोपकार में प्रवृत्ति हो; वह क्रोध बुरा नहीं।

———

युधिष्ठिर का समय ।

संसार में विचार और विवेचना की बड़ी ज़रूरत है। बिना विवेचना के, बिना विचार के, सत्य का ठीक ठीक अनुसन्धान नहीं हो सकता। यदि किसीने सत्य को पाया है तो विचार और विवेचना की ही बदौलत पाया है। जब किसी बात की विवेचना की जाती है तब बहुधा विवाद उपस्थित होता है। क्योंकि विवेचक जिसकी बात, या जिसके मत, का खण्डन करता है, वह, यदि उसे विपक्षी की विवेचना ठीक न मालूम हुई तो, उसका उत्तर देता है। इस तरह वाद-विवाद बढ़ता है, और किसी मत या विषय-विशेष की सत्यता की जाँच करने की ही इच्छा से यदि दोनों पक्ष विवाद पर कमर कसते हैं तो उनका मनोरथ सफल भी हो जाता है। इसीलिये विवेचना की इतनी महिमा है। जान स्टुअर्ट मिल ने तो अपनी "स्वाधीनता" नाम की पुस्तक में विचार और विवेचना का बहुत ही अधिक माहात्म्य गाया है। उसकी राय है कि किसी मत-प्रवर्तक की यदि सचमुच ही यह इच्छा हो कि उसे अपने मत की योग्यता का यथार्थ ज्ञान हो जाय, और उसे कोई विपक्षी न मिले, तो वह अपने ही मतवालों में से किसीको कल्पित विपक्षी बनाकर उनके साथ वाद-प्रतिवाद करे। बिना इसके उसे अपने मत की सत्यता पर निश्चित विश्वास नहीं हो सकता।

पर वाद-विवाद करने के नियम हैं। मनमानी बात कह देने का नाम विवाद या विवेचना नहीं है। इस बात को हिन्दुस्तान के दार्शनिक महात्माओं ने भी स्वीकार किया है। यदि कोई कहे कि १० और १० इक्कीस होते हैं तो उसका यह उत्तर ठीक अवश्य होगा कि १० और १० इक्कीस नहीं बीस होते हैं। परन्तु विवेचना का यह तरीक़ा ठीक नहीं है। विवेचक को चाहिए कि वह अपने उत्तर को, अपने मत को, मज़बूत दलीलों से साबि[त] करे; और उसके साथ ही प्रतिपक्षी के मत का सप्रमाण खण्डन भी करे। जो यह कहता है कि [१०] और १० बीस होते हैं, उसे चाहिए कि एक ज[गह] १० और दूसरी जगह ११ लकीरें खींच कर अपने प्रतिपक्षी से उन्हें गिनावे और इस बात [को] साबित करे कि इक्कीस होने के लिए १० और [११] की ज़रूरत होती है। ऐसा करने से उसके प्रतिपक्षी का मत खण्डित हो जायगा। तब वह [१०] और १० लकीरों को गिना कर यह सिद्ध करे [कि] उनका जोड़ बीस होता है। इस तरह उसके [मत] का मण्डन होगा। यह उदाहरण कल्पित है। और भी कई तरह से नियमानुसार यह खण्डन-मण्डन हो सकता है। १० और १० मिल कर बीस होते हैं। यह निर्भ्रान्त है। परन्तु इस प्रकार निर्भ्रान्त उत्तर देनेवाले की तर्क-पद्धति भी जब सदोष मा[नी] जाती है तब भला बिना प्रमाण के यदि कोई [१०] और १० के जोड़ को २१ या १९ बताने लगे [तो] उसकी तर्कना-प्रणाली की क्या कहना है! जि[स] विवेचना में इस प्रकार की पद्धति का अवलम्[बन] होता है वह हेय और उपेक्ष्य समझी जाती है। उस पर ध्यान न देना ही अच्छा होता है। यह ह[म] किसी को लक्ष्य करके नहीं लिखते। तर्कना [का] साधारण नियम समझ कर हमने यहां पर [इसे] लिख दिया है।

सरस्वती में गत वर्ष वराह-मिहिर पर एक लेख निकला। उसमें लेखक ने एक प्रमाण दे कर यह साबित किया कि महाभारत हुए ११००० वर्ष हुए। इसके बाद मदरास की तरफ़ के एक वकील साहब का एक लेख हमने पढ़ा। उसमें लेखक ने य[ह] सिद्धान्त निकाला था कि युधिष्ठिर को हुए सि[र्फ़] ३००० वर्ष हुए। उन्होंके नाम का उल्लेख करके यह भी हमने लिख दिया। अपनी तरफ़ से हमने कुछ नहीं लिखा। यह पिछला मत पण्डित गङ्गा[...] जानकीराम दुबे को ग़लत मालूम हुआ। इस प[र] उन्होंने एक और सज्जन के मत के आधार पर [...]

छोटा सा लेख सरस्वती में छपने के लिए भेजा। उसे भी हमने छाप दिया। इसके अनुसार वर्तमान समय से ७१३१ वर्ष पहले युधिष्ठिर विद्यमान थे। यह मत खुद दुवेजी का नहीं। किन्तु एक दूसरे पण्डित का है। इस पर हमने कहा कि दुवेजी यदि वकील साहब के मत का सप्रमाण खण्डन करके इस नये मत के सच होने पर ज़ोर देते तो उसका अधिक गौरव होता। साथही हमने यह भी दिखलाया कि उनके लिखे हुए मत की पुष्टि के लिए भी बहुत सी बातों का उत्तर देना बाकी है। यह हमने इस लिए लिखा कि दुवेजी विद्वान् हैं और वाद-विवाद करने के नियमों को जानते हैं। इस लिए वे हमारे कहने को बुरा न समझेंगे।

जिस समय दुवेजी का लेख हमारे पास आया, हम कनिंहाम साहब की पुरातत्व-सम्बन्धी रिपोर्टें पढ़ रहे थे। उनमें एक अध्याय देहली के ऊपर था। उसमें युधिष्ठिर के सम्बन्ध में गम्भीर गवेषणा से भरा हुआ एक लेख था। वह हम दोही चार दिन पहले पढ़ चुके थे। इस लिए दुवेजी के लेख पर नोट देते समय हमने कनिंहाम साहब का मत भी लिख दिया। उनके मत में महाभारत हुए कोई सवा तीन हज़ार वर्ष हुए। हमने अपने मनमें कहा कि जब सब अपने अपने मत लिख रहे हैं तब इनका भी सही। जो अपने मत को सबल और विश्वसनीय प्रमाणों से सच्चा साबित कर देगा उसीका मत मान्य हो जायगा। किसी अङ्गरेज़ या मुसलमान की राय लिख देना क्या कोई अनुचित बात है?

इस पर हमारे सुविज्ञ प्रयागसमाचार ने हमारे नोट पर एक लेखमालिका निकालनी शुरू की है। इस मालिका का पहला नम्बर ५ मार्च के प्रयागसमाचार में निकला है। आपकी राय है कि विलायती पण्डितों के पुरातत्व-विषयक सिद्धान्त भ्रान्तिमूलक और अविश्वसनीय होते हैं। सब नहीं; उतने ही जितने "हम लोगों" के सिद्धान्तों के विरुद्ध हैं। पर हमारी मन्दबुद्धि में यह आता है कि एक आदमी का सिद्धान्त दूसरे आदमी के सिद्धान्त के विरुद्ध होने ही से वह भ्रान्तिमान् या विश्वासहीन नहीं हो सकता। विरोध होना अविश्वसनीयता का चिन्ह नहीं है। देशियों के भी सिद्धान्त भ्रान्तिमूलक हो सकते हैं और विदेशियों के भी। पर प्रमाण की अपेक्षा होती है। क्या स्वदेशियों के सभी सिद्धान्त विश्वसनीय होते हैं? क्या कृष्णचरित के कर्ता के सब सिद्धान्त भ्रान्तिहीन हैं? क्या पुराणों को प्रक्षिप्त, श्रीकृष्ण की अलौकिक लीलाओं को कपोलकल्पना और वृन्दावनविहार-सम्बन्धिनी पौराणिक कथा को "अतिप्रकृत उपन्यास" मानने के लिए सब लोग तैयार हैं? ये सब सिद्धान्त बङ्कीम बाबू ही के तो हैं। ये उन्हींके कृष्णचरित में हैं न?

हमारी प्रार्थना है कि युधिष्ठिर के समय का हमने ज़रा भी अनुमान नहीं किया। यदि किसी ने किया है तो बङ्कीम बाबू और जनरल कनिंहाम ही ने किया है। हमारा अपराध सिर्फ़ इतना ही है कि हमने कनिंहाम के अनुमान को लिख भर दिया है। इसके लिए हम प्रयागसमाचार से क्षमा मांगते हैं। हमने कनिंहाम साहब के अनुमान को दस पांच सतरों में लिख दिया, आपने बङ्कीम बाबू के अनुमान को कई कालमों में। हमारे और आपके लेख में फ़रक इतना ही जान पड़ता है।

हमने कनिंहाम साहब के मत को जांच करने की ज़रा भी कोशिश नहीं की। क्योंकि युधिष्ठिर का समय निर्णय करने के अभिप्राय से हमने अपना नोट लिखा ही नहीं। अतएव उनके उल्लिखित प्रमाणों को पुराणों में ढूंढ़ने की हमने कोई ज़रूरत नहीं समझी। जिसे युधिष्ठिर के समय का निर्णय करना हो वह उन्हें देखे और यदि कनिंहाम ने अपने अनुमान में ग़लतियां की हों तो उनको सुधार दे। यदि प्रयागसमाचार की यह राय हो कि दूसरे के अनुमान को कोई तब तक नहीं लिख सकता जब तक उस अनुमान की साधनीभूत सामग्री को वह खुद न देख ले और उसकी सत्यता पर उसका

विश्वास न हो जाय, तो मानों यह क़बूल कर लेना होगा कि बङ्कीम बाबू के निर्णय में संस्कृत और अङ्गरेज़ी के जितने ग्रन्थों का नाम आया है उन सबको आप ने देख लिया है और उल्लिखित वाक्यों की यथार्थता की परीक्षा भी करली है।

बँगला के प्रसिद्ध उपन्यासकार बङ्कीम बाबू ने कृष्णचरित नाम की एक पुस्तक लिखी है। उसमें उन्होंने महाभारत के काल का निर्णय भी किया है। उसी निर्णय का भावार्थ प्रयागसमाचार ने देना शुरू किया है।

बङ्कीम बाबू कहते हैं कि योरप के किसी किसी पण्डित का मत है कि महाभारत ईसा के चार पांच सौ वर्ष से अधिक पुराना ग्रन्थ नहीं है। पर स्वदेशीय पण्डितों की सम्मति है कि महाभारत वर्तमान समय से कोई पांच हज़ार वर्ष पहले का है। इन दोनों मतों को बाबू साहब "घोरतर भ्रम-परिपूर्ण" बतलाते हैं। महाभारत कब हुआ इस सम्बन्ध में आपने अपनी मीमांसा में जिन ग्रन्थों और ग्रन्थकारों का मत दिया है उनकी तालिका इस प्रकार है—

विष्णुपुराण	ईसा के पहले	१४३० वर्ष
मत्स्य और वायुपुराण	,,	१४६५ ,,
कोलब्रुक, विलसन और एलफिंस्टन	,,	चौदहवीं शताब्दी
विलफ़र्ड	,,	१३७० वर्ष
बुकानन	,,	तेरहवीं शताब्दी
प्राट	,,	बारहवीं शताब्दी

इन सब मतों में से बङ्कीम बाबू विष्णुपुराण के ही मत को सबसे अधिक ठीक समझते हैं। आप अपनी पुस्तक में लिखते हैं—"विष्णुपुराण से ईसा के १४३० वर्ष पहले की प्राप्ति होती है; वही ठीक है। मुझे भरोसा है कि इन सब प्रमाणों को सुनकर अब कोई यह न कहेगा कि महाभारत का युद्ध द्वापर के शेष में, पांच हज़ार वर्ष पहले, हुआ था"। अच्छा, तो विष्णुपुराण ही का मत बङ्कीम बाबू का हुआ। तदनुसार महाभारत का युद्ध ईसा के १४३० वर्ष पहले हुआ; द्वापर के अन्त में नहीं। प्रयागसमाचार को भी शायद यही मत ठीक जँचा है। अच्छा। १४३० में १९०४ जोड़ दीजिए। ३३३४ वर्ष हुए। अब गत फ़रवरी की सरस्वती का बयालीसवां पृष्ठ देखिए। वहां लिखा है कि "इस हिसाब से महाभारत को हुए कोई सवा तीन हज़ार वर्ष हुए"। कनिंहाम साहब और बङ्कीम बाबू का मत एक हो गया। क्योंकि ८४ वर्ष का अन्तर कोई अन्तर नहीं। फिर हमारे 'कोई' शब्द पर भी तो ध्यान देना चाहिए। परीक्षित का जन्म साहब ने ईसा के १४३० वर्ष पहले अनुमान किया है। ठीक वही समय विष्णुपुराण और बङ्कीम बाबू के मत में महाभारत का है। अब बङ्कीम बाबू के निर्णय और कनिंहाम के अनुमान में भेद कहां है, यह समझ में नहीं आता। किस निमित्त यह परिश्रम हो रहा है, क्यों यह लेखमाला निकाली जा रही है, अभी तक यह हमारे ध्यान ही में न आया। शायद अन्त की माला में इसका रहस्य खुले। बङ्कीम बाबू ने अपनी पुस्तक में विलायती पण्डितों को दो चार उलटी सीधी सुनाई हैं। उन का अनुवाद करके पाठकों का मनोरञ्जन करने के लिए यदि यह परिश्रम हो तो हो सकता है।

गीता हिन्दुओं की सबसे पूज्य पुस्तक है। उसमें लिखा है—

"शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः" तब यदि हैट-कोट धारी कोई मनुष्य कुछ कहे तो क्या उसके हैट-कोट के कारण ही उसकी बात अविश्वसनीय हो जाय? ऐसा तो नहीं हो सकता। यदि उसके कथन में कुछ सार है तो उसे ले लीजिए और यदि नहीं है तो जाने दीजिए;—यह कोई न्याय नहीं कि बिना प्रतिकूल प्रमाण के ही हैट-कोट और बूटवालों का पुरातत्व-सम्बन्ध में कुछ कहना सर्वथा अश्रद्धेय है और तिलक, माला और पगड़ी वालों का कहना सर्वथा श्रद्धेय है। बङ्कीम बाबू के चित्र में भी हम पगड़ी देखते हैं, परन्तु कृष्णचरित में उन्होंने बहुत सी ऐसी बातें कही हैं जिनको सुनकर धार्म्मिक हिन्दू शायद कांप उठें।

बङ्कीम बाबू के लेख का प्रयागसमाचार के माननीयवर सम्पादक ने जो भाव हिन्दी में दिया है उसमें कई जगह दृष्टि-दोष हो गया है। इसके दो एक उदाहरण हम देते हैं—

मूल—कृष्णचरित—१म खण्ड, ४र्थ परिच्छेद	हिन्दी-भावार्थ
(१) महाभारत प्राचीन ग्रन्थ बटे, किन्तु खि० पू० चतुर्थ कि पञ्चम शताब्दी ते प्रणीत हइयाछिल।	महाभारत प्राचीन ग्रन्थ तो है परन्तु अब से चार अथवा पांच शताब्दी पूर्व रचा गया।
(२) पूर्वोक्त ग्रन्थ, पञ्चम परिच्छेद	हिन्दी-भावार्थ
प्रथमे, देशी मतेरई समालोचना आवश्यक। ४९९२ वत्सर पूर्वे कुरुक्षेत्रेर युद्ध हइयाछिल, ए कथा सत्य नहे; इहा आमि देशी ग्रन्थ अवलम्बन करियाई प्रमाण करिब।	जो लोग यह कहते हैं कि कुरु-क्षेत्र में महायुद्ध के अधिवेशन को हुए केवल ४९९२ वर्ष व्यतीत हुए हैं, यह उनका कहना सत्य नहीं है। इस बात को अवलम्बन कर हम आगे सिद्ध करेंगे।

पहले अवतरण के हिन्दी-भावार्थ में "खि० पू०" के छुट जाने से हज़ारों वर्ष का अन्तर हो गया। दूसरे अवतरण में और बातों को जाने दीजिए, सिर्फ़ "केवल" शब्द को देखिए। अकेले इस शब्द के आ जाने से अर्थ का अनर्थ हो गया। यह शब्द मूल में नहीं है। ये त्रुटियां जान बूझ कर नहीं की गईं। सिर्फ़ असावधानता से हुई हैं। परन्तु हमारे माननीय सहयोगी का मतलब यदि सत्य के ढूंढ़ने का है तो उसे अधिक सावधान रहना चाहिए और गोरे-काले का ख़याल कम रखना चाहिए। अगर गोरा भी कोई बात सच्ची कह दे तो उसे भी मान लेना चाहिए।

सुविज्ञ प्रयागसमाचार से हमारी यह प्रार्थना है कि जो कुछ हमने लिखा है सिर्फ़ सत्य के अनुरोध से लिखा है। यदि हम से कोई शब्द अनुचित निकल गया हो तो उसके लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं। जिस लेख का यह उत्तर है उसके आरम्भ में कई बातें ऐसी हैं जिनका उत्तर देना, या जिन पर कुछ कहना, हमने मुनासिब नहीं समझा। युधिष्ठिर के समय का निर्णय होना महत्व की बात है। इसी ख़याल से प्रार्थना के रूप में जो कुछ कहना था हमने कह दिया है। यदि और कोई ऐसी वैसी बात होती तो हम चुप रहने के सिवा और कुछ न करते—७ मार्च १९०५।

सत्यव्रत युधिष्ठिर के काल का निर्णय हो चुका। तीन खण्डों में उसकी समाप्ति हुई। अन्तिम, अर्थात् तीसरा खण्ड, २ एप्रिल के प्रयागसमाचार में निकला। २ मई तक हमने और राह देखी कि शायद इसके भी आगे कोई टीका-टिप्पणी निकले, परन्तु और कुछ नहीं निकला। बङ्कीम बाबू के कृष्णचरित के प्रथम खण्ड के सातवें परिच्छेद का नाम है "पाण्डवों की ऐतिहासिकता"। उसीका अनुवाद देकर यह लेखमालिका पूरी कर दी गई। लेख का अन्तिम फलांश यह है—

पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में, उपासना अर्थ के बोधक वासुदेवक और अर्जुनक शब्द की व्युत्पत्ति दी है। गोल्डस्टुकर साहब का मत है कि जब पाणिनिसूत्र बने थे तब गौतम बुध नहीं पैदा हुए थे। अर्थात् पाणिनि का काल ईसा के पहले छठी शताब्दी कहा जा सकता है। उनके मतमें उस समय ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद इत्यादि कुछ न थे, और न आश्वलायन, सांख्यायन आदि का ही अभ्युदय हुआ था। मोक्षमूलर के मत में ब्राह्मणों का समय ईसा के पहले १००० वर्ष है। अतएव बङ्कीम बाबू ने पाणिनि का समय ईसा के पहले अधिक से अधिक दशम या एकादश शताब्दी अनुमान किया। आपने वेबर साहब को

"भारतद्वेषी" को और उन्होंके देशवासी गोल्ड-स्टुकर को "आचार्य" की पदवी दी है। अस्तु। इससे यह सूचित हुआ कि ईसा के हज़ार वर्ष पहले ही महाभारत प्रचलित था और वासुदेव तथा अर्जुन आदि की गिनती देवताओं में होने लगी थी। यदि ऐसा न होता तो पाणिनि को वासुदेवक और अर्जुनक शब्दों की साधना न बतलानी पड़ती। अच्छा, महाभारत तो ईसा के हज़ार वर्ष पहले प्रचलित था। पर युधिष्ठिर किस समय विद्यमान थे? अथवा महाभारत का युद्ध कब हुआ था? वही ईसा के पहले १४३० वर्ष। वही विष्णुपुराण का मत जिसे बङ्कीम बाबू ने पसन्द किया है। क्योंकि उन्होंने उसका कहीं खण्डन नहीं किया। युद्ध होने के बाद तीन चार सौ वर्ष में वासुदेव और अर्जुन इत्यादि की गिनती देवताओं में होने लगी होगी। यही बङ्कीम बाबू का मत है।

सुविज्ञ सम्पादक जी ने किस लिए इतना परिश्रम किया; किस लिए यह लेख मालिका निकाली सो बात हमारी समझ में फिर भी नहीं आई। ख़ैर, कुछ तो आपने समझा ही होगा। सम्भव है हम आपके मतलब को न समझे हों। पर एक प्रार्थना आप से हमारी है। वह यह कि यदि आप किसीका मत लिखा करें, या किसीके मत की समीक्षा किया करें, तो ज़रा सावधानी से किया करें। कुछ का कुछ न लिख दिया करें। आपकी असावधानता के दो एक उदाहरण हम और दिखलाये देते हैं। वे भी अनुवादसम्बन्धी हैं—

कृष्ण चरित—सप्तम परिच्छेद	प्रयागसमाचार का भावार्थ
(१) आर इहाओ सम्भव, ये ताहार (पाणिनिर) अनेक पूर्वेइ महाभारत प्रचलित हइयाछिल।	और यह भी सिद्ध हो गया कि उनके (पाणिनिके) बहुत पूर्व से महाभारत प्रचलित था।
(२) अतएव महाभारतेर युद्धेर अनल्प परेइ आदिम महाभारत प्रणीत हइयाछिल बलिया ये प्रसिद्धि आछे, ताहार उच्छेद करिबार कोन कारण देखा याय ना।	इससे अब सिद्ध हो गया कि महाभारत युद्ध के थोड़े ही पीछे जो आदि महाभारत बनाकर शामिल करने का दोष दिया जाता है इसके खण्डन की अब कोई आवश्यकता नहीं है।
(३) अतएव महाभारतेर प्राचीनता सम्बन्धे बड़ गोलयोग करार काहारओ अधिकार नाइ।	अतएव महाभारत की प्राचीनता में हस्तक्षेप करने का किसीको अधिकार नहीं है।

यहां पर पहले अवतरण में जल्दी या असावधानता के कारण "सम्भव" शब्द का अर्थ "सिद्ध हो गया" कर दिया गया। सम्भव और सिद्ध होने में कितना अन्तर है इसके बतलाने की ज़रूरत नहीं। दूसरे अवतरण का हिन्दी-भावार्थ हमारी समझ में बिलकुल ही नहीं आया। बँगला-वाक्य का मतलब है—"अतएव जो यह प्रसिद्धि है कि महाभारत-युद्ध के कुछ ही पीछे आदिम महाभारत की रचना हुई थी उसके उच्छेद, अर्थात्, खण्डन का कोई कारण नहीं देख पड़ता"। अनुवाद में "महाभारत बनाकर शामिल करने का दोष" कहां से आया, नहीं मालूम। और, वाक्य सार्थक भी तो होना चाहिए। तीसरे अवतरण में "गोलयोग" का अर्थ "हस्तक्षेप" भी जल्दी में लिख दिया गया है। "हस्तक्षेप" की जगह "गोलमाल" शब्द आता तो वह मूलार्थ का अधिक बोधक होता। हस्तक्षेप और गोलमाल में फ़रक है—४ मई १९०५।

कालिदास की वैवाहिक कविता।

कालिदास में एक बहुत बड़ी ख़ूबी है। दूसरों के मनोविकारों की तसवीर उतारने में कालिदास का सानी नहीं देखा जाता। इस गुण में कालिदास अद्वितीय हैं—इसी देश में नहीं, दुनिया भर में। यह बात कालिदास की कविता में जगह जगह पर पाई जाती है। यदि किसी निरपराध आदमी का सिर काटा जाने लगे; यदि कोई कायर आदमी किसी ख़ूँख़ार शेर के सामने आजाय; यदि कोई वेदान्त-गोश चिता पर चढ़ी हुई किसी लाश को देखले, तो उसके मन में उस समय जिन जिन विकारों का उत्थान होगा उनका वह अनुभव तो अवश्य करेगा; परन्तु उनको शब्दद्वारा चित्र की तरह वह दूसरों को दिखला न सकेगा। उसके लिए उसे कालिदास की शरण जाना पड़ेगा। कालिदास ही में यह विलक्षण और लोकोत्तर शक्ति है। वही एक ऐसा कवि है जो दूसरे के विकारों का चित्र खींचकर रविवर्म्मा के भी चित्राङ्कन-अभिमान को चूर्ण कर सकता है।

श्रीहर्ष ने लिखा है कि दमयन्ती की प्राप्ति के अनन्तर नल के घर में वे वे बातें हुईं जो "महाकविभिरप्यवीक्षिताः" थीं, अर्थात् जिनको महाकवियों ने भी नहीं देखा था। इससे यह सूचित होता है कि जिन बातों को और लोग नहीं देख सकते उनको भी महाकवि देख लेते हैं। पर नल ने महाकवियों को भी मात दे दिया; क्योंकि उसने ऐसी भी अनेक बातों का अनुभव किया—उनको कर दिखाया—जिनका स्वप्न महाकवियों तक ने भी नहीं देखा था। इसकी सत्यता की गवाही महाकवि ही दे सकते हैं। पर एक बात ज़रूर सच है कि जो बातें औरों को नहीं सूझतीं वे कवियों को ज़रूर सूझ जाती हैं। यही नहीं किन्तु वे उनका वर्णन भी कर सकते हैं, और ऐसा अच्छा कर सकते हैं कि वर्णित विषय की तसवीर सी खिंच जाती है। जितने रस और जितने भाव हैं सब मन के विकार हैं। और कुछ नहीं। इन विकारों के उत्कृष्ट शब्दचित्र का ही नाम कविता है।

कुमारसम्भव की पहले पहल सैर किये हमें कोई १८ वर्ष हुए। हम सातवां सर्ग देखते थे। इस सर्ग में शङ्कर ने अरुन्धतीसहित सप्तर्षियों को हिमवान् के पास भेजकर पार्वती की मँगनी की है। यह उन्होंने पार्वती ही की इच्छा से किया है। जब उन्होंने पार्वती की तपस्या से प्रसन्न होकर उनके पाणिग्रहण का अभिवचन दिया, तब पार्वती ने अपनी सखी के द्वारा उनसे यह कहलाया कि आप कृपा करके मुझे मेरे पिता हिमवान् से माँग लें और उनकी अनुमति से यथाविधि मेरा ग्रहण करें। शङ्कर ने यह बात स्वीकार की। इसलिए उन्होंने सप्तर्षियों को हिमाचल के पास भेजा। वे हिमाचल के घर गये। हिमाचल उस समय बैठे हुए थे। उनकी पत्नी मेना और कन्या पार्वती भी वहीं उनके पास थीं। इन दोनों के सामने ही ऋषियों ने पार्वती के विवाह की बात छेड़ी। पार्वती तरुणी थीं। विवाह की बातें समझती थीं। शिव को स्वामी बनाने ही के इरादे से उन्होंने तप किया था। परन्तु विवाह-वार्ता शुरू होने पर कई श्लोकों तक पार्वती की कोई चेष्टा का वर्णन जब हमको न मिला तब हमारे हृदय में कालिदास से विराग उत्पन्न हुआ। जिसके विवाह की बातचीत हो रही है वह समझदार है; वह वहीं बैठी हुई है; वह मन ही मन प्रसन्न ज़रूर होती होगी। फिर उसकी किसी चेष्टा का उल्लेख क्यों नहीं? यह कैसी महाकविता है? साधारण आदमियों को भी यह बात खटके, पर महाकवि को नहीं? आश्चर्य! इस प्रकार के उपालम्भ का क़िला हमारे मन में बनकर तैयार होने ही को था कि कालिदास की कवितारूपिणी विशाल तोप से एक छोटे, पर बड़े ही प्रभावशाली, गोले ने निकलकर उसे एक दम ढहा दिया। उस

की दीवारें चूर हो गईं। उसके बुर्ज ज़मीन पर गिरकर ढेर हो गये। उसके साथ ही एक ऐसे प्रासादिक कवि की सहृदयता पर मन में आक्षेप करने के लिए हमको खेद भी हुआ और अफ़सोस भी हुआ। दोही एक श्लोक हम आगे बढ़े थे कि कालिदास ने अपने महाकवित्व का हमें वह परिचय दिया जो हमको कभी नहीं भूलैगा। उससे, उस समय, जो आनन्द हमको हुआ वह सर्वथा अनिर्वचनीय है। कालिदास ने सहसा कह दिया—

एवं वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी।
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती॥

इस तरह अपने विवाह की बातें जिस समय देवर्षि कर रहे थे, उस समय पिता के पास सिर झुकाये हुए पार्वती क्या करती थी? कुछ नहीं। चुपचाप बैठी हुई कमलों के दलों को वह सिर्फ़ गिन रही थी! कैसी अद्भुत कविता है। कैसा अद्भुत भाव है। मन में उत्पन्न हुए आनन्दातिशय को छिपाने की कोशिश करके भी पार्वती ने कमल-दलों को गिनकर उसे स्पष्ट प्रकट कर दिया। उस समय जो विकार पार्वती के हृदय में उद्भूत हुए थे, उनको शब्दद्वारा बतलाने की यदि हज़ार कोशिशें की जातीं तो भी उस शब्दचित्र में वह रस न आता जो इस निरर्थक कमल-गणना की उक्ति में आया है। सिर्फ़ महाकवि ही ऐसी उक्तियां कह सकते हैं।

इस कविता-प्रसङ्ग से यह बात सूचित होती है कि कालिदास के ज़माने में तरुण लड़कियां माता पिता के पास बाहरी आदमियों के सामने भी निःसङ्कोच बैठती थीं और अपने विवाह तक की भी बातें चुपचाप बैठी सुना करती थीं; उठ न जाती थीं। इससे एक बात यह भी सिद्ध होती है कि उस समय वर, या वरपक्षवाले, भी कन्या की याचना करते थे। राजपूतों में इस रीति को बन्द हुए अभी बहुत समय नहीं हुआ। शायद उनमें यह रीति अब तक प्रचलित हो। परन्तु शङ्कर के मुँह से "याचितव्यो हिमालयः"—यह बात निकलते ज़रा खटकती है। यदि हिमवान् ख़ुद याचना करते तो क्या हानि थी?

कुछ समय हुआ हमें एक विवाह-समारम्भ सम्बन्धी बहुत सी बातें, अपने जन्मस्थान में, सुनने को मिलीं। इससे कुमारसम्भव की वैवाहिक उक्तियां हमको स्मरण हो आईं और कालिदास के दो चार श्लोक हमारे हृदय में फिर से नये हो गये। उनको हम अपने पाठकों को सुनाना चाहते हैं।

पार्वती के विवाह की तैयारी हो रही है। मङ्गल-स्नान के अनन्तर एक सखी उसका शृङ्गार कर रही है। जब वह पैरों में लाक्षारस (महावर) लगा चुकी, तब एक पैर पर हाथ रखकर पार्वती से वह कहती है—

पत्युः शिरश्चन्द्रकलामनेन स्पृशेति सख्या परिहासपूर्वम्।
सा रञ्जयित्वा चरणौ कृताशीर्माल्येन तां निर्वचनं जघान॥

पैरों में महावर लगाकर, और आशीर्वाद देकर, पार्वती की सखी ने उससे दिल्लगी में यह कहा। इसी पैर से तू अपने पति के शीशवाली चन्द्रकला को स्पर्श कीजियो। यह सुनकर पार्वती मुँह से तो कुछ नहीं बोली, पर अपना पुष्पमाल्य उठाकर उससे सखी को उसने मारा। पार्वती की इस क्रिया में विहृत-नामक अनुभाव हुआ। उसकी यह क्रिया बहुत ही सामयिक हुई। कुछ न कहकर भी इसके द्वारा गोया उसने अपना हृदय खोलकर सखी के सामने रख दिया। "स्पृश" अर्थात् "स्पर्श कर"—यह सिर्फ़ दो अक्षर का संस्कृत पद है। परन्तु इस इतने छोटे पद के पेट में कुछ नहीं अनेक व्यङ्ग्य भरे हुए हैं। और वे बहुत गूढ़ भी नहीं हैं; ऐसे हैं जिनका स्वाद सामान्य जन भी सहज में ले सकते हैं। पर कालिदासजी हम को माफ़ करें, हमें यहां पर एक शिकायत है। हमें पार्वती की एतत्कालीन चेष्टा-वर्णन में हमें एक बात की कमी मालूम होती है। यहां पर "निर्वचनं" (चुपचाप) के आगे "सस्मितं", "सभ्रूभङ्गं" या "कुटिलेक्षणं" के सदृश किसी क्रियाविशेषण

काश्मीर का बाहरी दृश्य—दूर से।
यहां भूकम्प बड़े वेग से हुआ।
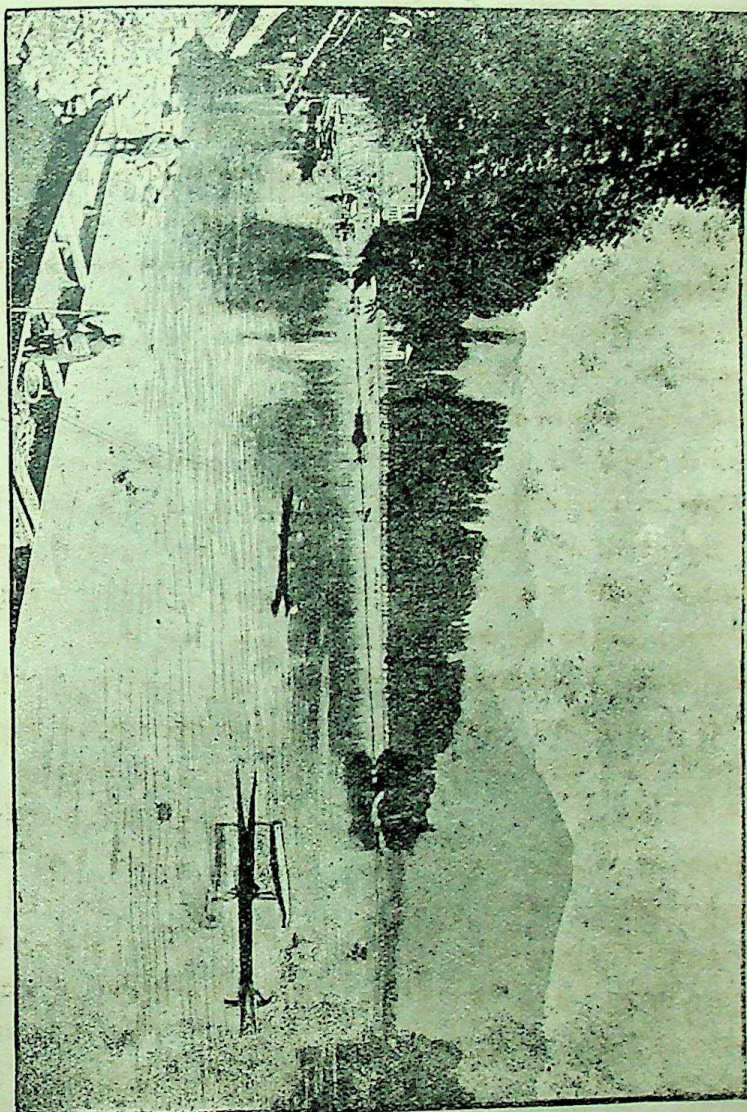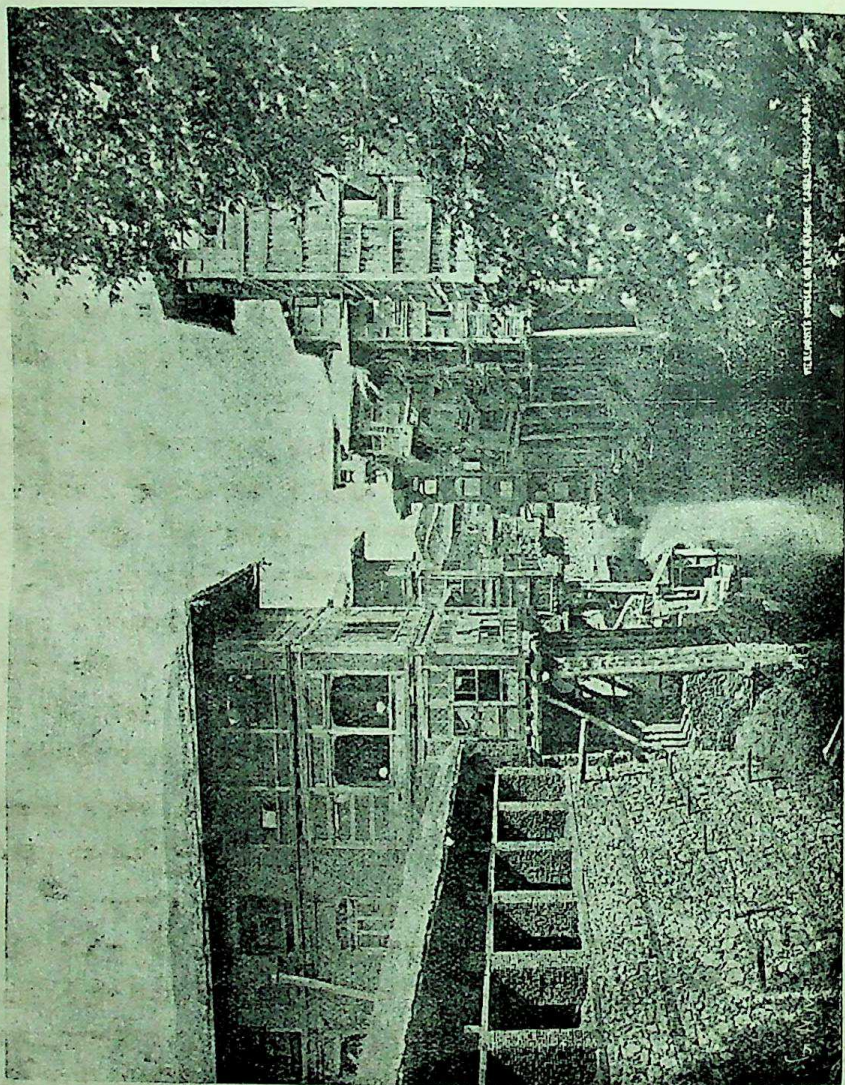
काश्मीर में मारकल की नहर—जहां भूकम्प बड़े वेग से हुआ।

की बड़ोही ज़रूरत थी। "निर्वचनं" चाहे न भी होता; पर इनमें से एक आध विशेषण होना चाहिए था। सारे सरस, सहृदय और काव्यकर्म्मज्ञ जन इसके प्रमाण हैं। ऐसे अवसर पर सम्भव नहीं कि स्मित या भ्रूभङ्ग न हो।

रघुवंश में, कुछ कुछ एक ऐसे ही मौके पर, ख़ुद कालिदास ही ने "वधूरसूयाकुटिलं ददर्श" कहा भी है। स्वयम्वर में इन्दुमती ने अजकुमार को पसन्द किया। यह बात इन्दुमती की सखी सुनन्दा को मालूम हो गई। तब उसने इन्दुमती से दिल्लगी की। उसने कहा अब यहां इस राजकुमार के सामने खड़ी क्या कर रही हो? चलो, और किसीको देखें। यह सुनते ही इन्दुमती ने सुनन्दा को तिरछी नज़र से देखकर असूया प्रकट की। वैसा ही कोई अनुभाव यहां भी होता तो क्या ही अच्छा होता।

जब पार्वती का वैवाहिक शृङ्गार हो चुका तब उसने आईने में अपना मुँह देखा। इस पर महाकविजी कहते हैं—

आत्मानमालोक्य च शोभमानमादर्शबिम्बे स्तिमितायताक्षी।
हरोपयाने त्वरिता बभूव स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि वेषः॥

अपने शोभाशाली रूप को निश्चल नयनों से आईने में देख कर शङ्कर की प्राप्ति के लिए पार्वती बहुत ही व्यग्र हो उठी। उसकी उत्सुकता यहां तक बढ़ गई कि उसने तत्काल ही अपने भावी पति शङ्कर के सामने जाने की अभिलाषा मन में ज़ाहिर की। उसी रात को उसका पाणिग्रहण था। परन्तु उस समय तक ठहरना उसे नागवार हुआ। सच है—सिर्फ़ अपने प्रियतम के देखने के लिए ही वेषभूषा का आडम्बर किया जाता है। उसी फल के पाने की अभिलाषा से रूपप्रसाधन का परिश्रम स्त्रियां उठाती हैं। यदि उसकी प्राप्ति न हो तो वह परिश्रम ही व्यर्थ जाय। इससे यह सूचित हुआ कि और किसी निमित्त वह रचना नहीं होती और यदि हो तो वह व्यर्थ है। क्योंकि पार्वती के समान त्रैलोक्यमोहिनी नारी का एकमात्र फल जब अपने ऊपर अपने प्रेममूर्ति पति की एक नज़र पड़ जाना ही है तब प्राकृत स्त्रियों की बात ही क्या? इस पद्य की आत्मा, इसका प्राण, इसका जीव "स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि वेषः" यह इसका चौथा चरण है।

इस प्रकार वसनभूषणों से सज्जित पार्वती को उसकी माता मेना ने आज्ञा दी कि वह नगर की सौभाग्यवती स्त्रियों को प्रणाम करे। आज्ञानुसार पार्वती ने उनके सामने सिर झुकाया। इस पर कालिदास ने यह कविता की—

अखण्डितं प्रेम लभस्व पत्युरित्युच्यते ताभिरुमा स्म नम्रा।
तया तु तस्यार्द्धशरीरभाजा पश्चात्कृताः स्निग्धजनाशिषोऽपि॥

स्त्रियों को स्त्रियां अकसर इस तरह के आशीर्वाद देती हैं—"चिरञ्जीव"; "चिर सौभाग्यवती भव"; "अष्टपुत्रा भव"। परन्तु उनके लिए इन सबसे अधिक प्यारी आशीष—"पतिप्रेयसी भव" है। स्त्रियों के लिए पति की प्रेयसी होने से बढ़कर और कोई सुख नहीं है—और कोई आशीष नहीं है। सौभाग्यवती होकर भी, अष्ट-पुत्रा होकर भी, सम्भव है, स्त्रियां पतिप्रेयसी न हों—पति उन से निर्विशेष प्रेम न रक्खे। इसीलिए महाकवि बहुधा यही पिछली आशीष स्त्रियों को देते हैं। यही कारण है जो तुलसीदास ने कहा है—

होहु सदा तुम पियहि पियारी।
चिर अहिवात असीस हमारी॥

इसी ख़याल से कालिदास ने भी ऊपर का श्लोक कहा है। उसमें आप कहते हैं—सिर झुकाये हुए उमाको उन सती स्त्रियों ने यह आशीर्वाद दिया कि अपने पति का अखण्डित, अर्थात् सम्पूर्ण, प्रेम—जिसका ज़रा भी अंश और किसीको नहीं मिला है—तुझे मिले। आशीर्वाद हमेशा बढ़कर दिया जाता है और पूरे आशीर्वाद का फल विरली ही स्त्री को मिलता है। परन्तु उमा ठहरी उस्ताद। आशीर्वाद देनेवाली उन सौभाग्यवती नारियों के आशीर्वाद से भी हज़ारों गुने अधिक फल को वह

दबा बैठी। उसने अपने पति का आधा शरीर ही छीन लिया। वह अपने पति को इतनी प्रेयसी हो गई कि पति ने उसे अपने आधे शरीर ही में स्थान दे दिया। अर्थात् प्रेम की परमाकाष्ठा हो गई। पार्वती ने प्रेम-प्राप्ति की सीमा का भी उल्लंघन कर दिया। और यह सीमोल्लंघन कालिदास की बदौलत एक नये रूप-रङ्ग में हम लोगों को देखने को मिला।

जब कालिदास ने पार्वती से फ़ुरसत पाई तब आप शङ्कर की तरफ़ बढ़े। उनकी बारात का साज सामान ठीक करके उनके साथ विवाह-समारम्भ में शामिल होनेवाले देवतादिकों को इकट्ठा करके, और दूलह की अलौकिक रूप-रचना आदि का वर्णन करके आपने जब उन्हें तैयार पाया, तब उनके यहां आये हुए लोकपालादि को उनके सामने पेश किया। जिस ज़माने का हाल कालिदास ने लिखा है, जान पड़ता है, उस ज़माने का रङ्ग ढङ्ग भी आज कल का ऐसा था। किसी बड़े अफ़सर से भेंट करने में जो जो नाज़ व नखरे आजकल होते हैं, वे उस ज़माने में भी होते थे। लोकपाल और देवताओं ने शङ्कर के दरबान नन्दी से जब बहुत कुछ मिन्नत आरज़ू की तब कहीं आपने अपने मालिक से मुलाक़ात कराई। क़ायदे के साथ आप एक एक को शङ्कर के सामने ले गये और कहा—"यह इन्द्र आपको प्रणाम करते हैं; यह चन्द्र आपके सामने हाज़िर हैं; यह उपेन्द्र आपके साथ चलने की अभिलाषा से आये हैं"। इस प्रकार परिचय कराये जाने पर सबके प्रणाम और नमस्कार आदि का उत्तर महादेव ने किस प्रकार दिया सो सुनिए—

> कम्पेन मूर्ध्नः शतपत्रयोनिं वाचा हरिं वृत्रहणं स्मितेन।
> आलोकमात्रेण सुरानशेषान् सम्भावयामास यथाप्रधानम्॥

सिर हिला कर ब्रह्मा के, सम्भाषण से विष्णु के, मुसकान से इन्द्र के और सिर्फ़ एक नज़र से देख कर और और देवताओं के प्रणाम और नमस्कार आदि का उत्तर शङ्कर ने दिया। अर्थात् जो जैसा था उसकी छुटाई बड़ाई के हिसाब से आपने सब की ख़ातिरदारी की। आजकल गवर्नमेण्ट के पोलिटिकल महकमे ने जिस तरह स्वदेशी राजाओं की इज़्ज़त आबरू को तौल कर सब की सलामी और मुलाक़ात वग़ैरह के क़ायदे बनाये हैं, जान पड़ता है, वैसे ही क़ायदे कालिदास के ज़माने में भी थे।

जब शङ्कर ने अपने सहचारियों के साथ हिमवान् के पुर में प्रवेश किया तब स्त्रियों में विलक्षण खलबली मच गई। जो जिस हालत में थी वह उसी हालत में विरूपाक्ष वर को देखने दौड़ी। यहां पर कालिदास की एक बात हमको पसन्द नहीं आई। इस मौक़े पर उन्होंने कुमारसम्भव में जो कविता की है उसका बहुत सा अंश उन्होंने रघुवंश में इन्दुमती और आज के विवाह-वर्णन में उठाकर वैसा ही रख दिया है। दस पांच श्लोक बिलकुल वैसे ही उठा लिये गये हैं। कुछ श्लोकों के एक एक दो दो चरण आपने तद्वत् ले लिये हैं। कुछ श्लोकों का सिर्फ़ भाव आपने थोड़ा सा बदल दिया है। ऐसा करने में यद्यपि उन्होंने किसीकी चोरी नहीं की, तथापि उन पर न्यूनता का दोष ज़रूर आता है। जो महाकवि है, जिस पर सरस्वती की अनन्य कृपा है, वह एक प्रसङ्ग की कविता से दूसरे प्रसङ्ग को क्यों अनुरञ्जित करे? क्यों न वह नई पद्यरचना से नये प्रसङ्ग की रञ्जना करते हुए अपनी अलौकिक कवित्व-शक्ति का परिचय दे? अस्तु।

इस मौक़े पर स्त्रियों की जिन चेष्टाओं का वर्णन कालिदास ने किया है उन सबको हम छोड़े देते हैं। इस विषय का सिर्फ़ एकही पद्य हम देते हैं। वह यह है—

> तमेकदृश्यं नयनैः पिबन्त्यो नार्यो न जग्मुर्विषयान्तराणि।
> तथा हि शेषेन्द्रियवृत्तिरासां सर्वात्मना चक्षुरिव प्रविष्टा॥

उस एकमात्र दर्शनीय शङ्कर को—उस एकमात्र तमाशे को—स्त्रियां अपनी आंखों से पीने सी लगीं। सुनने और स्पर्श करने आदि दूसरे विषयों की तरफ़ से उनकी शेष इन्द्रियां एकसाथही खिंच

आईं और वे सब उनकी आंखों में घुस सी गईं। यह न समझिए कि बाक़ी बची हुई इन्द्रियों का कुछ ही अंश उन स्त्रियों की आंखों में चला गया। नहीं, उनका सर्वांश उनमें प्रवेश कर गया; उन की आत्मा आंखों में घुस गई। अर्थात् जब कान नाक और त्वक् आदि ने देखा कि उनके लिए कोई काम ही नहीं रहा, तब अपनी वृत्ति को छोड़ कर उन्होंने आंखों के भीतर अपना स्थान कर लिया और वे भी आंखों का काम करने लगीं। अर्थात् वे भी शङ्कर को देखने में लीन हो गईं। जब किसीका व्यवसाय मारा जाता है तब वह लाचार होकर जिसका अधिक चलन होता है वही व्यवसाय करने लगता है। ठीक वही दशा हिमालय के नगर में रहनेवाली स्त्रियों की इन्द्रियों की हुई। कैसी अद्भुत उक्ति है!

वधू-वर के रूप में जिस समय उमा और महेश्वर अग्नि की प्रदक्षिणा करने लगे, उस समय कालिदास को एक गहरी वैज्ञानिक उपमा सूझी। आप कहते हैं—

प्रदक्षिणप्रक्रमणात्कृशानोरुदर्चिषस्तन्मिथुनं चकासे।
मेरोरुपान्तेष्विव वर्तमानमन्योन्यसंसक्तमहस्त्रियामम्॥

एक दूसरे से मिला हुआ, अर्थात् संश्लिष्ट, दिन और रात का जोड़ा मेरु-पर्वत के चारों तरफ़ जिस तरह सुशोभित होता है, उसी तरह बढ़ी हुई लपटवाली आग की प्रदक्षिणा करते समय उमा और महेश्वर का जोड़ा शोभायमान हुआ। श्रीयुक्त बालगङ्गाधर तिलक ने अपनी वेद-विषयक नई पुस्तक में लिखा है कि मेरु-प्रदेश से प्राचीन आर्यों का मतलब उत्तरी ध्रुव के आस पास के देश से था। क्योंकि वहीं दिन और रात एक दूसरे से लिपटे हुए मालूम होते हैं। जान पड़ता है यह सिद्धान्त हमारे महाकवि को पहले ही से विदित था। यदि विदित न होता तो ऐसे वैज्ञानिक तत्व से भरी हुई उपमा आप किस तरह दे सकते? कुछ भी हो, यह निर्विवाद है कि पृथ्वी का घूमना और मेरु के पास दिन और रात का परस्पर संलग्न होना कालिदास को अवश्य मालूम था।

जब और सब वैवाहिक आचार हो चुके, तब विवाहमण्डप के नीचे ही सब के समक्ष, कालिदास ने पार्वती को बोलने के लिए लाचार किया। इस विषय का यह अन्तिम श्लोक सुनिए—

ध्रुवेण भर्त्रा ध्रुवदर्शनाय प्रयुज्यमाना प्रियदर्शनेन।
सा दृष्ट इत्याननमुन्नमय्य ह्रीसन्नकण्ठी कथमप्युवाच॥

ध्रुव तारा अचल माना जाता है। अतएव यह सूचित करने के लिए कि हमारा-तुम्हारा विवाह सम्बन्ध उसीकी तरह अचल हो, प्रियदर्शन पति ने पार्वती से कहा कि अब तुम ज़रा ध्रुव को देख लो। यह सुनकर पार्वती ने अपना मुँह ज़रा ऊपर की तरफ़ किया और लज्जा के कारण बहुत धीमे स्वर में किसी तरह यह कहा कि "देख लिया"। यहां पर "दृष्टः" अर्थात् "देख लिया" यह पद इस श्लोक की आत्मा है। यही इसका जीव है। इससे और इसके पहले के और भी कई कुमारसम्भव के श्लोकों से यह जान पड़ता है कि कालिदास के ज़माने में उपवर होने ही पर कन्याओं का विवाह होता था; और विवाह-पद्धति, किम्वा गृह्य सूत्रों, में कहे गये वचनों के मतलब और महत्व को वे अच्छी तरह समझती थीं। यही नहीं, किन्तु आवश्यकता पड़ने पर विवाह-मण्डप में सबके सामने वे बोलती भी थीं।

भूकम्प।*

[पिता-पुत्र-सम्वाद]

पिता—बेटा, तुम यह क्या देख रहे हो?

पुत्र—बाबा, यह एक चित्र है। भैया की मेज़ पर रक्खी हुई एक पुस्तक में से मैं इसे निकाल लाया हूं। टूटे हुए मकानों के समान, बाबा, ये क्या हैं?

* चार्ल्स किंग्सले के लेख के आधार पर लिखित।

पि०—बेटा, ये एक पुराने नगर के खँडहर हैं। किसी समय यह नगर भी प्रयाग इत्यादि नगरों के समान था; और इसमें लाखों नर नारी निवास करते थे। पर अब यहां उलूकों और चिमगादरों के सिवा कोई नहीं रहता।

पु०—तो, बाबा, यहां के रहनेवाले यहां से क्यों चले गये?

पि०—बेटा, वे कहीं चले नहीं गये; नगर के गिरने से सब यहां ही दबकर मर गये।

पु०—यह तो बड़ी दुःखदायी बात है। हाय! उन बेचारों की क्या दशा हुई होगी? क्यों, बाबा, तो क्या छोटे छोटे बालक भी दबकर मर गये होंगे?

पि०—हां, बेटा, जब सभी मर गये तब बालक कैसे बच सकते थे?

पु०—भला, बाबा, भगवान ने ऐसी निर्दयता का काम क्यों किया?

पि०—मेरे प्यारे बेटे, मैं इस प्रश्न का उत्तर कैसे दूं? पर क्या तुमने इस प्रश्न के करने में कुछ अपराध किया? नहीं, बेटा, नहीं। तुम भी तो मनुष्य हो; इसलिए तुम यह पूछते हो। सहानुभूति और दया मनुष्य के स्वभाव के अङ्ग हैं। अतएव इस प्रकार की घटना का कारण पूछना तुम्हारे स्वभाव के अनुकूल है। किसी घटना को देख कर ही तुम्हें सन्तुष्ट न होना चाहिए; किन्तु तुम्हें जानना चाहिए कि, ऐसा क्यों हुआ? तुमने यह प्रश्न करके उचितकार्य किया। इसके उत्तर में मैं यही कहूंगा कि, इसमें परमेश्वर का कुछ दोष नहीं है। ऐसी घटना होनेवाली थी, इससे हुई।

पु०—पर, बाबा, आप कहते थे कि ईश्वर सर्वज्ञ है; अर्थात् भूत भविष्यत् और वर्तमान काल में होनेवाली सब घटनाओं को वह जानता है। तो उसे इस घटना का होना भी पहले ही मालूम हो चुका होगा। फिर उसने बेचारे निरपराध आदमियों को पहले ही से सावधान करके अपनी दयालुता का परिचय क्यों न दिया?

पि०—यह तुम्हारी शङ्का न्याय-युक्त है। पर यदि तुम उस समय उस नगर में निवास करते होते तो तुम्हें जान पड़ता कि, ईश्वर ने उस होने वाली दुर्घटना की सूचना आदमियों को पहले ही दे दी थी। पर उन्होंने उस पर ध्यान न दिया इसीसे उनका सर्वनाश हुआ।

पु०—बाबा, मेरी समझ में नहीं आता कि ईश्वर किस प्रकार होनेवाली घटनाओं की सूचना दिया करता है। क्या उस समय कोई आकाश वाणी हुई होगी?

पि०—बेटा, तुम्हारे 'क्यों,' 'क्या' और 'कैसे' के मारे तो कभी कभी मुझे घबरा जाना पड़ता है। तुम पूछते हो, भगवान सूचना किस प्रकार देता है? ठीक है, मान लो कि यदि इस मकान का मालिक उसकी छत तोड़ कर उसे हमारे ऊपर डालना चाहे, या मकान के नीचे बारूद सुलगा कर मकान के साथ साथ हमें भी उड़ा देना चाहे, पर इस विषय में हमसे वह एक शब्द भी न कहे, तोभी क्या उसकी इस बुरी इच्छा को हम न जान सकेंगे?

पु०—यह तो हम अवश्य जान लेंगे। उसके कार्य से तो हमें स्पष्ट मालूम हो जायगा कि, वह हमको इस मकान में नहीं रहने देना चाहता।

पि०—भला तो क्या तुम बता सकते हो कि ऐसी दशा में हमको क्या करना चाहिये?

पु०—हां। यह मैं कह सकता हूं कि उसके ऐसा करने के पहले ही हमको घर छोड़ कर और कहीं चले जाना चाहिये।

पि०—फिर उस नगर के निवासियों ने ऐसा क्यों नहीं किया? यदि वे ऐसा करते तो क्यों उनका सर्वनाश हो जाता?

पु०—पर आपने यह तो बतलाया ही नहीं कि इस होनहार घटना की सूचना उनको कैसे मिली?

पि०—तुमने यह कैसे जाना कि मकान का मालिक तुम्हें उसमें नहीं रहने देनाही चाहता?

पु०—उसके कार्यारम्भ से।

पि०—बेटा, इसी प्रकार इस बड़े मकान के मालिक उस जगदीश्वर की सूचना हमें छोटी छोटी प्रारम्भिक घटनाओं में देखना चाहिये। उस दिन लार्ड बेकन के निबन्ध में तुमने क्या पढ़ा था? स्मरण है? "परमेश्वर की इच्छा घटनाओं के द्वारा जानी जाती है"। ऐसी घटनाओं की पहले ही से सूचना देनेवाले यन्त्र तक विद्वानों ने बना डाले हैं।

पु०—हां। ठीक है। यह तो मैं समझ गया। किन्तु, बाबा, कृपा करके यह बताइये कि वह कौन सी दुर्घटना थी कि जिसने ऐसे बड़े शहर को नष्ट कर दिया।

पि०—बेटा, इस घटना को भूकम्प कहते हैं।

पु०—भूकम्प? वह क्या चीज़ है?

पि०—चीज़ नहीं, किन्तु वह एक घटना है। भू अर्थात् भूमि के हिलने को भूकम्प कहते हैं।

पु०—अब मैं समझ गया। अम्मा कहती थीं कि यह पृथ्वी शेषनाग के मस्तक पर रक्खी हुई है। जब हम लोग पाप अधिक करते हैं तब पृथ्वी का वज़न भी अधिक हो जाता है। इस अधिक बोझ सहने में असमर्थ होकर शेषनाग अपना सिर हिला देते हैं, इसीसे पृथ्वी कंपायमान होती है और उसके द्वारा प्रजा को अपने पाप का प्रायश्चित्त मिल जाता है।

पि०—तुम्हारी अम्मा की यह अटकल हमारी समझ में नहीं आती। हमारे विचार से तो इसका कारण दूसरा ही है।

पु०—आप इसका क्या कारण समझते हैं?

पि०—पहले हमको इसका एक छोटा सा कारण ढूंढ़ना होगा। उसीसे सब समझ में आ जायगा। यही रीति उत्तम और सरल है। तुम्हें जानना चाहिये कि भूकम्प के समान भयङ्कर घटना का करनेवाला भी कोई बड़ा बलवान और भयङ्कर पदार्थ होगा। भला संसार में सबसे अधिक बलवान और भयङ्कर वस्तु क्या है?

पु०—शेषनाग।

पि०—वाह। क्या ख़ूब। तुमने उसे कहां और कब देखा? जिसे तुमने देखा हो उसे बतलाओ।

पु०—बारूद।

पि०—ठीक है। पर बारूद कभी कभी बलवान और भयङ्कर होती है; सदैव नहीं। तुम चाहो तो उसे किसी बरतन में, या अपने हाथ में, ले जा सकते हो। इस दशा में वह बिलकुल बलहीन होती है। उसे गैस, या भाप के रूप में लाने ही से वह महाबलवान हो जाती है। किन्तु भाप सब कहीं और सब दशाओं में बलवान होती है। यदि तुम रेल के एंजिन की तरफ़ या, ख़ास करके, भाप के ज़ोर से फूटते हुए एञ्जिन (जिसे देखने से ईश्वर बचावे) को तरफ़ देखो तो, तुम भी मेरे इस विचार से सहमत होगे कि, संसार में सब से बलवान वस्तु भाप है। इसी भाप की शक्ति के द्वारा तुम भूकम्प के बारे में सब नहीं तो बहुत कुछ जान सकते हो। पहले तुम्हें विश्वास करना होगा कि ये भूकम्प भाप या दूसरी प्रकार के गैसों के ज़ोर से और बहुत जल्द फैल जाने से होते हैं। अब ....।

पु०—(बात काट कर) पर आपने यह न बताया कि, इनका फैलानेवाला कौन है?

पि०—फिर तुम्हारा 'कौन' आया! तुम जानते हो कि संसार में सब वस्तुओं को फैलानेवाली शक्ति उष्णता, अर्थात् गर्मी, है। यही उष्णता इस भाप और इन गैसों को फैलाती है। उस रोज़ सरस्वती में तुमने नहीं पढ़ा कि भूगर्भ में उष्णता बहुत रहती है। इसीसे पदार्थ फैलते हैं और ज्वालामुखी पर्वतों का स्फोट होता है। पर इस बात से यहां कुछ मतलब नहीं है। अब तुम यह बतलाओ कि चाय बनाते समय देगची का ढकन क्यों हिलता है?

पु०—देगची के भीतर फैलती हुई भाप ढकन के किनारे से बाहर निकलती है। इसीसे ढकनकम्प होता है। यह तो आपने एक दफ़ा समझा दिया था।

पि०—अब मान लो कि भूगर्भ में भाप है और वह बाहर निकलने का प्रयत्न करती है। जिस प्रकार देगची का ढक्कन मज़बूत होने पर भी हिल सकता है, उसी प्रकार पृथ्वी का कोई कोई भाग सख्त हो कर भी कच्चा रह गया है। इससे वह हिल सकता है। उसमें दरारें हो गई हैं। वे दरारें वैसी ही हैं जैसी कि हम देगची और उसके ढक्कन के बीच में देखते हैं। इन दरारों के द्वारा पृथ्वी से बाहर निकलती हुई भाप भूमि के धरातल को हिला सकती है। इसीसे भूकम्प होता है। इस प्रकार भाप के द्वारा जो भूकम्प हुआ करते हैं उनका कुछ प्रभाव नहीं होता। एक दिल्लगीबाज़ कहा करते थे कि ऐसे भूकम्पों को हम किशोर या कुमार भूकम्प कह सकते हैं और यदि चाहें तो हम उन्हें प्यार भी कर सकते हैं। एक दफ़ा एक पहाड़ पर सैर करते समय मुझे भी एक ऐसे भूकम्प का सामना करना पड़ा था। पहले तो मैं हँसा था; पर अन्त में उसने मेरे मन में गम्भीर भाव पैदा कर दिये थे।

पु०—बाबा, तो क्या हमें उसका हाल न सुनाओगे?

पि०—अच्छा तुम्हारी इच्छा है तो लो सुनो।

एक दफ़ा काश्मीर के उत्तर की पर्वत-मालाओं में भ्रमण करता हुआ मैं एक मनोहर स्थल पर पहुंचा। इस स्थान के निकट ही पर्वत में एक कन्दरा थी। वह इतनी छोटी थी कि उसके भीतर किसी चीज़ के रखने के लिये जगह न थी। उस दर्रे के दोनों तरफ़ चिकनी चट्टानों की दीवारों के बीच में, जल का एक प्रवाह, मन्द मन्द शब्द करता हुआ वह रहा था। इसी प्रवाह के कुछ ऊपर पर्वत की श्रेणियों में से होता हुआ एक मार्ग था। इसके ऊपर भी कई ऊंची ऊंची पर्वत-श्रेणियां थीं। इन श्रेणियों में सिर से कई हाथ ऊपर चट्टानों की गुफायें थीं। उनके काले काले दीर्घाकार मुख भयङ्कर जान पड़ते थे। इन मुखों में से शतशः जल की धारायें मार्ग को जहां तहां काटते हुई नीचे के प्रवाह में गिरती थीं। उनके गिरने से बर्फ़ सदृश फेन के बड़े बड़े पर्वत उस प्रवाह में बह रहे थे। शब्द भी बड़ा भयङ्कर होता था। कुछ दूर पर पर्वत-श्रेणियों से भी ऊंचे पर्वतों के समूह थे, [illegible] पर के वृक्ष, वसन्त की मनोहर वायु में, खूब सुग[न्ध] फैलाते थे। इन वृक्षों तथा टूटी हुई चट्टानों के बीच में कहीं कहीं लाल, नीले और सफ़ेद फूलों से लदे हुए वृक्ष थे। वे बहुत ही शोभायमान थे। इन्हींके बीच में कहीं कहीं पर दीर्घाकार पत्तों के वृक्ष भी उगे हुए थे, जिनकी टहनियों से पर्वत-श्रेणियां और दर्रे ढक गये थे। उन वृक्षों की चोटियां संध्या के लाल लाल आकाश का आलिङ्गन सा कर रही थीं। इनके पीछे बर्फ़ के टीले जो कई मील दूर हो कर भी ऐसे जान पड़ते थे मानो हम उन्हें अपने हाथ से छू सकते हैं। [illegible] तल से आठ हज़ार फ़ुट ऊंचे, बर्फ़ के समान [illegible] और तेजोवान् पर्वत खड़े थे। मैं उनके सुन्दर [illegible] कँगूरों को सन्ध्याकाल के सूर्य की किरणों से गु[ल]... होने तक देखता रहा। जब सूर्यास्त हो चुका [illegible] उन्होंने अन्धकार के भूरे रङ्ग में गोता लगाया। [illegible] चन्द्रमा के निकलते ही वे फिर चमकने लगे। उन[की] शोभा को देखते देखते जब मैं थक गया तब [illegible] से मैं लौटा। जिस स्थान पर मैं ठहरा था वह [illegible] के निकट, जल प्रवाह के ऊपर, था। वहां साधु[ओं] की कुछ कुटियां भी थीं। इन्हींमें से एक कुटी में ठहर गया था। उस दिन मैं इतना थक गया था कि जाकर अपने बिस्तर पर लेट रहा और [तुरन्त] नींद आ गई। मैंने नींद में एक ऐसा स्वप्न [देखा] जैसा तुमने कभी न देखा होगा। कोई विकट [स्वप्न] देखने के लिये मनस्तरङ्गों में किसी शब्द-विशेष [की] चञ्चलता के प्रवेश की आवश्यकता होती है। [illegible] अपनी समझ में जिस स्वप्न को तुम सारी [रात] देखते रहे वह एक सेकण्ड तक भी नहीं रहा [illegible] और जिस कारण-विशेष से स्वप्न पैदा होता है [उसी] से उसका अन्त भी होता है। इसी प्रकार [illegible] सारा स्वप्न देख लेते हो और मन कहीं का [कहीं] भ्रमण कर आता है। उस समय मेरी भी यही [illegible]

था। मुझे जान पड़ा कि जिस कुटी में मैं ठहरा हुआ हूं उसीमें कई साधु आकर ठहरे और मेरे पास ही सो गये। वे आपस में किसी विषय पर वादानुवाद करने और उसी पर झगड़ने लगे। उनकी लड़ाई यहां तक बढ़ी कि वहां की वस्तुओं का नाश होने लगा। मैंने सोचा कि उठकर उनका झगड़ा बन्द कर देना चाहिये। ज्योंही मेरी आंख खुली, मैं क्या देखता हूँ कि, न तो कोई साधु है और न कोई झगड़ा; किन्तु उत्तर की तरफ़ के दर्रे से एक ऐसा शब्द आ रहा है जैसा न मैंने पहले कभी सुना था और न उसके बाद आज तक सुना। जान पड़ा, मानों ज़मीन के नीचे से सैकड़ों रेल गाड़ियां जा रही हैं। ज्योंही यह शब्द मेरे बिस्तर के पास से होता हुआ गया त्योंही मुझे एक भयङ्कर धक्का लगा। मैं बड़ी फुर्ती से उठ कर खड़ा हो गया। थोड़ी देर में वह शब्द भी दूर दूर तक जाता हुआ जान पड़ा और शीघ्र ही वह बन्द हो गया। जागना तो हुआ पर साधुओं के झगड़े की बात मेरे ध्यान से अलग न हुई। आँखें मलने पर मुझे स्मरण हुआ कि वहां कोई साधु इत्यादि नहीं आये थे। मैं उस कुटी में अकेला ही था। मैंने कुटी का दरवाज़ा खोला। तब एक साधु 'सीताराम सीताराम' करता हुआ सुनाई दिया। कुत्तों का भूकना इत्यादि भी मुझे सुन पड़ा। अन्त में सब शान्त हो गया। केवल जलप्रपात का शब्द सुनाई देता रहा। विचार करने से सब बात मेरी समझ में आ गई। मैं हँसने लगा; और यह कह कर कि, यह केवल स्वप्न था, फिर मैं सो गया। प्रातःकाल मैंने पास की कुटी के साधुओं से पूछा कि क्या तुम्हें भी कोई शब्द रात को सुनाई दिया था? किन्तु सबने कहा 'नहीं'। जब मैंने अपने कुली से वही बात पूछी तब उसने भी ठीक उत्तर न दिया। अन्त में एक बालक से पूछने पर उसने कहा—"कुछ नहीं, यह तो भूकम्प था। डेढ़ महीने में एक बार यहां भूकम्प हुआ करता है"। यह सुन कर मुझे आश्चर्य और सन्तोष दोनों हुए। उसने सरलता के कारण मुझे भेद बता दिया। पर साधुओं और कुली ने इस कारण उसे न बताया कि भेद खुल जाने से वहां कोई न जायगा।

पु०—बाबा, उस स्थान का नाम क्या था?

पि०—नाम बतलाने से उन साधुओं को हानि पहुंचने की सम्भावना है। इससे मैं तुम्हें उसका नाम न बतलाऊंगा। अस्तु। इतने पर मुझे तुम्हारे 'कैसे' की याद आ गई। मैंने सोचा कि, उस स्थल में भूकम्प कैसे हो सकता था? वहां तो पास कोई ज्वालामुखी भी नहीं था। दर्रे के ऊपर चढ़ते समय मैंने देखा था कि पर्वत-श्रेणियां भूरे चूने के पत्थर की बनी हैं; किन्तु इस स्थान पर वे ग्रेनाइट (Granite) अर्थात् कड़े पत्थर की हैं। मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि चूने के पत्थर का ग्रेनाइट बन गया था; किन्तु दर्रे के धरातल से ग्रेनाइट ऊपर उठा हुआ था और साथ ही चूने के पत्थर को अपने साथ वायुमण्डल में सैकड़ों फ़ुट ऊंचा ले आया था। जिन कन्दराओं के मुख से पानी गिर रहा था वे एक ही सीध में ग्रेनाइट की चोटी पर, चूने के पत्थर के नीचे, थीं। और ऐसा ही होना भी चाहिए। क्योंकि, पानी चूने में कन्दरायें बना सकता है, पर ग्रेनाइट में नहीं। वहां पर ठण्ढे झरनों के सिवा मेरी कुटी के नीचे की तरफ़ गरम पानी के भी झरने थे जिन में कई प्रकार के रासायनिक नमक मिले हुए थे। जब मैं फिर उन्हें देखने गया तब मुझे मालूम हुआ कि उनका उद्गम ग्रेनाइट और चूने के ठीक बीच-वाली चट्टानों में था। मैंने कहा—"अहा! अब मैं समझा, संसार में सबसे बड़ी देगची (पृथ्वी) का ढकन (धरातल) यहां पर कच्चा है और हिल रहा है। क्योंकि ग्रेनाइट ने चूने के पत्थर को ऊपर उठाते समय उसे ढीला कर दिया है। और यह गरम पानी उसकी कन्दरा से निकल रहा है। उस के पानी की भाप बाहर निकलने का प्रयत्न करती है। इसीसे, ऊपर, चूने की कच्ची और पोली सतह कम्पायमान होती है। रात को जो शब्द सुनाई

दिया था वह इसी भूकम्प का था"। इतना सोचते ही मेरा भाव गँभीर हो गया और मैंने सोचा "यदि भाप की शक्ति ज़रा और अधिक होती, या ऊपर की चूने की सतह ज़रा अधिक कच्ची होती तो लोगों को हँसी करने की जगह रहती। उस दशा में सब कुटियां ज़मीन में मिल जातीं; चटानें जल-प्रवाह में जा गिरतीं; चारों तरफ़ गरम पानी के प्रवाह बह निकलते; ज़हरीली वायु हवा में फैल जाती; सैकड़ों स्थानों में भूगर्भ की भाप के बलवान होने से, और ऊपर की भूमि के कच्चे होने से, जो अनर्थ अनेक बार हुए हैं और होते जाते हैं, वही अनर्थ आज यहां भी हो जाता"। इतना सोचते ही मुझे निश्चय हो गया कि, कुमार या किशोर भूकम्पों की भी हँसी न करना चाहिए।

पु०—ओः! बाबा, क्या इस साधारण भाप में इतना बल होता है?

पि०—हां, बेटा। इस भाप को तुम साधारण मत समझो। मनुष्य अपनी बुद्धि के द्वारा कैसे कैसे काम इससे ले रहा है सो तुम जानते ही हो। भूगर्भ के भीतर की भाप के काम बड़े ही विचित्र और भयङ्कर होते हैं। जिस भूमि को हम इतनी दृढ़ और स्थिर समझते हैं उसीको वह जल की तरङ्गों के समान आगे पीछे हटा सकती है। तब हमें जान पड़ता है कि हम जहाज़ पर बैठे हैं। उस समय मन्दिरों में घण्टा-नाद होने लगता है; ऊपर का सामान नीचे गिरने लगता है; सामुद्रिक बीमारियां फैलती हैं; वृक्ष हिलने लगते हैं; द्वार भयङ्कर शब्द के साथ खुलने और बन्द होने लगते हैं; मकान तक हिल जाते हैं; और मनुष्य डर जाते हैं। यह तो केवल उसकी शक्ति के होने की सूचना-मात्र है। जब ज़ोर से भूकम्प होता है तब मकान और मन्दिर गिर कर खँडहर बन जाते हैं। तुम्हारे हाथ में जो यह चित्र है उससे तुम अनुमान कर सकते हो कि, भूकम्प के द्वारा नष्ट हुए नगरों की क्या दशा होती है। ऐसे भूकम्पों के बाद आनेवाली आपत्तियों का वर्णन करके मैं तुम्हारे कोमल हृदय को न दुखाऊंगा; किन्तु [illegible] भूकम्पों के कई काम ऐसे विलक्षण होते हैं जो [illegible] बड़े विद्वान् भी नहीं समझ सकते।

कभी कभी इनका वेग वर्तुलाकार भी [illegible] करता है। उस समय पृथ्वी चक्कर खाने लगती [illegible] मानो किसी जलाशय में पानी घूम रहा हो। [illegible] की सीधी क़तारें टेढ़ी हो जाती हैं; दीवारें [illegible] हो जाती हैं; और खम्भों के पत्थर सरक जाते [illegible] नदियों को दिशायें पलट जाती हैं; जल की [illegible] स्थल और स्थल की जगह जल हो जाता है।

पु०—हा भगवान! उस समय आदमियों [illegible] क्या दशा होती होगी?

पि०—यह न पूछो। एक मनुष्य ने ऐसा भू[illegible] देखा है। उसका कथन है कि, उस समय पर[illegible] की सब चीज़ें, निकट के मकान के नीचे जा[illegible] दब गईं। बहुत सी चीज़ें सैकड़ों गज़ की [illegible] पर जाकर गिरीं और उनके मालिकों का उन[illegible] स्वत्व निश्चय करने के लिए न्यायालय की श[illegible] लेनी पड़ी।

कभी कभी भूकम्प के धक्के गोल नहीं हो[illegible] वे भूमि से ऊपर की तरफ़ सीधे लम्बरूप में [illegible] हैं। उस समय माल असबाब और आदमी ध[illegible] ज़ोर से ऊपर आकाश की तरफ़ उछल जाते [illegible] इसी प्रकार कभी कभी बड़ी बड़ी चट्टानें पह[illegible] पर से गिरकर नीचे दरों, या नगरों, में आ[illegible] गिरती हैं और शहर के शहर नष्ट कर डालती [illegible] भूकम्प का धक्का पर्वत के गर्भ में भ्रमण कर[illegible] हुआ चोटी पर पहुंचता है। और यदि चो[illegible] कच्ची हो तो उसे उठाकर फेंक देता है; यदि [illegible] पत्थर की गोलियां एक क़तार में रखकर [illegible] की गोली को उँगली से हलका सा धक्का दे[illegible] दूसरे छोर की गोली दूर हट जाती है। पर [illegible] गोलियां अपनी जगह पर स्थिर रहती हैं। [illegible] प्रत्येक गोली पर लगता है; पर प्रत्येक गोली [illegible] निकट की गोली को धक्का देकर रह जाती [illegible] अन्त की गोली को कोई रुकावट न होने से [illegible]
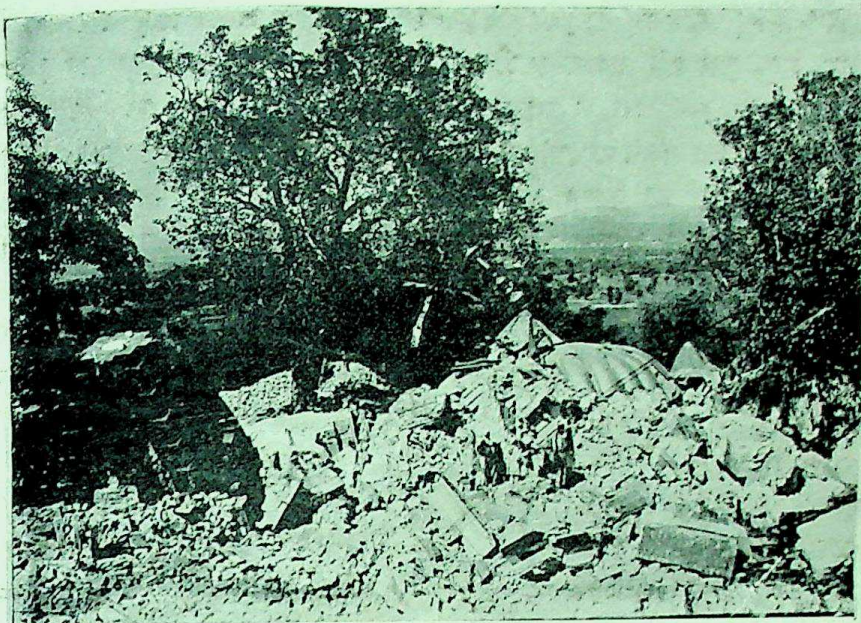
कांगड़ा का मन्दिर—भूकम्प के बाद।

देवसमाज के कई समाजी भूकम्प से ज़खमी एक मनुष्य के मरहम पट्टी बांध रहे हैं। उसकी स्त्रियां पास बैठी रो रही हैं।

अलग हो जाती है। इन गोलियों के उदाहरण से तुम चट्टानों के फेंके जाने का कारण जान सकते हो।

पु०—बाबा, फिर तो हमें पहाड़ी देश छोड़कर समुद्र के किनारे के देशों में चलकर रहना चाहिये।

पि०—नहीं, बेटा। वहां भी हम इस आपत्ति से नहीं बच सकते। भूकम्प के समय समुद्र की लहरें पृथ्वी के धरातल पर फैलकर उसे जलमय कर देती हैं। पहले तो समुद्र में शब्द होने लगता है और जल पीछे की तरफ़ हटता है। बाद में जल की एक बड़ी ऊंची दीवार सी आती है। हमारे घरों से भी ऊंची वह लहर ज़मीन पर फैल जाती है और नगरों को जलमय करके उन्हें तोड़ती फोड़ती लौट जाती है।

पु०—पर इसका भी कोई कारण होगा?

पि०—ज़रूर। बिना कारण के तो कोई कार्य हो नहीं होता। इसके कई कारण हैं, पर मैं दो कारण ऐसे बताता हूं जिन्हें तुम सहज ही में समझ सकोगे।

तुम जानते हो कि समुद्र के नीचे भी पहाड़ हैं। भूकम्प का धक्का ज़मीन के पेट में भ्रमण करता हुआ समुद्र के नीचे तक चला जाता है। तब वहां की ज़मीन लहरों के समान चलायमान होकर ऊपर नीचे उठने बैठने लगती है। मान लो कि धरातल की ज़मीन नीचे की ओर धँस गई। तो उसके साथ समुद्र का जल भी नीचे उतरने लगेगा और किनारे को सूखा छोड़ जायगा। थोड़ी देर में धरातल के ऊपर उठने से समुद्र का जल भी ऊपर उठकर किनारे से टकराने लगैगा। यही कारण है कि स्थल पर भूकम्प का धक्का न बैठने पर भी समुद्र का जल उस स्थान को नष्ट कर देता है। और यह बात सत्य है कि भूकम्प के समय समुद्रतल की भूमि चलायमान हो जाती है और समुद्र का जल बड़े वेग से बहने लगता है। क्योंकि, उस समय जहाज़ों पर बड़े बड़े धक्के बैठते हैं और मल्लाहों को भय होता है कि जहाज़ किसी चट्टान से टकरा तो न गया। इन धक्कों में इतना बल होता है कि वे समुद्र का लाखों मन पानी उठा कर किनारे पर फेंक देते हैं। किन्तु जहाज़ों के भारी होने से उन्हें कुछ हानि नहीं होती। यदि धक्का भारी हो तो वह जहाज़ को उठाकर उसी प्रकार फेंक सकता है जैसे कि वह चट्टानों को फेंक देता है। इन्हीं सामुद्रिक भूकम्पों से समुद्रों की गहराइयों में अन्तर हो जाता है। समुद्र से फेंका हुआ जल दीवार के समान आकर किनारे को नष्ट कर देता है। यह एक कारण हुआ। अब दूसरा सुनो।

एक बर्तन में पानी भर कर उसमें रबर का पोला गेंद डुबा दो। फिर रबर की एक नली के द्वारा उस गेंद में हवा भरना शुरू करो। ज्यों ज्यों तुम हवा भरते जावगे त्यों त्यों गेंद फूलकर पानी के धरातल के ऊपर उठता जायगा और उसका एक भाग ऊपर दिखाई देने लगेगा। उस गेंद पर कुछ चीटियां छोड़ दो। ये चीटियां गेंद को एक बहुत बड़ा द्वीप या पूरा भूमण्डल ही समझती हैं। भला ये छोटे छोटे जन्तु हवा भरने से गेंद के फूलने और बड़े होने का क्या अनुमान कर सकते हैं? वे यह नहीं जानते कि, हवा भरने से गेंद फूलकर पानी के ऊपर उठ रहा है। उन्हें केवल गेंद का ऊपर उठना अथवा पानी का हटना भर दिखाई देता है। जिस बर्तन में गेंद रक्खा है उसका कोई हिस्सा यदि उन्हें दिखाई दे, और इस बात का निश्चय हो जाय कि वह स्थिर है, तो चीटियां यही समझेंगी कि वे ऊपर उठ रही हैं, अर्थात् वह गेंदरूपी उन की पृथ्वी ऊपर उठ रही है। पर इन चीटियों के नेत्र इतने छोटे हैं कि वे बर्तन के किसी हिस्से को नहीं देख सकतीं। उनकी दशा उन मनुष्यों के समान है जो एक द्वीप में रहते हैं और दूसरे द्वीप को नहीं देख सकते। ऐसी दशा में उनका अनुमान झूठ होगा। वे नहीं बता सकेंगी कि वास्तव में वे ऊपर उठ रही हैं या पानी नीचे की तरफ़ जा रहा है। अर्थात् गेंद ऊपर उठ रहा है या पानी नीचे जा रहा है। कदाचित् वे यही

समझेंगीं कि पानी नीचे उतर रहा है और गेंद को सूखा छोड़ता जाता है। अब तुम उस गेंद में एक छेद करदो। ऐसा करते ही उसमें की हवा बाहर निकलने लगेगी और गेंद फिर जल में डूबने लगेगा। किन्तु वे चोटियां इसका उलटा अनुमान करेंगी। उन्हें यह ख़याल होगा कि यह गेंद दृढ़ और स्थिर है। अतएव वे यही समझेंगी कि जलही ऊपर चढ़ रहा है।

इस उदाहरण से तुम सब बात समझ गये होगे। हमारी पृथ्वी के गर्भ में भी तो गेंद के समान कई प्रकार की हवा और भाप भरी है। पृथ्वी के चारों तरफ़ समुद्र है। भूकम्प के समय गरमी से यह भाप फैलने लगती है। इस कारण पृथ्वी भी फूलने लगती है। हम छोटी आंखों के मनुष्य पृथ्वी के इस फूलने को नहीं देख सकते। न हमें उसको देखने के लिये दूसरा कोई स्थल ही है। हमारी दशा भी उन चींटियों के समान है। इससे हम अनुमान करते हैं कि समुद्र का जल नीचे हट रहा है; किन्तु वास्तव में हमारी पृथ्वी ही ऊपर उठ रही है। तुम जानते हो कि पृथ्वी में दरारें होती हैं। और भाप के बल से वहां की भूमि फट जाती है। फटी जगह से भाप बाहर निकलने लगती है। भाप के बाहर निकलने ही पृथ्वी सिकुड़ती है। उस समय हमें जान पड़ता है कि समुद्र का जल उमड़ा चला आरहा है। पर वास्तव में हमारी भूमि ही नीचे धँसती है। यदि उस समय अधिक भाप बाहर निकल आवे तो प्रलय ही हो जाय।

पु०—बस, बाबा; अब मैं इन भूकम्पों का वर्णन अधिक नहीं सुनना चाहता। मैं तो समझता हूं कि भूकम्प दैवी आपत्तियों का सरदार है। किन्तु एक बात मैं आप से पूछता हूं। भारत में भूकम्प अधिक क्यों नहीं होते?

पि०—इसको प्रभु की कृपा समझना चाहिए कि यहां के कुछ भागों को छोड़ कर अधिकांश में भूकम्प नहीं होते और होते भी हैं तो वह भूकम्पों के बच्चे। पर हाल में ता० ४ एप्रिल को प्रातःकाल ६ बजे इस देश में एक भयङ्कर भूकम्प

शिमला—लाट साहब का महल।

हुआ। उससे इस देश की अनन्त हानि हुई। इस कम्प का वेग दूर तक नहीं गया; यदि दूर तक जाता ते। शायद प्रलय ही हो जाती। इस भूकम्प ने धर्म्मशाला काँगड़ा और पालमपुर के समूल उद्ध्वस्त कर दिया। सारे मकान, मन्दिर, बाज़ार और बारकें आदि इमारतें गिर कर ईंट, पत्थर, का ढेर होगईं। हज़ारों नर नारी दब कर मर गये। करोड़ों रुपये की सम्पत्ति नष्ट होगई। सबसे भयङ्कर धक्का धर्मशाला नाम की छावनी को लगा। उससे शहर बिलकुलही बरबाद हो गया और छावनी भी प्रायः नष्ट होगई। कोई ४०० गोरखों की जान गई। अनेक योरोपियन अफ़सर भी मरे और घायल हुए। कई मेमों की भी जानें गईं। शिमला, लाहौर, मंसूरी, देहली और डलहौसी में भी बहुत हानि हुई। बड़े बड़े मकान, मसजिदें और मक़बरों का अङ्ग भङ्ग होगया। कितनी ही इमारतें बिलकुल ही चूर होगईं। यहां भी बहुत नर-नाश हुआ। यह धक्का कांगरा की पहाड़ी तराई में एक छोर से दूसरी छोर तक बहुत बड़े वेग से लगा। धर्मशाला, ज्वालामुखी और काँगड़ा में इसका वेग और जगहों की अपेक्षा बहुत अधिक था। सैकड़ों गाँव बरबाद होगये और हज़ारों आदमी दबकर मर गये। सब मिला कर कोई २० हज़ार आदमियों का नाश हुआ। काँगरा ५००० की बस्ती थी। उसमें से सिर्फ़ ५०० के क़रीब आदमी बचे। काश्मीर और पञ्जाब के और कई शहरों को भी हानि पहुंची, पर और प्रान्तों में हानि नहीं हुई। धक्का ज़रूर थोड़ा बहुत सब कहीं लगा। इस कम्प की दिशा उत्तर-पूर्व थी। कई जगहों में अनेक धक्के लगे और कई दिन तक बराबर लगते रहे। १८९७ ई० में भी एक ऐसा ही भूकम्प हुआ था। उससे शिलांग शहर को बहुत हानि हुई थी। पर यह धक्का उससे भी भयङ्कर था। यह कम्प ऐसे समय में हुआ जब सब लोग अपने अपने घरों में थे। हमारे राजराजेश्वर तक ने इस भूकम्प से पीड़ित अपनी प्रजा के साथ सहानुभूति दिखलाई।

देहली—जामेमसजिद।

फ्रांस, अमेरिका, दक्षिणी अफ़रीका और जापान तक ने सहानुभूतिसूचक तार भेजे। इसीसे इसकी भयङ्करता का अनुमान करना चाहिये। इस भूकम्प से पीडित प्रजा की सहायता के लिए ख़ूब चन्दा हो रहा है। इङ्गलैण्ड और जापान से भो चन्दे का रुपया आ रहा है।

एक विज्ञानी का मत है कि इस देश में हिमा-लय के दक्षिण-प्रान्त की बनावट ऐसी है कि भयङ्कर भूकम्पों का होना बहुत सम्भव है। अच्छा मरे भारत को ईश्वर इस आपत्ति से बचा यही उससे हमारी प्रार्थना है।

माणिक्यचन्द्र जैन

भूकम्प का मलमा उठानेवाले मज़दूरों को देवसमाज के कर्म्मचारी पैसा बांट रहे हैं।

आत्मा के अमरत्व का वैज्ञानिक प्रमाण।

जितने उपनिषद हैं, जितने वेदान्त या दर्शन शास्त्र के ग्रन्थ हैं, सभी इस बात को पुकार पुकार कर कह रहे हैं कि आत्मा अमर है। वह कभी नहीं मरता। उसका कभी नाश नहीं होता। उसे आग नहीं जला सकती; उसे पानी नहीं डुबो सकता; उसे शस्त्र नहीं छिन्न कर सकता। जिसे लेग मरना कहते हैं उसके पहले भी वह था; उसके बाद भी वह बना रहेगा। वह अविनाशी है; वह अमर है। आत्मा-शब्द, संस्कृत में पुल्लिङ्गवाची है। हिन्दी लोगों ने उसे स्त्रीत्व भी दे रक्खा है। पण्डितों का मत तो यह है कि आत्मा न स्त्री न पुरुष और न क्लीब। वह इन उपाधियों से अलग है। उसमें इस तरह का कोई चिन्ह नहीं जिससे उसका लिङ्ग-विशेष सूचित हो। अतएव उसे कोई जिस लिङ्ग से निर्देश करे, उसके आत्मत्व में उसके आत्मापन में, कोई अन्तर नहीं आता।

आत्मा की अविनाशिता में अनेक पाश्चात्य पण्डितों का भी विश्वास है। वे भी उसे अविनाशी समझते हैं। वे भी उसे अमर मानते हैं। वे कहते हैं कि शरीर छूट जाने पर भी आत्मा का अस्तित्व बना रहता है। उसका लोप नहीं होता।

अब एक पण्डित ने इस बात का वैज्ञानिक प्रमाण दिया है। इस प्रमाण ने पढ़े लिखे आदमियों को आश्चर्य्य में डुबो दिया है; इस बात को न मानने-वालों के कान खड़े कर दिये हैं; उनके विचार के जलनिधि में कल्पनाकल्लोलों को उत्तुङ्ग माला उत्पन्न कर दी है। नास्तिक भी आस्तिक हो रहे हैं; विद्वान् भी अपनी भूलें स्वीकार कर रहे हैं; बड़े बड़े ज्ञानी और विज्ञानी भी अपने पुराने ज्ञान को नया कर रहे हैं। क्योंकि, विज्ञान जिस बात को जैसा साबित कर देता है उसमें सन्देह की जगह नहीं रहती। उसकी फल-सिद्धि प्रत्यक्ष प्रमाणों के आधार पर होती है। अनुमान उसमें प्रवेश नहीं कर सकता। अनुमान को वह अपने पास आने ही नहीं देता। चार और चार मिलकर आठ होना ही चाहिए; आग का स्पर्श होने से तृण को जलना ही चाहिए; जो पदार्थ पानी से अधिक वज़नी है वह उसमें डूबना ही चाहिए। यन्त्र-विद्या भी विज्ञान की ही भित्ति पर अवलम्बित है। इससे जो यन्त्र जिस काम के लिए है उससे वह काम होना ही चाहिए। हां, यदि वह किसी आकस्मिक घटना से बिगड़ जाय तो बात ही दूसरी है। अमेरिका के मासाचसेट सूबे के व्यवोचासो नामक स्थान के पास एक विज्ञानशाला है। उसमें अध्यात्म-विद्या-सम्बन्धी काम होते हैं। अध्यापक यलमर गेट्स उसके प्रधान अधिकारी हैं। उन्होंने, एक दिन, आत्मा-सम्बन्धी अपने एक आविष्कार से बड़े बड़े विद्वानों को चकित कर दिया।

एक अँगरेज़ी समाचारपत्र लिखता है कि अध्यापक गेट्स ने जो दृश्य दिखलाया वह सचमुच अजीब था। पर वह था सच। उसके सच होने की परीक्षा जिन लोगों ने की सबने उसे सही पाया। इस दृश्य को—इस तमाशे को—चाहे कोई माया कहे, चाहे छल कहे, चाहे भ्रान्ति कहे, चाहे भ्रम कहे,—चाहे जो कुछ कहे,—पर यह निर्भ्रान्त है कि कोई ऐसी चीज़ ज़रूर देख पड़ी जो काल्पनिक न थी; जिसके अस्तित्व का प्रमाण ऐसे लोग हैं जिन्होंने उसे देखा है और जिनकी प्रामाणिकता में ज़रा भी सन्देह नहीं है। वह किसी ऐसी वैसी युक्ति से नहीं देख पड़ी। गणितशास्त्र की सहायता से गणितशास्त्र के योग से वह दृग्गोचर हुई। और गणित-विद्या के सच होने में तिल भर भी शङ्का नहीं। गणितशास्त्र के सिद्धान्तों को झूठ बोलने की आदत नहीं। उनकी सत्यप्रियता विश्व-विख्यात है।

अध्यापक गेट्स एक प्रकार की हल्की किरणों से जाँच कर रहे हैं। यह जाँच आत्मा से सम्बन्ध रखती है। इसे वे बहुत दिनों से कर रहे हैं। इन किरणों का रङ्ग कुछ कालापन लिए हुए लाल है। ये कुछ कुछ बनफ़शई रङ्ग की कही जा सकती हैं। पर इस रङ्ग से इनका रङ्ग कुछ गहरा है। 'यक्स-रेज़' (X-rays) नाम की किरणें जिस दरजे की हैं ये किरणें भी उसी दरजे की हैं। पर और और बातों में इनमें और यक्स-रेज़ नाम की किरणों में उतना ही अन्तर है जितना कि इनमें और ध्वनि में अन्तर है। इन किरणों में जो देदीप्यमान शक्ति रहती है वह अँधेरे में नहीं देख पड़ती। यदि किसी अँधेरे कमरे में वे उत्पन्न कर दी जायं तो उनके प्रकाश को आदमी आँख से नहीं देख सकता। पर अध्यापक गेट्स ने इन किरणों को दृश्य कर दिया है। दीवार पर किसी चीज़ का लेप लगा कर फिर उस पर इन किरणों को डालने से ये देख पड़ने लगती हैं। इसी तरकीब से गेट्स साहब ने इनको दृग्गोचर किया है। जिस चीज़ का लेप वे दीवार पर लगाते हैं उस पर जब ये किरणें पड़ती हैं तब उसका रङ्ग बदल जाता है। इस चीज़ का नाम है 'रोडापसिन'। आँख में जो देखने की शक्ति है वह इसी चीज़ की बदौलत है। प्रकाश को ग्रहण करने में और कोई चीज़ इसकी बराबरी नहीं कर सकती। तुरन्त के मारे हुए जानवरों की आंखों से अध्यापक गेट्स इस चीज़ को इकट्ठा करते हैं। जितने निर्जीव और इन्द्रियहीन पदार्थ हैं सब इन नई किरणों के योग से पारदर्शी हो जाते हैं। हड्डी,

धातु, लकड़ी और पत्थर आदि के भीतर जाकर ये चमकने लगती हैं। जिस नली के भीतर से ये किरणें निकलती हैं उसके और पूर्वोक्त लेप से लिपी हुई दीवार के बीच जितनी निर्जीव चीज़ें रख दी जाती हैं उन सबको ये पारदर्शी बना देती हैं। पर ऐसा करने में न तो दीवार का रङ्ग बदलता है और न किसी तरह का छाया-चित्र ही दीवार पर पड़ता है। पर प्रत्यक्ष जीवधारियों को पारदर्शी बनाने में ये किरणें असमर्थ हैं। यदि इन्द्रिय-विशिष्ट और सजीव पदार्थ मसाला लगी हुई दीवार और इन किरणों के बीच में आ जायं तो उनकी छाया दीवार पर तुरन्त देख पड़ती है, और जब तक उनमें सजीवता रहती है तब तक वह छाया पूर्ववत् बनी रहती है।

एक ज़िन्दा चूहा एक ग्लास की नली में डाल दिया गया। वह नली, दीवार से कुछ दूर पर, किरणों की राह में रख दी गई। जब तक वह चूहा ज़िन्दा रहा उसकी छाया दीवार पर बराबर पड़ती रही। पर जब वह मारा गया तब उसका बदन सहसा पारदर्शी हो गया। इस वक्त अध्यापक गेट्स को एक बहुत ही विलक्षण बात देख पड़ी। जिस क्षण वह चूहा पारदर्शी हुआ उसी क्षण, ठीक उसीके आकार की, एक छाया नली के भीतर से निकली और मसाला लगी हुई दीवार की तरफ़ जाकर, कुछ दूर ऊपर, लोप हो गई। परीक्षा के वक्त गेट्स साहब के सहायक दो और अध्यापक भी थे। वे दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि उन्होंने इस छाया को दीवार पर, नीचे से ऊपर जाते हुए, अच्छी तरह देखा। यदि जाँच से इस बात का पता लग जाय कि इस छाया में जान है—वह सजीव है—तो सृष्टि होने के बाद, विज्ञान की सहायता से, पहले पहल इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण मिले कि जिसे हम मौत कहते हैं उसके बाद भी ज़िन्दगी क़ायम रहती है—अर्थात् शरीर के अस्तित्व का नाश हो जाने पर भी आत्मा के अस्तित्व का नाश नहीं होता।

अध्यापक गेट्स ने आत्मा के अविनाशी होने का जो सबूत दिया है वह विज्ञान से दिया है। विज्ञान के नियमों के अनुसार परीक्षा करके उन्होंने उस[के] अमरत्व की सिद्धि की है। और विज्ञान कभी झूठ नहीं बोलता; वह कभी धोखा नहीं देता। वह जो कुछ कहता है सच कहता है। जिस बात को वह सिद्ध कर देता है उसमें फिर कोई सन्देह नहीं रह जाता। यदि चूहे के बदन से निकली हुई किसी चीज़ की छाया को तुम साफ़ साफ़ देख सकते हो तो गाय, बैल, घोड़ा, हाथी—नहीं, मनुष्य तक के शरीर से निकली हुई चीज़ की छाया को भी तुम देख सकोगे। शरीर में सजीवता का नाश होते ही, आदमी की बनाई हुई सारी रुकावटों को [पार] करके, ऊपर की तरफ़, अनन्त आकाश में लीन [हो] जानेवाली यह चीज़ क्या है? इसको आप कि[स] नाम से पुकारेंगे? और कोई चाहे उसे जो समझे पर प्राच्यदेशीय पण्डित उसे फ़ौरन ही 'आत्मा' कहेंगे।

क्रिश्चियन-धर्म्म के अनुयायियों में जो लोग सन्देहवादी हैं वे कहते हैं—"ऊपर आकाश में जानेवाले आदमी के आत्मा और नीचे पाताल में जानेवाले पशुओं—हैवानों—के आत्मा को कौन जान सकता है"? पर क्रिश्चियनों को पुराने धर्म्म-पुस्तक (Old Testament) के भविष्यद्वक्ता महात्माओं की अपेक्षा, इस बीसवीं शताब्दी के विशेषतर ज्ञानी और विशेषतर परोक्षदर्शी पुरुषों के होने की सम्भावना है। वे लोग विज्ञान के बल से सन्देहयुक्त बातों को सन्देहहीन सिद्ध करेंगे और अनन्त आकाश में लीन हो जानेवाली अज्ञात वस्तुओं का भी पता लगावेंगे। मरे हुए चूहे की देह को छोड़ कर कोई चीज़ दीवार पर अपनी छाया डालती है। इसका पता अध्यापक गेट्स ने लगा लिया। वे अब यह सिद्ध करने की चेष्टा कर रहे हैं कि वह चीज़ इन्द्रियविशिष्ट है या नहीं—अर्थात् वह सज्ञानदशा में मृतक शरीर के बाहर निकलती है या अज्ञानदशा में। इसके बाद

जीवन और मृत्यु के बीच के विस्तृत मैदान की नाप-जोख होगी। इस प्रकार बहुत सम्भव है कि शीघ्रही आत्मा के अमरत्व का ख़ूब दृढ़ प्रमाण विज्ञान के द्वारा मिल जाय। पर यह भी सम्भव है कि इतने पर भी कोई कोई सन्देहवादी इस बात को न स्वीकार करें कि आत्मा अमर है—वह कभी नहीं मरता। वह सिर्फ़ इतनाही स्वीकार करेंगे कि मृत्यु के बाद मनुष्य का आत्मा रहता तो है, पर न मालूम कहां रहता है और किस तरह रहता है। परन्तु मरने के बाद आत्मा का बना रहनाही उसके अस्तित्व का सबूत है। जब तक उस अस्तित्व का नाश होना कोई साबित न कर दे, तब तक आत्मा के अमरत्व को स्वीकार न करना युक्तिसङ्गत नहीं हो सकता।

कोई कोई विज्ञान-विशारद शायद यह प्रश्न करें कि क्या कारण है जो चूहा निर्जीव दशा में ही पारदर्शी हो जाता है, सजीव दशा में नहीं होता? इसका उत्तर अध्यापक गेट्स ने ख़ुदही दे रक्खा है। उन्होंने एक और जांच के द्वारा इस प्रश्न को हल किया है।

एक कमरे के भीतरी हिस्से में अध्यापक गेट्स ने सीसे की चद्दर सब तरफ़ लगा दी। फिर उन्होंने उस चद्दर का लगाव, एक तार के द्वारा, ज़मीन से कर दिया। उस तार में उन्होंने एक ऐसा 'गैल्वनोमीटर' (विद्युन्मापक यन्त्र) लगाया जो आदमी के बदन से निकली हुई बिजुली की लहरों को माप सके। इस तरह उन्होंने इस बात को सप्रमाण साबित किया कि बदन के जिस पट्ठे, जिस नाड़ी, या जिस मज्जातन्तु से काम लिया जाता है, उससे बिजुली की धारा बाहर बहने लगती है। यदि कोई आदमी अपनी भुजा को ऊँचा उठावे और उसे ताने रहे तो, नीचे लटकाये रखने की अपेक्षा, उससे बहुत अधिक बिजुली बाहर निकले। मन से काम लेते समय, अर्थात् किसी बात को सोचते समय, भी बिजुली का तेज-प्रवाह बह निकलता है। पास के वायुमण्डल पर उसका बड़ा असर पड़ता है। उसी की सहायता से लोग दूसरे के मन का हाल बहुधा जान लेते हैं। इस तरह और भी अनेक अद्भुत अद्भुत बातें वे कर सकते हैं। पट्ठों और मज्जातन्तुओं से काम लेते समय सब जीवधारियों की देह से बिजुली की लहरें निकलती हैं। परन्तु अध्यापक गेट्स की निकाली हुई प्रकाशविकिरक लहरें इतनी हलकी और इतनी धीमी हैं कि वे अपने से अधिक प्रकाशमान और गहरी वैद्युतिक लहरों के भीतर नहीं प्रवेश कर सकतीं। इसीसे जब वे सजीव चूहे के पास पहुँचती हैं, तब चूहे के बदन से निकलनेवाली लहरों पर वे टकराती हैं और आघात के वेग से दूर फेंक दी जाती हैं। यही कारण है जो इन लहरों का योग होने पर भी जब तक चूहे में जान रहती है तब तक उसमें पारदर्शिता नहीं आती।

पुस्तक-परीक्षा।

सूर्यसिद्धान्त। ज्योतिर्विद्या का यह प्रधान ग्रन्थ है। जयपुरनिवासी सिद्धान्तवागीश पण्डित माधव पुरोहित ने इसकी टीका संस्कृत में भी की है और हिन्दी में भी। इस तरह दो टीकाओं से विभूषित और पण्डित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी से सम्पादित होकर यह ग्रन्थ मुंशी नवलकिशोर के छापाख़ाने में छपा है। जिल्द भी इसकी ख़ूब अच्छी है; काग़ज भी इसका ख़ूब मोटा है; और टाइप भी इसका ख़ूब बड़ा है। ऊपर मूल संस्कृत है; उसके नीचे सरल-संस्कृत-टीका है; उसके नीचे हिन्दी में विस्तृत भाष्य है; उसके भी नीचे उपपत्ति है। सूर्यसिद्धान्त के आज तक जितने संस्करण हमने देखे हैं उन सबसे यह उत्तम है। उपपत्ति देने से गणित का विषय विशेष सरल और बोधगम्य हो गया है। ग्रहणाधिकार-सम्बन्धी चित्र भी इसमें हैं। पुस्तक बहुत अच्छी है और बहुत उपयोगी है। हिन्दी टीका और हिन्दी उपपत्ति ने ज्योतिष के इस बृहत् ग्रन्थ को बहुत सरल कर दिया है। इस

की भूमिका विद्वत्तापूर्ण है। उसके देखने से और और बातों के सिवा एक बात यह भी मालूम हो जाती है कि आज कल के कुछ अनधिकारी लोग मूल विषय से ज़रा भी पहचान न रख कर किस प्रकार मराठी और बँगला आदि भाषाओं के भाष्य, वृत्ति, टीका और टिप्पणी आदि के बल पर हिन्दी में मनमानी छलांगें मारते और नाम और दाम, दोनों, कमाने की चेष्टा करते हैं।

✽

ऋजुस्तवमञ्जूषा। श्रीविशुद्धानन्द-सरस्वती-विद्यालय, कलकत्ता, के सब सेबड़े अध्यापक पण्डित उमापतिदत्त शर्म्मा, बी० ए०, द्वारा रचित, संगृहीत और सम्पादित। इस पुस्तक का रूप बहुत ही मनोहारक है। कागज़ बहुत चिकना और टाइप बहुत सुन्दर है। इसका टाइटिल पेज देखते ही तबीयत खुश हो जाती है। यह पूर्वोक्त विद्यालय की पाठ्य-पुस्तक है। यह इसकी दूसरी आवृत्ति है। पहली आवृत्ति के बहुत जल्द बिक जाने से यह सिद्ध है कि लोगों ने इसे पसन्द किया है। इसमें धर्म्म की व्याख्या है; नित्य-कर्म्म की बहुत सी बातें हैं; और देवताओं के ध्यान, आवाहन, स्तोत्र और वन्दन आदि भी हैं। अन्त में द्विजाति-कर्म्म और सामान्य नीति भी है। संस्कृत के श्लोकों का भावार्थ सरल हिन्दी में दिया हुआ है। पुस्तक बहुत शुद्ध छपी है और जिस काम के निमित्त बनाई गई है उसे करने के लिए जो बातें आवश्यक हैं वे सब इसमें हैं। इसके पीछे "विचित्रोपदेश" नामक एक पुस्तक का विज्ञापन है। वह हमको अच्छा नहीं लगा; क्योंकि उसके पहले भाग में वह कविता है जो "भँड़ौआ" कहलाती है। जो लड़के उसे मँगावेंगे वे "भँड़ौआ" ही अधिक पढ़ेंगे।

✽

श्रीकरेशविलास। संस्कृत-कविता है। आकार छोटा है। पत्रसंख्या ५८ है। कर्ता का नाम पण्डित शिवदत्त "कविरत्न" है। इसमें सीकर के रावराजा माधवसिंहजी की भी तारीफ़ है और उनकी राजधानी इत्यादि की भी तारीफ़ है। कविता ... और सरस है। पहले उल्लास में कालिदास ... द्रुतविलम्बित-रचना की खूब प्रतिस्पर्द्धा की ... है। इससे, एक आध जगह, यमकसाधन ... करते समय, अन्तिम चरण में, अर्थ की कुछ ... तान हो गई है। आशा है रावराजा जी इस ... का अभीष्ट पूर्ण करेंगे। यदि पूरी पुस्तक नहीं ... नीचे की ही पंक्तियों का अर्थ यदि कोई राजा सा... को समझा दें, तो कविरत्न शिवदत्त जी का ... श्रम सफल हो जाय; और शायद अब तक ... हो भी गया होगा।

(१) सत्कीर्तिपूरितकवीन्द्रजनार्थवृद्धिः।
(२) शत्रून् विधूनय कवीनभिनन्दयास्मान्।
(३) सोऽयं स्वयं कविजनेषु धनेन वर्षन्!
श्रीमाधव क्षितिपतिर्विजयेत शश्वत्॥
(४) श्रीमाधव क्षितिपतिः सहि मादृशेषु
श्रीदोपमोऽद्य निदधत् स्वदयाविलासम्॥

इस पुस्तक में कवि ने अपने ही मुंह से ... को "शिवदत्त कवीन्द्र" कहा है। सो क्यों, स... में नहीं आया।

✽

उपानिषद्। पाँच पुस्तकें हमारे पास एकही ... आई हैं—प्रश्न, मुण्डक, कठ वाजसनेय और त... कार। ये सब उपनिषद् हैं और मेरठ के स्वा... यन्त्रालय में छपे हैं। इनमें पण्डित बदरीदत्त ... पदार्थ और हिन्दी-भाष्य भी है। पण्डित लक्ष्म... राम "स्वामी" ने इनका संशोधन किया है। भा... बड़ी बुद्धिमानी से किया गया है। पर उपनिष... पर इतनी टीका, टिप्पणी, भाष्य और विवृति आ... लेख निकल चुके हैं कि अब और अधिक की आव... श्यकता, इस समय, नहीं देख पड़ती।

✽

ब्राह्मणकुलदीपक। पण्डित गङ्गासहाय, मुल्ता... बुलन्दशहर, कृत। बड़ी पुस्तक है। कोई २०० पृ... हैं। इसमें और और बातों के सिवा ब्राह्मण-वं... में होनेवाले प्रसिद्ध विद्वान, लेखक, कवि, ब...

ठाकुर, ज्योतिषी, सन्यासी, गोस्वामी, और गायक आदि का संक्षिप्त वर्णन है। इस पुस्तक के कर्ता का कथन है कि इसमें "ब्राह्मणवंश का सच्चा इतिहास" है। सच्चा हो या न हो, पर अच्छी इसमें बहुत सी बातें ज़रूर हैं। पुस्तक का मूल्य १) रु० है।

✿

मृतकश्राद्धविषयक-प्रश्नोत्तर। मथुरानिवासी गोस्वामी लक्ष्मणाचार्य कृत। दाम दो आने। नाम से ही विषय का परिचय हो जाता है। इसके प्रश्न श्राद्ध के खण्डन और उत्तर मण्डन पर हैं।

✿

पञ्चाङ्ग। सं० १९६२ का पत्रा है। पण्डित बापूदेवशास्त्री के शिष्यों ने बनाकर इसे प्रकाशित किया है। सिद्धेश्वर प्रेस, काशी, में छपा है। पञ्चाङ्ग अच्छा है और बहुत सफ़ाई से छापा गया है।

आख्यायिका।

शाहजहां बादशाह के समय तक यह नियम था कि जो मनुष्य बादशाह के यहां किसी प्रतिष्ठित पद पर रह कर, बहुत सा धन इकट्ठा कर लेता था, वह सब, उसके मरने पर, उसके वारिसों को न मिलता था। बादशाह ही उसका वारिस समझा जाता था। यह ऐसा अनुचित और अन्याय-पूर्ण नियम था कि इसके कारण बड़े बड़े अमीरों की स्त्रियों को, पति के मरने पर, शाही-पेनशनरूपी भिक्षा माँगनी पड़ती थी; और उनके लड़कों को, कभी कभी, बहुत छोटे छोटे काम करना पड़ते थे।

शाहजहां के समय में नेकनामख़ाँ नामक एक अमीर देहली में था। उसने कोई चालीस वर्ष तक बादशाही नौकरी की थी और बड़े बड़े पदों पर रह कर अनन्त धन-सञ्चय कर लिया था। परन्तु जब उसे पूर्वोक्त नियम का स्मरण होता था तब उसे अपार दुःख और खेद होता था। बुड्ढे होने पर यह बात उसे और भी अधिक असह्य होने लगी। अतएव मरने के पहले ही उसने अपनी सम्पत्ति चुपचाप निर्धन, कङ्गाल और दान-पात्र लोगों को बाँट दी। बाँट कर उसने बड़े बड़े घड़ों और हण्डों में कङ्कर, पत्थर, कोयला, चीथड़े और पुरानी जूतियां भर कर उन पर मोहर लगा दी, और यह प्रकाशित कर दिया कि उनके भीतर भरा हुआ धन, उसके मरने पर, बादशाह के यहां भेज दिया जाय। शाहजहां को नेकनामख़ां की धनाढ्यता का समाचार पहले ही से मिल चुका था। इसलिए जिसदिन वह मरा उसके दूसरे ही दिन बादशाह ने उसके घर अपना एक विश्वास-पात्र सरदार भेजा। उसने उसके ख़ज़ाने से मोहर लगे हुए वे सब घड़े और हण्डे निकाले और निकाल कर बादशाह के पास उन्हें वह ले आया। शाहजहां उस समय दीवानेख़ास में बैठा था। वहीं वे सब रक्खे गये। उस सम्पत्ति को देखने की उसे इतनी उत्सुकता थी कि उसने उन घड़ों को तत्काल ही खोलने की आज्ञा दी। पहला घड़ा खोला गया। उससे निकला क्या? पुरानी जूतियों का हार! देखते ही शाहजहां का चेहरा ज़र्द हो गया; और बिना और घड़ों को खुलाये चुपचाप, दरबार से उठकर, वह भीतर महलों में चला गया।

ऐसा ही एक दूसरा उदाहरण सुनिये। वह भी शाहजहां के ही समय का है। देहली में एक मालदार महाजन था। बादशाह के यहां वह बहुत दिनों तक काम करता रहा था। मरने पर उसने कई लाख रुपया छोड़ा। वह उसकी विधवा ने छिपा रक्खा। शाही ख़ज़ाने में उसे उसने नहीं जमा कराया। उस महाजन के एक पुत्र था। वह बड़ा दुःशील और दुराचारी था। उसने अपने पिता का कमाया हुआ धन उड़ाना आरम्भ किया। यह देखकर उसकी मा ने तहखाने में ताला बन्द करके कुञ्जी अपने पास रखली। जब उसके लड़के को रुपया न मिला तब उस मातृ-शत्रु ने बादशाह को ख़बर देने की मूर्खता की। ख़बर पाकर शाहजहां

ने उस महाजन की विधवा को बुलाया। वह हाज़िर हुई। उसको हुक्म हुआ कि दो लाख रुपया वह शाही ख़ज़ाने में दाख़िल करे और एक लाख अपने लड़के को दे। जो कुछ बचे उसे वह अपने लिए रक्खे। यह कहकर शाहजहां ने उस विधवा को तत्काल बाहर जाने की आज्ञा दी। जो लोग उसे लाये थे वे उसे निकालने लगे। परन्तु वह स्त्री बड़ी धैर्यवती और प्रत्युत्पन्न-मति थी। वह उन लोगों से झगड़ने लगी और कहने लगी कि मुझे एक बात बादशाह से कह लेने दो। शाहजहां ने उसका यह कहना सुना और उसको वापस बुला लिया। उसके सम्मुख होने पर बादशाह ने पूछा कि वह क्या कहना चाहती है। यह सुनकर उस स्त्री ने बादशाह को धन्यवाद दिया और इस प्रकार निवेदन किया—"हज़रत सलामत! मेरा लड़का जो मुझ से अपने पिता की सम्पत्ति माँगता है सो तो ठीक है; वह हमारा पुत्र है; इस लिए वह हमारा वारिस है। परन्तु, हाथ जोड़ कर, मैं यह आपसे पूछती हूं कि मेरे पति से आपका कौन रिश्ता था जो आप उसका दो लाख रुपया माँगते हैं! इस सीधे सादे, परन्तु विलक्षण भाव-गर्भित, प्रश्न को सुनकर शाहजहां बहुत प्रसन्न हुआ। एक हिन्दू वणिक् से अपने रिश्ते की बात का विचार करके उसे ऐसा कुतूहल हुआ कि वह क़हक़हा मार कर हँस पड़ा और उसने आज्ञा दी कि अपने पति की सम्पत्ति की वह विधवा ही एक मात्र अधिकारिणी मानी जावे। इस प्रकार उसने अपनी पहली आज्ञा भङ्ग कर दी।

ये आख्यायिकायें मन की गढ़न्त नहीं हैं; सर्वथा सत्य हैं। देहली के सिंहासन पर जब औरङ्गज़ेब दृढ़ता से आसीन हो गया तब उसने अपने बाप शाहजहां के साथ कठोरता का बर्ताव बन्द कर दिया। यद्यपि वह आगरे में क़ैद था, तथापि उसे कोई कष्ट न था। उसके साथ औरङ्गज़ेब पत्र-व्यवहार भी रखता था। जब औरङ्गज़ेब ने अमीरों के मरने पर, उनकी सम्पत्ति को ज़ब्त कर लेना बन्द कर दिया, तब शाहजहां ने उसे एक पत्र लि[खा]। इस पत्र में उसने लिखा कि पुराने नियमों को [...] न करना चाहिए। इस पर औरङ्गज़ेब ने एक [...] उत्तर भेजकर इस रसम को जारी रखने में होने[वाले] अन्याय का बहुत ही अच्छा वर्णन किया है। [...] इस पत्र में इन दोनों आख्यायिकाओं का निदर्शन किया है और उनसे होनेवाले बाद[शाह के] अपमान पर क्रोध भी व्यञ्जित किया है।

आँख।

[गत अङ्क के आगे]
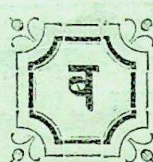
बस। ईश्वरीय नियमों से दृश्य भा[...] भूत वा भविष्यत् त्वक् के संवे[दनों] के विश्वस्त चिन्ह हो गये हैं। दृ[...] के चिन्हों का यह ज्ञान स्वाभा[विक] नहीं है; किन्तु दोनों प्रकार के संवेदनों के [...] सम्बन्ध से क्रमशः सीखा जाकर कल्पनाओं [...] सुझाता है।

इस तरह बर्कले ने सिद्ध किया है कि "प[दार्थ] हमें दूर दिखाई देते हैं" यह केवल भ्रममात्र [है।] आंख से दूरत्व का ज्ञान नहीं होता; केवल [...] स्पर्श के संवेदनों की सूचना हो जाती है जिसे [...] व्यवहार में "दूरत्व" मान लेते हैं। इसके [...] "बर्कले" ने सिद्ध किया है कि दूरत्व ही कल[्पना] से उत्पन्न नहीं है, किन्तु यह बाह्य जगत् भी वै[सा] ही है। "मन" से अतिरिक्त कोई पदार्थ नहीं [है।] सब संवेदन मन की शक्ति का ही विकाश है। [...] जगत् (Matter) कोई चीज़ नहीं है, सब "मा[या"] ब्रह्म ही ने कल्पित की है। इस विषय को हम [...] कभी विस्तृत रूपसे प्रतिपादन करेंगे।

दर्शनेन्द्रिय के विषय में "बर्कले" के [...] सिद्धान्त की पुष्टि उन अन्धे मनुष्यों की चेष्टा[ओं] ने की है जिनको जन्मान्ध आंखें प्रयोग द्वारा सु[...] गई हैं। हैमिल्टन ने ऐसे कई प्रयोगों का [...] लिखा है जिनमें से हम यहां तीन लिखते हैं।

चेसलडन प्रयोग। डाक्टर चेसलडन ने, १७२७ [ई०] में, एक १३। १४ वर्ष के जन्मान्ध की आंख सुधारी। [उसे] आंखों से दूरता जानना तो दूर रहा, उसे सब पदार्थ आंखों से वैसे ही छूते हुए मालूम हुए जैसे छुए हुए पदार्थ त्वक् पर मालूम होते हैं। उसे मुलायम पदार्थ अच्छे मालूम देते थे; किन्तु वह देखकर पदार्थों में भेद नहीं जान सकता था। अतएव कई पदार्थ रोज़ सोखकर भी वह भूल जाता था। पदार्थों को देखकर फिर पहचानने के लिए उन्हें छूकर अपने मनमें वह उनका ज्ञान उत्पन्न करता था। कुत्ते बिल्ली का भेद वह बार बार भूल जाता [था]। अतएव बिल्ली को पकड़ने के बाद स्पर्श द्वारा पहचान कर, उसे बहुत देर देखता रहता और फिर बोलता "अच्छा, पुस, अब मैं तुम्हें पहचान गया"। चित्रों से उसको पदार्थों का ज्ञान न होता था; चित्र उसे केवल रङ्ग बिरङ्गे समधरातल प्रतीत होते थे। प्रायः दो महीने बाद उसे ज्ञान हुआ कि यह स्थूल पदार्थों के चित्र हैं! पहले उसे वहम हुआ कि अंशों के ऊंचे नीचे दिखाई देने से चित्रों में भी उँचाई निचाई होगी, किन्तु जब उसने छूकर देखा कि वे अंश जो प्रकाश और छाया (Light and shade) के कारण गोल मालूम देते हैं, स्पर्श में चिपटे ही हैं, तब बहुत दिनों तक वह पूछता रहा कि "कौनसा इन्द्रिय झूंठा है, आंख वा त्वक् ?"

फ्रान्ज़ प्रयोग। १८४१ ई० में लीपज़िक् के डाक्टर फ्रान्ज़ ने एक १७ वर्ष के जन्मान्ध की आंख ठीक की। उसके सामने एक काग़ज़ के टुकड़े पर "वर्ग" के बीचमें "वृत्त" का चित्र बनाकर रक्खा गया। उसने दोनों पहचान लिए। फिर एक मोटा चौकोर लकड़ी का टुकड़ा और उस पर वैसाही गोला रख कर परीक्षा ली गई तो उसने उन्हें समधरातल पर बने "वर्ग" और "वृत्त" पहचाना। अर्थात् उसे मोटाई का कुछ भी ज्ञान न हुआ। घन टुकड़े के स्थान पर काग़ज़ रखने से भी उसे वही भाव हुआ। एक शङ्कु को उसने "त्रिकोण" कहा। पूछने पर मालूम हुआ कि वह पहले तो उन पदार्थों को पहचान नहीं सकता था; किन्तु उसकी उँगलियों पर उन पदार्थों के छूने का सा ज्ञान हुआ; अतएव वह उन्हें जान सका। हाथ से छूकर वह उन तीनों चीज़ों को (घन, गोल, शङ्कु को) पहचान गया। पहले पहल वह झिझकता था कि कहीं पदार्थ (जो उससे दूर थे) उससे टकरा न जायँ। स्पर्श से यह जान कर भी कि नाक ऊंची है, और आंखें नीची, वह मनुष्यों के चेहरों को सपाट ही देखता था। इससे सिद्ध हुआ कि नेत्र ऊपर का आकार तो जान सकते हैं, किन्तु मोटाई नहीं; और जिस प्रकार दो भाषाओं के पढ़नेवाले बिना एक का दूसरी में अनुवाद किए आगे नहीं बढ़ सकते, वैसे ही त्वक्-प्रत्यक्ष और चाक्षुष-प्रत्यक्ष का हमें मिलान करना पड़ता है। वह बालक, आंख ठीक होने पर भी, बिना बात सुने, आनेवालों को नहीं पहचान सकता था। तब तक उसे स्वप्न में माता पिता आदि का स्पर्श और शब्द ही मालूम पड़ता था, किन्तु अब रूप भी जान पड़ने लगा।

ट्रिक्झिनेटी प्रयोग। डा० ट्रिक्झिनेटी ने एक ११ और १० वर्ष के भाई और बहन की आँखें बनाईं। सामने नारङ्गी रखने पर, और उसे लेने को कहे जाने पर, भाई ने आँख पर हाथ मारा, और खाली मुट्ठी बन्द करने से लज्जित हो, क्रमशः हाथ मारते मारते, उसमे नारङ्गी पाई। बहन ने एक बेर तो आँख पर ही विफल मुट्ठी बन्द की, किन्तु फिर आँख की सरल रेखा में तर्जनी उँगुली चलाकर उसने नारङ्गी उठाने का उद्योग किया।

सो, दूरत्वज्ञान आँख का गुण नहीं है; तो भी हम आँख से दूरी जानना सीख सकते हैं; क्योंकि यद्यपि हमें अपने से दूरी नहीं सूझती, तथापि दोनों छोरों के बीच में दूरीवाले पदार्थ देखने से हमें बड़ी सहायता मिलती है। इसके सिवा इन बातों से भी हमें आँख से विप्रकर्ष के ज्ञान में सहायता मिलती है।

(१) समीप के पदार्थों को देखने में आँख का डेला ज़रा संकुचित होता है, और ताल कुछ उन्नतोदर हो जाता है। यह क्रिया बदले की होने पर

भी ऐच्छिक और सचेतन है। अतएव, आँख पर कुछ दबाव होने से हम जान लेते हैं कि दृश्य पदार्थ पास ही है।

(२) दूर के पदार्थों से आनेवाले प्रकाश के किरण समानान्तर ही होते हैं; इसी लिए उन्हें लेते समय नेत्र यथावस्थित रहता है। पास के पदार्थों के किरण विसर्पी होते हैं इसी लिए उन्हें लेने में हुआ आयास, आँख की गेंद के द्वारा नहीं, किन्तु स्नायु-सम्बन्धी छल्ले के द्वारा मन को पहुंचाया जाता है।

(३) जब पदार्थ दूर होते हैं तब एक आँख से, या दोनों आँखों से देखने से रेटिना पर बने चित्र में कुछ अन्तर नहीं होता। पास होने पर भेद अवश्य होता है। किसी पुस्तक को बन्द करके उसकी पीठ को, पहले एक आँख और फिर दोनों आँखों से, २० फीट और एक फुट की दूरी पर रखकर इस भेद को जान सकते हैं।

(४) पदार्थों के समीप या दूर होने से रेटिना पर बने हुए चित्रों में अपेक्षाकृत भेद होता है। आँख के पास रक्खे हुए एक पैसे से सूर्य भी ढक सकता है; परन्तु दूर होने पर पैसा रेटिना का बहुत थोड़ा स्थान रोक सकता है।

(५) पदार्थों के दूर होने से उनसे आनेवाली किरणें धुँधला, और समीप होने से साफ़, चित्र बनाती हैं। अतएव हम अनुमान करते हैं कि धुँधले चित्रवाला पदार्थ दूर और साफ़ चित्रवाला पदार्थ समीप होगा।

(६) पदार्थों की दूरता के ज्ञान में हमें उन पदार्थों से भी ज्ञान मिलता है जो हमारी आँख और उन पदार्थों के बीच में हैं, और जिन पर आँख टिकती है। बीच में ज़्यादा पदार्थ होने से दृश्य पदार्थ दूर, और कम होने से समीप, जाना जाता है। इससे दूरता का अन्दाज बहुत जलदी होता है; किन्तु बहुधा भूल भी हो जाती है।

[असमाप्त।

मनोरञ्जक श्लोक।

भ्रातः कस्त्वं, तमाखुर्गमनमिह कुतो, वारिधेः पूर्वपारात्
कस्य त्वं दण्डधारी, नहि तव विदितं श्रीकलेर्व राज्ञः
चातुर्वर्ण्यं विधात्रा विविधविरचितं लोककल्याणहेतो-
रेकीकर्तुं बलात्तन्निखिलजगति रे शासनादागतोऽस्मि॥

प्रश्न—भाई, आप कौन हैं?

उत्तर—मैं तम्बाकू हूं।

प्र०—आपका कहां से आगमन हुआ?

उ०—समुद्र-पार से।

प्र०—आपको किसने भेजा है—आप किसके द[ण्ड]धारी हैं?

उ०—क्या आपको मालूम नहीं कि मैं राजा [कलि] का दूत हूं।

प्र०—आप किस लिए पधारे हैं?

उ०—संसार के कल्याण के निमित्त ब्रह्मा ने [जो] वर्णाश्रम धर्म्म की उत्पत्ति की है, उस[को] गड्ड बड्ड करके ज़बरदस्ती एक करने के नि[मित्त] मुझे हुकम हुआ है। इसीलिए मैं आया। आपकी समझ में आया!

※

जातेति कन्या महती हि चिन्ता कस्मै प्रदेयेति महान्वितर्कः।
दत्ता सुखं यास्यति वा नवेति कन्यापितृत्वं खलु नाम कष्टम्॥

कन्या का होना ही एक बहुत बड़ी चिन्ता का कारण है; फिर, किसके साथ उसका विवाह करना चाहिए? यह और भी ज़ियादा फ़िकर की बात है। खैर किसी तरह विवाह हो गया तो यह शंका बनी रहती है कि ससुराल में वह सुख से रहेगी या नहीं। क्या कहें, कन्या का पिता होना ही बड़े कष्ट की बात है।

पाण्डेय लोचनप्रसाद

भाग ६] जुलाई, १९०५ [संख्या ७

विविध विषय ।

जापान में पहला समाचार पत्र १८६३ ईसवी में निकला इस बात को सिर्फ़ ४२ वर्ष हुए। परन्तु इस समय वहां दैनिक और सामयिक पत्रों की संख्या १,५०० है!

* * *

ग्रीस की राजधानी एथन्स से एक साप्ताहिक पत्र पद्य में निकलता है। उसमें गद्य का नाम तक नहीं रहता। विज्ञापन तक पद्य में निकलते हैं। दुनिया में, इस समय, और किसी पत्रमें यह विचित्रता नहीं है।

* * *

स्विज़रलैण्ड के एक कारीगर ने एक ऐसी कल बनाई है जो छोटे छोटे बच्चों का रोना बन्द कर देती है। वह कल बच्चों के झूले में लगा दी जाती है। जब बच्चा रोता है तब उसकी आवाज़ से हवा में लहरें उठने लगती हैं। वे लहरें उस कल में लगी हुए फ़ोनोग्राफ़ (गानेवाला बाजा) को चला देती है और वह गीत गाने लगता है। इसके साथ ही उस कल में लगे हुए घड़ी के से चक्कर चल उठते हैं और झूले को हिलाने लगते हैं। गीत सुनने और झूले के हिलने से बच्चा चुप हो जाता है। उसके चुप होते ही हवा की चञ्चलता जाती रहती है और गाना और झूले का हिलना दोनों बन्द हो जाते हैं।

* * *

कुछ दिनों से यलेक्ट्रोफ़ोन नामक एक यन्त्र काम में लाया जाने लगा है। टेलीफ़ोन की तरह यह भी एक शब्दवाहक यन्त्र है; पर इसमें बिजुली की शक्ति से बहुत अधिक सहायता ली जाती है। यह जहां रख दिया जाता है वहां की बातचीत को सैकड़ों कोस दूर से आदमी सुन सकता है। एक दफ़ा इङ्गलैण्ड के प्रधान-मन्त्री बालफ़र साहब ने शेफ़ील्ड में एक वक्तृता दी। लण्डन से शेफ़ील्ड २०० मील है। वक्ता के सामने थोड़ी थोड़ी दूर पर चार यलेक्ट्रोफ़ोन यन्त्र रख दिये गये। वे यन्त्र उन तारों से जोड़ दिये गये जो लण्डन से ग्लासगो को गये हैं। इधर शेफ़ील्ड में बालफ़र साहब बोलने

लगे उधर लण्डन में अख़बारों के रिपोर्टर उसी तरह के यन्त्रों के सामने बैठकर उनकी वक्तृता सुनने लगे। जो कुछ साहब ने अपनी वक्तृता में कहा उसका एक एक शब्द साफ़ साफ़ लण्डन में सुन पड़ा और कुछ ही देर बाद वह सारी वक्तृता अख़बारों में छप गई। इन यन्त्रों के मुंह से इस वक्तृता को सुनकर रिपोर्टरों ने कहा कि यदि वे पार्लियामेण्ट में बालफ़र साहब के पास बैठकर उसे सुनते तो भी उसे वे उतना साफ़ न सुन सकते जितना साफ़ उन्होंने इन यन्त्रों के सामने बैठकर सुना। विज्ञान चाहे जो करे!

* * *

जान पड़ता है जिस चीज़ का भोग देवता लगाते हैं उसका पता लग गया। डाकृर क्लेमण्ट और डाकृर हुकार्ड ने एक ऐसी चीज़ ढूंढ निकाली है जो बेहद बलवर्द्धक है। उसका नाम है फ़ारमिक एसिड। यह एक प्रवाही पदार्थ है। इसमें कोई रङ्ग नहीं होता। यह चींटी और तितली की तरह के कीड़ों के बदन से निकलता है। इसकी गन्ध बहुत तेज़ और ज़ायक़ा बहुत ख़राब है। परन्तु शक्ति के बढ़ाने में तो यह ओषधि अपना सानी नहीं रखती। एक कमज़ोर आदमी को यह दवा खिलाई गई। उसका यह फल हुआ कि पहले वह जितना बोझ उठा सकता था उसका पँचगुना उसने उठा लिया। डाकृर हुकार्ड की परीक्षा का फल भी आश्चर्य्य-दायक हुआ। दो दिन उन्होंने इस दवा को खाया। इससे उनका बल दूना हो गया। पाँच दिन में वह पँचगुना हो गया! इतनी बलवृद्धि के लिए उन्हें सिर्फ़ पाँच ग्राम दवा खानी पड़ी, अर्थात् हररोज़ एक एक ग्राम। इस दवा का पता लग गया सो तो अच्छा ही हुआ। पर इस देश के अनेक वैद्य-राजों के रोज़गार के मारे जाने का डर है। फ़ारमिक एसिड सुलभ हो जाने से इन लोगों के रस, अवलेह, अरिष्ट और वटी आदि ले कर शेर से लड़ने या हाथी के दांत उखाड़ने को फिर कौन परवा करेगा?

पण्डित मथुराप्रसाद मिश्र।
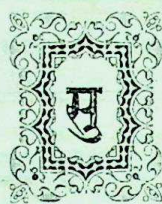
सुखदेव मिश्र का जीवनचरित, सरस्वती में, पढ़ कर हमारे कई मित्रों ने हम से कहा, कि हम अपनी तरफ़ के और दो एक पुण्यशील पुरुषों के चरित प्रकाशित करें। उनकी इच्छा को पूरा करने के लिए, आज, हम अपने पड़ोसी पण्डित मथुराप्रसाद मिश्र का चरित थोड़े में सुनाते हैं। मिश्र जी ३२ वर्ष तक बनारस के क्वीन्स कालेज में मास्टर रहे। इस प्रान्त के लिखे पढ़े आदमियों में शायद ही कोई ऐसे हों जो उनको न जानते हों। हमारे पास पड़ोस में तो, दूर दूर तक के देहाती आदमी तक, "मथुरा मास्टर" को जानते हैं।

चित्र देखने से चरित की योग्यता बढ़ जाती है; उसमें कुछ और ही शोभा आ जाती है; उसके पढ़ने से कुछ और ही आनन्द मिलता है। परन्तु खेद है, हमको मिश्र जी का चित्र नहीं मिल सका। बहुत प्रयत्न करने पर भी हमको कामयाबी नहीं हुई। सुनते हैं, उन्होंने अपना चित्र तैयार ही नहीं कराया। यह कोई आश्चर्य्य की बात नहीं। वे सादेपन का अवतार था; अङ्गरेज़ी के प्रकाण्ड पण्डित होने पर भी जिसे अङ्गरेज़ी सभ्यता छू तक नहीं गई थी; अपने पूर्वजों की चालढाल पर हिमा-लय के समान अचल रहने ही में जिसे गर्व था वह अपने चित्र के लिए क्यों किसी फ़ोटोग्राफ़र को ढूंढ़ने का परिश्रम उठाता?

चित्र न मिला, न सही। पाठक, आप हमारे साथ, बनारस कालेज के हेड मास्टर के कमरे में एक मिनिट के लिए चलिए और वहां एक कुर्सी पर बैठ कर ध्यानस्थ हो जाइए। भावना कीजिए कि दस बजने में कोई आध घण्टा बाक़ी है। इस समय एक पालकी आती हुई देख पड़ी और वह कालेज के बरामदे में रख दी गई। पालकी दोनों तरफ़ से बन्द है। इसके एक तरफ़ का दरवाज़ा

खुला। उससे एक पुरुष बाहर आया। उसके सिर में बिलकुल पुरानी चाल की पगड़ी है; बदन में बिलकुल पुरानी चाल का बालाबर अंगा है; उस पर एक काला चोग़ा है; कन्धे पर चोग़े के ऊपर घड़ी किया हुआ, बिलकुल पुरानी चाल का, सफ़ेद दुपट्टा रक्खा है। मारकीन की धोती लम्बी लटक रही है। सिर और डाढ़ी के बाल मुंड़े हुए हैं। मूंछें बड़ी बड़ी हैं। ओंठ कुछ मोटे हैं। नाक और आँखें बड़ी हैं। शरीरलता लम्बी, पर मोटी नहीं है। रंग सांवला है। ललाट पर सफ़ेद चन्दन की दो टिकलियां लगी हुई हैं। इस वेश और इस आकृति की वह मूर्ति कमरे के भीतर आई और अपनी कुरसी पर बैठ गई। अब तक, बिलकुल पुरानी चाल के उसके देशी जूते, पालकी ही में थे। उन्हें एक चपरासी, या दफ्तरी, उठा लाया और मेज़ के नीचे उसने रख दिया। आप यह न समझिए कि पालकी से कमरे तक इस माननीय मूर्ति को नंगे पैरों चलना पड़ा। नहीं; पैरों में मोज़े हैं। बस, आपने, अंगरेज़ी-सभ्यता के साथ इतनी ही रिआयत की है। परन्तु कहां? पैरों में! पाठक, भावना के बल से यदि आपने इस शब्दचित्र को समझ लिया है तो आप पण्डित मथुराप्रसाद मिश्र के चित्र को देख चुके।

पण्डित जी, कान्यकुब्ज ब्राह्मण, हिमकर के मिश्र थे। जिस वंश को हमारे सुखदेवजी ने अपने जन्म से पवित्र किया, उसी वंश की शोभा मथुराप्रसादजी ने भी बढ़ाई। कानपुर के पास काकूपुर एक गाँव है। मिश्रजी के पूर्वज वहीं रहते थे। उनके पिता ने काकूपुर छोड़ दिया; और उनाव के ज़िले में, भगवन्तनगर के पास, हमोरपुर में वे जाकर रहने लगे। वे बहुत दिनों तक वहां रहे। हमीरपुर से गङ्गातट कोई छ सात मील था। उनाव ही के ज़िले में एक गाँव बकसर है। वह गङ्गा के बिलकुल किनारे है। वहाँ चण्डिका देवी का एक बहुत पुराना मन्दिर है। मिश्रजी के एक सम्बन्धी वहां रहते थे। अतएव उनकी सलाह से, १८७० ईसवी में, मिश्रजी ने हमीरपुर छोड़ा और बकसर में घर बनवाया। मिश्रजी के पिता ने अपने पिता का गांव छोड़ा। क्या इसीसे पण्डितजी ने भी अपने पिता का गांव छोड़ दिया? जब से मिश्रजी बकसर आये तब से वे हमारे पड़ोसी हुए। हमारे जन्मग्राम से यह ग्राम केवल दो मील है। पण्डित मथुराप्रसाद के पितामह का नाम वैद्यनाथ था। उनका विवाह उनाव के ज़िले में सुमेरुपुर नामक गांव में हुआ था। यह गांव भगवन्तनगर और हमीरपुर से थोड़ी ही दूर है। इसी योग से मिश्रजी के पिता, पण्डित सेवकराम, कानपुर का ज़िला छोड़कर, उनाव के ज़िले में आये। वहां, हमीरपुर में, २० जुलाई, १८२६ ईसवी को पण्डित मथुराप्रसाद का जन्म हुआ।

पण्डित मथुराप्रसाद के पिता बनारस में नौकर थे। बनारस कालेज के अध्यक्ष ग्रिफ़िथ साहब के समय के पुराने चपरासियों का कथन है कि पण्डित जी के पिता बनारस में किसी बहुत छोटे काम पर थे। परन्तु एक और मार्ग से जो बातें हमको मालूम हुई हैं उनसे जान पड़ता है कि वे किसी बङ्गाली राजा के यहां कारिन्दा थे। शायद पीछे से वे कारिन्दा हुए हों। कुछ भी हो, यह सिद्ध है, कि वे बहुत अच्छी दशा में न थे।

पण्डितजी की उमर पाँच वर्ष की थी जब वे अपने पिता के पास बनारस आये। वहां आने के दो ही वर्ष बाद उनके बड़े भाई का शरीरपात हुआ और उनकी माता भी परलोक पधारीं। इतनी छोटी, अर्थात् सात वर्ष की उमर में, मातृहीन होना बड़ी दुःसह विपत्ति है। पर, ऐसी दुर्व्यवस्था होने पर भी, अपने पिता की प्रेरणा से, मिश्रजी ने विद्याभ्यास आरम्भ किया। कुछ समय के अनन्तर उन्होंने गवर्नमेण्ट कालेज में प्रवेश किया। यद्यपि इनको कई तरह के सुभीते न थे, तथापि इन्होंने सब बाधाओं को तुच्छ समझ कर, अध्ययन में चित्त लगाया। सुनते हैं, ये सदैव अपने दरजे में सब से ऊंचे रहते थे; और जितनी परीक्षायें होती थीं, सब में, इनको पारितोषिक मिलता था।

उस समय यूनीवर्सिटी की स्थापना नहीं हुई थी; एम० ए०, बी० ए० का कहीं नाम न था; यंट्रेंस, अर्थात् प्रवेशिका, परीक्षा तक जारी नहीं हुई थी। कालेज में केवल दो विभाग थे—एक जूनियर, दूसरा सीनियर। १८४६ ईसवी में पण्डित मथुराप्रसाद सीनियर क्लास में पहुंच गये; उसमें उनका आसन सब विद्यार्थियों के ऊपर हुआ। बनारस कालेज के भूत-पूर्व अध्यक्ष डाक्टर बालण्टाइन ने अपनी दी हुई सरटीफ़िकट में ऐसा ही लिखा है। मिश्रजी ने अपनी तीव्र बुद्धि, विद्याभिरुचि और योग्यता से अपने अध्यापकों को सदा प्रसन्न रक्खा।

पण्डितजी ने १८४६ ई०, अर्थात् २० वर्ष की उमर में, विद्याध्ययन समाप्त किया। समाप्त उन्होंने क्या किया; उन्हें करना ही पड़ा। उससे आगे अध्ययन का प्रबन्ध ही न था। यदि पण्डित जी ने सात वर्ष की उमर में पढ़ना आरम्भ किया तो १३ वर्ष में उसकी समाप्ति हुई। इससे यह अनुमान होता है, कि पहले, यदि हिन्दी और संस्कृत पढ़ने में, उनको ६ वर्ष लगे तो ७ वर्ष तक उन्होंने अंगरेज़ी पढ़ी। उस समय इतना पढ़ना बहुत काफ़ी था। और इस बात को अपनी विद्वत्ता से पण्डितजी ने अच्छी तरह सिद्ध भी कर दिखाया।

कालेज की शिक्षा समाप्त होने पर पण्डितजी को गवर्नमेण्ट ने यञ्जिनियरी का काम सीखने के लिए ग़ाज़ीपुर भेजा। वहां एक यञ्जिनियर के पास रह कर उन्होंने वह काम सीखा। वहां से लौट आने पर उन्होंने क़ानून का अभ्यास आरम्भ किया। इसी बीच में बनारस कालेज में थर्ड (तीसरे) मास्टर की जगह ख़ाली हुई। कालेज की कमिटी पण्डित जी की योग्यता को अच्छी तरह जानती थी। इस लिए, इसने उनको, ७५ रुपये महीने पर, परीक्षा के तौर पर, थर्ड मास्टर नियत किया। १८४७ ईसवी के एप्रिल में इस जगह पर उनकी नियुक्ति हुई। इससे स्पष्ट है कि यञ्जिनियरी, और क़ानून का अभ्यास उन्होंने केवल वर्ष ही डेढ़ वर्ष किया। थर्ड मास्टरी पर उनकी परीक्षा बहुत दिनों तक होती रही। दिनों नहीं, बरसों त[illegible] कहना चाहिए। सात वर्ष के बाद गवर्नमेण्ट [illegible] उनको इस पद पर दृढ़ रूप से नियुक्त किया। ३१ [illegible] १८५४ ईसवी को वे पूरे थर्ड मास्टर हुए और [illegible] का वेतन ७५ से १५० रुपये हो गया।

थर्ड मास्टरी पर काम करते मिश्र जी को तो[illegible] वर्ष भी न होने पाये थे, कि १८५७ ईसवी [illegible] आरम्भ में, इस प्रान्त के भूतपूर्व लफ्टिनेण्ट गव[र्]नर, माननीय कालविन साहब के मन में, बनार[स] कालेज के अध्यापकों की परीक्षा लेने की धु[न] समाई। सुनते हैं, यह बात मिश्र जी को बहुत नागवार हुई। यहां तक कि लफ्टिनेण्ट गवर्नर के सेक्रेटरी को उन्होंने ने दो चार कड़ी कड़ी बा[तें] भी सुनाईं। परन्तु परीक्षा किसी तरह टली नहीं; देनी पड़ी। उनको कालविन साहब के डेरे [पर] जाना पड़ा। वहां साहब ने जो कुछ उनसे पूछ[ा] उसका उन्होंने ऐसा अच्छा उत्तर दिया कि साह[ब] उन पर बहुत ही प्रसन्न हुए। इस प्रसन्नता [के] उपलक्ष्य में उन्होंने मिश्र जी को उनका नाम खुदवा कर एक घड़ी पुरस्कार में दी। यही नहीं, किन्तु १८ जनवरी, १८५७ से, मिश्र जी को साहब [ने] सेकण्ड (दूसरा) मास्टर करके उनका वेतन १[५०] से २०० कर दिया। दैवयोग से उस समय व[ह] जगह ख़ाली थी।

पण्डित मथुराप्रसाद जी ११ वर्ष तक सेकण्ड मास्टर रहे। १८६८ ईसवी के मे महीने में हेड मास्टरी ख़ाली हुई। उस समय डाइरेक्टर साहब की तजवीज़ यह हुई कि बरेली के स्कूल से एक मास्टर क्वीन्स कालेज में लाये जाँय और उन्हीं को हेड मास्टरी मिलै। परन्तु, उस समय, ग्रिफ़िथ साहब कालेज के प्रधान अध्यापक थे। पण्डित जी पर उनकी बेहद कृपा थी। उन्होंने प्रयाग के छोटे लाट, सर विलियम म्योर, से पण्डित जी की सिफ़ारिश करके उन्हीं को हेड मास्टरी दिला दी। इस पद के पण्डित जी सर्वथा योग्य थे; और ग्रिफ़िथ साहब और गवर्नमेण्ट ने जो कुछ किया

सर्वथा न्याय्य किया। तब से पण्डित जी का मासिक वेतन ४०० रुपये हो गया।

पण्डित जी ने दस वर्ष तक बड़ी ही योग्यता से हेड मास्टरी की। जब उनको नौकरी करते ३२ वर्ष हो चुके, तब, अर्थात् १८७८ ईसवी में, उन्होंने २०० रुपये मासिक पर पेनशन ले ली। तब से उनका समय विशेष करके भजन-पूजन में ही व्यतीत होने लगा।

मिश्र जी समय के बड़े पाबन्द थे। सदैव ठीक समय पर कालेज जाते थे। समय पर क्या, उसके पहलेही वे पहुँच जाते थे। एक मिनिट की देरी नहीं होती थी। उनके समय में, लड़के क्या मास्टर तक, सब समय पर आते और अपना अपना काम करते थे। जो लड़के देर से आते थे उनपर उनकी बड़ी तीव्र दृष्टि रहती थी। पण्डित जी के आधीन जो मास्टर थे वे तक उनसे डरते थे। स्कूल में उनका आतङ्क सा जमा था। कोई लड़का या मास्टर सिर खोल कर क्लास में न बैठने पाता था। उनके समय में जानदास नामक एक किरानी मास्टर थे। उनको पण्डित जी ने साफ़ा बांधने के लिए मजबूर किया। जानदास ने ग्रिफ़िथ साहब से शिकायत की। साहब ने मिश्र जी के पक्ष में फ़ैसला किया। उन्होंने जान से कहा कि तुम्हारा धर्म्म क्रिश्चियन है; परन्तु तुम्हारा देश हिन्दुस्तान है। इस लिये तुमको हिन्दुस्तानी पहनाव पहनना चाहिये।

पण्डित जी के अनेक छात्र इस समय बड़े बड़े पदों पर हैं। परलोकवासी सैयद महमूद ने बहुत दिनों तक उनसे पढ़ा था। उनके विद्यार्थियों में से हमारे एक मित्र पण्डित युगुलकिशोर बाजपेयी हैं। वे इस समय चरखारी राज्य में एक अच्छे ओहदे पर हैं। उनका कथन है कि जहां तक वे जानते हैं, मिश्र जी ने कालेज से कभी छुट्टी नहीं ली; कभी वे बीमार नहीं हुए; और कभी वे देरी से नहीं आये। उनकी याद में एक बार मिश्र जी को कालेज में जूड़ी आ गई। इससे जब अपनी चौकी पर उनसे किसी तरह न बैठे रहा गया तब वे बाहर बरामदे में चले गये। वहां अपनी पालकी के भीतर वे सिकुड़ कर बैठ गये। इधर लड़के यह जान कर खुश हुए कि आज इनसे पिण्ड छुटा। परन्तु केवल १५ मिनिट हुए थे कि मिश्र जी फिर अपनी कुरसी पर आकर डट गये।

सुनते हैं पण्डित जी के मिज़ाज में सख़्ती बहुत थी। इसीसे कालेज से सम्बन्ध रखनेवाले लोग उनको ज़रा कम पसन्द करते थे। पहले पण्डित जी, घर से कालेज तक, अपनी पालकी के दरवाज़े खोल कर आते थे। परन्तु पीछे से पालकी के दरवाज़े बन्द करके वे कालेज जाने लगे। यह परिवर्तन शायद उनकी किसी सख़्ती ही के परिणाम का सूचक हो।

पण्डित जी क़ायदे के भी सख़्त पाबन्द थे। इसी से वे चाहते थे कि और लोग भी उन्हीं का अनुकरण करें। परन्तु सब लोग "मथुराप्रसाद" न थे। उनसे सख़्ती न होती थी। वे थोड़ी थोड़ी बात के लिये लड़कों की रिपोर्ट न करते थे। यह बात मिश्र जी को पसन्द न थी। पण्डित दीनदयालु तिवारी, इस समय, इस प्रान्त में, मदरसों के असिस्टण्ट इन्सपेक्टर हैं। मिश्र जी के समय में वे उनके आधीन क्वीन्स कालेज में मास्टर थे। उनके किसी काम से अप्रसन्न होकर मिश्र जी ने प्रधान अध्यापक से उन पर दण्ड कराया। परन्तु पण्डित दीनदयालु जी ने साहब से मिल कर वह दण्ड माफ़ करा लिया। इस पर मिश्र जी बहुत नाराज़ हुए। और इस घटना को वे जन्म भर नहीं भूले। उनकी मृत्यु के कुछ ही समय पहले, एक दिन, असिस्टण्ट इन्स्पेक्टरी की दशा में, पण्डित दीनदयालु जीने मिश्र जी से अपने उस अपराध की क्षमा मांग कर उनको सन्तुष्ट किया। इससे जान पड़ता है कि मिश्र जी कुछ क्रोधी भी थे।

पण्डित युगुलकिशोर बाजपेयी चरखारी जाने के पहले एक बार पण्डित मथुराप्रसाद के पास गये और उनसे उन्होंने कुछ उपदेश चाहा। आपने

बहुत सूक्ष्म उपदेश दिया। आपने अंगरेज़ी के तीन शब्द कहे—"Satisfy your conscience" अर्थात् अन्तःकरण को सन्तुष्ट रक्खो। मतलब यह कि जिस काम के करने को तुम्हारा दिल गवाही दे उसी को करो। जिसे करने को दिल न गवाही दे उसे कभी मत करो। उपदेश बहुत अच्छा दिया।

पण्डित जी की अङ्गरेज़ी-विद्वत्ता बहुत बढ़ी चढ़ी थी। वे बड़े ही अध्ययनशील थे। इसीसे ग्रिफ़िथ साहब उन पर सबसे अधिक प्रसन्न थे। वे ऐसी अच्छी अङ्गरेज़ी बोलते थे—उनका उच्चारण ऐसा अच्छा था—कि यदि वे एक कमरे के किवाड़ बन्द करके भीतर से बोलें तो बाहर से सुननेवाले अँगरेज़ों को भी कभी स्वप्न में भी यह सन्देह न हो कि कोई हिन्दुस्तानी बोल रहा है। ऐसा अद्वितीय वक्ता, हेड मास्टर, पाने का ग्रिफ़िथ साहब को बड़ा गर्व था। वे बहुधा पण्डित जी के कमरे में आते थे; परन्तु सुनते हैं पण्डित जी उनके कमरे में, बिना बुलाये कभी नहीं जाते थे। जब कोई अंगरेज़ अधिकारी कालेज में आता था तब ग्रिफ़िथ साहब उसे पण्डित जी से अवश्य मिलाते थे और उनकी विलक्षण वक्तृता उसे सुनाते थे। उनके एक विद्यार्थी का कथन है कि एक बार मिश्र जी लड़कों को पढ़ा रहे थे कि अध्यापक केबुल साहब ने अपने कमरे में उनको बुलाया। उस समय, शीघ्रता में, पण्डित जी के मुँह से निकल गया:—Let the boys be explained the passage. पर, कहना चाहिये था:—Let the passage be explained to the boys. इसका पण्डित जी को बहुत दिनों तक रंज रहा।

विलायत जाने के पहिले बनारस कालेज के भूतपूर्व प्रधानाध्यापक (प्रिंसिपल) जेम्स, आर, बालेण्टाइन साहब, एल. एल. डी., ने पण्डित जी को जो सरटीफ़िकट दिया है उसमें उन्होंने माने पण्डित जी का जीवनचरित थोड़े में कह सुनाया है। उसमें और और बातों के सिवा पण्डित जी की नियम-निष्ठा, विद्या-प्रेम, कार्य-दक्षता और सच्चरित्रता की भी ख़ूब प्रशंसा है। उसकी यथा-तथ्य नक़ल हम नीचे देते हैं:—

Ever since I first joined the Benares College, I have known Babu Mathura Parsad Misra. He was then a senior scholar, in the last year of his pupilage, and at the top of his class.

In 1846 he was sent, under the orders of Government, to Ghazipur to study Civil Engineering with the Engineer then there. On his return from Ghazipur he studied Law and the Government Regulations. Afterwards the third mastership of the college becoming vacant, and no quite suitable person being found to fill it, the Local Committee appointed him, in April 1847, to officiate as Third Master. After nearly seven years' trial the Government confirmed him in the appointment. In the beginning of 1857, the late Honourable Mr. Colvin, the Lieutenant-Governor of the North-Western Provinces, summoned him to his camp, put him through an examination, and as a mark of approbation, presented him with a watch, at the same time promoting him to the Second Mastership which was then vacant. He has been punctual and zealous in the discharge of his duties, and as a teacher he has always given great satisfaction to the Head Master, Professor Griffith. I have been glad to observe that he has always continued to show himself singularly fond of study, and I believe his labours as a teacher have not been confined to school-hours.

He is a polite and well-bred man, and his conduct and character are, to the best of my belief, unimpeachable.

I give him this testimonial on my leaving India finally.

(Sd). JAMES R. BALLANTYNE,
Principal and Secretary, L. C. P.

BENARES COLLEGE:
The 13th December, 1860.

इस सरटीफ़िकेट की तारीख़ १३ डिसम्बर १८६० ईसवी है।

पण्डित मथुराप्रसाद ने कई पुस्तकें लिखी हैं—उन में से कुछ के नाम हम नीचे देते हैं—

नम्बर नाम		समाप्त होने का समय
१—लघुकौमुदी का हिन्दी-अनुवाद	... ...	१४ आक्टोबर, १८५६ ई०
२—बाह्यप्रपञ्चदर्पण	... ...	१८५१ ई०
३—Trilingual Dictionary अर्थात् त्रैभाषिक कोश (हिन्दी, उर्दू, अङ्गरेज़ी)	...	दिसम्बर, १८६५ ई०
४—तत्वकौमुदी (व्याकरण) का हिन्दी-अनुवाद	...	एप्रिल, १८६८ ई०
५—प्राइमर ...	... ...	२५ जुलाई, १८६८ ई०
६—प्रैक्टिकल इँगलिश	... .	दिसम्बर, १८७३ ई०
७—सिलेक्ट् रूट्स ...	... ...	नहीं मालूम
८—मन्त्रोपदेश-निर्णय	... ...	नहीं मालूम
९—चाणक्य-नीतिदर्पण	... ...	नहीं मालूम

इन पुस्तकों में से प्रैक्टिकल इङ्गलिश और त्रैभाषिक कोश बड़े काम की पुस्तकें हुईं। प्रैक्टिकल इङ्गलिश तो बहुत दिनों तक स्कूलों में जारी थी। उस में अंगरेज़ी लिखने के नियम और वाक्यों के उदाहरण बहुत ही अच्छे हैं। इस पुस्तक का संशोधन स्वयं ग्रिफ़िथ साहब ने किया था। अँगरेज़ी-प्रचार में इस पुस्तक ने बड़ी सहायता पहुँचाई। स्कूल में हमने भी इसे पढ़ा था। उस का बीज अभी तक हमारे हृदय में है।

Little boys often lose their lives by going into deep water.

इत्यादि वाक्य अभी तक हमको याद हैं। यह पुस्तक यद्यपि इस समय स्कूलों में नहीं पढ़ाई जाती, तथापि अंगरेज़ी में शीघ्र प्रवेश पाने की इच्छा रखने वाले इसे अब भी बड़े प्रेम से पढ़ते हैं।

परन्तु त्रैभाषिक कोश लिख कर पण्डित जी ने सबसे अधिक नाम पैदा किया। उससे सर्वसाधारण को लाभ भी ख़ूब पहुंचा। इस कोश को देख कर इस प्रान्त की गवर्नमेण्ट इतनी ख़ुश हुई कि उसने पण्डित जी को ५०८) रुपये की क़ीमत की ख़िलत दी और यह सनद भेजी—

SUNUD.

To
BABU MATHURA PARSAD,
SECOND MASTER, BENARES COLLEGE,
Benares.

SIR,

The Honourable the Lieutenant-Governor, North-Western Provinces, having been informed of the accuracy and scholarship displayed in the Trilingual Dictionary, on the preparation of which you have expended the labour of several years, has been pleased, in order to mark his approbation of the service rendered by you to the cause of education, to confer a Khillut upon you of the value of Rupees 500, which will be presented to you by the Commissioner of the Benares Division.

(Sd.) R. SIMSON,
Secretary to the Government of N.-W. P.

ALLAHABAD:
The 2nd of April, 1866.

गवर्नमेण्ट ने पण्डित जी की विद्वत्ता की प्रशंसा उत्कीर्ण कराकर एक सोने का पदक उनको पुरस्कार में दिया और उसके साथही हीरा लगी हुई सोने की एक क़लम। यही ख़िलत थी। इस कोश के बनाने में पण्डित जी को बड़ा परिश्रम पड़ा। पर ग्रन्थ बहुत अच्छा बना। उन्होंने इस में अंगरेज़ी शब्दों की उत्पत्ति और उनके अर्थ अंगरेज़ी, हिन्दी और उर्दू में बड़ी ही योग्यता से लिखे हैं। इसकी

प्रशंसा उस समय के प्रायः सभी अंगरेज़ी अख़बारों ने की थी। इसकी समालोचना जिसे देखना हो वह १३ फ़ेब्रुअरी, १८६६, का देहली-गज़ट, १५ फ़ेब्रुअरी १८६६, का फ्रेण्ड आफ़ इण्डिया, २४ फ़ेब्रुअरी १८६६, का वीकली-न्यूज़ और २६ फ़ेब्रुअरी, १८६६, का पायनियर देखे। इङ्गलैण्ड के अख़बारों ने भी इस की ख़ूब प्रशंसा की थी। सचमुच पण्डित जी ने इस कोश में अपनी अपार विद्वत्ता का परिचय दिया है। यह पुस्तक उन्होंने बनारस के मेडिकल हाल प्रेस के मालिक, डाक्तर लाज़रस, को दे दी। उन्होंने इसे छापा। वही प्रेस इसे अब तक बेंचता है। कोशों में इसका बड़ा आदर और प्रचार है।

पण्डित मथुराप्रसाद मिश्र हिन्दी के बड़े पक्षपाती थे। यह बात उन्होंने अपने कोश में अच्छी तरह स्पष्ट कर दी है। हिन्दी में उनकी कैसी पूज्य बुद्धि थी; उसके प्रचार को वे कहां तक अच्छा समझते थे; और उसे वे कितने विस्तार और कितनी योग्यता का जानते थे—यह बात उन्होंने अपने कोश की भूमिका में बड़ी दृढ़ता से, साफ़ साफ़, लिखी है। उनके अङ्गरेज़ी लेख का कुछ अंश हम नीचे देते हैं—

The easiest common Hindi should be employed, wherever it will suffice. But when its resources fail, preference should decidedly be given to Sanscrit over a foreign tongue There may be instances in which the reverse will hold good. But these instances must form the exception, not the rule. In cases in which the stores of Hindi would answer well, exotic words should not be used in writings, professedly Hindi. With every regard for those that differ from me, I aver that their favorite jargon—by no better name can I call their language—the farrago of Arabic, Persian, Urdu, Sanscrit and Hindi—serves, at best, only to provoke a contemptuous smile in men of taste. But some would perhaps *kill* Hindi. They think it is dismissed from society, and is, therefore, synonymous with rusticity,—that it leads to no practical good, hence it must needs be discouraged. They should bear in mind that Hindi has retired from the Court and general society by the force of circumstances.

The encroachments of Persian and Urdu h[illegible] proved too much for it. Its case is analogous to [illegible] of English immediately after the Norman conqu[illegible] The language of the Conquerors became the langu[illegible] of Law and, likewise, of Society, to a very la[illegible] extent. But though Hindi, like a modest maid, [illegible] withdrawn from the public gaze in towns and ci[illegible] yet it has ever been present around our hearths, [illegible] amid our family circles. Our mothers and sist[illegible] our wives and daugthers, exchange ideas only [illegible] genuine forms of Hindi. Gentlemen in the high[illegible] walks of life, while in the public audience, do [illegible] converse in elegant Urdu. But when they are [illegible] themselves, with their dependents, or among th[illegible] female relations, the scene is changed. Good hom[illegible]-bred expression of Hindi then almost exclusivel[illegible] escape their lips or charm their ears. I now a[illegible] why should Hindi spoken at home by the greatest a[illegible] the most learned be described as barbarous? Ag[illegible] on the ground of utility too, Hindi merits encoura[illegible]ment. Beyond the pale of law, Hindi is found m[illegible] useful than Urdu. In ordinary life, the former [illegible] more serviceable to Hindus than the latter. It [illegible] needed in the pettiest grocer's shop as well as in t[illegible] most respectable firm. In the rural districts, its [illegible] is more general. It does not, indeed, help us to g[illegible] situations. But that does not warrant us in desiri[illegible] its extinction.

There are far higher ends to be served. T[illegible] character of the mass of the people is to be rais[illegible] They must be taught to read and write,—must be m[illegible] to learn the truths of the West—not in the langu[illegible] of those by whom they were ill-treated, abused, a[illegible] oppressed for successive generations, but in th[illegible] genial speech of their ancestors, which is their [illegible] valuable inheritance. National education must [illegible] conducted through the *proper* Vernacular, if we de[illegible] success.

सरस्वती के पढ़ने वालों में से जो अंगरेज़ी जान[illegible] हैं, हम उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे इस कोश [illegible] भूमिका को अवश्य पढ़ें। इससे हिन्दी के विष[illegible] में पण्डित जी की राय अच्छी तरह मालूम हो जायगी और उनकी अंगरेज़ी का नमूना भी देख[illegible] को मिल जायगा।

पण्डित जी की तत्वकौमुदी और उन [illegible] किया हुआ लघुकौमुदी का हिन्दी-अनुवाद [illegible]

हमने देखा है। दोनों बहुत अच्छी पुस्तकें हैं। उनकी और पुस्तकें देखने का हमको सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। अतः हम नहीं जानते कि बाह्यप्रपञ्च-दर्पण, मंत्रोपदेशनिर्णय और चाणक्य-नीतिदर्पण संस्कृत में हैं या हिन्दी में। ये पुस्तकें क्यों लिखी गईं, कितनी बड़ी हैं और कैसी हैं, यह भी हम नहीं जानते। पण्डित जी का वृत्तान्त बतलानेवाले ऐसे हैं कि शिव, शिव!

पण्डित मथुराप्रसाद जी के पिता, पण्डित सेवकराम जी, पुत्र के पेंशन लेने के कई वर्ष पीछे तक जीवित थे। १८८७ ईसवी में, ९६ वर्ष के होकर, वे परलोकगामी हुए। उनकी और्ध्व-दैहिक क्रिया मिश्र जी ने विधिपूर्वक की और अन्त तक वे श्राद्ध तथा तर्पण करते रहे।

पण्डित जी बड़े ही कर्म्मठ ब्राह्मण थे। उनके बराबर धर्म्मभीरु और पुरानी चाल ढाल का आदमी शायदही कोई और हो। उनको छुवाछूत का बड़ा विचार था। कालेज में ऐसे वैसे आदमी उनके कमरे में न आने पाते थे। वे बरामदे में रहते थे और आप अपने कमरे के भीतर से उनसे बातें करते थे। पीछे पीछे से तो वे हिन्दुओं तक को छूने में हिचकते थे। एक बार हमारे एक मित्र उनसे मिलने गये। उनके डाढ़ी थी। उसे देखकर मिश्र जी ने उन्हें बाहर ही रोका; भीतर आनेही न दिया। जब उनको मालूम हुआ कि आगन्तुक व्यक्ति हिन्दू है और उनका विद्यार्थी है, तब आपने उन्हें भीतर बुलाया। आगन्तुक ने भीतर जाकर भक्ति के उद्रेक में मिश्र जी के चरणस्पर्श किये। मिश्रजी ने आशीर्वाद तो दिया परन्तु तत्कालही अपने सिर पर गङ्गाजल छिड़का! अच्छा हुआ हम उनको दूर ही से प्रणाम करते रहे। नहीं तो उन्हें बार बार अपने ऊपर जल छिड़कने का कष्ट उठाना पड़ता।

मिश्र जी जब तक कालेज में थे तब तक प्रातः-काल ४ बजे उठते थे, और शौच से निवृत्त होकर, गङ्गास्नान करते थे। फिर सन्ध्योपासन और विष्णु-सहस्रनाम का पाठ करके वे लेखन और पुस्तका-वलोकन में लग जाते थे। ९ बजे भोजन करके वे कालेज जाते थे और वहां से ४ बजे आते थे। आकर कालेज के कपड़े उतार कर वे अलग रख देते थे। तब गङ्गाजल ऊपर छिड़क कर वे धोये हुए कपड़े पहनते थे और फिर पुस्तकावलोकन में मग्न हो जाते थे। अनन्तर, सायंसन्ध्योपासन करके, फिर भी वे पुस्तक हाथ में ले लेते थे। रात को वे केवल दूध पीते थे। यह दिनचर्य्या उनकी बराबर ३२ वर्ष तक बनी रही। मिश्र जी के पुत्र पण्डित शिव-नन्दनप्रसाद ऐसाही कहते हैं। परन्तु क्या इस ३२ वर्ष के लम्बे समय में मिश्र जी कभी किसीसे न मिलते थे? उनके मिलने का समय तो इस दिनचर्य्या में कहीं नहीं आया। उनके एक विद्यार्थी का कहना है कि पण्डित जी भ्रमण के लिये भी जाया करते थे और शाम को लोगों से मिलते भी थे। वे यह भी कहते हैं कि सवेरे मिश्र जी केवल जल-पान करके कालेज जाते थे; भोजन वे नित्य सायंकाल ही को करते थे। पर हमने दोनों बातें यहां पर लिख दीं।

पेंशन लेने पर पण्डित जी की दिनचर्य्या बदल गई थी। उस समय वे सवेरे उठकर गङ्गा-स्नान करते थे। फिर गायत्री का जप। गीता-पाठ और तर्पण इत्यादि करते ११ बजते थे। तब वे अपने हाथ से भोजन बनाते थे। कभी कभी वे महीनों तक केवल दूध पीकर रह जाते थे। दोपहर से ४ बजे तक वेदान्त का विचार करते थे; फिर लोगों से मिलते थे। सायङ्काल, सन्ध्योपासन के अनन्तर, वे फिर कुछ जप इत्यादि करते थे। ८ बजे वे दूध पीते थे। तब एकान्त में बैठ कर वे माला फेरते थे। रात को १० बजे वे सोते थे। इस प्रकार १९ वर्ष तक अपनी दिनचर्य्या रख कर १८ नवम्बर, १८९७ ईस्वी को, ७२ वर्ष की उमर में, काशी में, गंगा के तट पर, उन्होंने शरीरत्याग किया। उस दिन उनके सम्मान में बनारस कालेज बन्द रहा।

पण्डित जी हिन्दी, संस्कृत, अँगरेज़ी और बँगला, ये चार भाषायें जानते थे। संस्कृत आप अच्छी जानते थे। अच्छी यदि न जानते तो व्याकरण का हिन्दी-अनुवाद कैसे कर सकते ? उनमें अंगरेज़ी कि विद्वत्ता बहुत बड़ी थी। उसका उल्लेख ऊपर हो चुका है; आगे भी कुछ होगा। सुनते हैं आप फ़ारसी भी जानते थे।

बनारस के बाबू श्यामाचरण, सबजज, गवर्नमेण्ट कालेज के प्रधान धर्म्माध्यक्ष पण्डित देवदत्त और पण्डित शिवनारायण मिश्र, पण्डित मथुराप्रसाद के आभ्यन्तरिक मित्र थे।

पण्डित मथुराप्रसाद बड़े संयमी, बड़े नियमनिष्ठ और बड़े ही संचयी थे। संयम का यह हाल था कि इनके गांव बकसर में लोगों ने इनको भोजन की सामग्री तौल कर खाते देखा है। नियमनिष्ठा इनकी ऐसी थी कि जो समय इन्होंने मिलने का रक्खा था उसका अतिक्रम करके और किसी समय किसीसे ये न मिलते थे, मिलनेवाला चाहे कैसा ही बड़ा आदमी क्यों न हो। सञ्चयशीलता भी इनकी बहुत ही बढ़ी चढ़ी थी। इन्होंने बहुत धन इकट्ठा किया। सुनते हैं ये अपना रुपया रियासतों को व्याज पर देते थे। उसमें बहुत सा रुपया डूब भी गया। इनके पुत्र ने कोई व्यापार किया था; उससे भी शायद कुछ रुपया घाटे में गया। परन्तु मिश्र जी ने अपने रुपये का बहुत कुछ सद्व्यय भी किया। कुछ समय से ये अपने वंशज हिमकर के मिश्रों की असहाय विधवाओं को दो रुपया महीना वृत्ति देने लगे थे। निर्धनता के कारण जिन हिमकरवंशीय उपवर कन्याओं का विवाह नहीं हो सकता था, उनके विवाह के लिये भी ये रुपया देते थे। यह प्रबन्ध मिश्र जी के पुत्र पण्डित शिवनन्दनप्रसाद भी, सुनते हैं, थोड़ा बहुत चलाये जाते हैं।

पण्डित मथुराप्रसाद बड़े ही दृढ़प्रतिज्ञ थे। आज्ञाभङ्ग से क्रोध भी उनको महाकाल ही का ऐसा आता था। पढ़ने लिखने या शायद और किसी विषय में अपनी आज्ञा का उल्लंघन क… के अपराध में, उन्होंने अपने एकमात्र पुत्र शि… नन्दनप्रसाद को अलग कर दिया और शायद … तक पिता पुत्र से प्रत्यक्ष बात चीत नहीं हु… मिश्र जी के पिता और मिश्र जी की पत्नी ने प… शिवनन्दनप्रसाद का साथ छोड़ना न चाहा। … लिए मिश्र जी उनसे भी अलग हो गये। ये … रहते रहे और वे अलग। परन्तु मिश्र जी ने उ… कमी किसी बात की नहीं होने दी। उनके आ… से रहने का प्रबन्ध आपने बहुत अच्छा कि… पीछे से उन्होंने अपना यह पृथक्त्व कुछ शिथि… कर दिया था।

पण्डित जी के अनन्तर उनकी जायदाद के मालिक उनके पुत्र पण्डित शिवनन्दनप्रसाद … हैं। ये भी सज्जन हैं; संस्कृत जानते हैं; और … रेज़ी में भी इनको बोध है। यह क्या करते हैं … ठीक ठीक नहीं जानते। सम्भव है, इन्होंने … ज़मींदारी इत्यादि मोल ली हो; या लेन देन … सिलसिला जारी किया हो; और उसीमें लगे र… हों। इनकी इच्छा थी कि अपने पिता के नाम … एक छोटा सा वैदिक पाठशाला बनारस में … करें। शायद यह पाठशाला खुल भी गया … दशाश्वमेध घाट पर, ठीक गङ्गा के किनारे, प… मथुराप्रसाद का बनाया हुआ एक मकान है। … में शायद यह पाठशाला खुला है। क्या पढ़ा… जाता है, कितने अध्यापक हैं, कितने छात्र … क्या नियम हैं, यह हमें मालूम नहीं।

दशाश्वमेध घाटवाले मकान के सिवा बना… में पण्डितजी के और भी दो एक मकान हैं। उ… गांव बकसर में भी उनका एक मकान है। प… जी के जीवनकाल में बकसरवाला मकान … कुल कच्चा था और बुरी हालत में था। पर प… शिवनन्दनप्रसाद ने उसका जीर्णोद्धार कर के … अच्छा बना दिया है।

पण्डित शिवनन्दनप्रसाद के कोई सन्तति … है। इस कारण उन्होंने एक युवक को गोद …

है। हम नहीं जानते कि सुयोग्य पण्डित शिवनन्दन प्रसाद ने अपने दत्तक पुत्र की शिक्षा दीक्षा का क्या प्रबन्ध किया है। उनसे हमारी प्रार्थना है कि यह समय सिर्फ़ सामगायन का नहीं। कुछ और भी करना चाहिए, जिसमें पण्डित मथुराप्रसाद ऐसे विख्यात विद्वान् के वंश में विद्या का ह्रास न हो। क्योंकि मिश्र जी बहुत बड़े विद्वान् थे। बड़े बड़े अँगरेज़ पण्डित तक उनको आदर की दृष्टि से देखते थे। प्रसिद्ध पण्डित हाल साहब ने हिन्दी रीडर नाम की एक पुस्तक बना कर उसे मिश्र जी को समर्पण किया था। बनारस से चले जाने पर भी ग्रिफ़िथ साहब नीलगिरि से मिश्र जी से पत्र व्यवहार रखते थे। अतएव उनके वंशजों में विद्या का बना रहना बहुत आवश्यक है।

पण्डित मथुराप्रसाद से हमारा प्रत्यक्ष परिचय था। पेंशन लेने बाद गरमी के दिनों में वे अपने गाँव बकसर जाया करते थे। वहां वे दो तीन महीने रहते थे। वर्षा का आरम्भ होने पर वे बनारस लौट आते थे। इन्हीं दिनों में जब हम अपने घर छुट्टी पर जाते थे तब पण्डित जी से मिलते थे। प्रेमपूर्वक वे हमसे मिलते थे और जल्दी जल्दी आने के लिए अनुरोध करते थे। पहले दिन जब हम आप से मिलने गये तब हमने देखा कि आप पैरों में किरमिच का जूता पहने, सिर घोटाये, मस्तक पर चन्दन का खौर लगाये, कन्धे पर एक छोटा सा मोटे कपड़े का अँगौछा रक्खे, और बदन में मोटे कपड़े की सिर्फ़ धोती पहने हुए, अपने कच्चे मकान की चौपाल में खड़े हैं। पासही एक छोटी सी चारपाई बिछी है। उसके बीच में एक छोटा सा, शायद गाढ़े का, बिछौना बिछा है। सिरहाने, तकिये के नीचे, लाल जिल्द की एक किताब रक्खी है। हमारे साथ, उन्होंके गाँव के एक पण्डित थे। परिचय होने पर आपने अनेक विषयों पर हम से बात चीत की। संस्कृत-कविता पर भी बात चली। बातों बातों में कोई ऐसा मौक़ा आया कि हमने बिल्हण का यह श्लोक पढ़ा—

प्रौढ़िप्रकर्षेण पुराणरीतिव्यतिक्रमः श्लाघ्यतमः पदानाम्।
अत्युन्नतिस्फोटितकञ्चुकानि वन्द्यानि कान्ताकुचमण्डलानि॥

इसके अर्थ का विचार करके आप बेतरह हँस पड़े। तब से, जब कभी हम जाते थे, दो एक श्लोक हम से सुने बिना आप न रहते थे। मिश्र जी को एक बात की बड़ी शिकायत थी। वे कहते थे कि हमारी तरफ़ के संस्कृत-पण्डितों का उच्चारण प्रायः बहुत ही अशुद्ध होता है। यह बात बहुधा है भी ठीक। इसीसे शुद्धोच्चारणपूर्वक कहे गये श्लोक सुन कर वे बहुत प्रसन्न होते थे। उच्चारण में वे दाक्षिणात्य पण्डितों की प्रशंसा करते थे। इसीसे, वे कहते थे, कि पण्डित शिवनन्दनप्रसाद को पढ़ाने के लिए उन्होंने एक दक्षिणदेशीय पण्डित को रक्खा था।

पूछने पर मालूम हुआ कि तकिये के नीचे जो पुस्तक थी वह गीता थी; परन्तु थी वह अङ्गरेज़ी में। इस पर हमने आक्षेप किया। आपने उत्तर दिया कि लड़कपन से हम अंगरेज़ी के प्रेमी हैं; हमारी रग रग में अङ्गरेज़ी घुसी हुई है। इस अवस्था में हमने और अङ्गरेज़ी की पुस्तकें देखना बन्द कर दिया है। अब सिर्फ़ गीता में अङ्गरेज़ी पढ़कर हम समाधान मानते हैं।

पण्डितजी देहात में देहातियों के साथ ऐसी अच्छी ग्रामीण भाषा बोलते थे कि सुन कर आश्चर्य होता था। जान पड़ता था कि ये महा अपढ़ और पूरे देहाती हैं।

हमने "तरुणोपदेश" नामक एक पुस्तक लिखी है। पुस्तक बड़ी है। उसे लिखे गये कोई १० वर्ष हुए। किसी कारण से उसे हमने प्रकाशित नहीं किया। उसे हमने पण्डित मथुराप्रसाद जी को दिखलाया। गीता और उस पुस्तक के विषय से बहुत विरोध था। तथापि आपने उसे कृपापूर्वक साद्यन्त देखा, और बनारस जाकर, उसकी समालोचना हमारे पास भेजी। उसमें उर्दू और अङ्गरेज़ी के जो शब्द आ गये थे उनको आपने पसन्द न किया। इस सम्बन्ध में आपने हमको एक

पोष्टकार्ड भेजा। उसका फ़ोटो-चित्र हम नीचे देते हैं—

श्रीराम:
दुग्धश्वेश्वर बनारस - ८ जूलाई १९०६ ई
नमस्ते -
आपका दयापत्र और देवीस्तुतिशतक आज पाकर मैं बहुत आनन्दित हुआ मैं आपको धन्यवाद देता हूं
२ आपने पुस्तक की भूमिका अर्थात प्रस्तावना में आपने नाम नीचे लिखा है इस मिश्रित बनावन ने मेरी आंखों में गड़ने लगा और जिन विदेशीय शब्दों के स्थान में भाषा के शब्द नहीं हैं उनको व्यवहार तो अवश्य ही करना पड़ता है जैसे कोतवाल इन्स्पेक्टर पुलीस रेलवे कमिश्नर मजिस्ट्रेट मेम्बर आदि परन्तु जहां भाषा भली भांति काम देसकती है वहां यावनी शब्दों को लाना मैं सर्वथा अनुचित समझता हूं
३ आपकी पुस्तक उपयोगी और मनोहर है - आपका [illegible] अत्युत्तम है - काशी संस्कृत का घर है परन्तु आपकी सी भाषा लिखनेवाले यहां कोचित ही निकलेंगे - इसका प्रचार होनी चाहिये जिससे लोगों का उपकार हो - इस को विचार कर लीजिये
आपका शुभचिन्तक
श्री मथुराप्रसाद मिश्र
Mathura Prasada Misra

जान पड़ता है पण्डित जी को अपना नाम अङ्गरेज़ी में लिखने का बड़ा शौक़ था। क्योंकि इस पोस्टकार्ड के नीचे हिन्दी में अपना नाम एक बार लिखकर दुबारा उसे आपने अङ्गरेज़ी में भी लिख दिया है। आप अनावश्यक "यावनी" शब्दों के पक्षपाती न थे। पर इस पोस्टकार्ड के ऊपर हमारा पता लिखते समय गांव दौलतपुर न लिखकर, जल्दी में, आप "मौज़ा दौलतपुर" लिख गये हैं!

पण्डितजी को हमने बहुतसी चिट्ठियां लिखी होंगी। उनमें से कोई कोई बहुत बड़ी और महत्व की थीं। परन्तु हमको उत्तर सदैव आपने पोस्ट कार्ड ही पर दिया। आप कार्ड में भी पाराग्राफ़ अलग लिखते थे और सब में नम्बर देते थे। नीचे आप अपना नाम हिन्दी में 'श्रीमथुराप्रसाद मिश्र' लिख कर अङ्गरेज़ी में "M. P. M." या Mathura Prasada Misra लिख दिया करते थे। एक बार हमने धृष्टता से इस अनावश्यक M. P. M. के लिखे जाने का कारण पूछा। उत्तर मिला, कि "आप हमसे हिन्दी में चिट्ठी लिखवाते हैं, तो क्या हम अपने नाम के आदि अक्षर भी अङ्गरेज़ी में न लिखें? हम को इनके लिखने का इतना अभ्यास है कि आपसे आप ये हमारी लेखनी से निकल जाते हैं"।

हम ऊपर लिख आये हैं कि मिश्रजी अपने वंश की निर्धन कन्याओं के विवाह के लिए धन सम्बन्धिनी सहायता देते थे। एक बार हमने आप से एक कन्या के विवाह के विषय में कहा। यह कन्या उनके वंश की न थी; पर कुलीनता में उससे बढ़ कर थी। परन्तु आपने सहायता देने से इनकार कर दिया। आपने कहा कि हम अपने ही वंशवालों की सहायता करना अपना पहला कर्तव्य समझते हैं। पहले घरवालों की सहायता की जाती है। फिर बाहर वालों की। इस पर हमने उनके सिरहानेवाली गीता की पुस्तक के "पण्डिताः समदर्शिनः" वाले श्लोक का उनको स्मरण दिलाया। इस पर आप चुप हो रहे। परन्तु यह बात हम यहां पर स्वीकार करना चाहते हैं कि, इस विषय में, भूल हमारी ही थी, उनकी नहीं।

पण्डित मथुराप्रसादजी ने अपने विषय में अपनेही मुँह से, जो दो एक बातें हमसे कहीं थीं उनको लिखकर हम इस लेख को पूरा करना चाहते हैं।

पण्डित जी के छात्रों में अनेक ऐसे हुए जिन्होंने बहुत ऊंचे ऊंचे पद पाये। सैयद महमूद और कुँवर भारतसिंह इत्यादि उन्हींके छात्रों में से हैं। जिस समय सैयद महमूद इलाहाबाद में हाईकोर्ट के जज थे, उस समय पण्डित जी एक बार उनसे

मिलने गये। सैयद महमूद के पिता सैयद अहमद भी वहां मौजूद थे। सैयद महमूद के कमरे में एक बहुमूल्य क़ालीन बिछा था। और पण्डित जी के देशी जूते धूल में लिपटे हुए थे। इससे उन्होंने जूतों को कमरे के बाहरही उतार दिया। सैयद महमूद ने यह देख कर कुछ इशारा किया; और उनके नौकर ने जूतियों को दरवाज़े के बाहर से लाकर, कमरे में क़ालीन के ऊपर, मिश्र जी के पैरों के पास, रख दिया। इस पर पण्डित जी ने क़ालीन के मैले हो जाने की बात कही। तब सैयद महमूद ने यह कह कर पण्डित जी को प्रसन्न किया कि आप के इस धूलि-धूसर जूते की धूलिही के प्रसाद से यह क़ालीन मुझे मयस्सर हुआ है। सैयद साहब, पिता-पुत्र दोनों, ने मिश्र जी का इतना आदर किया जितना कोई किसी देवता का करता है। उनके सत्कार से पण्डित जी बहुत ही प्रसन्न हुए। जान पड़ता है, सैयद महमूद के इतने ऊंचे पद पाने पर मिश्र जी विशेष प्रसन्न थे। यदि ऐसा न होता तो उनके घर जाने की आप कृपा न करते।

इस प्रान्त के शिक्षा-विभाग के भूत-पूर्व प्रधान अफ़सर (डाइरेक्टर) नेस्फ़ील्ड साहब ने अंगरेज़ी में एक व्याकरण बनाया है। उसे उन्होंने पण्डित मथुराप्रसाद को दिखलाया और इनसे उसकी समालोचना चाही। पण्डित जी ने इस व्याकरण के कुछ अंश की समालोचना की। समालोचना बहुत लम्बी हुई। उसमें इन्होंने साहब के अनेक प्रमाद सप्रमाण सिद्ध किये। इस पर दोनों में बहुत वाद-विवाद हुआ। जब नेस्फ़ील्ड साहब प्रत्यक्ष मिले तब पण्डित जी ने, अनेक प्रामाणिक अंगरेज़ी ग्रन्थ उनके सामने रख कर, अपने पक्ष का समर्थन किया। उन्होंने कहा कि जहां जहां हमने भ्रम बतलाया है वहां वहाँ या तो आप दोषी हैं या आपके पूर्ववर्त्ती ग्रन्थकार। दोनों निर्दोष नहीं हो सकते। यह झगड़ा फ़ैसले के लिए ग्रिफ़िथ साहब के पास गया। उन्होंने पण्डित जी का पक्ष सही और नेस्फ़ील्ड साहब का पक्ष ग़लत बतलाया!

एक बार पण्डित जी ने स्वयं ग्रिफ़िथ साहब के लेख में व्याकरण-सम्बन्धी एक शङ्का की। यह शङ्का वाल्मीकि रामायण के अनुवाद में, एक जगह, उनको हुई थी। परन्तु इसका जो समाधान ग्रिफ़िथ साहब ने किया उससे पण्डित जी को पूरा पूरा सन्तोष हो गया। ग्रिफ़िथ साहब पण्डित जी पर बहुत प्रसन्न थे; पण्डित जी पर उनकी पूरी कृपा थी। जिस समय नीलगिरि में ग्रिफ़िथ साहब वेदों का अंगरेज़ी-अनुवाद करते थे उस समय, कभी कभी, पत्रद्वारा, अनुवाद के विषय में वे पण्डित जी से सलाह लेते थे।

निद्रा।

[इस कविता का पूर्व्वार्द्ध कवि 'सौदि' (Southey) के 'स्लीप' (Sleep) नामक पद्य का भावार्थ है और उत्तरार्ध लेखक की ही कल्पना है।]

[१]

मधुर नींद, जो राज-भवन तज,
रङ्क-कुटी में करै प्रवेश;
मधुर नींद, जो विनय कृषक का
सुनै; किन्तु नहिं राज-निदेश;

[२]

मधुर नींद, जो श्रमित दृगों को
सुख से मुद्रित करती है;
मधुर नींद, जो अतिशय दारुण
मनस्ताप सब हरती है;—

[३]

है तू यद्यपि ऐसी सुभगा
तद्यपि तेरा न्याय कठोर;
तू कदापि है नहीं झाँकती
पापी, अपराधी की ओर।

[४]

पड़ता नहीं हृदय में उनके
तेरा सुखकर मृदुल प्रभाव;

वरन् निरन्तर ही रहता है
चित्तशान्ति का वहां अभाव।

[५]

रहै जहां अपराध उपस्थित
वहाँ नहीं है तेरा वास ;
कलुषित मन का राज्य जहां है
कभी न वहां फटकती पास।

[६]

शान्तियुक्त तेरे सुराज्य में
लोभ, गर्व पाते नहिँ ठौर ;
तुझ से ताड़ित होकर उनको
जाना होता है कहिँ और।

[७]

यद्यपि मनुज बुद्धि या बल से
सबही कुछ पा सकता है ;
निद्रे, तुझे तथापि नहीं वह
निज वश में ला सकता है।

[८]

फिरती रहती है स्वतन्त्र तू
शैल शैल, कानन कानन;
बाधा नहीं, जिधर जी चाहै
फेरै तू अपना आनन।

[९]

उसे बचावै ईश्वर ही पर
जिस पर तेरी हो न दया,
अब क्या, तब क्या, निःसंशय ही
जान उसे परलोक गया।

[१०]

पर ऐसी भी दया न होवै,
दिन को भी वह रात करै;
सदा ऊंघते अथवा सोते
कुम्भकर्ण को मात करै।

[११]

दया शेषशायी पर तेरी
हो जावै यदि एक निमेष,
लुप्त होंय सब लोक उसी दम
देव, दनुज भी रहैं न शेष।

[१२]

मानव को तो तेरा जादू
ऐसा वश कर लेता है;
आजीविका, प्रतिष्ठा तक को
वह तलाक़ दे देता है।

[१३]

कर्णधार के ऊपर तेरी
यदि सविशेष दया होवै,
तो औरों की हत्या ले कर
वह निज जीवन भी खोवै।

[१४]

लिनिविच पर हे चिन्ता-भञ्जिनि!
यदि तू दया करै सविशेष,
माञ्चूरिया के झंझट का
झट पट ही हो जावैं शेष।

[१५]

देख सिंह को तेरे वश में,
चूहे ने करके साहस,
उसकी मूँछ कतर तक डाली,
देखी तेरी महिमा बस!

[१६]

ऐसी दया हमारे अरिगण
के ही ऊपर रहै सदा ;
मनोहरे सर्वदा उन्हीं को
बनो रहै तू सुखप्रदा।

[१७]

भारत-भाग्य से न अब अपना
रख अनुराग अधिक सजनी,
और जहाँ जी चाहै तेरा
हो स्वच्छन्द बिता रजनी।

[१८]

उस पर अपनी दयादृष्टि रख
बना न उसको निज आसक्त;

न हो स्वयं तू भी हे निद्रे,
केवल उस ही पर अनुरक्त।

सनातन शर्म्मा सकलानो।

"मेरी चम्पा"

[लाला पार्व्वतीनन्दन कृत 'मेरी चम्पा' के चरित-नायक की भावना के अनुसार लिखित। सरस्वती, भाग ६, पृष्ठ १४०, पैरा ६, देखिए।]

[१]

मेरी चम्पा चतुर नवेली;
भाती मुझको वही अकेली।
रम्य रूप सुकुमारी है;
प्राणों से भी प्यारी है॥

[२]

आनन क्या ही भोला भाला;
नयनों को ललचाने वाला।
कैसा उसका ढंग निराला;
प्रेममत्त मुझ को कर डाला॥

[३]

उसका मुझ पर आँख लगाना;
मुझे देखते देख लजाना।
आनन अञ्चल-ओट छिपाना,
अति, अतितर, अतितम मनमाना॥

[४]

पर यदि चाहूँ, आप निहारूँ;
अपना तन मन उस पर वारूँ।
चाहै कितना ही सिर मारूँ,
वृथा यत्न सब करके हारूँ॥

[५]

जब उसके जी में आती है
तभी दरस वह दिखलाती है।
चातक क्यों न सदा हो तरसै,
पर वर्षा जब चाहै, बरसै॥

[६]

जब वह कोकिल-कण्ठ लजाती,
बात किसी मिस मुझे सुनाती।
मन मेरा मुझसे भगता है;
उसी कण्ठ से जा लगता है॥

[७]

नूपुर-धुनि जब मैं सुन पाता,
तन में तड़ित्तुल्य कुछ आता।
तब होता जो हाल, विधाता!
वर्णन उसका किया न जाता॥

[८]

जब वह निज विधु-वदन दिखाती;
सुधा दृष्टि-द्वारा बरसाती।
विरहानल-विदग्ध मम छाती
तत्क्षणही शीतल हो जाती॥

[९]

उसका खिलता यौवन-कानन,
उसका खिला कमल सा आनन,
देख देख मेरा मधुकर-मन
हो जाता उसके ही अर्पन॥

[१०]

मेरे नयनों का प्रिय तारा
जिसके बिना हृदय अँधियारा।
मेरा केवल एक सहारा,
है वह रमणी-रत्न पियारा॥

[११]

"जाको जापर सत्य सनेहू
सो तिहि मिलै, न कछु सन्देहू"
तुलसी ने यदि सत्य कहा यह,
क्या न मिलैगी मुझे प्रिया वह?

[१२]

यदि मेरा अनुराग खरा है;
यदि उसमें छल नहीं भरा है।
करें शिवा-शिव तो अनुकम्पा;
मुझे दिलादें मेरी चम्पा॥

* * * * *

[१३]

धन्य आज का दिन शुभकारी ;
सफल हुई कामना हमारी ।
हुई शिवा-शिव की अनुकम्पा ;
मुझे मिल गई मेरी चम्पा ॥

सनातन शर्मा सकलानी ।

मैं तुम्हारा कौन हूँ ?

[सरकारी बोली में]

मैं तुम्हारा चांद हूं। सूरज भैया ने एक दफ़ः अपना कुछ हाल बतलाकर तुम को उन्होंने अपना रिश्ता समझा दिया था। मुझको उतनी कहा सुनी की ज़रूरत नहीं। तुम सब मेरे तरफ़-दार हो। तुम मुझे चाहते हो; सो मैं अच्छी तरह जानता हूं। पर मेरे बारे में लोगों के कई ख़यालात ग़लत हैं। आज मैं वही बताने के लिये आया हूं।

तुम लोग मुझे बहुत ख़ूबसूरत समझते हो। निशाकर, सुधाकर, हिमांशु, अमृतांशु, शशाङ्क, मृगाङ्क, वग़ैरः कितने ही मीठे मीठे नामों से तुम मुझे पुकारा करते हो। पर मैं हूं असल में कृष्णचन्द्र, यानी स्याह-फ़ाम। तुम्हारी दुनिया की तरह मैं भी काला हूं। मैं भी मिट्टी का धोंधा ही हूं। जब भैया मेरे चेहरे पर रोशनी डालते हैं तभी मैं तुम्हारी दुनिया की तरह गरम हो जाता हूं। तभी तुम लोगों को चाँदनी मिलती है। जब तुम्हारी दुनिया गरमी के मारे तपती रहती है तब वह मेरी नज़रों में बड़ी ही ख़ूबसूरत, रोशनी से जगमगाती हुई जान पड़ती है।

मैं कहां रहता हूं? कितना बड़ा हूं? क्या यह तुम जानते हो? तुम्हारे बच्चे 'चन्दा मामा, चन्दा मामा' कहते हुए अपने नन्हे नन्हे हाथों को फैला कर मुझे पकड़ना चाहते हैं। तुम भी शायद समझते होगे कि बादलों के साथ ही साथ मैं भी दौड़ा करता हूं। पर मैं तुम लोगों से २,३७,६०[illegible] मील की दूरी पर पड़ा हुआ हूं। तुम मुझे सूरज भैया के बराबर समझते हो। पर मेरे बराबर सा[illegible] करोड़ चांद उनकी गोद में छिपकर बैठ सकते हैं। इससे यह न समझना कि मैं किसी छोटे से गो[illegible] या गोली की तरह बिलकुल ही छोटा हूं। मेरा घेरा आठ हज़ार मील से भी ज्यादः है। पर हां मैं तुम्हारी दुनिया से ज़रूर छोटा हूं।

मुझ में जो काले काले दाग़ हैं उन्हें देखकर तुम लोग कितनी ही अक़ल लड़ाया करते हो। कभी तुम समझते हो कि मेरे भीतर बैठी हुई बुढ़िया चरखा कात रही है; कभी समझते हो कि तुम्हारी हसीन औरतों के चेहरों को देखकर मैं शरमा गया हूं और खरगोश का बच्चा गोद में लेकर रो रहा हूं। एक मर्तबा अगर तुम दूरबीन में अच्छी तरह निगाह डालो तो तुम देखोगे कि मेरे चमकते हुए हिस्से पहाड़ी मुल्क हैं, और अँधेरे या काले काले हिस्से गहरी तराइयां हैं। इन नीचे के हिस्सों में भैया की किरणें नहीं पहुंचतीं। इसीसे ये अँधेरे दिखाई पड़ते हैं। मेरी छाती पर २०,००० फ़ुट तक ऊंचे पहाड़ खड़े हैं! सुना!

आदमी अक्सर देवता समझ कर मेरी पूजा भी करते हैं। कोई समझते हैं कि मैं मर्द हूं, कोई औरत। हिन्दूओं ने मुझे दूल्हा बनाकर २[illegible] ताराओं से मेरा व्याह कर दिया है। इसी बुनि[illegible] याद पर उन्होंने मुझे क्षयी का रोगी भी बना डाला है। ग्रीस वालों ने अपोलो की बहिन डायना कह कर मुझे साया पहना दिया है। कालडि[illegible] वालों ने मुझे आठ रथों पर बैठा कर मेरी पूजा की है। पर न मैं देवता हूं; न मैं औरत हूं; न मैं मर्द हूं। मैं भी भगवान के हाथ का रचा हुआ एक बेजान मिट्टी का ढेर हूं। तुम्हारी दुनिया का साथी बन कर आसमानी सड़क पर उसके चारों तरफ़ घूमा करता हूं। यही मेरा काम है।

ख़फ़ा मत होना, तुम लोगों में अक़ल का अकाल है। अपनी ही परछांई देखकर तुम आप डरते हो।
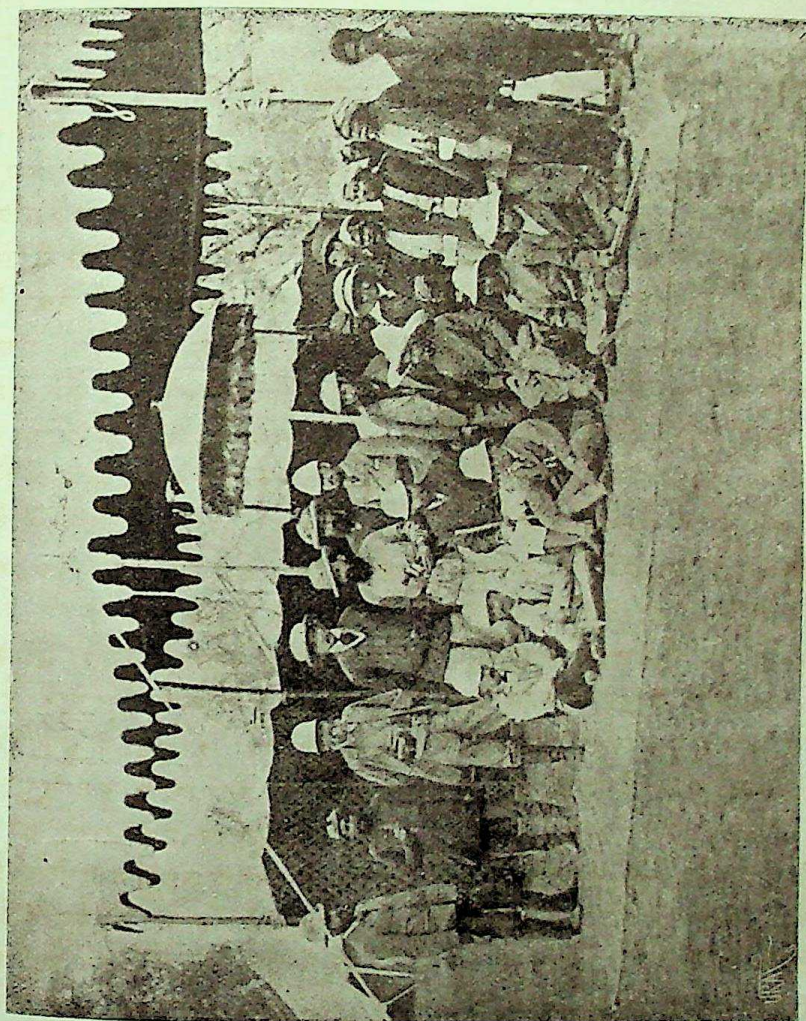
प्रिंस आफ़ वेल्स [अब महाराजा सातवें एडवर्ड], महाराजा जंगबहादुर, इत्यादि।

शंखेलामा—वज्रोली मुद्रा के साधक ।

जब मुझ में ग्रहन लगता है तब क्या होता है? तुम्हारी दुनिया सूरज को अपनी आड़ में करके मेरे सामने आजाती है। इसी लिये उसकी गोल परछाईं मेरे ऊपर पड़ती है। पर तुम समझते हो कि राहु मुझे निगले जाता है। इसीसे तुम राहु को चाण्डाल, डोम या मेहतर समझकर उसके भाई बिरादरों को दान देने लगते हो! पर मैं जैसे का तैसा बना रहता हूं। मेरा कुछ भी नहीं बिगड़ता। दुनिया के हट जातेही फिर भैया की रोशनी से मैं चमकने लगता हूं। भैया ही की बदौलत मैंने ऐसी सूरत पाई है।

मेरी कलाओं को घटते बढ़ते देखकर तुम लोग न जाने क्या क्या सोचा करते हो। पूनें की रात को तुम समझते हो कि तुमने मेरा सारा बदन देख लिया। पर असल में उस वक्त तुम मेरे एक ही तरफ़ के हिस्से को देख पाते हो। दूसरे तरफ़ की मेरी सूरत शुरू से आज तक तुम लोगों की नज़र के सामने ही नहीं आई। मेरा एक तरफ़ का बदन रोज़ ब रोज़ चमकता रहता है। उस तरफ़ हर रात मेरे लिये पूनें की रात रहती है। तुम्हारी नज़रों में फ़र्क है। इसी से हर तिथि या तारीख़ को तुम्हें मेरी नई सूरतें दिखलाई देती हैं। अमावस को तुम मुझे नहीं देखते। पर मैं उस रात को तुम्हारे इतना पास रहता हूं कि पूनें को भी उतना पास नहीं रहता। तुम तारीफ़ करो या न करो, मैं अपना काम किया करता हूं। अमावस को रात को छिपे रहकर तुम्हारी दुनिया की जो भलाई मुझ से हो जाती है, मुझे उसी से ख़ुशी होती है।

मुझ में ख़ूबसूरती नहीं है। पर तुम मेरी ख़ूबसूरती की तारीफ़ करते करते पागल हो जाते हो। चकवा चकवी को बुलाकर मेरी हड्डियों से तुम कितना मीठा रस निचोड़ा करते हो। पर मुझमें तारीफ़ की असली चीज़ को तुम नहीं जानते। समन्दर के पानी को उबला कर मैं ज्वार भाठा पैदा करता हूं; पेड़ों को पालता हूं; आदमियों के जिस्म को बीमारियां खींच लेता हूं। और भी बहुत से काम मैं पूरा करता हूं। तलाश करो तो तुम उन्हें जान सकोगे। यों नहीं।

तुम्हारे सायन्स वाले पण्डित लोग कहते हैं कि मुझ में दुनिया के बराबर न हवा है, न बादल, और न मुझ में कोई जानदार बसते हैं। पर अपने पण्डितों से तुम ज़रा कह देना कि भगवान की अजीब कारीगरी को वे क्या जानें। तुमलोग मेरे बारे में तहक़ीक़ात करते रहो; तुम्हारी अक़्ल बढ़ती रहे; धीरे धीरे और भी बहुत कुछ जानकारी तुम हासिल कर सकोगे। अक़्ल की बदौलत दिन दिन तुम्हारी ग़लतियाँ दूर हो रही हैं। यह देख कर मैं बहुत ख़ुश हूं। भगवान करे तुम मुझे और भी ज़ियादह पहचानने लगो।

पार्वतीनन्दन।

पौधों की नींद।

ज्यों ज्यों हम वानस्पतिक जीवन के भेदों को ढूंढते हैं, त्यों त्यों प्राणि-जीवन और वृक्ष-जीवन में अधिक अधिक समानता को देख कर हमें चकित होना पड़ता है। हम सांस लेते हैं; वृक्ष भी सांस लेते हैं। हमारे शरीर में रुधिर-सञ्चार होता है; वृक्षों में भी रस-प्रवाह होता है। परिश्रम करने के उपरान्त हम थक जाते हैं; रात होने पर पड़के सो रहते हैं। वृक्ष भी सोते हैं। दिनभर की थकावट के बाद वृक्ष सन्ध्या को एक विशेष रूप धारण कर लेते हैं। और उसी रूप में रात भर स्थित रहते हैं। यही पौधों की नींद है।

हमारे देश की स्त्रियां कहा करती हैं "भइया, संझा का पत्ता न तोड़ेउ, संझा का पेंड़ सोवत हैं"। और भारतवर्ष ही में पाश्चात्य विद्वानों को सब से पहले पौधों की नींद का पता लगा था। सन १५६७ ई० में Garcias de Horto नामक एक विद्वान ने भारतवर्ष में एक इमली के वृक्ष को

सोते हुए देखा। परंतु इस अद्भुत बात का पूरा पूरा वर्णन और निर्णय करने का यश Liunaeus नामक वृक्ष-विद्या-विशारद को ही मिला। इस विद्वान ने सब से पहले अपनी फुलवाड़ी के एक कमल में इस बात को देखा। एक दिन प्रातःकाल उस में फूल खिले हुए हुए थे। परन्तु आधी रात के समय उसमें एक भी फूल न दिखाई दिया। Liunaeus ने सोचा कि कदाचित् किसी ने उसकी वाटिका के सुन्दर पुष्पों को चुरा लिया होगा। परन्तु अधिक ध्यान देके देखने पर उसे ज्ञात हुआ कि इस चोरी का अपराधी स्वयं वह वृक्ष ही है। कुछ दिनों में इस तत्ववेत्ता ने पता लगाया कि वास्तव में रोज़ शामको इस वृक्ष की पत्तियां एक ऐसे आसन में स्थित होजाती हैं कि फूल का अन्दरी ढक्कन (Corolla) छिप जाता है। यह इस कमल वृक्ष के सोने का तरीक़ा है।

क्या एक कमल वृक्ष ही रात को सोता है या अन्य जाति के वृक्ष भी रात को शयन किया करते हैं? यह प्रश्न Liunaeus के चित्त में उत्पन्न हुआ। इसका निर्णय करने के लिए वह रात रात भर मशाल लिये हुए अपनी वाटिका में घूमा किया और एक एक वृक्ष को देखने में उसने बहुत समय व्यय किया। निदान उसने देखा कि अधिकतर वृक्ष रात को सोते हैं। अर्थात् एक विशेष आसन में स्थित हो जाते हैं।

दिन के अन्त में प्राणिमात्र को विश्राम करने की आवश्यकता होती है। दिन के प्रकाश के अन्तर्हित होते ही प्राणी आराम करते हैं। मनुष्यों का दिन में सोना प्रकृति-विरुद्ध कार्य है। वृक्ष दिन में नहीं सोते। या यों कहिये कि प्रकाश में नहीं सोते; रात होने पर अन्धकार छाजाने ही पर वे सोते हैं। पूर्वोक्त आसन-विशेष में स्थित होना ही उनका पैर फैलाकर नींद लेना है।

वनस्पतिवर्ग की कई जातियों के पौधे सोने के समय ऐसा रूप धारण कर लेते हैं कि उनका उस समय पहचानना मुश्किल हो जाता है। वृक्ष-निद्रा से वन का दृश्य बिलकुल बदल जाता है। बहुत से अपनी शाखाओं को तने के निकट ले आते हैं और अपने पत्तों को एक दूसरे के ऊपर रख देते हैं। उनके पत्ते ऐसे मालूम पड़ते हैं कि मानो शीत से बचने के लिये एक दूसरे से चिपट गये हों। छुई मुई जाति वाले पौधे (Sensitive plants) रात के समय ऐसा रूप धारण कर लेते हैं कि उनको देखते ही मालूम हो जाता है कि मानों वे सो रहे हों। जैसे श्रान्त मनुष्य पलक बन्द करके निश्चल पड़ रहता है, उसी भांति ये पौधे भी अपनी छोटी छोटी शाखाओं को झुका, नन्हीं नन्हीं पत्तियों को एक दूसरे के ऊपर रख, निश्चल भाव से गहरी नींद का आनन्द लेते हैं। चकौंड़ नाम का पौधा बरसात में अधिकता से होता है। शाम होते ही उसकी पत्तियाँ एक दूसरे से चिपट जाती हैं। जिस दिन बादल बहुत होता है और सूर्य नहीं देख पड़ता उस दिन इसकी पत्तियों की तरफ़ देख कर लोग जान लेते हैं कि अब दिन डूबने को है। उष्ण देशों में यह बात और भी अधिक अद्भुतता के साथ देखी जाती है। Humboldt ने उत्तरीय अमेरिका के कोलम्बिया प्रदेशान्तर्गत मगडालेना (Magdalena) नामक नदी के तट पर देखा कि वहाँ के वृक्ष ठण्ढे देशों के वृक्षों से अधिक देर में जागते हैं। मानों उष्ण देश के वृक्ष भी उष्ण देश के मनुष्यों की भांति बड़े आलसी होते हैं। कई तरह के फूल तो इतने आलसी होते हैं कि क्या कहना! सन्ध्या होने में अभी घण्टों की देर है; परन्तु इन्होंने अभी से सोने की ठहराली। और सोयेंगे भी कितनी देर? सूरज आकाश में बहुत ऊँचा चढ़ आया। चारों ओर धूप फैलगई। तब आप ने अँगड़ाई ले कर आँख खोली। वाह री नींद! भला सबसे पहले सोये थे तो जागते भी सब से आगे!

बहुत से पुष्प-वृक्ष सन्ध्या ही को निद्रादेवी की गोद में आराम करने के लिए पड़ रहते हैं।

यदि हम सन्ध्या के समय एक ऐसे मैदान को देखें कि जिसमें इस जाति के फूल बहुतायत से हों तो वह पहचानने में ही न आवैगा। ठीक दोपहर के समय वह मैदान बिल्लौरी पखुरियों से भरा हुआ एक सब्ज़ बाज़ार था। बहुत सी पीली और नीली आँखें हमें ताक रहीं थीं। परन्तु सन्ध्या को वे आंखें बन्द हो गईं। बिल्लौरी पखुरियाँ अदृश्य हो गईं। उस मैदान का जीवन दृश्य अन्तर्हित हो गया। सब कुछ निर्जीव मालूम होने लगा। उसके सारे फूल सो गये।

बहुतों ने इस नींद का कारण दिन और रात की उष्णता का फ़र्क़ ही विचारा है। दिन की अधिक उष्णता के कारण पेड़ जागते रहते हैं; परन्तु रात में कम उष्णता के कारण वे शिथिल होजाते हैं—सो रहते हैं। परन्तु जब ग्रीन हाउसेज़ (green houses) में भी, जहाँ कि रात और दिन दोनों ही में उष्णता बराबर रक्खी जाती है, पौधे सोते हुए देखे गये तो उनका यह विचार असत्य प्रमाणित हुआ; और वानस्पतिक नींद का कोई और ही कारण ढूंढ़ना पड़ा।

De Candolle नामक तत्ववेत्ता ने कई अद्भुत तजरुबों से प्रमाणित कर दिया कि पौधों की नींद का वास्तविक कारण प्रकाश का अभाव ही है। इस वृक्ष-विद्या-विशारद ने छुई मुई के पौधों पर रात के समय बड़ा तीव्र प्रकाश डालकर उन्हें सोते से जगा दिया। और दिन में घोर अन्धकाराच्छन्न स्थान में ले जाकर उन्हें उसने सुला दिया। यह पौधे बड़ी सुगमता से धोखे में कृत्रिम अन्धकार को रात समझ कर दिन भर सोया किये। और छः लैम्पों के तीव्र प्रकाश को सूरज का उजाला समझ रात भर वे जागा किये। अयन-रेखान्तर्गत देशों ही में विशेष कर पौधों की यह नींद देखने में आती है। और सबसे अधिक छुई मुई जाति वाले वृक्षों (sensitive plants) में नींद की अधिकता पाई जाती है।

सूर्यनारायण दीक्षित।

जापान की महारानी हरो-को।

जापान आजकल प्रत्येक भारतवासी हीका नहीं किंतु सारी दुनिया के निवासियों का चित्त अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। जितनी उन्नति को और देश वाले १००० वर्ष में भी न कर सकते उतनी जापान ने सिर्फ़ ३० वर्ष में कर दिखाई। जिस देश में यह शक्ति है उसकी महारानी का संक्षिप्त चरित सुनना किसे न अभीष्ट होगा। महारानी हरो-को के चरित में इस देश की सिर्फ़ स्त्रियों ही को नहीं किन्तु पुरुषों को भी बहुत सी बोधप्रद बातें मिल सकती हैं।

महारानी हरो-को का जन्म १८५० ई० में हुआ। उमर में अपने स्वामी से वे २ वर्ष बड़ी हैं। जापान में ५ ख़ानदान ऐसे हैं जिनका नम्बर सिर्फ़ महाराजा मिकाडो के ख़ानदान से ही नीचा है। अर्थात् जापान में वह दूसरे दरजे का ख़ानदान है। इन्हीं ५ ख़ानदानों में से महाराज मिकाडो अपनी महारानी चुनते हैं। जापान की वर्त्तमान महारानी कीयाटो में बहुत दिनों तक रहीं हैं। महारानी को जैसी शिक्षा दरकार होती है उसे उन्होंने वहीं एकांत में रहकर पाया है। उन्नीस वर्ष की उमर में उनका बिवाह महाराजा मत्सहितो के साथ हुआ।

जापान में नए ढङ्ग की जितनी स्त्रियां हैं उनमें महारानी सबसे ऊँचा दरजा रखती हैं। उनके कपड़े लत्ते पेरिस या लण्डन में तैयार होते हैं। वे उन्हें बड़ी खूबी से पहनती हैं। उनको देखकर मालूम होता है कि वे योरोप की बहुत बड़ी शौक़ीन स्त्रियों से भी अधिक शौक़ीन हैं। महारानी ख़ूबसूरत नहीं है, पर उनके चेहरे से बेहद लावण्य टपकता है।

हरो-को को अपने देश से बहुत प्रीति है। अपनी प्रजा के लिए वे सब कुछ करने को तैयार रहती हैं। अपनी प्रजा की आशा, अभिलाषा और

भीति के वे सर्वथा अपनीही आशा, अभिलाषा और भीति समझती हैं। प्रजा भी उनको बहुत प्यार करती है। वे जापान की वर्त्तमान महारानी हैं, और भावी महाराजाधिराज की माता हैं। इसीसे उनपर प्रजा का इतना अधिक प्रेम और पूज्य भाव है। इस प्रीति का एक और भी कारण है। जापान में पहले किसी समय एक बहुत ही दयामयी महारानी हो गई हैं। उनको लोग बड़े स्नेह और भक्ति भाव से पूजते थे। इस समय बूढ़े बूढ़े जापानियों का यह ख़याल है कि वही दयालु महारानी हरो-को के रूप में फिर पैदा हुई हैं।

महाराजा मिकाडो का हरो-को पर बहुत प्रेम है। तथापि हरो-को की हृदयवाटिका लहराती हुई हालत में नहीं है। क्योंकि यद्यपि वे मिकाडो की मुख्य रानी हैं, तथापि जापाननरेश के और भी ११ रानियां हैं। पर वे जिन अमीरों के घर की हैं उनका ख़ानदान हरो-को के माता पिता के ख़ानदान से घट कर है। वे मुकुट नहीं धारण कर सकतीं और महारानी के समान साज सामान भी नहीं रख सकतीं। परन्तु हां, इनके संतान भी सिंहासन के वारिस हो सकते हैं। जापान के युवराज इन ११ रानियों में से ही एक के ज्येष्ठ पुत्र हैं। जब महारानी के पुत्र होने की आशा न रही तब यही ज्येष्ठ पुत्र युवराज मान लिया गया। महारानी हरो-को ने तब से इस राजकुमार को अपनाही राजकुमार समझ लिया है। उस पर वे हमेशा माता का सा स्नेह रखती हैं। भविष्य में महाराजा होने के लिए जो जो बातें दरकार हैं, उनके लिये, वे तन, मन और धन से परिश्रम भी करती हैं।

महारानी आतिथ्य करने में बहुत बढ़ी चढ़ी हैं। वे हर साल एक भोज देती हैं। वह देखने के लायक़ होता है। उस समय वे बहुमूल्य और सुन्दर वस्त्रालंकार पहनती हैं और जो जो काम गृहिणी को करने चाहिएं उन्हें वे बड़े स्नेह से करती हैं। आज कल जापान की राजधानी में एक भी जलसा नहीं होता, क्योंकि घायल सिपाहियों के दुःखों को दूर करने ही में महारानी हरो-को का सारा समय ख़र्च होता है। घायलों की सेवा शुश्रूषा करने के लिए जापान में एक समाज है। हरो-को उसकी अध्यक्ष हैं। चीन से लड़ाई होने के पहिले ही हरो-को ने इस परोपकारी समाज की स्थापना की थी। तभी से वे उसकी उन्नति के लिए बराबर परिश्रम कर रही हैं। उन्होंने प्रण किया है कि जब तक रूस-जापान का युद्ध होता रहेगा, तब तक न वह किसी खेल तमाशे के लिए एक पाई ख़र्च करेंगी और न जापान के दरबार का कोई और आदमी ही करने पायेगा। ऐसे खेल तमाशों में जो खर्च होता था वह उन्होंने घायल जापानी सिपाहियों के हित के काम में लगाने का निश्चय कर लिया है।

महारानी हरो-को का यह अनुग्रह, यह देशप्रेम, यह स्वार्थत्याग हिन्दुस्तानी स्त्री-पुरुषों के अनुकरण करने योग्य है। रूस के साथ लड़ने में जापान को इस समय जो हानि हो रही है, उससे कई गुना हानि प्लेग और अकाल हिन्दुस्तान में कर रहे हैं। बिना अन्न के हज़ारों आदमी भीख मांग कर अपना गुज़ारा करते हैं। किसानों की ऐसी दुर्दशा है कि उसे देख कर पत्थर का कलेजा भी द्रवित हो जाता है। पर इसका ज़रा भी विचार न करके लोग हरसाल लाखों रुपये-नाच तमाशों में खर्च करते हैं। यदि वे परम दयामयी जापान की इस महारानी से थोड़ा भी सबक़ सीखें तो देश का बहुत कुछ दुख दरिद्र दूर हो जाय।

शिवप्रसाद दलपतराम पण्डित

नैपाल।

नैपाल की गिनती उन राज्यों में है जो स्वाधीन गिने जाते हैं। जैसे हैदराबाद, मैसूर और काश्मीर इत्यादि राज्यों में अँगरेज़ों का रेसीडेण्ट रहता है वैसे ही नैपाल में भी रहता है। यह देश कोई ५०० मील

लम्बा और १२० मील चौड़ा है। इसका क्षेत्रफल कोई ६०,००० वर्ग मील है। हिमालय के दक्षिणी भाग की दो चोटियों के बीच कोई १५ मील लम्बी और उतनीही चौड़ी समतल जगह है। नैपालवाले उसी को नैपाल कहते हैं। पर और देशवाले गोर्खालोगों के सारे देश को नैपाल कहते हैं। नैपाल का कुछ ही हिस्सा ऐसा है जहां विदेशी जाने पाते हैं। नैपाली लोग विदेशियों को अपने देश में बे रोक टोक सब कहीं नहीं जाने देते। यह सिद्धान्त योरपवालों को पसन्द नहीं, क्योंकि इसके कारण, झगड़े की जड़, पादरी साहब, का प्रवेश वहां नहीं होता।

नैपाल बिलकुल पहाड़ी देश है। हिमालय की सबसे ऊंची चोटी अवरिष्ट (२९,००२ फुट नैपाल ही की सीमा के भोतर है। इसका नैपाली नाम दूधगङ्गा है। नैपाल की हद का उत्तरी हिस्सा ऐसा है जहां बहुत करके साल भर बर्फ़ जमा रहता है। वह कभी नहीं गलता; थोड़ा बहुत बनाही रहता है। नैपाल की राजधानी काठमाण्डू में है। वह समुद्र को सतह से कोई ४,००० फुट की उँचाई पर है। नैपाल का दक्षिणी हिस्सा हिन्दुस्तान से मिला हुआ है। उसे तराई कहते हैं। वहां की ज़मीन नीची है। उसमें सघन जंगल हैं और साल, शीशम इत्यादि बहुत पैदा होता है। जहां जंगल नहीं है वहां खेती होती है। दक्षिणी हिमालय की नन्दादेवी, धवलगिरि, दयाभङ्ग और काञ्चनगङ्गा आदि चोटियां भी नैपालही के अन्तर्गत हैं।

घाघरा, कोसी और गण्डक आदि नदियां नैपाल से होकर बहती हैं। ये नदियां बहुत बड़ी हैं। इनके बीच का सारा पहाड़ी देश नैपाल के राज्य में शामिल है। इनमें से एक एक नदी में सात सात आठ आठ नदियां और आकर गिरती हैं। उनमें काली, श्वेतगङ्गा, रावती, नारायणी और दूध-कोसी मुख्य हैं। नैपाल में पहाड़ों की भी कमी नहीं है और नदियों की भी नहीं। पहाड़ों की तो बात ही क्या? सारा नैपालही पर्वतमय है। पर नदियां भी बीस पचीस से कम नहीं हैं।

नैपाल की आबोहवा एक सी नहीं है। जो जगह जितनी ऊंची है उसकी आबोहवा उतनीही अधिक ठण्ढी है। नैपाल के तीन भाग किये जा सकते हैं। उत्तरी, दक्षिणी और बीच का। मैदान की ज़मीन से उत्तरी हिस्सा १०,००० से २९,००० फुट तक ऊंचा है और दक्षिणी हिस्सा सिर्फ़ ४,००० फुट तक। पहाड़ी ज़मीन जिसमें थोड़ी बहुत खेती होती है, साल के जंगल और तराई इसी दक्षिणी हिस्से में शामिल हैं। बीच का हिस्सा मैदान से ४,००० फुट से लेकर १०,००० फुट तक ऊंचा है। हर हज़ार फुट की उंचाई पर कोई तीन अंश सरदी अधिक बढ़ती है। पर पश्चिम को तरफ़ का देश कम सर्द है। वहां पानी भी कम बरसता है; क्योंकि बादल ऊंचे ऊंचे पहाड़ों को पार नहीं कर सकते; इसी तरफ़ रह जाते हैं।

ख़ास नैपाल, अर्थात् वह भाग जो पहाड़ों के बीच दरी के रूप में है, बहुत तर है। इसी भाग में काठमाण्डू है। यहां की ज़मीन अत्यन्त उर्वरा है। यहां धान ख़ूब होता है। जो ज़मीन कुछ ऊंची है उसमें गेहूं होता है। पहाड़ों के पास की ज़मीन सबसे अच्छी है। वहां धान भी होता है और गेहूं भी। कहीं कहीं एक साल में दो दो तीन तीन फसलें होती हैं।

नैपाल में अकतूबर से मार्च तक सर्दी रहती है और जनवरी, फ़रवरी में सख़्त जाड़ा पड़ता है। अप्रैल से सितम्बर तक की आबोहवा तर रहती है; गरमी अधिक नहीं पड़ती। मार्च से मई और सितम्बर से दिसम्बर तक का मौसम बहुत अच्छा होता है। जून, जुलाई और अगस्त में वर्षा होती है।

नैपाल में कई जाति के आदमी बसते हैं। उनमें से भोटिया, मगर, गुरूंग, नेवार, किराती लेपचा और लिम्बू मुख्य हैं। भूटान की तरफ़ बहुत ऊंची जगहों में भोटिया लोग रहते हैं। वे

तिबत की भाषा बोलते हैं। उनके कपड़े लत्ते, चाल ढाल, रीति रवाज और शकल सूरत तिबतवालें से मिलती है। नैपाल के बीच में, पश्चिम की तरफ़, कम ऊंची पहाड़ियों पर मगर और अधिक ऊंची पहाड़ियों पर गुरूंग जाति के लोग रहते हैं। नेवार लोग ख़ास नैपाल की दरी में, और किराती और लिम्बू नैपाल के पूर्व, रहते हैं। लेपचा जाति के लोग सिकम के पास की पहाड़ियों पर रहते हैं। इन सबकी गिनती मंगोलियन शाखा के आदमियों में है, अर्थात् मंगोलिया में रहनेवालें की शकल सूरत जैसी होती है उससे इन लोगों की शकल सूरत मिलती है। इनके सिवा नैपाल में एक और जाति के आदमी रहते हैं। वे पार्वती या पर्वतिया कहलाते हैं। तेरहवीं सदी में हिन्दुस्तान से जो लोग भग कर नैपाल चले गये थे, उनके और पहाड़ी स्त्रियों के समागम से इन लोगों की उत्पत्ति हुई है। मगर, गुरूंग और पर्वतियां जातिवालें के समूह का नाम गोर्खा या गोर्खाली है। बंगाल के भूतपूर्व लफ्टिनेण्ट गवर्नर, और बम्बई के गवर्नर, सर रिचर्ड टेम्पल का यह मत है। उन्हेंा ने एक किताब लिखी है उसी में आपने अपना यह मत प्रकाशित किया है। नैपाल में काठमाण्डू से ४० मील पश्चिम की तरफ़ गोर्खा नाम का एक शहर है। उसीके नाम पर गोर्खा लोगों का नाम पड़ा है। नैपाल की दरी में जो लोग रहते हैं उनमें नेवार जातिवालें की संख्या सब से अधिक है। नैपाल में पहले इन्हीं लोगों का प्रभुत्व था। ,७६८ ईसवी के लगभग गोर्खा लोगों ने नैपाल में अपना राज्य स्थापित किया। चेपांग, कुसूंदा और अवालिया लोग भी नैपाल के भीतरी जंगलों और तराइयों में रहते हैं। ये लोग यहां के आदिम निवासी हैं और हिन्दुस्तान के गोंड़, भील और सोंताल आदि की तरह असभ्य और जंगली हैं।

पहले नैपालीयों में गोत्र या कुल का भेद न था। पर जब से हिन्दुस्तानियों ने नैपाल में क़दम रक्खा और धीरे धीरे पर्वतिया जाति की उत्पत्ति हुई, तब से यह बात भी वहां होगई। पर्वतिया लोगों में थापा, बिसनायत, भण्डारी, अधिकारी, कारकी और दानी इत्यादि कुलभेद प्रचलित हैं। इस लोगों के सम्पर्क से मगर लोगों में भी राना और थापा आदि भेद हो गये हैं। पर गुरूंग जाति में इस भेदभाव का अभी तक प्रचार नहीं हुआ।

गोर्खा लोग पर्वतिया भाषा बोलते हैं। वह संस्कृत से निकली है। जब से हिन्दुस्तानियों का नैपाल में प्रवेश हुआ, तभी से इस भाषा की नींव वहां पड़ी। नैपाल के पुराने प्रभु नेवार लोगों की भाषा और ही है। उसका नाम नेवारी है। और और जातिवालें में से कुछ तो तिबत की भाषा बोलते हैं और कुछ सिकम और भुटान की।

गोर्खा लोग हिन्दूधर्म्म के अनुयायी हैं। नेवार लोगों में से कुछ हिन्दू हैं और कुछ बौद्ध। जो हिन्दू हैं वे शैवमार्गी नेवार कहलाते हैं और जो बौद्ध हैं वे बौद्धमार्गी नेवार। पर सच पूछिये तो बौद्ध मार्गी नेवारें का ठीक ठीक कोई धर्म्म ही नहीं है। वे हिन्दुओं के देवी देवताओं को भी पूजते हैं और बुद्ध को भी पूजते हैं। लिम्बू, किराती, भोटिया और लेपचा भी बौद्ध हैं। नैपाल में व्यापार, कारीगरी और कृषि प्रायः नेवार लोगों ही के हाथ में है।

नैपाल में साधारण आदमियों का भोजन चावल और तरकारी है। जो समर्थ हैं वे मांस भी खाते हैं। हिरन और जंगली सूअर भी लोग खाते हैं। नेवार और गुरुंग जाति के आदमी भैंस तक खाते हैं। इस देश की तरह नैपाल में भी लोग खूब बहुविवाह करते हैं। जो धनी हैं उनको एक से अधिक स्त्रियां रखने का अकसर शैाक होता है। पर विधवा-विवाह का निषेध है! नैपाल में सती की चाल अभी तक बनी हुई है। जब नैपाल के प्रसिद्ध मंत्री जङ्ग-बहादुर की मृत्यु हुई तब उनकी रानी उनके मृत शरीर के साथ सती हो गईं। गोर्खा लोगों में व्यभिचार बहुत निषिद्ध है। इसके लिये स्त्री और पुरुष दोनों को कठिन दण्ड दिया जाता है। पर नेवार लोगों में विवाह-बन्धन और व्यभि-

वार आदि का विचार उतना कड़ा नहीं है। किसी किसी का मत है कि नेवार जाति की स्त्रियां कभी विधवा ही नहीं होतीं।

नैपाल की फ़ौज में पर्वतिया, मगर और गुरुंग लोग ही अधिकता से भरती किये जाते हैं। पर इस देश की अंगरेज़ी गोर्खा पलटनों में और जाति के आदमी भी ले लिये जाते हैं। वे सब गोर्खा कहलाते हैं। गत एप्रिल में जो भूकम्प हुआ था उसने धर्म्मशाला में इसी गोर्खा जाति की एक अंगरेज़ी पलटन के डेढ़ दो सौ आदमियों का संहार कर डाला था। ये लोग बड़े बहादुर होते हैं। इनकी बहादुरी पर गवर्नमेण्ट बहुत ख़ुश है। इसी से लार्ड किचनर ने बहुत सा चन्दा इकट्ठा करके मृत गोर्खा लोगों के कुटुम्बियों की सहायता की है जनरल सेल हिल बहुत दिनों तक एक गोर्खा पलटन में रहे हैं। वे कहते हैं कि "गोर्खा लोग बड़े बहादुर, श्रम-सहिष्णु, आज्ञाकारी, स्वच्छ-हृदय, स्वाधीनचेता और आत्मावलम्बी होते हैं। अपने मुल्क में वे विदेशियों को नहीं घुसने देते; उनसे द्वेष करते हैं। वे अपनी स्त्रियों को बहुत अच्छी तरह रखते हैं। इसीसे स्त्रियां भी उनकी ख़ूब सेवा शुश्रूषा करती हैं। पर ये लोग ज़रा कुन्दज़ेहन होते हैं और क़वायद परेड सीखने में अधिक दिन लगाते हैं। जब ये फ़ौज में भरती होते हैं तब बहुत मैले रहते हैं। इसलिये पहले इनको सफ़ाई पर सबक़ देना पड़ता है। जुआ खेलने की इनमें बुरी आदत होती है। पहाड़ी मुल्क में पैदल सिपाहियों के काम में कोई इनकी बराबरी नहीं कर सकता। इनका स्वदेशी हथियार कुकड़ी है।

नैपाल में ग़ुलामी की चाल अभी तक जारी है। वहां प्रायः सब समर्थ आदमियों के यहां ग़ुलाम रहते हैं। ग़ुलामों की कीमत कोई १५० रुपये तक होती है। स्त्रियां भी ग़ुलाम का काम करती हैं। उनकी क़ीमत कुछ अधिक पड़ती है। सुनते हैं ग़ुलाम स्त्रियों का चाल चलन अच्छा नहीं होता। ग़ुलामों के मालिक अपने ग़ुलामों के साथ अच्छा वर्ताव करते हैं।

यहां प्रजा की शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं है। न कोई अच्छे स्कूल हैं और न कालेज। धनवान आदमी अपने लड़कों को घरही पर शिक्षक रख कर पढ़ाते हैं। नैपाल से लड़के इस देश में भी विद्याध्ययन के लिए अकसर आते हैं। नैपाल में भाषासाहित्य का प्रायः अभाव ही है। पर संस्कृत के अनन्त अलभ्य ग्रन्थ वहां विद्यमान हैं। काठमाण्डू में जो राजकीय पुस्तकालय है उसकी महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने बहुत प्रशंसा की है। कई विद्वान अंगरेज़ और हिन्दुस्तानी महीनों उसकी पुस्तकों की सूची बनाते रहे; परन्तु पूरी नहीं बना पाये। जो सूची आज तक प्रकाशित हुई है उसमें हज़ारों ग्रन्थ ऐसे हैं जो और कहीं प्रायः अलभ्य हैं। उनमें से अनेक ऐसे हैं जिनके नाम तक नहीं सुने गये थे। कितने ही ग्रन्थ युद्ध-विद्या, पशु-चिकित्सा-विद्या और गृह-निर्म्माण-विद्या पर वहां रक्खे हैं।

नैपाल की मनुष्यसंख्या ठीक ठीक नहीं मालूम। नैपालवाले कहते हैं कि उनके देश में बावन लाख आदमी रहते हैं। पर विदेशी यात्रियों का अनुमान है कि वहां की आबादी इससे कम है।

नैपाल में चार मशहूर शहर हैं—काठमाण्डू, पाटन, कीर्तिपुर और भटगाँव।

काठमाण्डू बागमती और विष्णुमती नदियों के सङ्गम पर बसा है। उसकी आबादी ५०,००० के क़रीब है। मकान कई मंज़िले हैं। महाराजाधिराज़ का राजभवन शहर के बीच में है। यहां एक भी अच्छी सड़क नहीं। शहर में सफ़ाई कम रहती है। गली गली में मन्दिर हैं। एक साहब ने लिखा है कि काठमाण्डू में आदमी कम हैं, मन्दिर अधिक! मन्दिरों में बतख़, बकरों और भैंसों का बलिदान होता है। यहां एक मन्दिर बहुत मशहूर है। उसका नाम तलेजू है। एक बाज़ार भी यहां

बहुत अच्छा है। वह काठमाण्डू-टोल कहलाता है। महाकाल का पुराना मन्दिर और रानी-पोखरी नाम का तालाब भी यहां मशहूर हैं।

पाटन का दूसरा नाम ललितपाटन है। यह काठमाण्डू से दोही तीन मील दूर है। यह बहुत पुराना शहर है। इसकी आबादी ६०,००० के क़रीब है। यह शहर पहले बहुत अच्छी हालत में था। पर जब गोर्खा लोगों ने नैपाल का राज्यसूत्र नेवार लोगों से छीना तब उन्होंने इस शहर के छिन्न भिन्न कर डाला। इसमें भी अनेक मन्दिर हैं। यहां बौद्ध लोगों के चैतन्य और विहार भी बहुत से हैं। मत्स्येन्द्रनाथ और महाबुध के बहुत पुराने स्थान यहां हैं। यहां का दरबार नामक प्रासाद बहुत ही अच्छी इमारत है।

कीर्त्तिपुर एक छोटा सा क़सबा है। इसमें सिर्फ़ पांच छ हज़ार आदमी रहते हैं। गोर्खा लोगों ने राज्यक्रान्ति के समय इसे बे-तरह विध्वस्त कर डाला था। तब से यह बुरी दशा में है। इसमें भैरव और गणेश के मन्दिर अवलोकनीय हैं।

भटगांव काठमाण्डू से ७ मील है। इसकी आबादी कोई पचास हज़ार के क़रीब है। नैपाल में इस शहर की बस्ती सबसे अधिक घनी है। देखने में भी यह बहुत सुन्दर है। और साफ़ भी यह अधिक है। भटगांव का दरबार नामक प्रासाद पहले बहुत बड़ा था। अब भी वह देखने लायक़ है। उसमें एक विशाल फाटक है। उसे लोग "सोने का फाटक" कहते हैं। यह फाटक बहुत प्रसिद्ध है। इसके शिल्पकार्य की फ़रगुसन साहब ने बड़ी प्रशंसा की है। भवानी, भैरव और गणेश के यहां कई मंदिर हैं।

नैपाल में गोर्खा भी एक मशहूर शहर है। पर अब उसकी उतरती कला है। जिस समय गोर्खा लोगों का वह प्रधान शहर था उस समय उसकी शोभा कुछ औरही थी। उसमें कोई इमारत देखने लायक़ नहीं है। पर अब भी उसमें कोई दस हज़ार आदमी बसते हैं।

काठमाण्डू से तीन मील पर पशुपतिनगर नाम का एक क़सबा है। यह बागमती नदी के किनारे बसा हुआ है। यहां पशुपतिनाथ का प्रसिद्ध मन्दिर है। मन्दिर बहुत बड़ा है। उसके पास कोई योरपनिवासी नहीं जाने पाता। पशुपति नगर नैपालियों को काशीपुरी है। मरने के समय लोग वहीं रहने जाते हैं।

नैपाल की सालाना आमदनी एक करोड़ रुपये है। पर सर रिचर्ड टेम्पल साहब को इस पर विश्वास नहीं है। आप कहते हैं कि इतनी आमदनी नहीं है; यह बढ़ाकर बतलाई गई है।

नैपाल में २०,००० फ़ौज हमेशा तैयार रहती है। वह कई पलटनों में बँटी हुई है। पर नैपाल एक ऐसा देश है जहां के सभी मनुष्य हथियार उठाना और लड़ना जानते हैं। उन सब को नियत समय तक युद्धविद्या सिखलाई जाती है और ज़रूरत पड़ने पर वे सब अपने देश की रक्षा के लिये लड़ाई पर भेजे जा सकते हैं। ज़रूरत के समय नैपाल कोई सत्तर अस्सी हज़ार फ़ौज इकट्ठा कर सकता है। फ़ौज को अंगरेज़ी तरह की क़वायद सिखलाई जाती है। सब को एक विशेष प्रकार की वरदी पहनना पड़ता है। सिपाही सिर पर फेँटा बांधते हैं। अफ़सरों के फेँटों पर कलँगी जवाहिरात और चिड़ियों के सुन्दर सुन्दर पर लगे रहते हैं। फ़ौज के बड़े अफ़सरों की पोशाक औरही तरह की होती है। प्रिंस जगत-जङ्ग राना बहादुर के चित्र में उसे देखिए। आप नैपाल के पश्चिमप्रान्त के कमाण्डिङ्ग जेनरल थे। शायद आप चित्र उतरवाते समय पूरी फ़ौजी पोशाक में नहीं थे; क्योंकि चित्र में आपका सिर नङ्गा है। नैपाल में मेगज़ीन, सिलहख़ाने और दो तीन तरह के तोपख़ाने भी हैं। कुछ फ़ौज के पास अंगरेज़ी और कुछ के पास देशी हथियार हैं। पर कुकड़ी हर सैनिक के पास रहती है। यनफ़ील्ड राइफ़ल के नमूने की बन्दूक़ें भी नैपाल में बनती हैं। नैपाली फ़ौज क़वायद परेड में बहुत होशियार है। उसकी बहादुरी की

ललितपाटन में भीमसेन का मन्दिर ।
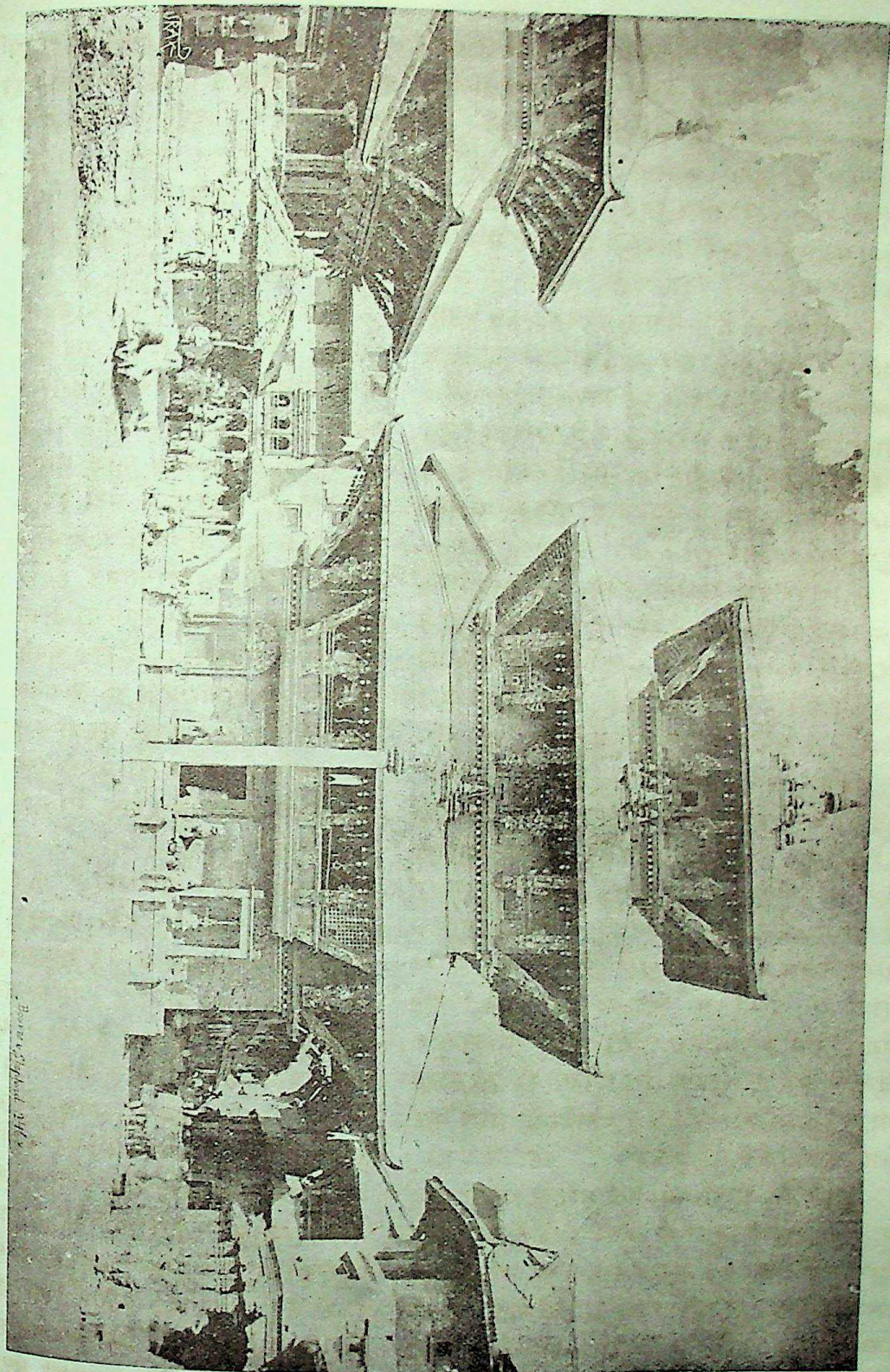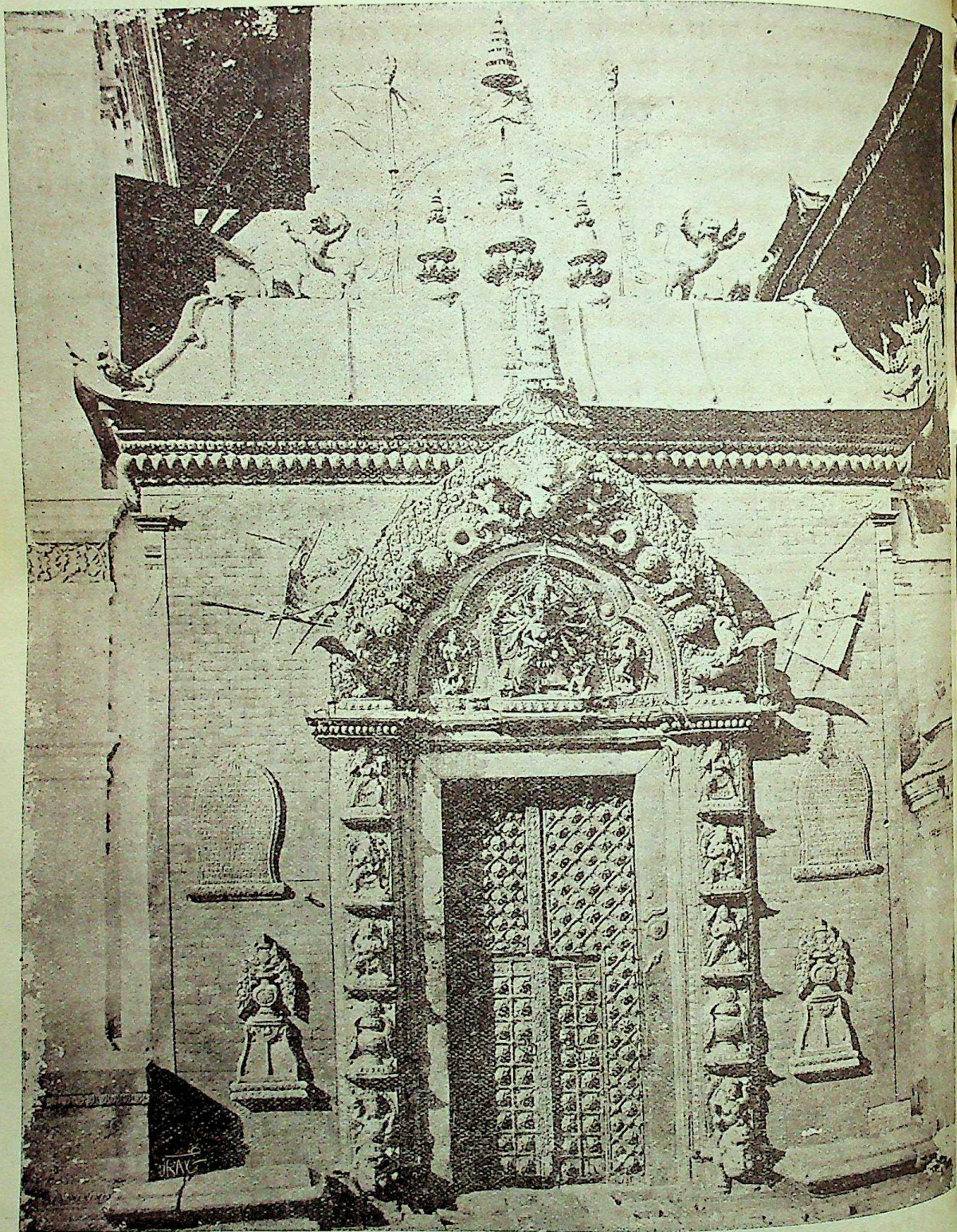
भाटगांव [भक्तपुर] के महल का सुनहरा फाटक ।

बात ही क्या? गोर्खा सिपाही संसार में प्रसिद्ध हैं। नैपाल में रिसाला अच्छा नहीं। इस बात की वहाँ कमी है। पर हाथी अनेक हैं। दूसरे सभ्य देशों ने नये नये शस्त्र बनाने और युद्धविद्या में उन्नति करने के इरादे से नये नये आविष्कारों की सृष्टि की है। पर इन बातों में नैपाल बहुत पीछे है। अतएव योरप के किसी सभ्य देश को सेना के सामने नैपाल की सेना अधिक देर तक नहीं ठहर सकती। सर टेम्पल अपनी किताब के पढ़नेवालों से कहते हैं कि ये बातें याद रखने लायक़ हैं।

नैपाल में एक अंगरेज़ी दूत रहता है। उसे रेज़िडेण्ट कहते हैं। उसी की मारफ़त नैपाल राज्य और हिन्दुस्तान की गवर्नमेण्ट में, आवश्यकतानुसार, लिखा पढ़ी होती है। अंगरेज़ी बनिज व्यापार का वही रक्षक है। रेज़िडेण्ट साहब का वहां अच्छा रोब है। उनके ताज़ीम देने के लिए नैपाल के महाराजाधिराज तक अब उठ खड़े होने लगे हैं। गत एप्रिल में एक दरबार हुआ था। उसमें नैपाल नरेश ने अपने आसन से उतर कर रेज़िडेण्ट की अभ्यर्थना की थी। नैपाल-नरेश महाराधिराज कहलाते हैं और उनके मन्त्री महाराज। वहां मन्त्री ही राज्य के कर्ता, हर्ता और विधाता हैं।

नैपाल का राज्य बहुत पुराना है। वहाँ कलियुग के भी पहले जो राजा हुए हैं उनका पता नैपाली पुस्तकों में लगता है। पहले नैपाल में नेवार जाति की प्रभुता थी और नैपाल की दरी में इसी जाति के चार छोटे छोटे राजा राज्य करते थे। उनकी राजधानियां काठमाण्डू, पाटन, कोर्तिपुर और भटगांव में थीं। भटगांव को छोड़ कर ये सब शहर एक दूसरे से सिर्फ़ चार चार पांच पाँच मील के फ़ासले पर हैं। सिर्फ भटगांव काठमाण्डू से ७ मोल है। तेरहवीं सदी में मुसलमानों के अत्याचार से तङ्ग आकर उदयपुर के राजघराने के कुछ क्षत्रिय कमाऊं की तरफ़ चले गये। उनके साथ और भी कितने ही क्षत्रिय सेवक और सहचर की भांति गये। कोई तीन सौ बरस तक उनलोगों की सन्तति वहां रहती रही और धीरे धीरे नैपाल की तरफ़ बढ़ती रही। सोलहवीं सदी में द्रव्यशाह नामक एक पुरुष विशेष प्रतापी हुआ। उसने गोर्खा नगर को उसके राजा से छीन लिया और आप वहां का राजा हो गया। तभी से गोर्खा राजाओं के राज्य का सूत्रपात हुआ। अठारवीं सदी के उत्तरार्द्ध में पृथ्वीनारायण सिंह को गोर्खा की गद्दी मिली। कुछ दिन बाद पाटन, काठमाण्डू और भटगांव के नेवार राजाओं में परस्पर विरोध पैदा हुआ। इससे भटगांव के राजा रंजीतमल ने पृथ्वीनारायणशाह से मदद मांगी। इस मदद का यह फल हुआ कि तीन चार वर्ष में पृथ्वीनारायणसिंह ने युद्ध करके, कुटिल नीति से काम लेकर, और शत्रुओं में परस्पर द्वेषभाव उत्पन्न कराके, नैपाल के चारों राज्यों को उद्ध्वस्त कर दिया। इस प्रकार निष्कण्टक होकर आपने नैपाल का प्रभुत्व अपने ऊपर लिया और गोर्खा छोड़कर काठमाण्डू को अपनी राजधानी बनाया। तब से नेवार जाति की प्रभुता की समाप्ति हो गई, और गोर्खा लोग नैपाल के राजा हुए। इन्हीं गोर्खाओं के वंशज अब तक वहाँ राज कर रहे हैं। १७६८ ईसवी में पृथ्वीनारायण सिंह को नैपाल की गद्दी मिली। उनसे १८४७ ईसवी तक इतने राजा नैपाल में हुए हैं—पृथ्वीनारायणशाह, प्रतापसिंहशाह, रणबहादुरशाह, गीर्वाणयुद्धविक्रमशाह, राजेन्द्रविक्रमशाह और सुरेन्द्रविक्रमशाह।

पृथ्वीनारायणशाह ने धीरे धीरे किराती और लिम्बू लोगों का भी राज्य छीन लिया और रणबहादुरशाह ने नैपाली राज्य को कमाऊं तक बढ़ाया। १७९२ ईसवी में नैपालियों ने तिबत पर चढ़ाई की, पर चीन वालों ने उन्हें वहां से भगा दिया। इस चढ़ाई में उन्हें बहुत हानि उठानी पड़ी और अनेक आपदाओं का सामना करना पड़ा। तभी से नैपाल वाले चीन को कर देने लगे। यह कर उन्हें अब तक देना पड़ता है। उस समय तिबत वालों ने भी अंगरेज़ों से मदद मांगी थी और

नैपाल वालों ने भी; पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने मदद नहीं दी। यदि देती तो इस समय नैपाल और तिबत की हालत और की औरही हो गई होती। नैपाल की राजगद्दी के कारण अनेक बार मार काट हुई है। सच पूछिये तो मन्त्री ही वहाँ का राजा है। इस लिए मंत्री होने के लिए अनेक ख़ून ख़राबियां हुई हैं और कितनेही लोगों को देश छोड़कर हिन्दुस्तान में भग आना पड़ा है।

गोर्वाणयुद्धविक्रम-शाह के समय में गोर्खा लोगों ने फिर नैपाल की सीमा को बढ़ाना आरम्भ किया। पश्चिम में वे काँगड़ा तक पहुंच गये और पूर्व में सिकम तक। उन्होंने अंगरेज़ी राज्य पर भी आक्रमण किया। इसका फल यह हुआ कि १८१४ ईसवी में नैपाल के साथ अंगरेज़ों का युद्ध ठन गया। इस युद्ध में पहले अंगरेज़ों को बहुत तकलीफ़ें उठानी पड़ीं। उनकी सेना का भी बहुत नाश हुआ और उनके कई बड़े बड़े अफ़सर भी मारे गये। पर पीछे से उनको कामयाबी हुई और अंगरेज़ों का जितना देश नैपालियों ने जीता था उसमें से बहुत सा उन्होंने लौटा दिया। नैपाल के साथ अंगरेज़ों की पहले दो तीन सन्धियां हो चुकी थीं। पर वे नाममात्रही के लिए थीं। जब नैपाल के साथ अंगरेज़ों की लड़ाई हुई तब नैपालियों को अंगरेज़ों का बल विक्रम अच्छी तरह मालूम हो गया। तब, १८१६ ई० में, चौथी बार सन्धि हुई। इस सन्धि का नाम सिगौली की सन्धि है। तब से अंगरेज़ी गवर्नमेण्ट की तरफ़ से एक रेज़िडेण्ट मुस्तक़िल तौर पर काठमाण्डू में रहने लगा। इस समय नैपाल-नरेश के मंत्री जेनरल भीमसेन थापा थे। इन्होंने २५ वर्ष तक काम किया। १८३७ ई० में इन पर यह अपराध लगाया गया कि इन्होंने राजा के एक छोटे बच्चे को विष दिया। इस लिए ये क़ैद किये गये और क़ैदही में इन्होंने अपना आत्मघात किया। सुनते हैं इनके मृतक शरीर की बड़ी दुर्दशा की गई थी।

भीमसेन थापा के बाद काला पाण्डे को नैपालनरेश का मंत्रित्व मिला। इनका राज्यप्रबन्ध अच्छा न था। १८४३ ईसवी में इनको मातबर सिंह नामक एक योद्धा ने मार डाला और आप मन्त्री हो गया। परन्तु दोही वर्ष में इनका भी काम तमाम कर दिया गया। ये राजा से मिलने गये थे। वहीं इन पर किसी ने गोली चलाई। कोई कहता है ख़ुद राजा ने चलाई; कोई कहता है जंगबहादुर ने।

जङ्गबहादुर एक बहुत ही होनहार और साहसी युवा थे। उस समय वे फ़ौज में कर्नल के पद पर थे। मातबरसिंह के मारे जाने पर उन्होंने राज्य-कार्य देखना शुरू किया। पर मन्त्रित्व उनको नहीं मिला। वह गगनसिंह नामक एक पुरुष को मिला। परन्तु एक ही वर्ष बाद उनके जीवन की भी समाप्ति हो गई। १४ सितम्बर, १८४६, की रात को यह घटना हुई। इन पर नैपाल की महारानी की कृपा थी। इस लिए इनके वधिक का पता लगाने के लिए सब सरदार राजमहल में बुलाये गये। वहां जंगबहादुर भी उपस्थित थे। बातों बातों में झगड़ा हुआ और गोलियां चलने लगीं। ज़रा देर में नैपाल के ३१ सरदार और कोई १०० आदमी राजमहल के भीतर ही मारे गये। ख़ून की नदी बह निकली। राजा और रानी भयभीत होकर बनारस भग आये। जंगबहादुर के लिए रास्ता साफ़ हो गया। इस लिए आप निष्कण्टक हो कर मन्त्रित्व के आसन पर आसीन हुए। आपने सुरेन्द्रविक्रमशाह को राजा बनाया।

जंगबहादुर के पूर्वजों ने नैपाल में अच्छे अच्छे काम किये थे। यह एक मशहूर घराने के थे। इन्होंने राज्य का अच्छा प्रबन्ध किया। इनके कोई १०० लड़के लड़कियां थीं। उनका सम्बन्ध राज्य के प्रधान प्रधान सरदारों और स्वयं महाराजा-धिराज के यहां करके, जङ्गबहादुर ने सारे राज-चक्र और सरदार-चक्र को अपने हाथ में कर लिया। उन्होंने अपनी एक कन्या का विवाह नैपाल

युवराज से भी कर दिया। १८५० ईसवी में जङ्गबहादुर इंगलैंड गये। वहां इनकी बहुत ख़ातिरदारी हुई। इंगलैंड में इन्होंने अंगरेज़ी सभ्यता के ध्यान से देखा और अङ्गरेजों के प्रचण्ड प्रताप का भी अच्छी तरह अनुभव किया। इसका फल यह हुआ कि नैपाल लैाट कर इन्होंने अपने देश के क़ानून में उचित फेर फार किये। इन्होंने अङ्गभङ्ग करने का दण्ड उठा दिया। सती की प्रथा में भी कुछ रुकावट कर दी गई। सेना में भी सुधार किया गया। सारांश यह कि जङ्गबहादुर ने जिसमें प्रजा और देश का कल्याण समझा उसे करने में उन्होंने सङ्कोच नहीं किया। विलायत से लैाटने पर लोगों ने इन पर यह दोष लगाया कि समुद्र पार जाने से ये धर्मच्युत हो गये। इससे ये मन्त्री होने के लायक़ नहीं रहे। इन दोषारोपण करने वालों में जङ्गबहादुर के दो भाई भी थे—एक सगे, एक चचेरे। इसमें महाराजाधिराज के एक भाई भी शामिल थे। ये लोग नैपाल से हटा दिये गये और इलाहाबाद में आकर रहने लगे। पर १८५३ ईसवी में उनको नैपाल लैाट जाने की आज्ञा मिल गई। १८५७ ईसवी के सिपाही-विद्रोह में जङ्गबहादुर ने बहुत सी फ़ौज भेज कर अँगरेज़राज की मदद की। इसके उपलक्ष्य में गवर्नमेण्ट ने तराई का एक हिस्सा नैपाल को दे दिया और जङ्गबहादुर को जी० सी० बी० की पदवी से विभूषित किया। १८७३ ईसवी में वे जी० सी० एस० आई० बनाये गये। १८७७ में जङ्गबहादुर की मृत्यु हुई। अपने समय तक यही एक ऐसे मन्त्री हुए जिनकी स्वाभाविक मृत्यु हुई। महाराज जङ्गबहादुर के ज्येष्ठ पुत्र जनरल पद्मजङ्ग इस समय प्रयाग में रहते हैं।

१८७५ ईसवी में राजराजेश्वर सातवें एडवर्ड सैर के लिए हिन्दुस्तान आये थे। उस समय आप "प्रिन्स आफ़ वेल्स" कहलाते थे। आपने नैपाल की तराई में शिकार खेला था। शिकार का सब प्रबन्ध महाराज जङ्गबहादुर ने ख़ुद किया था। वे प्रिन्स से मिलने आये थे। उनके आतिथ्य से प्रिंस बहुत प्रसन्न हुए थे।

महाराज जङ्गबहादुर का शंखेलामा नामक एक योगी पर बहुत प्रेम था। इस योगी को बज्रोली मुद्रा सिद्ध थी। वह अपने शिश्न से शंख बजा सकता था और उसी मार्ग से कटोरा भर दूध शोष लेता था।

१८८५ ईसवी में नैपाल के सरदारमण्डल में फिर विद्रोह हुआ। इसमें उस समय के मन्त्री, और जङ्गबहादुर के एक बेटे और एक पोते की जान गई। विद्रोहकर्ता थे वीरशमशेरजङ्ग राना। शिरच्छेद करने में ख़ूब पराक्रम दिखला कर आप ने मन्त्री का आसन छीन लिया। तब से आप नैपाल के हर्ता कर्त्ता हुए। आपको के० सी० एस० आई० का ख़िताब भी मिला।

नैपाल के वर्तमान नरेश, महाराजाधिराज, और मन्त्री दोनों बहुत योग्य हैं। गत वर्ष तिब्बत मिशन को नैपाल से बहुत मदद मिली थी। इस उपलक्ष्य में अँगरेज़ी गवर्नमेण्ट ने मन्त्री जी को जी० सी० एस० आई० की उपाधि से अलंकृत किया है। २६ एप्रिल, १९०५, को काठमाण्डू में एक दरबार किया गया। उसमें महाराज चन्द्रशमशेरजङ्ग राना बहादुर को रेज़िडण्ट साहब ने इस पदवी का सूचक पदक पहनाया। यही राना बहादुर आज कल नैपाल के मन्त्री हैं। दरबार में महाराजाधिराज भी पधारे थे। आपने रेज़िडण्ट साहब की अभ्यर्थना उठ कर की थी और एक वक्तृता भी दी थी। आपकी वक्तृता को आपके राजगुरु ने पढ़ कर सुनाया था।

नैपाल के वर्तमान नरेश महाराजधिराज पृथ्वीवीरविक्रम-शमशेर-जङ्गबहादुर शाह का जन्म ८ अगस्त, १८७४, को हुआ था। १७ मार्च १८८१, को आप अपने पितामह की गद्दी पर बैठे थे। आप बहुत रूपवान् हैं। गुण भी आप में अनेक हैं। आप अंगरेज़ी ख़ूब लिख पढ़ सकते हैं और बोलते भी हैं। आप महाराजा जङ्गबहादुर के दौहित्र हैं।

पूर्वी हिन्दी का एक और नमूना।
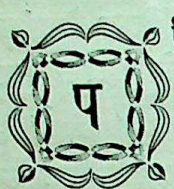
पण्डित चन्द्रिकाप्रसाद तिवारी अजमेर में एक प्रतिष्ठित पुरुष हैं। आपके पीछे अनेक काम लगे रहते हैं। तिस पर भी आपको हिन्दी से इतना शौक़ है कि कुछ न कुछ आप हिन्दी में लिखा ही करते हैं। कई साल से आप एक पुराने हिन्दी ग्रन्थ के सम्पादन में लगे हैं। उसके प्रकाशित हो जाने पर हिन्दी साहित्य में वह एक रत्नरूप होगा। आप लिखते हैं—

"आपने डाक्टर ग्रियर्सन की पूर्वी हिन्दी पर जो लेख सरस्वती में प्रकाशित किया है उसे पढ़ कर हमें बड़ी ख़ुशी हुई। डाक्टर साहब ने बोलियों के जो नमूने अपनी किताब में दिये हैं, उन्होंने हम को भी आपही की तरह निराश किया। जान पड़ता है, इन नमूनों को ज़िले के दफ़्तरों में ऐसे बाबू या मुन्शी लोगों ने तैयार किया है जो देहातियों की बोली से अच्छी तरह परिचित नहीं थे। आप जानते ही हैं, हमारा घर उनाव के ज़िले में है। वहां की बोली हमारी मातृभाषा है। डाक्टर साहब ने अपनी किताब की सातवीं जिल्द के ८७ पृष्ठ में उनाव के ज़िले की अवधी बोली का जो नमूना दिया है वह ठीक नहीं है। वह नमूना यह है—

"याक जने क्यार दुइ लरिका रहैँ। वहिमाँ मते छ्वटकवैँ अपने बाप ते कहसि कि बापू! घर गिरिस्ती माँ म्वार जउन होँसा होय तउन म्वँहिका दै देउ। तब उइँ वहिका होँसा बाँटि दीन्हेसि। थोरे दिनन पाछे वहै छ्वटकवा लरिका सबियां जमा-जथा लै कै बड़ी दूरि आमे देस चला गा अउर अपन रुपया पइसा कुकरम माँ गँवाइ दीन्हेसि। जब सबियाँ गँवाइ चुका तब उइ देस माँ झूरा परा अउर वहु भूख्यन मरन लाग। तब उँइ याक भले मानस ते मिलापु कीन। तब उइँ वहिका सोरी चरैबे काज अपने ख्यातन पठयसि। उइ सोरि[illegible] वहिका ऐसि लालसा रहै कि उइ व्वकला अउ[illegible] सोरी खाती रहैँ तिनहिन तें अपन पेटु भरै[illegible] सो ओऊ वहिका केहूँ नाईँ दीन। तब वहि[illegible] चेतु आवा कि मोरे बाप तीर अइस नउक[illegible] चाकर बहुत है, कि जनका पेटु भरि रोटी मिल[illegible] है अउर मैँ हियाँ उपास करति हौं। अब [illegible] अपने बापै तीर जाइ कै कहिहौं कि मैं गुसा[illegible] केरि अउर तुम्हारि दुनहुन केरि चूक कीन्हि[illegible] अउर अब मैं तुम्हार पूत कहावै लाउक नाँ[illegible] हौं, तेहिते मँहि का अपने नउकरिहन माँ [illegible] लेउ।"

इसमें बोली से सम्बन्ध रखनेवाली त्रुटि[illegible] पर हम कुछ नहीं कहते। पर यहां जो यह [illegible] गया है कि वह लड़का किसी भले मानुस से मि[illegible] और उसने उस लड़के को सुअर चराने के काम [illegible] रक्खा, सो यह बात इस देश में सर्वथा असं[illegible] है। क्योंकि कोई भला आदमी उनाव के ज़िले[illegible] क्या, इस देश में कहीं भी, सुअर नहीं रखता[illegible] इस जानवर के मालिक केवल हीन जाति के ले[illegible] धानुक, पासी, चमार आदि ही होते हैं। उन[illegible] भले मानसों में कोई गिनती नहीं करता।

अंगरेज़ों के यहां सुअर पालना मना न[illegible] है। पर डाक्टर साहब यह ज़रूर जानते होंगे [illegible] हिन्दुस्तान के भले आदमी सुअर नहीं पालते। फिर ऐसी नापाक कहानी क्यों इस किताब [illegible] आपने रक्खी? नहीं मालूम किस पवित्र आ[illegible] ने ऐसी गन्दी कहानी भेज कर साहब की किता[illegible] को भ्रष्ट कर दिया?

साहब की इस किताब के ८९ पृष्ठ पर उना[illegible] के ज़िले की बोली का जो दूसरा नमूना है उस[illegible] भी कई गलतियां हैं। पर अब गलतियां दिखला[illegible] और बोलियों के नमूनों के भीतर बे सिर पैर [illegible] बातों को बतलाने से क्या लाभ?

फ़ोटोग्राफ़ी के उपयोग।

फ़ोटोग्राफ़ी किसे कहते हैं यह सरस्वती के पाठकों को विदित ही होगा। रासायनिक प्रयोगों से प्रकाश द्वारा जो चित्र लिये जाते हैं उन को फ़ोटो कहते हैं। इस तरह के चित्र लेने की विद्या का नाम फ़ोटोग्राफ़ी है। पहले सब चित्र हाथ से बनाये जाते थे। वह काम बहुत कष्टजनक था और देर में होता था। परन्तु अब फ़ोटोग्राफ़ी की सहायता से बड़े बड़े चित्र सहज ही बना लिये जाते हैं। फ़ोटोग्राफ़ी से किस किस प्रकार के चित्र बनाये जाते हैं उसका सारांश नीचे दिया जाता है—

१—मनुष्यों के फ़ोटो।

मनुष्यों के फ़ोटो खींचने को अङ्गरेज़ी में पोरट्रेट फ़ोटोग्राफ़ी (Portrait Photography) कहते हैं। इसका महत्व सर्व सामान्य में इतना अधिक है कि फ़ोटोग्राफ़ी का अर्थ मनुष्यों के फ़ोटो ही माना जाता है। इस लोकमान्यता के दो कारण हैं। एक तो उसका सस्तापन, दूसरे उसके बनाने में समय का कम लगना। हाथ से बने हुए चित्रों में ये दोनों बातें नहीं होतीं। उनमें समय और खर्च दोनों अधिक लगते हैं। बड़े निपुण चित्रकार को छोड़ कर मामूली चित्रकारों का आदर अब फ़ोटोग्राफ़ी के सामने बहुत ही कम हो गया है। लोगों का यह विश्वास है कि फ़ोटोग्राफ़ी में कोई त्रुटि नहीं है। अर्थात् जिसका फ़ोटो लिया जाता है उसमें और उसके फ़ोटो में ज़रा भी असदृशता नहीं होती है। परन्तु अच्छी तरह देखा जाय तो यह विश्वास ग़लत प्रतीत होगा। फ़ोटोग्राफ़ी में भी दोष रह जाते हैं। हमारा स्वभाव सब चीज़ों को बहुत जल्दी देखने का है। इसीसे चीज़ के गुण दोष जांचने का अभ्यास नहीं रहता। फ़ोटोग्राफ़ी में स्वाभाविक अर्थात् लेन्स (Lens) सम्बन्धी दोष होते हैं। इन दोषों के सिवा और भी अनेक कठिनाइयां फ़ोटोग्राफ़र को झेलनी पड़ती हैं। क्योंकि उत्तम फ़ोटो बना लेना कोई सहज बात नहीं है।

सबसे पहले फ़ोटोग्राफ़र को सरसता और सुघराई का ज्ञान होना बहुत ज़रूरी है। फ़ोटो खिंचवाने वाले का स्वाभाविक आसन और भाव दिखलाना, जातीय दोष छिपाना, और जो भाग मुख्य और उत्तम हो उसे अच्छी तरह दिखलाना, इत्यादि ऐसी बातें हैं जिनमें निपुणता प्राप्त करनी पड़ती है। हाथ के चित्र बनाने में यह सुभीता रहता है कि चित्रकार जिन चीज़ों को निकम्मी अथवा चित्रकी शोभा बिगाड़नेवाली समझे, उनको अपने चित्र में न ले। परन्तु फ़ोटोग्राफ़ी में यह नहीं हो सकता। इसमें जिसका चित्र खींचा जाता है उसके आस पास की सब चीज़ों का चित्र खिंच जाता है। इसी लिये फ़ोटोग्राफ़र को सरसता का ज्ञान हुये बिना उत्तम फ़ोटो नहीं खींचा जा सकता। निकम्मी चीज़ों को भर देने से फ़ोटो की सुन्दरता घट जाती है। फ़ोटोग्राफ़र की परीक्षा इसीसे हो सकती है। बाक़ी काम कुछ दिनों के अभ्यास से बहुत सहज हो जाता है।

जैसे चित्र की चीज़ों को यथास्थान रखने से चित्रका सौंदर्य बढ़ जाता है, वैसे ही——नहीं उससे भी बढ़कर——प्रकाश और छाया (Light and shade) का प्रमाण ठीक रखने से चित्र में सजीवता आ जाती है। जब तक प्रकाश और छाया का प्रमाण ठीक नहीं होता तब तक कोई चित्र सजीव और सुन्दर नहीं होता।

वस्त्राभरण इत्यादि से भी फ़ोटो की शोभा बढ़ जाती है। मनुष्यों के लिये काले कपड़े उत्तम होते हैं। दुबले पतले और फीके चेहरे के मनुष्यों को सफ़ेद कपड़े पहनाने से फ़ोटो में थोड़ी स्थूलता आ जाती है। ऊनी और मोटे कपड़ों से स्त्रियों के फ़ोटो भद्दे हो जाते हैं। रेशमी और धारीदार हलके कपड़े अच्छे खिलते हैं। बहुत चमकीले रङ्ग भी नहीं खिलते। क्योंकि पीले, बादामी इत्यादि बहुत से रङ्ग तो काले हो जाते हैं और हरे, नीले, बैंगनी

इत्यादि सफ़ेद हो जाते हैं। इसका अनुमान फ़ोटो-ग्राफ़र को कुछ दिनों में हो जाता है; और वह अपनी सलाह से फ़ोटो खिँचवाने वाले को कपड़ा पहनने के विषय में सहायता दे सकता है।

मौसम और समय इत्यादि की कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ता है। गरमी में प्रकाश बहुत होता है और सरदी में कम। बहुत अधिक अथवा बहुत कम प्रकाश में फ़ोटो ठीक नहीं बनते। केमेरा (Camera) में कितना प्रकाश होना चाहिये इसका अभ्यास करना पड़ता है। जितना ही चित्र केमेरे में साफ़ दिखलाई देगा उतना ही कम समय फ़ोटो लेने में लगैगा।

फ़ोटोग्राफ़ी से छोटा ही चित्र उत्तम बनता है। मनुष्य के डील के एक चौथाई के बराबर (quarter life-size) भी फ़ोटो नहीं खींचे जा सकते। परन्तु बड़े चित्रों की मांग बहुत होती है। इससे फ़ोटो बढ़ानेवाले एक यन्त्र (Enlarging apparatus) से फ़ोटोग्राफ़र छोटी फ़ोटो को बढ़ा सकते हैं; यहां तक कि उसे वे आदमी के क़द के बराबर भी बना सकते हैं।

२—भूमि-सम्बन्धी फ़ोटो।

पेड़, नदी, पहाड़, इमारतें इत्यादि भूमि-सम्बन्धी चित्रों को भूमि-प्रदेश (Landscape) के चित्र कहते हैं। इनकी मांग सर्व साधारण में कम है। इस लिये इसमें मनुष्यों के फ़ोटो की भांति उन्नति नहीं हुई है। ऐसे चित्रों को लोग सुन्दरता के ख़याल से कम ख़रीदते हैं। परन्तु किसी अच्छे स्थान की यादगार समझकर वे लेते हैं। मनुष्य की फ़ोटो लेने में जितनी कठिनाइयां उठानी पड़ती हैं, भूमिप्रदेश के फ़ोटो में उससे कम नहीं उठानी पड़तीं। जो ऐसे फ़ोटो लेना चाहते हैं उनको सफलता हवा और मौसम पर अवलम्बित रहती है। यदि हवा चलती हो तो हिल जाने से फ़ोटो बिगड़ जाते हैं। मौसम और समय का प्रभाव भी भूमि-प्रदेश वाले फ़ोटो पर मनुष्य के फ़ोटो से अधिक होता है। जो भाव सुबह होता है वह दोपहर और शाम को नहीं होता है। कुछ दिनों के अभ्यास से यह मालूम हो जाता है कि कौन समय इस तरह का फ़ोटो लेने के लिए अच्छा है। यह भी देखना पड़ता है कि किस स्थान से फ़ोटो का सौंदर्य बढ़ता है, क्योंकि दो चार क़दम इधर उधर से खींचने में बहुत अन्तर हो जाता है। इस लिये उचित स्थान खोजने में चतुराई की आवश्यकता है। प्रकाश और छाया का प्रमाण ठीक होने से फ़ोटो की शोभा बढ़ती है। इससे इसका भी ख़याल रखना पड़ता है।

ऊपरी नज़र से देखने से भूमिप्रदेश के फ़ोटो की आवश्यकता नहीं दिखलाई देती, परन्तु भूगोल सम्बन्धी ज्ञान की प्राप्ति इससे बहुत होती है। दूर दूर देशों के पहाड़, नदी, झरने, इमारत, पशु पक्षी, वृक्ष, पौधे, इत्यादि को प्रत्यक्ष दिखलाने का साधन इससे बढ़कर और कोई नहीं है। ऐसे चित्रों के देखने के लिये एक यन्त्र है जिसको स्टीरियोस्कोप (Stereoscope) कहते हैं। उसमें फ़ोटो रखकर देखने से सब चीज़ें बड़ी बड़ी और स्वाभाविक दिखलाई देती हैं।

भूमिप्रदेश के फ़ोटो की एक शाखा सर्व दिग्दर्शक (Panoramic) अर्थात् सब तरफ़ देखनेवाली है। अपनी आँखों से हम चारों तरफ़ एक दम नहीं देख सकते; सिर्फ़ एकही चौथाई देख सकते हैं। बाकी देखने के लिये घूमना पड़ता है। इससे ऐसे फ़ोटो लेने के लिये एक ख़ास घूमनेवाला केमेरा (Camera) दरकार होता है और उसकी क्रिया भी निराली होती है।

३—ज्योतिष-विद्या और फ़ोटोग्राफ़ी।

ज्योतिष में फ़ोटोग्राफ़ी से दो काम होते हैं। एक आकाश के दृश्य—जैसे सूर्य, चन्द्रमा, तारा, ग्रहण इत्यादि का फ़ोटो लेना; दूसरे उन फ़ोटो चित्रों से उनकी दूरी का अनुमान करना। सूर्य-ग्रहण के समय आँख से देखने पर कुछ विशेषता नहीं प्रतीत होती; परन्तु फ़ोटो से यह देख पड़ता है कि सूर्य के काले कुण्डल से, सर्वग्रास ग्रहण के समय, आग की ज्वाला सी निकल रही है।

खग्रास अर्थात् पूरे ग्रहण के समय हज़ारों फ़ोटोग्राफ़र ग्रहण की फ़ोटो, इस बात का पता लगाने के लिये, लेते हैं कि यह आग की ज्वाला के समान क्या वस्तु है। समय समय पर साधारण सूर्य के जो फ़ोटो लिये जाते हैं उनको ग्रहण के समय के फ़ोटो से मिलान करने पर जो अन्तर सूर्य में ग्रहण के समय होता है सो भी मालूम हो जाता है। फ़ोटोग्राफ़ी ही से यह बात सिद्ध हुई है कि सूर्य में निरंतर परिवर्तन हुआ करता है और जो धब्बे होते हैं वे कभी दिखलाई देते हैं, कभी घट बढ़ जाते हैं, और कभी नहीं भी दिखलाई देते हैं। तारों की फ़ोटो लेने से यह जाना जाता है कि एक तारा दूसरे से कितनी दूर है। उससे यह भी जाना गया है कि ध्रुव तारे भी चलते हैं। ऐसी ऐसी अनेक नई बातें फ़ोटोग्राफ़ी की सहायता से प्रकट हुई हैं और होती भी जाती हैं।

४—सूक्ष्मदर्शक फ़ोटोग्राफ़ी।

सूक्ष्मदर्शक यंत्र (Microscope) की सहायता से अत्यन्त सूक्ष्मपदार्थ देखे जाते हैं। एक पानी के बूंद में अनेक कोड़े होते हैं, जिनको हम आँख से नहीं देख सकते। परंतु सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से वे सब कोड़े साफ़ साफ़ देख पड़ते हैं। इसी तरह और भी अनेक छोटी छोटी चीज़ों के देखने की ज़रूरत पड़ती है। रसायन और वैद्यक विद्या में भी सूक्ष्म पदार्थ देखने पड़ते हैं। सूक्ष्मदर्शक फ़ोटोग्राफ़ी के यन्त्र से इन सूक्ष्म पदार्थों के फ़ोटो ले लिये जाते हैं। फ़ोटोग्राफ़ी से सूक्ष्म पदार्थ का बड़ा चित्र बनाया जाता है; और बड़े पदार्थ का चित्र बहुत छोटा भी बन सकता है।

पाठकों को विदित होगा कि बाज़ार में ऐसी अंगूठियाँ बिका करती हैं जिनके नग के भीतर फ़ोटो रहते हैं। असल में इन अंगूठियों में नग नहीं होता। उनमें एक सूक्ष्मदर्शक कांच (Lens) लगा होता है। उसीके पीछे एक छोटा फ़ोटो रहता है। इसीसे फ़ोटो बड़ा और साफ़ देख पड़ता है। यही नहीं, किन्तु बड़ी बड़ी पुस्तकें जैसे अंगरेज़ी कोश, गीता, और कुरान इत्यादि फ़ोटोग्राफ़ी के द्वारा इतनी छोटी छप गई हैं कि पूरी पुस्तक एक घन इंच से अधिक नहीं है। इन पुस्तकों के पढ़ने के लिये सूक्ष्मदर्शक यंत्र की आवश्यकता होती है।

फ्रांस में पेरिस शहर के एक विद्वान ने इस फ़ोटोग्राफ़ी की सहायता से पहले पहल एक ऐसी युक्ति निकाली जिससे सब संसार चकित हो गया। पाठक यह जानते होंगे कि एक प्रकार के कबूतर होते हैं जो सिखलाने से चिट्ठियां एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाते हैं। लड़ाई के समय ऐसे कबूतरों से बहुधा काम लिया जाता है। जब एक तरफ़ की फ़ौज या क़िले को दूसरी तरफ़ वाले, अर्थात् दुश्मन, घेर लेते हैं तब घिरे हुये मनुष्य अपना समाचार ऐसेही कबूतरों के द्वारा भेजते हैं। ये कबूतर बहुत ही हलकी चिट्ठियां ले जा सकते हैं। इस लिये पहले बहुत थोड़े समाचार भेजे जा सकते थे। इस कमी को दूर करने के लिए उस विद्वान ने यह युक्ति निकाली कि एक बड़े पन्ने पर सब समाचार उसने टाइप में छाप लिया, फिर उसका सूक्ष्म फ़ोटो लिया गया जो केवल डेढ़ इंच चौरस कागज़ पर छप गया। इस बड़ी चिट्ठी के सूक्ष्म फ़ोटो को उसने कबूतर द्वारा भेज दिया। जब वह अपनी जगह पर पहुंची तब वह यंत्र द्वारा बड़ी (Enlarge) की गई और बहुत से लेखकों ने उसकी नकलें बना बना कर उन्हें जहां जाना था फ़ौरन ही भेज दिया।

सन् १८७० ईसवी में पेरिस शहर को जब शत्रुओंने घेर लिया था, तब छ महीने तक घिरे हुये पेरिस वालों ने इसी तरह बाहर वालों से पत्र व्यवहार किया था। सब लोग अपने कुटुम्बियों को अपनी कुशलताके समाचार इसी तरह भेजते रहे थे।

५—वैद्यक और फ़ोटोग्राफ़ी।

वैद्यक शास्त्र ने फ़ोटोग्राफ़ी से बड़ा लाभ उठाया है। शरीर की बनावट के, थोड़ी देर रहनेवाले शारीरिक दृश्यों के, और शरीर की सब इन्द्रियों

के फ़ोटो लिये जाते हैं। जीवित शरीर की आँख, कान, कण्ठनाल इत्यादि के भीतर के भिन्न भिन्न भाग यन्त्रों द्वारा देखे जाते हैं और उनके फ़ोटो भी लिये जाते हैं। कुछ रोगों में मनुष्य के रक्त में कई प्रकार के कीड़े हो जाते हैं। उनका आकार देखना डाक्टरों को चिकित्सा के लिये आवश्यक होता है। ऐसे रोगी मनुष्य के शरीर से एक दो बूंद रक्त निकाल कर उसे डाक्टर सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से देखते हैं और उसके समय समय पर फ़ोटो भी ले लेते हैं। चिकित्सा से जो हानि या लाभ होता है वह इस तरह मालूम हो जाता है।

६—वैज्ञानिक यन्त्रों का अवलोकन और फ़ोटोग्राफ़ी।

फ़ोटोग्राफ़ी से आकाश-विद्या-सम्बन्धी (Meteorological) जांच में सहायता होती है। आकाश में जो उल्का आदि अनेक पिण्ड हैं उनके सम्बन्ध में विचार करने के लिए बैरोमीटर और थरमामीटर को मिनट मिनट पर देखना पड़ता है। यदि इस देख भाल के लिये मनुष्य रहें तो अधिक ख़र्च पड़े और तकलीफ़ भी बहुत हो। इसलिये फ़ोटोग्राफ़ी से यह काम लिया जाता है। उससे बैरोमीटर और थरमामीटर के चौबीसों घण्टे के उतरने चढ़ने का फ़ोटो खिंच जाता है।

७—न्याय और फ़ोटोग्राफ़ी।

न्याय करने में भी फ़ोटोग्राफ़ी काम आती है। पुराने मुलज़िम, चोर, डाकू इत्यादि के पकड़ने में इससे बहुत सहायता मिलती है। जेल में क़ैदियों की फ़ोटो ले लेने से यदि वे भाग जाँय तो फिर पकड़े जाते हैं। और यदि वे दुबारा अपराध करने पर पकड़े जांय तो सहजही साबित हो जाता है कि वे पहले के अपराधी हैं। गुप्त पुलिस के पास ऐसे पुराने अपराधियों के फ़ोटो रहते हैं जिससे उन्हें पकड़ने में पुलिस को बड़ा सुभीता होता है। जाली दस्तावेज़ों के भी फ़ोटो ले लिये जाते हैं। और चोरी के माल के फ़ोटो उतार कर उसके मालिकों का पता लगाया जाता है।

८—फुटकर बातें और फ़ोटोग्राफ़ी।

साधारण कागज़ पर बनाये हुये फ़ोटो पा[illegible] वग़ैरह से बरबाद हो जाते हैं। इस लिये चीनी के बरतन और कांच पर फ़ोटो खींचने की युक्ति निकाली गई है। उस तरह पर बहुत सुन्दर फ़ोटो खींच लि[illegible] जाने लगे हैं और चित्रकार (Painter) अर्थात् रंगी[illegible] चित्र बनानेवालों की आवश्यकता कम हो गई है।

फ़ोटोग्राफ़ी से ज़मीन की पैमाइश होती है। इमारतें और कलों के फ़ोटो ले लेने से इंजिनियरों को बहुत मदद मिलती है। फ़ोटोग्राफ़ी कितने का[illegible] की चीज़ है यह ऊपर वर्णन किये गये भिन्न भिन्न उपयोगों से विदित है। इससे सब काम सुग[illegible] हो जाते हैं। इसीलिये यह सारे कला कौशलों [illegible] जीवन-सर्वस्व हो रही है। और ऐसा शायद [illegible] कोई विषय हो जहां इससे काम न पड़ता हो। छापाख़ाना होने से जैसे ज्ञान और विज्ञान [illegible] उन्नति में सहायता हुई है, तैसेही फ़ोटोग्राफ़ी [illegible] कला कौशल में उन्नति हुई है।

तार और छापेख़ाने की बदौलत हज़ारों मी[illegible] दूर के शहरों में दी गई वक्तृतायें दूसरे दि[illegible] छपकर सारे संसार में फैल जाती हैं। और स[illegible] तरह की नई नई ख़बरें नित्य घर बैठे हमको मिल[illegible] हैं। इसी तरह बड़े बड़े जलसों और युद्धों [illegible] सुविख्यात पुरुषों और स्त्रियों की, मनोहर और रमणीक स्थानों की, सुन्दर सुन्दर इमारतें [illegible] फ़ोटो स्टीरियोस्कोप और बायोग्राफ़ द्वारा ह[illegible] प्रत्यक्ष देखने को मिलती हैं।

रामदुलारी दुबे

फीजी द्वीप के असभ्य निवासी।

पैसिफ़िक महासागर में, आस्ट्रेलिया देश के पूर्व, फीजी द्वीप-समूह नामक छोटे छोटे टापुओं का एक झुण्ड है। आस्ट्रेलिया के सिडनी नामक बन्दरगाह से पूर्व और उत्तर के कोण में कोई १७२५ मील [illegible]

नेपाली सिपाही—पहरे पर।

गुरखा सिपाही—अङ्गरेज़ी सरकार के नौकर।
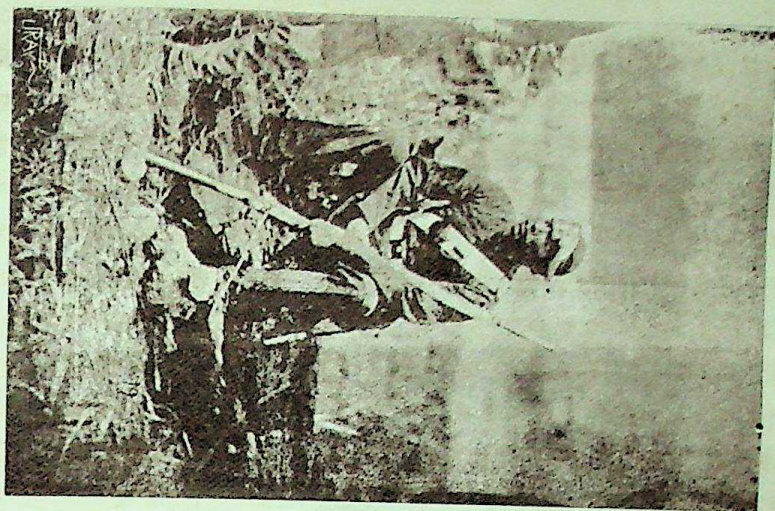
नेपाल की राजमाता
[महाराजा जंगवहादुर की कन्या]

बड़ी महारानी हिरण्यगर्भकुमारी
महाराजा जंगवहादुर की धर्म्मपत्नी ।

दूरी पर यह द्वीपसमूह स्थित है। सन् १८३५ ई० में पहले पहल अंगरेज़ मिशनरी लोग वहां गये।

उस समय वहां के निवासी बड़े असभ्य और नरमांस-भक्षक थे। यद्यपि इस समय वे कुछ कुछ सभ्य हो चले हैं और उनमें से बहुत ईसाई हो गये हैं, पर उनकी उस समय की नरमांस-भक्षण आदि घृणित बातों का हाल पढ़ कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं, और मनुष्य की अधमता पर आश्चर्य्य होता है।

उस समय पादरी लोग मारे भय के समुद्र के तट ही पर अपना खेमा लगाते थे; भीतर बहुत दूर तक नहीं जाते थे। इन्हीं का लिखा हुआ एक दृश्य देखिये। सब लोग खेमे के अन्दर बैठे हुए हैं। सामने एक बीहड़ जङ्गल है। अकस्मात् जङ्गल में भयङ्कर कल कल सुनाई देने लगा। और दस पन्द्रह मिनट में दो सेनायें तीस तीस चालीस आदमियों की सम्मुख आकर आपस में घोर संग्राम करने लगीं। कोई आध घण्टे तक युद्ध रहा। पीछे एक सेना भाग निकली और उसके १०।१२ आदमी खेत रहे। विजयिनी सेना ने उन लाशों को कन्धों पर रक्खा और चलती हुई। यदि वह सेना उसी जगह की हुई तो उसी स्थान पर एक बड़ा भारी अलाव, लगभग १५ गज़ लंबा और दस गज़ चौड़ा, लगाया गया। सब लोगों ने बहुत सी लकड़ियां और फूस इत्यादि लाकर वहीं ढेर किया। अपनी स्त्रियों और बच्चों को भी उन्होंने वहीं बुलाया। पहले उन लोगों ने उन मुर्दों को खूब गाली देना आरम्भ किया। कोई कहता है "उठते अब क्यों नहीं? निकल गई सारी शेखी"। कोई कहता है बताओ कल तुमने क्या खाया था जो आज ऐसे पड़े हो"—इत्यादि इत्यादि। उन की गालियां भी ऐसी अश्लील होती हैं कि उनके स्मरण मात्र से मनुष्य का मन अपवित्र हो जाता है। छोटे छोटे बच्चे भी, जिनको अभी अच्छी प्रकार बोलना भी नहीं आता, इस गाली दान का पुण्य बटोरते हैं और अपने कोमल कोमल हाथों से लाशों पर मुष्टिप्रहार करते हैं।

पादरी लोग लिखते हैं कि जब हम लोगों ने बाइबिल में बच्चों का फ़रिश्ते कहा जाना स्मरण किया और इन छोटे छोटे बच्चों को अपने सामने ऐसा करते देखा, तब हमलोगों का हृदय मारे करुणा के विदीर्ण होने लगा; और ऐसा मालूम होने लगा कि मानों प्रलय का दिन आ पहुंचा हो। जब सब लोग खूब गाली दे चुके, तब लाशें अग्नि में भूनी गईं और सब लोग इकट्ठा होकर नोच नोच कर उन्हें खाने और नाचने लगे। उस समय हमलोगों का जो हाल था वह न तो हम कही सकते हैं और न कोई समझ ही सकता है। हमलोगों का खून सूख रहा था और सिर से पैर तक पसीना निकल रहा था।

परन्तु अब ऐसे दृश्य वहां बहुत कम देखने में आते हैं। अंगरेज़ी गवर्नमेंट की कृपा से अब वहां सभ्यता का सञ्चार हो चला है और वहां के असभ्यों के जीवन में अब इतना अधिक परिवर्तन हो गया है कि उन्हें देख कर कोई यह नहीं कह सकता कि ये कभी नरभक्षी रहे होंगे।

फीजी टापुओं में कोई अन्न नहीं उत्पन्न होता और न किसी प्रकार का फल ही होता है। वहां के निवासी खेती करना भी नहीं जानते। पर हां, अब ब्रिटिश गवर्नमेण्ट उन्हें खेती करना सिखला रही है। भेड़, बकरी, इत्यादि कोई भी चौपाये वहां नहीं थे कि जिस का मांस वहां के लोग खा सकते। कदाचित् यही कारण है कि वहां के लोग पहले नरमांस खाते थे। उनकी जीवनयात्रा मछली, केकड़े, कछुए, नरमांस और एक प्रकार के कन्द-मूल से कटती थी। परन्तु अब वहां प्रायः सब जीव योरप वालों ने पहुंचाये हैं। अब वहां बहुत तरह की चीज़ें भी उत्पन्न होने लगी हैं, और अन्य अन्य देशों से भी पहुंचाई जाने लगी हैं। योरप की लगभग सभी जातियां वहां पहुंच गई हैं; और वहां के निवासियों से भली प्रकार क्रय विक्रय होने लगा है। अङ्गरेज, फरासीसी, जर्मन, रूस, चीन और जापानी वहां पहुंचे हैं और उन्होंने अपनी अपनी दूकानें खोल रक्खी हैं। अब वे बिना किसी भय के अपना अपना व्यवसाय करते हैं।

वहां के लोगों की राजभक्ति बड़ी ही प्रशंसनीय है। उनकी धर्म्मनिष्ठा भी बड़ी प्रबल है। जब से वे लोग ईसाई हुए हैं तब से वे अपने मत में बड़े कट्टर हैं। किसी नियम का वे उल्लंघन नहीं करते। बराबर, नियत समय पर, गिर्जाघर में जाना और जो कुछ धर्म का आदेश है उसको पूर्ण रीति से प्रतिपालन करना, उन लोगों का काम है। वे शराब नहीं पीते। अब तक वे जानते ही नहीं थे कि शराब किसको कहते हैं। परन्तु अब विलायत वाले उन्हें ख़राब कर रहे हैं। मद्यपान की आदत उनमें उत्पन्न करने की वे चेष्टा कर रहे हैं कि जिसमें उनका व्यापार ख़ूब बढ़े। वे बेचारे कभी कभी इनके फन्दे में आ भी जाते हैं। सर्कार ने मना कर दिया है कि शराब देशियों के हाथ न बेंची जाय। परन्तु व्यापारी कब मानते हैं। आज कल वे सर्कार पर दबाव डाल रहे हैं कि देशियों के हाथ शराब बेचने की इजाज़त दे दी जाय।

फीजी लोग बड़े शान्तिप्रिय और राजभक्त हैं। जब से ब्रिटिश राज्य वहां स्थापित हुआ है तब से आजतक एक भी विद्रोह वहां नहीं हुआ। वे लोग चोरी, बदमाशी, दङ्गा और फ़साद का नाम भी नहीं जानते। दस वर्ष हुए कि एक आदमी को नरहत्या के अपराध में फांसी हुई थी। तब से आज तक वहां कोई फांसी नहीं चढ़ा। जेलख़ाने में भी १०-१२ से अधिक क़ैदी कभी नहीं मिलेंगे और वे भी ऐसे अपराधों के कारण जेल में भेजे गये होंगे जो ब्रिटिश न्याय के अनुसार अपराध ही नहीं हैं। फीजी लोगों ही के आचार-व्यवहारों के हिसाब से वे अपराध हैं। उदाहरण के लिये —फीजी सर्दार को अपनी प्रजा पर सर्वतोमुख अधिकार है। वह उनके जान, माल, स्त्री, पुत्र सभी का पूर्ण रूप से हर्ता, कर्ता, विधाता है। जिसे वह चाहे मारे, जिसे वह चाहे जिलावे। उसकी अपील कहीं नहीं हो सकती। जो कुछ वह हुक्म देगा वह प्रजा को अवश्य मानना पड़ेगा। सरदार वहां ईश्वर तुल्य है। प्रजा उसका बड़ाही भय करती है। सब सरदार ब्रिटिश राज्य के अधीन हैं और पहले का ऐसा यथेच्छ अत्याचार नहीं करने पाते। तो भी प्रजा उनसे पहले ही की भांति डरती है। उनके यहां यह रीति है कि जो कोई कछुआ अथवा मछली पकड़े वह पहले उसे सरदार के पास ले जाय। यदि सरदार उसे न ले तो वह उसे अपने काम में ला सकता है। कई फीजी लोगों ने इस नियम का उल्लंघन किया और कहा कि सरदार को कोई हक़ नहीं है। सरदार ने उन्हें जेल में भेज दिया। बस, ऐसे ही छोटे छोटे अपराधों के कारण क़ैद किये गये क़ैदी दस पांच मिलेंगे अधिक नहीं।

फीजी लोगों का रंग काला नहीं है, सु... लिये हुए भूरा है। मर्द वहां के बड़े पुष्ट, लम्बे चौड़े और सुन्दर होते हैं। स्त्रियां प्रायः यूरोपियन स्त्रियों की इतनी सुन्दर होती हैं। उन लोगों के शरीर भर में बाल बड़े ही विलक्षण होते हैं। विशेषता उनमें यह है कि वे बहुत ही घने होते हैं और सीधे तीन चार इंच तक खड़े रहते हैं। ये बाल उनके सिरों पर बहुत ही भले मालूम होते हैं। स्त्रियां मर्दों से छोटे बाल रखती हैं।

फीजी लोगों में एक अद्भुत रीति है कि सर्दार अथवा अपने से बड़े के सम्मुख खड़ा होना अनुचित समझा जाता है। दो चार आदमी खड़े बातें कर रहे हैं। जैसे ही उन्होंने सरदार को आते देखा, झट सब के सब बैठ गये। और बैठते भी ऐसी बुरी तरह हैं कि देखकर हँसी आती है। हमलोगों की भाँति पल्थी मार कर, या और किसी प्रकार, वे नहीं बैठते। जो जैसे पाता है वह वैसे ही ज़मीन पर गिर पड़ता है। कोई टांगें फैलाये, कोई घुटना उठाये, कोई कैसे, कोई कैसे। दो आदमी एकही प्रकार बैठे कभी न मिलेंगे। अंगरेज़ी पड़ाव में कभी कभी बड़ा तमाशा होता है। दस पांच फीजी जल्दी से आकर सम्मुख ही धम से बैठ जायँगे। जो कुछ उन्हें कहना होगा कह कर फिर

उठेंगे, और चले जायँगे। उन लोगों में किसीके पीछे से निकलना या पीछे से बातचीत करना बहुत ही बुरा समझा जाता है। ब्रिटिश गवर्नमेण्ट इन सब व्यर्थ की बातों को धीरे धीरे उठा रही है। बहुत सी तो इतने ही थोड़े दिनों में उठ भी गई हैं।

फीजी लोगों को अङ्गरेज़ी शिक्षा देने का भी विचार हो रहा है। चार या पांच फीजी लोग सिडनी में अङ्गरेज़ी शिक्षा पाने के लिये भेजे भी गये थे। वहां से पढ़ लिखकर वे वापिस भी आ गये हैं। परन्तु उनके देशवासी उनका आदर नहीं करते। उलटा उनको उन्होंने जातिच्युत कर दिया है। और जहां कहीं वे जाते हैं लोग उनको बनाते और उनकी दिल्लगी करते हैं। पर वे लोग भी जैसी कि उनसे आशा थी, वैसे नहीं निकले। मदिरा पीना, इधर उधर गिटपिट करते फिरना, कोट पतलून पहिनना—यही उन्होंने सीखा है। पादरी पण्डितों ने बाइबिल आदि अपनी धर्म पुस्तकों का फीजी भाषा में जो उलथा कर दिया है, उसेही वे पढ़ाते हैं।

अङ्गरेज़ी चाल ढाल फीजी लोगों में फैलती जाती है और वे उसको पसन्द भी करने लगे हैं। यह परिवर्तन, सन् १८७५ से आज तक, केवल तीस वर्षों में हुआ है। अङ्गरेज़ लोग पहले पहल वहां १८३५ में गये और चालीस वर्ष के घोर परिश्रम के पश्चात् वहां के सब से बड़े सर्दार को उन्होंने क्रिश्चियन कर पाया। तभी से वहां अङ्गरेज़ों का अधिकार जमा। जिस ईसाई पादरी ने इस सरदार को ईसाई कर पाया वह बड़ा साहसी था। उसके साथ जो और पादरी आये थे वे उस सरदार का भयङ्कर पैशाचिक व्यवहार देखकर इतने भयभीत हो गये कि उनको उसके सम्मुख जाने तक का साहस न हुआ। वे निराश होकर घर लौट गये। उनका कथन था कि यदि स्वयं प्रभु ईसामसीह वहां जाकर उसे धर्मोपदेश दें और अपनी करामातें दिखायें तो चाहे कुछ सफलता हो। परन्तु यह बात मनुष्य के पराक्रम से बाहर है। पर उस पादरी पण्डित ने उस नरपिशाच सरदार को अपना चेला करके ही छोड़ा।

फीजी द्वीपसमूह में आठ छोटे छोटे टापू हैं। सब पास ही पास हैं। वे केवल सौ सौ या डेढ़ डेढ़ सौ गज़ चौड़ी मानो की खाड़ियों से विभक्त हैं। जिन्होंने कभी इटली के वेनिस नगर का नक़शा देखा है वे उन के आकार का अनुभव कर सकते हैं। अगर वेनिस के ऊँचे ऊँचे महल गिराकर मैदान कर दिया जाय और उस मैदान में हरी हरी घास उग आवे, तो वेनिस दूसरा फीजी द्वीपसमूह हो जाय।

जिस सरदार का निर्देश ऊपर हुआ वह इसी द्वीपसमूह के वाऊ नामक छोटे से टापू में रहता था। उसके कुटुम्ब के सिवा और कोई इस टापू में नहीं रहता था। यहां से वह छोटी छोटी नावों पर सवार होकर पास के टापुओं में जाया करता था और वहां से दसबीस आदमियों को पकड़ लाया करता था। उनको अपने घर पर रस्सियों से जकड़ कर वह डाल देता था और एक एक दो दो रोज़ खा जाया करता था। जब सब चुक जाते थे तब वह और पकड़ लाता था। वह इतना बलिष्ठ था कि उसे कोई नहीं जीत सकता था। उसका नाम सुनते ही फीजियों की जान निकलती थी। बहुत लोग, जिन्होंने उसे देखा था, अभी तक जीते हैं। उनका कथन है कि यदि ऐसा दीर्घकाय और शूरवीर कोई सभ्य यूरोपियन होता तो वह बहुत बड़ा आदमी होता।

जिस पादरी का ज़िक्र अभी हो चुका है वह कई बार अपना डेरा छोड़ कर इस सरदार के टापू में गया। उसे उसने बहुत उपदेश किया। परन्तु भला वह कब मानने वाला था। एक बार वह रुष्ट होकर अपनी भीमसेनी गदा उठाकर पादरी पण्डित को मारने चला। पादरी ने सोचा कि अब प्राण गये और भून कर खाडाले गये। परन्तु किसी तरह आप बच गये।

कुछ वर्ष बाद वह सरदार मर गया। तब पादरी साहब उसके टापू में फिर गये तो आप क्या देखते हैं कि एक बड़ा मोटा रस्सा पाँच सुकुमार बालाओं की गर्दन में बँधा हुआ है। और पांच छः बड़े बलिष्ठ मनुष्य एक ओर से और इतने ही दूसरी ओर से उसे खींच रहे हैं। मानों रस्सा खिंचाई (tug of war) हो रही है और ५ युवतियों के मृदुल प्राणों की बाज़ी लगी है। बेचारी रस्से में लटकी हुई स्त्रियां फट फटा रही हैं। पादरी साहब झट नाव से उतरे और फीजी भाषा में चिल्लाकर कहने लगे "अरे भाई, यह क्या पैशाचिक कर्म कर रहे हो, परमात्मा के कोप से डरो, नहीं तो तुम्हारा सबका सत्यानाश हो जायगा"।

वे लोग इन्हें पहचान गये थे। इन्हें वे एक पागल पशु समझते थे। उन्होंने उत्तर दिया कि "हम लोगों के सरदार कल रात को विदेश चले गये, अर्थात् मर गये। जाते समय वे हुक्म देगये हैं कि पांच स्त्रियों को हमारी सेवा के निमित्त हमारे पास भेज देना। अतः यह पांच स्त्रियां उनके वीर पुत्र के आज्ञानुसार उनके पिता की क़ब्र में दफ़न करदी जायँगी"। यह सुन कर पादरी साहब ने उन्हें बहुत कुछ धिक्कारा, परन्तु उनकी वहां कौन सुनता था ? वे लोग हँसते रहे और रस्सा खींचते रहे।

तब पादरी साहब सरदार के लड़के के पास उसके घरके भीतर गये और उसे अपना व्याख्यान सुनाने लगे। लड़का भी अपने बाप ही के समान पराक्रमी और बलिष्ठ था। फिर बाप के मरने का उसे दुःख था। उसे क्रोध आगया और गदा उठा कर वेग से वह इनपर झपटा। आप भागे। उसने पीछा किया। पादरी साहब नाव पर कूद पड़े। और नाव फौरन खोलदी गई। इससे आप बच गये।

इस घटना के सात वर्ष बाद उसे पादरी साहब ने किरानी बनाया।

कृपाशङ्कर निगम।

पुस्तक-परीक्षा।

हिन्दी व्याकरण*। हिन्दी में एक अच्छे व्याकरण का बड़ा अभाव है। नहीं मालूम कब इस अभाव की पूर्ति होगी। व्याकरण हैं कई; परन्तु सब में कोई न कोई त्रुटि अवश्य है। बड़े आनन्द की बात है कि जिस व्याकरण के विषय में हम यह लेख लिख रहे हैं उसमें औरों की अपेक्षा विशेषता है। उसमें कितनी ही बातें ऐसी हैं जो और और व्याकरणों में नहीं पाई जातीं। उसके लिखने का क्रम भी अच्छा है; और उसमें जो सूत्र या नियम हैं उनकी भाषा भी अपेक्षित अर्थ को बहुत अच्छी तरह से व्यक्त करती है। यह व्याकरण बहुत उपयोगी है; इससे हिन्दी को लाभ पहुंचने की पूरी सम्भावना है। जब तक कोई व्याकरण इससे अच्छा न निकले, तब तक हिन्दी जाननेवालों को इसका संग्रह और अवलोकन अवश्य करना चाहिए।

इस व्याकरण में छोटे साँचे के १९२ पृष्ठ हैं। इसकी छपाई भी अच्छी है और इसका काग़ज़ भी अच्छा है। मूल्य इसका ॥) है। इसका एक संक्षिप्त संस्करण भी प्रकाशित हुआ है। वह नीचे दरजे के विद्यार्थियों के लिए विशेष उपयोगी है। दोनों संस्करण विहारबन्धु प्रेस, बांकीपुर, में छपे हैं।

इसके कर्ता पण्डित केशवराम भट्ट हैं। आप विहार के एक स्कूल में प्रधान पण्डित हैं; वहां की टेक्स्ट बुक कमेटी के सभासद भी हैं। आप विहारबन्धु के सम्पादक भी रह चुके हैं और कई पुस्तकें भी आपने लिखी हैं। व्याकरण का लिखना ऐसेही अनुभवशील लेखक और शिक्षक का काम है। आपने बहुत अच्छा किया जो यह व्याकरण लिखा। एतदर्थ हम आपको धन्यवाद देते हैं। इसके लिखने में आपने बहुत परिश्रम किया है।

---

* यह लेख हमने २६ एप्रिल, १९०४, को समाप्त किया था। पर जगह की कमी के कारण अब तक यह पड़ा रहा। खेद है, इस दरमियान में, हिन्दी व्याकरण के कर्त्ता पण्डित केशवराम भट्ट का शरीरपात हो गया। सं० स०।

इसके लिए सामग्री इकट्ठा करने में भी आपको बहुत श्रम हुआ है। अतएव आप सर्वथा प्रशंसा के पात्र हैं।

यह व्याकरण पहले विहारबन्धु "में क्रमशः प्रकाशित किया गया था। यह इस लिए किया गया था कि समालोचकों को इसकी समालोचना का अवसर मिले; और यदि इसमें कोई त्रुटियां हों तो वे दूर कर दी जायँ। जो जो समालोचनाएं हुईं उनका यथोचित विचार करके पण्डित केशवराम जी ने इस व्याकरण में यथेष्ट परिवर्तन कर दिया है। यह बात आपने भूमिका में लिखी है; और फिर भी समालोचना करने के लिए समालोचकों से प्रार्थना की है। हमारे पास आपका एक छपा हुआ पत्र आया है; उसमें भी यही बात है। इससे सूचित होता है कि भट्ट जी सच्ची समालोचना की योग्यता समझते हैं और उससे लाभ उठाने के लिए भी वे प्रस्तुत हैं। यह बात बहुत प्रशंसनीय है।

व्याकरण सम्बन्धी नियमों में हम पण्डित केशवराम जी से अनेक स्थलों में सहमत नहीं हैं। परन्तु उन सब स्थलों का उल्लेख करने और अपने मत की पुष्टि में प्रमाण देने के लिए हमारे पास स्थल भी नहीं है और हमको अवकाश भी नहीं है। इस बात का हम को खेद है। परन्तु हम पण्डित जी की हिन्दी भूमिका की भाषा के सम्बन्ध में दो चार बातें कहना चाहते हैं। हमारा मत है कि वैयाकरण को भाषा निर्दोष और सर्वसम्मत होना चाहिए। फिर व्याकरण की भूमिका की भाषा का दोषरहित होना तो और भी अधिक आवश्यक है। ऐसा न होने से व्याकरण पर लोगों की श्रद्धा के कम हो जाने का डर रहता है। इसलिए, आशा है, पण्डित केशवराम जी हमारे चापल्य को क्षमा करेंगे। हम जो कुछ लिखना चाहते हैं, शुद्ध भाव से लिखना चाहते हैं। और, यदि, हमको यह न विदित हो जाता कि आप समालोचना से बिगड़नेवाले और विचारणीय बातों को भी सर्वथा शुद्ध सिद्ध करने का यत्न करने वाले नहीं हैं तो हम इस विषय में कुछ कहते भी नहीं।

हिन्दी व्याकरण की भूमिका के आरम्भ में यह लिखा गया है—

"पेचीले पेचीले मिश्रित और संयुक्त वाक्यों के गठने में भूल का हो जाना बहुत सम्भव है।"

इसमें मिश्रित और संयुक्त शब्द अंगरेज़ी Complex और Compound शब्दों के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। परन्तु अंगरेज़ी के इन दो शब्दों के अर्थ में अन्तर है; उस अन्तर को ध्यान में रख कर ही उनका प्रयोग व्याकरण में होता है। यह बात मिश्रित और संयुक्त शब्दों में नहीं पाई जाती। वे दोनों शब्द समानार्थक हैं। अतएव मिश्रित की जगह कोई दूसरा शब्द लिखना उचित था।

"दिल्ली से जों जों पश्चिम या पूरब बढ़ते जाइये तों तों इसका भेद घटता जाता है।" पृष्ठ २, पंक्ति २-३

जहां तक हम जानते हैं दिल्ली आगरे की तरफ़, बोल चाल की भाषा में, जों जों और तों तों नहीं बोला जाता। उनकी जगह ज्यों ज्यों और त्यों त्यों बोला जाता है। आपका नियम १४ (पृष्ठ ५१) हमने देख लिया है।

"इस भाषा का साधारण नाम तो हिन्दी है, पर हिन्दुस्तानी भी कहते हैं।" पृष्ठ २, पंक्ति १०-११

यह वाक्य यदि इस तरह लिखा जाता तो और भी अच्छा होता—

इस भाषा का साधारण नाम तो हिन्दी है; पर "इसे कोई कोई" हिन्दुस्तानी भी कहते हैं।

ऊपर जो शब्द उलटे विराम चिन्हों के बीच में रक्खे गये हैं उनके बिना यह वाक्य पूरा नहीं होता।

"और ये हिन्दी बोलनेवाले भारतवासी हिन्दुस्तान से बड़े उस लम्बे चौड़े खण्ड के रहनेवाले हैं जिसके पच्छिम सिन्धु नदी, उत्तर हिमालय के पहाड़ी प्रदेश, पूरब बंगाला और दक्खिन नर्मदा नदी है।" पृष्ठ २, पंक्ति १३-१६

दक्खिन में नर्मदा नदी की सीमा लिखना ठीक नहीं। उसके दक्षिण भी हुशंगाबाद, खांडवा, नरसिंहपुर और बेतूल इत्यादि कई ज़िले मध्य-प्रदेश में ऐसे हैं जहां की भाषा हिन्दी है, मराठी नहीं।

'साधु भाषा जो कचहरी दरबार सभा आदि साधारण अवसर पर लिखी पढ़ी और बोली जाती है।" पृष्ठ २-३, पंक्ति २०, १-२

सभा इत्यादि के लिए अवसर शब्द का प्रयोग ठीक नहीं जान पड़ता। "साधारण अवसर पर" की जगह "में" लिखना अधिक उपयुक्त होगा; या, अवसर को किसी दूसरे शब्द से बदल देना अच्छा होगा।

"एक बात भी प्रायः सभी देशों में देखते हैं।" पृष्ठ ३, पंक्ति ४

यहां देखते हैं के पहले कर्ता 'हम' की अपेक्षा है। ऐसे स्थलों पर लोग कर्ता को बहुधा छोड़ भी देते हैं। परन्तु, यहां पर, हमारी समझ में, उसका होना आवश्यक है।

"यहां देशी राजाओं के राज में दिल्ली ही सदा राजधानी रही।" पृष्ठ ३, पंक्ति ८-९

फिर थोड़ी दूर पर है—

"दिल्ली वाले....... क्रियाओं के रूप......का बर्ताव जैसा करते हैं।"

पहले अवतरण में "राजा" शब्द पुल्लिङ्ग है और दूसरे में क्रिया शब्द स्त्रीलिङ्ग। फिर, इन भिन्न लिङ्ग वाले शब्दों की षष्ठी विभक्ति में 'राजाओं' और 'क्रियाओं' रूप किस नियम से हुए? आपके नियम ५७ (पृष्ठ ७८) और ८८ (पृष्ठ १०३) से इसका समाधान नहीं होता।

"उसका अनुसरण सब किसीको करना चाहिये।" पृष्ठ ३, पंक्ति १५-१६

आप 'चाहिये' की जगह 'चाहिए' क्यों नहीं लिखते? सब कहीं आपने 'चाहिये' ही लिखा है। आपके नियम १५ (पृष्ठ ४७) के अनुसार 'इये' प्रत्यय की जगह 'इए' क्यों न हो? स्वर प्रधान हैं, व्यञ्जन अप्रधान। जहां तक स्वरों से काम निकले तहां तक व्यञ्जनों के प्रयोग की क्या आवश्यकता? अकेले 'ए' का जैसा उच्चारण होता है वैसा ही य् + ए = ये का होता है। फिर यह द्राविड़ी प्राणायाम क्यों? यदि कोई यह कहे कि 'इये' प्रत्यय का रूप 'इए' करने से सन्धि हो जायगी तो ठीक नहीं। हिन्दी में इस प्रकार की सन्धि को नित्य मानने से बड़ा गड़बड़ होगा। 'आइन' इत्यादि शब्द फिर लिखे ही न जा सकेंगे। हां 'आयीन' चाहै कोई भले ही लिखै।

"परन्तु जब कोई किसी विषय को लिखने बैठता है तो उसके सामने बहुत से ऐसे ऐसे भाव भी आ खड़े होते हैं।" पृष्ठ ४, पंक्ति ४-६

इस वाक्य में 'तो' की जगह 'तब' होता तो ठीक होता। 'जब' के साथ 'तब' का ही प्रयोग उचित जान पड़ता है।

"इसी भेद के कारण इसी हिन्दी का एक नाम और उर्दू भी हो गया है।" पृष्ठ ४, पंक्ति ८-९

यहां पर 'और' शब्द यदि 'नाम' के पहले लिखा जाता तो वाक्य का शैथिल्य जाता रहता। शब्दों को यथास्थान रखने ही से वाक्य में शोभा आती है। ठीक अर्थ भी तभी निकलता है।

"हिन्दी उर्दू को अलग अलग दो भाषा समझना बड़ी भूल है।" पृष्ठ ४, पंक्ति १२-१३

इस वाक्य में 'भाषा' शब्द का बहु वचन क्यों न हो? 'दो' के साथ तो 'भाषायें' लिखना ही उचित जान पड़ता है।

"फिर मा का अक्षय भण्डार रहते इसे किसी दूसरे की ऋणी होने देना अच्छा नहीं।" पृष्ठ ४, पंक्ति १५-१७

'अक्षय' यहां पर 'भण्डार' का विशेषण है। अतएव वह 'अक्षय्य' क्यों न हो?

"विद्यमान विषयों में दिल्ली के कवियों की उक्तियां लिखी गई हैं।" पृष्ठ ४, पंक्ति १८-१९

"मतमतान्तरों के मुठभेड़ से नई नई रीतें प्रचार होती जाती हैं।" पृष्ठ ८, पंक्ति १९-२०

'उक्ति' और 'रीति' दोनों इकारान्त संस्कृत शब्द हैं। फिर पहले का बहुवचन 'उक्तियां' और दूसरे का 'रीतें' क्यों होना चाहिए? 'रीतें' की जगह 'रीतियां' क्यों नहीं? आपका नियम २३ (ख) (पृष्ठ २८) हमने पढ़ लिया है। आप रीति, नीति इत्यादि शब्दों को रीत, नीत या रीती, नीती क्यों लिखना चाहते हैं? ऐसा करने से उक्ति को कोई 'उक्त' भी लिख सकैगा; परन्तु 'उक्त' और 'उक्ति' के भेद को तो आप अच्छी तरह जानते ही होंगे। आपने जो नियम किया कि—"ह्रस्व स्वरान्त शब्द शुद्ध संस्कृत के होते हैं। हिन्दी में आने पर भी (वे) ह्रस्व स्वरान्त ही लिखे जाते हैं" वह ठीक जान पड़ता है।

ऊपर जो दूसरा अवतरण दिया गया उसमें 'रीतें प्रचार होती जाती हैं' की जगह यदि 'रीतियां प्रचरित (प्रचलित) होती जाती हैं' या 'रीतियों का प्रचार होता जाता है' होता तो वाक्य में अधिक शुद्धता आ जाती।

"दिल्ली का हिन्दू भला गद्य लेखक ही प्रसिद्ध और प्रमाणिक जो कोई होता तो उसीके लेख से दृष्टान्त उद्धृत किये होते।" पृष्ठ ५, पंक्ति ४-६

यह वाक्य बहुत ही अस्तव्यस्त जान पड़ता है। यदि इसे हम लिखते तो

'दिल्ली के हिन्दुओं में से यदि कोई गद्य लेखक ही प्रसिद्ध और प्रामाणिक होता तो हम उसी के लेख से दृष्टान्त उद्धृत करते'

इस प्रकार लिखते।

"अतएव क्षमा के पात्र हैं।" पृष्ठ ५, पंक्ति ६-७

क्षमा के पात्र हैं, कौन? यहां पर "हम" रह गया है।

"हिन्दी-भाषा बहुत सी लिपियों में लिखी जाती है। महाजन और व्यापारी महाजनी लिपि में और कायस्थ कैथी में लिखते हैं।" पृष्ठ ५, पंक्ति ८-१०

यहां पर 'महाजनी' शब्द के पहले एक 'उसे' या 'उसको' दरकार है।

'अतएव ये शास्त्री और वैज्ञानिक विषयों के गूढ़ और गम्भीर भावों का.........बोझ नहीं संभाल सकतीं" । पृष्ठ ५, पंक्ति १२-१६

यहां पर 'शास्त्री' की जगह 'शास्त्रीय' क्यों नहीं? यदि 'शास्त्री' ही लिखना था तो 'वैज्ञानिक' की जगह विज्ञानी' क्यों नहीं? नियम ७, पृष्ठ ५०, में जो आपने सम्बन्धी अर्थ में 'इय' प्रत्यय को लिखकर 'समुद्रिय', 'क्षत्रिय' और 'इन्द्रिय' शब्दों को उदाहरण-वत् दिया है उन शब्दों पर फिर विचार कर लीजिए। वहीं पर दसवें नियम में आपने ईय' प्रत्यय को गुण-अर्थ में लगाया है; और 'स्वर्गीय', 'भारतवर्षीय' और 'युरोपीय' शब्दों का उदाहरण दिया है। हमारी समझ में यह प्रत्यय गुण-अर्थमें नहीं, किन्तु सम्बन्ध अर्थ में प्रयुक्त होता है। 'स्वर्गीय' का अर्थ है स्वर्ग का, 'भारतवर्षीय' का 'भारतवर्ष का' और 'योरोपीय' का 'योरप का'। यही 'ईय' प्रत्यय लगाने से 'शास्त्र' से शास्त्रीय होता है; और 'शास्त्री' को जगह उसका ही होना उचित था। तद्धित प्रत्यय 'इय' की हम कोई आवश्यकता नहीं देखते। 'क्षत्रिय' और 'इन्द्रिय' शब्दों में उसकी तादृश अपेक्षा नहीं है।

"उसे....... बिलग्रामी ने ... तमद्दुन-इ-अरब नाम प्रसिद्ध पुस्तक की भूमिका में ...... दिखला दिया है।" पृष्ठ ५-६, पंक्ति २०, १-३

यहां पर 'नाम' की जगह 'नामक', या 'नामी' या 'नामवाली' लिखना अधिक उचित था।

"इसी लिये इस व्याकरण में इनहीं से काम लिया है।" पृष्ठ ६, पंक्ति ७-८

इस वाक्य में 'इसी लिये' क्यों? 'इसी लिए' क्यों नहीं? जब स्वर से काम न चले तब व्यञ्जन

का प्रयोग कीजिए। यहां पर 'लिये', 'लिया' का बहुवचन नहीं है; किन्तु 'इसी लिये' अव्यय का उत्तराङ्ग है; अतएव हम 'इसी लिये' की जगह 'इसी लिए' लिखना ठीक समझते हैं। यदि 'लिया' का बहुवचन 'लिये' लिखा जाय ते। वह ठीक कहा जा सकता है। आपने तो इस नियम के। भी भङ्ग किया है। 'नया' शब्द कभी 'नआ' नहीं लिखा जाता; परन्तु 'नया' का स्त्रीलिङ्ग आपने नई लिखा है; 'नयी' नहीं। और 'नई' लिखना कुछ अनुचित भी नहीं। यदि स्वर से काम निकल जाय तो व्यञ्जन के प्रयोग की तादृश आवश्यकता नहीं।

पूर्वोक्त अवतरण में 'इनहीसे' की जगह 'इन्हीसे' होना चाहिए। दिल्ली आगरे के लेखक 'इनही से' का महाविरा नहीं काम में लाते।

ऊपर के अवतरण में एक और त्रुटि है। 'काम लिया है' के पहले याते। 'हमने' होना चाहिए, या 'काम लिया है' की जगह 'काम लिया गया है' लिखना चाहिए।

"पाणिनि के सदृश परिभाषाओं से भी बचने का बहुत उद्योग किया है।" पृष्ठ ७, पंक्ति ४-५

'उद्योग किया है'—किसने? 'हमने' रह गया जान पड़ता है।

"और अब भी हाथ जोड़ के सब से प्रार्थना करते हैं कि जिन महाशय के। जहां जहां जो कुछ त्रुटि देख पड़े, कृपा करके हमें जता दें।"

इस वाक्य में 'प्रार्थना करते हैं' का कर्ता छूट गया है। वाक्य के उत्तर भाग में एक सर्वनाम भी अपेक्षित है।

"संस्कृत व्याकरणों में महर्षि पाणिनि कृ[त] अष्टाध्यायी सर्वोत्कृष्ट माना जाता है।" पृष्ठ ७, पंक्ति १६,१७

"इतने पर भी पाणिनि के अष्टाध्यायी में ब[हु]तेरी बातें ऐसी रह ही गईं।" पृष्ठ ८, पंक्ति [...]

इन वाक्यों में 'अष्टाध्यायी' पुल्लिङ्ग क्यों? कि[स] नियम से?

"उस समय में भी जब एक ही बार के उद्यो[ग] में ...... व्याकरण न बन सका तो ...... ऐसी अवनत अवस्था में कब संभव है।" पृष्ठ [...] पंक्ति ८-११

'तो' की जगह 'तब' क्यों नहीं? 'जब' के स[ाथ] तो 'तब' ही आना चाहिए।

"पाणिनिय व्याकरण भी कभी ऐसा पत्थर [की] लकीर न होता।" पृष्ठ ९, पंक्ति ७-८

'पाणिनिय' की जगह 'पाणिनीय' क्यों नहीं? जिस नियम से यह शब्द बनाया गया है उस[का] विचार ऊपर किया जा चुका है। 'पाणिनिय' [की] तरह के और भी दो एक प्रयोग इस भूमिका में हैं।

आशा है पण्डित केशवराम जी इन सूचनाओं का विचार करेंगे। इनमें यदि कोई सूचना उनको उपादेय समझ पड़े तो उसके अनुसार, व्याकरण के दूसरे संस्करण में, वे परिवर्तन कर दें; अन्यथा उसे त्याज्य समझें। व्याकरण-सम्बन्धी छोटी मोटी त्रुटियां यदि औरों के लेख में देख पड़ें तो किसी प्रकार क्षम्य भी मानी जा सकती हैं; परन्तु वैयाकरणों के लेख में, और विशेषतः व्याकरण की भूमिका में, उनका न होना ही अच्छा होता है।

भाग ६] अगस्त, १६०५ [संख्या ८

विविध विषय।

जान पड़ता है कभी वह दिन भी आवैगा जब बड़े बड़े दफ़्तरों से बाबू लोग बिलकुल ही निकाल बाहर किये जांयगे। जहां ५० हैं वहां शायद ५ रह जांयगे। तो काम कौन करेगा? काम करैंगी कलैं। ज़िन्दा आदमियों की जगह मुर्दा ईस्पात को मिलैगी। पर ईस्पात को मुर्दा क्यों कहना चाहिए? अध्यापक वसु ने उसे भी ज़िन्दा सिद्ध कर दिखाया है। दफ़्तरों में काम देनेवाली और कलों के सिवा अब एक मीमिओग्राफ़ नाम की कल निकली है। वह सरकुलरों और चिट्ठियों की हज़ारों कापियां थोड़े ही समय में छाप डालती है; उनको लपेट कर लिफ़ाफ़ों के भीतर रख देती है; लिफ़ाफ़ों पर पता लिख देती है; और फिर उन पर मोहर भी कर देती है। अमेरिकावालों ने एक और विलक्षण कल निकाली है। बड़े बड़े अकाउन्टेण्ट उसके सामने कोई चीज़ नहीं। रेल और जहाज़ इत्यादि के किराये के हिसाब की वह जांच करती है; बड़ी बड़ी दूकानों के ख़रीद फ़रोख़्त का हिसाब देखती है; जिस मद की जो रक़म होती है उसे उसी मद में जोड़ती है; हाथों लम्बी रक़मों को जोड़ने का काम बात कहते कर डालती है। फिर जो कुछ वह करती है सही करती है। परीक्षा से मालूम हुआ है कि एक कल कम से कम पांच आदमियों का काम करती है।

***

पाठकों ने फ़ोनोग्राफ़ नामक गाने और बात करने वाली कल का नाम सुना होगा। उसके आविष्कर्त्ता अमेरिका के एडिसन साहब हैं। आविष्क्रिया शक्ति में आप आपही हैं। अब एक वैज्ञानिक ने आपके फ़ोनोग्राफ़ को टेलीफ़ोन में जोड़ दिया है। जब वह अपने दफ़्तर से बाहर जाता है तब फ़ोनोग्राफ़ को टेलिफ़ोन में जोड़ जाता है। यदि उसकी गैरहाज़री में कोई कुछ टेलिफ़ोन से कहता है तो फ़ोनोग्राफ़ जवाब देता है और जो ख़बर होती है उसे वह रखलेता है। साहब के लौट आने पर कभी इस तरह की दो दो चार

चार ख़बरें उन्हें मिलती हैं। साहब की गैरहाज़री में यदि कोई उन्हें पुकारता है तो फ़ोनोग्राफ़ कहता है—"साहब बाहर गये हैं। मैं फ़ोनोग्राफ़ हूं। आपको जो कुछ कहना हो कहिए। साहब के लौट आने पर आपकी ख़बर मैं उन्हें सुना दूंगा"।

* *
*

अमृतसर में एक तालाब है। उसीमें सिक्खों का प्रसिद्ध मन्दिर है। उसे दरबार साहब कहते हैं। उसका दूसरा नाम हरिमन्दिर भी है। अब तक वहां हिन्दुओं के जाने की मनाई न थी। पर कुछ दिन से सिक्खों ने वहां उनका जाना बन्द कर दिया है। तालाब के एक किनारे हरि की पैड़ी
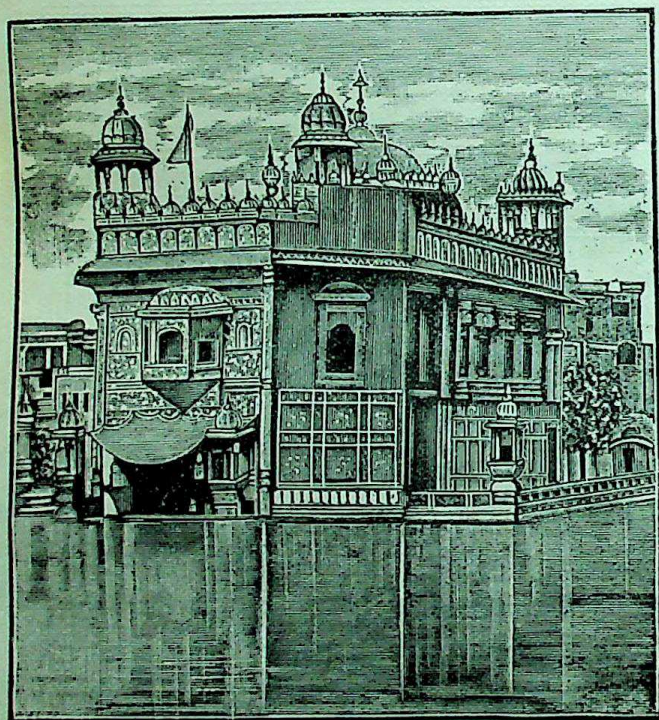
नामक कुछ सीढ़ियां हैं। वहां हिन्दू लोग बैठ कर स्नान-पूजन करते थे। पर सिक्ख अब उन्हें वहां नहीं जाने देते। हिन्दुओं की मूर्तियां भी, सुनते हैं, उन्होंने वहां से उठवा दी हैं। सिक्ख लोग हिन्दुओं ही के अन्तर्भूत समझे जाते हैं। पर वे अपने को अब अलग करना चाहते हैं। धर्म्मान्धता ने इस देश का अत्यधिक नाश किया है। पर इतने से भी लोगों की आंखें नहीं खुलीं। अभी उन्हें और कुछ अधिक देखने की लालसा है।

* *
*

अमेरिका में एक पौधा होता है जो चूहों को पकड़ लेता है और उन्हें खा जाता है। पेनसलवानिया के विश्वविद्यालय के बाग़ में ऐसे बहुत से पौधे लगाये गये हैं। उनको देख कर लोगों को आश्चर्य होता है। इन पौधों की पत्तियां के छोटे छोटे लोटे के आकार के होते हैं, उनका मुंह कम चौड़ा होता है, उनमें लम्बे लम्बे दो कांटे होते हैं। इस लोटे के आकार की चीज़ में एक प्रकार का रस भरा रहता है। वह दूर से झलकता है। देखने में वह हानिकारक नहीं जान पड़ता। पर उसमें बेहोशी पैदा करने का गुण है। जंगली चूहे इत्यादि जीव प्यासे होने पर उस रस को पीने दौड़ते हैं। उसे पीतेही वे बेहोश हो जाते हैं और वहीं रह जाते हैं। इतने में वे दोनों कांटेदार चीज़ें उनको मज़बूती से पकड़ लेती हैं और पत्ती का मुँह बन्द हो जाता है। इस तरह वह जीव क़ैद होकर वहीं मर जाता है और धीरे धीरे पौधा उसे हज़म कर जाता है। जंगल में यह पौधा बहुत अधिक खाता है। पर इसके जितने भाई बन्द पेनसलवानिया के बाग़ में क़ैद हैं, उनकी ख़ुराक कम होगई है। उनको अग्निमान्द्य सा हो रहा है। बाग़बान को चाहिये कि हिन्दुस्तान के किसी विज्ञापनबाज़ वैद्य से थोड़ा सा "बड़वानल चूर्ण" मंगाले। उसके सेवन से वह पौधा चूहे नहीं हाथी हज़म कर जायगा।

* *
*

न्यूजर्सी प्रान्त में ट्रेण्टन नामक एक गांव है। उसमें ए० ई० हर्पिन नामक एक आदमी रहता है। वह सोता ही नहीं। दस वर्ष से उसे एक क्षण भर के लिए भी नींद नहीं आई। वह बिस्तरे पर लेटा रहता है और मामूली आदमियों की तरह आराम करता है। पर उसे नींद नहीं आती। उसकी इस दशा को देख कर डाक्टर लोगों को

आश्चर्य होता है। नींद न आने के कारण उसे कोई तकलीफ़ नहीं होती। वह खूब मोटा ताज़ा और नीरोग है। ईश्वर की लीला!

* * *

प्रसिद्ध मूर्तिकार गणपति काशिनाथ म्हातरे का जीवनचरित सरस्वती के पाठकों ने पढ़ा ही होगा। इस समय आप एक आश्चर्यजनक यंत्र तैयार करने के उद्योग में हैं। वे चाहते हैं कि मिट्टी की एक मूर्ती बना कर उसका लगाव एक विलक्षण यंत्र से करदें। फिर उस यंत्र का संयोग एक पत्थर के टुकड़े से करदें। इसके बाद वे उस यंत्र को घुमा और वह दो तीन घंटे में उस पत्थर के टुकड़े की एक मनोहर मूर्ति मिट्टी के पुतले के नमूने को बना दे। ईश्वर इस उद्योग में म्हातरे महाशय को सफलता दे!

* * *

फ़िनलेण्ड में हेलसिंगफोर्स नामक एक गांव है। वहां रोज़ा वेडस्टड नाम की एक बे-व्याही स्त्री

रहती है। इसकी उमर २४ वर्ष की है। वह सात फ़ुट दो इंच लम्बी है और अभी बढ़ती ही जाती है। इस स्त्री के माता, पिता और भाई बहिनें सब मामूली क़द के हैं। छठे वर्ष तक सामान्य उँचाई से अधिक होनेके इसमें भी कोई लक्षण नहीं पाये जाते थे। परन्तु सातवां वर्ष लगते ही इसने बढ़ने में दिन दूनी रात चौगुनी तरक़्क़ी की। यहां तक कि चौदहवें वर्ष में यह पांच फ़ुट सात इंच की आश्चर्यजनक उँचाई को जा पहुंची। तब से इसका आकाश की ओर चढ़ना कुछ कम हो गया है, क्योंकि दस वर्ष में यह एक फ़ुट सात ही इंच और बढ़ पाई है। वृद्धि की विशेषता केवल इसके नीचे के भाग में है। इसकी टांगें असाधारण लम्बी हैं। भुजा और बाक़ी का शरीर टांगों के मुक़ाबले में कुछ ही विस्तीर्ण है। ज़रा इसकी तसवीर देखिए। इसके दोनों तरफ़ कई स्त्री और पुरुष खड़े हैं। पर वे सब इसके भुजाओं की छाया के नीचे हैं। वे इसकी छाती तक भी नहीं पहुंचे। यह स्त्री नहीं, दानवी है। हम सोचते हैं, भला इसका विवाह किस पुरुष के साथ होगा? यह अभी कुमारी है।

महाकवि माघ।

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयोगुणाः॥

—कस्यचित् कवेः।

भारतवर्ष में प्रसिद्ध उच्चश्रेणी के महाकाव्यों में "शिशुपालवध" नामक अनुपम काव्य के कर्त्ता माघ कवि को कौन नहीं जानता है? संस्कृत के विद्वानमात्र तो माघ से परिचित ही हैं; उनके सिवा जो महाशय संस्कृत से अनभिज्ञ होकर भी साहित्यरसिक हैं, उनके कर्णगोचर भी उक्त कवि का नाम अवश्य हुआ होगा।

पाठकवृन्द, आपने बहुत से महाकवियों के इतिहास दृग्गोचर किये होंगे। अवश्यही वे सब आपके मनोहारक हो हृदयस्थल में आदरणीय हुए होंगे। परन्तु हमारे इस चरितनायक के चरित्र

में जो एक विलक्षण और अलभ्य गुण विद्यमान था, वह एकबारगी अभिनव और अतुलनीय घटना है। वह इनकी कीर्तिलता का मनोमुग्धकारक और अलौकिक कुसुम-पराग-रूप है। उसके आगे अमरेन्द्र के नन्दन कानन की स्वर्गीय मन्दार-सुगन्ध तुच्छ है। आहा! ऐसे उदारचरित का चरित्र लिखने में हृदय क्या हो उत्साहित होता है? उसका स्मरण मात्र हृदय को पुलकावली-पूरित कर रहा है। अवश्य ही इस स्थानपर हम इनकी अप्रतिम काव्यशक्ति का उल्लेख करके-प्रबन्ध के स्थानान्तर में उल्लेखनीय विषय को यहां लिखकर—प्रक्रम भङ्ग करना नहीं चाहते हैं। किन्तु वह गुण इनको वर्णनातीत उदारता है। यह भी इनकी कविता-शक्ति के साथ कितनी परिपक्व अवस्था को पहुंची थी सो आगे के लेख से प्रकट होजायगा।

आज हम माघ जैसे अनल्प-प्रतिभाशाली उदार-चरित महाशय के विषय में कुछ लिखने के लिए उपस्थित हुए हैं। परन्तु प्राचीन काल के संस्कृत के विद्वानों की जीवनी लिखने को जब हम उद्यत होते हैं तब उस काल का यथावत् इतिहास प्राप्त न होनेसे प्रस्तुत कार्य में तादृश सफलता प्राप्त होने की निराशा से चित्त बहुत हतोत्साहित हो जाता है। किन्तु उन महापुरुषों के लोकोत्तर चरित और परम रम्य काव्य ऐसे हृदयाकर्षक हैं कि चित्त को एकबार ही इस कार्य में हठात् प्रवृत्त कर देते हैं। फलतः जो कुछ मसाला जहां कहीं से हस्तगत होता है उसी के आधार से, जैसा कुछ हो सकता है, चरित लिखकर उसे सहृदयों की सेवा में अर्पण कर संतुष्ट होना पड़ता है।

हर्ष का विषय है कि हमारे प्रस्तुत कवि ने अपने लोकमान्य "शिशुपालवध" नामक महाकाव्य के ग्रन्थान्त के ५ श्लोकों में अपने विषय में कुछ लिखने का परिश्रम उठाया है, जिससे केवल इतना ज्ञात होता है कि श्रीवर्मल नामक राजा के सुप्रभदेव नामक प्रधान मन्त्री थे। उस (सुप्रभदेव) के दत्तक नामक पुत्रोत्पन्न हुआ और उस दत्तक के पुत्र (माघ) का निर्माण किया हुआ यह "शिशु-पालवध" काव्य है। बस, इससे अधिक आगे ग्रन्थ में काव्यरचयिता ने निज विषयक देश कालादि की तो बातही दूर है, अपने नाम तक का भी उल्लेख नहीं किया है। यद्यपि इससे इतिहास-लेखकों को वा पुरातत्व-प्रेमी जनों को निस्सन्देह बहुत पश्चात्ताप होता है, तथापि इससे उनकी कैसी विराट् निरभिमानता प्रकट होती है; क्योंकि ऐसे उग्र पाण्डित्य-युक्त, अनर्गल-प्रतिभा-सम्पन्न, लोकोत्तर-काव्य-निर्माता होकर भी अपना नाम तक लिखकर ज़रा भी यश स्थिर रखने का यत्न उन्होंने नहीं किया है। इधर आधुनिक—हम लोग—ज़रा ज़रा सी टूटी फूटी पुस्तकें लिख कर उनमें कई स्थानों पर अपना नाम अङ्कित करने पर भी तुष्ट न होकर निज चित्र देने तक की धृष्टता करते हैं। परन्तु किञ्चित् मननपूर्वक आलोचना करने से साम्प्रतकाल की इस प्रथा को भी हम दूषित नहीं कह सकते हैं, क्योंकि उस समय के साथ इस समय की तुलना करना अविचार की बात है। उस काल के ग्रंथों में रचयिता का नामोल्लेख न होने पर भी वे काव्य, सौभाग्यवश, उन उन कवियों के नाम से प्रचलित हैं। परन्तु क्रमशः परिवर्त्तनात्मक काल-प्रभाव से पण्डितराजजगन्नाथ के समय में ही उनको यह लिखने की आवश्यकता जान पड़ी कि—

> "दुर्वृत्ता जारजन्मानो हरिष्यन्तीति शङ्कया।
> मदीयपद्यरत्नानां मञ्जूषैषा कृता मया"॥

जब पण्डितराज के समय में ही एतादृशी शङ्का को स्थान मिलने लगा था, तब साम्प्रत तो उस समय को भी लगभग तीन शताब्दी हो चुकीं हैं। इससे ग्रंथकर्त्ताओं के विषय में इस समय की प्रचलित प्रथा को हम एकबारही अनुचित नहीं कह सकते हैं।

खेद का विषय है कि हमारे प्रस्तुत कवि के पिता-पितामह के नाम मात्र के अतिरिक्त देश कालादि निर्णय के लिये बाहरी प्रमाणों को ढूंढ़ने

का श्रम उठाना पड़ता है। पर बाहरी प्रमाणों का भी यथावत् अवगत होना नितान्त दुर्लभ है। दुर्लभ न हो कैसे? कृतविद्य महाशय ऐसे ऐसे उत्कट विद्वानों के इतिहास के अनुसन्धान के लिये बिलकुल परिश्रम ही नहीं करते। संस्कृत और हिन्दी भाषा के हमारे विद्वानों की इतनी उपेक्षा इस विषय में सर्वथा अनुचित है। जब हम अंग्रेज़ी और अन्य भाषाओं के विद्वानों को अपनी अपनी भाषा के प्राचीन प्रसिद्ध कवियों की जीवनी के अनुसन्धान की ओर पूर्णतया दत्तचित देखते हैं, तब हमको अपनी दशा पर अत्यन्त खेद होता है। महाराष्ट्र एवं बँगला भाषा के विद्वज्जनों ने हमारे बहुत से संस्कृत के महाकवियों के विषय में बहुत कुछ गवेषणा की है। पर इस प्रान्तवाले प्रायः चुप हैं। सत्य तो यह है कि यदि इन्होंने इतना परिश्रम संस्कृत के प्राचीन विद्वानों के विषय में न उठाया होता तो किसका साहस था जो किसी के विषय में कुछ लिखने को उत्साहित होता। यद्यपि इन लोगों ने हमारे प्राचीन साहित्य की समालोचना लिखने में बड़ी स्वतंत्रता का उपयोग किया है, तथापि एतद्भिन्न विषयों में हम लोगों को इन महाशयों का उपकार अवश्य माननीय है।

यह सच है कि प्राचीन काल के निर्मित कुछ ग्रंथ ऐसे भी पाये जाते हैं जिन में थोड़ी सी ऐतिहासिक बातें भी अङ्गीभाव से मिलती हैं। परन्तु वे ग्रन्थ एक दूसरे से इतने भिन्न हैं जिससे निश्चित रूप से समयादि के सिद्धान्त-निरूपण में बड़ी कठिनता उपस्थित हो जाती है। इसका मुख्य कारण यह है कि ऐसे ग्रन्थों में प्रायः लोक-प्रचलित किम्वदन्तियों का आश्रय अधिक लिया गया है। उनका प्रधान उद्देश्य केवल लोक-प्रचलित मनोरञ्जक आख्यायिका सङ्कलित करने का था। इससे उन्होंने निश्चित सिद्धान्त निरूपण करने पर अल्प भी प्रयास नहीं किया है। यही कारण है कि एतादृश ग्रन्थों से इतिहास का यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। तथापि ऐसे ग्रन्थों को निरे असत्य और निरुपयोगी समझ कर उनका निरादर करना भी उचित नहीं। क्योंकि इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है, कि उनसे कुछ हानि न हो के थोड़ा लाभ अवश्य होता है। एक तो वे मनोरञ्जक होते हैं, सुतरां उनके पढ़ने से चित्त बहुत ही प्रमुदित होता है; द्वितीय, जिन बातों के विरूद्ध प्रमाण न मिलें उनका कदाचित् सत्य होना भी संभव हो सकता है।

हमारे प्रस्तुत कवि के विषय में भी ऐसी किम्वदन्तियों के आधार से देश-कालादि के सम्बन्ध में कुछ लेख प्राचीन ग्रन्थों में मिलते हैं। पाठकों के मनोविनोदार्थ हम उनको यहां उद्धृत करना आवश्यक समझते हैं। उनमें कितना सत्यासत्य है, इस पर विचार प्रकट किया जायगा। कहते हैं कि एक समय दुर्भिक्ष-पीड़ित होकर गुर्जर देश के वासी माघ पण्डित ने अपना गुर्जर देश छोड़ दिया। छोड़ कर उन्होंने धाराधीश श्री भोज राज के समीप एक पत्र दे कर अपनी पत्नी को भेजा। उस पत्र में यह श्लोक था—

"कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजषण्डं
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमाँश्चक्रवाकः।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः॥
—माघ, सर्ग ११, श्लो० ६४।

इसका अनुवाद—कुमुद शोभा-हीन हैं, कमल शोभा-संयुक्त हैं; उलूक प्रसन्नता को त्याग रहे हैं, चक्रवाक प्रसन्न हो रहे हैं; सूर्य उदय हो रहा है, चन्द्रमा अस्त हो रहा है। दुर्दैव के विलासों का विपाक बड़ा ही विचित्र है।

इस प्रभात-वर्णन-मय पद्य को पढ़ कर श्री भोज-राज अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने तीन लक्ष मुद्रा माघ पत्नी को देकर कहा कि हे माता! यह मैंने केवल भोजनार्थ दिया है, प्रातःकाल माघ पण्डित को प्रणाम करने में स्वयं सेवा में उपस्थित हूंगा।

तदनन्तर माघपत्नी उस द्रव्य को लेकर पति के पास आने लगी, तो मार्ग में याचक-वृन्द से

अपने प्राणपति के शारदीय-चन्द्र-सदृश धवल गुणों को श्रवण करके उन याचकों को धारेन्द्र भोजदेव का दिया हुआ अशेष द्रव्य उसने दे दिया। और माघ पण्डित के पास जाकर वह कहने लगी कि "नाथ! राजा ने मेरा बहुत सत्कार किया और द्रव्य भी बहुत दिया; परन्तु मार्ग में मैंने याचकों से आपकी लोकोत्तर गुणावली श्रवण करके उस सब द्रव्य को उनको दे दिया"। यह सुन उदार-चेता माघ ने हर्षपूर्वक कहा "प्रिये! बहुत अच्छा किया, किन्तु और याचक-समूह आते हैं; उनको क्या दिया जायगा?" तत्पश्चात् माघ को केवल वस्त्रावशेष देख कर किसी याचक ने कहा—

आश्वास्य पर्वतकुलं तपनोष्मतप्त-
मुद्दामदावविधुराणि च काननानि।
नानानदीनदशतानि च पूरयित्वा
रिक्तोसि यज्जलद सैव तवोत्तमा श्रीः॥

अर्थात्—सूर्य की ऊष्मा से तप्त हुए पर्वतों को आश्वासन देकर दावानल से जर्जरित हुए जङ्गलों को हरा भरा करके, सैकड़ों नद और नदियों को जलाप्लुत करके जो तू रिक्त (ख़ाली) हो गया है, जलद, वही तेरी शोभा सब से बढ़ कर है।

तदनन्तर माघ ने अपनी प्रिया से कहा—

अर्था न सन्ति न च मुञ्चति मां दुराशा
त्यागान्न सङ्कुचति दुर्ललितं मनो मे।
याच्ञा च लाघवकरी स्ववधे च पापं
प्राणाः स्वयं व्रजत किं नु विलम्बितेन॥

और भी—

दारिद्र्यानलसंतापः शान्तः संतोषवारिणा।
याचकाशाविघातान्तर्दाहः केनोपशाम्यति॥

इनका अनुवाद—

है पास भी धन नहीं, न मिटै दुराश।
होता न दान करते चित भी हताश॥
है याचना लघु, किये वध आत्म, पाप।
जाते न क्यों अब चले, तुम प्राण आप?
दारिद्र्य-दाव-तन-ताप हुआ घनेरा;
सन्तोष रूप जल सींच उसे निवेरा।
जाते निराश अब याचक हैं यहां से;
हा! हंत!! घोर यह ताप मिटै कहां से?

माघ ने फिर भी कहा—

न भिक्षा दुर्भिक्षे पतति दुरवस्थाः कथमृणं
लभन्ते कर्माणि द्विजपरिवृढान् कारयति कः।
अदत्त्वैव ग्रासं ग्रहपतिरसावस्तमयते
क्व यामः किं कुर्मो गृहिणि गहनो जीवनविधिः॥

अनुवाद—

न भिक्षाही पाते अहह! मिल सकता न ऋण भी
कराता है कोई न द्विजकुल से दासपन भी।
न दे अन्न ग्रासै गृहपति हुआ अस्त चहता;
करें क्या हे प्यारी! अब कठिन है जीवन महा॥

दानवीर माघ की ऐसी अत्यन्त शोचनीय अव[स्था] देख सब याचक अपने अपने स्थानों को चले ग[ये] तब महात्मा माघ अपने मुख से यह दुःखोद्[गार] निकाल कर मृत्यु को प्राप्त हुआ—

व्रजत व्रजत प्राणा अर्थिनि व्यर्थतांगते।
पश्चादपि हि गन्तव्यं क्व सार्थः पुनरीदृशः॥

अनुवाद—

जाओ तुरन्त तन से तुम प्राण जाओ,
देखो निराश सब याचक जा रहे हैं।
पीछे अवश्य तुम को तन छोड़ना है,
ऐसा सुयोग तुमको न कभी मिलेगा॥

महामनस्वी माघ के परलोक-गमनान्तर माघप[त्नी] ने यह पद्य पढ़ा—

सेवन्तेस्म गृहं यस्य दासवद्भूभुजः पुरा।
हाय भार्यासहायोऽयं मृतो वै माघपण्डितः॥

अनुवाद—

आके अनेक घर दास बने सदैव,
सेवा नरेश करते जिसकी तथैव।
हा आज छोड़ अबला निज निःसहाय,
सो माघ पण्डित गया परलोक हाय!

माघ की यह दशा सुनकर महाराज भोज [ने] आकर उसकी अन्त्यक्रिया सम्पादन की और पति[व्रता] माघपत्नी ने अपने पति के साथ सह[गमन] किया।

माघ के विषय में उपर्युक्त लेख वल्लाल पण्डित ने भोजप्रबन्ध में संगृहीत किया है। इसके अतिरिक्त विक्रमीय सम्वत् १३६१ में निर्मित "प्रबन्ध-चिन्तामणि" में जैन मेरुतुङ्गाचार्य ने भी उक्त कवि के विषय में एक लेख लिखा है! उसका अभिप्राय भी प्रायः उपर्युक्त भोजप्रबन्ध के लेख से मिलता हुआ सा ही है। केवल एक दो बातें वहां अधिक लिखी हुई हैं।

एक तो यह कि भोज राज के आग्रहपूर्वक निमन्त्रण से माघ एक बार अपने श्रीमाल नगर से आकर भोजराज की राजधानी में सत्कृत हुआ था। तदनन्तर राजा भोज भी लोकोत्तर और निःसीम समृद्धिसम्पन्न माघ-कवि का अतिथि हुआ। बेहिसाब दान देने से विपद्ग्रस्त होकर माघ ने फिर भोज के पास अपनी पत्नी को भेजा।

दूसरी बात यह है कि माघ के मरणोपरान्त राजा भोज ने श्रीमालनगर में माघ के प्रचुर धनशाली ज्ञाति बान्धवों के सामने उस ज्ञाति का नाम "भिल्लमाल" कहा*।

बस, यही दो बातें इस दूसरे प्रबन्ध में अधिक हैं। इन दोनों प्रबन्धों के अतिरिक्त विक्रमीय १३३४ सम्वत में प्रभाचन्द्र-प्रणीत और प्रद्युम्नसूरि शोधित "प्रभावक-चरित" के चतुर्दश शृङ्ग में सिद्धर्षि (जिसको प्रबन्धलेखक ने माघ कवि का पितृव्य-पुत्र कहा है) का चरित वर्णन किया गया है। उसमें भी माघ गुर्जर देशीय श्रीमाल नगर का रहनेवाला और भोजदेव का समकालीन कहा गया है। उक्त प्रबन्ध में निम्नलिखित पद्य भी मिलते हैं—

> इत्यमुद्रजितसान्त (?) स्तेनासौ* निर्ममे बुधः।
> अन्यदुर्बोधसंबद्धां प्रस्तावाष्टकसंभृताम् ॥ ९५
>
> रम्यामुपमिति † भवप्रपञ्चाख्यां महाकथाम्।
> सुबोधकवितां विद्वदुत्तमाङ्गविधूननीम् ॥ ९६

मृत्यु तथा चरित के अन्तमें यह पद्य है—

> श्रीमत्सुप्रभदेवनिर्मलकुलालङ्कारचूडामणिः
> श्रीमन्माघकवीश्वरस्य सहजः प्रज्ञापरीक्षानिधिः।
> तद्वृत्तं परिचिन्त्य कुग्रहपरिष्वङ्गं कयञ्चित्कलि
> प्रागल्भ्यादपि सङ्गतं त्यजत भो लोकद्वये शुद्धये ॥ १५६

इन उपर्युक्त तीनों (भोज-प्रबन्ध, प्रबन्ध-चिन्तामणि, और प्रभावक-चरित) प्रबन्धों में "शिशुपालवध-" काव्य-प्रणेता माघकवि को मालवदेशाधिपति श्री भोजदेव का समकालीन (सन् ११०० ईसवी के उत्तरार्द्ध में) स्पष्ट लिखा है।

किन्तु खेद है कि हमारे प्रस्तुत कवि के समय निर्णय करने में उक्त तीनों प्रबन्धों को हम विश्वसनीय नहीं मान सकते हैं। क्योंकि उपर्युक्त लेखों के विरुद्ध दृढ़ प्रमाण मिलते हैं जिनके द्वारा माघकवि का होना इस समय के बहुत पहिले सिद्ध होता है। उन प्रमाणों को उद्धृत करने के पहले हम उक्त तीनों ग्रंथों के लेख को अविश्वसनीय मानने के कारण प्रकट करना यहां पर प्रयोजनीय समझते हैं।

"भोजप्रबन्ध" के विषय में तो अधिक लिखना पिष्टपेषण है। उसके लेख प्रायः निर्मूल निर्णीत हो चुके हैं। क्योंकि उसमें संस्कृतके प्राचीन समय के प्रायः सारे प्रसिद्ध कवियों का श्री भोजदेव के समय में होना लिखा गया है। परन्तु बहुत से कवियों का उनके पहले और पीछे होना प्रमाणान्तर से भली भांति सिद्ध हो चुका है। अनुमान होता है, इसीप्रकार, तुङ्गाचार्य-रचित "प्रबन्ध-चिन्तामणि" भी जनश्रुतियों के आधार पर लिखा गया

* अर्थात् अनेक धनसम्पन्न आदमियों के रहते भी जिस नगर में ऐसे महाकवि की मृत्यु भूखे रहने से हुई, वह नगर सभ्य आदमियों से ख़ाली समझना चाहिए; वह सभ्यों के रहने योग्य नहीं, किन्तु भीलों के रहने योग्य है। इसी लिए उसका नाम भिल्लग्राम रक्खा गया। आजकल उसे शायद भिनमाला कहते हैं।—सम्पादक।

* सिद्धर्षिः। † "उपमितिभवप्रपञ्चकथा" की समाप्ति में ग्रंथ-निर्माण-समय ९६२ संवत्सर लिखा है।

है। यह बात स्वयं आगे स्पष्ट हो जायगी। इनके सिवा तीसरा ग्रंथ "प्रभावकचरित" तो लोक-प्रचलित किम्वदन्तियों के आधार से लिखा ही गयाहै। यह बात स्वयं ग्रन्थारम्भ में ही लिखी हुई है, यथा—

बहुश्रुतमुनीशेभ्यः प्राग्ग्रन्थेभ्यश्च कानिचित्।
उपश्रुत्येति वृत्तानि वर्णयिष्ये कियन्त्यपि ॥

सुतरां उपर्युक्त तीनों ग्रन्थ एकही श्रेणीके सिद्ध होते हैं। इसके सिवा ऊपर कथित "सिद्धर्षि-चरित" में जिस "उपमितिभवप्रपञ्चकथा" का उल्लेख हुआ है उसकी समाप्ति में ग्रन्थ-समाप्ति का सम्वत्सर ९६२ लिखा हुआ है। इसीके आधार पर जर्मन देशीय क्लाट साहब (Dr. F. Klatt) माघ-कवि की स्थिति ख्रिस्तीय दशम शताब्दी के आरम्भ में स्थिर करते हैं। अवश्य ही माघकवि को ईसा के नवम शतक से इस तरफ़ का कहना सर्वथा भ्रममूलक है, क्योंकि ९०० ई० के पहले "माघ" के होने में और भी अनेक पुष्ट प्रमाण उपलब्ध होते हैं।

काश्मीर देश में नवम शतक के उत्तर भाग में होने वाले श्रीमदानन्दवर्द्धनाचार्य ने अपने "ध्वन्यालोक" ग्रन्थ में निम्न लिखित पद्य "शिशुपालवध" के उद्धृत किये हैं—

त्रासाकुलः परिपतन् परितो निकेतान्-
पुंभिर्न कैश्चिदपि धन्विभिरन्वबन्धि।
तस्थौ तथापि न मृगः क्वचिदङ्गनाना-
माकर्णपूर्णनयनेषु हतेक्षणश्रीः ॥*

माघ, सर्ग ५।

रम्या इति प्राप्तवतीः पताका रागं विविक्ता इति वर्धयन्तीः।
यस्यामसेवन्त नमद्वलीकाः समं वधूभिर्वलभीर्युवानः ॥*

माघ, सर्ग

ध्वन्यालोक के कर्ता आनन्दवर्द्धनाचार्य का समय ईसवी नवम शताब्दी के अन्त में काश्मीर के महाराज अवन्तिवर्मा के राज्यकाल में प्रसिद्ध है। यह बात "राजतरङ्गिणी" से स्पष्ट होती है। इसके अतिरिक्त शिशुपालवध के दूसरे सर्ग में ११२ श्लोक यह है—

अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा ॥

इसमें जिस "न्यास" ग्रन्थ का उल्लेख कि गया है उसका प्रणेता जिनेन्द्रबुद्धिपादाचार्य पीछे का है।†

और जर्मन देशीय विद्वान् जैकोबी साहब "We therefore cannot place Mâgha l than about the middle of the six century" कह कर माघ का स्थितिकाल ईसा षष्ठशतक (६००) के मध्यभाग से पीछे हो कदापि संभव नहीं बतलाते हैं। पूर्वापर विच से जैकोबी साहब का मत ठीक जान पड़ता है क्योंकि "प्रभावकचरित" को छोड़ कर यह

---

* भावार्थ—इन्द्रप्रस्थ को जाने वाले और रैवतक पर्वत पर ठहरे हुये श्रीकृष्णचन्द्र की सेना का वर्णन है, कि सेना के जनसमूह को देखकर डर से घबराये हुये, अतएव अपने रहने के स्थान से चारों तरफ़ भागते हुये, मृग का किसी भी धनुषधारी (वीर) ने पीछा न किया, तथापि अङ्गनाओं के कानों तक खेंचे हुये विशाल कटाक्ष रूप बाणों से हतनेत्र शोभावाला वह (मृग) कहीं भी न ठहर सका। इस पद्य को ध्वनिकार ने उत्प्रेक्षा की ध्वनि के उदाहरण में उद्धृत किया है।

* शिशुपालवध में द्वारका-वर्णन के प्रकरण का यह पद्य इसका अर्थ यह है। वहां, रमणीय है इस हेतु से ध्वजाओं को करनेवाली (नायिका पक्ष में–रमणीय होने से प्रसिद्धि को होनेवाली), एकान्त होने से विलासेच्छा बढ़ानेवाली (नायि पक्ष में–स्वच्छ होने से अनुराग की बढ़ानेवाली) नीचे झुके हुए अग्रभागवाली (नायिकापक्ष में—नम्रीभूत त्रि वाली), महलों के ऊपर की अट्टालिकाओं को तरुण सेवन कर रहे हैं। यहां "रम्या इति प्राप्तवतीः पताका इत्यादिक विशेषण श्लेष से अट्टालिका और नायिका पक्ष में समान रक्खे गये हैं। यह पद्य "ध्वन्यालोक" में की ध्वनि के उदाहरण में लिखा गया है।

† न्यास का कर्ता स्वयं जिनेन्द्रबुद्धि नामक पण्डित है।—सम्पादक।

कहीं नहीं लिखा कि शुभङ्कर, माघ का पितृव्य और सिद्धर्षि का पितृव्य-पुत्र था। एतावता माघ का समय नवम शताब्दी के पहले निर्विवाद सिद्ध होता है।*

यहां तक प्रस्तुत कवि के समय-निरूपण के विषय में लिखा गया। अब अन्यान्य बातों पर विचार किया जाता है।

यह कवि गुजरात देश मे उत्पन्न हुआ था। यह उपर्युक्त तीनों प्रबन्धों के सिवा लोकप्रथा से भी जाना जाता है। और यह भी ज्ञात होता है कि यह पूर्वावस्था में पूर्ण वैभवशाली और अद्वितीय विद्वान् था। यहां पर यह प्रश्न हो सकता है कि पहले जिन प्रबन्धों की आधारभूत जनश्रुतियों को विश्वासयोग्य न मानने का उल्लेख हो चुका है, उन्हीं जनश्रुतियों के आधार पर यहां के देशादि सम्बन्ध में क्यों प्रमाण माना जाता है? ठीक है। किन्तु हम यह बात ऊपर भी लिख चुके हैं कि इस प्रकार की जनश्रुतियों को सर्वथा अविश्वनीय भी समझना युक्तियुक्त नहीं है। इन आख्यायिकाओं को सर्वांश में निर्मूल न मानने का कारण यह है कि इनके प्रायः असत्य होने पर भी इनमें सत्यता का कुछ अंश मिला रहता है। क्योंकि कोई बात जब एकबार प्रचलित हो जाती है, तब वह पितृ-पुत्र द्वारा कुछ परिवर्तन होती हुई प्रचलित रहती है। परन्तु प्रारम्भ में वह सर्वथा निर्मूल नहीं होती। ऐसीही आख्यायिकाओं के आधार पर जो कई ग्रन्थकारों ने ग्रन्थ लिखे हैं, उनमें वर्णनीय व्यक्ति के वर्णन के साथ उस जनकथा का सम्वाद भी उन्होंने जोड़ दिया है। "भोजप्रबन्ध"-कार ने तो यहां तक साहस किया है कि जितने प्राचीन कालके प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्वान् हुए हैं, उन सब को भोज के समकालीन लिखकर भोज-द्वारा उनका सम्मानित होना बतलाया है।

इससे, उन ग्रन्थों के वर्णनीय व्यक्तिगत सम्बन्ध को छोड़ कर और सब बातें ग्राह्य हो सकती हैं। ऐसी किम्वदन्तियों को बड़े बड़े ग्रन्थकार और आचार्यों ने भी अपने ग्रन्थों में स्थान दिया है। महर्षि कणाद "वैशेषिक" दर्शन के प्रणेता थे। उनके विषय में यह किम्वदन्ती प्रसिद्ध है कि उन्होंने शंकर को प्रसन्न करके उनके आज्ञानुसार यह वैशेषिक दर्शन बनाया है। इस किम्वदन्ती को उदयनाचार्य ने अपने ग्रन्थ में लिखा है।

माघ ने शिशुपालवध के अन्त में अपना वंश-वर्णन किया है और अपने प्रपितामह का नाम सुप्रभदेव बतलाया है। सुप्रभदेव एक राजा का

* लेखक महोदय ने माघ के दूसरे सर्गका जो श्लोक उद्धृत किया उसमें व्याकरण के दो ग्रन्थों का उल्लेख है—एक "काशिकावृत्ति", दूसरा "न्यास"। पहले के कर्ता वामन और जयादित्य नाम के पण्डित हैं। जयादित्य बौद्ध था। चीन देशीय परिव्राजक ईशींग ने लिखा है कि जयादित्य की मृत्यु ६६१-६६२ ई० के बीच में हुई। "न्यास" नामक ग्रन्थ काशिकावृत्ति की टीका है। उसके कर्ता जिनेन्द्रबुद्धि का उल्लेख ईशींग ने नहीं किया। इससे सूचित होता है कि उसके समय में वह पण्डित विद्यमान न था। विद्वानों का अनुमान है कि "न्यास"के कर्ता ने अष्टम शताब्दी के आरम्भ में इस ग्रन्थ को बनाया। अष्टम शताब्दी के "न्यास" का उल्लेख माघ ने अपने ग्रन्थ में किया और नवम शताब्दी के अन्त में होनेवाले आनन्दवर्धन ने माघ के शिशुपालवध के पद्य अपने ग्रन्थ में उद्धृत किये। इससे सिद्ध हुआ कि माघ का काल अष्टम शताब्दी के अन्त या नवम शताब्दी के आरम्भ का है।

माघ के विषय में और कई प्रमाण मिलते हैं। भोजराज-कृत सरस्वतीकण्ठाभरण में शिशुपालवध के नवम सर्ग का छठा श्लोक उद्धृत है। इससे भी सिद्ध है कि माघ भोज के पहले के हैं। सोमदेव ने यशस्तिलक नाम का ग्रन्थ ८८१ शकाब्द में बनाया है। इसमें भी माघ का नाम है। माघ का समय-सम्बन्धी एक और भी प्रमाण है। नृपतुङ्ग नामक राजा ने "कविराजमार्ग" नाम का एक ग्रन्थ बनाया है। इस ग्रन्थ में उसने माघ का नाम लिखा है। यह राजा ८१४ ईसवी में सिंहासन पर बैठा था। उससे सूचित होता है कि माघ उसके समकालीन थे; या कुछ ही दिन पहले परलोकगामी हो गये थे।—सम्पादक।

आश्रित था। प्रभावकचरित में भी इसका उल्लेख है। शिशुपालवध की हस्तलिखित प्रतियों में उस राजा के धर्मनाभ, धर्मनाथ, धर्मलाभ, चर्मलात, धर्मलात, धर्मदेव, वर्मलाख्य, वर्मलात, वर्मनाम, निर्मलान्त—इस प्रकार बहुत से नाम देखे जाते हैं।*

अस्तु अब हम इस विषय को यहीं छोड़ कर उक्त कवि के काव्य के विषय में कुछ निवेदन करना चाहते हैं। माघ ने शिशुपालवध के सिवा दूसरा कोई ग्रन्थ लिखा है या नहीं? यह एक प्रश्न है।

निस्सन्देह शिशुपालवध के अतिरिक्त दूसरा ग्रन्थ इस समय माघ के नाम से नहीं देखा और सुना जाता है। परन्तु विद्वद्वर वल्लभदेव ने सुभाषितावली में नीचे के दो पद्य माघ के नाम से उद्धृत किये हैं।—

शीलं शैलतटात्पततत्वभिजनः संदह्यतां वह्निना
माश्रोषं जगति श्रुतस्य विफलक्लेशस्य नामाप्यहम्॥
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशुनिपतत्वर्थोऽस्तु मे सर्वदा।
येनैकेन विना गुणास्तृणतुसप्रायाः समस्ता अमी॥*

नारि नितम्बफलके प्रतिवध्यमाना
हंसीव हेमरसना मधुरं रराम।
तन्मोचनार्थमिव नूपुरराजहंसा-
श्चक्रन्दुरार्तमुखरं चरणावलग्नाः॥†

और 'औचित्य-विचार-चर्चा" में महाकवि क्षेमेन्द्र ने भी ऊपर के पद्यों के मेल का सा ही निम्नलिखित पद्य माघ के नाम से उद्धृत किया है—

बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते;
पिपासितैः काव्यरसो न पीयते।
न विद्यया केनचिदुद्धृतं कुलं;
हिरण्यमेवार्जय निष्फलाः कलाः"॥‡

किन्तु उपर्युक्त ये तीनों पद्य माघ के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "शिशुपालवध" में उपलब्ध नहीं होते हैं। इस से अनुमान होता है कि कदाचित् कोई ग्रन्थ भी माघ ने रचा हो। और क्या आश्चर्य कि कहीं वह छिपा हुआ हो। अथवा हमारे प्राचीन ग्रन्थों की भांति वह भी यवनादि के प्रसाद से नष्ट हो गया हो।

---

* शिशुपाल वध के अन्त में है—

सर्वाधिकारी सुकृताधिकारः श्रीधर्म्मनाभस्य बभूव राज्ञः।
आसक्तदृष्टिर्विरजाः सदैव देवोऽपरः सुप्रभदेवनामा॥ १॥

तस्याभवद्दत्तक इत्युदात्तः क्षमी मृदुर्धर्म्मपरस्तनूजः।
यं वीक्ष्य वैयासमजातशत्रोर्वचो गुणग्राहि जनैः प्रतीये॥ २॥

श्रीशब्दरम्य कृतसर्गसमाप्तिलक्ष्म
लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनचारु माघः।
तस्यात्मजः सुकविकीर्त्तिदुराशयादः
काव्यं व्यधत्त शिशुपालवधाभिधानम्॥ ३॥

अर्थात् धर्म्मनाभ राजा का सुप्रभदेवनामक अधिकारी था। सुप्रभदेव का पुत्र दत्तक हुआ और दत्तक का माघ। माघ ने शिशुपाल बध बनाया। जिस राजा के आश्रय में सुप्रभदेव था, उसका ठीक ठीक पता नहीं लगता कि वह कब और कहां हुआ और उसका यथार्थ नाम क्या है। पर बहुत करके यह गुजरात में कहीं का राजा रहा होगा; और माघ भी गुजरातही के थे। यह उनके काव्य से भी सिद्ध होता है। द्वारका, और उसके पास समुद्र तथा रैवतक पर्वत का माघ ने बहुत ही मनोहर वर्णन किया है। उस वर्णन से जान पड़ता है कि माघ ने उनको प्रत्यक्ष देखा था।— सम्पादक।

* भावार्थ—शीलवान् स्वभाव पर्वत से गिरें; आभिजात्य चाहे अग्नि में भस्म होजावें; फलरहित दुःखरूप जगत की बातों का नाम भी मैं न सुनूं; शूरवीरता रूप शत्रु पर वज्रपात हो; किन्तु मुझे सर्वदा द्रव्य प्राप्त हो, जिस एक के बिना ये सब गुण तृणप्राय हैं।

† भावार्थ—कामिनी के नितम्बस्थल पर हंसिनी के समान बँधीहुई सुवर्ण की तागड़ी (कटि-भूषण) के मधुर रोदन शब्द को सुनकर उसको छुड़ाने के लिये मानों नूपुर रूप राजहंस चरणों से लगे हुये आर्त्त शब्द करते हैं।

‡ भावार्थ—भूखों की भूख व्याकरण खाने से नहीं जाती; प्यासों की प्यास काव्यरस के पीने से शांत नहीं होती; और न विद्या से किसी का कुल ही ऊंचा होता है; अतएव सुवर्ण का संग्रह करो; उसके बिना और सब कलाएँ निष्फल हैं।

शिशुपालवध में पाण्डवों के समकालीन राजा शिशुपाल का श्रीकृष्णचन्द्र के द्वारा वध वर्णित है। यह कथा महाभारत के सभापर्व से लोगई है। इसमें ३६ वें अध्याय के प्रारम्भ से ३९वें अध्याय तक "अर्घाभिहरण" पर्व है। और ४०वें अध्याय के प्रारम्भ से ४५वें अध्याय तक "शिशुपालवध" पर्व है। इन दोनों पर्वों में उल्लिखित कथा से शिशुपालवध की रचना की गई है। तथापि महाभारत की कथा की अपेक्षा इसका संविधानक कुछ और ही ढंग से रक्खा गया है। अतएव इसका कथासूत्र संक्षिप्त रूप से प्रदर्शित करना आवश्यक है। वह इस प्रकार है—देव-ऋषि नारद एकबार श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ द्वारका आये। श्रीकृष्णद्वारा उनका उचित सत्कार होने पर नारदजी ने भगवान की स्तुति-पूर्वक इन्द्र का सुयश वर्णन किया। उसमें उपोद्‌घात रूप से शिशुपाल के पूर्वजन्म, हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष और रावण-कुम्भकरण का उल्लेख किया। फिर सिंहावतार और रामावतार का स्मरण कराके शिशुपालवध के लिये नारदने प्रार्थना की। तब शार्ङ्गपाणि कृष्ण भगवान ने शिशुपालवध की प्रतिज्ञा की। इतने ही में कृष्णचन्द्र की सेवा में राजसूय यज्ञ करने के लिये उद्युक्त युधिष्ठिर का निमन्त्रण आया। इस पर कृष्ण ने उद्धव और ज्येष्ठ भ्राता बलदेव से सलाह पूछी कि शिशुपाल के मारने का पहले प्रबन्ध किया जाय, या धर्मराज के राजसूय यज्ञ देखने जाने का। तब राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होने और वहीं शिशुपाल को मारने की सलाह ठहरी। अतएव द्वारका से श्रीकृष्णचन्द्र का प्रस्थान हुआ। इस सम्बन्ध में द्वारका, समुद्र और रैवतक गिरि आदि का वर्णन किया गया है। रैवतक गिरि पर श्रीकृष्ण के मनोविनोदक षड्ऋतु, वनविहार, जलक्रीड़ा, सायङ्काल, चन्द्रोदय, पानगोष्ठी, रात्रिक्रीड़ा और प्रभात का वर्णन है। तदनन्तर, प्रयाण और यमुना का वर्णन करके श्रीकृष्णचन्द्र का पाण्डवों के साथ समागम, इन्द्रप्रस्थ-प्रवेश, तत्कालिक पुराङ्गनाओं की चेष्टा और महाराजा युधिष्ठिर के सभागृह की विचित्रता का वर्णन है। अनन्तर शिशुपालवध का उपोद्‌घात रूप राजसूय यज्ञ का प्रस्ताव है। फिर श्रीकृष्ण के अर्घदान की बात, भीष्म-कृत स्तुति, शिशुपाल का क्षोभ, उस पर महामनस्वी भीष्मपितामह की उक्ति, शिशुपाल के मित्र नरपतियों का सेना सुसज्जित करना इत्यादि वर्णन है। अनन्तर शिशुपाल का दूत भेजना और उसका श्रीकृष्ण की सभा में द्व्यर्थ भाषण करना, दूत के प्रति सात्यकि का उत्तर, पुनर्वार दूतद्वारा शिशुपाल का पराक्रम वर्णन, कृष्ण की सभा का क्षोभ, सेनाप्रस्थान, और ससंग्रामभूमि में दोनो दलों में तुमुल युद्ध, और चित्र-युद्ध वर्णन है। अनन्तर कृष्ण और शिशुपाल का अस्त्र-युद्ध कथन करके शिशुपाल का वध वर्णन किया गया है।

इसकी मधुर काव्यरचना बहुत उच्चश्रेणी की की है। उसकी सरस मधुरता का अनुभव केवल उसकी प्रशंसा लिखने मात्र से नहीं हो सकता है। कुछ काल तक उसके पीयूषधाराप्रवाह में प्रवाहित हुए बिना उसका आनन्द नहीं आता।

संस्कृत के सुप्रसिद्ध प्रचीन कवियों के विषय में जिस प्रकार कई लोक-प्रचलित आख्यायिकायें मिलती हैं, उसी प्रकार उनके काव्य-विषय में भी पठित-समाज में एक एक, दो दो, पद्य वा वाक्य प्रचलित हैं। प्रस्तुत कवि के काव्य-विषय में भी इस प्रकार के निम्नोद्धृत पद्य उपलब्ध होते हैं—

"नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते"

अर्थात् माघ के नौ सर्ग पढ़ जाने पर नवीन शब्द नहीं रह जाता है।

वस्तुतः माघ की रचना बड़ी विलक्षण है। इसमें शब्दों का न्यास भी बड़ा विचित्र है। इसीसे इसकी काव्यरचना की शैली से युक्त नवीन शब्दों का एक कोष कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। एक श्लोक और भी प्रचलित है। वह इस निबन्ध

के प्रारम्भ में दिया गया है। उस श्लोक में माघ के काव्य को उपमा, अर्थ-गौरव और पद-लालित्य इन तीनों गुणों से युक्त लिखा है। इस लिए वह और काव्यों से उत्कृष्ट हुआ। निस्सन्देह माघ में इन तीनों गुणों का एक साथ होना आश्चर्यकारक है। "शिशुपालवध" के विषय में एक और भी प्राचीन पद्य मिलता है। वह यह है—

> तावद्भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।
> उदिते च पुनर्माघे भारवेर्भा रवेरिव ॥ *

इस पद्य में भारविनिर्मित किरातार्जुनीय की अपेक्षा माघ उत्कृष्ट बताया गता है। यह बात तो हम प्रथमही कह चुके हैं कि माघ की रचना एकवारही चित्ताकर्षक और विरल घटना है। किन्तु इस बात के साथ हम कदापि सहमत नहीं हैं कि इसके आगे भारवि का काव्य कुछ वस्तु ही नहीं है। जहां तक हमारा अनुभव है, हम भारवि और माघ इन दोनों के काव्य, सामान्य विचार से, समकक्षा में स्थापित करसकते हैं। इन दोनों की रचना-प्रणाली देखने से हमारा यह अनुमान भी कदाचित् ठीक समझा जायगा, कि इन दोनो की रचना प्रायः एकही तरह की है। इनकी रचना के काल में भी अधिक अन्तर नहीं बोध होता है।

जिस प्रकार पहले के दो पद्य किसी अनुभवी विद्वान् के कहे हुए जान पड़ते हैं, वैसेही यह पिछला पद्य अनुभवहीन किसी साधारण पण्डित का कहा हुआ ज्ञात होता है।

"तावद्भा भारवेः" इस श्लोक के पूर्वार्ध को तारानाथ तर्कवाचस्पति ने वाचस्पति-कोश में 'माघ' पद के व्याख्यान में उद्भट के नाम से उद्धृत किया है। किन्तु इस पर जर्मनी के विद्वान् क्लाट साहब ने "यह श्लोक किसी भी उद्भट के ग्रन्थ में नहीं मिलता है" इस प्रकार तारानाथ महाशय पर आक्षेप किया है।

कदाचित् कुछ लोग "माघ" पर यह आक्षेप करेंगे कि प्राचीन कवियों की भांति उनको भी शृङ्गार-रस अधिक प्रिय था। यहां तक कि प्रकरणोपयोगी ऋतु, पुष्पोद्यान, जलक्रीड़ा, चन्द्रोदय इत्यादि के वर्णन में जहां शृङ्गार-रस-वर्णन की थोड़ी भी प्रयोजनीयता नहीं थी, कहीं कहीं, माघ ने ख़ूब शृङ्गारात्मक वर्णन किया है। जैसे, प्रथम सर्ग में श्रीकृष्णचन्द्र से इन्द्र का सन्देश कहते हुए रावण द्वारा कैलाश को उठाने का वृत्तान्त नारद के मुख से इस प्रकार वर्णन किया गया है—

> समुत्क्षिपन् यः पृथिवीभृतां वरं वरप्रदानस्य चकार शूलिनः।
> त्रसत्तुषाराद्रिसुताससंभ्रमस्वयंग्रहाश्लेषसुखेन निष्क्रयम् ॥

इस स्थलपर इसी प्रकार की और भी उक्तियां हैं।

शृङ्गार-रस-प्रधान काव्यों में इस प्रकार का वर्णन देखा जाता है। सुतरां उसे अयोग्य भी नहीं कह सकते। किन्तु, इस प्रकरण में, श्रीकृष्ण के भक्त-शिरोमणि देवर्षि नारद के मुख से इस ढंग की उक्ति उनके स्वभाव-विरुद्ध प्रतीत होती है और उद्वेगजनक सी जान पड़ती है। यों तो दोषोंहीं के ढूँढ़ने के लिये प्रयत्न किया जाय तो "काव्य प्रकाश" के सप्तमोल्लास में दिखाये हुये काव्यदोषों से कदाचित् कोई भी काव्य निर्मुक्त न हो सकै। वहां तो कविचक्रचूड़ामणि कालिदास की कविता के पद्य भी दूषणयुक्त काव्य के उदाहरणों में दिखलाये गये हैं। तब और काव्यों के विषय में क्या कहा जा सकता है! अस्तु।

लेख बहुत बढ़ गया। इस लिए शिशुपालवध के विशेष विशेष स्थलों के अच्छे अच्छे पद्यों को अनुवाद सहित फिर किसी समय हम लिखेंगे और उनकी समालोचना भी करेंगे।

कन्हैयालाल पोद्दार

---

* भारवि का प्रकाश तभीतक रहता है जबतक माघ का उदय नहीं होता। जब माघ का उदय हो जाता है तब भारवि का प्रकाश माघ महीने के सूर्य की भाँति कम हो जाता है।

पावसराज ।

[१]

पावसराज, तुही है ऐसा जिसका है अधिकार
जिस प्रकार नभ में, भूमण्डल में भी उसी प्रकार ।
आच्छादित घन घोर घटा से सभी ओर आकाश,
घनगर्ज्जन जलवर्षण, सुर-धनु, सौदामिनी-प्रकाश ॥

[२]

नग्नप्राय धराको धारण किये हरित नव चीर,
नदी, झील, सर, कुण्ड आदि में देख विपुलतर नीर ।
ज्ञात यही सुविदित होती है वर्षा का है साज ;
तभी कहा नभ, भू में तेरा है समान ही राज ॥

[३]

निज मेघों को देख खींचते सरितापति का जीव,
सरिताओं को देख कृशांगी और सचिन्त अतीव ।
करुणामृत-वर्षण से उनको पुनः प्रसन्न बनाय
और प्रपीड़ित कर मेघों को दरसाता है न्याय ॥

[४]

दावानल से दग्ध वनों को तृण-पल्लव-सम्पन्न
करके, कृपानिधे, करता है तू मृग-जाति प्रसन्न ।
विविध भाँति के फल-फूलों से लता-द्रुमों को लाद
नभचर-निकर, मलिन्द-वृन्दका हरता सकल विषाद ॥

[५]

कृषक तथा वनिये हैं तेरी सदा देखते राह ;
यदि कुछ देर हुई तो मचती है खलबलो अथाह ।
ग्राम्य तथा नागर-जन सब का रखता है तू प्राण ;
खग-मृग ही नहिं मानुष भी हैं पाते तुझ से त्राण ॥

[६]

पर चातक तो केवल तेराही रटता है नाम ;
सुधा-सिन्धु भी स्वयं मिलै तो है वह उसे हराम ।
प्रखर सूर्य्य से पाता यद्यपि कष्ट करोड़ करोड़,
पीता नहीं तथापि और कुछ तेरा घन-जल छोड़ ॥

[७]

सच्ची, अविचल भक्ति करै यदि कोई व्यक्ति प्रकाश,
निर्द्दयता है तो यदि कोई करै उसे भग्नाश ।
अतः हमारी सम्मति है यह, उसको सुन, सध्यान
अपने उस अनुरक्त भक्त का मत करना अपमान ॥

[८]

तुझे देख कर धूलिवेष्टिता, दाहपीड़िता, म्लान,
निरलंकृता प्रकृति होती है अति उत्साह-निधान ।
मिलनोत्सव की आशा से ज्यों सजती सब शृंगार
तुझे देख कर विरहिन कोई पति-आगमन विचार ॥

[९]

ग्रीष्म ताप से जब जलता है सारा धरणी-धाम,
परित्राण-हित तब यों शोभित होते तव घन श्याम ।
प्रलयेच्छासे वामदेव को देख विश्व से वाम,
जन-रक्षार्थ पठाया हो ज्यों सुरपति ने घनश्याम ॥

[१०]

वृत्त-खण्ड सतरंगा जिसका इन्द्र-धनुष है नाम,
अर्द्ध-दीप्ति-मण्डल है तेरा, प्रियदर्शन, अभिराम ।
तेरी गुण-गरिमा, महिमा भी अखिल एक ही बार,
क्यों कर देख सकैं हम जिनकी आखें हैं सविकार ॥

[११]

शासन-समय समाप्त हुए भी स्वेच्छा के अनुसार
शासक ऋतु को गद्दी से तू देता कभी उतार ।
पावसराज कुपित मत होना, सच कहते हैं भ्रात,
विगत वर्ष के शिशिर-काल में हुई सिद्ध यह बात ॥

[१२]

प्रकृति-नारि को तू भी देता रंग विरंग दुकूल ;
तू भी रस सरसाता अथवा देता विरहज शूल ।
त्रिविध-पवन फैलाती है यश तेरा भी निर्व्याज ;
जानै फिर जग क्यों कहता है मधु-ऋतु को ऋतुराज ?

सनातन शर्म्मा शकलानी ।

प्रेमपताका।

[१]

बतला क्या रखती तू है री
निज आखों में हे प्यारी ?
क्या है अलक-जाल के भीतर,
अरुणाधर में है क्या री ?

[२]

चन्द्रबिम्ब-सम मुख-प्रभा में
है क्या बतला हे आली !
जिसने मोह लिया मेरा मन
क्षण में कर दी बेहाली ॥

[३]

जबसे प्रेम भरी निज चितवन
है तूने मुझ पर डाली।
तब से चित्त-वृत्ति यह मेरी
हाय होगई मतवाली ॥

[४]

मन्द-हास-युत वह छवि तेरी
नयनों बीच समाई है।
मन में निशि-वासर तेरी हा
अतिशय चिन्ता छाई है ॥

[५]

चपल दृष्टि, रद-पंक्ति मनोहर
तन-लावण्य-लता तेरी।
उपमाहीन हो रही जग में
है यह दृढ़ सम्मति मेरी ॥

[६]

सरस-सरोज-वदन-शोभा के
वर्णन में मैं हार गया।
जिससे कुछ अनुभव होता था
वह चित तू ने चुरा लिया ॥

[७]

केश-पाश अति मृदुल मनोहर
श्याम-जलद-शोभाहारी।
बरसाती क्यों नहीं प्रेम की
धारा अब अति सुखकारी ॥

[८]

नित्य प्रति विरह-ज्वाला से
ज्वलित अंग मेरा होता।
बचों प्रिये यदि पावौं तेरे
प्रेमामृत का नव सोता ॥

[९]

जबसे तेरे लोचन-शायक
लगे हृदय पर वे मेरे।
चैन नहीं पड़ती है मुझको
बिना किये दर्शन तेरे ॥

[१०]

बिना बिचारे क्यों तूने यह,
किया प्रिये मेरा अपराध ?
नहीं जानती क्या होनी है—
प्रेम-रूप-नद-धार अगाध ?

[११]

आशामयी मोह-मदिरा के
प्याले भर भर पीता हूं।
यही हेतु है जो अब तक मैं
इस दुनिया में जीता हूं ॥

सत्यशरण रतूड़ी।

कुमुदसुन्दरी ।

[१]

यह है कुमुदसुन्दरी बाला ;
है इसका सब ठाठ निराला ।
घर इसका गुजरात देश है ;
देखो कैसा सुभग वेश है ॥

[२]

चारु-चन्द्रमा-सम मुख-मण्डल ,
भूतल में शोभा-आखण्डल ।
कञ्चन-कर्णफूल पहने है ;
नहीं और कोई गहने हैं ॥

[३]

काम-कामिनी की ले छाया ;
जिसे चतुर्मुख ने निर्म्माया ।
भूषण उसकी विडम्बना हैं ;
महा-अनूपम रूप बना है ॥

[४]

इसके देख केश घुघुराले ;
सुमन-सुवासित सुन्दर काले ।
नाग-नारियां छिप जाती हैं ;
मुँह न सामने दिखलाती हैं ।

[५]

नयन नील-नीरज-छविहारी ;
श्रुति-पर्य्यन्त-पर्य्यटनकारी ।
इसके भृकुटी-भय का मारा ;
लोप शरासन है बेचारा ॥

[६]

इसके अधर देख जब पाते ;
शुष्क गुलाब फूल होजाते ।
कोमल इसको देह-लता है ;
मूर्तिमती यह सुन्दरता है ॥

[७]

बाहर सायङ्काल हमेशा ;
फिरती यह पतिसाथ हमेशा ।
कड़े छड़े की चाह नहीं है ;
परदे की परवाह नहीं है ॥

[८]

पढ़ती भी, लिखती भी है यह ।
घर सज्जित रखती भी है यह ।
जब यह सूई हाथ उठाता ;
नये नये कौशल दिखलाती ॥

[९]

घरमें सब को भाती है यह ;
पति का चित्त चुराती है यह ।
सखियों में जब जाती है यह ;
मधु मीठा टपकाती है यह ॥

[१०]

यह शिक्षिता गुर्जरी नारी ;
इसको प्रिय है नीली सारी ।
इसकी छवि लोचन-सुखकारी ;
रविवर्म्मा ने खूब उतारी ॥

एक शिकारी की सच्ची कहानी ।

मैं अमीर नहीं हूं । बहुत कुछ समझदार भी नहीं हूं । पर मैं परले दरजे का मांसाहारी हूं । मैं रोज़ जंगल को जाता हूं और एक आध हिरन को मार लाता हूं । यही मेरा रोज़मर्रा का काम है । मेरे घर में रुपये पैसे की कमी नहीं । मुझे कोई फ़िक्र भी नहीं । इसी सबब से हर रोज़ मैं शिकार के पीछे पड़ा रहता हूं । मुझे शिकार का बड़ा भारी शौक़

है। यहां तक कि मैं उसके सामने अपने मा, बाप, पुत्र, कलत्र और प्यारे प्राणों को भी कोई चीज़ नहीं समझता हूं। आप लोग मेरे कहने को अगर झूठ समझते हों तो आप एक दिन के शिकार का मेरा वृत्तान्त सुन लीजिये। उस वृत्तान्त को सुन कर मुझे भरोसा है कि आप यह अनुमान कर सकेंगे कि मुझे शिकार ज़्यादा प्यारा है कि अपना प्राण। अच्छा अब उस वृत्तान्त को सुनिये—

मेरे यहां आदमियों की कमी नहीं है। अगर मैं चाहूं तो शिकार को जाते वक्त एक की जगह कई आदमी लेजा सकता हूं। लेकिन मेरी आदत कुछ ऐसी पड़ गई है कि चोर की तरह अकेले जाना ही मुझे अच्छा लगता है। शिकार के हाथ लग जाने पर मुझे उतनी ही ख़ुशी होती है जितनी कि चोरको मनमाना माल मिलजाने से होती है।

एकदिन की बात सुनिये। गर्मी का मौसम था। पल पल पर गर्मी बढ़ती जाती थी और आदमी पानी पानी चिल्लाकर अपने गले को और भी ज़ियादा सुखाते जाते थे। ऐसे वक्त में मेरे गाँव के कुछ आदमी मेरे पास आये। उन्होंने कहा कि गाँव के पास का तालाब क़रीब क़रीब बिलकुल सूख गया है। बीच में थोड़ा सा पानी रहगया है। वही पानी पीकर हम लोग किसी तरह से अपने प्राण बचाते हैं। पर कई दिनों से, रात के वक्त, एक बहुत बड़ा जंगली सुअर वहां पर आता है। वह उस कुण्ड से पानी भी पीता है और उसमें लोटकर बचे हुए पानी को कीचड़ कर देता है। इस वजह से वह पानी हम लोगों के पीने के लायक़ नहीं रह जाता। आप इसका कुछ बन्दोबस्त कीजिये।

यह सुनकर मुझे बड़ी खुशी हुई, क्योंकि मैं एक शौक़ीन शिकारी हूं और निशाना भी बहुत अच्छा लगाता हूं। मैंने उन लोगों से कहा कि आज चाँदनी रात है। इसलिए आज ही मैं इस सुअर का शिकार खेलना चाहता हूं। तुम अभी जाकर तालाब के पास के पेड़ पर एक मचान बना दो। वे तो यह चाहते ही थे। उन्होंने फ़ौरन ही एक मचान मेरे लिए तैय्यार कर दिया।

रात हुई। आठ बज गये। मैंने खाने को खाया; अपनी मामूली शिकारी पोशाक पहनी; बन्दूक़ हाथ में उठाई और एक भाला और एक पेश क़ब्ज भी हाथ में लिया। इस तरह साज सामान से दुरुस्त होकर मैं उस तालाब की तरफ़ रवाना हुआ। तालाब के पास पेड़ पर मचान को देख कर मैं ख़ुशी से फूल उठा। भाले को मैंने उस मचान के ठीक नीचे गाड़ दिया और चढ़कर उसके ऊपर आसन जमाकर मैं बैठ गया।

वहां पर मैं बिलकुल अकेला था। मगर मैं बड़ा निडर हूं। मुझे ज़रा भी डर न लगा। वायु मन्द मन्द चल रही थी। उसने नींद को झटपट मेरे आंखों के सामने लाकर खड़ा कर दिया। मगर मैं उसके क़ाबू में आनेवाला आदमी नहीं। इसलिये उस बेचारी को मुझ से दो गज़ दूर ही खड़ा रहना पड़ा।

इतने में कुछ दूर पर मुझे आहट मालूम हुई। मैं समझ गया कि वराह महाराज की सवारी आगई। मेरा यह अनुमान ठीक निकला। तालाब के पास एक गुफ़ा थी। वहीं पर वह सुअर आकर कन्द मूल खोद खोद कर खाने लगा। मैंने अपनी बन्दूक़ सँभाली, और इस ताक में लगा, कि वह सुअर वहां से ज़रा और आगे बढ़े तो मैं उसे अपनी गोली का निशाना बनाऊं। इतने में एक और अजीब घटना हुई। जिस पेड़ पर मैं था उसपर एक बड़ा ही भयानक साँप चढ़ा। साँप काला था। वह धीरे धीरे मेरे मचान की तरफ़ बढ़ा और मेरे ऊपर चढ़ आया। मैं काँप उठा। मैंने समझा कि मेरी मौत आगई। मगर मैं चिल्लाया नहीं। और न उस साँप को अपने शरीर से अलग फेंक देने ही की मैंने कोशिश की। मैंने सोचा कि अगर मैं चिल्लाऊंगा, या इस साँप को

पकड़कर ज़मीन में पटकूंगा, तो आवाज़ सुनकर वह सुअर भाग जायगा। अब आप समझ गये होंगे कि जैसा मैंने ऊपर कहा है, मुझे अपने प्राण उतने प्यारे नहीं हैं, जितना कि मुझे शिकार प्यारा है।

मैं पत्थर का होगया। ज़रा भी अपने आसन को मैंने नहीं हिलाया। वह साँप पीठ से मेरे कन्धे पर आया। और कन्धे से पेट की तरफ नीचे उतर कर उसने अपना फन मेरे पैर के अंगूठे और उसके पास की उंगली के बीच में डाला। अब मुझ से न रहा गया। वहां पर मैंने उसके सिर को इस मज़बूती के साथ दबाया कि वह साँप एकही मिनट में फटक फटक कर वहीं मर गया। मेरे शिकार का पहला काण्ड यहां पर ख़तम हो गया।

शूकरराज अब तक उस गुफ़ा के पास खोद ही खाद में लगे थे, कि तालाब के पास पानी पीने के लिये एक भयानक भालू आ पहुंचा। अगर मैं चाहता तो उसे वहीं पर मार गिराता। मगर सुअर के भाग जाने के डर से मैंने ऐसा करना मुनासिब नहीं समझा। जाम्बुवान्‌नन्दन पानी पीकर तालाब के पास खड़े खड़े दम लेने लगे। इतने में एक बहुत बड़ा शेर आता हुआ दिखाई दिया। शेर बहुत प्यासा था। इस लिए जल्दी जल्दी क़दम बढ़ाता हुआ वह आ रहा था। रीछराज की नज़र ज्योंही शेर पर पड़ी त्योंही आप पर क्वार के महीने की सी जूड़ी चढ़ आई। आपको उस वक्त और कुछ न सूझा। आप कँपते हुए उसी पेड़ पर चढ़े जिसपर कि मैं बैठा हुआ था। मेरे मचान के नीचे ही एक डाल थी। उसी पर वह आकर खड़ा हो गया और एक दूसरी डाल को अपने अगले पैरों से उसने ख़ूब मज़बूती से पकड़ लिया। डर भी बुरा होता है। उस वक्त मारे डर के वह रीछ इतने ज़ोर से काँपता था कि वह उतना बड़ा पेड़ भी हिल रहा था। मैं आप से कोई बात छिपाना नहीं चाहता। मेरा बदन पसीने पसीने हो गया। मुझ पर ख़ौफ़ ग़ालिब हो आया। मैं ने कहा कि अगर मैं शोर करूंगा या कुछ भी हाथ पैर हिलाऊंगा, तो यह रीछ फ़ौरन ही मुझ पर हमला करेगा। इसलिए साहस करके मैं वहीं पर जमा हुआ बैठा रहा।

शेर तालाब के पास पहुंचा। पहुंचकर उसने अच्छी तरह पानी पिया। वह किनारे पर बैठ गया, और अपनी मूंछें सुधारने और धीरे धीरे गुर्राने लगा। शेर मेरे मचान के बिलकुल ही सामने था। यह हालत देखकर उस पर वार करने के लिए मैंने अपनी बन्दूक सँभाली। इस बीच में वह सुअर गुफ़ा की तरफ़ से चला और तालाब के पास आया। अहा! वह सुअर था कि हाथी का बच्चा! उँचाई में वह कोई ६ फुट था। उसके दो दांत हाथी के दांतों के समान बाहर निकले हुए थे। वे इतने बड़े और मज़बूत थे कि तीन चार फुट घेरे के तने वाले पेड़ को भी वह एक ही आघात में गिरा सकता था। उसे देख कर यह शंका होती थी कि कहीं प्रत्यक्ष दूसरे वराहजी तो नहीं अवतार ले आये।

आपने शायद सुना होगा कि बड़े बड़े जंगली सुअर शेर से नहीं डरते। सुअर के पैने पैने प्रकाशमान दांतों को देखकर शेर को सुअर पर हमला करने का साहस नहीं होता था। सुअर को सामने आता देख मेरे शिकारी जोश ने ज़ोर पकड़ा। उस भयानक अवस्था में भी मैंने कन्धे पर बन्दूक रक्खी और सुअर को लक्ष्य करके गोली छोड़ दी। यकायक दन की आवाज़ हुई। सुअर को गोली लगी। मगर उसने समझा कि सामने बैठे हुए गुर्राने वाले शेर ने मुझ पर यह चोट की है। बस, एकदम वह शेर पर टूट पड़ा। दोनों में बड़ा भयानक युद्ध हुआ। आख़िरकार वनराज को शूकरराज की कराल डाढ़ों का चबेना हो जाना पड़ा। इधर मेरी गोली के आघात से वराहजी भी स्वर्गलोक को सिधारे। यहां पर मेरे शिकार का दूसरा भी काण्ड समाप्त हुआ।

आपसे मैं कह चुका हूं कि एक भाला मैं घर से ले आया था और मचान के नीचे ही उसे मैंने सीधा खड़ा कर दिया था। ज्योंही मेरी बन्दूक़ से गोली छूटी और दन से आवाज़ हुई, त्योंही नीचे डाल पर बैठे हुए रीछ ने समझा कि वह उसी पर छोड़ी गई। इससे मारे डर के उसके हाथ से वह डाल, जो उसने हाथों से पकड़ रक्खी थी, सहसा छूट गई। रीछ डाल से नीचे गिरा। मगर ज़मीन पर पहुंचने के पहले ही मेरा भाला उसकी छाती को पार कर गया। ज़रा देर में उस रीछ का भी काम तमाम हो गया और उसके साथ मेरे शिकार का यह तीसरा काण्ड भी तमाम हुआ।

इस बहादुरी के लिये आप चाहे मुझे शाबाशी दें। चाहे मेरी सिफ़ारश करके गवर्नमेण्ट से विक्टोरिया-क्रास का पदक दिलावें। मगर अब मैं कभी बन्दूक़ हाथ से न उठाऊंगा। मैंने शिकार करना एक दम छोड़ दिया है। मैं नहीं चाहता कि मैं अपनी जान को फिर इतने बड़े जोखों में डालूं। निज़ामशाह।

स्वाधीनता की भूमिका।

इङ्गलैण्ड में जान स्टुअर्ट मिल नामक एक तत्त्ववेत्ता हो गया है। उसे मरे अभी कुल ३१ वर्ष हुए। उसने कई अच्छी अच्छी पुस्तकें लिखी हैं। उनमें से एक का नाम 'लिबर्टी' (Liberty) है। इस पुस्तक को हमने हिन्दी में अनुवादित किया है। यह लेख इस पुस्तक की भूमिका-मात्र है।

मिल का जन्म २० मई १८०६ को लण्डन में हुआ। इसका पिता जेम्स मिल भी अपने समय में एक प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता था। जिस समय जान स्टुअर्ट मिल की उमर कोई १३ वर्ष की थी, उस समय उसके बाप को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के दफ़्तर में एक जगह मिली। वहां उसे इस देश की अनेक बातें मालूम हुईं और सैकड़ों तरह के काग़ज़-पत्र और ग्रन्थ देखने को मिले। उनके आधार पर उसने भारतवर्ष का एक बहुत अच्छा इतिहास लिखा। यह इतिहास देखने के लायक़ है।

मिल के पिता ने मिल को किसी स्कूल या कालेज में पढ़ने नहीं भेजा। उसने खुद उसे पढ़ाना शुरू किया। जब तक उसे पढ़ाने की ज़रूरत समझी तब तक वह उसे बराबर पढ़ाता रहा। तीन वर्ष की उमर में मिल ने ग्रीक भाषा की वर्णमाला सीखी। आठ वर्ष की उमर में उसने इस भाषा का थोड़ा सा अभ्यास भी कर लिया। बहुत से गद्य ग्रन्थ उसने पढ़ डाले। आठवें वर्ष मिल ने लैटिन सीखना शुरू किया। कुछ दिन बाद अङ्क-गणित, बीजगणित और रेखागणित भी वह सीखने लगा। बारह वर्ष की उमर में मिल को ग्रीक और लैटिन का अच्छा ज्ञान हो गया। वह प्लेटो और अरिस्टाटल के गहन ग्रन्थ अच्छी तरह समझने लगा। दिल बहलाने के लिए वह इतिहास और काव्य भी पढ़ता था और कभी कभी कविता भी लिखता था। पोप का किया हुआ इलियड का भाषान्तर इसे बहुत पसन्द आया। उसे देखकर यह छोटी छोटी कविता लिखने लगा। इससे मिलको शब्दों को यथास्थान रखना आगया। पद्यरचना के विषय में मिलके पिता ने पुत्र की प्रतिकूलता नहीं की। यह काम उसकी अनुमति से मिल ने किया।

मिल को अपनी हमजोली के लड़कों के साथ खेलने कूदने को कभी नहीं मिला। उसने अपना आत्मचरित अपने हाथ से लिखा है। उसमें एक जगह पर वह लिखता है कि उसने एक दिन भी 'क्रिकेट' नहीं खेला। लड़कपन में यद्यपि वह बहुत मोटा ताज़ा और सशक्त नहीं था, तथापि वह इतना दुबला और अशक्त भी नहीं था कि उसके लिखने पढ़ने में बाधा आती। जब वह तेरह वर्ष का हुआ तब उसके बाप ने उसे विशेष गम्भीर विषयों की शिक्षा देना आरम्भ किया। ग्रीक, लैटिन

और अङ्गरेज़ी भाषा में उसने तत्त्वविद्या और तर्क-शास्त्र की अनेक पुस्तकें पढ़ डालीं। उसका बाप रोज़ बाहर घूमने जाया करता था। अपने साथ वह मिल को भी रखता था। राह में वह उससे अनेक प्रश्न करता जाता था। जो कुछ वह पढ़ता था उसमें वह उसकी रोज़ परीक्षा लेता था। जो चीज़ बाप पढ़ाता था उसका उपयोग भी वह पुत्र को बतला देता था। उसका यह मत था कि जिस चीज़ का उपयोग मालूम नहीं, उसका पढ़ना ही व्यर्थ है। तर्कशास्त्र अर्थात् न्याय, और तत्त्वविद्या अर्थात् दर्शन शास्त्र, में मिल थोड़े ही दिनों में प्रवीण हो गया। किसी ग्रन्थकार के मत या प्रमाण को क़बूल करने के पहले उसकी जांच करना मिलको बहुत अच्छी तरह से आगया। दूसरों की प्रमाण-शृङ्खला में वह बड़ी योग्यता से दोष ढूंढ़ निकालने लगा। यह बात सिर्फ़ अच्छे नैयायिक और दार्शनिक पण्डितों में ही पाई जाती है। क्योंकि प्रतिपक्षी की इमारत को अपनी प्रबल दलीलों से ढहाकर उसपर अपनी नई इमारत को खड़ा करना सबका काम नहीं है। खण्डन-मण्डन की यह विलक्षण रीति मिल को लड़कपन ही में सिद्ध होगई। इसका फल भी बहुत अच्छा हुआ। यदि थोड़ी उमर में ही उसकी तर्कशक्ति इतनी प्रबल न हो जाती तो वह वयस्क होने पर इतने अच्छे ग्रन्थ न लिख सकता। मिल के घर उसके पितासे मिलने अनेक विद्वान आया करते थे। उनमें परस्पर अनेक विषयों पर वाद-विवाद हुआ करता था। उनके कोटिक्रम को मिल ध्यानपूर्वक सुनता था। इससे भी उसको बहुत फ़ायदा हुआ। उसकी बुद्धि बहुत जल्द विकसित हो उठी और बड़े बड़े गहन विषयों को वह समझ लेने लगा।

बाप की सिफ़ारिश से मिल ने प्लेटो के ग्रन्थ बहुत विचारपूर्वक पढ़े। इतिहास, राजनीति और अर्थशास्त्र का भी उसने अध्ययन किया। चौदह पन्द्रह वर्ष की उमर में उसका गृह-शिक्षण समाप्त हुआ। तब वह देश-पर्यटन के लिये निकला। फ्रांस की राजधानी पेरिस में वह कई महीने रहा। इस यात्रा में उसे बहुत कुछ तजरुबा हुआ। कुछ दिन बाद, घूम घाम कर, वह लण्डन लौट आया। तब से उसकी यथानियम शिक्षा की समाप्ति हुई। जितनी थोड़ी उमर में मिल ने तर्क और अर्थशास्त्र आदि कठिन विषयों का ज्ञान प्राप्त कर लिया उतनी थोड़ी उमर में और लोगों के लिए इस बात का होना प्रायः असम्भव समझा जाता है।

१७ वर्ष की उमर में मिल ने इण्डिया हाउस नामक दफ़्र में प्रवेश किया। वहां उसकी क्रम क्रम से उन्नति होती गई। अन्त में वह एग्ज़ामिनर के दफ़्र का सबसे बड़ा अधिकारी हो गया। पर १८५८ ईसवी में जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी टूटी तब यह दफ़्र भी टूट गया। इस लिए इसे नौकरी से अलग होना पड़ा। कोई २५ वर्ष तक इसने नौकरी की। नौकरी ही की हालत में इसने अनेक उत्त-मोत्तम ग्रन्थ लिखे। इसका मत था कि जो लोग केवल पुस्तक-रचना करने और समाचार पत्रों में छपने के लिए लेख भेजने पर ही अपनी जीविका चलाते हैं उनके लेख अच्छे नहीं होते, क्योंकि वे जल्दी में लिखे जाते हैं। पर जो लोग जीविका का कोई और द्वारा निकाल कर पुस्तक-रचना करते हैं, वे सावकाश और विचार-पूर्वक लिखते हैं। इससे उनकी विचार-परम्परा अधिक मनोग्राह्य होती है और उनके ग्रन्थों का अधिक आदर भी होता है।

१८६५ से १८६८ तक मिल पारलियामेण्ट का मेम्बर भी रहा। वह यद्यपि अच्छा वक्ता न था, तथापि जिस विषय पर वह बोलता था सप्रमाण बोलता था। उसकी दलीलें बहुत मज़बूत होती थीं। ग्लैडस्टन साहब ने उसकी बहुत प्रसंशा की है। एकही बार मिल का प्रवेश पारलियामेण्ट में हुआ। कई कारणों से लोगों ने इसे दुबारा नहीं चुना। उन कारणों में सबसे प्रबल कारण यह था कि पार-लियामेण्ट में हिन्दुस्तान के हितचिन्तक ब्राडला साहब के प्रवेश-सम्बन्धी चुनाव में मिल ने उनकी

मदद की थी। ऐसे घोर नास्तिक की मदद! यह बात लोगों को बरदाश्त न हुई। इसीसे उन्होंने दुबारा मिल को पारलियामेण्ट में नहीं भेजा। यह सुनकर कई जगह से मिल को निमंत्रण आया कि तुम हमारी तरफ़ से पारलियामेण्ट की उम्मेदवारी करो। परन्तु ऐसे झगड़े का काम मिल को पसन्द नहीं आया। इससे उसने उम्मेदवार होने से इनकार कर दिया। तबसे उसने एकान्तवास करने और लिखने पढ़ने में अपनी बाक़ी उमर बिताने का निश्चय किया। वह अविगनान नामक गाँव में जाकर रहने लगा। १८७३ में वहां उसकी मृत्यु हुई। उसका घर पुस्तकों और अख़बारों से भरा रहता था। साल में सिर्फ़ कुछ दिन के लिए वह अविगनान से लण्डन आता था।

जिस समय मिल की उमर २५ वर्ष की थी, उस समय टेलर नामक एक आदमी की स्त्री से उसकी जान पहचान हुई। धीरे धीरे दोनों में परस्पर स्नेह होगया। उसकी क्रम क्रम से वृद्धि होती गई। इस कारण लोग मिल को भला बुरा भी कहने लगे। उसके पिता को भी यह बात पसंद न आई। परन्तु प्रेम-प्रवाह में शिक्षा, दीक्षा और उपदेश कहीं ठहर सकते हैं? २० वर्ष तक यह स्नेह-सम्बन्ध अथवा मित्रभाव अखण्डित रहा। इतने में टेलर साहब की मृत्यु हो गई। यह अवसर अच्छा हाथ आया देख ये दोनों प्रेमी विवाह-बन्धन में बँध गये। परन्तु सिर्फ़ सात वर्ष तक मिल साहब को इस स्त्री के समागम का सुख मिला। इसके बाद उसका शरीर छूट गया। इस वियोग का मिलको बेहद रंज हुआ। अविगनान ही में मिल ने उसे दफ़न किया और जो बातें उसे अधिक पसन्द थीं उन्हीं के करने में उसने अपनी बची हुई उमर का बहुतसा भाग बिताया। मिल के साथ विवाह होने के पहले ही इस स्त्री के एक कन्या थी। मा के मरने पर उसने मिल की बहुत सेवा शुश्रूषा की। उसने मिल को गृह-सम्बन्धी कोई तकलीफ़ नहीं होने दी।

मिल ने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। वह अकसर प्रसिद्ध प्रसिद्ध अख़बारों और मासिक पुस्तकों में लेख भी दिया करता था। छोटी छोटी पुस्तकें भी उसने कई लिखी हैं। पर उस के जिन ग्रन्थों की बहुत अधिक महिमा है वे ये हैं—

(१) अर्थशास्त्र के अनुचित प्रश्नों पर निबन्ध (Essays on unsettled questions in Political Economy).

(२) तर्कशास्त्र-पद्धति (System of Logic).

(३) अर्थशास्त्र (Political Economy).

(४) स्वाधीनता (Liberty).

(५) पारलियामेण्ट के सुधारसम्बन्धी विचार (Thoughts on Parliamentary Reform.

(६) प्रतिनिधिसातात्मक राज्यव्यवस्था (Representative Government).

(७) स्त्रियों की पराधीनता (Subjection of women).

(८) हैमिल्टन के तत्त्वशास्त्र की परीक्षा (Examination of Hamilton's Philosophy).

(९) उपयोगितातत्व (Utilitarianism).

'प्रकृति' (Nature) और 'धर्म्म की उपयोगिता' (Utility of Religion) इन दो विषयों पर भी उसने निबन्ध लिखे; पर वे उसकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुए। मिल के पिता ने मिल को किसी विशेष प्रकार की धर्म्म-शिक्षा नहीं दी; क्योंकि उसका विश्वास किसी धर्म्म पर नहीं था। पर उसने सब धर्म्मों और धार्म्मिक सम्प्रदायों के तत्त्व मिल को अच्छी तरह समझा दिये थे। लड़कपन में इस तरह के संस्कार होने के कारण मिल के धार्म्मिक विचार अनोखे थे। उनको उसने 'धर्म्म की उपयोगिता' में बड़ी ही योग्यता से प्रगट किया है। उसकी स्त्री विदुषी थी। तत्त्वविद्या में वह भी ख़ूब प्रवीण थी। पुस्तकरचना में भी उसे अच्छा अभ्यास था। 'स्वाधीनता' और 'स्त्रियों की पराधीनता'

मिल ने उसकी सहायता से लिखा है। और भी कई पुस्तकों के लिखने में उसने मिल की सहायता की थी। अपने आत्मचरित में मिल ने उसकी अत्यधिक प्रशंसा की है। 'स्वाधीनता' को उसने अपनी स्त्री ही को समर्पण किया है। उसका समर्पण भी बहुत ही विलक्षण है। उसमें उसने अपनी स्त्री की प्रशंसा की पराकाष्ठा कर दी है। मिल बड़ा उदार पुरुष था। सत्य के खोजने में वह सदैव तत्पर रहता था। जिस बात से अधिक आदमियों का हित हो उसीको वह सबसे अधिक सुखदायक समझता था। इस सिद्धान्त को उसने अपने 'उपयोगिता-तत्त्व' में बहुत अच्छी तरह से प्रमाणित किया है। नई और पुरानी चाल की ज़रा भी परवा न करके जिसे वह अधिक सयुक्तिक समझता था उसीको वह मानता था। वह सुधारक था; परन्तु उच्छृङ्खल और अविवेकी न था। उसने अनेक विषयों पर ग्रन्थ लिखे। जो लोग बिना समझे बूझे पुरानी बातों को वेद-वाक्य मानते थे उनके अनुचित विश्वासों को उसने विचलित कर दिया; उन की सदसद्विचार-शक्ति को उसने जागृत कर दिया; उनकी विवेचना-रूपी तलवार पर जो मोरचा लग गया था उसे उसने जड़ से उड़ा दिया।

मिल के ग्रन्थों में से स्वाधीनता, उपयोगिता-तत्त्व, न्यायशास्त्र और स्त्रियों की पराधीनता–इन चार ग्रन्थों का बड़ा मान है। इन पुस्तकों में मिल ने जिन विचारों से–जिन दलीलों से–काम लिया है, वे बहुत प्रबल और अखण्डनीय हैं। यद्यपि कई विद्वानों ने मिल की विचार-परम्परा का खण्डन किया है, तथापि वे कृतकार्य्य नहीं हुए–उनको कामयाबी नहीं हुई। ये ग्रन्थ सब कहीं प्रीतिपूर्वक पढ़े जाते हैं। स्वाधीनता में मिल ने जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, वे बहुत ही दृढ़ प्रमाणों के आधार पर स्थित हैं। यह बात इस पुस्तक के पढ़ने से अच्छी तरह मालूम हो जायगी।

इस पुस्तक में पांच अध्याय हैं। उनकी विषय-योजना इस प्रकार है—

पहला अध्याय—प्रस्तावना।

दूसरा अध्याय—विचार और विवेचना की स्वाधीनता।

तीसरा अध्याय—व्यक्ति-विशेषता भी सुख का एक साधन है।

चौथा अध्याय—व्यक्ति पर समाज के अधिकार की सीमा।

पांचवां अध्याय—प्रयोग।

मिल साहब का मत है कि व्यक्ति के बिना समाज या गवर्नमेण्ट का काम नहीं चल सकता और समाज या गवर्नमेण्ट के बिना व्यक्ति का काम नहीं चल सकता। अतएव दोनों को परस्पर एक दूसरे की आकांक्षा है। पर एक को दूसरे के काम में अनुचित हस्तक्षेप करना मुनासिब नहीं। जिस काम से किसी दूसरे का सम्बन्ध नहीं उसे करने के लिए हर आदमी स्वाधीन है। न उसमें समाज ही को कोई दस्तन्दाज़ी करना चाहिए और न गवर्नमेण्ट ही को। पर, हां, उस काम से किसी और आदमी का अहित न होना चाहिए। ग्रन्थकार ने स्वाधीनता के सिद्धान्तों का प्रतिपादन बड़ी ही योग्यता से किया है। उसकी विवेचना-शक्ति की जितनी प्रशंसा की जाय कम है। उसने प्रतिपक्षियों के आक्षेपों का बहुत ही मज़बूत दलीलों से खण्डन किया है। उसकी तर्कना-प्रणाली खूब सबल और प्रमाण-पूर्ण है।

स्वाधीनता का दूसरा अध्याय सब अध्यायों से अधिक महत्व का है। इसीसे वह औरों से बड़ा भी है। इस अध्याय में जो बातें हैं उनके जानने की आज कल बड़ी ही ज़रूरत है। आदमी का सुख विशेष करके उसकी मानसिक स्थिति पर अवलम्बित रहता है। मानसिक स्थिति अच्छी न होने से सुख की आशा करना दुराशा मात्र है। विचार और विवेचना करना मन का धर्म्म है। अतएव इन के द्वारा मनको उन्नत करना चाहिए। मनुष्य के लिए सबसे अधिक अनर्थकारक बात विचार और विवेचना का प्रतिबन्ध है। जिसे जैसे विचार सूझ

पड़ें उसे उन्हें साफ़ साफ़ कहने देना चाहिए। इसी में मनुष्य का कल्याण है। इसी से, जितने सभ्य-देश हैं उनकी गवर्नमेण्टों ने सब लोगों को यथेच्छ विचार, विवेचना, श्रीर श्रालोचना करने की श्रनुमति दे रक्खी है। कल्पना कीजिए कि किसी विषय में कोई श्रादमी श्रपनी राय देना चाहता है श्रीर उसकी राय ठीक है। श्रब यदि उसे बोलने की श्रनुमति न दी जायगी तो सब लोग उस सच्ची बात के जानने से वञ्चित रहेंगे। यदि वह बात या राय सर्वथा सच नहीं है, केवल उसका कुछ ही श्रंश सच है, तो भी यदि वह प्रकट न की जायगी—ज़ाहिर न की जायगी—तो उस सत्यांश से भी लोग लाभ न उठा सकेंगे। श्रच्छा, श्रब मान लीजिए कि कोई पुराना ही मत ठीक है, नया मत ठीक नहीं है। इस हालत में भी यदि नया मत प्रकट न किया जायगा तो पुराने की ख़ूबियां लोगों की समझ में श्रच्छी तरह न श्रावेंगी। दोनें के गुण-दोषों पर जब श्रच्छी तरह विचार होगा तभी यह बात ध्यान में श्रावेगी; श्रन्यथा नहीं। एक बात श्रीर भी है। वह यह कि प्रचलित रूढ़, या परम्परा से प्राप्त हुई बातों, या रसों, के विषय में प्रतिपक्षियों के साथ वाद-विवाद न करने से उनकी सजीवता जाती रहती है। उनका प्रभाव धीरे धीरे मन्द होता जाता है। इसका फल यह होता है कि कुछ दिनों में लोग उनके मतलब को बिलकुल ही भूल जाते हैं श्रीर सिर्फ़ पुरानी लकीर को पीटा करते हैं।

मिल की मूल पुस्तक की भाषा बहुत क्लिष्ट है। कोई कोई वाक्य प्रायः एक एक पृष्ठ में समाप्त हुए हैं। विषय भी पुस्तक का क्लिष्ट है। इससे इस श्रनुवाद में हमको बहुत कठिनता का सामना करना पड़ा है। हमको डर है कि हमसे श्रनुवाद-सम्बन्धी श्रनेक भूलें हुई होंगी। श्रतएव हमको उचित था कि हम ऐसे कठिन काम में हाथ न डालते। पर जिन बातों का विचार इस पुस्तक में है उनके जानने की, इस समय, बड़ी श्रावश्यकता है। श्रतएव मिल साहब के विचारों के श्रनुसार जब तक कोई श्रनुवाद सर्वथा निर्दोष न प्रकाशित हो तब तक इसका जितना भाग निर्दोष या पढ़ने के लायक़ हो उतने ही से पढ़नेवाले स्वाधीनता के सिद्धान्तों श्रीर लाभों से जानकारी प्राप्त करें।

यदि कोई यह कहे कि हिन्दी के साहित्य का मैदान बिलकुल ही सूना पड़ा है, तो उसके कहने को श्रत्युक्ति न समझना चाहिए। दश पांच क़िस्से, कहानियां, उपन्यास या काव्य श्रादि पढ़ने लायक़ पुस्तकों का होना साहित्य नहीं कहलाता श्रीर न कूड़े कचरे से भरी हुई पुस्तकों ही का नाम साहित्य है। इस श्रभाव का कारण हिन्दी पढ़ने लिखने में लोगों की श्ररुचि है। हमने देखा है कि जो लोग श्रच्छी श्रङ्गरेज़ी जानते हैं, श्रच्छी तनख़्वाह पाते हैं श्रीर श्रच्छी जगहों पर काम करते हैं, वे हिन्दी के मुख्य मुख्य ग्रन्थों श्रीर श्रख़बारों का नाम तक नहीं जानते। श्राश्चर्य्य यह है कि श्रपनी इस श्रनभिज्ञता पर वे लज्जित भी नहीं होते। हां, लज्जित वे इस बात पर ज़रूर होते हैं यदि समय का सत्यानाश करने वाले श्रपने मित्रमण्डल में बैठ कर वे यह न बतला सकें कि श्रमुक मुन्शी साहब, या श्रमुक मिरज़ा साहब, या श्रमुक पण्डत (!) साहब श्राज कल कहां पर डिप्युटी कलेक्टर हैं; श्रमुक साहब कहां की कलेक्टरी पर बदल दिये गये हैं; श्रमुक सदरश्राला साहब कब छुट्टी पर जाँयगे; श्रमुक मुनसरिम साहब के लड़के की शादी कहां हुई है; श्रमुक हेड मास्टर साहब नैाकरी से कब श्रलग होंगे! एक दिन एक मशहूर ज़िला-स्कूल के हेड मास्टर ने श्रपने स्कूल के ढोलन (Roller) का इतिहास वर्णन करके हमारे दो घण्टे नष्ट कर दिये। पर श्रनेक श्रच्छी श्रच्छी पुस्तकों का नाम लेने पर श्रापने एक के भी देखने की इच्छा न प्रकट की। इसका कारण रुचि-विचित्रता है। यदि ऐसे श्रादमियों में से दस पांच भी श्रपने देश के साहित्य की तरफ़ ध्यान दें श्रीर उपयोगी विषयों पर पुस्तकें लिखें तो बहुत जल्द देशोन्नति का द्वार खुल जाय। क्योंकि शिक्षा के प्रचार के बिना उन्नति नहीं हो सकती।

और देश में फ़ीसदी दो चार आदमियों का शिक्षित होना न होने के बराबर है। शिक्षा से यथेष्ट लाभ तभी होता है जब हर गांव में उसका प्रचार हो। और यह बात तभी सम्भव है जब अच्छे अच्छे विषयों की पुस्तकें देश-भाषा में प्रकाशित होकर सस्ते दामों पर बिकेंगी। जापान की तरफ़ देखिए। उसने जो इतना जल्द इतनी आश्चर्य्यजनक उन्नति की है उसका कारण विशेष करके शिक्षा का प्रचार ही है। हमने एक जगह पर पढ़ा है कि जिस जापानी ने मिल साहब की स्वाधीनता (Liberty) का अपनी भाषा में अनुवाद किया, वह सिर्फ़ इसी पुस्तक को लिख कर अमीर हो गया। थोड़े ही दिनों में उसकी लाखों कापियां बिक गईं। जापान के राजेश्वर ख़ुद मिकाडो ने उसकी कई हज़ार कापियां अपनी तरफ़ से मोल लेकर अपनी प्रजा को मुफ़्त में बाँट दीं। परन्तु इस देश की दशा बिलकुल ही उलटी है। यहां मोल लेने का तो नाम ही न लीजिए, यदि इस तरह की पुस्तकें यहां के राजा, महाराजा और अमीर आदमियों के पास कोई योंही भेज दे, तो भी शायद वे उन्हें पढ़ने का श्रम न उठावें। इससे बहुत सम्भव है कि हमारी यह पुस्तक बेछपी ही रह जाय! ख़ैर!

इस दशा में हमारी राय यह है कि इस समय हिन्दी में जितनी पुस्तकें लिखी जांय, ख़ूब सरल भाषा में लिखी जांय। यथासम्भव उनमें संस्कृत के कठिन शब्द न आने पावें। क्योंकि जब लोग सीधी सादी भाषा की पुस्तकों ही को नहीं पढ़ते, तब वे क्लिष्ट भाषा की पुस्तकों को क्यों छूने लगे। अतएव जो शब्द बोल चाल में आते हैं—फिर चाहे वे फ़ारसी के हों, चाहे अरबी के हों, चाहे अँग्रेज़ी के हों—उनका प्रयोग बुरा नहीं कहा जा सकता। पुस्तक लिखने का मतलब सिर्फ़ यह है कि उसमें जो कुछ लिखा गया है उसे लोग समझ सकें। यदि वह समझ में न आया, अथवा क्लिष्टता के कारण उसे किसीने न पढ़ा, तो लेखक की मेहनत ही बरबाद जाती है। पहले लोगों में साहित्य-प्रेम पैदा करना चाहिए। भाषा-पद्धति पीछे से ठीक होती रहैगी।

इन्हीं कारणों से प्रेरित होकर हमने इस पुस्तक में हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी और संस्कृत इत्यादि के शब्द—जहां पर हमें जैसी ज़रूरत जान पड़ी है—प्रयोग किये हैं। मतलब को ठीक ठीक समझाने के लिए कहीं कहीं पर हमने एकही बात को दो दो तीन तीन तरह से लिखा है। कहीं कहीं पर एकही अर्थ के बोधक अनेक शब्द हमने रक्खे हैं। कहीं मूल के भाव को हमने बढ़ा दिया है और कहीं पर कम कर दिया है। यदि पुस्तक उपयोगी समझी गई और यदि लोगों ने इसे पढ़ने की कृपा की (जिसकी हमें बहुत कम आशा है) तो इसकी भाषा को ठीक करने में देर न लगैगी। इस पुस्तक का विषय ऐसा कठिन है कि कहीं कहीं पर इच्छा न रहते भी, विवश होकर, हमें संस्कृत के क्लिष्ट शब्द लिखने पड़े हैं। क्योंकि उनसे सरल शब्द हमें मिले ही नहीं।

जून १९०४ में जब हम झांसी से कानपुर आये तब हमने, आज कल के समय के अनुकूल, कुछ उपयोगी किताबें लिखने का विचार किया। हमारा इरादा पहले औरही एक पुस्तक के लिखने का था। परन्तु बीच में एक ऐसी घटना हो गई जिससे हमें उस इरादे को रहित करके इस पुस्तक को लिखना पड़ा। ७ जनवरी को आरम्भ करके १३ जून को हमने इसे समाप्त किया। बीच में, कई बार, अनिवार्य्य कारणों से अनुवाद का काम हमें बन्द भी रखना पड़ा। किसी सार्वजनिक समाज की सार्वजनिक बातों की यदि समालोचना होती है तो वह समालोचना उसे अक्सर अच्छी नहीं लगती। इससे उसे रोकने की वह चेष्टा करता है। जब उसे यह बात बतलाई जाती है कि सार्वजनिक कामों की आलोचना का प्रतिबन्ध करने से लाभ के बदले हानि ही अधिक होती है, तब वह अक्सर यह कह बैठता है कि हम समालोचना को नहीं रोकते, किन्तु "व्यर्थ निन्दा" को रोकना चाहते हैं। अतएव ऐसे व्यर्थ-निन्दा-प्रतिबन्धक लोगों के

लाभ के लिए हमने पहले इसी पुस्तक को लिखना मुनासिब समझा। क्यों कि प्रतिबन्ध-हीन विचार और विवेचना की जितनी महिमा इस पुस्तक में गाई गई है उतनी शायद ही कहीं हो।

जिस आदमी को सर्वज्ञ होने का दावा नहीं है, उसे अपने काम काज की विवेचना या समालोचना को रोकने की भूल से भी चेष्टा न करना चाहिए। और इस तरह की चेष्टा करना सार्वजनिक समाज के लिए तो और भी अधिक हानिकारक है। भूलना मनुष्य की प्रकृति है। बड़े बड़े महात्माओं और विद्वानों से भूलें होती हैं। इससे यदि समालोचना बन्द कर दी जायगी–यदि विचार और विवेचना की स्वाधीनता छीन ली जायगी–तो सत्य का पता लगाना असम्भव हो जायगा। लोगों की भूलें उनके ध्यान में आवैंगी किस तरह? हां, यदि वे सर्वज्ञ हों तो बात दूसरी है।

व्यर्थ निन्दा कहते किसे हैं? व्यर्थ निन्दा से मतलब शायद झूठी निन्दा से है। जिसमें जो दोष नहीं है उसमें उस दोष के आरोपण का नाम व्यर्थ निन्दा हो सकता है। परन्तु इसका जज कौन है कि निन्दा व्यर्थ है या अव्यर्थ है? जिसकी निन्दा की जाय वह? यदि यही न्याय है तो जितने मुजरिम हैं उन सब की ज़बान ही को सेशन कोर्ट समझना चाहिए। इतनाही क्यों, इस दशा में यह भी मान लेना चाहिए कि हाईकोर्ट और प्रिवी कौंसिल के जजों का काम भी मुजरिमों की ज़बानही के सिपुर्द है। कौन ऐसा मुजरिम होगा जो अपने हो मुहँ से अपने को दोषी क़बूल करैगा? कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो अपनी निन्दा को सुनकर ख़ुशी से इस बात को मान लेगा कि मेरी उचित निन्दा हुई है? जो इतने साधु, इतने सत्यशील, इतने सच्चरित होते हैं कि अपनी यथार्थ निन्दा को निन्दा और दोष को दोष क़बूल करते नहीं हिचकते, उनकी कभी निन्दा ही नहीं होती। उन पर कभी किसी तरह का जुर्म्म ही नहीं लगाया जाता। अतएव जो कहते हैं कि हम अपनी व्यर्थ निन्दा मात्र को रोकना चाहते हैं, वे मानों इस बात की घोषणा देते हैं कि हमारी बुद्धि ठिकाने नहीं, हम व्यर्थ प्रलाप कर रहे हैं; हम अपनी अज्ञानता को सबके सामने रख रहे हैं। जो समझदार हैं वे अपनी निन्दा को प्रकाशित होने देते हैं। और जब निन्दा प्रकाशित होजाती है तब, उपेक्ष्य होने के कारण, या तो उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं, या वे इस बात को सप्रमाण सिद्ध करते हैं कि उनकी जो निन्दा हुई है वह व्यर्थ है। अपने पक्ष का जब वे समर्थन कर चुकते हैं तब सर्व-साधारण जज का काम करते हैं। दोनों पक्षों की दलीलों को सुनकर वे इस बात का फ़ैसला करते हैं कि निन्दा व्यर्थ हुई है या अव्यर्थ।

हम कहते हैं कि जब तक कोई बात प्रकाशित न होगी तब तक उसकी व्यर्थता या अव्यर्थता साबित किस तरह होगी? क्या निन्द्य व्यक्ति को उसकी निन्दा सुना देनेही से काम निकल सकता है? हरगिज़ नहीं। क्यों कि सम्भव है वह अपनी निन्दा को सुनकर समझे। और यदि निन्दा को वह निन्दा मान भी ले तो उसे दण्ड कौन देगा? जिन लोगों के काम काज का सर्व-साधारण से सम्बन्ध है, उनकी निन्दा सुनकर सब लोग जब तक उनका धिक्कार नहीं करते तब तक उनको धिक्कार-रूप उचित दण्ड नहीं मिलता। जो लोग इन दलीलों को नहीं मानते, वे शायद अख़बारवालों से किसी दिन यह कहने लगें कि तुमको जिसकी निन्दा करना हो, या जिसपर दोष लगाना हो उसे अख़बार में प्रकाशित न करके चुपचाप उसे लिख भेजो! परन्तु जिनकी बुद्धि ठिकाने है–जो पागल नहीं हैं–वे कभी ऐसा न कहैंगे।

कल्पना कीजिए कि किसी की राय या समालोचना को बहुत आदमियों ने मिलकर झूठ ठहराया। उन्होंने निश्चय किया कि अमुक आदमी ने अमुक सभा, समाज, संस्था या व्यक्ति की व्यर्थ निन्दा की। तो क्या इतने से भी उनका निश्चय निर्भ्रान्त सिद्ध होगया? साक्रेटिस पर व्यर्थ निन्दा करने का दोष लगाया गया। इस लिए उसे अपनी जान से भी हाथ धोना पड़ा। परन्तु इस समय सारी

दुनिया इस अविचार के लिए अफ़सोस कर रही; और साक्रेटिस के सिद्धान्तों की शतमुख से प्रशंसा होरही है। क्राइस्ट के उपदेशों को निन्द्य समझ कर यहूदियों ने उसे सूली पर चढ़ा दिया। फिर क्यों आधी दुनिया इस निन्दक के चलाये हुए धर्म्म को मानती है? बौद्धों ने शङ्कराचार्य्य को क्या अपने मत का व्यर्थ निन्दक नहीं समझा था? फिर, बतलाइए यह सारा हिन्दुस्तान क्यों उनको शङ्कर का अवतार मानता है? जब सैकड़ों वर्ष वाद-विवाद होने पर भी निन्दा की यथार्थता नहीं साबित की जा सकती, तब किसी बात को पहलेही से कह देना कि यह हमारी व्यर्थ निन्दा है, अतएव इसे मत प्रकाशित करो, कितनी बड़ी धृष्टता का काम है! निन्दा-प्रतिबन्धक मत के अनुयायीही इस धृष्टता—इस अविचार—का परिमाण निश्चित करने की कृपा करें।

जिन लोगों का यह ख़याल है कि "व्यर्थ निन्दा" के प्रकाशन को रोकना अनुचित नहीं है, वे सदय-हृदय होकर यदि मिल साहब की दलीलों को सुनेंगे और अपनी सर्वज्ञता को ज़रा देर के लिए अलग रख देंगे तो उनको यह बात अच्छी तरह मालूम होजायगी कि वे कितनी समझ रखते हैं। निन्दा-प्रतिबन्धक मत के जो पक्षपाती मिल साहब की मूल पुस्तक को अङ्गरेज़ी में पढ़ने के बाद "व्यर्थ निन्दा" के रोकने की चेष्टा करते हैं, उनके अज्ञान, हठ और दुराग्रह की सीमा और भी अधिक दूर-गामिनी है। क्योंकि जब मिल के सिद्धान्तों का खण्डन बड़े बड़े तत्त्व-दर्शी विद्वानों से भी अच्छी तरह नहीं हो सका, तब औरों की क्या गिनती है? परन्तु यदि उन्होंने मूल पुस्तक को नहीं पढ़ा तो अब वे कृपापूर्वक इस अनुवाद को पढ़ें। इससे उनकी समझ में यह बात आजायगी कि अपनी निन्दा के प्रकाशन को—चाहे वह निन्दा व्यर्थ हो चाहे अव्यर्थ—रोकने की चेष्टा करना मानों इस बातका सबूत देना है कि वह निन्दा झूठ नहीं बिलकुल सच है। व्यर्थ निन्दा के असर को दूर करने का एकमात्र उपाय यह है कि जब निन्दा प्रकाशित हो ले तब उसका सप्रमाण खण्डन किया जाय और दोनों पक्षों के वक्तव्य का फ़ैसला सर्व-साधारण की राय पर छोड़ दिया जाय। ऐसे विषयों में जन-समुदाय ही जज का काम कर सकता है। उसीकी राय मान्य हो सकती है। जो इस उपाय का अवलम्बन नहीं करते; जो ऐसी बातों को जन-समूह की रायपर नहीं छोड़ देते; जो अपने मुक़द्दमे के आपही जज बनना चाहते हैं; उनके तुच्छ, हेय और उपेक्ष्य प्रलापों पर समझदार आदमी कभी ध्यान नहीं देते। ऐसे आदमी तब होश में आते हैं जब अपने अहंमानी स्वभाव के कारण अपना सर्वनाश कर लेते हैं। ईश्वर इस तरह के आदमियों से समाज की रक्षा करे!

देशव्यापक लिपि।

देश में एक भाषा और एक लिपि के प्रस्ताव का सूत्रपात हुए बहुत दिन हुए। इस विषय की आवश्यकता, उपयोगिता और गुरुता पर महाराष्ट्र और गुर्जर देश के कई सुविज्ञ लेखकों ने लेख लिखे हैं। सरस्वती के भी चौथे भाग में इस विषय से सम्बन्ध रखने वाला एक निबन्ध निकल चुका है। इस निबन्ध में एक भाषा और एक लिपि की आवश्यकता पर विशेष प्रकार से विचार किया गया है। समाज का जो भाग अधिक उत्साही, अधिक प्रभुतावान् और अधिक विद्या-व्यासङ्गी होता है, उसके प्रस्तावों का—उसकी बातों का—समाज पर अधिक असर पड़ता है। चार भाइयों में जो भाई—चाहे वह सबसे छोटा क्यों न हो—अधिक योग्य, प्रतिष्ठित और समाजमान्य होता है उसीकी बात अकसर सब भाई मानते हैं। जो जितनाहीं अधिक विद्वान् है उसकी बुद्धि भी उतनीही अधिक काम देती है। इन्हीं सब बातों का विचार करके हमने

"सरस्वती" में सूचना दी थी कि यदि बङ्गाली विद्वान् इस विषय में अगुआ हों तो कार्य्यसिद्धि को अधिक आशा है। हर्ष की बात है, हमारी सूचना व्यर्थ नहीं गई। चाहे यह बात काकतालीय न्याय से ही हुई हो, पर हुई अवश्य। जबसे कलकत्ते की हाईकोर्ट के भूतपूर्व जज माननीय शारदाचरण मित्र ने एक प्रबन्ध पढ़कर देश में एक लिपि होने का प्रस्ताव किया, तब से इस विषय में कुछ सजीवता आने लगी है।

देश में एक लिपि होने के विषय में माननीय शारदाचरण के प्रस्ताव का अनुमोदन भी हुआ है और विरोध भी। अनुमोदन-कर्त्ताओं की संख्या अधिक है, विरोधियों की कम। विरोध-कर्त्ताओं में विशेष करके अङ्गरेज़ हैं। उनकी दलीलों का खण्डन माननीय शारदा बाबू ने बड़ी योग्यता से किया है। इस विषय में उनके कई युक्तिपूर्ण और विद्वत्ता-गर्भित लेख अङ्गरेज़ी और बँगला मासिक पुस्तकों में निकल चुके हैं। उनके अगुआ होने से इस विषय को अधिक महत्व मिला है; उसमें कुछ कुछ प्राणसञ्चार हो आया है; उसकी उपयोगिता लोगों के ख़याल में आने लगी है। इस विषय का विचार शुरू हो गया है। जब विचार होता है तब विवाद भी होता है। विवाद होने से सत्यही की जीत होती है। और सत्य से लाभ के सिवा हानि नहीं होती। देशभर में एक व्यापक लिपि की आवश्यकता है। यह बात सच है। इससे यदि ऐसी लिपि का प्रचार हो जाय तो अवश्य लाभ हो। इसमें संदेह नहीं।

योरप में इङ्गलेण्ड, फ्रांस, स्पेन, जर्मनी, रूस, इटली, स्वीडन आदि अनेक देश हैं। उन सबकी भाषा अलग अलग है। पर लिपि सबकी एक है। यही क्यों? जो लिपि योरप में है वही अमेरिका में भी है, वही हज़ारों कोस दूर आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्ड आदि टापुओं में भी है। इसका फल भी प्रत्यक्ष है। एक लिपि में लिखी जाने और प्रत्येक भाषा की अनेक शब्दों की उत्पत्ति ग्रीक और रोमन आदि पुरानी भाषाओं से होने के कारण योरप और अमेरिकावाले अपनी भाषा के सिवा दो दो चार चार अन्यभाषायें भी सहजही में सीख लेते हैं। इस तरह अन्यभाषाओं के विद्वानों के ग्रन्थ और लेखों से वे बहुत कुछ लाभ उठाते हैं। इस कारण उनमें परस्पर सहानुभूति और एकता बढ़ जाती है। एक देश में रहने, एक तरह की पोशाक पहनने और एक धर्म्म को मानने से परस्पर बन्धु-भाव अवश्यही उत्पन्न होजाता है। परन्तु पारस्परिक सहानुभूति और बन्धुता उत्पन्न करने की, एक लिपि में, इन बातों की भी अपेक्षा अधिक शक्ति है। भिन्न धर्म्म, भिन्न परिच्छद और भिन्न देश होने पर भी लिपि एक होने से पारस्परिक सहानुभूति उत्पन्न हुए बिना नहीं रहती। जहां किसी तरह की समता होती है, वहां ममता ज़रूर उत्पन्न होती है। और ममता से एकता आती है। एकता ही देश का बल है। जहां एकता नहीं होती वहां बल का सर्वथा अभाव रहता है। और जो समाज निर्बल है—जिसमें एकता रूपी बल नहीं है—उसे निर्जीव समझना चाहिए। ऐसे देश का अधःपतन अवश्य होता है, चाहे विलम्ब से हो चाहे अविलम्ब से।

व्यापक भाषा होने के लिए—देश भर में एक भाषा प्रचलित करने के लिए—एक लिपि का होना कार्य्य-सिद्धि का अव्यर्थ साधक है। एक भाषा का होना अधिक कष्टसाध्य है। पर एक लिपि का होना उतना कष्टसाध्य नहीं। यही समझ कर माननीय शारदाचरण ने व्यापक भाषा की बात छोड़ कर अभी सिर्फ़ व्यापक लिपि की बात उठाई है। सब काम क्रमही क्रम हो सकते हैं। नीचे की सीढ़ी पर पैर रख करही आदमी ऊपर की सीढ़ी तक पहुँच सकता है। एकदम उछल कर वह ऊपर नहीं जा सकता।

योरप के भिन्न भिन्न देशों में—हज़ारों कोस दूर टापुओं तक में—जब एक लिपि का प्रचार है, तब हिन्दुस्तान में एक लिपि क्यों सम्भव नहीं? सर्वथा सम्भव है। जिनके धर्म्म-ग्रन्थ संस्कृत में हैं उनके

अर्थात् हिन्दुओं में, एक लिपि बहुत ही कम परिश्रम और प्रयत्न से प्रचलित हो सकती है। जिनकी भाषा संस्कृत से निकली हुई है, और जिनकी लिपि देवनागरी लिपि से मिलती हुई है, उनके एक लिपि, अर्थात् देवनागरी, स्वीकार करलेना तो और भी कम कष्टसाध्य है। डाकृर ग्रियर्सन ने हिन्दुस्तान की भाषाओं और बोलियों के विषय में अभी हाल में जो एक बहुत बड़ा ग्रन्थ, कई भागों में, लिखा है, उसमें इस बात का हिसाब है कि हिन्दुस्तान के तीस करोड़ आदमियों में से कितने आदमी कौन भाषा बोलते हैं। जो लोग संस्कृत से सम्बन्ध रखनेवाली भाषायें बोलते हैं, उनका हिसाब इस तरह है—

पूर्वी और पश्चिमी हिन्दी	...	६,२८,००,०००
माध्यमिक हिन्दी	...	३,१२,००,०००
पञ्जाबी	...	१,७०,००,०००
राजस्थानी	...	१,९०,००,०००
		१२,१९,००,०००
बँगला	...	४,४६,००,०००
मराठी	..	१,८२,००,०००
गुजराती	...	१,००,००,०००
फुटकर भाषायें	...	२,००,००,०००
	.	९,२८,००,०००
कुल	...	२१,४७,०००००

अर्थात् तीस करोड़ आदमियों में से साढ़े इक्कीस करोड़ आदमी संस्कृतमूलक भाषा बोलते हैं। शेष साढ़े आठ करोड़ तामील, तेलूगी आदि ऐसी भाषायें बोलते हैं जो संस्कृत से नहीं निकलीं। अर्थात् आर्य्यभाषा बोलनेवालों की अपेक्षा अनार्य भाषा बोलने वालों की संख्या सिर्फ़ एक तिहाई से कुछही अधिक है। अतएव इन्हीं लोगों को एक लिपि, अर्थात् देवनागरी, स्वीकार करने में विशेष कठिनता पड़ेगी। परन्तु एक लिपि से होनेवाले लाभों का विचार करके इस कठिनता को परिश्रमपूर्वक हल करलेना इन लोगों का परम कर्तव्य है। आर्य्यभाषा बोलनेवालों में से कोई बारह करोड़ आदमी देवनागरी लिपि को ही काम में लाते हैं। पञ्जाब में इस लिपि का प्रचार कुछ कम है। पर वहां गुरुमुखी लिपि काम में आती है; वह देवनागरी लिपि का ही अपभ्रष्ट रूपान्तर है। जो लोग अरबी से निकली हुई फ़ारसी लिपि लिखते हैं, उनकी संख्या, इस हिसाब को देखते, इतनी ही है जितना दाल में नमक। अतएव इस बातके मान लेने में कोई बाधा नहीं कि बारह करोड़ आदमी देवनागरी लिपि को काम में लाते हैं। बाक़ी नौ करोड़ आदमी बँगला, मराठी और गुजराती इत्यादि बोलने वाले हैं। इसमें से भी प्रायः दो करोड़ मराठी बोलनेवालों को छोड़ दीजिए, क्योंकि वे छापने में, और कभी कभी लिखने में भी, देवनागरी ही वर्णमाला काम में लाते हैं। अब सिर्फ़ सात करोड़ आदमी रहे जो थोड़े परिश्रम से देवनागरी वर्णमाला सीखकर उसे लिख पढ़ सकते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि कोई चौदह करोड़ आदमी देवनागरी लिपि इस समय भी लिखते हैं और कोई सात करोड़ थोड़े परिश्रम से सीख सकते हैं। शेष नौ करोड़ आदमियों को इसे सीखने के लिए अधिक परिश्रम करना पड़ेगा। इसमें मुसल्मानों की भी संख्या शामिल है। उसे निकाल डालने से पिछले प्रकार के आदमियों की संख्या और भी कम हो जायगी।

गुजरात में जो लिपि काम में आती है उसे बने अभी सौ वर्ष भी नहीं हुए। यह एक गुजराती विद्वान् का मत है। देवनागरी और गुजराती लिपि में बहुत ही कम अन्तर है। देवनागरी लिपि को, दो तीन दिन, कुछ देर तक ध्यानपूर्वक देखने से, यह अन्तर मालूम होसकता है और बहुत थोड़े अभ्यास से गुजराती लिपि के जाननेवाले देवनागरी को पढ़ सकते हैं। गुजरात में जितनी संस्कृत की पुस्तकें प्रचलित हैं वे प्रायः देवनागरीही में हैं। पुस्तकों और समाचारपत्रों में प्रमाणस्वरूप जहां कहीं

संस्कृत के वाक्य या श्लोक देने पड़ते हैं, वहां वे प्रायः देवनागरीही लिपि में दिये जाते हैं। फिर, गुजराती विद्वान् देवनागरी लिपि की विशुद्धता और एक लिपि के लाभ अच्छी तरह समझ गये हैं। अतएव उनकी प्रवृत्ति इस तरफ़ खुदही हो रही है। आशा है, यदि इसी प्रकार इस विषय में चल-विचलता जारी रही तो गुजरात में बहुत जल्द इस लिपि का प्रचार प्रारम्भ हो जाय। पारसी लोगों की भी लिपि गुजराती है। पर उनका ध्यान, अभी तक, इस विषय की तरफ़ नहीं गया। उनके धर्म्मग्रन्थ पहलवी भाषा में हैं। अतएव उनको संस्कृत ग्रन्थ पढ़ने और उसके द्वारा देव-नागरी लिपि से पहचान करने का बहुत कम अवसर मिलता है। उनकी उदासीनता का यही कारण जान पड़ता है। कोई कोई तो कहते हैं कि पहले पहल पारसी लोगों ही ने गुजराती भाषा का प्रचार छापे में किया। क्योंकि सबसे पहले उन्हींने छापेख़ाने खोले। सुनते हैं, पचास साठ वर्ष पहले गुजराती लिपिका प्रचार सिर्फ़ महाजनी बही खाते में होता था, और कहीं नहीं। परन्तु पारसियों की संख्या बहुत कम है। यदि वे इस सर्वोपयोगी और देशकल्याणजनक लिपि को न स्वीकार करें तो भी विशेष हानि नहीं। परन्तु ऐसा वे शायद ही करें। जब गुजराती इस लिपि को काम में लाने लगेंगे तब पारसियों को लानाही पड़ैगा।

नागरी लिपि को काम में लाने के लिये बंगा-लियों के अग्रगामी होने की बड़ी आवश्यकता है। बँगला लिपि भी देवनागरीमूलक है। दोनों की वर्णमाला में अन्तर है। पर बहुत थोड़ा। पढ़े लिखे आदमी एक घण्टा रोज़ अभ्यास करने से अधिक से अधिक एक हफ़्ते में बँगला लिपि को अच्छी तरह सीख सकते हैं। और बँगला जानने वाले देवनागरी लिपि को उससे भी कम समय में जान सकते हैं। फिर, बङ्गाल में संस्कृत के बहुत से ग्रन्थ देवनागरी ही में छपते हैं। अतएव वङ्ग-वासियों के समुदाय का कुछ अंश इस लिपि से पहलेही से परिचित है। जो नहीं है वह भी बहुत थोड़े परिश्रम से परिचय प्राप्त कर सकता है। इससे आशा है कि विचारशील वङ्गवासी मान-नीय शारदाचरण मित्र के देशव्यापक-लिपि-विषयक प्रस्ताव को स्वीकार करके नागरी लिपि के प्रचार में अवश्य दत्तचित्त होंगे। सुनते हैं, इस परमावश्यक प्रस्ताव के फलवान् होने का चिन्ह भी शीघ्रही देखने को मिलेगा। कलकत्ते के "इण्डियन मिरर" नामक समाचारपत्र ने लिखा है कि "देवनागरी-विस्तारक परिषद्" नाम की एक सभा शीघ्रही बननेवाली है। वह एक या सामयिक पत्रिका निकालेगी जिसमें हिन्दी बँगला, गुजराती, मराठी और तैलगू भाषाओं लेख रहेंगे। पर लिपि सबकी नागरीही रहेगी यह सभा एक देवनागरी परीक्षा भी जारी करे और जो बँगाली लड़के इसमें पास होंगे उन सोने और चांदी के तमगे और प्रशंसापत्र भी देगी। बहुत ही अच्छा विचार है। एवं भव तथास्तु !

हमारी समझ में कलकत्ते से पांच भाषाओं पत्र निकालने से कम लाभ होगा। जिस प्रान्त का पत्र होता है, उसीमें अक्सर उसका अधिक प्रचार होता है। अतएव ऐसे पत्र से विशेष करके बंगा-लियों ही को अधिक लाभ होने की सम्भावना है और एकही साथ कई भाषायें सीखना ज़रा कठि भी है। इससे यदि प्रत्येक प्रान्त में प्रान्तीय भा के साथ साथ सिर्फ़ हिन्दी भाषा में कोई पत्र पत्रिका निकले और लिपि दोनों की नागरी हो तो विशेष लाभ हो। इससे नागरी लिपि सीख में तो सुभीता होहीगा। उसके साथ हिन्दी भा सीखने में भी सहायता मिलैगी। अतएव लिपि का प्रचार हो जाने पर कुछ काल में भाषा के प्रचार का मार्ग भी प्रशस्त हो जायगा एक लिपि के प्रचार के लिए गवर्नमेण्ट से सहाय पाने की पहलेही से इच्छा रखना व्यर्थ है।

ग्रीअर्ज़ साहब की कैथी ।

स्वर

𑂃 𑂄 𑂅 𑂆 𑂇 𑂈 𑂉 𑂊 𑂋 𑂌

- 𑂰 𑂱 𑂲 𑂳 𑂴 𑂵 𑂶 𑂷 𑂸

व्यञ्जन

𑂍	𑂎	𑂏	𑂐	𑂑
𑂒	𑂓	𑂔	𑂕	𑂖
𑂗	𑂘	𑂙	𑂛	𑂝
𑂞	𑂟	𑂠	𑂡	𑂢
𑂣	𑂤	𑂥	𑂦	𑂧
𑂨	𑂩	𑂪	𑂫	𑂬
𑂭	𑂮	𑂯 [illegible]	[illegible]	𑂭

संयुक्त वर्ण

क + क	𑂍𑂹𑂍	ग + ध	𑂏𑂹𑂡	घ + र	𑂐𑂹𑂩
ख	𑂍𑂹𑂎	न	𑂏𑂹𑂢	च + च	𑂒𑂹𑂒
त	𑂍𑂹𑂞	म	𑂏𑂹𑂧	छ	𑂒𑂹𑂓
म	𑂍𑂹𑂧	य	𑂏𑂹𑂨	य	𑂒𑂹𑂨
य	𑂍𑂹𑂨	र	𑂏𑂹𑂩	ह	𑂒𑂹𑂯
र	𑂍𑂹𑂩	ल	𑂏𑂹𑂪	ज + ज	𑂔𑂹𑂔
ल	𑂍𑂹𑂪	व	𑂏𑂹𑂫	झ	[illegible]
ष	𑂍𑂹𑂭	ध + न	𑂡𑂹𑂢	ञ	[illegible]

सर्व-साधारण की प्रवृत्ति इस तरफ़ हुई और इस लिपि का प्रचार थोड़ा बहुत होगया तो, उस समय, प्रारम्भिक शिक्षा की पुस्तकों को नागरी लिपि में छपवाने के लिये गवर्नमेण्ट से प्रार्थना करना असामयिक न होगा। यदि गवर्नमेण्ट को मालूम हो जायगा कि लोग इस लिपि को चाहते हैं और इसका प्रचार भी हो चला है तो वह प्रसन्नतापूर्वक इस प्रार्थना को मान लेगी। इस दशा में इस लिपि के सार्वदेशिक होने में कोई सन्देह न रह जायगा।

इस देश की और भाषाओं की अपेक्षा बँगला भाषा अधिक उन्नत है। इससे बँगालियों को अपनी लिपि के सहसा बदल डालने में सङ्कोच होना स्वाभाविक है। पर समाजहित भी कोई चीज़ है। देश-कल्याणचिन्ता भी कोई वस्तु है। देश के शुभचिन्तक अपना शरीर और सर्वस्व तक दे डालते हैं। पर एक लिपि के लिए इतने आत्मत्याग की ज़रूरत नहीं। ज़रूरत सिर्फ़ बँगला अक्षरों की जगह नागरी अक्षरों से काम लेने की है। इसमें कठिनता ज़रूर है और थोड़ी हानि होने की भी सम्भावना है। पर भावी लाभ के सामने यह कठिनता और यह लाभ स्वदेश-प्रेमियों के लिए तुच्छ है। यदि वे बँगला पुस्तकों और पत्रों को क्रम क्रम से नागरी लिपि में छापने लगेंगे तो बँगला सहित्य में भरा हुआ ज्ञानभाण्डार और प्रान्तवालों के लिए भी सुलभ हो जायगा। अन्य प्रान्तों में नागरी लिपि का प्रचार होने से भी यही बात होगी। प्रत्येक प्रान्त की अच्छी अच्छी पुस्तकों से देश भर को लाभ पहुंचैगा और धीरे धीरे सहानुभूति जागृत हो उठैगी। सहानुभूति से ऐक्य ज़रूर पैदा होगा। और ऐक्य के गुण कौन नहीं जानता? लिपि बदल देने से किसी पुस्तक या पत्र में लिखी गई बात का प्रभाव कम नहीं हो सकता। मराठी भाषा की पुस्तकें देवनागरी ही में प्रकाशित होती हैं। संस्कृत की अनेक पुस्तकें मदरास में तामील, तैलगू आदि में, और बंगाल में बँगला में छपकर प्रकाशित हो रही हैं। पर इस लिपिव्यावर्तन से उनको अणुमात्र भी हानि नहीं पहुँची।

देवनागरी लिपि के प्रचार में अनार्य भाषा बोलने और अनार्य लिपि लिखनेवालों को अधिक परिश्रम करना पड़ैगा। ऐसी भाषा और लिपि का प्रचार मदरास प्रान्त में है। पर इस प्रान्तवालों का भी संस्कृत से थोड़ा बहुत परिचय है। और संस्कृत के ग्रन्थ देवनागरी लिपि में वहां भी प्रचलित हैं। अतएव इन ग्रन्थों को जो लोग पढ़ सकते हैं उनको नागरी लिपि से काम लेने में बहुत सुभीता होगा। एक लिपि का होना इस देश के लिए बहुत आवश्यक और बहुत उपयोगी है। अतएव ऐसे काम के लिए श्रम, कष्ट और ख़र्च आदि का विचार एक तरफ़ रखकर उसे सिद्ध करना इस देश में रहने वाले प्रत्येक आदमी को अपना कर्तव्य समझना चाहिए। बहुतसी लिपियों के होने से अनेक हानिया हैं। इस दशा में एक प्रान्त वाले दूसरे प्रान्त की भाषा में छपी हुई पुस्तकों से लाभ नहीं उठा सकते। पर यदि सब प्रान्तों में एकही लिपि प्रचलित हो जाय तो एक प्रान्त के आर्यभाषा बोलनेवाले दूसरे प्रान्त की आर्यभाषा की पुस्तकें सहजही में पढ़ सकें, और, ऐसी सब भाषायें संस्कृत-मूलक होने के कारण, उनका बहुत कुछ अंश वे समझ भी सकें। ऐसा होने से भिन्न भिन्न भाषाओं को अच्छी तरह जानने में भी बहुत सुभीता होगा।

अंगरेज़ों में से किसी किसी का मत है कि हिन्दुस्तान में रोमन अक्षरों का सार्वदेशिक प्रचार होना चाहिए। पर रोमन अक्षर यहां के लिए बिलकुलही अयोग्य हैं। यहां की भाषायें इन अक्षरों में शुद्धतापूर्वक लिखीही नहीं जा सकतीं। उनका अनुपयोगी होना इसीसे सिद्ध है कि गवर्नमेण्ट ने कचहरियों में कई बार उनके प्रचार का विचार किया। पर उनको सदोषता और अनुपयुक्तता के कारण उसे अपने विचार को छोड़ना

पड़ा। अंगरेज़ अफ़सर इन अक्षरों से परिचित होते हैं। अतएव अपने सुभीते के लिये यदि वे इनके प्रचार का प्रस्ताव करें तो उससे सिर्फ़ उनकी स्वार्थ-परता सिद्ध होती है। और कुछ नहीं। जो सर्वथा निर्दोष है; जिसका प्रयोग हिन्दुओं के शास्त्रों में है; संस्कृत-साहित्य का अक्षय्य भाण्डार जिसकी बदौलत अभी तक थोड़ा बहुत विद्यमान है, उसको छोड़कर और कोई वर्ण-माला हमारे लिए हितकर और उपयोगी नहीं।

सुनते हैं, बनारस-वासी पादरी यडविन ग्रीव्ज़ हिन्दी अच्छी जानते हैं। आपने हिन्दी में दो एक निबन्ध भी लिखे हैं। एप्रिल, मे और जून १९०५ के एकीकृत "हिन्दुस्तान रिव्यू" में आपने एक लेख अंगरेज़ी में प्रकाशित कराया है। आपकी राय में छापे के लिए तो देवनागरी वर्णमाला उपयोगी है। पर लिखने के लिए नहीं। आप कहते हैं कि देवनागरी लिखने में देरी लगती है। इसलिए लिखने में कैथी अक्षरों का प्रयोग होना चाहिए। आपकी राय में यदि कैथी अक्षरों का प्रयोग हो तो एक तिहाई समय की बचत हो और कागज़ पर से क़लम को बिना उठाये लिखने वाला उसे दौड़ाता चला जाय। कैथी के लिए आप इतनी बातों की आवश्यकता समझते हैं—

(१) प्रत्येक वर्ण का एकही निश्चित रूप हो।
(२) यदि दो वर्णों में समानता के कारण पढ़ने में भूल होने का डर हो तो दो में से एक का रूप कुछ बदल दिया जाय।
(३ संयुक्त-वर्ण बना लिये जायँ और उनसे काम लिया जाय।
(४) ह्रस्व और दीर्घ स्वरों का प्रयोग किया जाय।

आपके लेख के साथ कैथी स्वर, व्यञ्जन और संयुक्त वर्णों का एक नकशा छपा है। यह शायद आपही की कृति है। इसे हम भी अपने पाठकों के देखने के लिए प्रकाशित करते हैं।

हम पादरी साहब के प्रस्ताव के ख़िलाफ़ हैं। आपकी कैथी वर्णमाला में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ऊपर पाई नहीं है। इस पाई के न लगाने ही से क्या एक तिहाई समय बच सकता है? हमारी समझ में यह भ्रम है। पहले तो किसी भाषा में एक से अधिक लिपियों का होना कोई तारीफ़ की बात नहीं। अंगरेज़ी में एक से अधिक लिपियों के होने से सीखनेवालों को—विशेष करके विदेशियों को—थोड़ी बहुत कठिनता अवश्य पड़ती है। इस बात को क्या पादरी साहब नहीं मानते? आपने जो संयुक्त वर्णों की सूची दी, वह अपूर्ण है। पहला ही वर्ण लीजिए। क + थ = क्थ (रिक्थ); क + व = क्व (पक्व); क + स = क्स (अक्स) को आपने छोड़ ही दिया है। इसी तरह और संयोगी वर्णों के रूप भी आपने नहीं दिये हैं। शायद आपने यह सूची नमूने के तौर पर दी हो; सब वर्णों का योग, जान बूझ कर, आपने न दिखाया हो। ख़ैर, कुछ भी हो एक बात ज़रूर है कि सब संयोगी वर्णों का रूप निश्चित करने में संयुक्त वर्णों की संख्या बहुत बढ़ जायगी। इन सब वर्णों को लिखने का अभ्यास करना परिश्रम का काम है। जिस समय यह प्रस्ताव हो रहा है कि जिन प्रान्तों में देवनागरी लिपि प्रचलित नहीं है उनमें उसका प्रचार किया जाय, उस समय लिखने के लिए कैथी लिपि का प्रस्ताव करना मानों मूल प्रस्ताव में बाधा डालना है। क्योंकि लिखने में कैथी अक्षरों के प्रयोग के प्रस्ताव का अर्थ यह होता है कि यदि कोई बंगाली अथवा गुजराती, देवनागरी लिखने पढ़ने का अभ्यास करना चाहै तो उसे दो तरह की वर्णमालायें और बहुत से नये संयुक्त वर्ण सीखने पड़ें। इससे उसकी मेहनत दूनी हो जायगी और, सम्भव है, उन्हें सीखने का वह साहसही न करै। अतएव यदि कैथी के पक्ष में प्रबल प्रमाण दिये भी जासकें तो भी इस प्रस्ताव के अनुकूल यह समय नहीं।

फिर, क्या सचमुच ही कैथी की वर्णमाला ऐसी है जो बिना क़लम उठाये कोई उसे लिखता चला जाय? हमारी मन्दबुद्धि में तो वह ऐसी नहीं। उदाहरण के तौर पर देवनागरी और कैथी के कवर्ग

वर्णों का (नक़शा देखकर) मुक़ाबला कर लीजिए। देखिए, इन वर्णों में सिवा ऊपर की पाई के ग्रैार कैान बड़ा फ़र्क है। ते क्या सिर्फ़ ऊपर पाई न लगाने ही से क़लम बराबर दैाड़ सकती है? हमारी समझ में नहीं। ग्रीव्ज़ साहब अपनी बात के सप्रमाण सिद्ध करें ते शायद हम समझ जांय। आपकी एक बात ग्रैार भी हमारी समझ में नहीं आई। आपने ष ग्रैार ख का कैथी में एकही रूप रक्खा है। यह क्यों?

यदि ऊपर पाई लगाने ही से किसी लेखक के समय का सर्वनाश होता हो, तो वह काग़ज़ के एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक दमही एक लकीर खींच सकता है। पर क्या देवनागरी लिखने में सचमुचही कैथी से एक तिहाई अधिक समय लगता है? हमारी प्रार्थना है कि ग्रीव्ज़ साहब किसी अच्छे नागरी लेखक के किसी कैथी लिखनेवाले के साथ बिठलाकर इसकी परीक्षा करें। जिनको लिखने का अभ्यास है वे कैथी ही नहीं, घसीट उर्दू लिखनेवालों तक की बराबरी कर सकते हैं। किम्बहुना, कोई कोई उनको मात भी दें तो असम्भव नहीं। पादरी साहब की नागरी लिपि देखने का तो सैाभाग्य हमें नहीं हुआ, पर परलोकवासी पिन्काट साहब की दो एक चिट्ठियां हमारे पास हैं। वे नागरी में हैं। उनको देखने से जान पड़ता है कि पिन्काट साहब ने एक एक अक्षर एक एक मिनट में लिखा होगा। यदि ऐसे लेखक कैथी लिखनेवालों से कोसों पीछे पड़े रह जायँ ते कोई आश्चर्य्य नहीं।

व्योम-विहरण।

जीवधारियों के रहने के केवल तीन स्थान हैं। जल, थल ग्रैार आकाश। मनुष्य थलचारी है। इसलिये थल पर चलना उसके लिये स्वाभाविक है। परन्तु इस थल-विचरण के वेग के घोड़ा-गाड़ी, पैरगाड़ी ग्रैार रेलगाड़ी चला कर उसने बहुत ही अधिक कर दिया है। यहां तक कि अब मोटर गाड़ी ग्रैार बिजुली की रेल का आविष्कार करके उसने इस विचरण-वेग की ग्रैार भी विशेष उन्नति की है। यह हुई थल की बात। जल में भी मनुष्य की शक्ति-मत्ता अखण्ड है। वहां भी उसकी बनाई हुई नाव, जहाज़, धुवांकश, बैटलशिप, क्रूज़र ग्रैार टारपीडो इत्यादि विलक्षण विलक्षण जल-यान दैाड़ा करते हैं। जिसने, इस प्रकार, जल ग्रैार थल, दोनों, में अपना आधिपत्य जमा लिया वह आकाश को भी वशीभूत करने की अभिलाषा रक्खेगा। इसमें आश्चर्य्यही क्या है? आश्चर्य्य तब होता जब वह व्योम-विहार करने का यत्न न करता। परन्तु जल ग्रैार थल में जिसका आवा-गमन अविच्छिन्न है, उसके चित्त से व्योम में विचरण करने की वासना भला कब तक दूर रह सकती है?

सरस्वती की किसी संख्या में "विमान ग्रैार उड़नेवाले मनुष्य" शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है। उससे सूचित है कि विमान का किसी समय पूरा प्रचार था। विमान का उल्लेख पुराणों में अनेक स्थानों पर आया है। परन्तु ये पुरानी बातें हैं; इससे इनको जाने दीजिये। हां, हम यहां पर यह कह देना चाहते हैं कि ग्रीक ग्रैार रोमन लोगों की पैाराणिक ग्रैार ऐतिहासिक पुस्तकों में भी व्योम-यान की कथायें वर्णित हैं; ग्रैार ऐसे मनुष्यों के नाम भी दिये हुए हैं जिन्होंने आकाश में उड़ने का यत्न किया था। सोलहवें शतक में एक इटली-निवासीने इँगलैण्ड के राजा चैाथे जेम्स के सामने आकाश में उड्डान करने का यत्न किया। उसने एक प्रकार के पंख बनाये थे। परन्तु उनसे कुछ काम न निकला ग्रैार उड़ने के प्रयत्न में उसका पैर चूर हो गया। सत्तरहवें शतक में भी इँगलैण्ड, आस्ट्रिया ग्रैार रूम में लोगोंने तरह तरह की कलें बनाकर आकाश-विहार करना चाहा; परन्तु किसीको

सफलता नहीं हुई। किसीका पैर टूटा; किसी-का सिर फूटा; कोई मरा; कोई जन्म भर के लिए लँगड़ा हुआ। इस पर भी व्योम-विहार की इच्छा मनुष्यों के मन से दूर नहीं हुई। समय समय पर प्रयत्न होतेही रहे।

अठारवीं शताब्दी में पहले पहल व्योम-विहारिणी विद्या में सफलता हुई। फ्रांस में लायन नगर से ४० मील दूर एनोने नामक क़सबे में स्टेफयन माँटगोफ़ियर और जोज़ेफ़ माँटगोफ़ियर नामधारी दो भाई रहते थे। वे क़ागज़ी थे। उनका व्यवसाय क़ागज़ बनाना और बेचना था। एक दिन आकाश में बादलों को लटका देख उनके जीमें आया, कि यदि बादलों के समान कोई चोज़ किसी थैले में भर दी जाय, तो वह भी आकाश में उड़ सके; और अपने साथही उस थैले को भी वह उड़ा ले जाय। इसकी परीक्षा के लिए उन्होंने नीचे धुवां करके ऊपर एक पतला थैला लटकाया। थैला धुवें से भर जाने पर सचमुचही ऊपर को कुछ दूर उड़ गया। इस परीक्षा ने उनके ख़याल को सच्चा साबित किया। इससे उत्साहित होकर ५ जून, १७८३ ईसवी, को १०५ फुट परिधि का एक कपड़े का गोला बनाकर, और उसमें धुवां भर कर, सर्वसाधारण के सामने उन्होंने उसे उड़ाया। वह कोई १० मिनट तक आकाश में रहा और डेढ़ मील दूर जाकर गिरा। यह पहला ग़ुब्बारा है। इसकी क्रम क्रमसे उन्नति होने लगी। पहले इसमें एक भेड़ी, एक मुर्गी और एक बतक—ये तीनों जीव—रखकर उड़ाये गये; फिर मनुष्य भी बैठकर उड़ने लगे। अब, इस समय, ग़ुब्बारे और ग़ुब्बारेबाज़ों की इतनी अधिकता है कि इस देश में भी इनका खेल होता है। इस देशवाले भी इनमें बैठकर उड़ते हैं।

ग़ुब्बारे प्रायः रेशम के बनाये जाते हैं। पहले इनमें धुवां भरा जाता था; फिर हाईड्रोजन (जलकर) गैस भरा जाने लगा; परन्तु अब कोयले के गैस से काम लिया जाता है। उतरते समय ग़ुब्बारे का वेग कम करने के लिए, और उसके फट जाने पर, नीचे सुरक्षित उतरने के लिये उसके साथ पैराच्यूट नामक एक छत्तरी रहती है। पैराच्यूट सहित ग़ुब्बारे को बहुतोंने प्रत्यक्ष देखा होगा।

ग़ुब्बारे की विद्या ने बहुत उन्नति की है। उसमें बैठकर लोग दूर दूर की यात्रा आकाश की राह से, करते हैं; आटलाण्टिक सागर तक को पार कर जाना चाहते हैं; और आकाश में आठ मील तक ऊपर चले जाते हैं! अब इतने इतने बड़े ग़ुब्बारे बनते हैं कि हज़ारों घनफुट गैस उनमें भरी जा सकती है। इस व्योम-विहार में अनेक दुर्घटनायें भी होती हैं; परन्तु साहसी मनुष्य उड़ने से नहीं डरते, और दुर्घटनाओं के रोकने का नित्त नया प्रबन्ध करते हैं। नई नई युक्तियों के द्वारा विद्वानों ने ग़ुब्बारे के द्वारा आकाश-विहार की दुर्घटनाएं अब बहुत ही कम कर दी हैं। अब अनेक मनुष्य मेघमण्डल को फोड़ कर ऊपर चले जाते हैं; और सैकड़ों प्रकार की वैज्ञानिक परीक्षाएं करके विज्ञान की उन्नति साधन करते हैं। ग़ुब्बारों से युद्ध में भी बहुत बड़ा काम
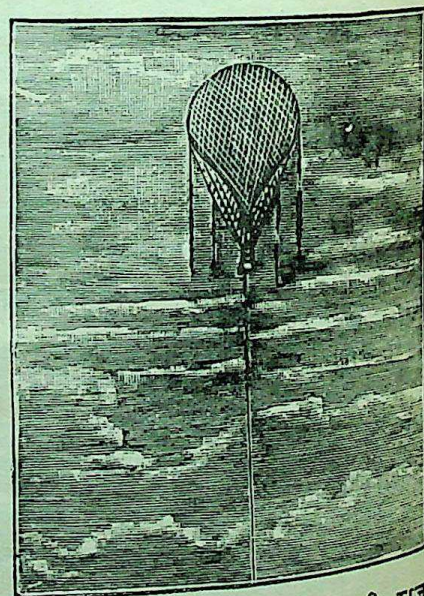
निकलता है। १८७०-७१ में फ्रांस की राजधानी पेरिस बहुत दिन तक जर्मनवालों के द्वारा घिरी

थी। उस समय ६४ .गुब्बारों से काम लिया जाता था। यदि .गुब्बारे न होते तो पेरिस की दशा बहुत ही भयङ्कर रूप धारण करती। इन्हींके द्वारा बाहर के समाचार पेरिस में और पेरिस के समाचार बाहर भेजे जाते थे। ट्रांसवाल की लड़ाई में भी .गुब्बारों से बहुत काम लिया गया था। रूस-जापान की लड़ाई में भी .गुब्बारों से काम लिया जा रहा है। यह विद्या अब सेना के अधिकारियों को भी सिखलाई जाती है; और इसकी कम्पनियां भी योरप और अमेरिका के प्रसिद्ध प्रसिद्ध नगरों में स्थापित होगई हैं। बहुतेरों ने तो .गुब्बारेबाज़ी अपना रोज़गारही बना रक्खा है। बहुतेरे मनोविनोद के ही लिये .गुब्बारों में व्योम-विहार करते हैं। अभी कुछ दिन हुए, पेरिस से बड़े बड़े चार .गुब्बारों में कई विज्ञानी और कई राजवंशीय पुरुष उड़े थे। उन्होंने छ सात सौ मील की यात्रा, आकाशमार्ग से, केवल कुछ घण्टों में समाप्त की थी!

पानी के ऊपर जब लकड़ी तैरने लगती है तब वह कुछ उसके ऊपर रहती है, कुछ नीचे। अर्थात् कुछ पानी को, उसके स्थान से हटाकर, उस स्थान को वह लकड़ी स्वयं ले लेती है। इसका यह अर्थ हुआ कि प्रवाही पदार्थों में, उसके जितने अंश को हटा कर, कोई पदार्थ उसका स्थान ले लेता है, उसका वज़न उस हटाये हुए अंश के बराबर होता है। यदि ऐसा न होता तो लकड़ी कभी न तैरती। जब दो पदार्थों का बोझ बराबर होता है तभी यह बात सम्भव है। क्योंकि हम देखते हैं कि जो वस्तु पानी से अधिक वज़नी है, वह उसके नीचे चली जाती है। जिन नियमों के अनुसार लकड़ी पानी पर तैरती है, उन्हीं नियमों के अनुसार .गुब्बारा हवा में तैरता है। पृथ्वी के पास जो हवा है वह ऊपर की हवा से अधिक घनी है; अतएव अधिक वज़नी है। ऊपर की हवा की तह नीचे की हवा के ऊपर रहते हैं; इससे नीचे की हवा पर विशेष बोझ पड़ता है; अतएव वह अधिक वज़नी होती है। .गुब्बारे में जो गैस भरी जाती है वह नीचे की हवा से हलकी होती है; इस लिए वह उसके ऊपर चली जाती है। जहां तक गैस और हवा का तुल्यगुरुत्व नहीं होता, तहां तक .गुब्बारा ऊंचा उठता है। और जहां हवा और .गुब्बारे का गुरुत्व—बोझ—एक हो जाता है, वहां से आगे वह नहीं बढ़ सकता। .गुब्बारों के सम्बन्ध का यह एक स्थूल नियम है।

जबसे .गुब्बारे की उत्पत्ति हुई, और जबसे तत्सम्बन्धी नियमों का ज्ञान हुआ, तबसे अनेक मनुष्य आकाश-विहारिणी कलों के निर्म्माण में व्यग्र हो रहे हैं। फ़्रांस, इँगलैण्ड, जर्मनी और अमेरिका आदि में व्योम-विहारिणी-विद्या-विषयक अनेक सभाएं हैं। उनके सभासद इस विषय में नाना प्रकार के खोज करते रहते हैं; विविध भाँति की परीक्षायें करते हैं; व्योम-विहारिणी कलों के नमूने बनाकर दिखलाते हैं; और समय समय पर नई नई बातों का ज्ञान प्राप्त करके उन पर निबन्ध लिखते हैं। परन्तु अभी तक इस विषय में पूरी सफलता नहीं हुई। विज्ञानियों का मत है कि .गुब्बारे से विमान का काम नहीं निकल सकता। चाहे उसमें जितनी उन्नति हो; परन्तु उस पर सवार होकर यथेच्छ आकाश-भ्रमण असम्भव है। व्योम-विहरण के लिये ऐसा रथ, ऐसा यान, ऐसा पेंच चाहिये जिसे यथेच्छ ऊंचा नीचा कर सकें; जिसका वेग यथेच्छ न्यूनाधिक कर सकें; जिसे यथेच्छ दिशा की ओर ले जा सकें; और जिसे यथेच्छ ज़मीन पर उतार सकें। व्योम-विहार के लिए ऐसी कल होनी चाहिये जो हवा से अधिक वज़नी हो। तभी हवा में यथेच्छ विहार करना सम्भव हो सकता है। आज तक अनेक प्रयत्न व्योम-विहरण के हो चुके हैं, और अनेक मनुष्यों ने अपने प्राण भी इस उद्योग में खोये हैं। तथापि यह उद्योग बन्द नहीं है; बराबर जारी है। कुछ दिन से इसमें सफलता के लक्षण भी दिखाई दे रहे हैं। बड़े बड़े अध्यापक और

बड़े बड़े विज्ञानियों का मत है कि आकाश में इच्छानुसार उड़ना बहुत कठिन समस्या है। परन्तु जब उद्योगी विद्वान देखते हैं कि मनुष्य से सैकड़ों दरजे हीनबुद्धि वाले पक्षी ख़ूब उड़ते हैं; पक्षियों को जाने दीजिए, मक्खो के समान छोटे छोटे पतङ्ग तक व्योम-विहार करते हैं; तब उनसे नहीं रहा जाता। वे कहते हैं कि मनुष्य के समान श्रेष्ठ प्राणी को, उद्योग और परिश्रम से, व्योम-विहरण विद्या अवश्य साध्य हो सकती है। अतएव कुछ काल से उन्होंने उड़नेवाले जीवों के पंखों की बनावट और उनके उड़ने के प्रकार आदि पर विचार आरम्भ किया है। वे इस बात की खोज में हैं कि वायुविहारी जीवों में क्या विशेषता है; उनके पंखों में क्या विशेषता है; और उनके उड़ने की रीति में क्या विशेषता है। उन्होंने यह निश्चय कर लिया है कि कोई भी उड़ने की कल जब तक पक्षियों के पंखों की बनावट के नियमानुकूल न तैयार होगी, तब तक वह कदापि न उड़ सकैगी। उड़ने की कल हवा से वज़नी होनी चाहिए और उसे हवा के ऊपर इस प्रकार तैरना चाहिये जैसे मनुष्य पानी पर तैरता है।

१६७० ईसवी में, पहले पहल बोरेली नामक विद्वान् ने, एक कृत्रिम चिड़िया बनाई। उसके पंखों की बनावट पर उसने एक निबन्ध लिखा और उनकी रचना का वर्णन करके उसने यह बतलाया कि इसी प्रकार के पंखों से वायु-विहारिणी कल आकाश में उड़ सकैगी। यह चिड़िया देखनेही की थी; उड़ी नहीं। परन्तु उस समय से लोगों का चित्त इस ओर विशेष आकर्षित हुआ और अध्यापक टीग्रयू जिरार्ड, पिनाड आदि ने भी इस विषय में कई लेख लिखे उड़ने की कल का पहला नमूना सर जार्ज केली ने १७९६ ई० में बनाया। यह एक लड़कों का खेल है; परन्तु व्योम-विहारिणी कलों का आरम्भ यहीं से हुआ है।

हग्नसन नामक एक यञ्जिनियर ने एक और ही युक्ति के आश्रय पर उड़ने की एक कल बनाई। इसकी बड़ी तारीफ़ हुई। परन्तु इससे भी अच्छी कल १८६८ ईसवी में स्ट्रिंगफ़ेलो साहब ने बनाकर १५०० रुपए का इनाम पाया। ग्रेट-ब्रिटेन की व्योम-विहारिणी सभा की प्रदर्शनी में यह कल दिखलाई गई। इसे लोगों ने बड़े आश्चर्य से देखा। इसमें तीन पट थे; पीछे की ओर पक्षियों की सी पूंछ थी जो पतवार का काम देती थी; और दो कीलक थे जिन्हें एक छोटा सा यञ्जिन घुमाता था। यञ्जिन का बल ½ घोड़े के बल के बराबर था। इस कल के तीनों पटों का विस्तार २८ [illegible] फ़ुट था। यह कल एक बन्द मकान के भीतर एक तारके ऊपर दौड़ती हुई दिखलाई गई थी। इसके बनानेवाले का कथन था कि यह बाहर आकाश में भी उड़ सकती है; परन्तु आकाश में इसे किसी ने उड़ते नहीं देखा। विज्ञानियों और यञ्जिनियरों का मत है कि आकाश में उड़ने के लिए यह सर्वथा अयोग्य थी।

इसी प्रकार अनेक विज्ञानियों ने अनेक यन्त्र आज तक निर्म्माण किये; परन्तु पूरी पूरी सफलता किसीको भी नहीं हुई। तथापि, अब ऐसे लक्षण देख पड़ने लगे हैं, कि कुछ दिनों में पवन-नौकायें और वायु-पोत यथेच्छ आकाश में विहार करने लगेंगे। अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी और ग्रेट-ब्रिटेन में, इस समय, बड़े बड़े विज्ञानो वायु-विहारिणी कलें बनाने में प्रवृत्त हैं। अभी, हाल में, जो परीक्षायें इन कलों की हुई हैं, उनसे पूरी पूरी आशा होती है कि पृथ्वी की तरह आकाश में भी शीघ्रही गाड़ियां दौड़ेंगी।

[असम्पूर्ण

लोमहर्षण शारीरिक दण्ड।

१८५७ ईसवी के पहले, इस देश में, ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रभुत्व था। उस समय, यहां कहीं कहीं, बड़ेही भयानक और हृदयविदारी

दण्ड दिये जाते थे। अपराधियों को, और यदा कदा निरपराधियों को भी शरीर-दुर्गति स्वदेशी राज्यों में तो होती ही थी; परन्तु, कहीं कहीं, अंगरेज़ी-अर्थात् ईस्ट इण्डिया कम्पनी के स्वाधीन —राज्य में भी होती थी। मदरास हाते में शारीरिक दण्ड की भीषणता और प्रदेशों की अपेक्षा बहुत ही अधिक थी। इस लिए गवर्नमेण्ट ने, १८५४ ईसवी में, इसकी जाँच करने के लिए एक कमीशन नियत किया था। इस कमीशन ने अपनी जांच का फल एक रिपोर्ट में सन्निविष्ट कर के, १५ एप्रिल १८५५ को, उसे गवर्नमेंट को भेजा। इस रिपोर्ट में जिस प्रकार के घोर शारीरिक दण्डों का वर्णन है उस वर्णन ही को सुन कर, औरों की तो बात ही नहीं, नादिरशाह और चीतू पिण्डारी के समान पाषाणहृदय मनुष्यों का भी कलेजा दहल उठेगा। इस रिपोर्ट में वर्णन किये गये अमानुषिक दण्डों की नामावली देकर हम पाठकों के कोमल हृदय को पीड़ा नहीं पहुँचाना चाहते। हम, यहां पर, उनसे कम यातना-जनक कुछ शारीरिक दण्डों का उल्लेख करेंगे।

मदरास में ट्रावनकोर एक प्रसिद्ध राज्य है। वहां इस समय सभ्यता का बड़ा ज़ोर शोर है। विद्या की भी वहां ख़ूब उन्नति है। परन्तु, किसी समय, वहां मनुष्यों को बड़े ही कठोर दण्ड दिये जाते थे। १८४८ ईसवी में, एक प्रख्यात अंगरेज़ ने, वहां के शारीरिक दण्डों की जो सूची प्रकाशित की थी उसको देखने से विदित होता है कि, उस समय, ट्रावनकोर में नीचे लिखे अनुसार दण्ड दिये जाते थे।

(१) हाथ पीछे रस्सी से बांध दिये जाते थे, और बांध कर खींचे जाते थे। खिंचाव धीरे धीरे बढ़ाया जाता था, यहां तक कि हाथों का उखड़ना ही भर बाक़ी रहता था। इधर, इस तरह, हाथ खींचे जाते थे; उधर गरदन झुका कर उस पर कोई बहुत बड़ी वज़नी चीज़ रख दी जाती थी; या बांध कर लटका दी जाती थी। (२) शरीर के अवयव—हाथ, पैर, कान, अँगुलियां आदि—मरोड़े जाते थे। इस मरोड़ और खींचाखींच में, कभी कभी, हड्डियां टूट जाती थीं; या अपनी जगह से हट जाती थीं। (३) दो लकड़ियां ली जाती थीं। वे दोनों, एक ओर, ढीली बांध दी जाती थीं। उनके बीच में अँगुलियां रख कर दबाई जाती थीं। इस दबाव की सीमा न थी। दबानेवाला यथेच्छ बल लगाता था। इस दण्ड में चिपटी होकर अँगुलियों से ख़ून बह निकलना साधारण बात थी। (४) कांटेदार पतली छड़ियों से पिटाई होती थी। (५) दो स्त्रियों के लम्बे केश खोल कर, उनके छोर एक दूसरे से बांध दिये जाते थे; और उन बँधे हुए केशों के बीच से एक भारी पत्थर या और कोई वज़नी चीज़ लटका दी जाती थी। (६) लोहे की एक लम्बी छड़ में, एक ओर दो चार छल्ले रहते थे। हर एक छल्ले में एक पैर डाल दिया जाता था। तब उस छड़ का दूसरा किनारा, किसी दीवार या लकड़ी के कुन्दे में, छेद कर के, उसके भीतर से खींचा जाता था। खींचने में अंधाधुन्ध बल लगाया जाता था। इस तरह, उस छड़ का छल्लावाला छोर दीवार या लकड़ी के कुन्दे के पास आ जाता था; और सबके पैर इकट्ठे होकर कटने लगते थे। (७) घण्टों हाथों के बल, किसी पेड़ या कड़ी से आदमी लटकाये जाते थे। (८) लटकते हुए के नीचे आग जलाई जाती थी और आग में अत्यन्त कड़ुई लाल मिर्च डाल कर उसके असहनीय धुवें से आंख, नाक और गले को उत्कट पीड़ा पहुंचाई जाती थी। (९) एक विशेष प्रकार की लकड़ी के भीतर पैर डाल कर आदमी काठ मार दिये जाते थे। (१०) कोठरी में डाल कर भीतर ख़ूब धुवां किया जाता था; और बाहर किवाड़े बंद कर दिये जाते थे। (११) लाल गरम चिमटे या सँड़सी से गुप्ताङ्ग दागे जाते थे। (१२) दस पांच गोबरौले (कीड़े) नारियल के आधे छिलके में रखकर, नाभि पर बांध दिये जाते थे। वे मास काट कर धीरे धीरे आँतों में प्रवेश करने की

चेष्टा करते थे; और अपराधी को मरणान्त वेदना पहुंचाते थे। (१३) हाथ में, कलाई से लेकर गांठ तक, नमक और रेत, देर तक, मलाजाता था। फिर वहीं, नारियल की सूखी पत्ती के डण्ठुर खूब कड़े कर के बांधे जाते थे। कुछ देर हो जाने पर, वे डण्ठुर, एक एक कर के, खींचे जाते थे। खींचने से मांस कटता चला आता था; और नमक और रेत के संयोग से अपराधी को असह्य यन्त्रणा होती थी।

किसी बात को क़बूल कराने, मालगुज़ारी अथवा लगान वसूल करने, और रिश्वत पाने के लिये ऐसी अमानुषी दण्डविधि का प्रयोग होता था। यह भारत के अत्यन्त दक्षिण में एक देशी राज्य की बात हुई। अब भारत के उत्तर कम्पनी बहादुर के राज्य की भी लीला सुन लीजिये।

१८५४ ईसवी में हेनरी ब्रेरेटन साहब लुधियाना में डेप्युटी कमिश्नर थे। उस समय आपको नौकरी करते १८ वर्ष हो गये थे। उनके किये हुये न्याय और फ़ैसले के ख़िलाफ़ पञ्जाब के चीफ़ कमिश्नर सर जान लारन्स को कई आदमियों ने अरज़ियां दीं। चीफ़ कमिश्नर ने इन अरज़ियों को सतलज के उस पारवाली देशी रियासतों के सुपरिण्टेण्डेण्ट बार्नस साहब के पास तहक़ीक़ात के लिये भेजा। बार्नस साहब ने, मौक़े पर जाकर, अच्छी तरह तहक़ीक़ात की; और इस मामिले की एक लम्बी रिपोर्ट भेजी। इसी रिपोर्ट में से हम कुछ बातें, बार्नस साहब ही के शब्दों में, भाषान्तर रूप, नीचे देते हैं—

"डेप्युटी कमिश्नर ब्रेरेटन साहब के साथ मैंने लुधियाने का जेल देखा। वह क़ैदियों से भरा हुआ था। लोगों ने मुझे घेर लिया, और उनपर जो अन्याय और ज़बरदस्ती हुई थी उसकी शिकायतें पेश कीं। मैंने सुना कि ब्रेरेटन साहब ने जासूस रक्खे थे। उनको गवर्नमेण्ट से तनख़्वाह मिलती थी। मुसाहबख़ां तहसीलदार और उसके भाई फ़तेहजङ्ग परवानेनवीस के ख़िलाफ़ अनेक शिकायतें हुईं। एक क़ैदी ने कहीं कह दिया कि सरदार चिम्मनसिंह के यहां चोरी का माल है। यह सरदार कुनैच का जागीरदार है; और इज़्ज़तदार आदमी है। ब्रेरेटन साहब की आज्ञा से फ़तेहजङ्ग पुलिस लेकर सरदार के घर पर पहुंचा। सरदार की उसने बेइज़्ज़ती की। डेप्यूटी कमिश्नर भी पीछे से वहां आये। 'चिम्मनसिंह का घर गिरा दिया गया; फ़र्श खोद डाला गया; और सारा असबाब लुधियाने के भेज दिया गया। इसी समय वहां के आठ इज़्ज़तदार ज़मीदार भी पकड़े गये। उनके बेड़ियां डाल दी गईं; और वे फ़तेहजङ्ग के सिपुर्द हुए। तीन महीने तक वे क़ैद रहे; और उनकी दुर्दशा की गई। मेरी समझ में वे बिलकुल निरापराध हैं। वे फ़तेहजङ्ग के [illegible] के घर में क़ैद रक्खे गये थे। उन पर जो बीती उसका वे वर्णन नहीं कर सकते। उनके सिर के बाल उनके पैर को बेड़ियों से बांध दिये गये थे। उनकी कुहनियों में मेख़ें ठोक दी गई थीं; और दूसरे मर्म्म-स्थलों की भी यही दशा की गई थी। रामदत्त और दत्तू की कुहनियों को मैंने खुद देखा; अभी तक उनमें मेख़ों के निशान बने हैं। जिस मनुष्य ने इन लोगों को यह दारुण दुख दिया उसका नाम अलाबख़्श है; वह फ़तेहजङ्ग का नौकर है। इन दोनों आदमियों को ऐसी सख़्त चोट पहुंची कि उनको जेल के अस्पताल में भेजना पड़ा। वहां, कई महीने में, उनके घाव आराम हुए"।

"जेल देखकर और शिकायत करनेवालों के बयान लिख कर मैं हवालात देखने गया। वहां मुझे १५ आदमी क़ैद मिले। महीनों से वे वहां पड़े थे; परन्तु दे। को छोड़ कर, औरों का बयान तक न लिखा गया था। ६ आदमी एक चोरी में शामिल रहने के शुभा में पकड़े गये थे। अकेले एक जासूस के कहने से फ़तेहजङ्ग ने उनको पकड़ा था। उनमें से एक का नाम देवासिंह है। वह कहता है कि फ़तेहजङ्ग ने मार मार कर उससे अपराध

स्वीकार कराया है। हरनामसिंह कहता है, कि वह फ़तेहजङ्ग के घर पर क़ैद था। वहां उस* ** में मेख ठोंक दी गई थी; फिर, वह अस्पताल को भेज दिया गया था। मैंने उसे अपनी आंखों से देखा। उसके ख़िलाफ़ कोई सबूत नहीं। उसकी मा रूपा कहती है कि फ़तेहजङ्ग और अलाबख़्श ने उसे नङ्गा करना चाहा। उसे अगस्त के महीने में धूप में उन्होंने खड़ा रक्खा और पीने को पानी तक न दिया। उसके मुँह पर फ़तेहजङ्ग ने मैले का तोबड़ा बाँध दिया। वह यह भी कहती है कि उसका घर भी खोद डाला गया और जो रुपया पैसा निकला वह फ़तेहजङ्ग उठा ले गया"।

बार्नेस साहब ने ऐसेही अनेक राक्षसी दण्डों की बातें लिखी हैं। उस ज़माने में, मेख़ ठोक देना, और लाल मिरच, तथा मैले का तोबड़ा चढ़ा देना तो बहुत साधारण बात थी। फ़तेहजङ्ग केवल एक परवाने-नवीस था। परन्तु डेप्यूटी कमिश्नर साहब ने उसे निःसीम शक्ति दे रक्खी थी। वह जहां चाहता था जाता था; जो चाहता था करता था; उसका घर ही हवालात का काम देता था; उसकी बैठक ही कचहरी थी। ब्रेरटन साहब ने अपनी रिपोर्ट चीफ़ कमिश्नर को भेजी; चीफ़ कमिश्नर ने लार्ड डलहौसी को लिखा; लाट साहब ने, विलायत में, कोर्ट आफ़ डाईरेक्टर्स को ख़बर दी। तब कहीं डिप्यूटी कमिश्नर साहब की न्यायपरायणता का न्याय हुआ। कोई दो वर्ष में विलायत से हुक्म निकला कि ब्रेरटन साहब डेप्यूटी कमिश्नर से असिस्टण्ट कमिश्नर कर दिये जायँ। तब तक उन्होंने तीन वर्ष की "फ़रलो" ले ली। फ़तेहजङ्ग ८ वर्ष के लिये जेल भेजा गया; और उसका भाई डिसमिस कर दिया गया। जेलर ने केवल ज़बानी हुक्म से निरपराध लोगों को जेल में ठूंसा था, उसको केवल "धमकी" मिली। और जेल के डाकृर साहब, जिन्होंने उन बेचारे सिक्खों की चुपचाप दवा दारू की थी, उनके लिए भी "धमकी" ही काफ़ी समझी गई।

इस समय भी, कभी कभी, अख़बारों में पुलिस के अमानुषी कर्म्मों की कथा सुनने को मिलती है; परन्तु गदर के पहले के भीषण दण्डों का विचार करके हृदय कँप उठता है। अच्छा हुआ, बृटिश गवर्नमेण्ट ने इस देश का राज्यसूत्र, ईस्ट इण्डिया कम्पनी से, अपने हाथ में ले लिया।

वाजिदअली शाह के ज़माने में अवध के डाकू, लुटेरे और बाग़ी तअल्लुक़ेदार भी बहुतही भयङ्कर शरीर-दण्ड देते थे। उनका ज़िकर वाजिदअली-शाह के चरित में आवैगा। यह चरित यथासम्भव शीघ्र छपैगा।

जापान की जीत का कारण।

लोगों का ख़याल है कि जपानकी उन्नति का आरम्भ हुए केवल ४० वर्ष हुए। परन्तु जापान के भूतपूर्व मन्त्री कौण्ट ओक्यूमा इस बात को नहीं स्वीकार करते। वे कहते हैं कि जापान की सभ्यता १५०० वर्ष की पुरानी है। १५०० वर्ष पहले जापान ने चीन, कोरिया और हिन्दुस्तान से सभ्यता सीखी। पर उस सभ्यता को जापान ने अपने अनुकूल बना लिया। अर्थात् जिस रूप में उसने पाया उस रूपमें उसे न रखकर अपने देश की अवस्था के अनुसार उसने उसमें फेर फार कर दिया। धर्म्म, साहित्य, नीति और कला कौशल आदि सब विषयों में जापान ने इस तरह के फेरफार किये।

जब जापान में विदेशियों ने पैर रक्खा तब उसने उन्हें वैसा करने से मना किया। पर इसमें वह असमर्थ हुआ। तब इस असमर्थता का वह कारण ढूंढ़ने लगा। उसके ध्यान में आया कि विदेशियों को बलपूर्वक निकालना कठिन है। यदि दो एक दफ़े वे निकाल भी दिये जांयगे तो न मानेंगे।

वे फिर से आवेंगे। अतएव जिन बातों में ये लोग हमसे बढ़े हुए हैं उन्हें हमें सीखना चाहिए। उनके समान श्रेष्ठ होने ही में जापान का कल्याण है। यह निश्चय करके जापान ने जातिभेद को उठा दिया। सामाजिक दृष्टि से किसान और प्रधान मन्त्री एक हो गये। सब जापानी एक सामाजिक सूत्र में बँध गये। परस्पर शादी विवाह होने लगे। पहले वे समझते थे कि जो कुछ जापानी है वह सभी श्रेष्ठ है, और जो कुछ विदेशी है वह सभी बुरा है। इस अविचार को उन्होंने दूर कर दिया। उनको इस बात पर दृढ़ विश्वास हो गया कि पुरानी सभ्यता का अब समय नहीं रहा।

इसका फल यह हुआ कि छोटे छोटे तअल्लुक़ेदारों ने अपनी अपनी तअल्लुक़ेदारी को राजा के सिपुर्द करके राजा की शक्ति बढ़ादी। हर वर्ष हज़ारों विद्यार्थी विदेश में विद्योपार्जन के लिए जाने लगे। ६ वर्ष की उमर होने पर लड़के लड़कियों के मदरसे जाने का क़ानून बनगया। विदेश से जैसे जैसे जापानी युवक विद्योपार्जन करके लैाटने लगे, तैसेही तैसे जापान में विदेशी रीति की सभ्यता का प्रचार प्रारम्भ हुआ। जापानी लोग रेल, तार, डाक, कल, कारख़ाने, स्कूल, कालेज, वाणिज्य आदि सब बातों के पीछे पड़ गये और यथाशक्ति उनमें उन्नति भी करने लगे। जहाज़ चलाना और बनाना भी उन्होंने सीखा। पश्चिमी रीति के अनुसार सेना भी उन्होंने अपनी दुरुस्त कर ली। जब तक सब बातें सिखलाने के लिए योग्य जापानी नहीं मिले तबतक विदेशियों से काम लिया गया। पर जब विद्वान् जापानियों की संख्या बढ़ गई तब विदेशी दूर कर दिये गये।

जापान ने प्रतिज्ञा करली कि विदेशियों में जो जाति सबसे अच्छी दशा में है उसकी बराबरी किये बिना हम न रहेंगे। इस प्रतिज्ञा को उसने तीस चालीस वर्ष में पूरी कर दिखाया। पर विदेशियों की नक़ल करने में जापान ने अपना जापानीपन नहीं छोड़ा। जो बातें उसे औरों में अनुकरणीय जान पड़ीं उनका अनुकरण उसने जापानी ढंग से किया। अपनी जातीयता—अपना स्वदेश-प्रेम—उसने नहीं जाने दिया। पश्चिमी सभ्यता को उसने जापानी साँचे में ढाला। जापान की अनुकरण-शीलता में यही विशेषता है। इसीके कारण जापान फिर भी जापान बना हुआ है। पृथ्वी के प्रबलतम देश रूस पर जापान की जो यह जीत हुई है उसके ये सभी कारण हैं। पर ये कारण साधारण हैं। इस जीत का प्रधान कारण जापान की विज्ञान-वृद्धि है। यदि जापान में अनेक प्रकार की विज्ञान-शिक्षा की उन्नति न होती तो कदापि जापान आज रूस-विजयी न कहलाता। यह राय बड़े बड़े लब्धप्रतिष्ठ, नीति-निपुण और प्रसिद्ध मनुष्यों की है।

चीन—जापान की लड़ाई हुए दश वर्ष हुए। उस समय यालू नदी के किनारे जापानियों की तोपों की दिल दहलानेवाली आवाज़ ने योरप, अमेरिका और एशिया की प्रबल शक्तियों को सोते से जगा सा दिया। उन्होंने समझा कि सुदूर पूर्व में भी एक प्रबल शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ और बड़े बड़े राजकीय मामलों में अब, आगे, उससे भी सलाह मशविरा करने की ज़रूरत पड़ा करेगी। जापान की इस अश्रुतपूर्व उन्नति का कारण क्या है? कारण यह है कि जापान ने विज्ञान को अपने देश में सबसे अधिक प्रधानता दी है। शान्ति के समय में भी और अशान्ति के समय में भी उसने वैज्ञानिक शिक्षा को अपनी उन्नति का आधार माना है। जितने कला कैाशल हैं, जितने अध्यवसाय हैं, जितने कल कारख़ाने हैं, जापान में, सब कहीं विज्ञान, विज्ञान, विज्ञान देख पड़ता है। जापान का प्रायः कोई भी काम, कोई भी शिक्षा-विभाग, कोई भी व्यवसाय, विज्ञान से ख़ाली नहीं। जापान के समरवीर समुराई बड़ेही बहादुर और रण-कुशल हैं। परन्तु यदि जापान विज्ञान का आश्रय न लेता तो पश्चिम की प्रबल पराक्रमी फ़ौज के सामने समुराइयों की समर-कुशलता कुछ काम न देती। यदि जापान में विज्ञान का प्रवेश न होता तो वह

विदेशियों के द्वारा अब तक पददलित हो गया होता; उसका बालसूर्य्यधारी झण्डा गिरगया होता; उसकी जातीयता का सर्वनाश हो गया होता; पराक्रमी समुराइयों के खूनकी नदियां बहकर शान्तसागर में शान्त होगई होतीं; और अपने पुराने बेढँगे शस्त्रों को लेकर अर्वाचीन शस्त्रधारी विदेशियों के सामने जापान के देश-भक्त जापानी एक एक करके कट गये होते। परन्तु विज्ञान ने जापान को इस प्रलयङ्कर विनाश से बचा लिया।

जापान की गवर्नमेण्ट का ध्यान वैज्ञानिक शिक्षा की तरफ़ सबसे अधिक है। यदि रेल, तार, टेलिफ़ोन, जहाज़ और हथियार बनाने के कारख़ाने, खानें, फ़ौजी और यञ्जिनियरी स्कूल जापान में न होते तो जैसी फ़ौज इस समय जापान के पास है वैसी कदापि न होती। और यदि होती भी तो निर्बल होती। रूस-जापान की लड़ाई ने इस बात को अच्छी तरह साबित कर दिया है कि जातीय उन्नति के लिए जितने बड़े बड़े सार्वजनिक काम किये जांय, विज्ञान का बीज उनमें ज़रूर होना चाहिए। यदि जापान रेल न बनाता तो थल की राह से वह फ़ौज और फ़ौजी सामान जल्द न भेज सकता। यदि वह सब तरह के जहाज़ न रखता तो समुद्र पार करके कोरिया और माँचूरिया में वह अपनी फ़ौज न ला सकता। तार और टेलिफ़ोन के बिना यथेष्ट शीघ्रता के साथ ख़बरें न भेजी जा सकतीं। हथियार और जहाज़ बनाने के यदि कारख़ाने न होते तो वह एक दिन भी रूसका मुक़ाबला न कर सकता। बे-तारकी तारबर्क़ी और गुब्बारों तक से जापान ने यथेष्ट काम लिया है। युद्धविद्या, यंत्रविद्या, रसायन शास्त्र, वैद्यक शास्त्र, गैस, बिजुली, इत्यादि से सम्बन्ध रखने वाली एक भी बात ऐसी नहीं जिसमें जापान, योरप और अमेरिका से किसी तरह कम हो।

पश्चिमी विद्या, विज्ञान और सभ्यता को जापानी साँचे में ढाल करही जापान चुप नहीं रहा। उसने उसके भी आगे क़दम बढ़ाया है। जापान अब अपने जहाज़ आपही बनाने लगा है। उनके बनाने में उसने नई नई युक्तियों से काम लिया है। अनेक बातें उसने ऐसी की हैं जो और शक्तियों के जहाज़ों में नहीं पाई जातीं। जहाज़ों से यहां मतलब उन जलयानों से है जो आजकल सभ्य शक्तियां लड़ाई के लिए बनाती और तैयार रखती हैं। जापान का जहाज़ी बेड़ा देखकर इङ्गलेण्ड भी उसकी तारीफ़ करता है। जल-शक्ति में इँगलैण्ड की बराबरी कोई देश नहीं कर सकता। इँगलैण्ड के पास बैटलशिप नामक प्रचण्ड लड़ाकू जहाज़ों की संख्या ५० के ऊपर है! पर और शक्तियों के पास १६ से अधिक नहीं। अतएव इँगलैण्ड के समान परम पराक्रमी देश जब जापान की जलसेना और जहाज़ी बेड़े की तारीफ़ करता है तब उसमें अवश्यही कोई वैज्ञानिक विशेषता होगी। जापान ने यद्यपि युद्धविद्या इँगलैण्ड और जरमनी से ही सीखी है; परन्तु उसने उसमें अब इतनी अधिक उन्नति करली है कि इँगलैण्ड ने हरसाल कई अफ़सर जापान भेजना निश्चित किया है। वे वहां जापानी युद्ध-कौशल की शिक्षा प्राप्त करेंगे। गुरु गुड़ही रहा, चेला खांड़ हो गया!

एक अँगरेज़ी सामयिक पत्रिका का अँगरेज़ लेखक कहता है कि विज्ञान के बल से जापान ने अपने जहाज़ों में कई एक ऐसी उन्नतियां कीं हैं जिन्हें देखकर संसार भरके जलयुद्ध-विद्या-विशारद चकित हो जाते हैं। जापान की जल-सेना के अफ़सर अपने अपने काम में इतने होशियार हैं कि अनेक बातों में वे इँगलैण्ड को भी अब सबक़ दे सकते हैं। यह सब विज्ञान-वृद्धि की महिमा है। इस पर भी जापान हर साल हर तरह की विज्ञान-शिक्षा के लिए योरप और अमेरिका को अनेक होनहार युवकों को भेजता है। विद्या और विज्ञान में वह किसी देश से पीछे नहीं रहना चाहता। जापान ने थोड़ेही समय में अनेक अद्भुत अद्भुत आविष्कार भी किये हैं।

जापानियों के बराबर देशभक्त और कोई पृथ्वी की पीठ पर नहीं है। देशभक्ति से प्रेरित हो कर विद्या और विज्ञान के बल पर वे असम्भव को

सम्भव कर दिखाते हैं। जापान भी एशिया में है। हिन्दुस्तान भी एशिया में है। अधिकांश जापानी बौद्ध हैं और बौद्ध-मत के प्रवर्तक की जन्मभूमि हिन्दुस्तान ही है। प्रायः हिन्दुस्तानियों की तरह जापानी भी ठिंगने होते हैं। जापानियों और हिन्दुस्तानियों के रूप, रङ्ग में भी बहुत कुछ साम्य है। हिन्दुस्तानियों के समान जापानी भी निरुपद्रवी, सहनशील, परोपकारी, दयालु, माता-पिता के भक्त और सरल स्वभाव होते हैं। परन्तु दोनों में असमानता भी है। जापानी स्वाधीन हैं, हिन्दुस्तानी पराधीन। जापानी देशभक्त हैं, हिन्दुस्तानी देशभक्त नहीं। जापान में एकता है, हिन्दुस्तान में एकता का अभाव है। वैज्ञानिक शिक्षा के लिए सात समुद्र पारकर जाना जापानी लोग अपने और अपने देश के लिए गौरव समझते हैं; पर समुद्र पारकर जाना हिन्दुस्तानियों के लिए पाप है, क्योंकि उनका धर्म्म जाता रहता है। जापान में जाति-भेद का बहुत ही कम विचार है; हिन्दुस्तान में जाति-भेद का सबसे अधिक विचार है। जापान में सब लोग परस्पर शादी विवाह करते हैं, हिन्दुस्तान में अपने वर्ग में भी शादी करने में अनेक झंझट पैदा होते हैं। जापान में छुआछूत नहीं; हिन्दुस्तान में इसकी पराकाष्टा है। ये बातें विचार करने लायक़ हैं। पर विचार करनेवालों ही की यहां कमी है। विचार करै कौन?

आँख।

[संख्या ६ से आगे]

(७) प्रायः पदार्थों की दूरता का ज्ञान उनके माने हुए आकार से होता है। हमारे नेत्र में किसी मनुष्य के चित्र का कोई आकार बसा हुआ है। उससे कम या अधिक होने से हम देखे हुए पदार्थ को दूर या समीप मान लेते हैं।

अवश्य ही यहां सच्ची दूरी का विचार किया गया है। मानसिक दूरी बड़ी विलक्षण है। विद्यार्थियों को घर से मदरसे की दूरी, मदरसे से घरको दूरी से दूनी मालूम होती हैं। प्रेमिक को प्रेयसी के घर की दूरी का जो अध्यास है, वह वास्तविक दूरी से बहुत भिन्न है!

सम्पादित परिवेदन।

अनुभव और तर्क के द्वारा हमें कृत्रिम, प्राप्त या सम्पादित ज्ञान इन्द्रियों से होते हैं। वास्तव में जिह्वा से 'रसानुभव' मात्र ज्ञात होता है, किन्तु बारम्बार अभ्यास से हम यह जानने लगते हैं कि यह रस जलका है, यह इमली का है। गन्ध में भी नासाग्र की चेतना ही पहले पहल पाई जाती है। किन्तु अनुभव, गुलाब और चमेली के गन्ध में भेद, गन्ध इधर है वा उधर, पास है वा दूर, इत्यादि ज्ञान सिखा देता है। स्पर्श में, असल में, शरीर की सतह पर किसी सत्ता का ही अनुभव होता है, किन्तु अभ्यास से भिन्न भिन्न भाव जाने जाते हैं और यह भी जान पड़ता है कि स्पर्श उष्ण है या शीत, सुखदायक है या दुःखदायक। शब्द में भी पहले कर्णचालन मात्र होकर, अभ्यास से, दहने है या बांयें, मनुष्य की आवाज़ है या ढोल की इत्यादि भेद बता सकता है। स्नायुसम्बन्धी इन्द्रिय से भी भिन्न भिन्न चोटों का भेद जानना सीखा जाता है। ऐसेही आँख से दूरी का कृत्रिम ज्ञान होता है।

जिन पदार्थों का क़द हम जानते हैं उनके उप-मान से हम और पदार्थों की उँचाई समझते हैं। आगरे के ताज के बुर्ज़ों पर चढ़े हुए मनुष्यों की तुलना से हम बुर्ज की उँचाई का अनुमान होता है। चित्रकार चित्र के मकान की उँचाई दरसाने को, उसके सामने आदमी का चित्र बना देता है और "बछड़ा है" यह समझाने को बछड़े के निकट में गौ बना देता है।

द्विनेत्रावलोकन से हमें पदार्थों की स्थूलता का ज्ञान होता है। लम्बाई, मोटाई, चौड़ाई तीनों का ज्ञान तो स्पर्श तथा स्नायु से होता है; किन्तु दोनों आँखें दोनों तरफ़ के भिन्न भिन्न चित्र दिखाती हैं। इसलिए हमें मोटाई का भाव जान पड़ने लगता है। नेत्रों के अभाव में और इन्द्रिय कहां तक

सहायता करते हैं यह जानकर आश्चर्य होता है। सांडरसन नामक अन्धा गणितज्ञ, हाथ से ही, कई रोमन तमग़ों में से जाली तमग़े को पहचान सकता था। जब कभी वह अपनी पाठशाला के बाग़ में बैठा होता तब वह सूर्य पर बादल आते ही जान लेता। यह इन्द्रिय-विशेष की उन्नति का ही नहीं, किन्तु बची हुई इन्द्रियों की ओर अधिक ध्यान देने के अभ्यास का फल है। एक अन्धे ने, एक घोड़े की परीक्षा करते समय, उसे अन्धा बताया। यह बात सत्य थी, किन्तु किसी परीक्षक ने यह नहीं पहचाना था। अन्धे ने यह कारण बताया कि घोड़े की टाप की आवाज़ में एक प्रकार की सचेतता और डर पाया जाता था! दूसरे ने ऐसे ही मौक़े पर एक घोड़े को काना बताया और हेतु यह कहा कि एक आँख दूसरी की अपेक्षा शीतल थी!! अन्धे दार्शनिक डाक्टर मायस गन्ध से अपने मित्रों की काली पोशाक पहचानते थे। अन्धे मनुष्य प्रायः स्पर्श से रङ्ग जान लेते हैं। एक ऐसे अन्धे ने "बायल" साहब से कहा था कि उसे काला, खुरखुरा और नीला पदार्थ बहुत मुलायम प्रतीत होता है। डाक्टर रश दो अन्धे भाइयों का हाल लिखते हैं कि वे, सड़क पर चलते हुए, खम्भे के पास की ज़मीन की आवाज़ से, खम्भा जानकर, हट जाते थे! और अपने प्यारे पालतू कबूतरों के उड़ने ही से उन्हें नाम लेकर पुकार सकते थे!! अमेरिका के आदिम निवासी और भारतवर्ष के मीने पहाड़ों में दुश्मनों के पैरों के चिन्ह पहचान लेते हैं, और उनकी संख्या तक बतला देते हैं!!!

किन्तु, कभी कभी, ऐसा ख़याल होता है कि इन्द्रिय धोखा देते हैं। प्राचीन लोग तो इन्द्रियों को छली मानते थे। परन्तु हमारे संवेदन और परिवेदन सब ठीक होते हैं; भ्रम के कारण हमीं ही हैं! नियमित इन्द्रिय-प्राप्त ज्ञान को अनियमित और पर्याप्त मानकर हम जो अनुमान या उपमान करते हैं भ्रम उसी में है। ऐसे धोखे आँख के सम्बन्ध में बहुत होते हैं, क्योंकि ज्ञान का बड़ा भारी भाग आँख के द्वारा ही होता है। बड़े भारी मैदान, तालाब या समुद्र की दूसरी तरफ़ दिखाई देनेवाले पदार्थों को हम बहुत समीप समझते हैं। रेल पर चलते समय पेड़ और पर्वत चलते और रेल ठहरी हुई प्रतीत होती है। बड़ी ऊंची इमारतों में घुसते हुए मनुष्य इमारत के सामने निरे बच्चे प्रतीत होते हैं।

यहां पर मनोविज्ञान की एक और बात जान लेनी चाहिए। वह यह कि मनुष्य के कितने इन्द्रिय हैं, उनमें क्या क्या विशेषता है, और वस्तु-ज्ञान के हिसाब से उनका क्या उपयोग है। उनका परस्पर सम्बन्ध और आँख की प्रधानता जाने बिना विषय ठीक ठीक नहीं खुलेगा।

त्वक्, रसना, घ्राण, कान और आँख ये पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं। इन इन्द्रियों के द्वारा हमें 'भावों' (Feelings) का ज्ञान होता है। भाव सुख या दुःख के बोधक हैं। तो बताइए पेट का दर्द किस इन्द्रिय का भाव है? इस लिए मानना पड़ता है कि "साधारण इन्द्रिय" या "दैहिक इन्द्रिय" और है जो इन सबके नीचे है और इन सब का आदिम स्वरूप है। साधारण इन्द्रिय के भाव प्रायः एकही प्रकारके होते हैं, किन्तु ज्यों ज्यों विशेषता बढ़ती जाती है त्यों त्यों भावों का भेद भी बढ़ता जाता है। इन्द्रियों से हम भावों का ही काम नहीं लेते हैं किन्तु ज्ञान का भी। इन्द्रियों का सामान्य क्रम ऐसा है—साधारण इन्द्रिय, त्वक्, रसना, घ्राण, दृष्टि और श्रोत्र। ज्ञान के अनुसार यह क्रम बिलकुल बदल जाता है। यथा—साधारण इन्द्रिय, रसना, घ्राण, श्रोत्र, स्पर्श और दृष्टि।

पशुओं में घ्राण अधिक ज्ञान देता है। जो सुना हुआ ज्ञान है उसके विषय में तो 'श्रोत्र' को सबसे आगे मानना चाहिए, किन्तु परिज्ञान की दृष्टि में स्पर्श और चक्षुही प्रधान हैं। इनसे कई भाव और कई ज्ञान एक ही काल में जाने जाते हैं। आँख की प्रधानता इससे प्रकट हुई; किन्तु एक और इन्द्रिय

है जिससे मिलकर आँख और सब इन्द्रियां का बादशाह बन गई है। हम में एक छठी इन्द्रिय भी है—उसका नाम स्नायवीय इन्द्रिय या कर्मेन्द्रिय है। जब हम इच्छापूर्वक कुछ काम करते हैं, तब हमें, कार्य-विचार के साथ ही चेतना होती है। इस चेतना का ज्ञान हमें इस कर्मेन्द्रिय से होता है। हम चल सकते हैं; हम हिल सकते हैं; हमारे स्नायु हमारे आधीन हैं—यह ज्ञान इसीका दिया हुआ है। यह विलक्षण इन्द्रिय है। यह पराधीन रूपसे भाव नहीं ग्रहण करती, और अब तक जाने हुए इन्द्रियों से भिन्न होनेके कारण पृथक् नहीं दिखाई पड़ती। यह इन्द्रिय यद्यपि ७०-८० वर्ष से ही जानी गई है, परन्तु यह इन्द्रियों के हक़ में बड़े काम की है; क्योंकि यह उन्हें पराधीन से स्वाधीन बना देती है। जो कुछ किसी इन्द्रिय के पास है, उसीका हमें ज्ञान होगा; जो नहीं है उसे हम नहीं पासकते। पर स्नायु-शक्ति के कारण अकर्त्ता इन्द्रिय कर्त्ता बन जाते हैं। जब हमें ज्ञान होता है कि हम—कर्त्ता बन कर—स्वयं संवेदन कर रहे हैं, तब जानना चाहिए कि कर्मेन्द्रिय के योग से वह इन्द्रिय 'कर्त्ता' बन गया। उदाहरण लीजिए। साधारण इन्द्रिय तो अकर्मण्य अर्थात् पराधीन इन्द्रिय का नमूना है। 'रस' में दोनों रूप हैं—एक तो जीभ पर रक्खी हुई चीज़ का रस चखना और एक इच्छापूर्वक जीभ बढ़ाकर रस लेना। 'घ्राण' पराधीन ही है; परन्तु, हम सूंघ या साँस ले सकते हैं। श्रोत्र में दोनों रूप हैं; एक यथास्थित सुनना; दूसरा ध्यान देकर सुनना। चक्षु में इन्द्रिय अतीव चञ्चल है। वह कई आसन धारण करती है। त्वक् का मुख्य कारण हाथ भी अति-चञ्चल है। अतएव, कर्मेन्द्रिय के योग से, ये दोनों चलने फिरनेवाले इन्द्रिय, स्वाधीन इन्द्रियों के नमूने हैं!

इस बात पर इतना ज़ोर क्यों दिया गया? इस लिए कि स्वाधीन इन्द्रिय परिवेदन में बड़ा काम देते हैं। संवेदन—अर्थात् पराधीन इन्द्रियों का ज्ञान—एक कल्पना मात्र है; चेतना में यह कभी नहीं होता। हम खरखरापन, मुलायमी, गर्मी, सर्दी आदि त्वक् के गुणों को किसी पदार्थ पर मढ़ते हैं; हम यह नहीं कहते कि हम 'रंग' देखते हैं; किन्तु कहते हैं कि हम 'गुलाब' देखते हैं। 'लड्डू' कहने से पाठकों को पहले गोल चीज़ का ज्ञान होगा, पीछे मिठास का। सो, इन्द्रियों से जाने हुए भावों को अपने से पृथक् किसी पदार्थ पर लगा देने का व्यापार रात दिन होता है, और इसका नाम परिज्ञान या परिवेदन (Perception) है। परिवेदन, विशेष करके पदार्थपरिवेदन, चेतना है जो ख़र्च की हुई स्वाधीन शक्ति के ज्ञान पर, अर्थात् कर्मेन्द्रिय पर, अवलम्बित है।

परिवेदन विना कर्मेन्द्रिय का प्रयोग नहीं होता। किसी पदार्थ को देखकर या छू कर हमने कह दिया कि यह "किताब" है। अब विचारना चाहिए कि यह ज्ञान कहां से आया। पराधीन इन्द्रियों के संवेदन से तो रंग, गन्ध या स्वाद जाना जा सकता है। उस स्वाद, गन्ध या रङ्ग का आधार हमने कैसे बना लिया? यह जानना कर्मेन्द्रिय की सहायता से स्वाधीन नेत्र और त्वक् का काम है। पदार्थों में दो गुण हैं, विस्तार और रोध। इन्हींके होने से पदार्थ पदार्थ हैं; और यदि ये गुण न हों तो पदार्थ पदार्थ ही नहीं। एक पदार्थ अवश्य ऐसा है जिसमें विस्तार है, किन्तु रोध नहीं, जैसे आकाश। किन्तु यह सबसे प्रधान गुण विस्तार, और उससे कुछही कम प्रधान रोध किसी भी पराधीन इन्द्रिय से नहीं जाने जाते। ये स्वाधीन इन्द्रिय से, अथवा दृष्टि और त्वक् से मिली हुई कर्मेन्द्रिय से ही जाने जा सकते हैं; और इसीसे समझ लेना चाहिए कि पदार्थपरिवेदन में स्नायविक शक्ति कितना काम करती है। [असमाप्त]

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

भाग ६] सितम्बर, १९०५ [संख्या ९

विविध विषय।

शुक्रवार, १८ अगस्त, १९०५, को वङ्गवासी प्रेस के मालिक बाबू योगेन्द्रचन्द्र वसु का शरीरपात हो गया। यह सुनकर हमें बहुत रंज हुआ। सुनते हैं आपकी उम्र अभी सिर्फ़ ५१ वर्ष की थी। पर गत दो तीन वर्षों से आपकी तबीयत अच्छी न रहती थी। इससे आप कलकत्ता छोड़ कर मधुपुर चले गये थे। वहीं वे कुछ दिन से रहते थे। बर्दवान ज़िले में एक जगह बेड़ू गाँव है। वहीं आपका जन्म, १८५५ ईसवी में, हुआ था। १८८० ईसवी में वे कलकत्ते आये। आकर आपने बँगला में वङ्गवासी अख़बार निकाला। उसमें आपको कामयाबी हुई। कई वर्ष बाद आपने "हिन्दी-वङ्गवासी" की स्थापना की। उसमें भी आपको सफलता हुई। रूस-जापान की लड़ाई शुरू होने पर आपने अँगरेज़ी में एक दैनिक पत्र "टेलिग्राफ़" नाम का भी निकाला। उसका दाम आपने एक पैसा रक्खा। आपका यह अख़बार भी खूब चल निकला। अच्छी अच्छी पुस्तकें उपहार में देकर ग्राहक बढ़ाने की आप ही ने पहले पहल युक्ति निकाली। "हिन्दी-वङ्गवासी" के ग्राहकों को भी आपने कई अच्छी अच्छी पुस्तकें उपहार में दीं। बंगाली होकर आपने हिन्दी अख़बार निकाला और हिन्दी बोलने वालों में अख़बार पढ़ने की रुचि की वृद्धि की। अतएव हम लोग उनके कृतज्ञ हैं। आपके एक फ़ोटो के लिये हमने वङ्गवासी प्रेस को दो पत्र लिखे, परन्तु खेद है कोई उत्तर आज तक न मिला।

* * *

आज कल कई विद्वानों का ध्यान मरों को जिलाने की युक्ति निकालने की ओर लगा हुआ है। वे रासायनिक प्रक्रियाओं के द्वारा सञ्जीवनी शक्ति पैदा करने की युक्ति निकालना चाहते हैं। कैलीफ़ोर्निया के अध्यापक लोब को इसमें कुछ कामयाबी भी हुई है। वे इस असम्भव सी मालूम होनेवाली बात को सम्भव करके दिखलाना चाहते हैं। बहुत दिनों से कैलीफ़ोर्निया में समुद्र

के किनारे एक बहुत बड़े विज्ञानागार में वे इस विषय की हज़ारों परीक्षायें कर रहे हैं। इन परीक्षाओं में उन्हें यहां तक सफलता हुई है कि जलचर जीवों के मुर्दा अंडों को उन्होंने ज़िन्दा करके उनसे बच्चे पैदा कर दिये हैं—दो चार नहीं, हज़ारों। ये बच्चे वैसेही हुए हैं जैसे होने चाहियें। उनके रूप, रंग और आकार आदि में ज़रा भी भेद नहीं। सजीव अंडों के भीतर जीवित गर्भबीजों को मार कर वे सिर्फ़ ओषधियों के बल से उन्हें सजीव कर देते हैं। अब वे और और जीवों की भो, इसी तरह, जांच करना चाहते हैं। यदि उसमें भी उन्हें सफलता हुई—और होने की पूरी आशा है—तो किसी दिन मनुष्य के भी मृतक शिशु जीवित किये जा सकेंगे! जब निर्जीव गर्भ-पिण्ड और निर्जीव शिशु सजीव हो सकेंगे, तब मरे हुए मनुष्य के शरीर में फिर से प्राणसंचार करने में भी कुछ कठिनाई न होगी। तथास्तु!

* * *

लीनों नाम के एक साहब ने छापने की एक कल निकाली है। उसे निकले कई साल हुए। उसका नाम है "लीनो-टाइप प्रिंटिंग मैशीन"। उसमें यह बिलक्षणता है कि जो कुछ छपता है नये टाइप—अक्षर—में छपता है। अर्थात् टाइप भी ढलते जाते हैं और साथ ही वे कम्पोज़ भी होते (जुड़ते) जाते हैं। इस तरह की छापे की कलें इस देश में भी आई हैं और काम देरही हैं। कलकत्ते का प्रसिद्ध अख़बार "अमृतबाज़ार पत्रिका" इसीसे छपता है। इस मैशीन को देख कर पूना के पण्डित बाल गङ्गाधर तिलक ने देवनागरी अक्षरों के लिये भी एक ऐसीही कल ईजाद की है। यह उन्होंने बड़ा काम किया है। अंगरेज़ी में थोड़े टाइपों का काम रहता है। पर नागरी में युक्ताक्षर, अनुस्वार, विसर्ग और मात्रा आदि का बड़ा बखेड़ा है। इससे नागरी के लिए ऐसी मैशीन का बनाना बहुत कठिन काम था। परन्तु तिलक महाशय ने इस कठिनता को हल करदिया। अब कुछ दिनों में आपका "केसरी" इसी तरह की मैशीन से छप कर निकलेगा। सुनते हैं केसरी की कोई १५ हज़ार से भी ऊपर कापियां निकलती हैं!

* * *

पण्डित देवीप्रसाद शुक्ल, बी० ए०, लिखते हैं—

"जुलाई १९०५ की सरस्वती में प्रकाशित 'पूर्वी हिन्दी का एक और नमूना' शीर्षक लेख में पण्डित चन्द्रिकाप्रसाद तिवारी का एक पत्र छपा है, जिसमें उक्त पण्डितजी ने डाकृर ग्रियर्सन की किताब में दिये हुये उन्नाव ज़िले की अवधी बोली के एक नमूने में त्रुटियां दिखलाई हैं। तिवारी जी शायद इस नमूने की भाषा से तो असन्तुष्ट हैं परन्तु उसके विषय से तो अत्यन्त ही असन्तुष्ट जान पड़ते हैं। मेरी अल्पबुद्धि में यदि भाषा में त्रुटियां हैं तो असन्तुष्ट होने की बात अवश्य है परन्तु इन नमूनों के विषयों से हमें क्या मतलब? वे कुछ भी हुआ करें। नमूने तो भाषा मात्र के उदाहरण हैं। तदन्तर्गत कहानियों की यथार्थता का तो वे दावा करते नहीं। हां, उसी देश की बोली में उसी देश की कहानियों का होना तो सोने में सुगन्ध ही है। पर यदि ऐसा न हो तो कोई बुरा मानने की बात नहीं। सूअर चराने वाली कहानी ठीक ठीक अवधी बोली में कही गई है या नहीं, सो तो अवधवासी ही जानें; पर हां, इसका विषय ज़रूर विदेशीय है। मेरी समझ में किसी ने ग्रियर्सन साहब के पास बाइबिल में सेण्ट लूक, के पन्द्रहवें बाब की ग्यारहवीं आयत से लगाकर उन्नीसवीं आयत तक का तर्जुमा करके भेज दिया है। ऐसे सज्जनों से, जो इस कहानी को पढ़ कर रुष्ट होगये हैं, मेरी यह प्रार्थना है कि यह कहानी अवधवासियों के रीतिरवाजों का नमूना है नहीं; किन्तु केवल उनकी बोली का नमूना है। यदि इस देश वाले अपनी कहानियां परदेश की बोली में लिखते हैं, तो परदेशवाले अपनी कहानियां इस देश की बोली में क्यों न लिखें?"

पण्डित देवीप्रसाद जी हमें क्षमा करें, हम इस विषय में उनसे सहमत नहीं। विदेशी लोग अपनी कहानियां, अपने धर्म्म-शास्त्र की आयतें, अपनी स्मृतियों के वाक्य, हमारी बोली में लिखें। हज़ार दफ़ा लिखें, लाख दफ़ा लिखें। पर इतना कह देने की वे कृपा करें कि वे कहानियां, अथवा आयतें, अथवा वाक्य, उनके देश के हैं। बाइबिल में और कोई आयतें पूर्वी हिन्दी का नमूना देने के लिए नहीं मिलीं! मिलीं कौन? भलेमानसों के यहां सुअर चराने की! 'सिटिज़न' (citizen) शब्द का अनुवाद 'भलेमानुस' बहुत ही बढ़िया हुआ है! कहानी भी विलायती और अर्थ भी विलायती! बहुत करके इस कहानी को डाकृर ग्रियर्सन नें ही भिन्न भिन्न बोलियों में तरजुमे के लिए भेजा होगा। अथवा किसी और अँगरेज़ की कृपा होगी। क्योंकि हमारी समझ में कोई भी बाइबिल-पाठी भारतवासी—चाहै वह हिन्दू हो या मुसल्मान—ऐसी कहानी न चुनैगा। यदि हिन्दुस्तान की बोलियों के नमूने देने में कोई यह लिख मारै कि कोई कोई आदमी किसी किसी महा असभ्य जङ्गली जाति के आदमियों की तरह, अपने घर-वालों के मुरदे आपही खा जाते हैं, अथवा बहुत बीमार होने पर अपनी स्त्रियों को जीती जला देते हैं, अथवा पैदा होते ही अपनी लड़कियों को मार डालते हैं, तो क्या आक्षेप की बात नहीं?

* * *

मध्य अफ़रीक़ा के इटूरी नामक विकट जङ्गल में जो लोग रहते हैं, उनमें से एक जाति के जङ्गली आदमी बहुत ही छोटे होते हैं। इंगलैण्ड के पारसन नामक एक साहब को इन आदमियों से बड़ा प्रेम है। बड़ी बड़ी मुशकिलें झेलकर आप ऐसे ६ जङ्गलियों को अपनी विलायत लेगये हैं। वहां उनकी प्रदर्शिनी हो रही है। उनमें से चार पुरुष हैं और दो स्त्रियां। उनकी उम्र १८ से ३५ वर्ष तक
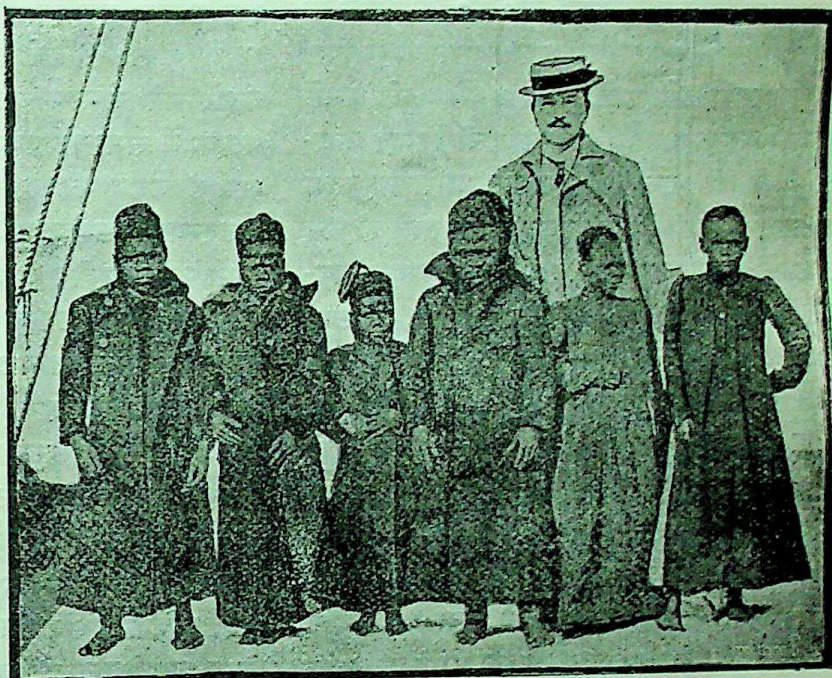
है। ये जङ्गली बौने ४० वर्ष से अधिक नहीं जीते। अतएव जिसकी उम्र ३५ वर्ष की है उसे बहुत बुड्ढा समझना चाहिए। इन लोगों की उँचाई ३ से ५ फुट तक है। जो उम्र में सबसे अधिक है, उसकी ठुड्डी पर कुछ बाल भी हैं। बाक़ी औरों का चेहरा सफ़ा चट है। इनके मुंह पर अकसर बाल नहीं होते। ये लोग अपने देश के जङ्गलों में ख़ूब नाचते गाते रहते हैं। पर साहब लोगों के सामने नाचते इन्हें संकोच होता है। बड़ी मुशकिल से, बहुत कहने सुनने पर, ये एक

दिन नाचने पर राज़ी हुए। जहां इन्होंने नाचना शुरू किया, तहां देखनेवालों ने इन्हें ज़ोर से शाबाशी दी। यह सुनकर ये शरमिन्दा होगये श्रौर फ़ौरन ही इन्होंने नाचना बन्द कर दिया। अफ़रीक़ा के ये आदिम जङ्गली अपनी छोटी छोटी छोलदारियों के दरवाज़े पर अपनी जङ्गली पोशाक पहन कर जब बैठते हैं, तब उन्हें देखकर लोगों को बड़ा कुतूहल होता है।

* *
*

पण्डित माधवराव सप्रे, बी० ए०, के प्रयत्न से नागपुर में एक हिन्दी ग्रन्थप्रकाशक मण्डली स्थापित हुई है। इसका उद्देश्य हिन्दी में अच्छे अच्छे ग्रन्थों को प्रकाशित करना है। यह मण्डली हिन्दी ग्रन्थ-माला नाम की एक ६० पृष्ठ की मासिक पुस्तक निकालना चाहती है। तीन सौ ग्राहक होते ही यह पुस्तक निकलने लगेगी। इसमें इतिहास जीवन-चरित, राजनीति, अर्थ-शास्त्र, विज्ञान, नाटक, उपन्यास, आख्यायिका और समालोचना आदिक विषयों पर ग्रन्थ और निबन्ध निकलेंगे। इसका वार्षिक मूल्य ३) रुपये होगा। जिन लोगों के निबन्धपुष्प इस माला में गूंथे जांयगे, उनको योग्यतानुसार पुरस्कार भी मिलेगा। इसे सोने में सुगन्ध समझना चाहिये। इसमें छपने के लिए कई एक ग्रन्थ और लेख पहले ही से तैयार हैं। यदि निकल कर प्रचलित हो जाय तो इस मासिक पुस्तक से बड़ा लाभ हो। हिन्दी में अच्छे अच्छे ग्रन्थों का प्रायः अभाव है। वह अभाव यह पुस्तक दूर कर सकती है। इसमें छपे हुए ग्रन्थ समाप्त होने पर अलग बाँधे जाँयगे। उनकी जिल्द भी बहुत अच्छी बनेगी। जिनको अपनी मातृभाषा से कुछ भी प्रेम है और जो अपनी मातृभूमि को कुछ भी उन्नत स्थिति में देखना चाहते हैं, उन्हें इस मण्डली का सभ्य होना चाहिये और ग्रन्थमाला को भी लेना चाहिए। मण्डली का नियमपत्र मैनेजर, देशसेवक प्रेस, नागपुर, को लिखने से मिलता है।

* *
*

निगमागम चन्द्रिका के दसवें भाग की १ से ५ तक संख्यायें एक ही साथ निकली हैं। उन सबकी एकही पुस्तक है। पुस्तक के ऊपर लिखा है—"कृपाकर समालोचना कीजिए"; परन्तु इसके नीचे किसी का नाम नहीं है। नहीं मालूम इसे किसने भेजा है—सम्पादक ने, मैनेजर ने या और किसी ने? ख़ैर, किसीने भेजा हो, हमारा निवेदन यह है कि निगमागम-चद्रिका धर्म्म-सम्बन्धिनी है। धर्म्म-सम्बन्धी ही लेख इसमें प्रायः छपते हैं। इस कारण हम इसकी समालोचना सरस्वती में नहीं कर सकते, क्योंकि सरस्वती में धर्म्म-विषयक लेखों की समालोचना नहीं छपती। इस संख्या-पञ्चक में समाचारपत्रों और पत्रिकाओं की संक्षिप्त समालोचना भी है। उसमें एक जगह है—'सरस्वती सर्वाङ्गपूर्ण पत्रिका होने पर भी कभी कभी उससे प्रदीप और समालोचक बढ़े जाते हैं।' सरस्वती को सर्वाङ्गपूर्ण कहने और तद्द्वारा हमारे उत्साह को बढ़ाने के लिये हम सम्पादक महाशय के कृतज्ञ हैं। किसी किसी की राय है कि प्रदीप और समालोचक ही नहीं, किन्तु और भी कई मासिक पत्र सरस्वती से बढ़े चढ़े हुए हैं। अतएव निगमागम-चन्द्रिका के सम्पादक से हमारी प्रार्थना है कि सरस्वती ऐसी पीछे पड़ी हुई पत्रिका पर वे अपनी कृपादृष्टि रक्खें और ऐसा आशीर्वाद दें जिसमें वह कभी बढ़कर उन्हें प्रसन्न कर सके।

* *
*

पण्डित यज्ञेश्वर धर्म्माधिकारी ने पृथ्वी-छन्द में कई मनोहर पद्य भेजे हैं। उनमें सरस्वती की प्रशंसा है। इस लिए हम आपके बहुत कृतज्ञ हैं। आपकी कविता हमारे लिए बहुत उत्साहवर्द्धक है; परन्तु आत्मश्लाघा को प्रकाशित करना अच्छा नहीं। अतएव, खेद है, हम आपके पद्यों को नहीं प्रकाशित कर सकते। आप हमें कृपापूर्वक क्षमा करें।

जोधा बाई।

अकबर बादशाह की उदार राजनीति ने उसे अमर कर दिया है। उसने हिन्दू-मुसलमानों को एकता के सूत्र में बाँध कर भारत में जिस कल्याणकर युग की स्थापना की थी, वह सदा के लिए इतिहास के पृष्ठों पर उज्ज्वलता के साथ लिखा रहेगा। मुसलमान होने पर भी वह हिन्दू-जाति के युग-युगान्तर-व्यापी धर्म-गौरव पर मुग्ध हो गया था। हिन्दुओं का आचार, व्यवहार, सरलता, सत्यनिष्ठा, स्वामिभक्ति और कर्त्तव्यपरायण-बुद्धि ने उसके हृदय-मन्दिर के भीतर सात्विक और प्रबल आन्दोलन मचा दिया था। केवल यही क्यों? हिन्दुओं के वीरत्व को देख कर वह श्रद्धापूर्वक विस्मित हो उठा था। उस समय हिन्दुओं के यहां श्मशानरूपी विशाल भारतवर्ष में केवल एक राजपूत जाति ही जीवित थी। इसी वीर जाति की असीम वीरता और पराक्रम के प्रभाव से दिल्ली का राज्य-सिंहासन सदा कम्पायमान रहता था। मुहम्मद गोरी के भारत-आक्रमण से लेकर इबराहीम लोदी तक कितने ही पठान-वंशों का उत्थान और पतन हो चुका था। परन्तु एक सीसोदिया कुल और राठौर-वंश ही ऐसे थे जो दृढ़ता से निज आस्तिक्य की रक्षा करके भारत में हिन्दुओं के पूर्व-गौरव की वैजयन्ती उड़ाते रहे। बाबर ने जब पानीपत के संग्राम में किसी मुसलमान वीर को अपने सामने न पाया, तब राजपूत वीर सांगा ही की तलवार ने उसके भारत-सम्राज्य के अधिकार-मार्ग में प्रबल विघ्न उपस्थित किया। दिल्ली-सिंहासन प्राप्त करने के साथ ही सुचतुर, पर कुटिल-नीति-विशारद, अकबर ने एक बार भारत के चारों ओर नज़र उठा कर देखा। उसे मालूम हुआ कि कहीं कहीं मुसलमानों में अभी पूर्ववत् सजीवता बाक़ी है। राजपूताना की वीर-प्रसविनी भूमि के भी कई एक राजपूत वीरों पर भी उसका ध्यान गया। अन्यान्य प्रदेशों की भांति राजपूताना में भी निज कुटिल-जाल फैलाने को वह उत्सुक हुआ। पर राजपूताना को अपने राज्य में न मिलाकर वह वहां के अधिकारियों को निज सहायक बनाने की चेष्टा करने लगा और दर्बार में उन्हें उसने सादर आह्वान किया। इससे उन लोगों का अधिकार यथावत् रहने पर भी सम्राट् के सैनिक झण्डे के नीचे उन्हें एकत्रित होना पड़ा वीर, विहारीमल, भगवानदास, राजा मानसिंह, राठौर-वीर-केसरी रायसिंह मुग़लों के सेनानायक नियत हुये। राठौर-राजा मालदेव ने पहले तो सम्मिलित होना अस्वीकार किया, परन्तु बाद में दिल्लीश्वर की अधीनता को स्वीकार कर अपने ज्येष्ठ पुत्र उदयसिंह को मुग़ल सम्राट के झण्डे के नीचे उपस्थित होने को उसने भेज दिया। केवल एक मात्र सिसोदिया वंश ही ऐसा था जिसने इस महान आह्वान में शामिल न होकर राजस्थान की पवित्र प्राचीन स्वाधीनता की रक्षा की। परिणाम यह हुआ कि चित्तौर नगरी सम्राट् के कोपानल में पड़ कर भस्मीभूत होने लगी। पर सिसोदिया वंश ने निज गौरव की रक्षा करने में किञ्चित् भी ढिलाई न की। यही कारण है जो आज तक सिसोदिया-कुल के प्रातःस्मरणीय महाराना प्रतापसिंह का नाम सारे भारतवर्ष में गौरव और प्रतिष्ठा के साथ लिया जाता है। इस भांति राजपूतों को अपनी पट्टी में लाकर उन लोगों को वैवाहिक बन्धन में बद्ध करने की अकबर ने इच्छा प्रकट की। उसके आचार और व्यवहार पूरे तौर पर म्लेच्छ-प्रथानुयायी न होने के कारण कुछ उदार राजपूत लोग मुग़लों को बेटी देने के लिए तैयार हुये। इस भांति निज राजनीति के बल से अकबर ने हिन्दू-मुसलमानों को एकता के सूत्र में गूंथ डालना शुरू किया।

अकबर ने मारवाड़ के राजवंश से एक राजपूत कन्या को अपनी बेगम बनाया। यह राज-

कुमारी इतिहास में जोधाबाई के नाम से परिचित है। जोधाबाई मारवाड़ के राजा मालदेव की लड़की ग्रैार उदयसिंह की बहन थी। बहुतेरे जोधाबाई को ग्रैार जहांगीर की बेगम (बीकानेर
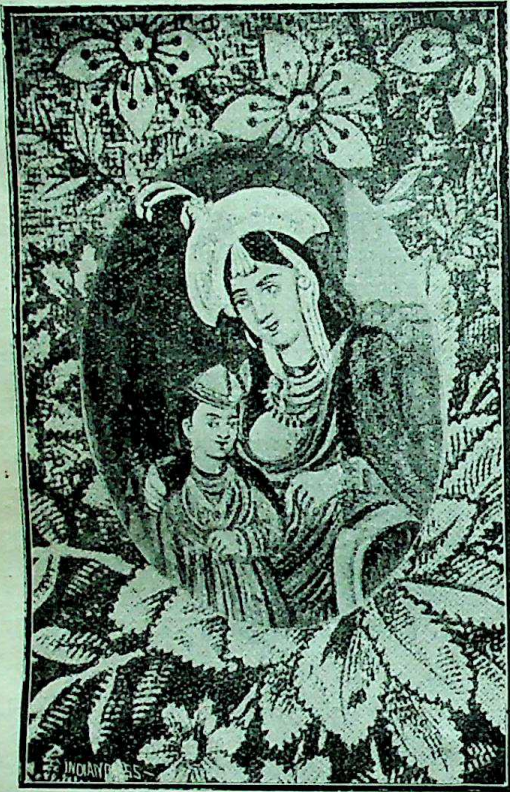
की राजकुमारी) जोधाबाई को एक ही समझते हैं। यह उन लोगों की भूल है। इस प्रबन्ध को पढ़ने से वह भ्रम जाता रहेगा। मैं पहले कह ग्राई हूं कि ग्रकबर राजपूताना में ग्रपना प्रभुत्व जमाने की चेष्टा में था। बीकानेर ग्रैार ग्रम्बर भी उसकी इस कुटिल नीति के पंजे में, सहज ही, पड़ चुके थे। पर मारवाड़ के मालदेव एक दुर्धर्ष वीर थे। वे शेरशाह सूर के प्रतिद्वन्दी थे। राज्यभ्रष्ट हुमायूँ को ग्रपने राज्य में बुला कर मालदेव ने उसके साथ ग्रत्यन्त ही नीचता का व्यवहार किया था। यदि ग्रकबर के मन में ये बातें खटकी हों तो ग्राश्चर्य्य ही क्या है? सच तो यह है कि इसी कारण से मालदेव पर उसकी वक्र दृष्टि थी। मालदेव उस समय ज्वर से पीड़ित थे। ग्रतएव भग्नोद्यम होने के कारण यद्यपि वे सम्राट् की बातों को पूरे तौर पर नहीं टाल सके, तथापि ग्रपने पूर्व गौरव पर भी उन्होंने पानी नहीं फिरने दिया। वे दूसरे राजपूत वीरों की भांति सम्राट् की सेवा में नहीं उपस्थित हुये। परन्तु पीछे से वे भी उसके ग्रधीन होगये। मालदेव ने ग्रपने दूसरे पुत्र चन्द्रसेन को बादशाह के सम्मानार्थ ग्रजमेर को भेजदिया*। किन्तु ग्रकबर इस बात से खुश होने के बदले उलटा नाराज़ हो गया, क्योंकि ग्रकबर ने सोचा था कि मारवाड़ के महाराज ख़ुदही उसकी ग्रभ्यर्थना के लिये उपस्थित होंगे। पर मालदेव के इस सङ्कीर्ण व्यावहार से ग्रकबर यहां तक ग्रसन्तुष्ट हुग्रा कि बीकानेर के राजकुमार रायसिंह को वह जोधपुर ग्रैार बीकानेर राज्य का पट्टा लिख देने को उद्यत हुग्रा। इधर चन्द्रसेन ग्रपने पूज्य पिता की भांति मारवाड़ के गौरव की रक्षा में प्रयत्नशील हुग्रा। पर उसके बड़े भाई उदयसिंह ने उसके ग्रैार पिता के विरुद्ध होकर उन लोगों की सारी ग्राशायें मिट्टी में मिला दीं। उदयसिंह ग्रकबर की सेना में "हज़ारी" के पद पर नियुक्त हुग्रा। नियुक्त होने के साथ ही उसने जोधपूर पर (पिता पर) चढ़ाई की। मालदेव, इस वृद्धावस्था में ग्रसीम वीरता दिखाने पर भी जोधपुर की रक्षा न कर सके। ग्रन्त को पुत्र से पराजित होकर कुछ ही दिन बाद वे स्वर्ग सिधारे।

उदयसिंह मुग़ल-महीप का सेनापति होने की बड़ी ही प्रबल ग्रभिलाषा रखता था। ग्रकबर ने भी उसीको मारवाड़ का सिंहासन सौंपना स्थिर कर लिया था। मालदेव के मरने के ग्रनन्तर चन्द्रसेन, उदयसिंह के साथ युद्ध करने को प्रस्तुत हुग्रा

*मेवाड़ के इतिहास में मालदेव के ज्येष्ठ पुत्र उदयसिंह का भेजा जाना लिखा है। पर मारवाड़ के इतिहास ग्रैार फ़रिश्ता में चन्द्रसेन का जाना लिखा है। उदयसिंह ने ग्रकबर की आधीनता को स्वीकार कर लिया था। शायद इसीसे मेवाड़ के इतिहासों में उसके विषय में वैसा उल्लेख हुआ है।

और अन्त में पराजित होकर मृत्यु को प्राप्त हुआ। १५६९ ई० में उसकी मृत्यु हुई*। कोई कोई इसी समय से उदयसिंह के मारवाड़ के राज्य का मिलना मानते हैं; और कोई कोई चन्द्रसेन के पराजित होने के समय से। उदयसिंह सिंहासनारोहण करने के साथ ही सम्पूर्ण रूप से बादशाह के अधीन हो गया। यहां तक कि अकबर का विशेष प्रियपात्र होकर उसने अपनी बहिन जोधाबाई तक को अकबर के करकमलों में अर्पण कर दिया। इस घटना से सारे राजस्थान में जैसे जैसे उदयसिंह की बदनामी फैलने लगी, वैसे ही वैसे उदयसिंह बादशाह का अधिकाधिक अनुग्रह-भाजन होता गया। अकबर ने जोधाबाई को अपनी बेगम बनाकर उस पर असीम प्रीति और उसके साथ असीम सहानुभूति दिखलाई। अकबर इसलाम धर्म्म की सब बातों को नहीं मानता था। उसे हिन्दुओं के धर्म्म की भी कई बातें पसन्द थीं। हिन्दुओं की उपेक्षा करना, या उन पर अन्याय करना, उसे नहीं अच्छा लगता था। इसी उदार नीति के वशीभूत होकर अकबर ने जोधाबाई को स्वधर्म्म-प्रतिपालन में कभी बाधा नहीं दी। जोधाबाई के इच्छानुसार उसके लिए उसने एक उत्तम महल अलग बनवा दिया था। आगरे के क़िले के भीतर जोधाबाई का हिन्दू-महल देखने से उनके स्वधर्म्मानुराग और अकबर की उदारता का अच्छा प्रमाण मिलता है।

मैं ऊपर कह आई हूं कि इन्हीं जोधाबाई को लोगों ने सलीम को बेगम दूसरी जोधाबाई मान कर भारी भूल की है। कितने ही इतिहासवेत्ता पंडितों का भी यही मत है, किन्तु यह मत अत्यन्त सन्देहपूर्ण मालूम होता है। इस बखेड़े की जड़ टाड साहब बहादुर हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थ में जोधाबाई पर टिप्पणी देते समय जोधाबाई को शाहजहां की माता लिखा है*। यहां पर टाड साहब ने दो भूलें की हैं। पहले तो उन्होंने जहांगीर के स्थान पर शाहजहां लिखा, दूसरे जोधाबाई को उनकी माता कहा। बहुत लोग शाहजहां शब्द को संशोधित करके जहांगीर कर डालते हैं। संभव है, इसी तरह लोग जोधाबाई को जहांगीर की माता कहने लग गये हों। मैलेसन साहब ने अपनी पुस्तक "अकबर" में भी इसी बात का उल्लेख किया है। परन्तु मेवाड़ और मारवाड़ के इतिहास में जहांगीर का जोधाबाई के पुत्र होनेका कुछ भी उल्लेख नहीं है। इन इतिहासों में शाही घराने की हिन्दू-बेगमों के गर्भ से उत्पन्न हुये पुत्रों का उल्लेख है। किन्तु पूर्वोक्त बातों का उनमें कहीं भी पता नहीं है।

फ़रिश्ता ने सलीम का जन्मवृत्तान्त स्पष्ट रूप से लिखा है। उसके देखने से विदित होता है कि सलीम अकबर की प्रियतमा बेगम सुलताना के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। बादशाह के कई सन्तान शैशव की अवस्था ही में मर चुके थे। इससे शेख़ सलीम की कृपा और उसके आशीर्वाद से पुत्र के चिरजीवित होने पर उसका नाम भी अकबरने सलीम ही रक्खा†।

फ़रिश्ता के देखने से विदित होता है कि सलीम अकबर की प्यारी बेगम सुलताना का ही पुत्र था। जोधाबाई का सुलताना नाम से इतिहासों में कहीं भी परिचय नहीं पाया जाता। इस के अतिरिक्त, इस सम्बन्ध में, और भी एक आपत्ति उपस्थित होती है। फ़रिश्ता के कथनानुसार

---

* टाड कृत राजस्थान के दूसरे खण्ड में एक स्थान पर सम्वत् १६७१ अर्थात् १६१५ ईसवी में मालदेव की मृत्यु लिखी है। पर यह भूल है, क्योंकि सम्वत् १६५१ अर्थात् १५६५ ई० में उदयसिंह की मृत्यु हुई और १६०५ ई० में अकबर की। अतएव इन लोगों के उपरान्त मालदेव का परलोकगामी होना सम्भव नहीं।

* The magnificent tomb of Jodbai, the mother of Shah Jehan, is at Secundra, near Agra, not far from that in which Akber's remains are deposited. Tod, Vol. I, p. 231.

† From that city (Agra) he went to visit Sheik Selim Chisti in the village of Sikari, questioned him according to the ceremonies, and was told, it is said, that he would soon have an issue that would live and prosper; all the children which were born to him before that time dying in their infancy, soon after. The favourite Sultana became pregnant, and upon the 17th of Rabbi-al-awal in the year 977, she was brought to bed of a son, who was named Sultan Selim (Dow's Ferishta, Vol. I, p. 257.)

सलीम ने ९७७ हिज़री, अर्थात् १५६९ ई० में, जन्मग्रहण किया। यही मत निज़ामुद्दीन अहमद का भी है*। राजस्थान में उसी साल मालदेव का देहान्त होना लिखा हुआ है। उस समय उदयसिंह सिंहासनासीन हो चुके थे कि नहीं, सो भली भांति ज्ञात नहीं होता। सिंहासनासीन होने जाने के बाद उन्होंने जोधाबाई को बादशाह के हाथ में सौंपा था। मालदेव की जीवितावस्था मे जोधाबाई का विवाह अकबर के साथ नहीं हुआ†। १५६९ ईसवी में सलीम का जन्म जोधाबाई के गर्भ से होना किसी भांति प्रमाणित नहीं होता। परन्तु प्राइस साहब के द्वारा अनुवादित जहांगीर के आत्मचरित के अनुसार जहांगीर का जन्म ९७८ हिजरी में हुआ था। अतएव ९७८ हिजरी में जोधाबाई के गर्भ से जहांगीर का जन्म होना असम्भव नहीं कहा जा सकता। किन्तु निज़ामुद्दीन अहमद ने सलीम के जन्म-समय की कविता का अर्थ ९७७ लगाया है‡। यदि ९७७

* On Wednesday, 18th Rabi-ul-awal, 977, and the fourteenth year of the reign, when seven hours of the day had passed, the exalted prince Sultan Salim Mirza was born in the house of Shaikh Salim Chisti. (Nizam-ud-din Ahmad's Tabukat-i-Akbari. Elliot's History of India, Vol. V., p. 324.)

† Maldeo, though he submitted to acknowledge the supremacy of the Emperor, was at last spared the degradation of seeing a daughter of his blood bestowed upon the opponent of his faith. He died soon after; the title was conferred on his son, which sealed the independence of Maroo. Tod, Vol. II, p. 29.

‡ "Khawaja Hussain composed an ode, of which the last line contained the date of the Emperor's accession, and the second the date of the prince's birth. The Khawaja received a present of two lakhs of *tanks* for this ode."

फ़रिश्ता और निज़ामुद्दीन के मतानुसार सुलतान मुराद ने ९७८ हिजरी की तीसरी तारीख़ को जन्म ग्रहण किया था। निज़ामुद्दीन ने इस विषय में मौलाना क़ासिम की एक कविता की बात लिखी है। उस कविता की प्रथम पंक्ति में सलीम के और दूसरी में मुराद के उत्पन्न होने की बात है। ९७८ हिजरी की तीसरी मुहर्रम को मुराद के उत्पन्न होने से सलीम का उसके पीछे जन्म ग्रहण करना सर्वथा असम्भव है। जहांगीर की आत्मजीवनी में उसके जन्म ग्रहण करने की तारीख़ और महीने से फ़रिश्ता के मत का समर्थन होता है। पर आत्मजीवनी का अनुवाद सन्देहपूर्ण है। प्राइस उस तारीख़ को १८ अगस्त सन् १५७० ईसवी कहते हैं।

हिजरी में सलीम का उत्पन्न होना मान लिया जाय तो उक्त आत्म-जीवनी का अनुवाद ठीक नहीं कहा जा सकता। जहांगीर ने अपनी जीवनी में अपने अन्यान्य भाई बहनों का जन्म-वृत्तान्त लिखा है। किन्तु अपनी मा के नाम का परिचय उसने कहीं भी नहीं दिया। फ़रिश्ता और निज़ामुद्दीन अहमद इत्यादि के ग्रन्थों में भी लिखा है कि "सलीम और मुराद के जन्म होने के बाद जोधपुर के युवराज चन्द्रसेन ने बादशाह की आधीनता को स्वीकार किया"। इससे स्पष्ट बोध होता है कि सलीम के जन्म होने के बाद जोधाबाई का विवाह हुआ था।

अब इस स्थान पर मैं जोधाबाई, अर्थात् इस लेख की नायिका, का कुछ हाल लिखती हूं। वीकानेर के राजा रायसिंह की कन्या थीं। बीकानेर का राजवंश भी राठौर घराने में है। रायसिंह ने मुग़ल सम्राट् का सेनापति होकर अनेक स्थानों में असीम वीरता और पराक्रम दिखाया था। अहमदाबाद के शासनकर्त्ता मिर्ज़ा महमूद को उसने द्वन्द-युद्ध में मारा था। उसने अच्छे गौरव को प्राप्त किया था। उसके उक्त कार्य से प्रसन्न हो कर अकबर ने उसकी कन्या के साथ शाहज़ादा सलीम का विवाह कर दिया। रायसिंह की यही अनुपम कन्या इतिहास-प्रिय पाठकों के निकट जोधाबाई के नाम से प्रसिद्ध हो रही है। फ़रिश्ता और जहांगीर की आत्मजीवनी में इस विवाह का उल्लेख है। जोधाबाई सलीम की प्रियतमा थी। भुवनमोहिनी मेहरुन्निसा को बेगम बनाने पर भी जहांगीर ने जोधाबाई के प्रति कभी उपेक्षा नहीं दिखलाई। जोधाबाई के कथनानुसार ही जहांगीर ने मिर्ज़ा जयसिंह को आमेर का राज्य प्रदान किया था*। जहांगीर बहुत सी बातों

* "At the instigation of the celebrated Jodbai (daughter of Rai Sinh of Bikanir), the Rajputini wife of Jehangir, Jay Sinh, grandson of Jagat Sinha (brother of Mann) was raised to the throne of Amber, to the no small jealousy, says the chronicler of the favourite queen, Nur Jehan." (Tod, Vol. II, pp. 354-55.)

जयसिंह के राज्य देने के विषय में राजस्थान के इतिहास

में जोधाबाई के परामर्शानुसार ही काम करता था। जब तक मेहरुन्निसा (नूरजहां) शाही महल में नहीं आई थी, तब तक जहांगीर जोधाबाई के प्रति अत्यन्त अनुरक्त था। नूरजहां के आने पर जोधाबाई के प्रति जहांगीर का पूर्वानुराग कुछ कम हो गया था। ज्योतिर्मयी नूरजहां को पा कर जहांगीर सिर्फ जोधाबाई को ही नहीं भूला, किन्तु अपने आप को भी वह भूल गया। जोधाबाई के अतिरिक्त शाही महलों में और भी कई राजपूत बेगमें थीं। उनमें से एक अम्बर के राजा बिहारीमल की कन्या और दूसरी मारवाड़ की एक राजपुत्री थी। बिहारीमल सुप्रसिद्ध राजा मानसिंह के पितामह थे। बिहारीमल की कन्या से .खुसरो का जन्म हुआ और अकबर के मंत्री आज़िमख़ां की लड़की .खुसरो से ब्याही गई। अकबर के देहान्त होने पर राजा मानसिंह और आज़मख़ां सलीम के बदले .खुसरो को बादशाह बनाने की चेष्टा में थे। परन्तु सफलता प्राप्त न हुई। सलीम की दूसरी बेगम मारवाड़ की राजकुमारी * के गर्भ से .खुर्रम उत्पन्न हुआ था।

यहां तक जो कुछ लिखा गया उससे सिद्ध है कि जोधाबाई जोधपुर की राजकन्या नहीं, बीकानेर की राजकन्या थी। इस विषय में कर्नल टाड ने भी कुछ कम भूलें नहीं की हैं। उनका कथन है कि "जहांगीर का ज्येष्ठपुत्र सुलतान परवेज़ मारवाड़ की किसी राजकुमारी से और दूसरा पुत्र खुर्रम अम्बर की राजकुमारी से उत्पन्न हुए थे" *। टाड साहब की उक्त दोनों ही बातें भ्रमपूर्ण हैं। क्योंकि परवेज़ किसी हिन्दू बेगम के गर्भ से नहीं उत्पन्न हुआ था और .खुर्रम की माता जोधपुर की राजकुमारी (उदयसिंह की कन्या) थी। इस प्रबन्ध से दो जोधाबाइयों का होना की सिद्ध है। †

वङ्गमहिला।

में एक कौतूहलपूर्ण घटना का उल्लेख है। शाही महल के एक बरामदे में जहांगीर जोधाबाई के साथ बैठा था। बादशाह ने एक अल्पवयस्क रातपूत को "अम्बरराज" कह कर सलाम किया और उक्त राजपूत से कहा कि तुम जोधाबाई को सलाम करो। राजपूताने के नियमानुसार महाराजा जयसिंह ने जोधाबाई को सलाम करना अस्वीकृत किया। जयसिंह ने बादशाह से कहा "आपके अन्तःपुर में जितनी महिलायें हैं, सब को मैं आदाब बजा लाऊंगा, पर जोधाबाई को कदापि नहीं। जोधाबाई इस बात पर खिलखिलाकर हंस पड़ी और कहने लगी, "इससे कुछ हानि-लाभ नहीं है। मैं तुम्हें आमेर का राज्य प्रदान करती हूं।"

* टाड साहब इत्यादि बिहारीमल की (भगवानदास के पुत्र की) कन्या को .खुसरो की माता, आमेर की किसी दूसरी राजपुत्री को .खुर्रम की माता, और जोधाबाई को परवेज़ की माता कहते हैं। अनेक स्थानों में बिहारीमल की कन्या को अकबर की बेग़म कह कर लोगों ने परिचय दिया है। पर जहांगीर की निज-लिखित जीवनी पाठ करने से पूर्वोक्त सब बातों में भूल पाई जाती है। इस विषय में नीचे का उल्लेख पढ़ने लायक़ है।

"The first of the Rajpoot chieftains, who became attached to the Government of my father, Akbar, was Bharmul, the grandfather of Rajah Mann-Sinh, and pre-eminent in his tribe for courage, fidelity, and truth. As a mark of distinguished favour, my father placed the daughter of Raja Bharmul in his own palace, and finally espoused her to me. It was by this princess I had my son Khussrou * * * Next to her, by Saheb Jamdul, the niece of Zeyne Khaun Khoukah, I had a son born at Kabul, on whom my father bestowed the name of Parveiz * * * and by the daughter of Moutah Rajah (Jagat Gossaeine) was born my son Khourroum.—M. Price's Memoirs of the Emperor Jehangir, pp. 19-20.

* "Sultan Purvez, the eldest son and heir of Jehangir, was the issue of a princsss of Marwar, while the second son Khoorum, as his name implies, was the son of a Cuchwaha princess of Amber."—Tod, Vol. II, p. 42.

† यह प्रबन्ध वङ्गभाषा के "ऐतिहासिक चित्र" नामक मासिक पत्र का मर्मानुवाद है।

प्रभात-प्रभा।

[१]

शोभा-भरी, रुचिर, चारु, निशान्त की है
वेला, मनोहर, अतिप्रिय, दर्शनीया।
वापी-तड़ाग-जल के नव नीरजों पै
भृङ्गावली मधुर तान सुना रही है॥

[२]

श्यामा, प्रवीण पिक, मंजुल मिष्टभाषी,
केकी कपोत-कुल केलि-कला-विदग्ध।
आनन्द-युक्त करते उठ नृत्य-गान,
सङ्गीत-गर्व हरते नर-नारियों का॥

[३]

गुञ्जार है पुहुप की नव डालियों पै
छोटी बड़ी बहुतसी मधुमक्खियों का।
वीणा, मनोहर, नया, अति ही सुरीला,
मानो मनोज्ञ बजता वन-बीच में है॥

[४]

धीरे समीर बहती जनमोदकारी,
माधुर्य्य, सौरभित, चन्दन-गन्ध-युक्त।
पंखा मनोज्ञ अपने कर से हिलाती
मानो स्वयं प्रकृति विस्तृत-विश्व-माता॥

[५]

जो थी दशा जगत की अति भीतिकारी,
शून्य श्मशानमय जो गृह दीखते थे।
उद्यान-बाग-वन जो अति खिन्न से थे,
हैं वे समस्त अब सुन्दरता-समूह॥

[६]

निशिचर रजनी में शोर थे जो मचाते—
अतिशय भयकारी उग्र उल्लू शृगाल।
निविड़-विपिनचारी घोर भालू-वराह;
अब सब वन में वभीतसे जा छिपे हैं॥

[७]

सुखकर हरियाली बाग़की है निराली,
प्रमुदित विहगाली व्योम में खेलती है,
नवल जल-कणों से पूर्ण चारो दिशायें
कुसुमित कलियों से दिव्य-शोभामयी हैं॥

[८]

क्याही है नभकी विचित्र अतिही शोभा मनोहारिणी
प्रातःकाल प्रबाल-भानु-किरणों की लालिमा से खिली।
वृक्षों की वर पंक्ति है विपिन में फूलों फलों से झुकी,
प्यारे शुभ्र सरोज सुन्दर सरों के नीर में हैं नये॥

[९]

आते हैं दिननाथ व्योम-पथमें प्राची दिशासे अहो;
लाते हैं सुख सम्पदा जगत को सौभाग्य कन्तिच्छटा।
आनन्द प्रियमित्र के उदय से पाते सभी जीव हैं;
पूजा में रत है समस्त जगत प्रोत्साह आल्हाद से।

[१०]

धारा के मिस से समस्त झरने पाद्यार्घ हैं दे रहे;
वृक्षों को न वराजि फूल-फल-की डाली लिये हैं खड़ी।
गाते हैं स्तुतिपाठ भृङ्ग, वनकी सारी विहंगावली
पूजा-हेत-समीर-नारि नवला आगे, विलोको, चली।

सत्यशरण रतूड़ी।

हंसान्योक्तियां।

वक कुल को कल कल सुने हंस न होहु अधीर।
तुम बिन दूसर क्षीर सों को विलगै है नीर॥१॥

तुम हूं जो आलस करो क्षीर-नीर-निरधार।
तौ फिरि को जग दूसरो कुल-व्रत पालनहार?॥२॥

यद्यपि ये लिगरे रहैं पंकज, मीन, सिवाल।
पै मानस शोभा घटै जो तजि देत मराल॥३॥

कछुक दिना धीरज धरौ फिरि सोइ ऐहै काल।
जैहो अपने देस को एहो मीत मराल॥४॥

जे सुख सों मानस बसे चले अनोखी चाल।
तेई हाय मराल ये परे बिहाल सिवाल॥५॥

छोड़ि मानसर सरन तकि जो कहुँ बसिहहु जाय।
तौ मराल हँसिहैं तुम्हैं कोकिल-काक-निकाय॥६॥

हंस चलो निज देसको जहां बसैं सुखसार।
यहां तुम्हारे गुनन को कोउ न जाननहार॥७॥

गुण बहु तुम में हंस जू हैं अतिशय गम्भीर।
अनुचित मानस त्यागिबो आय परै जब भीर॥८॥

यद्यपि बहु गुण हंस तव मानस किये निवास।
तदपि भूलि नहिँ कीजियो मधुकर के सँग वास॥९॥

हाथ मींजि पछिताइ है परे वंश-प्रशंस।
मान-सरोवर सून कै जब उड़ि जैहै हंस॥१०॥

होय नीच नहि जे तजैं तजि गहते अति नीच।
सरवर जो तजु हंस तो फेरि न आव नगीच॥११॥

हंस-चाल को निन्दरैं आदरते गज-चाल।
कहिहैं तिन्हैं गँवार सब, कछु न हानि मराल॥१२॥

भले कुलन को हंसजू यह न भली कछु रीति।
क्षीर-नीर दोऊन को जो विलगावत प्रीति ॥१३॥

श्यामनाथ शर्मा।

महाश्वेता।

[१]

यह सुन्दरी कहां से आई;
सुन्दरता अति अद्भुत पाई।
सूरत इसकी अति भोली है;
और न इसकी हमजोली है॥

[२]

इसका चरित बाण ने गाया;
जिसने कादम्बरी बनाया।
यह कोमल किन्नर-कन्या है;
रूप-राशि गुण-गण-धन्या है॥

[३]

हेमकूट पर्व्वत के ऊपर
उपवन एक चैत्ररथ सुन्दर।
वहीं विमल अच्छोद सरोवर;
उसके तट शिव-भवन मनोहर॥

[४]

वहां एक दिन यह जाती थी;
मग में निज छवि छिटकाती थी।
युवा तपस्वी पुण्डरीक ने
(कुसुम-कली को चञ्चरीक ने)

[५]

देख इसे सब सुधि बुधि खोई;
शुद्ध-शीलता सारी धोई।
इसने भी अनुराग दिखाया;
हार उसे अपना पहनाया॥

[६]

लौट गेह निज जब यह आई;
पीड़ा पुण्डरीक ने पाई।
विरह-वन्हि ने उसे जलाया;
इससे वह परलोक सिधाया॥

[७]

इस विपत्ति से यह अकुलानी;
हुई उसी क्षण से दीवानी।
पिता और माता को छोड़ा;
सब सम्बन्ध जगत से तोड़ा॥

[८]

प्रिय से प्रेम लगाया इसने;
अङ्ग विभूति रमाया इसने।
जटा-जूट लटकाया इसने;
मुनि-वर-वेश बनाया इसने॥

[९]

पहनी पुण्डरीक की माला;
आई उसी विपिन में बाला।
पशुपति की पूजा आराधी;
महा कठोर साधना साधी॥

[१०]

कर वीणा ले नित्य बजाती;
हर-गिरिजा को नित्य रिझाती।
नित्य नये उनके गुण गाती;
कन्द-मूल खाकर रह जाती॥

[११]

वहां इसी विध यह सुकुमारी,
करती रही तपस्या भारी।
बहुत दिनों में इसका प्यारा
मिला इसे, खोया दुख सारा॥

[१२]

उसे शशी ने शाप दिया था;
चन्द्रलोक में खींच लिया था।
अन्त उसीने उसे पठाया;
दोनों का सन्ताप मिटाया॥

[१३]

चित्र महाश्वेता का सुन्दर
रविवर्म्मा ने विशद बनाकर,
अतिशय कौशल दिखलाया है;
भाव ख़ूबही बतलाया है॥

नरक-गुलज़ार।

अयोध्या में राजा रामचन्द्र ने जन्म लिया। ऋषिलोग कहने लगे, एक 'राम' नाम से कोटि ब्रह्मवध के पाप नाश हो जाते हैं। यह समाचार सब जगह फैल गया। परन्तु धर्म्मराज को बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे कि कहीं नौकरी न छुट जाय।

दूसरे की बुराई से होली का सा आनन्द अनुभव करना नारद का स्वभाव है। नारद ने सोचा, परीक्षा करके देखें तो सही, ऋषि का वचन सत्य होता है या नहीं। यह सोचकर नारद यमलोक को तरफ़ चले।

फाटक के पास पहुंचने पर बाहर ही से नारद ने पुकार कर पूछा—"भाई साहब, किस सोच में बैठे हो?"

धर्म्मराज—"कुछ नहीं। आइए, विराजिए"।

नारद—"नहीं, इस जन्म में और तुम्हारे यहां आने की इच्छा नहीं होती। भला, तुमने एक ख़बर सुनी है? रामचन्द्रजी ने जन्म लिया है"।

इतना कहना ही था कि जिस तरह मधु-मक्खी के छत्ते में कोई छड़ी घुसेड़ दे, और भन भन करती हुई लाखों मक्खियां निकल पड़ें, उसी तरह दूर से लाखों मनुष्यों की खलबली सुन पड़ने लगी और प्रेतराज्य की धुँधली नीली रोशनी में आदमियों के दल बादल उमड़ कर निकलते हुए देख पड़ने लगे। 'राम'-नाम भर नारद के मुख से सुनना था कि मान्धाता के वक्त़ से आये हुए लाखों मनुष्य फाटक के पास आकर जमा होने लगे। फाटक खुल गया। किसीके रोके वह न रुका। नारद जी अन्तर्धान हो गये।

मामूली संख्या से अधिक कैदी इकट्ठे हो जाने से जेल के दारोग़ा, लाला चित्रगुप्त, को कई बर्षों से भत्ता (Extra allowance) मिल रहा था। वह अब बन्द हो गया। प्रधान यमदूत (Head warder) की तनख़्वाह घट गई। साधारण कर्म्मचारी (General establishment) की संख्या घटा दी गई। मारे सोच के धर्म्मराज की पलक रात भर न लगने लगी। दिन को खाना उन्हें हराम हो गया।

कुछ दिनों बाद नारद जी का पुनरागमन हुआ। धर्म्मराज गाय की तरह कांपने लगे कि यह पाखण्डी उस दिन तो महा अनर्थ कर गया। आज न जाने फिर क्यों आया है!

नारद—"भाई साहब, डरिये मत। मैं बड़े साहब (ब्रह्मा) के पास तुम्हारी सिफ़ारिश करने गया था। उन्होंने कहा, हट बेवक़ूफ़, देवताओं के दफ्तरों में कहीं रिडकशन (तख़फ़ीफ़) होती है? बहुत बड़ी सख़्ती हुई तो एक युग भर के लिये भत्ता (Personal allowance) भर कट जाया करेगा। उनसे कहना, फिर ज़रा अक़्ल लड़ावैं। चेष्टा से कोई भी काम असाध्य नहीं। सो, भाई साहब, सोचिए मत; अपना काम कीजिए। मैं चला।"

जो लोग पापियों के साथ सारा जीवन बिताते हैं, वे ख़ूब चालाक होते हैं। उनसे चुपचाप नहीं रहा जाता। धर्म्मराज ने बहुतेरे हीले हवाले करके वार्डर लोगों को पृथिवी पर कई जगहों में भेज दिया। यमदूत न० १ धर्म्मध्वजी बनकर धर्म्म-संस्थापन करने की चेष्टा करने लगा। यमदूत न० २ सभ्यता विस्तार की फ़िक्र में लगा। यम-दूत न० ३ साम्राज्य-नीति प्रचार करने लगा। न० ४ देशहितैषिता फैलाने लगा। इत्यादि।

लगभग एक युग बीत गया, धर्म्मराज के पास काम बहुत कम है। दो पहर के वक्त़ कुरसी पर बैठे बैठे गुलाबी झपकियां आ जाती हैं। तौभी नौकरी का मामला ठहरा, और उस पर मामता भी हो गई है। घर पर ज़मींदारी चाल से बिछौने पर लेट कर नींद नहीं आती। ऐसे समय, दूत न० १ ने सामने आकर सलाम किया।

धर्म्मराज—"कहो, क्या ख़बर?"

दूत नं० १—"ग़रीबपरवर, मैं पृथिवी पर धर्म्मस्थापन कर आया हूं।"

धर्मराज—"हरे, हरे! यह क्या किया? लोग धार्म्मिक हो जाने से तो हमारा महकमा ही टूट जायगा। नौकरी भी छुट जायगी। पापियों ही के बढ़ने में भलाई है, सो बात क्या तुम भूल गये?"

दू—"हुज़ूर, धर्म्म ही से तो लोग पापी बन जाते हैं; अन्धे हो जाते हैं।"

ध—"साफ़ साफ़ कहो।"

दू—"धर्म्मावतार! मैंने जाकर देखा कि पृथिवी पर लोग बड़े चैन से रहते हैं। बहुत से लोग एकही ईश्वर पर विश्वास करते हैं। परन्तु कोई कहता है ईश, कोई ईसा, कोई कृष्ण, कोई क्राइस्ट। मैंने सबको समझाया कि यह पृथक्-भाव ही असल चीज़ है। बस, वे तुरन्त वैसाही समझने लगे। मैंने अपने जी में सोचा, चलो, इसबार तो हम लोग बच गये। इन ज़रा ज़रा सी भेद की बातों पर जड़ जमाकर धर्म्मध्वजी लोग अपने को अभ्रान्त और दूसरों को भ्रान्त समझने लगे; आपस में गाली गुफ्ता, मार पीट और ख़ून ख़राबी की नौबत पहुंची। कितनेही धार्म्मिक जीते जी अधर्म्मियों को आग में डाल डाल भूनने लगे। कितने ही लोग एक हाथ में तलवार, दूसरे हाथ में धर्म्मपुस्तक लेकर घूमने लगे। साकार, निराकार, शाक्त, वैष्णव, बौद्ध, जैन—एक दूसरे से यों भिड़गये जैसे सांप से नेउला भिड़जाता है। वे परस्पर एक दूसरे पर ऐसे टूटे जैसे जंगली चूहे पर बनबिलाव टूटता है।

धर्म्मराज ने घबराकर पूछा, "तो साम्यवाद का क्या हुआ?"

दू—"क्यों? मैंने एक कहानी सुनी है। एक राक्षस किसी मुनि के लड़के को खाने दौड़ा। मुनि ने लड़के को सरसों के रूप में बदल दिया। राक्षस भी तुरन्त कबूतर बनकर सरसों के चुग लेने की चेष्टा करने लगा। तब मुनि ने उस सरसों पर और ढेरों सरसों डाल दिये। तब वह कबूतर रूपी राक्षस उतने सरसों को एक साथ न चुग सका, और अपने मतलब के सरसों को भी अलग न निकाल सका। इसी कहानी वाले सरसों की तरह पृथिवी में ढेरों धर्म्मग्रन्थ और धर्म्ममत बिखरे पड़े हुए हैं। इससे लोग इस छोटी सी साम्यवाद की बात को अपने मनमाने धर्म्मतत्व के झगड़ों से चुनकर नहीं निकाल सकते। और असल बात तो यों है कि सब लोग उन सब धर्म्मतत्वों को मानते भी नहीं; और किस तत्व से अभीष्ट सिद्ध हो सकता है, सो भी वे अच्छी तरह नहीं जानते। वे कहा करते हैं कि नाना मुनियों के मत भी नाना प्रकार के हैं। और धर्म्म का तत्व गुफ़ा के भीतर छिपा हुआ है, इत्यादि।"

ध—"फिर क्या हुआ? कहो।"

दू—"जनाब आली! गुलाम के पृथिवी पर इस तरह धर्म्मसंस्थापन करदेने से पाप के राज्य ने फिर पहले की तरह मज़बूत बुनियाद पकड़ ली है। काम का राज्य नहीं घटा। क्रोध-राज्य में पूर्ववत् हत्या हुआ करती है। लोभ की रियासत में ख़ूब चोरी हो रही है; और यह रियासत पश्चिम की तरफ़ ख़ूब बढ़ती जाती है। मोह, मद, मात्सर्य का पूर्व्व की तरफ़ विस्तार हो रहा है।"

ध—"वाह, शाबाश।"

सभा में बैठे हुए सभासद लोग—"शाबाश! ख़ूब किया! वाह वाह!"

जब यह आनन्द-कोलाहल कुछ ठंढा पड़ा, तब यमदूत नं २ ने आकर लम्बा सलाम किया, और हाथ बांध कर वह धर्म्मराज के सामने खड़ा हो गया।

ध—"क्या ख़बर है?"

दू—"धर्म्मावतार, पृथिवी पर मैं ऊंची सभ्यता फैला आया हूं।"

ध—"अरे, तुमने तो सत्यानाश कर दिया! लोग उन्नत और सभ्य हो जायंगे तो पाप घट जायगा। उससे तो हम लोगों ही की हानि है।"

दू—"मैं ने जो सभ्यता फैलाई है, वह देखने ही भर को है। ऊपर से तो वह .खूब चटकीली ग्रैार भड़कदार है। पर भीतर उसके मैला भरा हुआ है। 'ग्रात्मानं सततं रक्षेत्' इस मूल-मन्त्र की मैंने मूल व्याख्या समझा दी है। थोड़ी मेहनत से बहुत नरहत्या क्यों कर हो सकती है—ग्रात्मरक्षा के बहाने ऊंची सभ्यता का यही मतलब मैंने समझाया है। ग्राज कल के सभ्य देशों में उन्नत ज्ञान, जिसे विज्ञान कहते हैं, इसी उद्देश्य से तरह तरह के ग्रग्निबाण, ग्रग्निबोट, ग्रग्न्यस्त्र ग्रैार .गुब्बारे बना रहा है। इस सभ्यता के प्रभाव से सभ्य देशों में दस पांच ग्रादमी विलास में लोटा करते हैं; लाखों लखपती कुवेर के ग्रवतार बन जाते हैं; ग्रैार करोड़ों लोग पेट भर ग्रन्न भी न पाकर, जाड़े पाले में नंगे रह कर, रात रात भर कांपा करते हैं। इन सभ्य मनुष्यों में शराब पीना ही शरीर की शोभा है, ग्रात्मसुख ही मूल मन्त्र है, ग्रैार मन की सारी बुरी वृत्तियों की लगाम ढीली कर देना ही जीवन का सर्वस्व है। इसीसे मैं कहता हूं कि इस सभ्यता का भीतरी भाग कोयले से भी ग्रधिक काला है। इसीमें तो हम लोग की भलाई है।"

सब लोग—"वाह वाह! शाबाश!"

तब दूत नं ३ हाज़िर हुग्रा ग्रैार झुक कर उसने सलाम किया।

ध—"तुम क्या ख़बर लाये हो?"

दूत नं ३—"हुजूर, मैं पृथिवी पर देश-हितैषिता फैला ग्राया हूं।"

ध—"हैं, यह तुमने क्या कर डाला?"

दू—"हुजूर, कोई डर की बात नहीं हैं। पृथिवी पर देश ग्रनेक हैं। पर भिन्न भिन्न देशों की देशहितैषिता ग्रपने ही ग्रपने देश में व्यापक है। एक देश दूसरे के विपरीत काम करता है। हर देश में साम्प्रदायिक जोश (Party feeling) ग्रैार गाली गलौज की धार .खूब ज़ोर से बह रही है। ग्रैार जो सचमुच दीन दशा में है, जहां पर देशहितैषिता का सचमुच ही ग्रभाव है, वहां पर फूट की खेती होती है।"

सब लोग—"वाह, वाह, शाबाश।"

इसी तरह सब यमदूत एक एक करके ग्रपनी ग्रपनी रिपोर्ट पेश करने लगे। किसीने कहा मैं संवादपत्र की एडिटरी करता हूं। किसीने कहा मैंने 'नीति-संस्कार' फैलाया है; किसीने कहा 'विचार संस्कार'; किसीने "ग्रायुर्वेद संस्कार"। इसी तरह सब लोग ग्रपनी ग्रपनी कहानी कह कर गुल मचाने लगे।

देखते देखते इतने यमदूतों का कटक जमा हो गया ग्रैार वाह वाह की इतनी धूम मच गई कि ग्रपना पराया सुन पड़ना ग्रसम्भव हो गया। जब ज़रा जोश ख़रोश कम हुग्रा, यमराज ग्रैार सभासदों ने ताली बजा बजा कर कहा "शाबाश शाबाश! ग्रब नरक जल्द गुलज़ार हो जायगा"।

पार्वतीनन्दन

व्योम-विहरण।*

[२]

फ्रांस में एक साहब हैं। ग्रापका नाम व्होाष्ट है। व्योम-विहारिणी विद्या में ग्राप बड़े कुशल हैं। उन्होंने उड़ने की एक कल बनाई है, ग्रैार कहते हैं कि उसका 'उड़ना परीक्षा-सिद्ध है। इसमें पाँच जोड़ा जालीदार पर लगे हैं। हर एक पर (फैलाने पर) ९ फुट लम्बा ग्रैार २० इञ्च चौड़ा है। इन परों की रचना चिड़ियों के परों के समान है। उड़ने में वे एक के ग्रनन्तर एक ऊपर को उठते हैं, ग्रैार प्रति सेकण्ड में तीन बार हिलते हैं। इस कल में चिड़ियों की पूंछ के समान दो पतवार भी हैं। यह कल यल्युमीनियम नामक हलकी धातु की बनी है। एक भील को पार करने में इसकी परीक्षा सर्व-साधारण के सामने होनेवाली थी। इस परीक्षा का फल विदित नहीं हुग्रा।

* ग्रनुवादित।

अमेरिका के अध्यापक ब्यूल बिजुली की विद्या में बड़े प्रवीण हैं। अध्यापक लैंगली के साथ वे भी एक व्योमविहारिणी कल, अर्थात् पवन-नौका, बनाने में लगे हैं। वे कहते हैं कि उन्होंने इस आकाश-गामिनी विद्या की कठिनाइयों को हल कर लिया है; और शीघ्र ही अपनी उड़ने वाली कल को दिखला कर लोगों को वे चकित कर देंगे। वे यह भी कहते हैं कि .गुब्बारे की तरह की कोई कल आकाश में नहीं उड़ सकती। .गुब्बारा वायु से हलका होने के कारण उसका यथेच्छ उड़ाना सर्वथा असम्भव है। चिड़ियां हवा से भारी होती हैं; परन्तु वे .खूब उड़ती हैं। इसी लिए उनके उड़ने के नियमों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके हवा से भारी कल का बनाने वाला ही इस विषय में सफल-मनोरथ हो सकता है। वे पतङ्ग की तरह की एक कल बना रहे हैं। उसके साथ एक हलका यञ्जिन भी रहैगा। अभी वे इस कल के विषय में अधिक और कुछ नहीं बतलाना चाहते। बहुत वर्षों से आकाश-विहार की कठिनाइयों को हल करने में वे लगे हैं। उनके इस अश्रान्त श्रम का फल कुछ ही दिनों में प्रकाशित होने वाला है।

अमेरिका के यूटिका नगर के निवासी अध्यापक मायर ने, सुनते हैं, आकाश में उड्डान करने-वाली टारपोडो नामक एक नौका बना भी ली है। वह सेण्ट लुई नाम की प्रदर्शनी में दिखलाई जानेवाली थी। वह पक्षी के समान उड़ती है। वह स्क्रू नामक व्यावर्तन कीलकों के द्वारा उड़ती है। ये कीलक एक मिनट में २,००० चक्कर करते हैं! नहीं मालूम इसकी परीक्षा हुई या नहीं; और हुई तो क्या फल हुआ।

८ अगस्त, १९०३, को अमेरिका के वर्जीनिया प्रान्त के वाइडवाटर नगर में अध्यापक लैङ्गली की पवन-नौका की परीक्षा हुई। नहीं कह सकते कि यह वही नौका है जिसके बनाने में अध्यापक ब्यूल और लैङ्गली बहुत वर्षों से लगे थे; अथवा कोई और है, जिसे अकेले लैङ्गली ही ने बनाया है। इस नौका का एक छोटा सा नमूना एक कल से आकाश में छोड़ दिया गया। बस, छोड़ते ही वह बड़े वेग से उड़ा। पहले वह कुछ देर तक सीधा आकाश में चला गया; फिर उसके पर ज़रा फरफराये और एक तरफ़ झुक गये। ५०० गज़ तक वह नमूना उड़ा और उड़कर एक नदी में जा गिरा। इस जाँच के समय अध्यापक लैङ्गली उपस्थित न थे; परन्तु उनके सहकारी मैनले साहब उपस्थित थे। उन्होंने कहा कि जाँच का फल बुरा नहीं हुआ। उसमें पूरी पूरी सफलता हुई समझनी चाहिये। नौका में उड्डान करने की शक्ति यथेच्छ थी; और वायु में उसका तुल्यगुरुत्व भी पूरा था। नदी में गिरने से इसे विशेष हानि नहीं हुई। मैनले साहब ने दर्शकों से यह भी कहा कि वे इस कल को पानी से निकाल कर उसी दिन दूसरी बार उड़ा सकते हैं। यह नमूने की नौका १५ फुट लम्बी है; और लगभग इतनी ही चौड़ी भी है। लोहे की पतली पतली छड़ों की जाली से यह बनाई गई है। ६ फुट लम्बे और ४ फुट चौड़े चार पर इसमें हैं; वे रोग़नदार रेशम के बने हुए हैं। इसके बीच में दो घोड़े का बल रखनेवाला मोटर (चलानेवाला पेंच) है। उसीसे इस व्योम-विहारिणी कल को गति प्राप्त होती है।

यह अमेरिका की बात हुई। अब योरप की बातें सुनिये। स्पेन्सर साहब एक प्रसिद्ध विज्ञानी और .गुब्बारेबाज़ हैं। सितम्बर १९०३ में हमने सुना कि ये अपनी पवन नौका में बैठकर सेण्ट पाल्स कैथेड्रल की परिक्रमा करनेवाले थे। इस परिक्रमा का फल हमारे पढ़ने में नहीं आया। स्पेन्सर साहब कहते हैं, उनकी कल सर्वथा अकाश में उड़ने योग्य है। उसकी बनावट बहुत सादी है। उसकी उड्डान-शक्ति बहुत विलक्षण है। इस कल के मोटर में ३०,००० घन फुट गैस भरी जा सकती है। मोटर के उस भाग का व्यास जिसमें गैस भरी जाती है, २४ फुट और उसकी लम्बाई ९३ फुट है। इसमें एक छोटी सी गाड़ी रहती है जिसमें बैठकर स्पेन्सर साहब

मोटर को हाँकते हैं। इस नौका को वे जिस ओर चाहें ले जा सकते हैं। वे कहते हैं कि उनकी नौका बड़े काम की चीज़ है; और उसकी सिद्धता और उपयोगिता में कोई सन्देह नहीं है। उससे सभी के काम निकल सकते हैं। उसमें बैठकर सेनानायक सेना-सम्बन्धी कठिन से कठिन काम कर सकेंगे; विज्ञानी उत्तरी ध्रुव को जा सकेंगे; और शिकारी अफ़रीक़ा के अगम्य जङ्गलों में शिकार कर सकेंगे!

अब डाकृर बर्टन की विचित्रता का वृत्तान्त सुनिये। वे एक वायु-पोत बना रहे हैं। वे हवा में चलनेवाली नाव नहीं, बना रहे, कल नहीं बना रहे, किन्तु एक पूरा पूरा जहाज़ बना रहे हैं! वे कहते हैं कि उनके जहाज़ के सामने स्पेन्सर साहब की नौका कोई चीज़ नहीं—एक डोंगी मात्र है। वे उसे ग़ुब्बारे हो के नियमों के अनुसार बनी हुई बतलाते हैं। परन्तु अपनी कल की वे अधिक प्रशंसा करते हैं; और कहते हैं कि वह स्वतन्त्रता से आकाश में यथेच्छ आवागमन कर सकेगी। इस पवन-पोत की लम्बाई १७० फुट है; इसका व्यास ४० फुट है; और इसका भीतरी भाग २३,०००० वर्ग फुट है! डाकृर साहब कहते हैं कि जिस समय इस पोत की परीक्षा होगी, उस समय सात आदमी इस पर बैठ सकेंगे। वे इसे यथेच्छ उतार चढ़ा सकेंगे; और जब जिस ओर चाहेंगे ले जायंगे। डाकृर बार्टन के पवन-पोत की सफलता का गवर्नमेण्ट को भी पूरा विश्वास होगया था। सुनते हैं ग्रेट-ब्रिटेन के युद्ध-विभाग ने डाकृर साहब के इस जहाज़ को ६०,०००० रुपए में मोल लेने का वादा किया था। १ अगस्ट, १९०३, तक इस जहाज़ को बनाकर दे देने के लिए डाकृर साहब ने प्रतिज्ञा की थी। यह प्रतिज्ञा उनसे पूरी नहीं हो सकी। इसलिए युद्ध-विभाग ने प्रतिज्ञा भङ्ग के कारण उसके लेने का ठेका तोड़ दिया। डाकृर वार्टन कहते हैं कि तैयार हो जाने पर यदि ब्रिटिश-युद्ध-विभाग उनके पवन-पोत को न लेगा तो वे उसे और किसी योरपीय राज्य को बेच देंगे। ग्रेटब्रिटेन के वार आफ़िस (युद्ध-सम्बन्धी प्रधान दफ़्तर) के द्वारा इस व्योम-विहारी जहाज़ को मोल लिए जाने की बात से यह सूचित होता है कि यह जहाज़ सचमुचही उड़ सकैगा।

कुछ भी हो,—जो कुछ, इस विषय में, ऊपर कहा गया उससे जान पड़ता है कि वह समय बहुत निकट है जब मनुष्य पक्षियों के समान आकाश में उड़ते हुए दिखाई देंगे। एवमस्तु! विज्ञान में सब शक्ति है।

यहां तक जो कुछ हमने लिखा, उसकी समाप्ति नवम्बर १९०३ में हुई थी। तबसे यह लेख ऐसा ही पड़ा रहा; सरस्वती में स्थान की कमी के कारण यह छप नहीं सका। गत वर्ष अमेरिका के सेण्टलुइ नामक शहर में एक बहुत बड़ी प्रदर्शनी हुई। उसमें अनेक पवन-नौकाओं ने अपनी अपनी करामातें दिखलाईं। इस सम्बन्ध के बहुत से काग़ज़ात हमने इकट्ठा किये थे। पर झांसी से कानपुर को जो हमने अपनी पुस्तकें इत्यादि, और असबाब के साथ, भेजीं, उनमें वे काग़ज कहीं खो गये। इससे हम नहीं कह सकते कि इस प्रदर्शनी में किसकी नौका सर्वोत्तम निकली। इसमें दस बारह फ्लाइंग् मैशीन, अर्थात् उड़नेवाली कलों, की दौड़ का तमाशा हुआ था। सबसे अच्छी कल के बनाने वाले को तीन लाख रुपया इनाम मिलने की घोषणा थी। बहुत सम्भव है, अमेरिका के राइट साहब को यह इनाम मिला होगा। आप बहुत बड़े व्योम-विहारी है। आपकी प्रशंसा में कई लेख हमने अंगरेज़ी में पढ़े हैं। हमें याद है कि प्रदर्शनी होने के पहले इन्होंने एक बार अपनी हवाई नाव को तीन मील उड़ाकर देखनेवालों को चकित कर दिया था।

योरप और अमेरिका के सामयिक पत्रों में आज तक जो लेख प्रकाशित हुए हैं, उनसे यह अनुमान होता है, कि कुछ दिनों में लोग निडर होकर आकाश में उड़ने लगेंगे। कोई सभ्य देश ऐसा नहीं है जहां के विद्वान् इस समय इस आकाश-

विहारिणी विद्या की समस्या को हल करने में न लगे हों। केवल १९०४ ईसवी में इस तरह की कलों के बनाने में जितना रुपया ख़र्च हुआ है, उतना गत एक हज़ार वर्ष में नहीं ख़र्च हुआ। अमेरिका की गवर्नमेण्ट इस विषय में बेशुमार रुपया ख़र्च कर रही है। यदि कोई पवन-नौका ऐसी बन जाय जो चार पाँच मन गन-काटन नाम की प्रचण्ड ज्वालाग्राही बारूद लाद कर आकाश में उड़ सके, तो युद्धविद्या में एक विलक्षण युग उत्पन्न हो जाय। उसकी सहायता से शत्रु की हज़ारों फ़ौज पल में छिन्न भिन्न हो सके।

उस दिन हमने एक जगह पढ़ा कि अमेरिका में कैलीफ़ोर्निया के अध्यापक माण्टगोमरी ने एक काम लायक़ पवन-नौका बना ली। इस नौका में चिड़ियों के ऐसे पर हैं। यह चलानेवाले की इच्छा के अनुसार टेढ़ी, सीधी, ऊपर, नीचे चलती है। इसकी जाँच भी हो चुकी है। पहले एक गुब्बारे से बाँध कर यह उड़ाई गई। जब गुब्बारा ज़मीन से ३००० फ़ुट ऊपर पहुँचा तब पवन-नौका से उसका लगाव तोड़ दिया गया। पर उसकी जाँच में कोई विघ्न नहीं हुआ। वह बड़ी सरलता से आकाश में उड़ी। अध्यापक माण्टगोमरी को इस जाँच में बहुत कुछ कामयाबी हुई।

कैलीफ़ोर्निया में एक और पवन-नौका बनी है। इसे होटन साहब ने बनाया है। इसके गैस भरने के थैले की लम्बाई ७६ फ़ुट है। उसमें दस हज़ार घन फ़ुट जलकर गैस रह सकती है। यह यञ्जिन की सहायता से चलती है। यञ्जिन का वज़न सिर्फ़ २८ सेर है। पर वह २० घोड़े की ताक़त रखता है। १२ फ़रवरी, १९०५, को इसकी जाँच हुई। ऊपर जाने पर इसे बहुत तेज़ हवा का सामना करना पड़ा। इससे होटन साहब इसके वेग को कम न कर सके और यह उड़ कर एक खाड़ी में जा गिरी। वहां होटन साहब बड़ी आपदा में फँसे। यदि अनायास दो एक नावें वहां से न निकलतीं, तो वे रसातल को चले जाते।

फ़्रांस में भी हवाई नावें बनाई जा रही हैं। समय समय पर उनकी जाँच होती है। इसी वर्ष ११ से १३ फ़रवरी तक पेरिस में एक जमाव हुआ था। यह जमाव सिर्फ़ हवाई नावों की जाँच के लिए था। १२५ फ़ुट ऊंचा एक मचान बनाया गया था। उसीके ऊपर से सब नावें उड़ाई गई थीं। नावें क्या थीं, नावों के छोटे छोटे नमूने थे। उनकी लम्बाई २ से १० इञ्च तक थी। एक को छोड़ कर वे सब इतने छोटे नमूने थे कि उनमें कोई बैठ नहीं सकता था। सिर्फ़ परीक्षा के लिए वे बनाये गये थे। वे हवा से अधिक वज़नी थे। वे इस प्रकार बनाये गये थे कि आकाश में सीधे उड़ें और हवा में अपना तुल्यगुरुत्व क़ायम रक्खें। चिड़ियों के रूप की भी दो एक फ्लाइंग मैशीनें
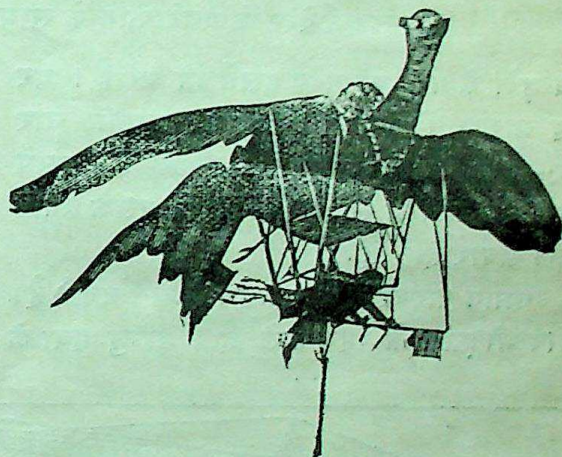
गेलेट साहब की बनाई हुई कल की चिड़िया।

जाँच के लिए लाई गई थीं। इनमें से गेलेट साहब की हवाई चिड़िया सबसे अच्छी निकली। हवाई नावों के कुछ नमूने अच्छे उड़े। दूर तक वे सीधे चले गये। पर कुछ नमूने ख़ूब सीधे नहीं उड़े। तथापि जो कुछ हुआ उसीको लोगों ने बहुत कुछ समझा। क्योंकि बिना नाविक के नाव का सीधा जाना बहुत कम सम्भव है। इस प्रदर्शनी में पालहान-पेरेट की नाव से लोगों को बहुत प्रसन्नता हुई। इसको पहले भी कई दफ़ा

जाँच हो चुकी थी और इसे कामयाबी भी हुई थी। इस दफ़ा भी इसे बहुत कामयाबी हुई।

पालहान-पेरेट के एयरोफ़ोन के सामने का दृश्य।

चिड़ियों के परों की तरह इसमें भी पर हैं। पर यह आकाश-विहारिणी चिड़िया दो नहीं, चार पर—एक एक तरफ़ दो दो—रखती है। इसमें नीचे एक खटोला सा है। उसी पर उसके बनाने वाले सवार होते हैं।

कप्तान फरबर ने भी एक हवाई नाव बनाई है। आप भी फ़्रांस के रहने वाले हैं। परन्तु हवा के रुख़ का ख़याल किये बिनाही आपने उसकी जाँच की। इससे वह ज़मीन पर गिर कर चूर हो गई और आप मरने से बचे। यह नाव भी एक ऊँचे खम्भे पर टांग कर उड़ाई गई थी।

इन सब परीक्षाओं और नमूनों से साफ़ ज़ाहिर है कि योरप और अमेरिकावाले इस व्योमविहारिणी विद्या को सिद्ध करने के पीछे पड़े हुए हैं। य[ह] सिद्धान्त है कि जो जिस बात के पीछे पड़ जाता है, उसमें उसे किसी न किसी समय ज़रूर ही सफ़लता होती है। अतएव पूरी आशा है कि सारी बाधाएं जल्द दूर हो जायंगी और पुष्पक विमान के समान पवन-यान किसी दिन आकाश में धड़ाके से उड़ने लगेंगे।

इतना लिख चुकने के बाद अध्यापक माण्ट-गोमरी के पवनयान की परीक्षा का हाल हमने पढ़ा। आप अमेरिका के रहनेवाले हैं और सन्ताक्लारा कालेज में अध्यापक हैं। वहां एप्रिल, १९०५, को आपकी पवननौका की परीक्षा हुई। एक ग़ुब्बारे से बांधकर वह उड़ाई गई। जब ग़ुब्बारा ८००० फुट ऊंचा चढ़ गया, तब जिस रस्से के योग से पवननौका ग़ुब्बारे से बँधी हुई थी, वह काट दिया गया। पवन-नौका १०० फुट नीचे गिरी। परन्तु फिर सँभल गई और कोई २० मिनट तक आकाश में स्थिर रही। जो आदमी उस पर सवार था, उसने उसे यथेच्छ अपने क़ाबू में रक्खा। उसने कई एक चक्कर
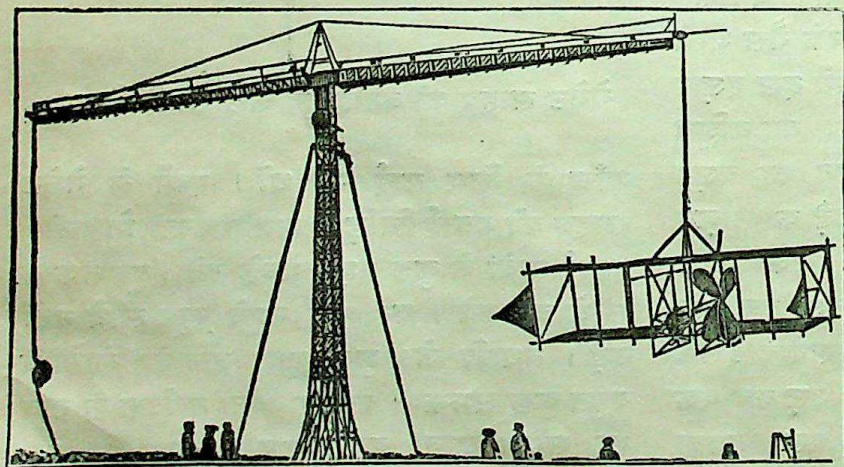
फरबर का एयरोफ़ोन नं० ६ जिसकी परीक्षा हो रही है।

दिये और अन्त में नियत स्थान पर उसे वह उतार लाया। न नौका ही को कोई हानि पहुंची और न चढ़ने वाले ही को। इस जाँच से व्योमविहरण-सम्बन्धी एक कठिनता हल हो गई। अर्थात् यदि अध्यापक मौंटगोमरी के तरीक़े से पवननौका बनाई जाय तो वह हवा पर अच्छी तरह तैर सकती है। दो बातों का हल करना अब और बाक़ी है। एक तो पवननौका का आपही आप ज़मीन से ऊपर उठना; और दूसरा आकाश में यथेच्छ दिशा की ओर उड़ना। आशा है ये दोनों कठिनाइयां भी किसी दिन हल हो जांय।

इस लेख के यहांतक छप चुकने पर हमने १७ जून १९०५ के "सायंटिफिक अमेरिकन" में पढ़ा कि ब्रेज़ील के सेंहोर अलवेरस नामक एक विज्ञानी ने एक आकाश-नौका बनाकर प्रायः पूरी कामयाबी हासिल कर ली। वह नौका एक ग़ुब्बारे से बांध कर ऊपर उठाई गई। ऊपर जाने पर उसका लगाव ग़ुब्बारे से अलग कर दिया गया। तब वह बड़ी द्रुतगति से एक मील तक उड़ी और बिना किसी दुर्घटना के नीचे उतर आई। अब शीघ्रही उसमें एक इतना बलवान् एञ्जिन लगाया जायगा जो उसे बिना ग़ुब्बारे की सहायता के आकाश में उड़ाले जाय और यथेच्छ विहार करने के बाद इच्छित स्थान पर लावै।

जापान-सागर के विजयी वीर।

रूस जापान की लड़ाई के कई इतिहास अँगरेज़ी में इंगलैण्ड और अमेरिका से निकलते हैं। भाषा-सौन्दर्य्य, विषय-विवेचना और आलोचना के लिए, इनमें से, कासल कम्पनी का इतिहास सबसे अच्छा है। वह लण्डन से निकलता है। पहले वह साप्ताहिक था; अब, कुछ दिनों से, मासिक होगया है। सुशिमा की सामुद्रिक लड़ाई का वर्णन उसमें शायद नवम्बर तक छपे। पर जो इतिहास जापानी लोग ख़ुद जापान से अँगरेज़ी में निकालते हैं, उसकी जुलाई ही की संख्या में इस लड़ाई का सविस्तर वृत्तान्त प्रकाशित हो गया है। उसे पढ़ कर जापानियों की अतुल वीरता, निःसीम, देशभक्ति, प्रचण्ड साहस और अप्रतिम रणकौशल का चित्र सा हृदय पर खचित हो जाता है। इस इतिहास से बहुत सी नई नई बातें मालूम हुई हैं। बालटिक बेड़े को ज़ार ने जापानी बेड़े को जड़ से नाश करने के लिए भेजा था, सिर्फ़ व्लाडीवस्ताक पहुंचने के लिये नहीं। जो रूसी अफ़सर जापान में क़ैद हैं, उनसे मालूम हुआ कि अपने बेड़े के सामने वे जापानी बेड़े को कुछ समझते ही न थे। इसीसे निडर होकर उन्होंने जापान-सागर से निकल जाने का निश्चय किया था। एक रूसी अफ़सर की राय में रूसी हार का कारण यह हुआ कि एडमिरल रोज़ेस-वेस्की ने इस बात का पता लगाने की ज़रा भी कोशिश नहीं की कि जापानी बेड़ा कहां पर है और उसकी शक्ति कितनी है। रूसियों को अपनी जीत पर पहले ही से इतना विश्वास था कि इन बातों के जानने की तकलीफ़ उठाना उन्होंने व्यर्थ समझा। जिन जहाज़ों के भरोसे रूस ने जापान को पहले ही से परास्त हुआ समझा था, जापानियों ने उनके भीतर सैकड़ों मन कोयले की ख़ाक और कूड़ा, और बाहर, सामुद्री घास और काई लगी हुई पाई! रूसियों ने अपने जहाज़ों में बे-हिसाब कोयला भरा था; जहां कोयला लादने की जगह थी वहां भी और जहां न थी वहां भी। और, कोयला ख़र्च हो जाने पर भी उन्होंने जगह साफ़ न की थी।

टोगोने किस कौशल से अपने बेड़े को छिपा रक्खा था, यह बात जापानी इतिहास-लेखक अभी नहीं बताना चाहता। पर जगह जगह पर वह कहता है "as pre-arranged" (जैसा पहले निश्चय हो चुका था)। इससे प्रमाणित है कि

लड़ाई के पहले ही छोटी बड़ी सब बातें निश्चित हो चुकी थीं। २७ मई, १९०५, को सुबह बेतार की तारबर्क़ी से टोगो को रूसी बेड़े के आगमन की ख़बर मिली। ख़बर होते ही टोगो ने अपने सब अफ़सरों को तार दिया। जापानी बेड़ा कई भागों में बँटा हुआ था। दोपहर होते ही सब भाग अपने अपने स्थान पर पहुंच गये। शत्रु का आगमन सुनकर ख़लासियों से लेकर ऐडमिरलों तक को बेहद ख़ुशी हुई। हर आदमी को यही हौसला हुआ कि वह रूसियों को परास्त करके विजय का सारा यश अकेला ही लूट ले। लड़ाई दिन के दो बजे के क़रीब शुरू हुई और दूसरे दिन दो पहर बाद समाप्त हुई।

जापानियों ने ऐसी वीरता दिखलाई जैसी आज तक की सामुद्री लड़ाइयों में कभी नहीं सुनी गई थी। रूसियों का बेड़ा प्रायः समूल नष्ट हो गया। कई ऐडमिरल पकड़े गये। कई बड़े बड़े जहाज़ पकड़े गये। २७ मई को हवा बहुत तेज़ थी। समुद्र क्षुब्ध हो रहा था। टारपीडो बोट और डेसट्रायर नामक छोटे जहाज़ समुद्र में ठहर नहीं सकते थे। इस लिये उन्हें उथले पानी में जाना पड़ा। वे शुरू लड़ाई में शामिल नहीं हो सके। इस कारण उनके अफ़सरों और आदमियों को अवर्णनीय दुःख हुआ। उन्होंने ईश्वर से प्रार्थना की। ईश्वर ने उनकी प्रार्थना सुनी। शाम को समुद्र कुछ शान्त हुआ। उन लोगों की ख़ुशी की सीमा न रही। वे भीम वेग से खुले समुद्र की तरफ़ दौड़े और मौत को एक तिनके के बराबर भी न समझ कर रूसी जहाज़ों पर उन्होंने बड़े ही बल विक्रम से हमला किया। अनेक छोटे बड़े जहाज़ उन्होंने तोड़ फोड़कर समुद्र के नीचे पहुंचा दिये। उनकी बहादुरी और निर्भयता की रूसियों तक ने सहस्र मुख से तारीफ़ की। एक रूसी अफ़सर ने जापानी टारपीडो बोटों के हमले की भयंकरता को "अवर्णनीय" कहा। टोगो ने ख़ुद कहा कि ये लोग आपस में एक दूसरे की प्रतिस्पर्धा करके आगे बढ़ते और शत्रुओं पर, जो जान की कुछ परवा न करके, हमला करते थे। एक टारपीडो बोट बहुत ही कमज़ोर थी। पर उसने सबसे बड़ा काम किया। कई व्यापारी जहाज़ आ रहे थे। इशारे से उसने उनको दूर जाने को कहा। पर उन्होंने इशारे नहीं देखे। तब वह उनके पास तक दौड़ गई और उनको युद्ध की सीमा से दूर रहने के लिए ख़बरदार किया। वे न जानते थे कि पास ही युद्ध हो रहा है। फिर वह बोट वहां से लौट आई और कई एक बहादुरी के काम उसने किये। लड़ाई के अन्त में विजय की बड़ाई टोगो ने नहीं ली; अपने अफ़सरों को भी नहीं दी। दी किसे? मिकाडो को! धन्य उदारता! धन्य राजभक्ति! मिकाडो ने उत्तर में अपनी जहाज़ी सेना और जहाज़ी अफ़सरों को यथेष्ट बधाई दी और विजय का कारण उन्हीं की देशभक्ति और वीरता को बतलाया। रूस-जापान में अब परस्पर सन्धि हो गई है। सन्धि में भी महाराज मिकाडो ने अपनी उदारता से संसार को चकित कर दिया है। उन्होंने रूस से लड़ाई का ख़र्च नहीं लिया। सिर्फ़ आधा सघालीन टापू और कैदियों के खिलाने पिलाने का ख़र्च लेकर ही रूस को उन्होंने छोड़ दिया। इस उदारता पर प्रायः सारा संसार आपकी प्रशंसा कर रहा है। पर रूसवाले कहीं इस उदारता को कमज़ोरी न समझ लें।

जिन वीर अफ़सरों ने जापान-सागर में रूसी बेड़े का नाश करके जापान की सामुद्रिक शक्ति को निष्कण्टक कर दिया, उनके समूह का चित्र हम इस संख्या में प्रकाशित करते हैं।

पत्थर का एक अद्भुत गोला।

"सायंटिफ़िक अमेरिकन" में पत्थर के एक अद्भुत गोले का हाल छपा है। अमेरिका की रियासतों में ओहियो एक रियासत है। वहां

मरियन एक जगह है। वहां के प्रधान क़बरिस्तान में एक यादगार है। कुछ काल से लोग इसकी ओर बहुत दत्तचित्त हो रहे हैं। यह यादगार पत्थर का एक बड़ा गोला है। इसका व्यास ३६ इंच है। यह एक बहुत बड़ी कुरसी अर्थात् आधार; या स्तम्भपाद, पर विराजमान है। उसी पर यह अपनी धुरी के चारों तरफ़ उत्तर से दक्षिण की ओर धीरे धीरे आप ही आप घूमा करता है। ऐसा जान पड़ता है कि इसके घूमने का कारण केवल सूर्य की किरणें ही हैं।
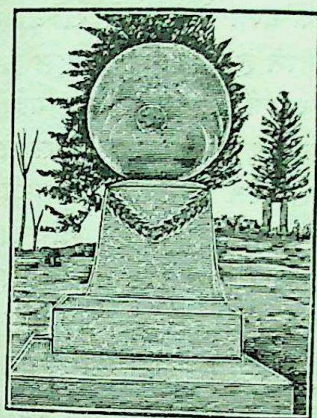
यह यादगार बहुत वर्ष हुए मरियन के रहने वाले सी० बी० मर्चण्ट नाम के एक साहूकार ने बनवाया था। परन्तु १९०४ ईसवी तक यह बात किसी को नहीं मालूम थी कि यह गोला घूमता है। अकस्मात् इस साल क़बरिस्तान के नौकरों ने देखा कि गोला कुछ घूम गया है। तब से इसकी जांच होने लगी। अब यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो गई है कि यह गोला नित्य घूमा करता है।

जब यह गोला रक्खा गया था, तब यह अपने आधार, अर्थात् कुरसी, से कस कर नहीं बांधा गया था। इसका खुरखुरा भाग सिर्फ़ एक छेद के भीतर रख दिया गया था, जिसमें खुरखुरेपन के कारण यह अपने स्थान से हट न सके। पर अब यह खुरखुरा भाग उत्तर की ओर खिसक कर ऊपर अधबिच में जा पहुंचा है। १ली अगस्त, १९०४, से इसने ५ इंच और आगे को क़दम बढ़ाया है।

यदि यह कहा जाय कि ऐसी आश्चर्यमयी लीला दिखाने में कोई आदमी हथफेर या चालाकी करता है, तो यह बात सर्वथा असम्भव है। क्योंकि गोला तौल में ५२ मन है और बोझ उठाने की किसी कल के बिना नहीं घुमाया जा सकता है। इस अद्भुत प्राकृतिक घटना के समझाने के लिए कई एक कल्पनायें की गई हैं। गवर्नमेण्ट के भू-गर्भ-विद्या-विशारद एडवर्ड आर्टन साहब ने एक पत्र क़बरिस्तान की संरक्षक कमिटी के एक मेम्बर को लिखा है। उसमें आप कहते हैं—"इस गोले की गति के दो कारण हो सकते हैं। पहला यह कि बहुत बड़े और वज़नी आधार की अपेक्षा गोले का ऊपरी भाग अधिक गरम हो जाने से अधिक फैलता है। इसीसे गोला ऊपर की ओर जाने लगता है। सूर्यास्त के बाद उस फैलाव का संकोच इतना नहीं होने पाता जिससे गोले का खुरखुरा भाग फिर जहां का तहां आजाय। दूसरा कारण यह हो सकता है कि गोले की एक तरफ़ की परिधि लम्बी होती जाती है। इससे गोले और उसके आधार के बीच एक प्रकार की आकर्षण-शक्ति उत्पन्न होजाती है"।

अमेरिका के अध्यापक बेकर और जिलबर्ट का भी भू-गर्भ-विद्या में बड़ा नाम है। अतएव उनसे भी इस विषय में सम्मति ली गई; परन्तु कोई संतोष-जनक उत्तर नहीं मिला। गोले के घूमने का ठीक कारण वे भी निश्चित नहीं कर सके। उन्होंने सिर्फ़ इतना ही कहा कि इसके घूमने का कारण सूर्य्य देवता की किरणें ही हो सकती हैं। अध्यापक बेकर का यह भी कथन है कि यदि गोले का घूमना उत्तर से दक्षिण के बदले में दक्षिण से उत्तर को तरफ़ होता, तो उन्हें इस लीला के समझने में कठिनता न पड़ती। क्योंकि उस हालत में गोले का फैलाव विशेष करके दक्षिण ही की तरफ़ होता और वहां पर ऊंचा उठकर वह नीचे की तरफ़ फिसल पड़ता। अध्यापक जिलबर्ट का अनुमान है कि शायद प्याले के आकार वाले छेद में (जिसपर गोला रक्खा हुआ

है) ग्रैार गोले में कोई ऐसी बात हो जिस के कारण गोले के दोनों ग्रोर ग्रसमान रगड़ होने से गोला चलने लगता हो। इस यादगार के पास ही दक्षिण की तरफ़ एक पेड़ है। इससे यह भी कहा जाता है कि इसके कारण गोले के कुछ भाग पर धूप ग्रैार कुछ पर छाया रहती है। शायद इसीसे गोला घूमता हो। जो हो, ग्रभी तक इसके विषय में कोई निश्चित राय स्थिर नहीं हुई ग्रैार इसने वैज्ञानिकों की बुद्धि को चक्कर में डाल रक्खा है।

देवीप्रसाद शुक्ल।

हिमस्फटिक।

प्रकृति के प्रेमियों का मन ग्रैार किसी चीज़ के जानने में उतना नहीं लगता जितना हिम के ग्रनन्त ग्राकारों के जानने में लगता है। तूफ़ान के बाद जो हिम पेड़, झाड़ी ग्रैार ज़मीन पर जमा हो जाती है, वह जो दृश्य दिखाती है वे दृश्य केवल शोभायुक्त ही नहीं किन्तु ग्रद्वितीय हैं। हिम के ग्रनन्त ग्राकार होते हैं। हिम के सम्बन्ध में प्रकृति शिल्पी का काम करती है। हिम से वह वही काम लेती है जो कुम्हार मिट्टी से लेता है।

हिम ग्रर्थात् बर्फ़ (पाला) के तूफ़ान ग्राया करते हैं। तूफ़ान के समय गिरे हुए हिम के परमाणु, विलग करके, यदि सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से ग्रच्छी तरह देखे जायं तो प्रकृति की ग्रद्भुत कारीगरी देखने में ग्राती है। जमा हुग्रा हिम स्फटिक के सदृश होता है। उसीसे उसे हिमस्फटिक कहते हैं। हिमस्फटिक की भिन्न भिन्न ग्रनन्त सूरतें होती हैं। यन्त्र की सहायता के बिना भी यह देखा जाता है कि उनकी बनावट एक ग्राश्चर्यजनक नियम के ग्रनुसार होती है। हिम के परमाणुग्रों का फ़ोटो लिया जा सकता है। फ़ोटोग्राफ़ी की बदौलत ग्राज तक हिम की ग्रनेक शकलों के फ़ोटो लिए गये हैं। सरदी गरमी से उन शकलों के बरबाद होने का डर नहीं रहता। ग्रैार ग्रादमी जब चाहे तब उन पर विचार कर सकता है। ग्राज तक हिमस्फटिक के जितने दृश्य देखे गये हैं, उनसे हिमस्फटिक की उत्पत्ति के विषय में बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त हुग्रा है। हिमस्फटिकों के जाँचने में पहली बात जो ध्यान में ग्राती है, वह यह है कि हर स्फटिक में प्रायः छही भुजा होती हैं—फिर चाहे शकल उसकी जैसी हो। कुछ को छोड़ कर सब स्फटिकों में, जिनकी शकलें फ़ोटोग्राफ़ के केमरा या सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के सहारे खींची गई हैं, या तो छ-कोण होते हैं या छ-भुज। इस लेख के साथ हिमस्फटिक की जो तसवीरें दी गई हैं वे एक दूसरी से भिन्न हैं, तथापि ऊपर लिखी हुई बात को वे स्पष्ट साबित करती हैं। चैाथी शकल को देखिए। वह ठीक षट्भुज है। पांचवीं शकल का बाहरी हिस्सा यद्यपि एक लम्बे कोणवाला षट्भुज है, तद्यपि उसका भीतरी हिस्सा पूरा षट्भुज है ग्रैार बहुत ख़ूबसूरती के साथ बना हुग्रा है। दसवीं शकल में कुछ थोड़ा घटाव बढ़ाव है, जिससे यह सूचित होता है कि जिस समय स्फटिक का फ़ोटो लिया गया था, उस समय छ कोनेदार षट्भुज बन रहा था। यह एक ऐसी मिश्रित शकल है जिसके भीतर ध्यानपूर्वक देखने से ग्रैार भी कई शकलें देख पड़ती हैं। पहली शकल बहुत सुन्दर है। वह चैाथी शकल के घटाने बढ़ाने से बनी है। इस शकल में स्फटिक इस भांति बांटा गया है कि उसका ग्रधिक भाग केवल कोने ही हैं।

स्फटिक किस तरह बढ़ते हैं यह दूसरी, तीसरी ग्रैार ग्राठवीं शकल से सूचित होता है। इनकी भुजायें केन्द्र से निकली हुई हैं ग्रैार छ हैं। परन्तु दूसरी ग्रैार तीसरी शकलों का भीतरी ढांचा एक छोटा सा षट्भुज है। जो षट्भुज दूसरी शकल में है, वह सब शकलों के षट्भुजों से ग्रधिक नाज़ुक ग्रैार परिपूर्ण है। उसमें इस तरह की कम से कम चार शकलें साफ़ साफ़ देख पड़ती हैं ग्रैार उसके

बीचों बीच छ छोटे छोटे वृत्त हैं। तीसरी शकल को एक मिली हुई शकल कह सकते हैं, क्योंकि वह किसी दूसरी शकल के मेल से बनी हुई मालूम होती है। तो भी वह एक ही स्फटिक है जो बादलों की कई तहों के भीतर से आते समय सरदी गरमी पाकर बना है।

जिन स्फटिकों की यहां पर तसबीरें दी गई हैं, वे कई कारणों से विशेष मनोरञ्जक हैं। जिन चीज़ों को हम रोज़ देखते हैं, उनमें से कई चीज़ों से ये स्फटिक बहुत कुछ मेल रखते हैं। सातवीं शकल के तीन छोटे छोटे नमूनों को देखिए। माना वे पच्चीकारी के नमूने हैं। अगल बगल वाले स्फटिक कमीज़ के बटन से मालूम होते हैं; मानों वे अभी तैयार किये गये हैं। बहुत सी शकलों को देखने से ज्ञान पड़ता है कि वे लकड़ी के काम के नमूने हैं। पाँचवीं शकल इस तरह का सबसे बढ़िया नमूना है। और चौथी शकल को देखने से तो एक कामदार रुमाल का धोखा हो सकता है। पहली, छठी और दसवीं शकलें ज़री के काम का नमूना मालूम होती हैं। छठी शकल में किनारों की सतह इतनी पतली है कि वह बारीक मलमल सी मालूम होती है। हिम के गाले अर्थात् टुकड़े मूंगे की भी शकल के होते हैं। तीसरी शकल मूंगे की भुजाओं की बहुत सुन्दर नक़ल है। दूसरी शकल की भी बनावट इसी तरह की है। मेज़, कुर्सी इत्यादि बनाने वालों के लिए आठवीं शकल बहुत काम की हो सकती है। लकड़ी के सामान पर
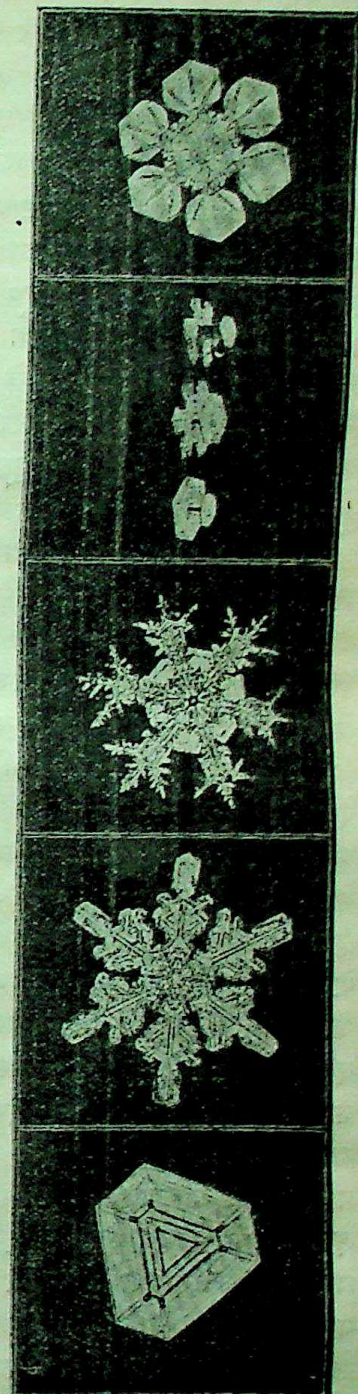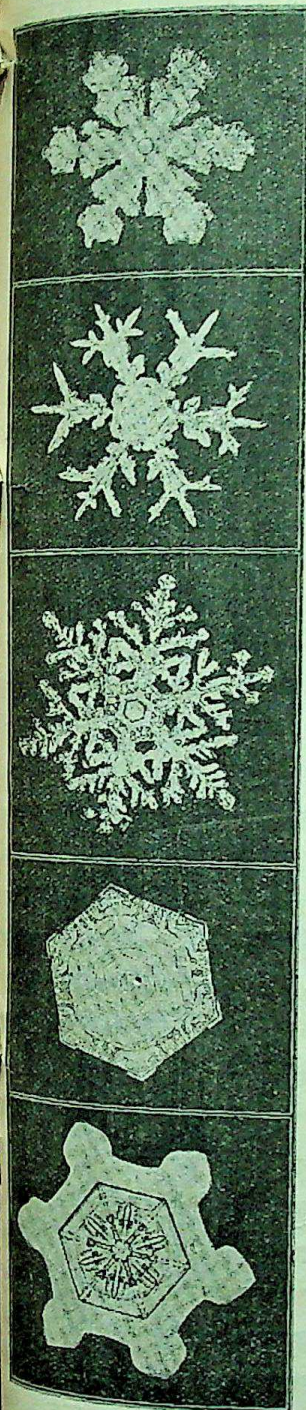
फूल बनाने में यह उपयोग में आ सकती है। बहुत से फूल, जो तैलयुक्त कपड़े पर छापे जाते हैं, ऐसे ही होते हैं।

हिमस्फटिक के फ़ोटो उतारना और उतारी हुई तसवीरों पर विचार करना थोड़े ही दिनों से प्रचार में आया है। हिमस्फटिक की सबसे अधिक तसवीरों का संग्रह अमेरिका के वरमाण्ट नामी शहर के निवासी के० डबल्यू० ए० बेण्टले साहब ने किया है। २५ वर्ष से अधिक समय उन्होंने इसी काम में लगाया है। भाग्यवश वे ऐसे स्थान में रहते हैं जहां जाड़े में केवल उत्तरीय और पश्चिमीय तूफ़ान ही नहीं आते, किन्तु पूर्वीय और दक्षिणीय तूफ़ान भी आते हैं। इन तूफ़ानों में से बहुत से उसी जगह उत्पन्न होकर ख़तम हो जाते हैं, पर कितने ही दूर दूर तक फैल जाते हैं। बेण्टले तथा और और हिमस्फटिक के ज्ञाताओं का यह मत है कि सब तरह से परिपूर्ण स्फटिक केवल बड़े तूफ़ान में ही उत्पन्न होते हैं। आश्चर्य्य की बात यह है कि बहुत से अच्छे अच्छे हिमस्फटिक ऐसे समय में पैदा होते हैं जब हवा बहुत ही ठंढी चलती है, अर्थात् जब थर्मामिटर का पारा बहुत अधिक सरदी ज़ाहिर करता है, तब वे उत्पन्न होते हैं। देखनेवालों ने त्रिभुज की शकल के कुछ हिमस्फटिक ऐसे देखे हैं जो इसी तरह के भारी तूफ़ान में बने थे। त्रिभुज की शकल का सबसे अच्छा नमूना दसवीं शकल है। परन्तु उसकी बाहरी रेखा से वह छ बिन्दु बनाता हुआ दिखाई देता है। और यद्यपि उसका ढांचा त्रिकोण है, तथापि वह एक पतङ्ग के आकार का है। उत्तर और पश्चिम वाले तूफ़ानों की अपेक्षा पूर्व और दक्षिण वाले तूफ़ानों में अधिक उत्तम स्फटिक बनते हैं। कारण शायद यह है कि पहले प्रकार के तूफ़ानों में सर्दी अधिक रहती है और वायु अधिक रूखी होती है। पर पिछले प्रकार के तूफ़ानों में नमी अधिक होती है। हिम के तूफ़ान हिमप्रधान देशों में आते हैं। हिन्दुस्तान में हिमालय प्रान्त को छोड़कर और कहीं ऐसे तूफ़ान नहीं आते जिनमें हिमस्फटिक बन सकें। स्फटिक बनने में हिमोत्पादक बादलों की दूरी का बहुत असर पड़ता है। जो स्फटिक दूर के मेघों की तहों से आते हैं, उनके आकार में, पृथ्वी तक आनेमें, बहुत कम फेर फार होता है। जो स्फटिक कम दूर के मेघों की नीचे की तहों से आते हैं उनमें अधिक फेरफार होता है। ऊपर से नीचे आने में स्फटिकों के आकार में बहुधा बहुत फेरफार हो जाता है, यहां तक कि कभी कभी उनकी पहली शकल बिलकुल ही बदल जाती है। हिम के टुकड़े बहुत मुलायम होते हैं। अतएव यह कोई आश्चर्य्य की बात नहीं जो वे अपनी असली शकल में न बने रहें, विशेष करके जब वे वायु के झकोरों से इधर उधर फेंके जाते हैं। इस दशा में ऐसे स्फटिकों का एकत्र करना, जो बिलकुल ही न बदले हों, या जो थोड़ा बदले हों, बहुत कठिन है। ऐसे तूफ़ान बहुत कम आते हैं जिनमें प्राप्त हुए हिमस्फटिक तसवीर बनाने या जांच करने के योग्य हों। यही कारण है जो स्फटिक के सुन्दर और उपयोगी नमूने बहुत कम मिलते हैं।

हिम-स्फटिक की बातें जानने तथा उनकी तसवीरें बनाने के लिए यह बहुत आवश्यक है कि नमूना एकत्र करने का काम इतनी सरदी में किया जाय जो पारा के जम जाने के चिन्ह (Freezing point) से अधिक हो। इस लिए इस काम के लिए एक ऐसा स्थान चुना जाता है जिसमें एक ही खिड़की खुली हो। वह स्थान मकान की उस दिशा में होना चाहिए जिधर तूफ़ान बहुत आते हों, जिसमें हिम खुली हुई खिड़की में गिरे। परमाणुओं को जितनी जल्दी हो सके, उतनी जल्दी उठाना चाहिए, और इस तरह उठाना चाहिए जिसमें उन्हें हानि न पहुँचै। फ़ोटो लेनेवाले केमरा (यन्त्र) के पास उनको रखने का तरीक़ा यह है कि इनको काले काग़ज़ के एक टुकड़े से उठावै। ऐसा करने से काला काग़ज़ नीचे हो जायगा और स्फटिक के परमाणु ऊपर। फिर

उन्हें उचित स्थान पर रख कर पर से दबावे, जिसमें वे काग़ज़ की सतह से मिल जांय। स्फटिक का फोटो लेने का समय रोशनी के अनुसार कम या ज्यादः होता है। इसके लिए कम से कम चार सेकेण्ड चाहिए। पर कभी कभी तीन सौ सेकण्ड तक की ज़रूरत पड़ती है। इस काम में फ़ोटोग्राफ़र के बहुत सचेत रहना चाहिए। ऐसा न हो कि गर्म हवा का झोंका खाकर स्फटिक को हानि पहुँचे। केमरा के स्लाइड (Slide) को दस्ताने पहन कर छूना चाहिये। क्योंकि थोड़ी ही भी सांस रह जाने से स्फटिक की शकल इतनी बदल जाती है कि उसकी बारीक लकीरें धुँधली हो जाती हैं, या बिलकुल ही जाती रहती हैं। जब तक केमरे की सरदी एक नियत अंश तक न हो, नमूने की तसबीर लेना व्यर्थ है। हिम-स्फटिक की तसवीरें लेने में बड़ी बड़ी कठिनायें का सामना करना पड़ता है। इसीसे हिम की बनावट के बहुत कम फोटो प्राप्त हुए हैं। दुनिया में सबसे अधिक फोटो वेष्टले साहब के पास हैं। तोभी उनकी संख्या एक हज़ार से अधिक नहीं हैं।

सरयूनारायण तिवारी।

प्रपञ्च।

हिन्दू शास्त्रों में जगत का नाम प्रपञ्च है। क्षिति, जल, तेज, वायु और व्योम—इन्हीं पञ्चभूतों के मेल से जगत बना है। इसी कारण जगत का नाम प्रपञ्च पड़ा है। किन्तु इन पञ्चभूतों का स्वरूप क्या है? अनेक लोग क्षिति का अर्थ पृथ्वी लगाते हैं; और जल से पानी, तेज से अग्नि, वायु से हवा और व्योम से शून्य (Vacuum) समझते हैं। यदि शास्त्रीय क्षिति, आदि शब्दों का यही अर्थ कहा जाय, तो विज्ञानी तार्किक इसको अपनी तलवार से काटने लगते हैं। वे कहते हैं—क्षिति, जल, तेज, वायु, और व्योम को पञ्चमहाभूत कहते हैं। यही जगत के उपादान हैं। पाश्चात्य विज्ञान कहता है कि पृथ्वी, जल, और वायु आदि मूलभूत (Elements) नहीं। ये सब यौगिक (Compound) पदार्थ हैं। अतएव जगत का मूल उपादान निर्णय करने में इनका प्रसङ्ग उठाना ठीक नहीं है। किन्तु वास्तविक बात यों है कि क्षिति आदि का यह अर्थ हो नहीं है। गर्भोपनिषद् में कहा गया है कि जो कठिन (Solid) पदार्थ है, वही क्षिति, जो द्रव या तरल है वही जल, जो उष्ण (Gaseous) है वही तेज है।

> तत्र यत् कठिनं सा क्षितिः यद् द्रवं तद् आपः
>
> यद् उष्णं तत् तेजः इत्यादि—(गर्भोपनिषद्)

यह सब लोग जानते हैं कि प्रचलित विज्ञान के मत से मैटर (Matter) अर्थात् पदार्थों की तीन दशायें हैं। दृढ़, द्रव और वाष्पीय (Solid, Liquid and Gaseous) एक ही पदार्थ अवस्था-भेद से कभी कठिन, कभी द्रव, और कभी वाष्पीय आकार धारण करता है। जैसे जल बर्फ़ की दशा में दृढ़, पानी की दशा में द्रव और भाप की दशा में वाष्पीय होता है। इसी तरह गन्धक कठिन, द्रव और वाष्पीय आकार धारण कर सकता है। एक पदार्थ के इस तरह अवस्था-परिवर्त्तन में ताप का तारतम्य सापेक्ष्य है। जल से ताप दूर होने से वह जमकर बर्फ़ हो जाता है। वही जल ताप की अधिकता से भाफ का आकार धारण करता है। वैज्ञानिक लोग कहते हैं कि वाष्पीय पदार्थ में साधारण रीति पर ताप की अधिकता रहती है। इसी कारण उसकी साधारण अवस्था वाष्पीय है। यहां तक कि उन लोगों ने विज्ञानशालाओं में यन्त्रों की सहायता से "हाइड्रोजन" से गैस को तरल बना डाला है। ऐसा करने के लिए वे और कुछ नहीं, केवल कल के बल से हाइड्रोजन का ताप दूर कर देते हैं। अतएव आर्य्य ऋषियों ने गैस को जो तेज की

व्याख्या दी, वह असङ्गत नहीं है। तब यह कहना उचित है कि शास्त्रीय क्षिति, जल और तेज, विज्ञान के दृढ़, द्रव और वाष्पीय—Solid, Liquid और Gaseous—हैं। किन्तु वायु और व्योम क्या हैं?

पाश्चात्य विज्ञान को जड़ पदार्थों की दृढ़, द्रव और वाष्पीय अवस्थाओं के सिवा और किसी अवस्था की बहुत दिनों तक ख़बर नहीं थी। अब उसको "ईथर" (Ether) नाम का एक और पदार्थ मानना पड़ा है। पहले 'ईथर" एक कल्पित पदार्थ जान पड़ता था। और उसको वे लोग हाइपोथेटिकल ईथर (Hypothetical Ether) कहते थे। क्योंकि ईथर के समान कोई चीज़ माने बिना पाश्चात्य विज्ञान की चलती हुई पहिया रुकने लगी थी और अलोकाकर्षण आदि की मीमांसा नहीं की जा सकती थी। सूर्य्य पृथ्वी से ९२०,००,००० मील दूर है। सूर्य्य से रोशनी किसकी सहायता से पृथ्वी तक पहुंचती है? दूर के सब पदार्थ परस्पर किसके अवलम्ब और माध्याकर्षण पर ठहरे हुए हैं? बिना मध्यवर्ती (medium) के ऐसा हो ही नहीं सकता। इसीसे पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने ईथर मानना आरम्भ किया और क्रमशः अब उनको ईथर के अस्तित्व में कुछ भी सन्देह न रह गया। किन्तु ईथर है क्या पदार्थ? इसपर वैज्ञानिक समाज में अनेक सङ्कल्प विकल्प होने लगे। वास्तव में ईथर जड़ की एक अवस्था मात्र है जिसे आर्य्य ऋषियों ने वायु कहा है। यह पहले उनकी धारणा में नहीं आया। हम बहुत दिनों की बात नहीं कहते। सन् १८९९ ई० में अमेरिका के एक प्रधान वैज्ञानिक ने ईथर का मैटर होनाही स्वीकार नहीं किया था*। किन्तु विज्ञानचर्चा की ज्यों ज्यों उन्नति होती गई, त्यों त्यों उन्होंने समझा कि दृढ़, द्रव और वाष्पीय अवस्थाओं के सिवाय जड़ की कोई और भी अवस्था है। वही अवस्था, अर्थात् ईथर, हम लोगों का चिरपरिचित वायु या मरुत् है। इसीसे लार्ड केलविन आदि वैज्ञानिक अब जड़ की गुरु और अगुरु यही दो अवस्थायें स्वीकार करते हैं। अथवा वे यों कहते हैं कि दृढ़, द्रव और वाष्पीय में भार (वज़न) है और ईथर में भार नहीं है। बात यह कि हमलोगों का मरुत् कोई काल्पनिक पदार्थ नहीं। वह जड़ की ईथर नामक अवस्था है।

इस ईथर के गठन-सम्बन्ध में अभी वैज्ञानिक-मण्डली में ख़ूब आलोचना और तर्कवितर्क हो रहे हैं। पहले वे लोग समझते थे कि ईथर एक निर्विशेष (Homogeneous) पदार्थ है। किन्तु अब इस पर कुछ लोगों को सन्देह हुआ है। कुछ दिन हुए अमेरिका के एक प्रधान वैज्ञानिक (Fessenden) ने यह राय दी थी कि ईथर निर्विशेष नहीं, सविशेष पदार्थ (Composite Body) है। यह सूक्ष्मतर पदार्थों के संघात से गठित हुआ है। ईथर से सूक्ष्मतर अवस्था को उन्होंने ईथरन (Etheron) नाम दिया है। ईथर उसी ईथरन का विकार है, और वही ईथर हमलोगों का व्योम है*।

अब यह बात स्पष्ट हुई कि असल में जड़ की तीन नहीं पाँच अवस्थायें हैं। Solid-क्षिति, Liquid-जल, Gaseous-तेज, Ether-वायु, और Etheron-व्योम। पाश्चात्यविज्ञान अभी इससे आगे नहीं गया है। किन्तु व्योम के आगे भी जड़की और दो सूक्ष्मतर अवस्थायें हैं। तन्त्र की भाषा में उनका नाम अनुपादक और आदि तत्व है। सांख्यवालों ने उनको अहङ्कारतत्व और महत्तत्व के नाम से बतलाया है। क्षिति, जल आदि पञ्चभूत उनके पञ्चतन्मात्र है। अतएव जड़ को सब मिलाकर सात अवस्थायें हुईं। सूक्ष्मतम से स्थूलतम में उतारने

---

* I make a sharp distinction between the Ether and Matter and feel somewhat confused to hear anyone speak of the Ether as Matter.—Matter, Ether and Motion 1. p. 35.

* "The Globe" of the 7th December, 1901, in its 'Echos of Science' reports:—"Mr. R. A. Fessenden, one of the most eminent American Physisists, shows that the so called Ether is a composite body having a structure with elastic properties. Ether according to him is a structure of vortices in a fluid which he calls Etheron. This fluid is not the Ether but the Etheron and the Ether is itself a finer kind of Matter.

से उनका नाम क्रमानुसार आदितत्व, अनुपादक तत्व, आकाश तत्व, वायु तत्व, अग्नि तत्व, जल तत्व और क्षिति तत्व होता है। साधारण रीति पर शास्त्र में पञ्चभूतोंहीं का उल्लेख देखा जाता है "तस्माद् एतस्माद् आकाशः सम्भूतः, आकाशाद् वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथ्वी।" किन्तु कहीं कहीं आकाश के ऊपर भी पूर्वोक्त दो तत्वों का उल्लेख पाया जाता है। जैसे—

अण्डकोषे विराजे ऽस्मिन् सप्तावरणसंयुते।
वैराजः पुरुषो योऽसौ स एव धारणाश्रयः॥

यह ब्रह्माण्ड विराट पुरुष का शरीर है। वह सात आवरणों से ढका है। वे सात आवरण हमारे पूर्वोक्त क्षिति, जल, तेज, वायु, व्योम, अहङ्कार और महत्तत्व हैं।

अब हम आशा करते हैं कि विज्ञान की धारावाही उन्नति के इस सुसमय में जड़की यह सूक्ष्मतम दो अवस्थायें भी आविष्कृत हो जायँगी। इथर की सूक्ष्म से सूक्ष्मतमपर्य्यन्त चार अवस्थायें हैं। अब तक उनमें से दो विज्ञान की आँखों को दीख पड़ी हैं। किन्तु और लोग उन शेष दो अवस्थाओं को भी जान चुके हैं।* अतएव ऐसी आशा दुराशा नहीं है कि काल पाकर इस सम्बन्ध में पाश्चात्य विज्ञान और प्राच्य विज्ञान का मेल खाजायगा। गवेश।

हवाई कोठरी।

प्यारे पाठक! आपने अमरकोश का नाम सुना होगा। शायद उसे आपने कण्ठस्थ भी किया हो, क्योंकि आज कल की परिपाटी के अनुसार संस्कृत पढ़ने वाले लड़के पहले पहल अमरकोश, लघुकौमुदी अथवा शीघ्रबोध अक्षर पहिचानते ही पढ़ने लगते हैं। उसमें एक शब्द है प्रपात। प्रपात का अर्थ है ख़ूब गिरना। पर प्रपात कहते किसे हैं? पर्वत या किसी ऊंची जगह से किसी नदी के पानी के गिरने को प्रपात कहते हैं। प्रपात का दृश्य बड़ा ही मनोहर होता है। देखिये रघुवंश में कवि कालिदास जी क्या कहते हैं—

अन्येद्युरात्मानुचरस्य भावं जिज्ञासमाना मुनिहोमधेनुः।
गङ्गाप्रपातान्तविरूढशष्पं गौरीगुरोर्गह्वरमाविवेश॥

अर्थात् दूसरे दिन अपने सेवक राजा की भक्ति की परीक्षा करने के लिए वशिष्ट मुनि की होमधेनु, नन्दिनी, गङ्गा के प्रपात के पास वाली, हरियाली से ढकी हुई हिमालय की कन्दरा के भीतर पैठी। नदियों के उद्गम-स्थान में प्रपात अकसर होते हैं। नहरों के पानी के प्रपात भी बक्सर और आरा ऐसे पर्वतहीन देश में हैं। पर जबलपुर के पास मेकलसुता, नर्मदा, का एक बहुत बड़ा प्रपात है। वहां नर्मदा ऊंचे पर्वत से कई जगह पर गिरती हुई एक बार भेड़ाघाट पर अधिक ऊंचे से गिरती है। उस जगह का स्थानीय नाम धुंआधार है। इस नाम से ही अनुमान हो सकता है कि वहां का दृश्य कैसा अद्भुत होगा। यह प्रपात बहुत बड़ा नहीं है। जो प्रपात बहुत बड़ा होता है, उसका दृश्य और भी अधिक मनोरम होता है! पर बड़ा प्रपात किसे कहना चाहिये? इस प्रश्न के उतर में कहा जा सकता है कि जहां जल अधिक ऊंची जगह से गिरता हो, और जल का एक ऊंचा खम्भा सा दूर तक देख पड़ता हो; अथवा जहां ख़ूब चौड़ी नदी ऊंचे से नीचे चक्कर खाकर गिरती हो,—उसे बड़ा प्रपात कहना चाहिए। यों तो पृथ्वी पर बड़े बड़े कितने ही प्रपात हैं, पर एक बहुत ही बड़ा प्रपात उत्तरी अमेरिका में है, जहां नियाग्रा नद प्रायः २५० फ़ीट, अर्थात् ८३ गज़, की उँचाई से नीचे गिरता है। नियाग्रा बहुत विस्तृत और भारी नद है। अस्सी गज़ की उँचाई का भी

---

* ईथर के सम्बन्ध में मिस बेसेण्ट ने अपने 'Occult Chemistry' में लिखा है—

"The Ether is not homegeneous, but consists of particles of numerous kinds and a careful and more detailed method of analysis reveals that it has four distinct degrees giving us with the solid, liquid and gaseous, seven instead of four substates of matter in physical world."

ख़याल करना चाहिये। अंग्रेज़ी ढँग के आज कल के रहने के मामूली कमरे कोई ५ गज़ ऊंचे होते हैं। वैसे सोलह-मंज़िले कोठे की उँचाई कितनी होगी! इतनी उँचाई से इस नद का प्रपात कैसी आश्चर्य-जनक घटना होगी! ऐसी भयानक घटना समीप से देखने की चीज़ नहीं! पर आप हमारी हवा की कोठरी में आइये। एक बार आपको हम इसके समीप की भी बहार दिखला लावें।

इसे पास से देखनेवालों में एक स्त्री भी थी। उसकी बात जानने योग्य है। वह अमेरिका में एक दरिद्रा स्त्री थी। सांसारिक कठिनाइयां झेलते झेलते वह थक गई थी। उसने यह विज्ञापन दिया कि मैं जीती अपने को एक पीपे में बन्द करके नियाग्रा प्रपात के ऊपर से बहा दूंगी और जीती रहूंगी। जिन्हें देखना हो वे इतनी फ़ीस देकर प्रपात की जगह उपस्थित रहें और मुझे पीपे से खोले जाते समय देखें। यहां होता तो शायद वह आत्मघात की चेष्टा में पकड़ी जाती और ऐसा करने से रोक दी जाती। पर अमेरिका की गवर्नमेंट ने कुछ बाधा नहीं दी। इतना ही नहीं। किन्तु हज़ारों दर्शक फ़ीस देकर दूर दूर से रेल द्वारा वहां उपस्थित हुए। वह स्त्री भी अपने पुत्र को अपना घर द्वार सौंप अपने इस महा साहसी काम करने के लिए मुस्तैद हुई। वह पीपे के भीतर बन्द करके प्रपात के ऊपर से डाली गई। दर्शकों के सामने पीपा बहता हुआ आया। ८३ गज़ की उँचाई से गिरते उसे कुछ ही क्षण लगे। फिर वह पानी के भीतर भँवर में घुस गया। देर तक वह ऊपर नहीं देख पड़ा। इससे यह अनुमान किया गया कि जल के बोझ से पीपा और उस स्त्री का शरीर सब चकनाचूर होगये। पर नहीं, कुछ दूर पर पीपा उतराया और पकड़ा गया। तब वह दर्शकों के सामने खोला गया। वह साहसी स्त्री मृतप्राय और निश्चेष्ट थी। डाक्टरों के यत्न से वह फिर सचेत हुई और कङ्गाल से धनी हो गई।

नियाग्रा नदी जिस तल पर बहती है वह कड़े पत्थर की चट्टान है। उसके नीचे नरम घिसने वाली मिट्टी है। पानी की धारा के वेग से पत्थर तो नहीं, पर नीचे की मिट्टी गल कर बह गई है। सो जहां से जल का प्रपात नीचे गिरता है। वहां पत्थर के नीचे एक बहुत बड़ी कन्दरा हो गई है। उसके ऊपर पत्थर की चट्टान है। सामने
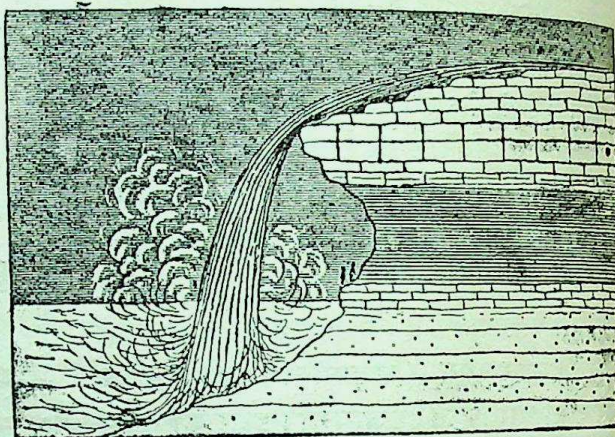
जल का भीषण स्तम्भ है। पीछे नरम मिट्टी है और नीचे कुछ कड़ी मिट्टी है।

यही गढ़ा या कन्दरा हवा की कोठरी है। इसमें पहुंचने का मार्ग सुगम नहीं है। पर संसार में अनेक विस्मयजनक कार्यों में से इसमें प्रवेश करना भी है। दर्शकों को इसके भीतर ले जाने के लिए लोग एक विलक्षण पुल बनाते हैं। इस काम में उन्हें अनेक आपत्तियां उठानी पड़ती हैं। यदि कोई यात्री नियाग्रा का प्रपात देखने की इच्छा से वहां जाय, तो इस हवा की कोठरी को बिना देखे उसकी यात्रा पूरी नहीं कही जा सकती।

यह कन्दरा प्रपात के ठीक केन्द्र में है। उसके सामने लूना और गोट नामक दो टापू हैं। उनके बीच में जलधारा ऊपर से गिरती है। उसी धारा में से होकर सूर्य का जो कुछ प्रकाश पहुंच सकता है, वहां पहुंचता है। यह कन्दरा किनारे पर, पानी की तरफ़, प्रायः तीस गज़ चौड़ी है। पानी के स्तम्भ ही के कारण यह कन्दरा दृष्टि से छिपी रहती है और इसीसे इसमें प्रकाश भी कम पहुंचता है।

गोट टापू-वाले करार के ऊपर से लोग लकड़ो के शहतीर प्रपात की तरफ़ बहाते हैं। इस काम में हवा बहुत बाधक होती है। क्योंकि यदि हवा टापू की तरफ़ बहती है तो वह पानी को ऐसो बौछार मारती है कि फिर काम करना असम्भव हो जाता है। गोट टापू के करार से फेन से ढको हुई पहली चट्टान तक वे एक पुल बना लेते हैं। फिर उसी-से मिला कर दूसरी चट्टान तक वे दूसरा पुल बनाते हैं। क्रमशः इसो तरह वे पुल बढ़ाते चले जाते हैं, जब तक कि सबसे अधिक उँचाई से गिरनेवाले पानी के स्तम्भ के वे पार नहीं कर लेते। यहां पर पहुंच कर पुल बनाने वाले लूना टापू के ढालू करार की तरफ़ बढ़ते हैं। उसीपर से होकर इस हवा की कोठरी में जाने का मार्ग है। फिर, वहां से, चट्टान में खोदी हुई सीढ़ी से, लोग, प्रपात की आड़ में हवा की कोठरी के निचले धरातल पर उतर जाते हैं। यह कोठरी ३० गज़ लम्बी, २० गज़ चैाड़ी और प्रायः ३० गज़ ऊंची है। इसके ऊपर नीचे चट्टान, पोछे मिट्टी का करार और सामने पानी का परदा बड़े ही भयानक शब्द के साथ हहराता है। उससे छोटे छोटे जलकण फौवारे के समान निकल कर दर्शक के शरीर और चेहरे पर पड़ते हैं। चेहरे पर उनके गिरने से बुरा नहीं लगता। शरीर पर जलकणों के पड़ने से कोई नुक़सान नहीं होता, क्योंकि, दर्शक, इस कन्दरा में प्रवेश करने के पहले, तेल-पोती (आइल क्लाथ) या चमड़े की बनी हुई पोशाक पहनते हैं। ऐसा अनुपम दृश्य संसार में अन्यत्र कहीं नहीं। प्रपात का उग्र रूप, दर्शक का उसके समीप पहुंचना, और फिर भी सुरक्षित रहना, आदि बातें दर्शक के हृदय में भय, आश्चर्य और आह्लाद का संयुक्त भाव उत्पन्न करती हैं। पानी की उड़ती हुई बौछारें, समय समय पर, प्रकाश के परिवर्तन से, स्थान स्थान पर, गोल इन्द्रधनुष के समान रंगीन देख पड़ती हैं। दिखलाने वाला आदमी दर्शकों में से एक आदमी का हाथ पकड़ कर, और दूसरे लोगों का एक हाथ दूसरे से वैसे ही पकड़ा कर, लकड़ी की गोल चक्करदार सीढ़ी पर, गिरते हुए पानी के पीछे, ऊपर चढ़ता है। उस समय यही जान पड़ता है कि अत्यन्त अद्भुत रसानुभव की पराकाष्ठा हो चुकी। इससे अधिक आश्चर्य के स्थान पर कब पहुंचना संभव है! इस यात्रा से जो भाव उत्पन्न होते हैं उनका वर्णन करना सर्वथा असम्भव है। दृश्य में परिवर्तन इतने शीघ्र शीघ्र होते हैं कि उनके पृथक् पृथक् संस्कार भी ध्यान देने लायक़ होते हैं। सबसे अधिक यह भाव पैदा होता है कि दर्शक, एकही काल में प्रपात के नीचे, ऊपर, बीच और पास--सर्वत्र हो आता है। उसकी बौछारों से दर्शक का शरीर और मन शीतल हो जाते हैं, शोक की बातें भूल जाती हैं, और कुछ काल के लिये उसका अन्तरात्मा तक हर्ष में मग्न हो जाता है।

इस मनोहर स्थान पर मुलाक़ात होकर बहुधा लोगों के भावी विवाह का भी सूत्रपात्र हो जाता है। दिखलानेवाले, दर्शक के इस भयानक स्थान में अकेले नहीं जाने देते। अर्थात् बिना ख़ुद साथ गये, बहुत से लोग भी क्यों न हों, उन्हें वे नहीं जाने देते। १८३४ ईसवी में पार्सन्स नामक एक मनुष्य ने अपने शरीर में रस्सी बांधी। और गेट टापू से तैरते हुए लूना टापू पर पहुंच कर इस कन्दरा में उसने उतरना चाहा। पर उसे सफलता न हुई। वह अधमरा पानी से खींचा गया। कुछ समय पीछे, उसको निष्फलता से भी निराश न होकर, ह्वाइट नामक एक मनुष्य इस कन्दरा में पहुंचा। पहले पहल उसीने इस कन्दरा में प्रवेश किया। उसे वहां पर कई ईल नाम की मछलियां मिलीं। उसने कन्दरा के दृश्य का ऐसा अप्रतिम वर्णन किया कि साहसी लोगों ने उसमें पहुंचने के लिए एक पुलही बना डाला।

इसो प्रसङ्ग में एक बात और पाठकों के जानने योग्य यहां लिखी जाती है। वह यह है

कि नियाग्रा नदी के ऊपर से बहती हुई नाव किस प्रकार नीचे पहुंचती है। धारा से एक नहर काट दिया जाता है। उससे पानी एक हौज़ में गिरता है। उस हौज़ के नीचे एक फाटक लगा रहता है। उस फाटक में पानी धीरे धीरे गिर कर भर जाता है। तब नाव ऊपर की धारा से हौज़ में लाकर खड़ी कर दी जाती है। हौज़ का फाटक नीचे की तरफ़ खोल देने पर पानी घटने लगता है और नाव क्रमशः नीचे आती है। नीचे आने पर नाव फाटक से निकल कर एक दूसरे हौज़ में पहुंचती है। वहां से धारा का सम्बन्ध नीचे की नदी से रहता है। इससे नाव बहती हुई नीचे की नदी में चली जाती है। इस प्रकार नाव ऊपर से नीचे लाई जाती है। नीचे से ऊपर ले जाने में नाव को मल्लाह दूसरे हौज़ में रख देते हैं और पहले हौज़ में पानी गिराते हैं। बीच का फाटक वे खुला रखते हैं, पर दूसरे हौज़ का फाटक बन्द कर देते हैं। ऐसा करने से पानी दोनों हौज़ों में चढ़ने लगता है। और नाव धीरे धीरे ऊपर उठती है। जब पानी ऊपर की धारा के बराबर उठ आता है, तब नाव को मल्लाह उसमें ले जाते हैं।

नियाग्रा नदी के प्रपात में बहुत अधिक जल गिरता है। उससे बहुत कुछ कार्य भी हो सकता है। इस बात को सोच कर पाश्चात्य विद्वानों ने वहां पर पनचक्की के ऐसे तख़्ते लगाये हैं। अनेक बड़े बड़े तख़्ते वहां पर पानी के बोझ से घूमते हैं। उनके योग से कलें लगा कर दूर दूर के कारख़ानों में काम होता है, अर्थात् चक्कियां चलती हैं। उनसे कपड़ा बुनने और कागज़ वगैरह बनाने के कारख़ानों के काम (बिना भाफ की कल की सहायता और कोयले के ख़र्च के) चलते हैं। पर इतने से भी नियाग्रा की सब शक्ति ख़र्च नहीं हो जाती। शेष शक्ति बिजली में बदल कर तार द्वारा दूर दूर पहुंचाई जाने वाली है। उससे दूसरे देशों के कल कारख़ानों का भी काम चलेगा विद्वानों में सब शक्ति है। वे जो चाहें करें।

मधुमङ्गल मिश्र।

आँख।

[गत अङ्क के आगे]
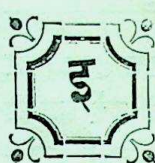
इन्द्रियों से केवल गुणों का संवेदन होता है। किन्तु हम गुणों को स्वतन्त्र गुण नहीं कहते, किन्तु किसी पदार्थ का गुण कहते हैं। संवेदन परिवेदन में बदल जाता है, अर्थात् पराधीन इन्द्रियों से जाने गये गुण, कर्मेन्द्रिय से जाने परिवेदन से मिला दिये जाते हैं। सबसे बड़ा प्रश्न जो उठता है, वह यह है कि जब इन्द्रिय केवल गुणों को बताते हैं तो हम उन्हें "परिवेदन से जाने हुए पदार्थ का गुण कैसे कहते हैं। लड्डू का जो दृष्टान्त अभी दिया जा चुका है उसमें इन्द्रियों से तो मिठास, रंग, विस्तार, गंध यही न जाने गये थे? हम "लड्डू" इस भावको कहां से ले आये, और लड्डू की मिठास, लड्डू की गोलाई, लड्डू का रंग, लड्डू का गन्ध कैसे कहने लग गये! यहां पर दर्शनशास्त्र और मनोविज्ञान में भेद हो जाता है। दर्शनशास्त्र तो ऊपर कहे प्रश्नों का समाधान करके इस विचार में लगता है कि वास्तव में कोई चीज़ मनके बाहर और इन्द्रियों के बनाये गुणों से पृथक है जिसमें वे सब गुण रहते हैं। मनके भिन्न कोई पदार्थ है या सब मनही की कल्पना है। इन सब गुणों ही को लड्डू कह दिया है, या लड्डू कुछ चीज़ है भी। मनोविज्ञान इस प्रश्न को नहीं उठाता। वह इसी में सन्तुष्ट है कि इन्द्रियों के बनाये गुण किसी एक पदार्थ पर कैसे जड़ दिये जाते हैं, इसकी खोज करे। मनोविज्ञान के छात्र उस प्रकार की खोज करते हैं, जिससे संवेदन (गुण) का परिवेदन (पदार्थ) होजाता है, और इस खोज को दार्शनिकों के लिए छोड़ देते हैं कि परिवेदन सच्चा है, या केवल माया ही है।

हम लोग मनोविज्ञानियों का मार्ग लेते हैं। यह जाना गया कि गुणों का पदार्थों पर आरोप किया जाता है। किन्तु भिन्न भिन्न मनुष्य कहीं

कहीं पर भिन्न भिन्न प्रकार का आरोप करते हैं। चाक़ू से मेरी अँगुली कट जाय, तो मैं चाक़ू में चमक और अंगुली में पीड़ा मानता हूं। सभी ऐसा करते हैं। ऐसा कोई नहीं है जो अंगुली में चमक और चाक़ू में पीड़ा मानले। यहां पर सब का आरोप एकही प्रकार का होता है। किन्तु कहीं कहीं आरोप में भेद भी होता है। गुलाब के फूल को वर्णान्ध मनुष्य पत्रों के रङ्ग का कहैगा, और मैं लाल कहूंगा। नैयायिकों के पुराने दृष्टान्त में पीलिए का रोगी शङ्ख को पीला कहैगा। यहां आरोप में भेद होगया। अवश्य ही गुलाब दोनों रङ्ग का नहीं है, और न शङ्ख दुरङ्गा है। मैंने, और दूसरे देखने वाले ने, जो अपनी अपनी ओर से आरोप किया है वह मानों गुलाब का अपनी अपनी भाषा में तर्जुमा कर लिया है। वास्तव में गुलाब पदार्थ गुलाब, है। न इस रंग का है, न उसका। अब देखना चाहिए कि पदार्थ क्या है, और कौन से इन्द्रिय से उसका ज्ञान होता है। मेरे सामने एक खम्भा है। यदि इसका रङ्ग काला न हो कर लाल होता तोभी यह खम्भा ही रहता। यदि यह लोहे का न होकर लकड़ी का होता, और बजाने से और तरह का टङ्कार सुनाता, तो भी इसके खम्भे होने में सन्देह नहीं होता। यदि इसमें तारपीन का गन्ध न आकर इत्र की ख़ुशबू आवे, तो भी इसका खम्भापना नहीं छूटेगा। यदि यह इतना मोटा, लम्बा, और गोल न दिखाई देकर, तिकोना या पतला दिखाई दे, तो भी और तरह का खम्भा कहलाएगा, किन्तु रहेगा खम्भा ही। किन्तु यदि इसमें रोधकता न हो अर्थात् यदि मैं इसमें से निकल जा सकूं, या इससे टकराने से मेरा सिर न फूटे, तो इसका नाम खम्भा नहीं है। इससे सिद्ध हुआ कि वास्तव पदार्थ का ज्ञान कर्मण्य त्वक् से होता है, और कर्मण्य त्वक् से कर्मण्य आँख ऐसी मिली हुई है कि छुड़ाई नहीं जा सकती। पदार्थ वास्तव में रोधक और विस्तृत हैं याने पहले वे स्पृश्य और दृश्य हैं और पीछे घ्रेय, स्वाद्य और पेय।

यद्यपि परिवेदन में चक्षु की ही प्रधानता है, चक्षुही परिवेदन का प्रधान तथा एक मात्र अङ्ग है, तथापि, बर्कले के मत से परिवेदन वास्तव में स्पर्श है। बिना आंख बच्चे जनमते हैं, किन्तु बिना त्वक् नहीं। बिना चक्षु के त्वक् से जगत् जाना जाता है किन्तु त्वक् के बिना चक्षुसे नहीं। अन्धे के लिए जगत् है, किन्तु त्वक् हीन के लिए नहीं। चक्षु का काम कितना ही बड़ा हो तथापि ऊपरी 'पालिश' है; नींव तो त्वक् ही डालती है। आंख रँग सकती है, गढ़ नहीं सकती। अतएव 'त्वक्' से परिज्ञान तत्व आरम्भ करना चाहिए।

विस्तार और रोध दोनो ही केवल कर्मेन्द्रिय-युक्त त्वक् से जाने जाते हैं। यह स्नायविक कर्तृता दो प्रकार की होती है;—स्वतन्त्र और रुकती हुई। पहली से विस्तार और दूसरी से रोध जाना जाता है। किन्तु यह काम ख़ाली स्नायुकाही नहीं है, त्वक् के ज्ञान से भी इस विषय में बड़ी सहायता मिलती है। हम जो कहते हैं, कि "यह पदार्थ एक दूसरे से इतने दूर हैं" सो पहले हमें दो भिन्न भिन्न स्पर्श ही मालूम देते हैं। रोध के छ प्रकार हैं—(१) (२) बोझ और दबाव। इनमें स्नायुबल की मुख्यता है। (३) (४) खरखरापन और चिकनाई। इनमें त्वक् प्रधान है। (५) (६) कठिनाई और मुलायमी। इनमें दोनो बराबर बराबर हैं। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि कई रोध-वाले स्पर्श, एक ही काल में एकही क्रम से दोहराये जाने से, भिन्न भिन्न स्पर्श नहीं मालूम देते, किन्तु एक विस्तृत पदार्थ के रूप में जाने जाते हैं। यह अभ्यास का फल और पदार्थ-परिवेदन का मूल है। कुछ लोग "विस्तार-ज्ञान" को स्वभाव से उत्पन्न, मानते हैं। उनकी दृष्टि में यह गुण जन्म से ही उत्पन्न होता है, और विज्ञान इसकी उत्पत्ति का हेतु नहीं बता सकता। यह तो विषय को छोड़ कर भागना ही हुआ; किन्तु प्रथम मतवालों का भी समाधान ठीक नहीं। उत्तरोत्तर

एक काल में कई स्पर्श होने से समकालिकता हो सकती है, किन्तु समकालिकता विस्तार नहीं है। यह कहना कि स्नायु शक्ति से, उलटे सीधे कई स्पर्शों का भास होने से, वे अन्त में विस्तार-युक्त पदार्थ का रूप लेते हैं, बिलकुल ठीक नहीं है। पदार्थों को विस्तृत कहने के पहले हमें यह कहना चाहिए कि हमें, पदार्थ स्वयं कैसे दिखाई दिए? यद्यपि विस्तारही सब पदार्थों का साधारण गुण है, कोई पदार्थ विस्तारहीन नहीं, तो भी हमें पहले "रोध" ज्ञान का वैज्ञानिक हेतु बतलाना चाहिए। आकाश जानने के पीछे हम रोधक पदार्थों को नहीं जानते, किन्तु रोधक पदार्थों के अभाव को आकाश कहने लगते हैं। जो हमारी शक्ति को रोके वही चीज़ है और "रोकना" ही रोधकता है। रोधकता उस शक्ति से जानी जाती है जो स्पर्श के बढ़ने के साथ बढ़ती जाती है।

अपनी कर्तृत्व शक्ति का कुछ धुंधला आभास, उसके रुकने का ख़याल और कठोरता का कुछ भान, ही बालक के लिए पदार्थ परिवेदन की जड़ है। पहले पहल जननेन्द्रिय के स्पर्श और स्तनपान में ओठों के दबाव से ही बालक का संसार आरम्भ होता है। पहला पदार्थ जिसको वह जानेगा अपना ही देह है, क्योंकि वह कभी दूर नहीं होता और उसमें अपनी शक्ति रुकने का दृष्टान्त क्षण क्षण पर दिखाई देता है। भिन्न भिन्न त्वक् में भिन्न भिन्न रूप से स्पर्श शक्ति है, और भिन्न भिन्न अङ्गों को छूने में हाथ को भिन्न भिन्न परिश्रम होता है। इसीसे बालक अपने देह के विस्तार और भिन्न भिन्न अङ्गों को पहचानने लगता है। इसी से हम त्वक् सम्बन्धी द्वित्व जानते जानते त्वक्सम्बन्धी दूरत्व जानने लगते हैं। देह पर कम्पास के दोनों छोर रखने से हमें ख़ाली दो स्पर्श ही नहीं मालूम होते, किन्तु कुछ दूरी भी प्रतीत होती है। क्यों? इसलिए कि उन दो स्थानों पर स्पर्शों में भेद है और उनके स्पर्श के लिए हाथ चलाने की जो शक्ति है उससे हमें उन्हीं में अन्तर जान पड़ने लगता है। किसी भाग को छूने के लिए कितनी शक्ति लगती है, इससे और सुलभ-स्पर्श-यन्त्र हाथ से, देह के प्रत्येक भाग का दूसरे भाग से स्थानीय सम्बन्ध हो जाता है। इस बात में एक अपवाद भी है। यदि मध्यमा अंगुली को तर्जनी पर चढ़ाकर दोनों के बीच में कोई छोटी चीज़ रक्खी जाय, तो हमें एक विस्तृत पदार्थ वा दूरस्थ विन्दुओं का ज्ञान न होकर दो पदार्थों का ज्ञान होता है। इसका कोई समाधान नहीं। हां, तर्जनी के स्पर्श को हम ऊपर मानते हैं, और मध्यमा के को नीचे। सो तो ठीक है, क्योंकि यहां उंगलियों का क्रम बदला हुआ होने पर भी अभ्यास पहले ही क्रम का है।

कर्तृत्व से हमें जब इतना ज्ञान हो जाता है तब चेष्ठा किये ही हमें विस्तारज्ञान हो जाता है। अंधेरे में मेज़ पर हाथ और हाथ पर किताब रखने से, बिना हाथ चलाये भी "मेज़" और "पुस्तक" विस्तृत अर्थात् पदार्थ जान पड़ते हैं। क्यों? इसलिए कि हम अपने हाथ का विस्तार जानते हैं और उससे "रूल" का काम लेते हैं।

स्थूलता का ज्ञान पहले पहल ओष्ठों से होता है। वह हिल सकते और स्पर्श भी कर सकते हैं। इससे वही स्थूलत्वपरिवेदन में काम आते हैं। हाथ से भी स्थूलता का ज्ञान होता है। जब अंगूठा और अंगुलियां से मिलना चाहता है, वा एक हाथ दूसरे से नहीं मिल सकता, तब हमें स्थूलता का ज्ञान होता है। पुस्तक पर हाथ के दबाव से रोध, हाथ रखकर कई स्पर्श होने देने से विस्तार, और दोनों हथेलियों के बीच पुस्तक रखने से स्थूलता का ज्ञान होता है।

इन सब ज्ञानों में आंख बड़ी सहायता देती है। त्वक् में तथा उसमें बहुत समानता है। सारे रेटिना में दर्शनेन्द्रिय और सारी त्वक् में स्पर्शेन्द्रिय व्याप्त है, किन्तु "पीतबिन्दु" और "हाथ" ही सब कुछ है। दोनों की चञ्चलता ही इन इन्द्रियों को

इतना उपयोगी बनाती है। त्वक् में हाथ बढ़कर छू लेता है, और आंख में स्नायु के द्वारा पीतबिन्दु या ताल चाहे जिस ओर घुमाया जा सकता है। खम्भा देखते ही मैं उससे सिर क्यों नहीं टकरा देता और अन्धेरे में खम्भे को छूकर उसका आकार कैसे जान सकता हूं? पहले दृष्टान्त में मैं छूता नहीं और दूसरे में देखता नहीं। किन्तु प्रकाश में चीज़ देखने पर मुझे उसके स्पर्श का ख़याल होता है और अन्धकार में स्पर्श करने पर उसके रूप का ख़याल होता है। अतएव इन दोनों में बड़ा भारी सम्बन्ध है। आंख हमें अपनी भाषा में प्रकाश और रङ्ग तथा समधरातल और रैखिक विस्तार का ज्ञान देती है। आंख से रोध का ज्ञान नहीं होता। और इसीसे स्थूलता का ज्ञान गौण-रीति से होता है। आंख बहुत दूर देख सकती है, किन्तु इधर उधर घूमकर पदार्थों को पकड़ नहीं सकती। अतएव स्वर्श से हमें जिस विस्तार का सूत्र मिल गया है, उस पर यह भाष्य बनाती है। सो स्वयं आँख रङ्ग और प्रकाश से कुछ नहीं दिखाती, किन्तु त्वक् की बात सदा सच्ची है; आँख की बात कभी कभी धोखा दे दिया करती है। स्पर्शज्ञान ही वास्तव ज्ञान है। वास्तव विस्तार त्वक् का बताया विस्तार है। पृथ्वी का वास्तव आकार आँख से नहीं जाना जाता, किन्तु स्पर्श करने वाले पैरों की संख्या से। सूर्य हमें थाली सा दिखाई देता है, क्योंकि उसकी तुलना सारे दृश्य आकाश से होती है और आकाश की तुलना स्पृश्य पृथ्वी से होती है। अतएव स्पर्शही सूर्य को थाली सा दिखाता है। आँख केवल कुछ चिह्न बताती है जिनका अर्थ हम त्वक् के सहारे करते हैं। तारे और पहाड़ों के शिखर जो स्पर्श से दूर हैं वे भी आँख के आधीन तो हैं, किन्तु आँख दूरत्व अथवा वास्तविक सत्ता का ज्ञान नहीं उत्पन्न करती।

यह कोई न समझे कि "रेटिना" के चित्र से पदार्थों का दृश्य-विस्तार जाना जाता है। रेटिना का चित्र बहुत सूक्ष्म होता है, और उस पार्थिक सत्ता का, उसकी सहचारिणी मानसिक संवेदना से, कोई सम्बन्ध नहीं। स्पर्श से ही विस्तार जाना जाता है, क्योंकि पदार्थ दूर होने पर आँख उसका विस्तार बहुत ही छोटा देखती है।

रेटिना के चित्र के उलटे होने पर भी हमें पदार्थ सीधे क्यों दिखाई देते हैं? यह आंख के विज्ञान का एक मुख्य प्रश्न है। कुछ लोग कहते हैं कि 'उलटा' 'सीधा' यह द्वन्द्व परस्पर संबद्ध है; जहां सभी उलटा है वहां सीधा नहीं; इससे सभी पदार्थ सीधे अर्थात् एकाकार दिखाई देते हैं। किन्तु सीधा शब्द स्पर्श की भाषा का है। पदार्थ की चोटी वह है जिसे छूने के लिए हमें हाथ ऊंचा करना पड़े। वास्तव में यदि चित्र उलटा न हो तो हमें पदार्थ सीधा ही न दिखाई दे। नेत्र गोल है, इससे पदार्थ की चोटी देखती बेर छाया पीतबिन्दु के ऊपर पड़ती है, और "कार्निया" ऊँचा करने से "पीतबिन्दु" नीचे आ जाता है। यदि किरणें एक दूसरे को बिना काटे भीतर जातीं तो आँख उठाने से पीतबिन्दु नीचे हो जाता, और नीचे करने से नीचा होता। अतएव आँख से और, और स्पर्श से और ही ज्ञान होता। चोटी देखने को हमें आँख नीची करनी पड़ती और चरण देखने के लिए ऊँची !! चोटी छूने को हाथ ऊंचे करने पड़ते हैं, और चरण छूने को नीचे। इन दोनों भावों को मिलाने के लिए चित्र का उलटा होना आवश्यक है।

एक और बात विचारणीय है। हमें दो आँखों से एक पदार्थ क्यों दिखाई देता है? इसका एक उत्तर तो यह है कि यदि दो आँखों से अप्रसन्न हो तो एक आँख फोड़ डालो। आचार्य जगदीशचन्द्र वोस का सिद्धान्त है कि जब एक आँख देखती है तब दूसरी विश्राम लेती है। यह बात ठीक नहीं, कि दोनों रेटिनाओं के दोनों चित्र मिलकर एक भाव पैदा करते हैं। जिस पदार्थ को हम ताक रहे हैं उसके अतिरिक्त सब पदार्थ

वास्तव में दो दो ही दिखाई देते हैं। किन्तु त्वक् से उन्हें एक जान कर एक ज्ञान दृढ़ करना पड़ता है। अवश्यही सूर्य को नहीं छू सकते; किन्तु और सब पदार्थों से अनुमान करते हैं कि वह भी एक ही है। वेन के अनुसार हम एक आँख से देखते हैं और दूसरी से उस चित्र को पूर्ण करते हैं। तो नेत्र होने से ही हमें स्थूलता का ज्ञान होता है। एक आँख से हमें एक तरफ से अधिक दीखता है और दूसरी से दूसरी तरफ से। दोनों मिलकर हमें एक उभड़ा हुआ चित्र दिखाती हैं। यही तत्व "स्टीरियोस्कोप" नामक यन्त्र में है।
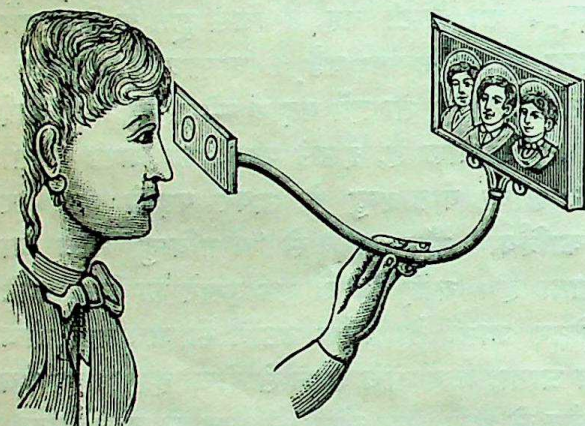
चित्र ११

स्टीरिअस्कोप

उन्नतोदर ताल के दो टुकड़ों में दो चित्र देखने से एक प्रतीत होता है।

यदि दो चित्र बनाये जांय और एक में दाहनी ओर और दूसरी में बाईं ओर अधिक दिखाया जाय और यदि वे दोनों चित्र एक उन्नतोदर ताल के दो टुकड़ों को दोनों आँखों पर रख कर देखे जाँय तो एक स्थूल पदार्थ का भान होता है। जैसा कि इस चित्र में दोनों फ़ोटोग्राफ़ों का एक ही फ़ोटोग्राफ़ प्रतीत होता है; और वास्तव में पदार्थ को देखने का सा सन्देह होता है। यदि चित्रों के स्थान बदल दिये जाँय तो उँचाई की जगह निचाई और निचाई की जगह उँचाई प्रतीत होगी। पृथक् पृथक् रङ्गों को दोनों आँखों के सामने रखने से मिश्रित रङ्ग प्रतीत होता है। यदि दोनों चित्र समान हों तो नया चित्र बिलकुल चिपटा होगा। इससे जाली नोट, नक़ली दस्तावेज़ आदि पकड़े जा सकते हैं। अतएव दो नेत्रों के होने से स्थूलत्व और दूरत्व के ज्ञान में बड़ी सहायता मिलती है। एक आँख बन्द करके हम सुई नहीं पिरो सकते।

अब आँख के बारे में केवल तीन बातें कहना रह गई हैं—समीपदृष्टि, वृद्धदृष्टि, वर्णान्धता।

(१) रटिना तथा काच की बनावट के अनुसार कई लोग समीप तो देख सकते हैं किन्तु दूर नहीं। वे आँख के पास ले जा कर देखते हैं; और अँधेरे में अच्छा देख सकते हैं। इसका हेतु आँख के ताल का अधिक उन्नतोदर होना है। इसीलिए उनके किरणों का छायाचित्र रेटिना से कुछ इधर ही 'म४' बनता है। (चित्र १२ देखो) इससे पदार्थ
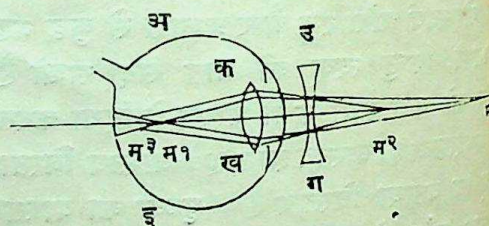
चित्र १२

समीपदृष्टि।

अ इ रेटिना। म पदार्थ। क ख नेत्र। म१ धुंधला चित्र। उ ग चश्मा। म२ पदार्थ का कल्पित स्थान। म३ साफ़ चित्र।

धुंधला दिखाई देता है। पदार्थ समीप लाने से 'म३' चित्र ठिकाने पर बनता है और पदार्थ दिखाई देता है। ऐसे मनुष्य कुछ आँख मूदने से, या छिद्र में होकर देखने से, अच्छा देख सकते हैं, क्योंकि उससे डेला छोटा हो जाता है और आँख में जानेवाली किरणमाला छोटी होने से किरणें ताल को केन्द्र ही में काटती हैं और केन्द्र पर अधिक गोलाई होने से दूर अर्थात् रेटिना पर

चित्र बनाती हैं; अर्थात् अवस्था बढ़ने से आँख की गोलाई कम हो जाती है। इससे उनकी आँख उस समय सुधर जाती है जब कि औरों की आँख वृद्धदृष्टि से बिगड़ जाती है। इस रोग की वृद्धि सभ्यता की वृद्धि के साथ होती है। आफ़्रिका में किसीको यह रोग नहीं होता, किन्तु प्रकाश में काम करने से सभ्य देशों में बहुत अधिक होता है।

(२) वृद्धदृष्टि—उम्र अधिक होने से, काच की गोलाई कम होने के कारण, किरणें रेटिना पर चित्र न बनाकर उससे कुछ आगे 'म४' चित्र बनाती हैं। (चित्र १३ देखो) किन्तु पदार्थ को दूर हटाने से चित्र ठिकाने पर आ जाता है। अतएव बुड्ढे आदमी पास के पदार्थ को ज़रा दूर हटाकर देखते हैं।
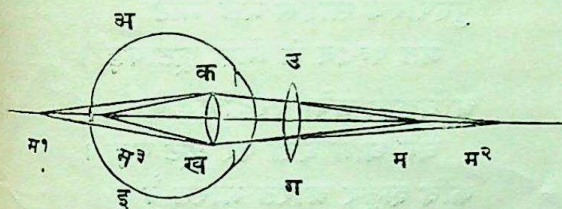
चित्र १३

वृद्धदृष्टि।

अ इ रेटिना। म पदार्थ। क ख नेत्र। म१ धुंधला चित्र। उ ग चश्मा। म२ पदार्थ का काल्पित स्थान। म३ साफ़ चित्र।

समीपदृष्टि, केन्द्रापसारक ताल आँख के सामने लगाने से, मिट जाती है। आँख से प्रवेश करने से पहले किरणें अवसर्पिणी होने के कारण आँख के ताल की अंशुनाभि हट कर 'म३' बन जाती है। वृद्धदृष्टि के लिए केन्द्राकर्षक तालों की ज़रूरत है। इससे ताल में घुसने के पहले किरणें केन्द्राकृष्ट होने से रेटिना के पार नहीं किन्तु रेटिना पर ही चित्र बनती हैं।

बहुत दिनों तक उभयनतोदर और उभय उन्नतोदर काचों ही का प्रयोग होता था; किन्तु अब उनके बदले अर्द्धचन्द्र। (उ, तथा ग, चित्र ४) काचों का प्रयोग होता है। इससे आँखें सब दिशाओं में देख सकती हैं और थकती नहीं। अतएव जिन्हें समीपदृष्टि का रोग हो उन्हें, हमारी तरह, बाल्यावस्था में ही नतोदर चश्मा लगाना चाहिए जिसमें बड़ी उम्र में आँखें औरों से अच्छी हो जाँय।

(३) लोक में कहावत है कि श्रावण के अन्धे को सब कुछ हरी ही सूझती है। जो लोग नहीं देख सकते वे तो उनके समान हैं जो कुछ नहीं सुन सकते। जो लोग रङ्ग नहीं देख सकते वे उन के समान हैं जिन्हें अच्छे या बुरे राग में भेद नहीं मालूम देता। पहले सब पदार्थ एक ही रङ्ग के प्रतीत होते थे। मनुष्य जाति ने रङ्गज्ञान धीरे धीरे प्राप्त किया है। कुछ बन्दर वर्णान्ध होते हैं, अर्थात् नारङ्गी के फल और पत्तों को एक ही रङ्ग का मानते हैं। मच्छियों का वर्णपरिज्ञान तो बहुत ही कच्चा है। वे केवल उजेला, अँधेरा ही पहचानती हैं। अभी विलायत के एक डाक्टर ने एक ऐसे मनुष्य की आँख देखी जिसको सूर्यकिरण का सप्तरङ्ग एक आँख से भूरा दिखाई देता था और दूसरी से आसमानी और लाल रङ्ग—दोनों छोर के रङ्ग—मात्र वह देखता था। बीच में सब भूरा था। मनुष्य को भी पहले पहल किनारे के दोनों रङ्ग दिखाई दिये; और बीच में केवल भूरा रङ्ग। फिर उस भूरे में क्रमशः दोनों कोनों के दोनों रङ्ग नारङ्गी और नीले दिखाई दिये। बीच की भुराई ने कुछ काल बीतने पर और दो रङ्ग प्रकट किये। सम्भव है कि हमारे वंशज हमसे अधिक रङ्ग देख सकें। हमारे पूर्वजों से हम अधिक रङ्ग देखते हैं। जो पूर्वज जितने प्राचीन हैं उनका वर्णपरिज्ञान उतना ही कम है। अजण्टा गुफाओं में चित्रों के आस पास हरी आभा बनी है जो वास्तव में गुलाबी होनी चाहिए। ऐसे ही हम पुराणों में हरे घोड़े का वर्णन पढ़ते हैं। पीत को कई पुराने मनुष्यों ने "रक्त-हरित" कहा है। 'राम' 'कृष्ण' को नवजलधर श्याम कहने का अभिप्राय भी शायद

उस समय के वर्णपरिज्ञान के अनुसार हो। वास्तव में हम भी सच्चे और वे भी सच्चे, क्योंकि अपनी अपनी आँख के अनुसार सभी रङ्ग मानते हैं। किन्तु यों नये नये रङ्ग जान कर मनुष्य ने कुछ खोया भी है। जङ्गली बहुत कम रङ्ग पहचानते हैं और उनकी दृष्टि बड़ी तीव्र होती है। सातों रङ्ग और उनके अनेक सङ्कर देखनेवाले हम सभ्यगण "शार्टसाइट" (मन्द दृष्टि) से घबरा रहे हैं! सम्भव है कि रङ्गदर्शन विहीन काल में मनुष्य बहुत दूर तक देख सकता रहा हो। इन सात रङ्गों से आगे भी एक रङ्गों का सप्तक है जिसके लिए हम सब वर्णान्ध हैं। सम्भव है कभी कालान्तर में वह भी हमारे वंशजों को दिखाई देने लगे।

अस्तु, लेख के बहुत बढ़ने की क्षमा मांग कर यही कहना है कि—

* य इमां चाक्षुषीं विद्यां नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवति न तस्य कुलेऽन्धो भवति इति। †

श्रीचन्द्रधर शर्म्मा ‡।

पुस्तक-परीक्षा।

शङ्करसरोज। पं० नाथूराम शङ्कर कृत। आर्य-समाज, बरौठा, पोस्ट हरदुआगञ्ज, अलीगढ़, से प्राप्य। दाम पांच आने। पुस्तक पद्य में है। विषय प्रायः धार्म्मिक और सामाजिक हैं। पुस्तक में छन्द कई तरह के प्रयुक्त हुए हैं। पर गीत (भजन) अधिक हैं। आज कल प्रतिभा का प्रायः अभाव हो रहा है। इसीसे अच्छी कविता देखने में बहुत कम आती है। परन्तु इस पुस्तक की कविता बहुत अच्छी है। इसका विषय चाहे जैसा हो, इसके भाव चाहे जैसे हों, पर कविता सरस, सरल, सार्थ और श्रुतिसुखद है।

> किं कवेस्तस्य काव्येन किं काण्डेन धनुष्मतः ?
> परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः ॥

पढ़ने वाले के हृदय में लग कर उसके सिर को घुमादेने का गुण इस कविता में अनेक स्थानों पर पाया जाता है। कवि का सम्बन्ध आर्यसमाज से है। आर्यसमाज की कविता अकसर अच्छी नहीं होती। पर इस पुस्तक की कविता ने आर्यसमाज का नाम रख लिया। इसकी पद्य रचना का भारत की अधोगति सम्बन्धी एक नमूना सुनिए—

> वर वैदिक बोध बिलाय गयौ
> छल के बल की छवि छूट पड़ो।
> पुरुषारथ साहस मेल मिटे
> मत पन्थन के मिस फूट पड़ो॥
> अधिकार भयो परदेशिन को
> धन धाम धरा पर लूट पड़ो।
> कवि शङ्कर आरत भारत पै
> भय भूरि अचानक टूट पड़ो॥

इस पुस्तक की एक बात हमको पसन्द नहीं आई। इसमें एक छोटी सी भूमिका है। उसमें पं० नाथूराम ने अपने मुहँ अपनी बड़ाई की है। इसकी क्या ज़रूरत थी? आप कहते हैं "यदि आप (बरौठा के ठाकुर उमरावसिंह और खमान-सिंह) छपाने का भार उठा सकें तो मैं एक ऐसी भजनमाला बना दूं कि जिसकी बड़ाई सर्व-साधारण तो क्या, वरन् मुख्य मुख्य महाशय भी करेंगे"। एक जगह पर आपने "महाभ्रष्ट नीरस पद्यों के रचयिता-जन" के, "कविराज" बन बैठने पर आक्षेप किया है और अपनी प्रशंसा में लिखा है कि हमको सोने चांदी के पदक, घड़ी, पगड़ी और दुशाला आदि वर्तमान कवि-समाजों से मिले हैं और हम "कविमण्डल" में "भारतप्रज्ञेन्दु कविराज" कहलाते हैं। पर हमारी प्रार्थना है

---

* चाक्षुषोपनिषद्।

† गैनो, रावर्टसन, मैकाश, सली, वर्कली प्रभृति के आधार से लिखित। क्या हिन्दी रसिक और इन्द्रियों का भी ऐसा वर्णन पसन्द करेंगे?

‡ खुशी की बात है कि यह लेख आज पूरा होगया। —सम्पादक।

कि इस प्रकार की आत्मश्लाघा महा अश्लाघ्य काम है। कवि जी यदि कालिदास की ऐसी शालीनता दिखाते तो उनका प्रज्ञेन्दु और कविराज होना अधिक शोभा देता। आपको चाहिए था कि जिन कविमण्डलों और कविसमाजों से आपको उपहार, पुरस्कार और पदवियां मिली हैं, उनकी योग्यता और अधिकार का भी तो आप विचार कर लेते। इन मण्डलों और समाजों में कितने कविचक्रवर्ती हैं जो कविता के मर्म्म और कवियों के कर्म्म का इतना ज्ञान रखते हैं कि वे दूसरों को "कविराज" की पदवी दे सकते हैं? यद्यपि संस्कृत के कई प्राचीन कवियों ने आत्मश्लाघा की है; तथापि अपने मुँह अपनी प्रशंसा करना प्रशंसनीय काम नहीं।

इस पुस्तक की भूमिका में जहां पं० नाथूराम ने औरों पर आक्षेप किया है, वहां के वाक्य-विन्यास पर यदि वे विचार करेंगे तो वहीं आपको अपनी कितनी ही भूलें देख पड़ेंगी। फिर इतनी आत्मश्लाघा क्यों? यदि और बातों पर नहीं तो "तमारि" और "निरावर्ण" शब्दों ही पर पण्डित जी विचार कर देखें। "भारतप्रज्ञेन्दु कविराज" की शब्द-शुद्धि पर न ध्यान देना चाहिए?

✻

अवध की बेगम। बाबू गङ्गाप्रसाद गुप्त कृत। दाम ५ आने। यह इस पुस्तक का पहला भाग है। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। पुस्तक शिक्षा-प्रद और मनोरञ्जक है। बनारस के भारतजीवन प्रेस ने इसे छापा और प्रकाशित किया है। प्रेस के मैनेजर की तरफ़ से इस पुस्तक के आरम्भ में एक प्रार्थना छपी है। उसमें लिखा है। "इस पुस्तक में यदि छापे की भूलें रहगई हों और मात्राओं के टूटने से पढ़ने में असुविधा हो तो इसके लिए पाठकगण हमें क्षमा करें"। क्यों? क्षमा करने का कारण? जो पैसे ख़र्च करके किताब ले वह असुविधा क्यों सहै? "यदि" शब्द के प्रयोग से मालूम होता है कि क्षमाप्रार्थी ने इस बात के जानने को भी तकलीफ़ नहीं उठाई कि पुस्तक में सचमुच छापे की कोई भूलें हैं या नहीं। यह पुस्तक बँगला से अनुवाद की गई है।

सं० १९६२ का भावी फल। पाली, मारवार के विद्यार्थी पण्डित तनसुख व्यास कृत। मूल्य चार आने। इसमें "सुभिक्ष दुर्भिक्ष का निर्णय तथा हर एक वस्तु की तेज़ी मन्दी लिखी है"।

✻

विवेकानन्द। श्रीयुक्त जगन्नाथ रावजी दुल्लु, बी० ए०, विरचित। दाम ६ आने। माननीय सर भालचन्द्र कृष्ण भाटवड़ेकर को अर्पित। पुस्तक छोटी पर जिल्द बहुत अच्छी है। भाषा मराठी है। इसमें स्वनामख्यात स्वामी विवेकानन्द की पद्यात्मक जीवनी थोड़े में दी गई है। कविता मनोहारिणी है। बड़े बड़े विद्वानों ने इसकी प्रशंसा की है। पुस्तककर्ता को मुरुड, जंजीरा, ज़िला कुलाबा, के पते पर पत्र लिखने से यह पुस्तक मिल सकती है।

✻

कामसूत्र की टीका। जयपुर के परलोकवासी पण्डित दुर्गाप्रसाद ने वात्स्यायन प्रणीत कामसूत्रों को टीका सहित छपवाया था। इस बात को कई वर्ष हुए। इस पुस्तक के सातवें अध्याय का नाम है औपनिषदिक अधिकरण। प्रकाशन के समय उस अधिकरण की टीका उपलब्ध नहीं हुई थी। वह अब उनके पुत्र पं० केदारनाथ, संघी रोड, जयपुर, को मिली है। उसे उन्होंने छपाया है और चार आने में बेचते हैं।

✻

भ्रमरशतक। काशी-निवासी बाबू गयाप्रसाद (उपनाम वैष्णवदास) रचित। भागवत में भ्रमर गीत नामक एक प्रसङ्ग है। वह सर्वप्रसिद्ध है। एक भौंरे को कृष्ण का दूत कल्पना करके उससे व्रजबालाओं ने अनेक प्रकार की बातें कही हैं।

इसी कथा के आधार पर यह शतक लिखा गया है। इसमें छोटे छोटे १०९ गीत हैं। कोई कोई गीत बहुत सरस और भावपूर्ण है।

✻

गोमाहात्म्य-चन्द्रिका। रतलाम निवासी श्रीयुत नारायण पोतदार कृत। मध्यम साँचे की ८४ पृष्ठ की पुस्तक है; जिल्द बंधी हुई है; ज्ञानसागर प्रेस बंबई में छपी है। इसमें गद्य-पद्यात्मक गोमाहात्म्य का वर्णन है। हिन्दुस्तान कृषिप्रधान देश है। अतएव गायों का महात्म्य गाना और उनकी रक्षा करना यहां वालों का धर्म्म है।

✻

विचित्र स्वप्न। स्वामी विश्वेश्वरानन्द सरस्वती कृत। ३२ पृष्ठ की यह एक छोटी सी पुस्तक है। एक आने में बाबू वैद्यनाथ गुप्त, गनेशगञ्ज मिरज़ापुर, इसे बेचते हैं। इसमें स्वप्न के बहाने सामाजिक, धार्म्मिक और राजनैतिक कुरीतियां दिखलाई गई हैं। पर स्वामी जी के लिखने का तर्ज़ अच्छा नहीं।

✻

रामायण की समालोचना। यह भी पूर्वोक्त सरस्वती जी की रचना है और पूर्वोक्त ही बाबू साहब के पास डेढ़ आने में मिलती है। इसमें रामचन्द्र के कई नृपोचित गुणों की आलोचना है। सबसे बड़ी बात इसमें यह कही गई है कि कैकेयी को जो आज तक लोग कुटिला और कर्कशा समझते आये हैं, और उस पर जो वे यह दोष लगाते आये हैं कि स्वार्थवश होकर उसने रामचन्द्र को वन में भिजवाया यह ठीक नहीं। स्वामीजी ने उसे "आर्य-कुल-ललनाओं के समस्तश्रेष्ठ-गुण-विभूषित माना है"। परन्तु स्वामी जी की दलीलें हमारी समझ में स्वीकार्य्य नहीं। आज कल जितनी रामायणें प्रचलित हैं, उनके कर्त्ताओं पर स्वामीजी ने जो अल्पज्ञता का दोष लगाया है, वह भी अनुचित है।

✻

रघुवंशतिलक महाकाव्य। आज कल संस्कृत की चर्चा बहुत कम है। इससे थोड़े ही पुरुष ऐसे हैं जो संस्कृत के प्राचीन काव्यों का आनन्द पा सकते हैं। तथापि और लोगों की श्रद्धा संस्कृत और संस्कृत-ग्रन्थों पर कम नहीं है। वे भी संस्कृत-साहित्य को आदर की दृष्टि से ज़रूर देखते हैं; परन्तु संस्कृत न जानने के कारण वे उससे लाभ नहीं उठा सकते। इस दशा में संस्कृत-ग्रन्थों के स्वदेश-भाषा में अनुवाद होने की बड़ी ज़रूरत है। पर इस ज़रूरत को रफ़ा करने के लिए कभी कभी ऐसे पुरुष भी अपनी कमर कस बैठते हैं जो इस काम के सर्वथा अयोग्य हैं। इससे बड़ी भारी हानि होती है; क्योंकि, जो लोग संस्कृत नहीं जानते उनकी श्रद्धा बुरे अनुवाद को देखकर संस्कृत से बिलकुल ही जाती रहती है। कालिदास की बराबरी कविता में कोई नहीं कर सकता। इस बात को सभी स्वीकार करते हैं। परन्तु उसकी कीर्ति पर कालिमा लगाने का बहुत दिन से इस देश में उपक्रम हो रहा है। उसके यशः-शरीर में लाला सीताराम, बी० ए०, ने जो घाव किये हैं वे सूखने भी नहीं पाये थे कि "भारत प्रख्यात श्री मान् पण्डित द्विजशुक्ल गजाधर साहित्य विशारद" ने उन पर बड़ी ही निष्ठुरता से नमक छिड़का। आपने रघुवंश का पद्यात्मक अनुवाद किया है। किस लिए? "महाराज कुमार श्रीपालसिंहजी वीरेश कसमंडा नरेश अवध मंडलान्तर्गत जिला सीतापुर के विनोदार्थ"। यह इस पुस्तक के मुखपृष्ठ पर छपा है। परन्तु पुस्तक के अन्त में साहित्यविशारद जी ने लिखा है कि इस पुस्तक को मैंने अपने पिता की आज्ञा से लिखा है—

पितु आज्ञा आशीश व धरि निज शीश सुधाय।
विरच्यो निज मति अल्प सम छन्द प्रबन्ध बनाय।

एक जगह "कसमंडा नरेश के विनोदार्थ", दूसरी जगह पिता की आज्ञा के पालनार्थ! द्विजशुक्ल

जी महाराज अपने अनुवाद की तारीफ़ इस तरह करते हैं—

भी पूरण यह ग्रन्थ तब पातालोभ्र सुग्राम।
विद्वानन के भाल को तिलक शोभ अभिराम॥

से। अब विद्वान् लोग केसर, कस्तूरी आदि का तिलक लगाना छोड़ दें। इसी पुस्तक को अपने मस्तक पर मँढ़ कर उसकी शोभा बढ़ावें। जो कवि "भारत प्रख्यात" है, अर्थात् कुमारी अन्तरीप से काश्मीर तक और त्रिपुरा से पेशावर तक जिसका नाम मशहूर हो रहा है, उसके अनुवाद को विद्वान् क्यों न सिर पर रक्खें? सरस्वती के वाचकों में से यदि किसीने साहित्यविशारद जी का नाम न सुना हो तो यह उन्हीं का अपराध है। जिसकी अनुपम कविता पर लुब्ध हो कर कसमण्डा-नरेश ने "गज ग्रामादि अनेक राजसीय आभूषणों" से उसे आभूषित कर दिया, वह क्यों न "भारत प्रख्यात" हो? ऐसे उद्भट कवि को अपनी कविता के आलोचन की क्या परवा? और उसकी आलोचना के लिए किसी को सिफ़ारिश की क्या ज़रूरत? पर ज़िला हरदोई में बरखेरवा के रईस ठाकुर जगन्नाथसिंह वर्म्मा ने इस पुस्तक की "सुवृहत सत्य समालोचना" के लिए हमें एक चिट्ठी लिखी है। अतएव आपकी आज्ञा को शिरोधार्य्य करके हमने इसकी वृहत् तो नहीं पर सत्य आलोचना करना उचित समझा।

हम ठाकुर साहब के कहने से इसकी समालोचना किये देते हैं। हमारी समालोचना बहुत ही छोटी होगी। समालोचना के रूप में हम सिर्फ़ इतनाही कहते हैं कि इस अनुवाद में अनुवादक ने छन्दःशास्त्र, शब्दशास्त्र, काव्यशास्त्र और कालिदास के भावार्थ का एकदम संहार कर डाला है। इसका हम सिर्फ़ एक ही उदाहरण देंगे। लोग रघुवंश के। अकसर दूसरे सर्ग से पढ़ते हैं। उसका पहला श्लोक यह है—

अथ प्रजानामधिपः प्रभाते
जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम्।
वनाय पीतप्रतिबद्धवत्सां
यशोधनो धेनुमृषेर्मुमोच॥

अर्थात् यश ही है धन जिसका, ऐसे प्रजावर्ग के अधीश्वर राजा ने प्रातःकाल दूध पी चुकने पर जिसका बछड़ा बाँध दिया गया है और जिसने राजा की पत्नी सुदक्षिणा के हाथ से गन्धमाल्य को स्वीकार किया है—उस ऋषि-धेनु के।, वन में लेजाने के लिए, खोला। अब साहित्यविशारदजी का अनुवाद सुनिए—

निशि बसन महिपाल मणि बत्सहि दूध पिआइ।
परिक्रमा करि रानि युत छोरयो मुनिबर गाइ॥

कालिदास की कविता का अनुवाद, सो भी दोहा छन्द में, और उसमें भी छन्दोभङ्ग! कालिदास की कविता का पहले तो ठीक ठीक अनुवाद ही मुश्किल से होता है। फिर बड़े छन्द का छोटे से दोहे में होना और भी मुश्किल है। यदि दोहे में भी छन्दोभङ्ग हो और उसमें प्रयुक्त शब्द भी सार्थक न हों, तो फिर क्या पूछना है! फिर तो समझना चाहिए कि कालिदास की कविता-कामिनी का सिर उलटे छुरे से मूँड़ लिया गया!!! हम समझते थे कि पूर्वोक्त लाला साहब के ही अनुवाद ने कालिदास की कीर्ति को कलङ्कित किया है। पर साहित्यविशारद जी के अनुवाद ने तो उसे भी मात दे दिया। यह कोई न समझे कि इस अनुवाद का कुछ ही अंश ख़राब होगा; नहीं, प्रायः सारी पुस्तक की एकही सी दशा है। हमारी समझ में इस पुस्तक के लिखने, छापने, प्रकाशित करने और इसके उपलक्ष्य में उपहार देनेवाले सभी लोग कालिदास की कीर्ति को कलङ्कित करने के हिस्सेदार हैं। इसका एकमात्र प्रायश्चित्त यह है कि यह पुस्तक बिना विलम्ब के अग्निसात् कर दी जाय। प्राचीन कवियों की कीर्ति को रक्षित

रखना इस देशवालों का पवित्र कर्तव्य है। अतएव इस विषय में अनधिकारी आदमियों के अनुचित चापल्य की प्रतिबन्धकता तीव्र आलोचनाओं के द्वारा ज़रूर होनी चाहिए।

यह नोट हम लिख चुके थे कि अनुवादक जी के लोकोत्तर अनुवाद की कुछ ऐसी पंक्तियां हमारी नज़र में पड़ीं जिनको देखकर हमें अपरिमेय परिताप हुआ। रघुवंश के छठे सर्ग में इन्दुमती के स्वयम्वर का वर्णन है। इस सर्ग की कविता बहुत ही अच्छी है। अज के सामने जाने के पहले, जितने राजाओं को इन्दुमती ने देखा, किसीको नहीं पसन्द किया। तब कालिदास कहते हैं—

स्वसुर्विदर्भाधिपतेस्तदीयो लेभेन्तरं चेतसि नोपदेशः।
दिवाकरादर्शनबद्धकोशे नक्षत्रनाथांशुरिवारविन्दे ॥ ६६ ॥

सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः ॥ ६७ ॥

इसका अनुवाद साहित्यविशारद जीने किया है—

भूप विदरभा भगिनि उर कछु उपदेश न आव।
जिमि हिमकर की किरण सों सरसी लहै न चाव ॥

पति इच्छा महँ फिरत निशि दीपक शिखा समान।
जिहि अवनी पति कहँ तजत होत मलीन महान ॥

भगवति कविते व्यापादितासि !

मनोरञ्जक श्लोक।

(जरामाहात्म्य)

मलिनैरलकैरेतैः शुक्लत्वं प्रकटीकृतम्।
तद्रोषादिव निर्याता वदनाद्रदनावलिः ॥

इन महामलीन अलकों ने भी शुक्लत्व (सफ़ेदी) दिखलाया। इतना साहस! इसीसे मानों सफेद दांतों को ग़ुस्सा आया और वे मुंह से गिरकर बाहर हो गये!

☼

इयत्यामपि सामग्र्यां सुकृतं न कृतं त्वया।
इतीव कुपितो दन्तानन्तकः पातयत्यलम् ॥

अहो, इतनी सामग्री होने पर भी तूने कोई पुण्यजनक काम न किया! इसीसे मानों कुपित हुए यम ने दांतों को जड़ से तोड़ गिराया!

☼

वृद्धत्वानलदग्धस्य सारयौवनवस्तुनः।
दृश्यते देहगेहेषु भस्मैव पलितच्छलात् ॥

देहरूपी घर में यह जो सफ़ेदी देख पड़ रही है, वह सफ़ेद बालों की नहीं है। फिर वह किस चीज़ की है। वह भस्म की सफ़ेदी है। भस्म वहां कहां से आई? यौवनरूपी सार (=लोहा, रसायन) वस्तु को जरारूपी अग्नि ने जला दिया है। उसी की यह भस्म है!

☼

वीक्ष्यते पलितश्रेणिर्नैव वृद्धस्य मूर्धनि।
मृषैव जातं जन्मेति किन्तु भस्मविधिर्न्यधात् ॥

वृद्ध के सिर पर यह बालों की सफ़ेदी नहीं है। फिर क्या है? तुम्हारा जन्म व्यर्थ गया, यह बतलाने के लिये ब्रह्मा ने इसके सिर पर भस्म (ख़ाक) डाली है।

पद्मसिंह शर्म्मा।

भाग ६] अक्टोबर, १९०५ [संख्या १०

विविध विषय ।

काठियावाड़ के प्रिंस रणजीतसिंह विलायत में रहते हैं। आप क्रिकेट खेलने में सर्वोपरि हैं। आस्ट्रेलिया तक में जाकर आपने विजय पाया है। इँगलैण्डवाले अपने सामने, हर बात में, इस देशवालों को कोई चीज़ नहीं समझते। पर अनेक प्रकार के विघ्न और बाधायें झेल कर कितने ही हिन्दुस्तानी इँगलैण्ड पहुँचते हैं और कठिन से कठिन परीक्षाओं में सैकड़ों अँगरेज़ों को पीछे छोड़ जाते हैं। हिन्दुस्तानियों को मौक़ा भर मिलना चाहिए। क्रिकेट अँगरेज़ी खेल है। देखिए उसमें भी रणजीतसिंह ने बड़े बड़े अँगरेज़ खिलाड़ियों को हरा दिया। अब एक दूसरे रणजीतसिंह विलायत में पैदा होना चाहते हैं। आपका नाम है पण्डित आनन्दीप्रसाद दुबे। आप कानपुर के रहनेवाले हैं; कोई दो वर्ष हुए बैरिस्टरी सीखने गये हैं। आपने भी क्रिकेट में बेढब प्रवीणता दिखलाना शुरू किया है। आप एक मशहूर क्लब के मेम्बर हुए हैं। उसमें बड़े बड़े लार्ड तक शामिल हैं। आपको क्रिकेट-कुशलता के कारण आपका बड़ा नाम हो रहा है।

सम्भव है, कुछ दिनों में, इस खेल में, आप रणजीतसिंह के समकक्ष हो जायँ।

क्रिकेट के मशहूर खिलाड़ी पूर्वोक्त रणजीतसिंह ने क्रिकेट पर एक किताब अँगरेज़ी में लिखी है। उसका नाम है "जुबिली बुक आफ़ क्रिकेट"। उसकी बिक्री से आपको ७,००० पौण्ड की आमदनी हुई है। सात हज़ार पौण्ड के होते हैं एक लाख पाँच हज़ार रुपये! एक छोटी सी किताब; सो भी खेल कूद की। उसकी बिक्री से लाखों रुपये की आमदनी! विलायत में नाम ख़ूब बिकता है और पढ़नेवाले भी थोड़े नहीं हैं। वहां 'सन' (Sun) नाम का एक अख़बार है। उसने अपनी एक संख्या रणजीतसिंह से लिखवाकर प्रकाशित की। और इस काम के लिए उसने उन्हें दिया क्या? कोई पाँच हज़ार रुपये!

**
*

सरस्वती की इस वर्ष की छठी संख्या में डाकृर ग्रियर्सन को पूर्वी हिन्दी के दो एक नमूनों की आलोचना प्रकाशित हुई। डाकृर साहब ने इस आलोचना को पढ़ कर एक पत्र लिखा और नमूनों के दोषों को दूर कर देने का वचन दिया। यह आपकी महानुभावता है।

परन्तु गत जुलाई की संख्या में प्रकाशित पण्डित चन्द्रिकाप्रसाद तिवारी की राय को डाकृर साहब नहीं मानते। आप लिखते हैं—

"The story was told in the Jewish country, in which country सुअर पालना मना है। In the story it is not stated that the "bhalá ádmi" was the owner of pigs. He was the owner of the fields in which the pigs fed."

अर्थात् यह कहानी पहले पहल यहूदियों के देश में कही गई थी। वहां सुअर पालना मना है। कहानी में यह नहीं लिखा कि सुअरों का मालिक भला आदमी था। वह खेतों का मालिक था, जिनमें सुअर चरते थे।

हमने, उत्तर में, डाकृर साहब से प्रार्थना की है कि शायद आपने "चराना" क्रिया का अर्थ ठीक ठीक नहीं समझा। जानवरों को चराता, या अपने आदमियों को उन्हें चराने भेजता, वही है जो उनका मालिक होता है। सुअर चराने की कहानी बाइबिल से ली गई है। इस पर एक नोट सरस्वती की गत संख्या में प्रकाशित हो चुका है। जिस मूल अँगरेज़ी-वाक्य में "चराना" है वह यों है—

"And he went and joined himself to a citizen of that country; and he sent him into his fields to feed swine."

इससे तो यह नहीं सूचित होता कि सुअरों का मालिक वह "भला आदमी" न था। अकाल पड़ रहा था। लोग भूखों मर रहे थे। यदि सुअर इस शहरवाले के न होते तो वह अपने आदमी को उन्हें चराने क्यों भेजता? जिसके खेत में सुअर जाते हैं वह उन्हें चराता नहीं; फ़ौरन निकाल बाहर करता है। हां, यदि, खेत में कोई फ़सल न हो, तो निकालने की ज़रूरत नहीं। यदि खेत का मालिक सुअरवाला ही हो तो वह उनको चरा सकता है। ग़ैर आदमी उनके चारा पानी का प्रबन्ध क्यों करैगा? "चराना" शब्द ही ऐसा है जिसके अर्थ में "स्वामित्व" का अर्थ गर्भित है। फिर "Citizen" का अर्थ "नागरिक" या "नगरवासी" हो सकता है; "भलामानस" नहीं। भलेमानुस का सुअरों से तअल्लुक़ बतलाना और भी बुरा हुआ।

यहूदी लोग सुअर नहीं पालते। यह सच है। पर ये सुअर किसी और देशवाले ने पाले थे, जहां वह लड़का अपने देश से जाकर रहा था।

हमने डाकृर साहब से विनय किया है कि यदि इस पुस्तक की दूसरी आवृत्ति छपै तो उसमें यह बात लिख दी जाय कि यह कहानी कहां से ली गई है।

**
*

सैयद अल्ताफ़ हुसैन हाली उर्दू के बहुत बड़े कवि और लेखक हैं। उनका इस समय उर्दू के साहित्य-संसार में बड़ा नाम है। उर्दू जाननेवाले सरस्वती के पाठकों ने उनकी कविता का स्वाद

लिया होगा। उर्दू न जाननेवालों को हाली साहब की कविता का नमूना दिखलाने के लिए पण्डित पद्मसिंह शर्म्मा ने, जालन्धर से, उनकी एक कविता भेजी है। उसका विषय है—"नौकरों पर सख़्ती करने का परिणाम"। उसे हम इस अङ्क में प्रकाशित करते हैं।

* * *

आज कल के चिकित्सा-शास्त्र-विशारद डाकृरों ने यह सिद्धान्त निकाला है कि मौसमी बुख़ार मच्छरों के काटने से पैदा होता है। मच्छरों के दंश में एक प्रकार का विष रहता है। वही बुख़ार पैदा करता है। लङ्का के गवर्नर सर हेनरी ब्लेक ने एक ऐसे संस्कृत-ग्रन्थ का पता लगाया है जो इस सिद्धान्त को दृढ़ करता है। इस ग्रन्थ को बने १४०० वर्ष हुए। इसमें ७० प्रकार के मच्छरों का उल्लेख है। इसके कर्त्ता का मत है कि इनके काटने से बुख़ार आता है। इनमें से ४० प्रकार के मच्छर लङ्का में पहचाने गये हैं। मच्छरों के जो लक्षण इस पुस्तक में हैं, वे इन ४० प्रकारों में अच्छी तरह घटित होते हैं। इस पुस्तक का अँगरेज़ी-अनुवाद इँगलैण्ड की चिकित्सक-मण्डली के पास भेजा गया है। इँगलैण्ड और लङ्का में इस बात की अब जाँच हो रही है कि इस पुस्तक में कही गई बातें कहां तक सच हैं।

* * *

गत जुलाई में बनारस की नागरीप्रचारिणी-सभा का सालाना जलसा था। उसमें सभा के मन्त्री साहब ने एक रिपोर्ट पढ़ कर सुनाई। यह रिपोर्टरूपी पुस्तक छपकर अब प्रकाशित हुई है। इसकी समालोचना "हिन्दोस्थान" में प्रकाशित हुए कई दिन हुए। अब यह सभासदों को भी बाँट दी गई है। एक कापी हमें भी इसकी मिली है। इसमें सरस्वती की समालोचना इस प्रकार हुई है—

"मासिकपत्रों में अब सबसे श्रेष्ठ 'सरस्वती' है। यद्यपि कई कारणों से अब इस पत्रिका के साथ इस सभा का कोई सम्बन्ध नहीं है, पर यह सभा उस पत्रिका की उन्नति देखकर प्रसन्न होती है। सरस्वती में सब प्रकार के लोगों की रुचि के अनुसार सरल भाषा में लेखों के रहने से उसका आदर दिनों दिन बढ़ता जाता है। सभा को दुःख है कि सरस्वती के प्रकाशक ने उसमें अपवादपूर्ण लेखों का रोकना उचित न जान कर सभा से अपना सम्बन्ध तोड़ना उचित समझा"।

सरस्वती की उन्नति देखकर यदि सभा सचमुचही प्रसन्न हुई है तो सरस्वती सभा के सम्मुख अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करती है। मन्त्री साहब पहले तो यह कहते हैं कि "कई कारणों" से सभा और सरस्वती का सम्बन्ध टूट गया है—अर्थात् सम्बन्ध-विघात के एक नहीं अनेक कारण हैं; पर आगे चलकर आप अपवादपूर्ण लेखों के छपने को न रोकनाही इसका कारण बतलाते हैं। पूर्वापर विचार किये बिना ही शायद शीघ्रता में आपने एक की जगह अनेक कारण बतला दिये।

सभा के इस आक्षेप का उत्तर, स्वाधीनता की भूमिका में, पहले ही दिया जा चुका है। आशा है, सभा ने उसे पढ़ भी लिया होगा। किसी सभा या समाज के कामों की समालोचना करना अपवाद लगाना नहीं कहलाता। अपवाद का अर्थ है निन्दा। यदि समालोचना का अर्थ निन्दा है, तो हम सभा पर यह अपवाद लगाते हैं कि उसने, उस साल, हिन्दी अख़बारों के सम्पादकों की व्यर्थ निन्दा की। सभा के काम की हमने सिर्फ़ समालोचना की है; निन्दा नहीं। अपवाद और आलोचना का अन्तर समझाने के लिए सभा के एक काम की हम एक और छोटी सी आलोचना किये देते हैं—

सभा ने निश्चय किया है कि एक आदमी पहले सिर्फ़ इस बात का पता लगाने के लिए भेजा जाय कि कहां कहां हिन्दी की हस्तलिखित पुस्तकें हैं। फिर एक योग्य आदमी उनकी नोटिसें लिखने के लिए भेजा जाय। परन्तु, अभी कुछ समय हुआ, जिन महाशय को सभा ने बुंदेलखण्ड इसलिए

भेजा था कि वे सिर्फ़ पुस्तकों का पता लगावें, वही कितनीही पुस्तकों की नोटिसें ले लाये। यह क्यों? प्रमाणस्वरूप हमने स्वयं दो तीन पुस्तकों की नोटिसें इन महाशय को अपने यहां से दीं। क्या सभा ने इन सब नोटिसों को मंज़ूर किया? यदि हां, तो योग्यता-अयोग्यता का विचार कहां गया? दो आदमियों को भेजने के निश्चय का क्या हुआ? और एक की जगह व्यर्थ दो आदमियों को रखने की क्यों ज़रूरत पड़ी? यदि नोटिसें मंज़ूर नहीं की गईं तो वे क्या हुईं और बिला हुक्म क्यों लाई गईं? इस काम के लिए दो आदमियों के भेजने का ज़िकर सभा की इस रिपोर्ट के आठवें पृष्ठ पर भी है।

क्या यह भी अपवाद है? यदि है, तो सभा कृपा करके अपवाद और आलोचना का अन्तर समझावै।

* *
*

सरस्वती के पाठक जानते होंगे कि क्रिश्चियन लोगों के पूज्य पैग़म्बर हज़रत ईसा (क्राइस्ट) को यहूदियों ने सूली पर चढ़ा दिया था। उन्होंने एक लकड़ी के एक सिरे को ऊपर की तरफ़ करके दूसरे सिरे को ज़मीन में गाड़ दिया था। उसके ऊपरी सिरे पर उन्होंने एक आड़ी लकड़ी लगा दी थी। उस आड़ी लकड़ी के ऊपर ईसा का एक हाथ एक तरफ़ कीलों से जड़ दिया गया था और दूसरा हाथ दूसरी तरफ़। उसी तरह उन्होंने उनके पैर सीधी गड़ी हुई लकड़ी पर रखकर कीलें ठोक दी थीं। इसी तरकीब से उनकी प्राण-हत्या की गई थी। इस दृश्य का चित्र हम इस संख्या के साथ प्रकाशित करते हैं।

* *
*

हम देखते हैं, कुछ "साहित्यसेवी" जनों ने सरस्वती पर विशेष रूप से कृपा करना शुरू किया है। वे—विशेष करके उर्दू-मासिकपत्रों के सम्पादक—सरस्वती के लेख चुपचाप नक़ल कर लेते हैं, पर उसका नाम देने में अपनी बेइज़्ज़ती समझते हैं। एक महाशय ने तो सरस्वती की कई कवितायें अपनी एक स्कूली किताब में छाप दीं; पर सरस्वती का नाम देना आप भूल गये। आप ने कुछ पंक्तियों का अङ्ग भङ्ग तक कर डाला। इसलिए, कि वे लड़कियों के पढ़ने लायक़ हो जायँ। ऐसा करने में आपने छन्दःशास्त्र के कलेजे में बड़ी ही निर्दयता से छुरी घुसेड़ी। शायद हमें आप के विषय में कोई स्वतन्त्र लेख लिखना पड़े। हम इस विषय में अभी तक चुप थे; पर चुप रहने से लोगों की बुरी आदत छूटती नहीं देख पड़ती। मार्च १९०५ की सरस्वती में "जापान में स्त्री-शिक्षा" नामक एक छोटा सा लेख निकला था। उसे "चाँद-सूरज" साहब ने अपने जुलाई और अगस्त के संख्या-युग्म में, कहीं कहीं पर हिन्दी शब्दों की जगह उर्दू शब्द रख कर, और अख़ीर में पांच सात सतरें अपनी तरफ़ से लिखकर, पूरा नक़ल कर लिया। लेख के अन्त में आपने "ॐशम्" लिखकर फ़ुरसत पाई। गोया "ॐशम्" से ही वह लेख निकला हो। "चाँद-सूरज" साहब, सात आठ महीने से, क़ायमगञ्ज (ज़िला फ़र्रुख़ाबाद) से, उर्दू में, हर महीने निकलते हैं। आपके "अडीटर" हैं "मुंशी लालता परशादजी"। मुंशी जी को ऐसा न चाहिए।

लार्ड कर्ज़न—लार्ड मिण्टो।

लार्ड कर्ज़न और लार्ड किचनर से नहीं बनी। लार्ड किचनर ने फ़ौजी सुधार करना चाहा। लार्ड कर्ज़न ने सुधार का विरोध किया। झगड़ा बढ़ा। उसमें जङ्गीलाट की जीत हुई। चाहिए था कि लार्ड कर्ज़न तभी इस्तेफ़ा देकर अलग हो जाते। पर

आपने वैसा नहीं किया। आपने चाहा कि जङ्गी-लाट के सुधार के प्रस्ताव में कुछ संशोधन हो जायँ। संशोधन मंज़ूर हुए, पर पूरे तौर पर नहीं। ख़ैर, बड़े लाट ने जङ्गी लाट के प्रस्तावों के अनुसार फ़ौजी महकमे के उद्धार में योग देना क़बूल कर लिया। पर आपने एक ऐसे अफ़सर को अपनी मदद के लिए माँगा जो इस फ़ौजी संशोधन के ख़िलाफ़ था। इस कारण विलायत से उसके लिए मंज़ूरी न मिली। इस पर लार्ड कर्ज़न ने ख़फ़ा होकर इस्तेफ़ा दे दिया। आपके और स्टेट सेक्रेटरी के दरमियान, इस विषय में, जो लिखा पढ़ी हुई, वह बहुत ही कटु है। उससे बढ़ कर विषाक्त वह लिखा पढ़ी है जिसमें लार्ड कर्ज़न और लार्ड किचनर ने परस्पर एक दूसरे की बातों की समालोचना की है। गवर्नमेण्ट के इतने बड़े अधिकारियों के दरमियान ऐसा तीव्र वाद-प्रतिवाद शायदही और कभी हुआ हो। लोगों की राय है कि लार्ड कर्ज़न का पक्ष ठीक है, किचनर का ठीक नहीं। जिस तरह का फ़ौजी संशोधन विलायती गवर्नमेण्ट ने लार्ड किचनर के कहने से मंज़ूर किया है, उसमें जङ्गी लाट का प्रभुत्व और फ़ौजी ख़र्च दोनों बढ़ जायँगे।

हिन्दुस्तानियों की दृष्टि में लार्ड कर्ज़न ने, अपने समय में, जितने बुरे और भले काम किये हैं, उनका हिसाब इस तरह है—

भले।

(१) योरोपियनों के हाथ या लात से हिन्दुस्तानियों की मृत्यु, या उन पर होनेवाले हमलों, को रोकने का प्रबन्ध।

(२) व्यापार और कल कारख़ाना आदि के सम्बन्ध में अलग एक महकमे की स्थापना।

(३) पूसा में कृषिविद्या-विषयक कालेज।

(४) नमक़ पर सरकारी महसूल का कम कर देना।

(५) पाँच सौ की जगह हज़ार रुपये और उससे अधिक आमदनी पर टैक्स (टिकट) लगाना।

(६) जो गोरी फ़ौज बोरों से लड़ने के लिए अफ़रीक़ा भेजी गई थी, उसका ख़र्च इँगलैण्ड से दिलाये जाने के लिए लड़ना।

(७) गोरी फ़ौज की तनख़्वाह बढ़ाकर एक करोड़ से भी अधिक रुपये का ख़र्च हिन्दुस्तान पर लादने के विलायती प्रस्ताव का विरोध करना।

(८) लार्ड किचनर के फ़ौजी-प्रभुत्व-वर्द्धक प्रस्ताव को रोकने की चेष्टा करना।

(९) प्राचीन स्थानों और इमारतों को नष्ट होने से बचाना।

(१०) रेल में तीसरे दरजे के मुसाफ़िरों के आराम की तरफ़ ध्यान देना।

बुरे।

(१) कलकत्ते के म्युनिसिपल महकमे में स्वदेशी स्वाधीनता का नाश।

(२) गवर्नमेण्ट की लगान-सम्बन्धिनी अनुदार नीति का अनुमोदन।

(३) यूनिवर्सिटी-सम्बन्धी नया क़ानून बना कर सिनेट में सरकारी अफ़सरों की प्रधानता।

(४) गवर्नमेण्ट की गुप्त बातों को न ज़ाहिर करने के विषय का क़ानून।

(५) प्रतियोगी परीक्षाओं को उठा देना।

(६) अफ़सरों की सिफ़ारिश ही पर हिन्दुस्तानियों को प्रबन्ध और न्याय-विभाग में नौकरी देना।

(७) महारानी विक्टोरिया के घोषणापत्र का बुरा अर्थ करना।

(८) गोरे और काले चमड़े को देखकर नौकरी देने का नियम करना।

(९) तिब्बत पर अनावश्यक चढ़ाई करके प्रजा का रुपया व्यर्थ बरबाद करना।

(१०) बरार के निज़ाम से हमेशा के लिए ले लेना।

(११) दो एक हिन्दुस्तानी राजाओं के साथ अनुचित बर्ताव करना।

(१२) देहली-दरबार में व्यर्थ रुपया फूँकना और अपनी शान के सबसे अधिक बढ़ कर दिखलाना।

(१३) कलकत्ते में अपनी "कनवोकेशन" वाली वक्तृता में हिंदुस्तानियों पर अनुचित इलज़ाम लगाना।

(१४) बंगाल के दो टुकड़े करके वङ्गवासियों के जातीय बल के कम कर देना।

लार्ड कर्ज़न के इस पिछले काम ने बङ्गालियों के बहुतही क्षुब्ध कर दिया है। जब आपके इस्तेफे की ख़बर कलकत्ते में पहुँची, तब बङ्गालियों ने ख़ुशी के आवेश में रोशनी करने का इरादा किया। परन्तु कुछ समझदार आदमियों ने इस बात के पसन्द न किया। इससे रोशनी रुक गई। लार्ड कर्ज़न के इस काम ने देश में—विशेष करके बङ्गाल में—स्वदेशी चीज़ों ही के काम में लाने का जोश पैदा कर दिया है। यदि यह जोश जग जाय तो बहुत अच्छा हो और इसका सारा पुण्य लार्ड कर्ज़न ही के हिस्से में आवै। सच कहते हैं, कभी कभी बुराई से भी भलाई होती है।

नवम्बर के मध्य में लार्ड कर्ज़न जाते हैं। आपकी जगह लार्ड मिण्टो आते हैं। इनके पूर्वज एक दफ़ा, १८०७-१८१३ ई० तक, यहां गवर्नर जनरल रह चुके हैं। उनके पहले लार्ड वेलस्ली यहां गवर्नर जनरल थे। उन्होंने अपने कई एक कामों से प्रजा को अप्रसन्न किया था। कई बखेड़े उठ खड़े हुए थे। उनको लार्ड मिण्टो ने आ कर शान्त किया था। आपकी गवर्नर जनरली से प्रजा बहुत प्रसन्न रही थी। यह समय भी कुछ वैसाही है। लार्ड कर्ज़न ने भी बहुत से काम प्रजा की मरज़ी के ख़िलाफ़ किये हैं। इस कारण प्रजा आपसे प्रसन्न नहीं है। आशा है अपने पूर्वज लार्ड मिण्टो की तरह नये लार्ड मिण्टो भी इस देश के शासन में उदारता दिखला कर प्रजा के दुःखों को भुला देने की चेष्टा करेंगे।

जब लार्ड कर्ज़न ने लार्ड किचनर के जङ्गी-प्रस्ताव का विरोध किया तभी विलायती मन्त्रि-मण्डल ने अनुमान कर लिया था कि शायद लार्ड कर्ज़न इस्तेफा दे दें। इस कारण लार्ड मिण्टो, सुनते हैं, पहले ही से हिन्दुस्तान आने के लिए तैयार कर रक्खे गये थे। आप लार्ड होकर वीर पुरुष हैं। आपको जङ्गी काम और जङ्गी महकमे का बहुत कुछ अनुभव है। आपने लड़ाई के मैदान में भी बहादुरी दिखलाई है और ६ वर्ष तक कनाडा की गवर्नर जनरली भी बड़ी योग्यता से की है। आप जङ्गीलाट लार्ड किचनर के काम काज के अच्छी तरह समझ सकेंगे। इसीलिए हिन्दुस्तान की गवर्नर जनरली पर आपकी योजना हुई है।

लार्ड मिण्टो का ख़िताब अर्ल है। आप पुराने लार्ड मिण्टो की चौथी पीढ़ी में हैं। आपका पूरा नाम है गिलबर्ट जान इलियट अर्ल आफ़ मिण्टो। इस समय आपकी उमर कुछ कम ६० वर्ष की है। आप ट्रिनिटी कालेज के बी० ए० हैं। आपको लिखने पढ़ने से भी बहुत शौक़ है। आपके छोटे भाई "एडिनबरा रेव्यू" नामक प्रसिद्ध मासिक-पत्र के सम्पादक हैं। उसमें, और कभी कभी और पत्रों में भी, लार्ड मिण्टो भी लेख दिया करते हैं।

लार्ड मिण्टो १८६७ ईसवी में "स्काट गार्ड्स" नामक सेना में भरती हुए। उसमें आप तीन वर्ष तक रहे। फिर आप "रिज़र्व" में चले आये। १८७९ ईसवी में आप अफ़ग़ानिस्तान की लड़ाई में शामिल थे। १८८१ में आप अफ़रीक़ा के केप कालोनी में लार्ड राबर्ट्स के प्राइवेट सेक्रेटरी थे। उस समय वहां भी लड़ाई जारी थी। १८८२ में आप अपनी तरफ़ से मिश्र की लड़ाई में गये

थे और वहां घायल हुए थे। जिस समय कनाडा में लार्ड लैंसडौन गवर्नर जेनरल थे, उस समय, १८८३ से ८५ तक, आप उनके युद्धमन्त्री थे। १८९८ में लार्ड मिण्टो कनाडा के गवर्नर जनरल हुए। इस पद पर आप गत वर्ष तक रहे। आपके शासन से कनाडा वाले बहुत प्रसन्न रहे। आपने वहां कई एक काम प्रजा के हित के किये। चलते समय आपका बड़ा सम्मान हुआ। आपको मछली मारने और शिकार खेलने का बड़ा शौक है। लड़कपन में आप दौड़ते भी ख़ूब थे और घुड़-दौड़ में भी शामिल होते थे। एक बार दौड़ने में आप के चोट भी आगई थी। आपका महल बहुत अच्छा और ख़ूब सजा हुआ है। आप ही के वक़्त में युवराज प्रिंस आफ़ वेल्स कनाडा पधारे थे। आपने प्रिंस के आदरातिथ्य का बहुत अच्छा प्रबन्ध किया था। आपही के समय में यहां भी युवराज का आगमन होगा। आपकी लेडी साहबा ने युवराज के आदर-सत्कार के सम्बन्ध में कनाडा में आपकी बड़ी सहायता की थी। लेडी मिण्टो को, सुनते हैं, प्रजा के सुख दुःख का ख़ूब ख़याल है। कनाडा में कुछ जगहें ऐसी थीं जहां बीमारों के दवा पानी का कोई प्रबन्ध न था। लेडी मिण्टो ने चन्दा करके वहां अस्पताल बनवा दिये और बीमारों की सेवा शुश्रूषा का भी प्रबन्ध कर दिया। लेडी साहबा स्केटिंग नाम का अँगरेज़ी खेल (बर्फ़ से जमी हुई नदियों पर) अच्छा खेलती हैं।

कनाडा की गवर्नरी को छोड़कर लार्ड मिण्टो का सम्बन्ध आज तक जंगी कामों से ही रहा है। लार्ड हार्डिंग के बाद आपही एक ऐसे गवर्नर जनरल यहां आते हैं जो जङ्गी काम पर रहे हों। लार्ड किचनर भी जङ्गी; लार्ड मिण्टो भी जङ्गी। कुशलमस्तु।

महाकवि भारवि का शरद्वर्णन।

[सानुवाद]

[१]

उपैति सस्यं परिणामरम्यतां
नदीरनौद्धत्यमपङ्कतां मही।
नवैर्गुणैः सम्प्रति संस्तवस्थिरं
तिरोहितं प्रेम घनागमश्रियः॥

✻

महि अपङ्किल, मन्द नदी सभी,
सुखद हैं पकि खेत सुहावने।
नव शरद्दतु ने बरसात का
ढक दिया अब प्रेम समूल ही॥

[२]

पतन्ति नास्मिन् विशदाः पतत्रिणो
धृतेन्द्रचापा न पयोदपंक्तयः।
तथापि पुष्णाति नभः श्रियं परां
न रम्यमाहार्यमपेक्षते गुणम्॥

✻

न उड़ती अब है बकमालिका,
न घन इन्द्रशरासनशोभित।
तदपि व्योम महा रमणीय है;
न चहता गुण कृत्रिम, रम्य है॥

[३]

विपाण्डुभिर्म्लानतया पयोधरै—
श्च्युताचिराभागुणहेमदामभिः।
इयं कदम्बानिलभर्तुरत्यये
न दिग्वधूनां कृशता न राजते॥

✻

रहित विद्युतकञ्चनहार से,
मलिनतायुत पाण्डुपयोधरा
यह घनर्तु वियोगव्यथा-भरी
कृश हुई, पर है प्रिय, दिग्वधू॥

[४]

विहाय वाञ्छामुदिते मदात्यया-
दरक्तकण्ठस्य रुते शिखण्डिनः ।
श्रुतिः श्रयत्युन्मदहंसनिस्वनं
गुणाः प्रियत्वेऽधिकृता न संस्तवाः ॥

✻

गत हुआ मदगर्व मयूर का;
न रव रोचक है उसका अब ।
अब मनोहर है ध्वनि हँस की;
सु-गुणही प्रिय है, न चिरस्थिति ॥

[५]

अमी पृथुस्तम्बभृतः पिशङ्गतां
गता विपाकेन फलस्य शालयः ।
विकासिवप्राम्भसि गन्धसूचितं
नमन्ति निघ्रातुमिवासितोत्पलम् ॥

✻

अलघु गुच्छ भरे, परिपाक से
प्रचुर पीत हुए, शुचि शालि ये ।
झुक रहे जल भीतर हैं मनौं
जलज-सौरभ के अभिलाष से ॥

[६]

मृणालिनीनामनुरञ्जितं त्विषा
विभिन्नमम्भोजपलाशशोभया ।
पयः स्फुरच्छालिशिखापिशङ्गितं
द्रुतं धनुःखण्डमिवाहिविद्विषः ॥

✻

कमलिनी-सरसीरुह-शालि की
सुरुचि से जल शोभित है महा ।
हरित-लोहित-पीत बना मनौं
द्रव हुवा धनु-खण्ड सुरेश का ॥

[७]

विपाण्डु संव्यानमिवानिलोद्धतं
निरुन्धतीः सप्तपलाशजं रजः ।
अनाविलोन्मीलितबाणचक्षुषः
सपुष्पहासा वनराजियोषितः ॥

✻

सित, मनोहर, सप्त पलाश का
पवन से उड़ता रज वस्त्रवत् ।
कुसुमहासवती शुचिबाण*दृग
विपिनराजितिया अब रोकतीं ॥

[८]

अदीपितं वैद्युतजातवेदसा
सिताम्बुदच्छेदतिरोहितातपम् ।
ततान्तरं सान्तरवारिसीकरैः
शिवन्नभोवर्त्म सरोजवायुभिः ॥

✻

न चपलामय अग्नि वहां अब;
सित-पयोद-निवारित-आतप ।
लघुफुहार, सरोज समीर, से
गगन-मार्ग हुवा सुखकारक ॥

[९]

सितच्छदानामपदिश्य धावतां
रुतैरमीषां ग्रथिताः पतत्रिणाम् ।
प्रकुर्वते वारिदरोधनिर्गताः
परस्परालापमिवामला दिशः ॥

✻

अति मनोरम दृश्य विलोक ये
रुचिर-सारस-आनन से मनौं ।
विगत-वारिद-बन्ध दिशावधू
कुशल आपस में सब पूछतीं ॥

[१०]

विहार † भूमेरभिघोषमुत्सुकाः
शरीरजेभ्यश्च्युतयूथपङ्क्तयः ।

---

* बाण, अर्थात् नील पुष्पविशेष और शर ।

† विहार के स्थान [चरने की भूमि] से ही बच्चों के निमित्त उपायन लाया जाता है ।

क्राइस्ट का सूली पर चढ़ाया जाना ।

ग्राफ़िक पत्र से लिया गया]

असक्तमूधांसि पयः क्षरन्त्यमू—
रुपायनानीव नयन्ति धेनवः ॥

✻

अलग हो कर के निजयूथ से
तज विहारमही पय छोड़तीं।
घर चलीं सुरभी, मनु लेचलीं,
प्रिय उपायन वत्सहितार्थ ये ॥

[११]

जगत्प्रसूतिर्जगदेकपावनी
व्रजोपकण्ठं तनयैरुपेयुषी।
द्युतिं समग्रां समितिर्गवामसा-
वुपैति मन्त्रैरिव संहिताहुतिः ॥

✻

जगत की जननी जगपावनी
सुरभिपंक्ति सवत्स सु-शोभती।
जगत की जननी जगपावनो
विशद आहुति ज्यों मिल मन्त्र से ॥

[१२]

कृतावधानं जितबर्हिणध्वनौ
सुरक्तगोपीजनगीतनिस्वने।
इदं जिघत्सामपहाय भूयसीं
न शस्यमभ्येति मृगीकदम्बकम् ॥

✻

षड़ज के स्वर में वर-गीत जो
नवल गोप वधूजन गा रहीं।
सुन उन्हें अति मात्र क्षुधातुर
हरिणयूथ नहीं चरते तृण ॥

[१३]

असावनास्थापरयावधीरितः
सरोरुहिण्या शिरसा नमन्नपि।
उपैति शुष्यन् कलमः सहाम्भसा
मनोभुवातप्त इवाभिपाण्डुताम् ॥

✻

कलम* नम्र हुए पर भी हुए
कमलिनी-जन से अपमानित।
सजल सूख अतः अति पाण्डुर
मदनतप्तयुवासम होगये ॥

[१४]

अमी समुद्धूतसरोजरेणुना
हृता हृतासारकणेन वायुना।
उपागमे दुश्चरिता इवापदां
गतिं न निश्चेतुमलं शिलीमुखाः ॥

✻

सुखद, शीतल, मन्द, सुगन्धित
पवन से यह षट्पद कृष्ट † हो।
विपदमें फँसने पर दुष्ट ज्यों
न सकता गति-निश्चय को कर ॥

[१५]

मुखैरसौ विद्रुमभङ्गलोहितैः
शिखाः पिशङ्गीः कलमस्य बिभ्रती।
शुकावलिव्यक्तशिरीषकोमला
धनुःश्रियं गोत्रभिदोऽनुगच्छति ॥

✻

ललित विद्रुमलोहित चोंच में
कलम की मृदुपीत-शिखा लिये।
हरित है शुकपंक्ति दिखारही
छवि महा अमरेश्वर चाप की ॥

श्रीगिरिधर शर्म्मा।

स्वदेश-प्रीति।

[१]

आँख उठाकर जिधर को देखा
उधरी को पाया सुनसान;
कारण ढूँढा अपने मन में,
निश्चय जाना यही निदान।

---

* कलम = धान। † कृष्ट = खींचा जाकर।

देश देश के जितने जन हैं
देश-भक्ति दिखलाते हैं ;
पर हम अपने देश में इसका
लेश भी नहीं पाते हैं ।
चेतो, जागो, होश सँभालो,
कमर बाँध कर हो तैयार ;
सब स्वदेशवासी जन मिल कर
देशोन्नति की करो पुकार ॥

[२]

द्वेष-दृष्टि को छोड़ बड़ों को
अपने से बढ़कर मानो ;
भारतजननी के सुत होकर
तात-सदृश सबको जानो ।
घड़ी रेल के पुर्ज़े सम तुम
अपने को भी अनुमानो ;
एक में भी त्रुटि होने पर सब
काम बिगड़ता पहिचानो ।
सहानुभूति, सचाई, धीरज,
अपना इष्टदेव निर्धार,
सब स्वदेशवासी जन मिल कर
देशोन्नति की करो पुकार ॥

[३]

प्रति दिन अपने काम काज में
जो जो चीज़ें लाते हो ,
सभी देश की निर्मित हों, जो
पीते हो या खाते हो ।
बन ठन कर या सज धज कर जो
यारों को दिखलाते हो ;
लेन देन में आती हों, या
जिनसे मन बहलाते हो ।
दृढ़ अनुमान चित्त में करके
करो सब कहीं ख़ूब प्रचार,
सब स्वदेशवासी जन मिल कर
देशोन्नति की करो पुकार ॥

[४]

वर-विद्या-विज्ञान सीखने
अन्यदेश को भी जाओ ;
करो प्रचार देश में उनका
और सभी को सिखलाओ ।
अपने ही मन में उनको रख
गूंगे से मत बन जाओ ;
खोलो भाँति भाँति की शाला,
गुण की गरिमा दिखलाओ ।
साहस करो, पढ़ो चित देकर
इतिहासों के चरित उदार ;
सब स्वदेशवासी जन मिल कर
देशोन्नति की करो पुकार ॥

[५]

देश-भक्ति को कभी न छोंड़ो
सब सुख का है दाता देश ;
हम उसके, वह सदा हमारा,
यही करो विश्वास विशेष ।
माता को सुत छोड़ चहै जिस
देश वास करने जावै
तदपि उसीका तनय वहां भी
वह सदैव ही कहलावै ।
अतः उक्त गुणगण को अपना
पूरण हितकारी निर्धार,
सब स्वदेशवासी जन मिल कर
देशोन्नति की करो पुकार ॥

चण्डिकाप्रसाद अवस्थी ।

नौकरों पर सख़्ती करने का परिणाम ।

एक आक़ा* था हमेशा, नौकरों पर सख़्तगीर ।
दरगुज़र थी और न साथ उनके रिआयत थी कहीं ॥
बे सज़ा कोई ख़ता, होती न थी उनकी मुआफ़ ।
काम से मोहलत् कभी, मिलती न थी उनके तईं ॥

* मालिक ।

हुस्ने[१] ख़िदमत पर इज़ाफ़ा[२] या सिला[३] तो दरकिनार
ज़िक्र क्या निकले जो फूटे मुँह से उसके आफ़रीं[४] ॥
पाते थे आक़ा को वह, होते थे जब उससे दो चार[५]।
नथने फूले, मुँह चढ़ा, माथे पै बल, अबरू पै चीं[६] ॥
थी न जुज़ तनख़्वाह नौकर के लिये कोई फ़तूह।
आ के हो जाते थे ख़ायन[७] जो के होते थे अमीं[८] ॥
रहता था एक एक शरायत नामा हर नौकर के पास।
फ़र्ज़ जिसमें नौकर और आक़ा के होते थे तयीं[९] ॥
गर रिआयत का कभी, होता था कोई ख़्वास्तगार।
ज़हर के पीता था घूँट, आख़िर बजाये अंगबीं[१०] ॥
हुक्म होता था शरायतनामा दिखलाओ हमें।
ताकि यह दरख़्वास्त देखें वाजबी है या नहीं!
व्हाँ[११] सिवा तनख़्वाह के, था जिसका आक़ा ज़िम्मेदार,
थीं करें जितनी वह सारी नौकरों के ज़िम्मे थीं।
देखकर काग़ज़ को हो जाते थे नौकर लाजवाब।
थे मगर वह सबके सब आक़ा के मारे-आस्तीं[१२] ॥
एक दिन आक़ा था एक मुँहज़ोर घोड़े पर सवार।
थक गये जब ज़ोर करते करते दस्ते-नाज़नी[१३] ॥
दफ़अतन् क़ाबू से बाहर होके भागा राहवार[१४]।
और गिरा असवार सदरे ज़ीं से बालाये ज़मीं[१५] ॥
की बहुत कोशिश न छूटी, पाँव से लेकिन रकाब।
की नज़र साईस की जानिब कि आकर हो मुयीं[१६] ॥
था मगर साईस ऐसा संगदिल और बे-वफ़ा।
देखता था, और टससे मस न होता था लयीं[१७] ॥
दूर ही से था उसे काग़ज़ दिखा कर कह रहा।
देख लो सरकार! इसमें शर्त यह लिक्खी नहीं!!

---

१. अच्छी सेवा करने पर। २. तरक्क़ी। ३. इनआम। ४. साधुवाद। ५. सामना होना। ६. भ्रूभङ्गता। ७. ख़यानत करनेवाले, बेईमान। ८. अमानतदार। ९. नियत। १०. शहद की जगह। ११. शरायतनामे में। १२. आस्तीन के साँप। १३. कमज़ोर हाथ। १४. घोड़ा। १५. ज़ीन पर से-ज़मीन पर। १६. मददगार। १७. दुष्ट।

मार्तण्ड-महिमा।

र्य संसार की आत्मा है। यदि वह न हो तो प्रलय हो जाय। स्थावर-जङ्गम जगत् नाश को प्राप्त हो जाय। कोई जीवधारी सजीव न रह सके। आकाश में हम जितने तेजस्क पिण्ड देखते हैं—तेजःपुञ्जता में सूर्य का नम्बर सबसे ऊंचा है। जैसा वह तेजोवान् है वैसाही वह बड़ा भी है। उसके आकार और परिमाण का हिसाब सुन कर हैरत होती है।

हमारे भुवनभास्कर सूर्यदेव के बिम्ब का व्यास, एक धुरी से दूसरी धुरी तक, ८,६५,००० मील है। इससे उसके वृहदाकार का ठीक ठीक अनुमान नहीं हो सकता। अतएव इस बात को दूसरी तरह से समझाना चाहिए। कल्पना कीजिए कि सूर्य के चारों ओर रेल की पटरी बिछी हुई है। उस पर ६० मील फ़ी घण्टे के हिसाब से दौड़नेवाली एक तेज़ रेलगाड़ी चलती है। उस पर आप सवार हैं। वह पांच वर्ष तक, बराबर, दिन-रात, बिना एक मिनट भी ठहरे, यदि सूर्य के गिर्द दौड़ती रहे, तो कहीं आप सूर्य के विराट् बिम्ब की पूरी परिक्रमा कर सकें!

जब हम सूर्य के बिम्ब का मुक़ाबला पृथ्वी से करते हैं तब सूर्य के विस्तार का ख़याल करके हमको और भी आश्चर्य्य होता है। यदि सूर्य के दस लाख टुकड़े बराबर बराबर काटे जांय तो भी उसका एक टुकड़ा हमारी समूची पृथ्वी से बड़ा निकले! अगर एक इतना प्रकाण्ड तराज़ू बनाया जाय कि सूर्य का बिम्ब उसके एक पल्ले में आजाय तो दूसरे पल्ले में हमारी पृथ्वी के समान तीन लाख पृथ्वी-पिण्ड रखने से भी सूर्य-वाला पल्ला नीचे ही रक्खा रहे!!! सूर्य को यदि हम एक बहुत बड़ा थाल मानें तो बेचारी पृथ्वी को सरसों से भी छोटी मानना पड़ेगा। सूर्य के सामने पृथ्वी एक छोटे से भी छोटा ज़ुक़ता है।

पृथ्वी और सूर्य की तुलना का अन्दाज़ करने के लिए हम, यहां पर, एक चित्र देते हैं—
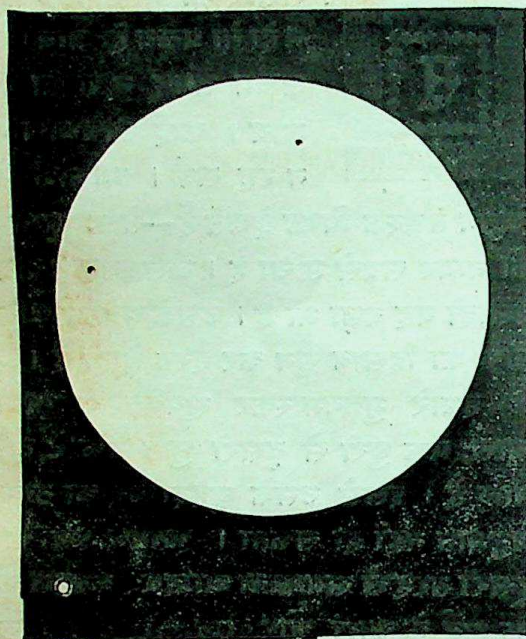
सूर्य में अपार उष्णता है। उसकी माप नहीं की जा सकती। संसार में ऐसी कोई चीज़ नहीं जो उष्णता में उसकी बराबरी कर सके। कोई तरकीब भी ऐसी नहीं है जिससे किसी चीज़ में उतनी उष्णता पैदा की जा सके जितनी सूर्य में है। प्लैटीनम एक धातु है। वह बहुतही सख़्त होती है। वह बहुतही कम घिसती है। यदि उसके तार के भीतर हम किसी रासायनिक प्रक्रिया से एक प्रचण्ड ज्वाला की धारा प्रवेश कर दें तो वह तार पहले उष्ण होकर लाल हो जायगा। फिर वह इतना उष्ण हो जायगा कि उसमें सफ़ेदी आ जायगी। धीरे धीरे उसकी उष्णता इतनी अधिक हो जायगी कि उसका तेज आँखों को असह्य हो उठैगा। तब वह जल उठैगा और टूट जायगा। पर इस हालत को पहुँचने पर भी उसमें इतनी उष्णता न आवैगी जितनी कि हमारे दिवाकर देवता के तेजोमय पिण्ड में है।

पृथ्वी से सूर्य ९२,७००,००० मील दूर है। पर इससे हम क्या समझें? अङ्क उच्चारण करने से इस दूरी का बहुत कम अन्दाज़ हो सकता है। याद रखिए कि यदि दस लाख तक गिनती गिनें तो तीन दिन और तीन रात, बिना थमें, गिनना पड़े। तब कहीं दस लाख तक गिन जाने की नौबत आवै। अब यदि हम इस गिनती को ९३ दफ़े गिनें तब कहीं सूर्य और पृथ्वी के बीच की दूरी के मील हम गिन सकें! कहीं ठौर ठिकाना है!!!

आकाश में, रात के समय, हम अनेक तारे देखते हैं। कोई छोटा, कोई बड़ा। कोई ख़ूब चमकीला, कोई ख़ूब धुंधला। उनमें जो रोशनी है वह उन्हें कहां से मिली है? बतलाइए। उनमें से बहुत ऐसे हैं जो अपनी ही रोशनी से रौशन हैं; अपने ही प्रकाश से प्रकाशवान् हैं। ऐसों का नाम तारा या तारका है। पर बहुत से ऐसे भी हैं जो सूर्य के ऋणी हैं। सूर्य ही से वे प्रकाश पाते हैं। उसे वे सूर्य ही से उधार लेकर अपना काम चलाते हैं। हमारे चन्द्रदेव के पास प्रकाश की जमा जथा बिलकुल ही नहीं। इस विषय में वे दिवालिये हो रहे हैं। यदि सूर्यनारायण छायानाथ की प्रभा-विस्तारिणी कोठी से उन्हें थोड़ी सी प्रभा न मिले तो वे बेचारे अँधेरेही में पड़े रहें।

जो ये छोटे छोटे तारे रात को चमकते हुए देख पड़ते हैं, उनको तुच्छ और क्षीणप्रभ न समझिए। उनमें से कोई कोई हमारे भुवनदीपक परम तेजस्वी सूर्यदेव को कुछ भी नहीं समझते। सूर्य उनके सामने एक क्षुद्र चिराग़ है; एक छोटी सी मोमबत्ती है। उनके कम प्रकाशवान् देख पड़ने का कारण यह है कि वे पृथ्वी से बहुत दूर हैं; सूर्य से भी सैकड़ों गुना आगे हैं। इसीसे वे इतने लघुकाय, इतने कम तेजस्क, देख पड़ते हैं। ज्वाला वमन करनेवाले और महाविदाही स्वभाव के हमारे चण्डांशु यदि कहीं किसी संसारचक्र में फँस कर उन्हीं तारों के पास जा

पड़ें तो आप हम लोगों की नज़र में यहां तक फ़क़ीर हो जाँय कि उनके नाम का सन्ध्या-वन्दन तक सहसा बन्द हो जाय। उनका सारा तेज वहीं आकाश में कहीं गुम हो जाय। हम तक वह हरगिज़ न पहुँच सके; उससे हमारा कोई काम न हो सके; रात ज्यों की त्यों बनी रहे; कभी प्रातःकाल ही न हो! सूर्यदेव से हमारा बहुत काम निकलता है। इसीसे हम उनको इतना पूज्य समझते हैं। इसी-से हम उनका इतना आदर करते हैं। परन्तु इस अनन्त आकाश के वही सातवें एडवर्ड नहीं हैं; वही दूसरे ज़ार निकलस नहीं हैं; वही सभापति रूज़वेल नहीं है। ये जो छोटे छोटे तारे रात को चम चम करते हुए देख पड़ते हैं, उनमें से अनेक ऐसे हैं जो हमारे भास्कर-राव के प्रपितामह से भी बड़े होने की बड़ाई रखते हैं! आया समझ में? जिस अनन्त आकाश में ऐसे ऐसे अनन्त पिण्ड पड़े हुए हैं, उसके बनानेवाले ईश्वर की परमा शक्ति का भी हमको कभी ख़याल होता है? कभी नहीं। कभी कभी होता भी है तो बहुत कम। उसके, और उसके बनाये हुए ऐसे ऐसे आतङ्क-जनक पदार्थों के, सामने यह तुच्छातितुच्छ मनुष्य भी कोई चीज़ है? तिस पर भी उसे इतना घमण्ड! हम बड़े पण्डित, हम बड़े वक्ता, हम बड़े उद्योगी, हम बड़े लेखक, हम बड़े खोजक! हमारी बात को कोई न काटे, हमारी शान के ख़िलाफ़ कोई ज़बान न हिलावे, "हम चुनां दीगरे नेस्त"! छिः!

देखने में सूर्य चिपटा मालूम होता है। पर वह चिपटा नहीं है। वह दंदह्यमान आग से भरा हुआ एक गोला है। पर वह गोला बना किस चीज़ का है? वह ठोस नहीं है; वह जड़ नहीं है। परीक्षा से जाना गया है कि वह गैस—एक प्रकार की भाफ—के सदृश किसी पदार्थ से बना है। यह बात कई प्रमाणों से प्रमाणित है। उन सब में से धब्बों का प्रमाण विशेष प्रामाण्य है। सूर्य के बिम्ब के ऊपर जो काले काले दाग़, या केतु, या तिलक देख पड़ते हैं उन्हींसे हमारा मतलब है। नीचे का चित्र देखिए—
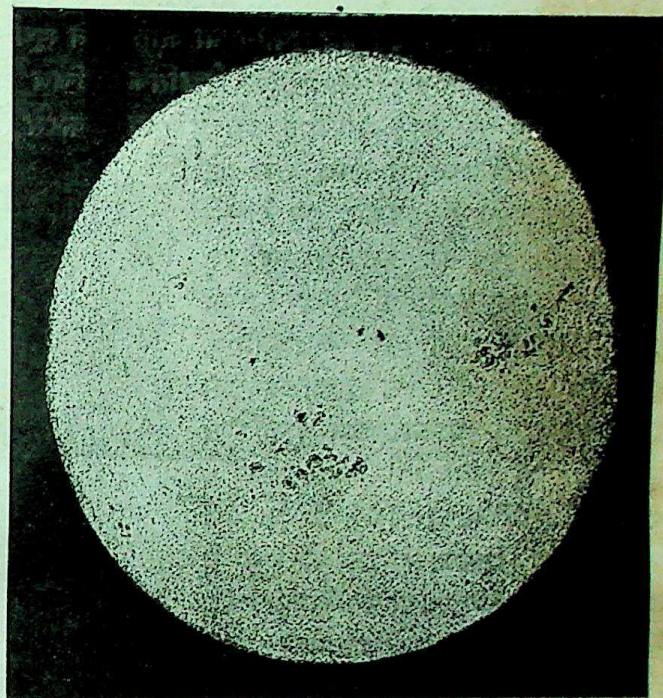
ये केतु स्थिर नहीं रहते; घूमा करते हैं। ये सूर्य के बिम्ब के चारों ओर परिक्रमा सी किया करते हैं। कोई २५ दिन में वे उसके चारों तरफ़ घूम आते हैं। इनमें से कोई छोटे हैं, कोई बड़े। सब के घूमने का समय बराबर नहीं है, कुछ कम ज़ियादह है। ज्योतिषियों का ख़याल है कि यदि सूर्य ठोस होता तो इन सब केतुओं के घूमने का समय भी बराबर होता। ये केतु इस बात के भी प्रमाण हैं कि पृथ्वी की तरह सूर्य भी अपनी धुरी पर घूमता है और २५ या २६ दिन में एक बार घूम जाता है। कभी कभी एक के कई केतु हो जाते हैं और उनकी गति एक घंटे में एक हज़ार मील से भी अधिक हो जाती है।

अध्यापक यङ्ग ने परीक्षा से सिद्ध किया है कि कोई कोई केतु एक घण्टे में छः हज़ार मील के हिसाब से दौड़ लगाता है। ये केतु छोटे नहीं होते; आठ आठ दस दस हज़ार मील लम्बे होते हैं!

जब जब ये केतु अधिकता से देख पड़ते हैं तब तब कोई न कोई अस्वाभाविक प्राकृतिक घटना ज़रूर होती है। बड़े बड़े तूफ़ान आ जाते हैं। बर्फ़ बेतहाशा पड़ने लगती है। वैद्युतिक प्रवाह इतने वेग से बहने लगता है कि दुनिया भर के तारघरों में एक ही साथ तार का काम बन्द हो जाता है। अर्थात् इन केतुओं के कारण जब सूर्य के पिण्ड में गड़ बड़ शुरू होता है, तब पृथ्वी के पिण्ड में भी किसी न किसी तरह की अस्वाभाविक घटना ज़रूर होती है। इस साल, फ़रवरी से, इन केतुओं का आकार बढ़ा हुआ देख पड़ता है। कई जगह की वेधशालाओं में दूरबीन से सूर्यबिम्ब को देखने से यह बात सिद्ध होती है। इसका नतीजा जो हुआ है वह हम, भूमण्डलवासियों पर, अच्छी तरह विदित है। वह कभी भूलने का नहीं। इसी कारण से अस्वाभाविक हिम-वर्षा हुई है; इसी कारण से बर्फ़ के उत्पात और तूफ़ान आये हैं; इसी कारण से प्रायः सारे देश की फ़सल का संहार हुआ है और शायद इसी कारण से भूकम्प भी हुआ हो। बहुत सम्भव है कि किसी समय ये केतु इतने बड़े और इतने अधिक हो जाँय कि सूर्य की किरणें पृथ्वी तक बिलकुल ही न पहुँच सकें। अतएव शीताधिक्य के कारण जीवधारियों का सहसा नाश हो जाय और थोड़े ही समय में यह सभी स्थावर-जङ्गम सृष्टि प्रलय को प्राप्त हो जाय। इन केतुओं की सबसे अधिक वृद्धि हर दस या ग्यारह वर्ष में होती है। दो तीन वर्ष तक बढ़ते बढ़ते ये वृद्धि की हद तक पहुँच जाते हैं। फिर ये धीरे धीरे कम होने लगते हैं और यथाक्रम ह्रास की हद को पहुँच जाते हैं। इसी तरह ये घटा बढ़ा करते हैं।

सूर्य के बिम्ब, पिण्ड, या शरीर का ऊपरी हिस्सा कागज़ की तरह चिकना या समतल नहीं है। जैसे नारङ्गी के ऊपर दाने होते हैं वैसे ही सूर्य के बिम्ब पर भी दाने हैं। डाक्टर हिगिन्स ने सूर्य के दानेदार बिम्ब का एक बहुत ही अच्छा चित्र बनाया है। उसे हम यहां प्रकाशित करते हैं—
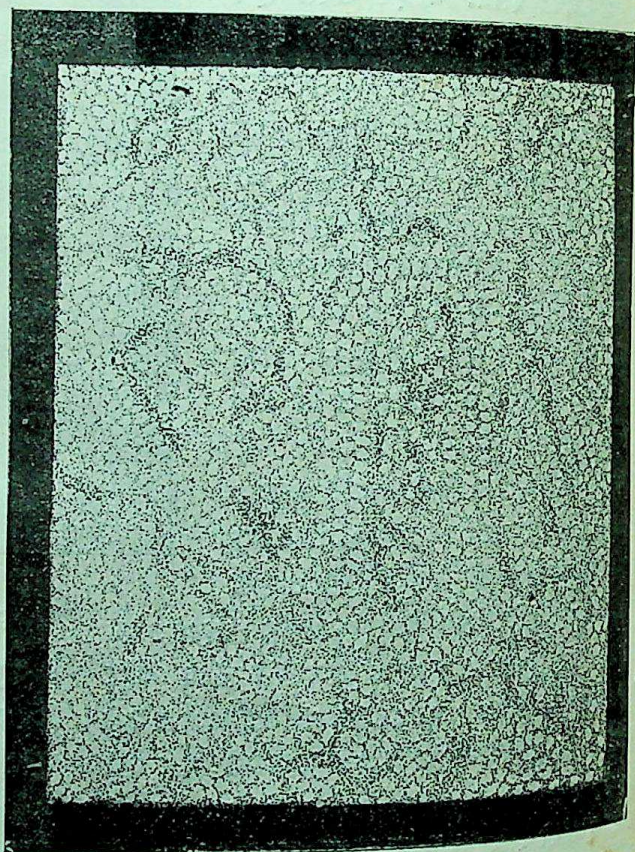
कैसा विलक्षण चित्र है। जान पड़ता है बीच में कई लड़ की एक मुक्तामाला सी पहनाई गई है।

सूर्य-बिम्ब का गिर्द एक अवर्णनीय छटा से आभूषित है। वह छटा एक प्रकार की देदीप्यमान झालर या शिखा है। वह शिखा बिम्ब के किनारे से बाहर निकली रहती है। जब सूर्य खूब प्रकाशित रहता है तब वह नहीं देख पड़ती। सूर्य के

सूर्यमण्डल का दीप्तिप्रवाह ।

नेत्रघातक प्रकाश में आँखें उसे नहीं देख सकतीं। जब ग्रहण होता है तब सूर्य और पृथ्वी के बीच में चन्द्रमा आ जाता है। यदि पूरा ग्रहण होता है, अर्थात् सूर्य के बिम्ब को चन्द्रमा पूरी तरह से ढक लेता है, तब इन दीप्तिमयी झालरों के देखने में बड़ी सुविधा होती है। उस साल हिन्दुस्तान में खग्रास ग्रहण हुआ था। अतएव सूर्य के बिम्ब को देखने और इन तेजःपुञ्ज शिखाओं के दृश्य का आनन्द लूटने, तथा तद्विषयक अनेक वैज्ञानिक बातों की जांच करने, के लिए देशान्तर तक के बड़े बड़े ज्योतिषी यहां आये थे। इस साल भी गत ३० अगस्त को सूर्य का खग्रास ग्रहण हुआ। पर वह इस देश में बहुत कम दिखाई दिया।

विद्वानों का अनुमान है कि ये छटामय शिखर, ये दीप्तिमयी शिखायें, धधकती हुई गैस के समूह हैं। ये दीप्ति-शिखर सूर्य-बिम्ब से हमेशा बाहर निकले रहते हैं। कभी वे बहुत दूर तक चले जाते हैं और कभी थोड़ी ही दूर जाकर रह जाते हैं। ग्रहण के सिवा और समय में भी इनके देखने की युक्ति निकाली गई है। कभी कभी सूर्य-बिम्ब की बाहरी नोक से हज़ारों मील दूर तक इनकी लपट पहुँचती है। उस समय इनकी गति एक मिनट में छ हज़ार मील तक की हो जाती है! मालूम होता है, सूर्य के पिण्ड में आग की विराट भट्टियां जला करती हैं, जो प्रबल तूफ़ानों के कारण बेतरह भभक उठती हैं। अतएव गैस के रूप में आस पास की वायु और मेघ-मालिका बेतरह सन्तप्त होकर ज्वालामय हो जाती है और बढ़ी हुई होली की शिखा के समान उसकी लपटें दूर दूर चली जाती हैं। एक बार एक लपट की ऊँचाई ८०,००० मील लम्बी नापी गई थी। इस लम्बाई का कुछ ठिकाना है! पृथ्वी के व्यास की दस गुना!!! परन्तु इतने ही से न घबराइए, अभी इससे भी बड़ी बात सुनना बाक़ी है। यह बात ७ अक्टूबर, १८८० ईसवी, की है। अमेरिका की एक वेधशाला में बैठकर अध्यापक यङ्ग ने दिन के साढ़े दस बजे देखा कि सूर्य के दक्षिण-पूर्वी भाग से एक प्रचण्ड दीप्तिमयी शिखा निकली। हिसाब लगाने से मालूम हुआ कि वह ४०,००० मील लम्बी थी। आध घण्टे में उसकी दीप्ति भी दूनी हो गई और लम्बाई भी। तब से वह बढ़ती ही गई, यहां तक कि वह साढ़े तीन लाख मील लम्बी हो गई!!! तेज़ से तेज़ गति देने वाली तोप से निकले हुए गोले की सौगुना तेज़ी से भी अधिक वेग के साथ यह दीप्ति-प्रवाह सूर्य से बाहर बहा था!!! कोई दो घण्टे में इसकी शान्ति हुई।

खग्रास ग्रहण के समय सबसे अधिक दर्शनीय और अद्भुत वस्तु सूर्य की कान्तिमाला या
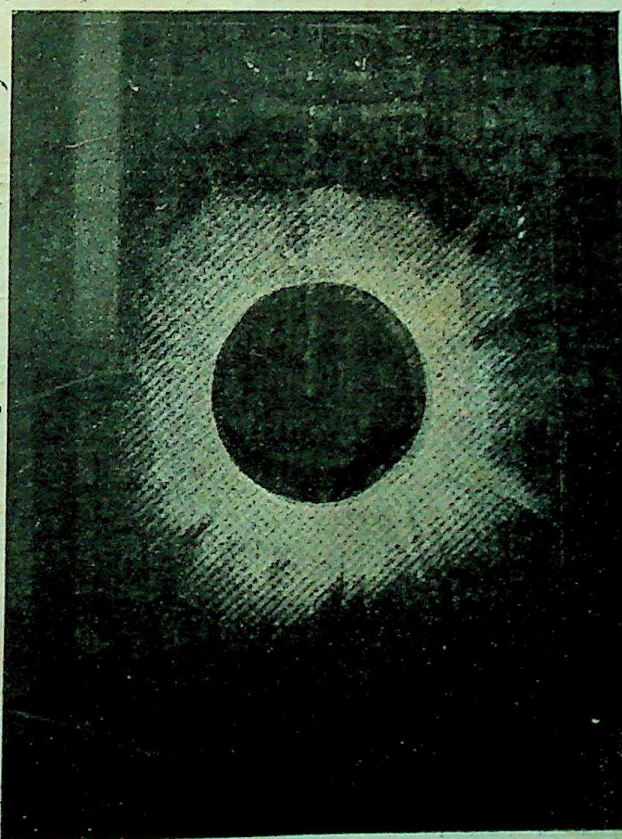
किरीट-मण्डल है। इसे दीप्तिच्छटा या प्रभामार्जनी भी कह सकते हैं। जब सूर्य का बिम्ब चन्द्रमा की आड़ में हो जाता है, अर्थात् जब सूर्य-मण्डल पर अन्धकार छा जाता है, तब बिजुली की रोशनी के समान उज्वल छटा सूर्य-बिम्ब के चारों तरफ़ दूर दूर तक फैल जाती है। देखने में वह ऐसी सुन्दर, ऐसी शोभाशालिनी, ऐसी मनोमोहिनी, होती है कि उसका वर्णन सर्वथा अनिर्वचनीय है। उसका बयानही नहीं हो सकता। बड़े बड़े विज्ञान-विशारद ज्योतिषी अभी इस बात को ठीक ठीक नहीं जान सके कि इस क्रान्तिमाला का क्या कारण है। इन किरीट-मण्डलों का विस्तार एक एक लाख मील तक होता है!

कभी कभी इस प्रभामाला में एक और विचित्रता देख पड़ती है। वह यह कि कमल के फूल की पंखुड़ियों के समान इसकी दो छटायें, दो तरफ़, साधारण माला की अपेक्षा अधिक दूर तक चली जाती हैं।

अपनी असीम उदारता से सूर्यदेव अपना प्रकाश और उष्णत्व अपने चारों तरफ़ फेंका करते हैं। आपकी इस उष्णता का बहुत सा अंश व्यर्थ नष्ट जाता है। हम तक पहुँचने के पहले वह अनन्त आकाश ही में नष्ट हो जाता है। आपके दान का दो अरब से भी कम हिस्सा पृथ्वी के काम आता है। अर्थात् यदि सूर्य के मण्डल से दो अरब मन प्रकाश हमारे लिये रवाना किया जाय, तो ठिकाने पर पहुँचते पहुँचते सिर्फ़ एक मन रह जाय! सूर्य के पास प्रकाश और उष्णता का इतना ख़ज़ाना है कि उसके सामने क़ारूं के ख़ज़ाने का नाम लेना मानों तेजोनिधि सूर्य की विडम्बना करना है। अनन्त तारका-पुञ्जों को अपने अपरिमेय प्रकाश-कोश से प्रकाश-दान करते रहने पर भी उसमें उतनी ही कमी होती है, जितनी किसी छोटी सी चिड़िया के चोंच में पानी ले जाने से प्रशान्त महासागर के पानी की होती है।

हे भुवनभास्कार! हे त्रैलोक्य-दीपक! हे दिवानाथ! आप बड़े दयालु हैं। आपही की कृपा से हमारे खेतों में अनाज पैदा होता और पकता है। आपही की कृपा से समुद्र के पानी की भाफ बनती है। फिर वह बादलों का रूप धारण करती है। फिर वही बादल बरसते और पृथ्वी को आप्यायित करते हैं। आपही की कृपा से वायु बहती है। आपही की कृपा से लकड़ी में दाहिका शक्ति पैदा होकर हमारे सब काम आती है। जीवन धारण करने और चलने फिरने की, जो कुछ हम अपने चारों तरफ़ देखते हैं उसे पाने की, जो प्राकृतिक सुन्दरता हमारे नेत्रों को तृप्त करती है उसे देखने की, शक्ति हमें आपही से मिली है। इस सबके लिए हम अकेले आपके ही ऋणी हैं। आपसे हम कभी उऋण नहीं। आपने हम पर बड़ा उपकार किया है। अतस्तुभ्यं नमः।

आकाश में निराधार स्थिति।

योगियों को अनेक प्रकार की अद्भुत अद्भुत सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं। योगशास्त्र में लिखा है कि वे आकाश में यथेच्छ गमन कर सकते हैं; जल में थल की तरह दौड़ सकते हैं; परकायप्रवेश कर सकते हैं; अन्तर्धान हो सकते हैं; और दूर देश या भविष्यत् की बात हस्तामलकवत् देख सकते हैं। पर, इस समय, इस देश में, इस तरह के सर्वसिद्ध योगी दुर्लभ हैं। यदि कहीं होंगे तो शायद हिमालय के निर्जन स्थानों में योगमग्न रहते होंगे।

अमेरिका से निकलनेवाली एक अंगरेज़ी मासिक पुस्तक को एक दिन हमने खोला तो उसके भीतर छपे हुए काग़ज़ों का एक ख़ासा पुलिन्दा मिला। उसमें कई तरह के नियम पत्र, नमूने और तसवीरें इत्यादि थीं। उनको अमेरिका की एक आध्यात्मिक सभा ने छपाया और प्रका-

कमल की पंखड़ियों के सदृश प्रभामालावाला
खग्रास सूर्य-ग्रहण।
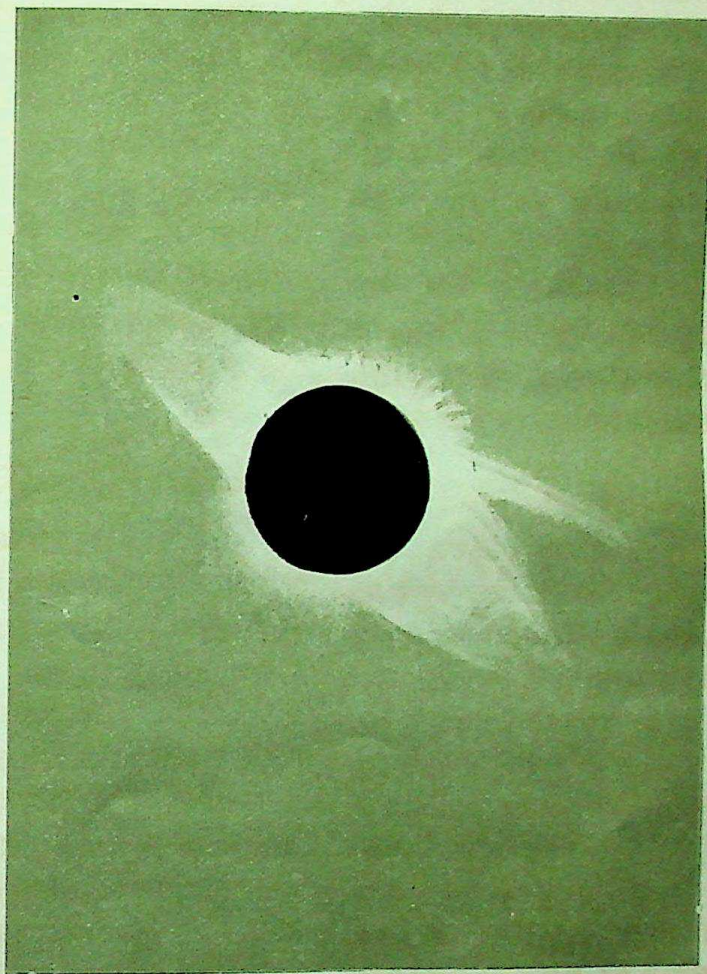
शित किया था। बहुत करके यह सभा कोई कल्पित सभा है। इन काग़ज़ों में लिखा था कि हिन्दुस्तान की सारी योगविद्या अमेरिका पहुँच गई है और अमेरिका की पूर्वोक्त सभा के चन्द योगी, इस विद्या को, बहुत थोड़ी फ़ीस लेकर, सिखलाने को राज़ी हैं, यहां तक कि कितने ही आदमियों को उन्होंने पूरा योगी बना भी दिया है। यह योग-शिक्षा डाक के ज़रिये से वे लोग देते हैं; परन्तु कई डालर फ़ीस पहलेही भेजना पड़ती है। एक डालर कोई तीन रुपये का होता है। इन काग़ज़ों में एक साहब और एक बंगाली बाबू का नाम था और लिखा था कि ये लोग अश्रुतपूर्व योगी हैं। इनमें इस देश की विद्या की, इस देश के पण्डितों की, इस देश के योगियों की बेहद व बेहिसाब तारीफ़ थी। उससे जान पड़ता था मानों यहां गली गली योगी मारे मारे फिरते हों। हमने इस सभा को एक पत्र लिखा। हमने कहा कि आपके अद्भुत योगी—बंगाली बाबू—का यहां कोई नाम भी नहीं जानता और योगसिद्ध पुरुष यहां उतने ही दुर्लभ हैं जितना कि पारस पत्थर, या सञ्जीवनी बूटी, या देवताओं का अमृत। अतएव आपको सभावालों को यह योगविद्या कहां से और किस तरह प्राप्त हुई? ख़ैर। हम भी आपसे योग सीखना चाहते हैं और फ़ीस भी देना चाहते हैं; परन्तु डालर-दान के पहले हम आपसे योग-विषयक एक बात पूछना चाहते हैं। यदि आप हमारे प्रश्न का ठीक ठीक उत्तर भेज कर हमारा समाधान कर देंगे तो हम आपकी सभा से ज़रूर योग सीखेंगे।

अमेरिका दूर है। इससे कोई डेढ़ महीने में उत्तर आया। योगी बाबू इत्यादि के विषय में हमने जो कुछ लिखा था, उत्तर में उसका बिलकुल ही ज़िकर हमें ढूंढ़े न मिला। हमारे प्रश्न का समाधान भी नहीं मिला। मिला क्या? उत्तर के साथ काग़ज़ों का एक और पैकट! उनमें कहीं प्रशंसापत्र, कहीं योगासन के चित्र, कहीं कुछ, कहीं कुछ। पत्र में सिर्फ़ यह लिखा था कि डालर भेजिए तब आपके प्रश्न का उत्तर दिया जायगा और तभी योग का सबक़ भी शुरू किया जायगा! इस उत्तर को पढ़ कर हमें योगियों की इस सभा से अत्यन्त घृणा हुई और हमने उसके काग़ज़ पत्र उठाकर रद्दी में फेंक दिये। सो, अब, हिन्दुस्तान की योगविद्या यहां से भग कर योरप और अमेरिका जा पहुंची है और वहां उसने पूर्वोक्त प्रकार की सभा-संस्थाओं का आश्रय लिया है। तथापि यहां अब भी, कहीं कहीं, योग के किसी किसी अङ्ग में सिद्ध पुरुष पाये जाते हैं।

मिर्ज़ापुर में एक गृहस्थ हैं। वे गृहस्थाश्रम में रह कर भी बीस मिनट तक प्राणायाम कर सकते हैं। इसी शहर के पास एक जगह विंध्याचल है। वहां विंध्यवासिनी देवी का मन्दिर है। मन्दिर से कोई दो मील आगे एक पहाड़ पर एक महात्मा रहते हैं। अगस्त १९०४ में हम उन्हें देखने गये थे। एक निविड़ खोह में एक झरना था। वहीं आप थे। आपके पास एक हांडी के सिवा और कुछ नहीं रहता। इससे लोग इन्हें "हँड़िया बाबा" कहते हैं। आप संस्कृत के अच्छे विद्वान् हैं और प्रायः संस्कृत ही बोलते हैं। हमने ख़ुद तो नहीं देखा, पर सुनते हैं, योग के कई अङ्ग इनको सिद्ध हैं। अभी, कुछ दिन हुए, कानपुर में एक योगी आये थे। वे तीन दिन तक समाधि लगा सकते थे।

पुराने ज़माने की बात हम नहीं कहते। रामकृष्ण परमहंस आदि योग-सिद्ध महात्मा इस ज़माने में भी यहां हुए हैं। सुनते हैं स्वामी दयानन्द सरस्वती और विवेकानन्द को भी योग में दख़ल था। कई वर्ष हुए पञ्जाब के किसी नवयुवक की अद्भुत सिद्धियों का वृत्तांत भी हमने अख़बारों में पढ़ा था। इससे जान पड़ता है कि योग के सब अङ्गों में सिद्धि प्राप्त करने वाले पुरुष यद्यपि इस समय दुर्लभ हैं, तथापि

उसके कुछ अङ्गों में जिन्हें सिद्धि हुई है, ऐसे लोग अब भी यहां पर, कहीं कहीं, देखे जाते हैं।

आकाश में निराधार स्थिर रहना और आकाश में यथेच्छ विहार करना बहुत कठिन काम है। पर यदि योगशास्त्र में लिखी हुई बातें सच हैं—और उनके सच होने में सन्देह भी नहीं है—तो ऐसा होना सर्वथा सम्भव है। सुनते हैं शङ्कराचार्य्य यथेच्छ व्योमविहार करते थे। शङ्करदिग्विजय एक ग्रन्थ है। उसमें शङ्कराचार्य्य का जीवन-चरित है। उसमें एक जगह लिखा है—

ततः प्रतस्थे भगवान् प्रयागात्तं मण्डनं पण्डितमाशु जेतुम्।
गच्छन् खसृत्या पुरमालुलोके माहिष्मतीं मण्डनमण्डितां सः॥

अर्थात् मण्डन पण्डित को जीतने के लिए भगवान् शङ्कराचार्य्य ने प्रयाग से प्रस्थान किया और आकाशमार्ग से गमन करके मण्डनमण्डित माहिष्मती नगरी को देखा।

अतएव कोई नहीं कह सकता कि यह बात असम्भव, अतएव ग़लत है। आकाशविहार करना तो बहुत कठिन है, पर आकाश में निराधार ठहरने का एक आध दृष्टान्त हमने भी सुना है। हमें स्मरण होता है, हमने कहीं पढ़ा है कि कोई गुजरात देश के महात्मा ज़मीन से कुछ दूर ऊपर उठ जाते थे और थोड़ी देर तक निराधार वैसेही ठहरे रहते थे। पर इस प्रकार की सिद्धियों को दिखलाकर तमाशा करना अनुचित है। योगसाधना तमाशे के लिए नहीं की जाती। इससे हानि होती है और प्राप्त से अधिक सिद्धि पाने में बाधा आती है। हरिदास इत्यादि योगियों ने जो अपनी योगसिद्धि के दृष्टान्त दिखलाये हैं, वे तमाशे के लिए नहीं, केवल योग में लोगों का विश्वास जमाने के लिये। तमाशा लौकिक प्रसिद्धि प्राप्त करने या रुपया कमाने के लिए दिखाया जाता है। पर योगियों को इसकी परवा नहीं रहती। वे इन बातों से दूर भगते हैं; उनकी प्राप्ति की चेष्टा नहीं करते। परन्तु जिन लोगों ने योग की सिद्धियों की बात नहीं सुनी, वे ऐसे तमाशों को बहुत कुछ समझते हैं। ऐसे एक तमाशे का हाल हम यहां पर लिखते हैं। यह तमाशा एक सिविलियन (मुल्की अफ़सर) अङ्गरेज़ का देखा हुआ है। उसकी इच्छा है कि इँगलैण्ड की अध्यात्म-विद्या-सम्बन्धिनी सभा इसकी जांच करै। यह वृत्तान्त एक अङ्गरेज़ी मासिक पुस्तक में प्रकाशित हुआ है। तमाशा है इसदेश का, पर यहां के किसी पत्र या पत्रिका को इसका समाचार नहीं मिला। समाचार गया विलायत; वहां से अङ्गरेज़ी में छपकर यहां आया। तब उसे पढ़ने का सैाभाग्य हिन्दुस्तानियों को हुआ! अब इस तमाशे का हाल पर्वोक्त सिविलियन साहब ही के मुँह से सुनिए—

"हिन्दुस्तान के उत्तर में नवम्बर के शुरू में जाड़ा पड़ने लगता है। तब ज़िले के सिविलियन साहब दैारे पर निकलते हैं। मुझे भी हर साल की तरह दैारे पर जाना पड़ा। एक दिन एक पढ़े लिखे हिन्दुस्तानी ज़मींदार ने आकर मुझसे मुलाक़ात की। उसने कहा कि मैंने एक बड़ा ही आश्चर्य्यजनक तमाशा देखा है। आत्मविद्या (Mesmerism) के बल से एक लड़का ज़मीन से चार फ़ुट ऊपर, अधर में, बिना किसी आधार के ठहरा रहता है। इससे मिलते जुलते हुए तमाशों का हाल मैंने सुन रक्खा था। मैंने सुना था कि मदारी लोग रस्सी को आकाश मे फेंक कर उस पर चढ़ जाते हैं और इसी तरह के अजीब अजीब तमाशे दिखलाते हैं। पर मैंने यह न सुना था कि कोई आकाश में भी बिना किसी आधार के ठहर सकता है। इससे इस तमाशे को देखने की मुझे उत्कट अभिलाषा हुई। मेरे हिन्दुस्तानी मित्र ने मुझसे वादा किया कि मैं आपको यह तमाशा दिखलाऊँगा।

"१४ नवम्बर १९०४ को मेरे मित्र ने मुझ पर फिर कृपा की। इस दफ़ा वह उस तमाशावाले को भी साथ लेता आया। यह देख कर मैं बहुत

खुश हुआ। तमाशावाले की उम्र चालीस वर्ष से कुछ कम थी। उसने कहा मैं ब्राह्मण हूं। जहां पर मेरा ख़ेमा था, वहाँ, कुछ दूर पर, उसने कोई १२ वर्ग फुट जगह साफ़ करके, उसके तीन तरफ़ क़नात लगा दी। चौथी तरफ़ उसने पर्दा डाल दिया। इच्छानुसार पर्दा डाल दिया जासकता था और उठा भी लिया जासकता था। पर्दे से १५ फुट की दूरी पर देखनेवाले बैठे। तमाशावाले के साथ एक लड़का था। उसकी उम्र बारह तेरह वर्ष की होगी।

"जिस विद्या को अङ्गरेज़ी में मेस्मेरिज्म कहते हैं उसका ठीक ठीक अनुवाद हिन्दी में हम नहीं कर सकते। पर इस विद्या के नाम से सरस्वती के प्रायः सभी पाठक परिचित होंगे। इसमें जिस व्यक्ति पर असर डाला जाता है, वह असर डालने वाले के वश में हो जाता है। इसे आत्मविद्या, अध्यात्मविद्या, वशीकरण विद्या, आदि कह सकते हैं। इसी विद्या के नियमों के अनुसार तमाशा-वाले ने उस लड़के पर असर डालना शुरू किया। तमाशावाले को इससे आगे हम प्रयोक्ता के नाम से उल्लेख करेंगे। कुछ देर तक प्रयोक्ता ने लड़के पर पाश डाले। इतने में वह निश्चेष्ट हो गया। तब प्रयोक्ता ने उसे एक सन्दूक़ पर चित लिटा दिया। सन्दूक़ उसने पहले ही से क़नात के घेरे के भीतर रख लिया था। फिर उसे उसने एक कपड़े से ढक दिया और परदे को नीचे गिरा दिया। तमाशे का पहला दृश्य यहां पर समाप्त हो गया।

"तीन चार मिनट के बाद परदा फिर उठा और दूसरा दृश्य दिखाई दिया। हम लोगों ने देखा कि वह लड़का मोटे कपड़े की एक गद्दी पर पद्मासन में बैठा है। यह गद्दी एक तिपाई के ऊपर रक्खी थी। तिपाई बांस की थी। नीचे, तीनों बांस अलग अलग थे; पर ऊपर वे तीनों एक दूसरे से मिला कर बांध दिये गये थे। उनके उस भाग पर, जो ऊपर निकला था, गद्दी रक्खी थी। लड़के के हाथ दोनों तरफ़ फैले हुए थे। हाथों के नीचे एक एक बाँस और था। उसीकी नोक पर हाथों की हथेली रक्खी थी। ये दोनों बाँस तिपाई के बांसों से कुछ लम्बे थे। वे नीचे ज़मीन को सिर्फ़ छुए हुए थे; गड़े न थे। लड़के का सिर और उसके कन्धे एक काले कपड़े से ढके थे। इस कपड़े को प्रयोक्ता कभी कभी उठा देता था जिससे लड़के का चेहरा खुल जाता था और छाती भी देख पड़ने लगती थी।

"इसके बाद प्रयोक्ता ने तिपाई के तीनों बाँस एक एक करके धीरे धीरे खींच लिये। लड़का पूर्वोक्त गद्दी के ऊपर, वैसेही पालथी मारे हुए, आकाश में बैठा रह गया! उसका आसन ज़मीन से कोई चार फुट ऊपर था। उसके हाथ वैसेही फैले हुए थे और पूर्वोक्त दोनों बाँसों पर रक्खे हुए थे। इन दो बाँसों की उँचाई छ फुट होगी। हम लोग निर्निमेष दृष्टि से लड़के की तरफ़ देख रहे थे कि प्रयोक्ता "फ़क़ीर" ने उन दो बाँसों में से भी एक को खींच लिया और

लड़के के हाथ को समेट कर छाती पर रख दिया। तब लड़के का सिर्फ़ एक हाथ बाँस पर रह गया। यह देखकर हम लोगों के आश्चर्य्य की सीमा न रही। क्या बात थी जिससे वह लड़का, पत्थर की मूर्ति के समान, निश्चल भाव से, आकाश में, इस तरह, बैठा रह गया? क्यों न वह धड़ाम से नीचे आ गिरा?

"मैंने उस साधु से कहा—"क्या मैं तुम्हारे पास तक आ सकता हूं?" अब तक मैं परदे से कोई १५ फुट और उस लड़के से कोई २० फुट दूर बैठा था। प्रयोक्ता ने कहा—"जितना नज़दीक आप चाहें चले आवें; पर लड़के के बदन पर हाथ न लगाइएगा"। कई और तमाशबीनों के साथ मैं आगे बढ़ा और लड़के से छ इञ्च के फ़ासले तक चला गया। मैं उसके आसन के नीचे गया, पीछे गया, इधर गया, उधर गया—किसी जगह की जांच मैंने बाक़ी नहीं रक्खी। यहां तक कि मैंने अपनी छड़ी को सब तरफ़ फेर कर देखा कि कहीं कोई तार या और कोई आधार तो नहीं हैं जिसके बल से यह लड़का आकाश में ठहरा हुआ है। पर मुझे कोई चीज़ नहीं मिली। लड़का जहां का तहां मेरे सामने अधर में बैठा था। उसका चेहरा खुला था। उसकी छाती भी देख पड़ती थी। यहां तक कि सांस लेते समय मैं उसकी छाती पर श्वासोच्छ्वास की चाल भी देखता था।

"दो मिनटतक हम लोग वहां खड़े जाँच करते रहे कि कोई चालबाज़ी की बात हमको वहां मिलै। पर हमारा प्रयत्न बेकार हुआ। लड़का अपने स्थान पर, आकाश में, अचल रहा। तब हम लोग अपनी जगह पर लौट आये और बैठ गये। पर उस साधु ने हमें अपनी जगह पर जाने के लिए नहीं कहा और न उसने यही कहा कि हम लड़के के पास से हट जाँय, जिसमें वह तमाशे का अन्तिम दृश्य भी दिखला सके। जब हम लोग अपनी जगह पर बैठ गये तब तमाशे का अत्यन्तही अद्भुत और आश्चर्य-जनक दृश्य हमको दिखलाया गया। प्रयोक्ता ने दूसरे बाँस को भी धीरे से खींच लिया और उस पर रक्खे हुए हाथ को समेट कर लड़के की छाती पर पहले हाथ के ऊपर रख दिया। लड़का पूर्वोक्त गद्दी पर पद्मासन में निराधार बैठा हुआ रह गया। उसके दोनों हाथ छाती पर एक दूसरे के ऊपर रक्खे थे। न उसके नीचे कुछ था; न आगे था; न पीछे था; न इधर था; न उधर था! इस दशा में वह ब्राह्मण लड़के से कोई चार पाँच फुट की दूरी पर कुछ देर तक खड़ा रहा। तब उसने परदा गिरा दिया और वह लड़का हम लोगों की नज़र से छिप गया। यहां पर इस तमाशे का दूसरा दृश्य समाप्त हुआ।

"जब तीसरी दफ़ा परदा उठा तब हमने उस लड़के को पूर्वोक्त सन्दूक़ पर लेटा हुआ देखा। कुछ देर में उस ब्राह्मण ने लड़के पर से अपना असर (उलटे पाश फेर कर) दूर करना आरम्भ किया। कोई दो मिनट में लड़का उठ बैठा और आँखें मल कर उस ब्राह्मण की तरफ़ देखने लगा। इस तमाशे में आदि से अन्त तक कोई बीस या पचीस मिनट लगे होंगे।

"मैंने ब्राह्मण से पूछा—"क्या तुम किसी और आदमी को भी इसी तरह अपने वश में कर सकते हो"? उसने कहा—"यदि कोई बड़ी उम्र का आदमी इस बात की कोशिश करै कि मैं उसे अपने वश में न कर सकूं, अर्थात् उस पर अपना असर न

डाल सकूं, तो उस पर मेरा वश न चलैगा। पर बारह वर्ष या उससे कम उम्र के किसी भी लड़के को मैं अपने वश में कर सकता हूं—अर्थात् उसे मैं मेस्मेराइज़ (Mesmerise) कर सकता हूं"। मैंने चाहा कि मैं उसकी आत्मविद्या की परीक्षा लूं। मैंने दर्शकों की भीड़ में सब लोगों की तरफ़ देखना शुरू किया। मुझे एक लड़का देख पड़ा। वह पासही के एक गाँव से आया था। वह उस फ़क़ीर की करामात की जाँच अपने ऊपर कराने को राज़ी हुआ। मैंने उससे कहा—"वह आदमी तुमको सुला देने की कोशिश करैगा। यदि तुम नींद न आने दोगे और बराबर जगते रहोगे तो मैं तुमको एक रुपया दूंगा"। ब्राह्मण ने उस लड़के को अपने सामने बिठाया और उसके चेहरे की तरफ़ निर्निमेष दृष्टि से देखते हुए उसने पाश देना शुरू किया। दो मिनट भी न हुए होंगे कि लड़का गहरी नींद में हो गया!

"मैं उन आदमियों में से हूं जो भूत, प्रेत, योग, आत्मविद्या और अन्तर्ज्ञान आदि में विश्वास नहीं करते। इससे, इस बात का पता न लगा सकने के कारण मुझे बड़ा अफ़सोस हुआ—नहीं क्रोध आया—कि किस प्रकार वह लड़का निराधार अधर में बैठा रहा। अतएव मैंने उस ब्राह्मण से कहा कि क्या आप सदर में आकर अपना करतब दिखा सकते हैं? इस बात पर वह राज़ी हुआ। इसके लिए २१ नवम्बर १९०४ का दिन नियत हुआ। मैं सदर को वापस गया। यथासमय वह फ़क़ीर मेरे बँगले पर हाज़िर हुआ और वहां उसने इस तमाशे को ठीक उसी तरह दिखाया जैसा उसने मुझे दौरे पर दिखाया था। मेरे जितने मित्र उस शहर में थे, उन सबको मैंने इस फ़क़ीर की करामात देखने के लिए बुला लिया था। मैं समझता था कि मेरे मित्रों में शायद कोई मुझसे अधिक चतुर हो और वह इस साधु की चालाकी का पता लगा सके। मेरे बुलाने से कोई २५ आदमी आये। सबने इस बात की यथाशक्ति कोशिश की कि वे इस ब्राह्मण की करामात का कारण ढूंढ़ निकालें, पर सब हतमनोरथ हुए। किसीको अक़ल काम न आई; किसीको कोई चालाकी की बात न देख पड़ी। सब लोगों को मेरी ही तरह हैरत हुई।

"कुछ दिनों के बाद एक नये साहब वहां आये। उनसे लोगों ने इस तमाशे की बात कही; पर उनको विश्वास न आया। उन्होंने इसकी असम्भवनीयता पर एक लम्बा चौड़ा व्याख्यान दिया और हम सब लोगों की अवलोकनशक्ति के विषय में बहुतही बुरी राय क़ायम की। इससे मैंने उनको भी यह तमाशा दिखलाने का निश्चय किया।

"२८ नवम्बर को मैंने उस ब्राह्मण को फिर अपने बँगले पर बुलाया और फिर उसने पूर्वोक्त तमाशे को दिखाया। पर इस दफ़ा उसने उन दोनों बाँसों में से एक को तो निकाल लिया, परन्तु दूसरे को नहीं निकाला। उसपर लड़के का एक हाथ रक्खाही रहा। इसका कारण उसने यह बतलाया कि उस दिन उसकी तबीयत अच्छी न थी और लड़का भी सुस्थ न था। इस दफ़ा मैंने एक फ़ोटोग्राफ़र को भी बुला लिया था। उसने इस तमाशे के सब दृश्यों का फ़ोटो ले लिया। वे साहब, इस दफ़ा, वैसे ही चकित हुए जैसे हम

लोग पहले ही हो चुके थे। उनको भी कोई चालाकी ढूंढ़े न मिली।

"यदि कोई मुझे इस बात को समझा दे कि किस तरकीब से—किस शक्ति से—वह लड़का आकाश में निराधार रह सकता है, तो मैं उसका बहुत कृतज्ञ होऊं। मैं अपना नाम और पता, और जिन साहब और मेमों ने इस तमाशे को देखा है उनके भी नाम, पता समेत, देने को तैयार हूं। मैं, ज़रूरत पड़ने पर, उस ब्राह्मण का भी पता बतला सकता हूं।

"मेरे एक लड़का है। वह इँगलैण्ड में है। उसे मैंने इस तमाशे का हाल लिखा। मुझ पर उसका बड़ा प्रेम है। मेरी शुभकामना की इच्छा से उसने मुझे लिखा—'यदि मैं होता तो ऐसे तमाशे देखने न जाता; क्योंकि बहुत सम्भव है उस ब्राह्मण ने देखनेवालों पर भी अपना असर डाल दिया हो और इस तरह उसके वश में आजाना अच्छा नहीं। यदि उसने ऐसा न किया हो तो सचमुच आश्चर्य्य की बात है'। परन्तु फ़ोटोग्राफ़ लेने के निर्जीव केमरा पर आत्मविद्या का असर नहीं पड़ सकता। अतएव मेरे लड़के की यह कल्पना ठीक नहीं है। इस तमाशे के जो चित्र लिये गये हैं, वे ठीक वैसे ही हैं जैसा कि हम लोगों ने उसे अपनी आँखों देखा है।

"उस ब्राह्मण का कथन है कि मैंने यह विद्या थियासफ़िकल सोसाइटी के स्थापक कर्नल आलकाट से सीखा है। इसके चार पाँच वर्ष पहले तक वह आकाश में उड़ती हुई चिड़ियों की तरफ़ देखकर अपनी इच्छाशक्ति से ही उन्हें ज़मीन पर गिरा सकता था! परन्तु बीच में वह बहुत बीमार हो गया। तब से उसकी यह शक्ति जाती रही।"

* * * * *

यहां सिविलियन साहब का कथन समाप्त हुआ। आकाश में लड़के को निराधार ठहरा देख उन्हें जो आश्चर्य्य हुआ वह युक्त है। परन्तु योग और अध्यात्मविद्या की महिमा को जो जानते हैं उनको ऐसी बातें सुनकर कम आश्चर्य्य होता है। जो लोग पूरे योगी हैं, वे आकाश में स्वच्छन्द विहार कर सकते हैं। जिनको योग के कुछ ही अङ्ग सिद्ध हो जाते हैं, उनमें भी अनेक अलौकिक शक्तियां आजाती हैं। परन्तु ऐसी शक्तियों का दुरुपयोग करना अनुचित और हानिकारक होता है। उनके प्रयोग को दिखा कर खेल तमाशे न करना चाहिए।

कुछ दिन हुए कानपुर में एक योगी आये थे। आपका नाम है आत्मानन्द स्वयंप्रकाश सरस्वती। कोई दो महीने तक वे गङ्गा-किनारे थे। वे तैलङ्ग देश के थे। उनके साथ उनका एक चेला भी था। वे सिर्फ़ अपनी देशभाषा, या संस्कृत, बोल सकते थे। संस्कृत में योग-विषय पर उन्होंने दो एक पुस्तकें भी लिखी हैं। उनमें से एक पुस्तक कानपुर में छापी भी गई है। उनको आड़म्बर बिलकुल प्रिय न था। हिन्दी न बोल सकने के कारण उनके यहां भीड़ कम रहती थी। तिस पर भी शाम सुबह बहुत से पढ़े लिखे आदमी उनके दर्शनों को जाया करते थे। कानपुर के प्रसिद्ध वकील पण्डित पृथ्वीनाथ तक उनके दर्शनों को जाते थे। उनको समाधि तक की सिद्धि है। तीन दिन तक वे समाधिस्थ रह सकते हैं। पर कानपुर में वे जब तक रहे तब तक कोई

तीन ही घण्टे अपने कुटीर के भीतर रहते रहे। अर्थात् तीन घण्टे से अधिक लम्बी समाधि उन्होंने नहीं लगाई। योग और वेदान्त विषय पर वे ख़ूब वार्तालाप करते थे, पर संस्कृत ही में। जो लोग इन विषयों को कुछ जानते थे, उन्हींकी तरफ़ वे मुख़ातिब होते थे, औरों से वे विशेष बात चीत न करते थे। उनसे यह प्रार्थना की गई कि वे सबके सामने समाधिस्थ हों, जिसमें जिन लोगों का योगविद्या पर विश्वास नहीं है उनका भी विश्वास हो जाय। पर ऐसा करने से उन्होंने इनकार किया। उन्होंने कहा कि स्वामी हंसस्वरूप से कहिएगा, वे शायद आपकी इच्छा को पूरी करें। मैं तमाशा नहीं करता। चाहे किसी को विश्वास हो चाहे न हो। बहुत कहने पर आपने दो तीन दफ़ा श्वास चढ़ाया और अपने दाहने हाथ की कलाई सामने कर दी। देखा गया तो नाड़ी ग़ायब; प्राण वहां से खिँच गये। उनके इस दृष्टान्त से, उनके ग्रन्थों से, उनकी बात चीत से, यह सिद्ध हो गया कि वे सचमुच सिद्ध योगी हैं। उनके इनकार ने इस बात को भी पुष्ट कर दिया कि लोगों को दिखाने के लिए योग की कोई क्रिया करना मना है।

सब से बड़ा हीरा।

दक्षिणी आफ़रीक़ा में बोर लोगों की पुरानी राजधानी प्रिटोरिया नगर है। उसके पास प्रीमियर नाम की एक हीरे की खान है। उसमें कुछ समय हुआ एक बहुत बड़ा हीरा निकला है। इस बात का ज़िक्र सरस्वती में आ चुका है। यह हीरा आज कल लण्डन में विराज रहा है। बड़ी ख़बरदारी के साथ ट्रांसवाल से वह लण्डन पहुँचा है। जितने बड़े बड़े हीरे इस समय तक पाये गये हैं, उनसे यह कई गुना बड़ा है। देखने में यह कांच के एक छोटे से ग्लास के बराबर है। जिस समय इसके निकलने की ख़बर दूर दूर तक पहुँची, उस समय इसकी क़ीमत, अन्दाज़न, एक करोड़ रुपये के कूती गई। जिन्होंने इसे देखा है, वे इस अन्दाज़ को ग़लत नहीं बतलाते। यह विशाल हीरा नाप में ४ × २½ × १½ इञ्च है। इसका वज़न ३०३२ कैरट है। अर्थात् कोई तीन पाव के क़रीब!

ग्रेट प्रिमायर— (नया आविष्कृत) ३०३२ कैरट। ग्रैंडड्यूक डी टसकनी, १३३·१४ कै०।

यह हीरा प्रायः निर्दोष है। एक आध निशान इसमें कहीं कहीं पर हैं। पर काट कर सुडौल करते समय वे निकल जायँगे और हीरे के आकार में विशेष कमी न होगी। यह बिलकुल सफ़ेद और पारदर्शक है। देखने में यह बर्फ़ का एक बड़ा टुकड़ा सा जान पड़ता है। एक विलायती जौहरी का मत है कि आज तक जितने अच्छे अच्छे हीरे मिले हैं, उन सबसे यह अधिक स्वच्छ

ग्रोर पानीदार है। इसकी बनावट से मालूम होता है कि अपनी पहली स्थिति में यह हीरा बेहद बड़ा रहा होगा। मुमकिन है इसका वज़न मनों रहा हो! इस प्रचण्ड रत्नराज के नीचे का हिस्सा भर शेष रह गया है; ग्रोर सब कई टुकड़ों में होकर उड़ गया है। नहीं मालूम, ये उड़े हुए टुकड़े कहां गये, या क्या हुए, अथवा वे कभी किसी को मिलेंगे या नहीं।

आश्चर्य की बात है कि हीरा की उत्पत्ति कोयले से होती है। कोयले के समान काली चीज़ से हीरे के समान दीप्तिमान रत्न निकलता है! पृथ्वी के पेट में भरी हुई असीम उष्णता के योग से हीरे बनते हैं। जब वह उष्णता अतुल वेग के साथ पृथ्वी की तहों को तपाती ग्रोर फाड़ती हुई ऊपर आती है, तब किसी किसी जगह एक विशेष प्रकार की रासायनिक प्रक्रिया शुरू होती है। जिस जगह इस प्रक्रिया की सहायक सब सामग्री रहती है, उस जगह हीरे की उत्पत्ति होती है। दक्षिणी आफ़रीक़ा की खानों से यह साफ़ ज़ाहिर होता है कि वहां पर किसी समय ज्वालामुखी पर्वतों के मुँह से बहुतही भयङ्कर स्फोट हुए हैं। जिन मुँहों से होकर पृथ्वी के पेट से आग निकली है, वे अब तक बने हुए हैं। उन्होंके आस पास, एक प्रकार की पीली ज़मीन में, हीरे गड़े हुए मिलते हैं। पर उस ज़मीन की बनावट से यह मालूम होता है कि जो हीरे वहां निकलते हैं वे वहीं नहीं बने। वे उससे भी बहुत दूर नीचे बने थे। वहां से ज्वालागर्भ पर्वतों के स्फोट के समय वे ऊपर फेंक दिये गये हैं। विषम ज्वाला ग्रोर अतिशय दबाव के कारण, वहीं, उतनी गहराई में, कोयले के साथ ग्रोर ग्रोर चीज़ों का रासायनिक संयोग होने से वे उत्पन्न हुए होंगे। प्रीमियर खान के पास जो ज्वालावमन हुआ होगा, उसका वेग बहुत ही प्रचण्ड रहा होगा। वेगही की प्रचण्डता के कारण जो हीरा निकला है, उसकी शिला के टुकड़े टुकड़े हो गये होंगे।

इस रत्नशिला का जो टुकड़ा निकला है वह छोटा नहीं है। वह बहुत बड़ा है। खान के मालिक उसकी प्राप्ति से बेहद ख़ुश हैं। यह इस तरह की ख़ुशी है कि इसने उनको अन्देशे में नहीं, ख़तरे तक में डाल दिया है। उनको यह विशाल हीरक-रत्न बोझ सा मालूम हो रहा है। कोई मामूली आदमी तो उसे ख़रीद ही नहीं सकता। यदि कोई ख़रीदेगा तो राजा या राजराजेश्वर। परन्तु राजेश्वरों को भी इसकी क़ीमत देते खलैगा। इस हीरे की क़ीमत नियत करना केवल एक काल्पनिक बात है; सिर्फ़ पर ख़याली अन्दाज़ है। १७५० से १८७० ईसवी तक हीरे का दाम उसके वज़न के वर्गमूल के हिसाब से लगाया जाता था। दूसरे देशों में हीरे की तौल कैरट से होती है। एक कैरट में चार ग्रेन होते हैं ग्रोर एक माशे में कोई १५ ग्रेन। प्रत्येक हीरे की क़ीमत उसके रूप, ग्रोर द्युति के अनुसार होती है। किसीकी थोड़ी होती है, किसी की बहुत। कल्पना कीजिए कि किसी हीरे की क़ीमत फ़ी कैरट १०० रु० के हिसाब से निश्चित हुई। तो दो कैरट की कीमत २×२× १००=४०० रुपये ग्रोर तीन कैरट की कीमत ३×३×१००=९०० रुपये हुए। अब यह जो नया हीरा निकला है इसकी क़ीमत इसी हिसाब से लगाइए। इसका वज़न है ३,०३२ कैरट। अतएव ३०३२×३०३२×१००×९१९३०२४०० रुपये क़ीमत हुई! एक अरब के करीब! कौन इतनी क़ीमत देगा। जबसे आफ़रीक़ा में अनेक हीरे निकलने लगे, तब से हीरों की क़ीमत नियत करने का यह तरीक़ा उठ गया। परन्तु जौहरियों का अन्दाज़ है कि यह विशाल हीरा ७५००००० से १५०००००० रुपये तक बिक जायगा। इतना रुपया क्या थोड़ा होता है! बहुधा ऐसा होता है कि बड़े बड़े हीरों को काट काट कर छोटे छोटे टुकड़े कर डाले जाते हैं। इस तरह उन्हें

बेचने में सुभीता होता है। सम्भव है, इस हीरे की भी यही दशा हो। परन्तु इतने अच्छे और इतने बड़े हीरे को छिन्न भिन्न कर देना बड़ी क्रूरता का काम होगा। तथापि बड़े बड़े हीरों को रखना धोखे और ख़तरे में पड़ना है। इतिहास इस बात की गवाही दे रहा है कि जिनके पास बड़े बड़े हीरे रहे हैं, उन्हें अनेक आपदाओं में फँसना पड़ा है।

टिफ़ानी नाम की खान से ९६९ कैरट वज़न का जो हीरा निकला था वह आज तक सबसे बड़ा समझा जाता था। पर इस नये हीरे ने बड़ेपन में उसका भी नम्बर छीन लिया। जिस समय यह हीरा तराश कर ठीक किया जायगा, उस समय इसकी सूरत और ही तरह की हो जायगी और वज़न भी इसका कम हो जायगा। तिस पर भी वह दुनिया भर के हीरों से कई गुना बड़ा रहेगा। प्रसिद्ध कोहेनूर हीरा, काटने से, वज़न में बहुत कम हो गया है। उसका आकार भी छोटा होगया है। पहले उसका वज़न ७९३ कैरट था। परन्तु जिस आदमी ने उसे काट छाँट कर ठीक किया, वह हीरा-तराशी के काम को अच्छी तरह न जानता था। इसका फल यह हुआ कि कोहेनूर का वज़न सिर्फ़ २७९ कैरट रह गया। वह एक बार फिर तराशा गया। इस बार कम होकर उसका वज़न १०६ ही कैरट रहगया। इस हीरे का इतिहास पाठकों को मालूम ही होगा। इसलिए पिष्ट-पेषण की क्या ज़रूरत?

टिफ़ानी, ९६९ कैरट।

इटोयली डी सूड, १२४ कैरट।

कोहनूर—दूसरी बार काटे जाने के बाद, १०६ १/१६ कैरट।

प्रिंस आरलफ़ नाम का हीरा भी एक बहुत प्रसिद्ध हीरा है। वह रूस-राज के पास है। उसका आकार गुलाब का सा है। उसका वज़न १९४¾ कैरट है। फ्लाटाइन नामक हीरा पीले रङ्ग का है। वह आस्ट्रिया के राज-

रूस का बड़ा मोगल, २७९ ९/१६ कैरट।
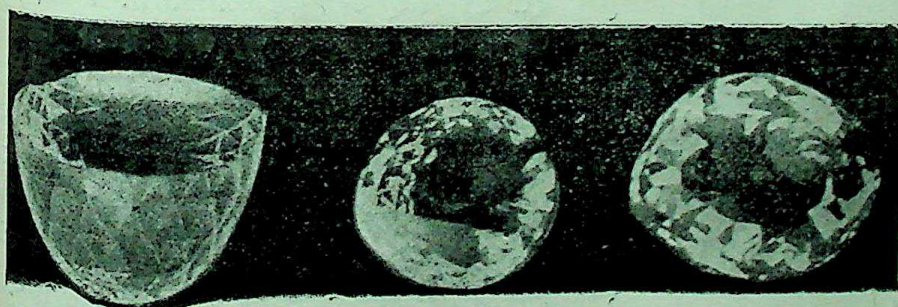
प्रिंस आरलफ़, १९४¾ कैरट।

कोहनूर हीरा, पहली बार काटे जाने के बाद, २७९ कैरट।

भवन की शोभा बढ़ाता है। उसका वज़न १३३ कैरट है। स्टार आफ़ साउथ अर्थात् "दक्षिण का तारा" नाम का हीरा ब्रेज़ील में एक हबशी को १८५३ ई० में मिला था। उसका वज़न २५४ कैरट है। दक्षिणी अमेरिका में जितने हीरे निकले हैं, यह उनमें सबसे बड़ा है। काटने पर इसका वज़न १२४ कैरट रह गया है। रूस-राज के पास एक और बहुत बड़ा हीरा है। उसका नाम है ग्रेट (बड़ा) मोग़ल। उसका आकार बहुत ही अच्छा है। वज़न उसका २७९ कैरट है। सांसी नामक हीरा भी बहुत दिनों तक रूसराज के पास था। पर १८८९ में उसे एक जैाहरी ने २,१०,००० रुपये में मोल ले लिया। यह हीरा कई आदमियों के पास रह चुका है। यह सांसी नाम के एक आदमी के पास था। इसी लिए उसका नाम सांसी पड़ा। एक दफ़ा उसे सांसी ने राजा तीसरे हेनरी के पास भेजा। जो आदमी उसे लेकर चला, उसे रास्ते में चोरों ने मार डाला। पर उसने मरने के पहले ही वह हीरा निगल लिया था। इससे वह चोरों को न मिला। सांसी ने उसे उस आदमी के मेदे को फाड़ कर निकाल लिया।
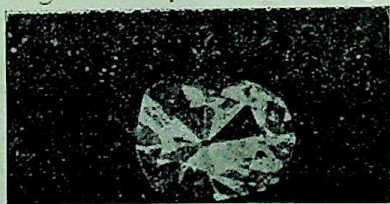
सांसी—४३३ कैरट।

इस तरह कोई चौदह पन्द्रह हीरे इस समय संसार में बहुत अच्छे और बहुत क़ीमती समझे जाते हैं। पर यह नया हीरा द्युति और विशालता में उन सबसे बढ़कर है।

देवनागरी लिपि का उत्पत्ति-काल।

पि शब्द लिप् धातु से निकला है। इस धातु का अर्थ है लेप करना या लोपना। लिख् धातु से भी लिपि का बोध होता है। पर उसका अर्थ है लिखना या अक्षर बनाना। लिप् धातु लिख् से पुरानी जान पड़ती है। पहले लेप-द्वारा लिपि होती रही होगी, फिर लेख, अर्थात् अक्षर-विन्यास द्वारा। जिसका क्षर अर्थात् क्षय न हो उसे अक्षर कहते हैं। अक्षरावली बहुत काल तक बनी रहती है, इससे उसका ऐसा नाम हुआ। जितने अक्षर हैं सब, मुख से निकली हुई वाणी, या ध्वनि, के सूचक चिन्ह हैं। तारबर्क़ी में प्रत्येक अक्षर के लिए एक एक चिन्ह नियत है। उन्हीं चिन्हों के योग से शब्द और वाक्य बनते हैं। उसी तरह मनुष्य के मुख से निकली हुई ध्वनि के चिन्हरूप अक्षर हैं।

अक्षरों का नाम वर्ण भी है। संस्कृत-व्याकरण में वर्ण-शब्द का ही अधिक प्रयोग देख पड़ता है। वर्ण के कई अर्थ हैं। उनमें से एक अर्थ रङ्ग भी है। यथा शुक्ल वर्ण, कृष्ण वर्ण, पीत वर्ण आदि। अक्षरों का नाम वर्ण क्यों हुआ? लिपिकला का प्रादुर्भाव होने के पहले लोग जिस वस्तु का ज्ञान दूसरों को कराना चाहते थे उसका वे चित्र बना देते थे। यदि उन्हें पेड़ लिखना होता था तो वे पेड़ का चित्र बना देते थे, यदि हाथी लिखना होता था तो हाथी का, यदि मनुष्य लिखना होता था तो मनुष्य का। इस तरह की वर्णमाला का प्रचार ईजिप्त अर्थात् मिश्र देश में बहुत समय तक था। वहां की इस प्राचीन लिपि में लिखी गई अनेक शिला-लिपियां योरप के अजायब घरों और पुस्तकालयों में सयत्न रक्खी हुई हैं। ऐसी लिपियां प्राचीन मन्दिरों और समाधियों में अब तक पाई जाती हैं। जैसे जैसे इस तरह की लिपि

अधिक काम में आती गई वैसेही वैसे लोग, जल्दी के कारण, वस्तुओं के चित्र की पूर्णता की तरफ़ कम ध्यान देते गये। जैसे, यदि उन्हें आदमी का चित्र बनाना होता तो वे आदमी के हाथ, पैर, धड़ और सिर का स्थूल आकार मात्र लिख देते। इस तरह अनेक वस्तुओं के चित्र, धीरे धीरे, यहां तक विगड़ गये कि उनके आकार से उनका ज्ञान न होने लगा। यह बात चीन और जापान की वर्णमाला से सिद्ध है। इन देशों की वर्णमालायें भी वस्तु-चित्रण के आधार पर बनी हुई हैं।

कुछ समय तक इस तरह की वर्णमाला से काम चला। पर गुणवाचक शब्द और विशेषण लिखने में गड़बड़ होने लगा। लाल और काले घोड़े को लोग लाल और काले रङ्ग से लिख देते। पर विद्वान् और मूर्ख मनुष्य का चित्र बनाने में उन्हें सुभीता न होता। क्रियाओं के रूप लिखने में भी उन्हें कठिनता का सामना करना पड़ता। इससे प्रयोज्य शब्दों की संख्या जब बढ़ गई तब चतुर मनुष्यों ने सङ्केत रूपी वर्ण बनाये। यद्यपि इस बात का कोई दृढ़ प्रमाण नहीं मिलता कि इस देश में भी कभी मिश्र और चीन की ऐसी चित्ररूपिणी लिपि का प्रचार था, तथापि कई पुरातत्व के पण्डितों का अनुमान है कि था ज़रूर। इसके प्रमाण में वे देवनागरी अक्षरों—विशेष करके अशोक के समय वालों—का सादृश्य रोज़मर्रा की व्यवहारिक चीज़ों और मनुष्य के अवयवों से बतलाते हैं। वे कहते हैं कि रज्जु (रस्सी) का चिन्ह या चित्र र है; पाणि (हाथ के पञ्जे) का चिन्ह प है; और गतिसूचक पैरों का चिन्ह ग है। वर्ण शब्द से यह अनुमान होता है कि भारतवासी मिश्र की रङ्ग बिरङ्गी चित्रलिपि से परिचित थे। ऐसी लिपि में रङ्ग काम आता था। इसीसे जब प्राचीन आर्यों ने अपने यहां लिपि के सङ्केत निश्चित किये, तब उन्होंने उन सङ्केतों का नाम वर्ण और उनके समुदाय का नाम वर्णमाला रक्खा।

योरप के प्रसिद्ध संस्कृतवेत्ता मोक्षमूलर साहब ने संस्कृत भाषा का इतिहास लिखा है। उसमें आपने इस विषय का बहुत विचार किया है कि इस देश की देवनागरी वर्णमाला की सृष्टि कब हुई और उसे भारतवासी आर्यों ने कहां से पाया। आपकी राय है कि यह वर्णावली प्राचीन सेमिटिक अक्षरों से निकली है। पर इस देश के पुरातत्वज्ञ पण्डितों को यह बात मान्य नहीं है। देवनागरी वर्णमाला संसार की समस्त वर्णमालाओं से अधिक पूर्ण, अधिक नियमानुसारिणी और अधिक शृङ्खलाबद्ध है। मनुष्य का मुँह—कण्ठ, तालू, मूर्धा, दाँत, ओंठ और जीभ आदि—अवयवों में विभक्त है। जितने प्रकार की ध्वनियाँ मुँह से निकलती हैं, उन सब को, देवनागरी वर्णमाला के आविष्कर्ताओं ने अपने अपने अवयव के अनुसार, यथानियम, वर्णरूपी चिन्हों से बाँध सा दिया है। इसीसे चाहै जैसी ध्वनि मुँह से निकलै, नागरी में वह तद्वत् लिखी जा सकती है। इसीसे इस वर्णमाला का इतना आदर है। इसीसे यह वर्णमाला संसार की और वर्णमालाओं में श्रेष्ठ है। जो गुण इसमें है वह और वर्णमालाओं में नहीं। अर्थात् कण्ठस्वर के अनुसार जैसी इसके वर्णों की रचना है, वैसी न सेमिटिक की है, न ग्रीक की है, न अरबी की है। इसीसे इस देश के पण्डित पाश्चात्य पण्डितों की पूर्वोक्त उक्ति का प्रचारण-पूर्वक खण्डन करते हैं और कहते हैं कि हमारी वर्णमाला एक मात्र हमारी सम्पत्ति है। उस पर किसी दूसरे का अणु-रेणु भर भी स्वत्व नहीं। यदि उस पर कोई किसी तरह का दावा करै तो वह झूठ। जनरल कनिंहाम आदि कई योरोपियन पण्डितों की भी ऐसी ही राय है।

देवनागरी वर्णमाला भारतवर्ष की सबसे पुरानी वर्णमाला है। आर्यभाषा-सम्बन्धिनी जितनी अन्य वर्णमालायें इस समय प्रचलित हैं, सब उसी से निकली हैं। जिस समय उसकी उत्पत्ति हुई, उस समय उसका वह रूप न था जिस रूप में

हम उसे इस समय देखते हैं। इस संसार में कोई चीज़ स्थिर नहीं; सब में परिवर्तन हुआ करता है। संसार ख़ुदही परिवर्तन-शील है। अतएव भाषा और वर्णमाला भी परिवर्तन के नियमों से ख़ाली नहीं। जिस तरह भाषा हमेशा बदला करती है, उसी तरह लिपि भी बदला करती है। देवनागरी लिपि ने भी अपने जन्म से लेकर आज तक अनेक रूप धारण किये हैं। उसके क्रम-प्राप्त रूपान्तरों का चित्र एक दफ़ा सरस्वती में छप चुका है। प्रसंगवश उसे हम फिर यहां पर प्रकाशित करते हैं।

वेदों का नाम है श्रुति। सुन कर ही उनका ज्ञान पहले होता था। इसीसे उनको श्रुति की संज्ञा मिली। यदि वे लिपिबद्ध होते तो, सम्भव है, उनको श्रुति-संज्ञा न प्राप्त होती। वेदों में लिपि या लिखने का ज़िकर नहीं। इससे विद्वानों का अनुमान है कि वेद-काल में लिपि की उत्पत्ति न हुई थी। वेदों का ज्ञान लोगों को सुन कर ही होता था, लिखी हुई पुस्तक देख कर नहीं। वेदों के एक भाग का नाम है ब्राह्मण। वे गाथामय हैं। उनकी रचना गद्य में है। उनमें भी लिपि-सम्बन्धिनी कोई बात प्रत्यक्ष रीति पर नहीं। पर उनके रचना-क्रम पर विचार करने से जान पड़ता है कि ब्राह्मण-काल में नागरी लिपि की उत्पत्ति हो चुकी थी। पुरातन साहित्य के ज्ञाता कहते हैं कि ईसा के आठ नौ सौ वर्ष पहले ब्राह्मण-काल का आरम्भ होता है। अर्थात् हमारी वर्णमाला को उत्पन्न हुए कोई २७०० वर्ष हुए। परन्तु मोक्षमूलर आदि पाश्चात्य पण्डित इस बात का खण्डन करते हैं। वे कहते हैं कि लिख् या तत्समानार्थक धातुओं से बने हुए कोई शब्द ब्राह्मणों में नहीं पाये जाते। अतएव उस समय लिपि-सृष्टि का प्रादुर्भाव मानना असिद्ध है। इस आपत्ति का उत्तर यह दिया जाता है। वेद के ब्राह्मण-भाग में जो गाथायें हैं, उनमें जगह जगह पर श्रुति के हवाले हैं। प्रसङ्गानुकूल जिन श्रुतियों का उल्लेख किया गया है उनके सिर्फ़ आरम्भ के दो चार शब्द लिखकर उनका स्मरण दिलाया गया है। यदि उस समय ब्राह्मण-ग्रन्थ शृङ्खलाबद्ध होकर न लिखे गये होते तो इस प्रकार गाथाओं के बीच में ऋचाओं के आदि शब्द देकर उनका हवाला न दिया जाता। वेद का संहिता भाग भी उस समय ज़रूर लिपिबद्ध हो गया होगा। क्योंकि जो ग्रन्थ लिखित और विशेष रूप से प्रचलित नहीं होता, उसके वाक्य दूसरे ग्रन्थों में यथानियम नहीं उद्धृत किये जा सकते। फिर वेदों में जितनी पंक्तियां दुबारा हैं, उनकी गिनती शतपथ ब्राह्मण के दसवें काण्ड में है। यदि वेद उस समय लिखित न होते तो उनकी पंक्तियों की गिनती कैसे हो सकती?

और, यदि, ब्राह्मण या संहिता में लिपि-विषयक कोई प्रमाण न भी पाया जाय तो क्या उससे यह सिद्ध हो सकता है कि उस समय लिखने की कला उत्पन्न ही न हुई थी? कोई भी नया आविष्कार होने पर उसका प्रचार होने में देर लगती है। सम्भव है संहिताकाल ही में लिखने की कला लोगों को मालूम होगई हो, पर उन्होंने वेदादि महत्वपूर्ण ग्रन्थों को लिखना न शुरू किया हो। उन्हें वे परम्परा की प्रथा के अनुसार सुनकर ही याद करते रहे हों। जब तक किसी बात के अस्तित्व के प्रतिकूल कोई प्रमाण न दिया जाय, तब तक अनुमान मात्र से उसके होने में सन्देह करना अन्याय है।

मनुस्मृति, महाभारत और अष्टाध्यायी में 'लिख्' धातु से बने हुए शब्द स्पष्ट रीति से पाये जाते हैं। परन्तु संस्कृतज्ञता में प्रसिद्धि पानेवाले पश्चिमी विद्वान् उनके अर्थ के सम्बन्ध में भी तरह बेतरह के कुतर्क करके यह सिद्ध करना चाहते हैं कि उनसे लिपि-कला का अस्तित्व नहीं साबित होता। हम इन विद्वानों पर यह दोष नहीं लगाते कि ये जान बूझ कर अर्थ का अनर्थ करना चाहते हैं। पर यह बात अवश्य है कि ये लोग कभी कभी ऐसी शङ्कायें कर बैठते हैं जिनको सुनकर इस

देश के वैदिक और लौकिक साहित्य के पण्डितों को हँसी आती है। सम्भव है, इस प्रकार का शङ्का-बाहुल्य पाश्चात्य पण्डितों की सूक्ष्मतर दृष्टि और विशेषतर पण्डिताई का फल हो।

मनुस्मृति के दसवें अध्याय का पहला श्लोक यह है—

> अधीयीरंस्त्रयो वर्णाः स्वकर्म्मस्था द्विजातयः।
> प्रब्रूयाद् ब्राह्मणस्तेषां नेतरौ इति निश्चयः॥

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य—तीनों वर्ण वेद पढ़ें, पर पढ़ावें सिर्फ़ ब्राह्मण। इसमें "अधीयीरन्" क्रिया का अर्थ है अध्ययन करें। और अध्ययन, अध्यापन आदि शब्दों से लिखी हुई पुस्तकों का ही पढ़ना पढ़ाना सूचित होता है। परन्तु मोक्षमूलर साहब इस अर्थ को नहीं मानते। वे इस तरह के पदों का अर्थ करते हैं—अधिगत करना, प्राप्त करना, या पाना। अर्थात् उनके मत में मनुस्मृति में भी कहीं लिखने का ज़िकर नहीं। मतलब यह कि उस समय तक भी लिखने की कला का प्रचार या प्रादुर्भाव इस देश में न हुआ था। परन्तु साहब की दृष्टि एक श्लोक पर नहीं गई। वह मनुस्मृति के आठवें अध्याय का १६८वां श्लोक है। उसमें "लेखित" शब्द स्पष्ट-रूप से आया है। देखिए—

> बलाद्दत्तं बलाद्भुक्तं बलाद्यच्चापि लेखितम्।
> सर्वान् बलकृतानर्थानकृतान्मनुरब्रवीत्॥

अर्थात् बलपूर्वक दी हुई, बलपूर्वक उपभोग की हुई, और बलपूर्वक लिखाई हुई चीज़ों को मनु न करने के बराबर मानते हैं। इस श्लोक में 'लेखित' पद के आजाने से मनुस्मृति के ज़माने में लिपिकला के अच्छी तरह प्रचार का बलवान् प्रमाण विद्यमान है।

महाभारत में लिखा है—

> वेदविक्रयिणश्चैव वेदानां चैव लेखकाः।
> वेदानां दूषकाश्चैव ते वै निरयगामिनः॥

जो लोग वेदों की बिक्री करते हैं, अर्थात् कुछ लेकर उन्हें पढ़ाते हैं, वेदों को लिखते हैं, वेदों की निन्दा करते हैं, वे सब नरकगामी होते हैं। मोक्षमूलर साहब कहते हैं कि इस श्लोक में "लेखकाः" पद से लेखकों का अर्थ तो ज़रूर निकलता है; पर महाभारत के समय में वेद लिखे नहीं जाते थे। क्यों? उनके लिखने की मनाई थी? साहब की यह उक्ति एकबारही युक्तिहीन है। यदि उस समय किसीने वेदों को न लिखा होता तो उनके लिखने की मनाई क्यों होती? जिस चीज़ का अस्तित्व ही नहीं, उसके करने का कहीं निषेध होता है? लोग चोरी करते हैं इस लिए पेनलकोड में चोर के लिए दण्ड का विधान किया गया है। यदि कभी चोरी हुई ही न होती तो दण्ड का भय ही क्यों दिखाया जाता? इस श्लोक में वेदविक्रय की जो बात है, उससे दो अर्थ निकलते हैं। एक तो वेतन के रूप में कुछ लेकर वेद पढ़ाना, दूसरा वेद लिखकर लिखी हुई पुस्तक को बेचना। यदि दूसरा अर्थ न भी ग्राह्य हो तो भी लेखकों को नरक में जाने का भय दिखाना। इस बात को निर्विवाद सिद्ध करता है कि लोगों ने वेद को लिखना ज़रूर शुरू किया था। अन्यथा उनके लिए नरकगमन का डर दिखाने की कोई ज़रूरत न थी। जब कोई नई बात निकलती है तब उसके प्रचार में बहुधा बाधा आती है। इस समय भी अनेक नई नई बातें करने की तरफ़ लोगों की प्रवृत्ति है; और कुछ लोग करने भी लगे हैं। परन्तु उन बातों की उपयोगिता का ख़याल न करके पुरानी बातों के पक्षपाती उनका विरोध कर रहे हैं। इस उदाहरण से हम अनुमान कर सकते हैं कि जब पहले पहल लिपि-कला की उत्पत्ति हुई होगी, तब वेदों के समान पवित्र माने गए ग्रन्थों को अपवित्र नहीं, तो तुच्छ, काग़ज़ और स्याही की सहायता से लिपिबद्ध करना लोगों को अच्छा न लगता होगा। अतएव उन्होंने तत्कालीन ग्रन्थों के लिखे जाने का घोर विरोध

किया। बहुत सम्भव है कि मनुस्मृति और महाभारत के बहुत पहले वर्णमाला की उत्पत्ति हुई हो; पर, नई आविष्कृति के कारण, लोगों के विरोध करने पर बहुत दिनों तक उसका प्रचार रुका रहा हो।

बाबू रामदास सेन ने बँगला में ऐतिहासिक-रहस्य नाम की एक पुस्तक तीन भागों में लिखी है। उसमें आपने व्याकरण-प्रणेता पाणिनि के समय आदि का भी विचार किया है। आपका विचार युक्तिसिद्ध और प्रमाणपूर्ण है। आपके मत में पाणिनि का समय ईसवी सन के पाँच छः सौ वर्ष पहले है। पर मोक्षमूलर साहब को पाणिनि के समय में भी लिपिकला के उत्पन्न होने में शङ्का है। इस विषय पर आपने अपने संस्कृत के इतिहास में बहुत कुछ शङ्का-समाधान किया है। साहब को सब शङ्काओं की अवतारणा करने की हम, इस छोटे से लेख में, ज़रूरत नहीं समझते। हम सिर्फ़ दो एक स्थूल बातें कह कर ही साहब की शङ्काओं का समाधान करने की चेष्टा करते हैं। पाणिनीय व्याकरण के आरम्भ ही में अ इ उ ण् और ऋ लृ क् आदि जो माहेश्वर सूत्र हैं उनमें सारी वर्णमाला आगई है। यदि पाणिनि के समय में—समय में क्यों, उससे भी बहुत पहले—वर्णों की सृष्टि न हुई होती तो उनका नाम इन सूत्रों में क्यों कर आता? फिर एक बात और है। जब तक कोई भाषा अच्छी तरह लिखी नहीं जाती तब तक उसका व्याकरण नहीं बनता। संस्कृत व्याकरण में बहुत से नियम ऐसे हैं जो अगले वर्णों से सम्बन्ध रखते हैं। व्यवधान और अव्यवधान का भी उसमें अनेक जगह पर ज़िकर है। ये बातें तभी सम्भव होती हैं जब भाषा लिखित रूप में प्रचलित हो। पाणिनि ने 'ग्रन्थ' शब्द का भी कई बार उपयोग किया है। इससे भी उनके समय में लिपि का होना सिद्ध है। क्योंकि ग्रथन करना अर्थात् गूथना वर्णों के बिना सम्भव नहीं। और ग्रन्थ का अर्थ वाक्यों या शब्दों का गूथना ही है।

ललित-विस्तर एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। वह एक बौद्ध पण्डित का बनाया हुआ है। परलोकवासी डाकृर राजेन्द्रलाल मित्र ने उसे, सम्पादन करके, छपवाया है। डाकृर साहब ने उसकी जो भूमिका लिखी है वह बड़ी ही विद्वत्तापूर्ण है। ७६ ईसवी में इस पुस्तक का अनुवाद चीनी भाषा में हुआ है। बाबू चारुचन्द्र वन्द्योपाध्याय अपने एक लेख में इस पुस्तक का हवाला देकर लिखते हैं कि शाक्यसिंह ने विश्वामित्र नामक एक अध्यापक से लिखना सीखा था और अङ्ग, वङ्ग, मगध, द्राविड़ आदि देशों में प्रचलित कई प्रकार की लिपियां वे लिखते थे। इससे स्पष्ट है कि ईसा के कई सौ वर्ष पहले लिखने की कला का प्रचार इस देश में हो गया था, और एकही नहीं, किन्तु कई प्रकार की लिपियां प्रचलित हो गई थीं। हम यह लेख एक ऐसी जगह लिख रहे हैं जहां ललित-विस्तर अप्राप्य है। इससे हम बाबू चारुचन्द्र वन्द्योपाध्याय के दिये गये प्रमाण को खुद नहीं देख सके। परन्तु हमको बाबू साहब के कथन पर विश्वास है। हम उनके दिये हुये प्रमाण को अमूलक नहीं समझते।

हितोपदेश में है—"पञ्चतन्त्रात्तथान्यस्माद्-ग्रन्थादाकृष्य लिख्यते"। अर्थात् पञ्चतन्त्र तथा और और ग्रन्थों से भी विषयों का संग्रह करके यह पुस्तक लिखी जाती है। फ़ारस के बादशाह नौशेरवां की आज्ञा से हितोपदेश का अनुवाद ५५० ईसवी में, फ़ारसी भाषा में, हुआ है। अतएव आज से कोई १४०० वर्ष पहले लिखने का प्रचार बहुत कुछ हो गया था। हितोपदेश से उद्धृत किये गये पूर्वोक्त वाक्य में "लिख्यते" पद इस की गवाही दे रहा है।

इन प्रमाणों से यह निर्विवाद है कि हमारी देवनागरी लिपि यदि बहुत पुरानी नहीं तो २५०० वर्ष की पुरानी ज़रूर है।

जहांगीर के आत्मचरित का एक नमूना।

देहली के बादशाहों में से किसी किसी ने अपनी दिनचर्य्या भी लिखी है। बाबर, हुमायूं और जहांगीर की दिनचर्य्यायें बहुत प्रसिद्ध हैं। उनसे उनका और उस ज़माने का बहुत कुछ हाल मालूम होता है। इन दिनचर्य्याओं का अङ्गरेज़ी में अनुवाद भी हो गया है। इन्हें आत्म-चरित कहना चाहिए। इनमें से आज हम जहांगीर के आत्म-चरित का कुछ अंश नीचे प्रकाशित करते हैं।

"परमपिता परमेश्वर की कृपा से, ८ जमादि-उस्सानी, १०१४ हिजरी, को आगरा में एक बजे मुझे, ३८ वर्ष की उमर में, राज-सिंहासन प्राप्त हुआ। आगरा से थोड़ी दूर पर एक गांव सिकरी है। वहां शेख सलीम नामक एक फ़क़ीर रहता था। उसीके आशीर्वाद से मेरा जन्म हुआ था। इसलिए मेरे पिता ने मेरा नाम सुलतान सलीम रक्खा। परन्तु मैंने अपने पिता को सुलतान सलीम या महम्मद सलीम नाम से अपने को कभी पुकारते नहीं सुना। वे मुझे हमेशा "शेख़ो बाबा" कह कर पुकारते थे।

"जब मैं बादशाह हुआ तब मैंने अपना नाम बदल डाला। मैंने सोचा कि सुलतान सलीम नाम रखने से रूम के सुलतानों का और मेरा नाम प्रायः एक हो जायगा। इससे नाम में गड़बड़ होने का डर है। बादशाहों का काम मुल्क को लेना और उस पर राज्य करना है। इस कारण मैंने अपना नाम 'जहांगीर' रक्खा। जिस समय मैं युवराज था, मैंने ज्योतिषियों के मुँह से सुन रक्खा था कि मेरे पिता के बाद नूरुद्दीन नाम का एक पुरुष बादशाह होगा। यह बात मुझे याद थी। इससे नूरुद्दीन शब्द को मैंने अपने नाम में जोड़ दिया। अतएव मेरा पूरा नाम हुआ 'नूरुद्दीन जहांगीर'।

"तख़्त पर बैठते ही मैंने सोचा कि सम्भव है मेरे न्यायाधीश प्रजा का उचित न्याय न करें; उनके मुक़द्दमों की उचित जांच न करें; या उनकी शिकायतों को न सुनें। इससे मैंने हुक्म दिया कि सोने की एक ज़ञ्जीर बाहर से क़िले के भीतर लाई जाय। यदि किसीको मेरे अधिकारियों के ख़िलाफ़ कुछ कहना हो, या यदि किसी पर कोई अन्याय हुआ हो, तो वह उस ज़ञ्जीर के एक छोर को खींचै। ज़ञ्जीर चार मन की हो और उसमें कई घण्टे बँधे रहैं। वे क़िले के भीतर रहैं और ज़ञ्जीर का दूसरा छोर बाहर। उसी छोर को खींच कर लोग मुझसे मिलने की इच्छा ज़ाहिर करैं।

"मैंने बारह नियम बनाये और हुक्म दिया कि उनका अक्षरशः प्रतिपालन मेरी सल्तनत में हो। वे नियम ये हैं—

(१) "जिन लोगों के पास जागीरें हैं, उन्होंने अपने फ़ायदे के लिए लोगों की आमदनी पर कर लगा लिया है। यह कर अब न लिया जाय। इस तरह के और भी जितने कर थे, सब मैंने माफ़ कर दिये।

(२) "बहुत से रास्ते ऐसे हैं जिन पर चोरी और डाकेज़नी रोज़ हुआ करती है। कुछ रास्ते ऐसे हैं जिनसे बस्ती बहुत दूर है। मैंने हुक्म दिया कि ऐसे रास्तों के पास अच्छी अच्छी सराय और मसजिदें बनाई जायँ; कुवें खुदवाये जायँ और जहां गाँव न हों वहां गाँव आबाद करके लोगों को खेत और बाग़ वग़ैरह के लिए ज़मीन दी जाय।

(३) "मेरे राज्य में चाहै मुसलमान मरै चाहै काफ़िर, उसकी जायदाद उसके उत्तराधिकारी को मिलै। इसमें कोई अफ़सर या अधिकारी दस्तंदाज़ी न करै। यदि मृत व्यक्ति का कोई उत्तराधिकारी न हो, तो योग्य आदमियों की एक कमिटी बना दी जाय। वह उस जायदाद की देख भाल करै और मुसलमानी धर्म्मशास्त्र के अनुसार उसे काम में लावै—मसजिद और सराय बनवावै, टूटे फूटे पुलों की मरम्मत करावै और तालाब और कुवें खुदवावै।

(४) "मैंने १४ वर्ष की उम्र से अब तक, अर्थात् ३८ वर्ष की उमर तक, शराब पिया है।

तथापि शराब के, और नशे की जितनी और चीज़ें हैं उनके, तैयार करने और बेचने की मैंने मनाई कर दी। चढ़ती जवानी में मैं नशे का यहां तक गुलाम था कि बीस बीस प्याला शराब मैं रोज़ पीता था। कुछ दिन बाद मुझे होश हुआ। तब मैं अपनी इस आदत के छोड़ने की कोशिश करने लगा। सात वर्ष की कोशिश से बीस से पाँच छ प्याले तक शराब पीना मैंने कम कर दिया। मैंने धीरे धीरे शराब पीने के समय में भी फेरफार किया। कभी दिन में, कभी रात में, कभी शाम को मैं पीने लगा। इस तरह करते करते जब मेरी उम्र ३० वर्ष की हुई तब मैं सिर्फ़ रात को शराब पीने लगा। अब मैं सिर्फ़ इसलिए पीता हूं जिसमें जो कुछ मैं खाऊं हज़म हो जाय और भूख अच्छी तरह लगे।

(५) "कोई आदमी किसी दूसरे के घर में ज़बरदस्ती न रहे, और न उसे वह बेदख़ल करसके।

(६) "चाहे कोई जैसा अपराध करे, उसके नाक कान न काटे जायँ, या और इसी तरह की अङ्ग-भङ्ग वाली सज़ा उसे न दी जाय। मैंने ख़ुद भी ईश्वर को साक्षी करके क़सम खाई है कि इस तरह की नाक-कान, हाथ, इत्यादि काटने की सज़ा देकर मैं किसी अपराधी का शासन न करूंगा।

(७) "ख़ालसा ज़मीन के अधिकारी और ज़मीदार वग़ैरह, प्रजा की उसकी ज़मीन से बेदख़ल करके, उसे अपने फ़ायदे के लिए, जोत बो न सकेंगे।

(८) "हर एक परगने में जितने ज़मीदार या ख़ालसा ज़मीन की मालगुज़ारी वसूल करनेवाले हैं, वे अपने इलाक़े में किसी आदमी से विवाह या और कोई सम्बन्ध, बिना मेरे हुक्म, न कर सकेंगे।

(९) "मैंने हुक्म दिया है कि जितने बड़े बड़े शहर हैं, उनमें शफ़ाख़ाने खोले जायँ और अच्छे अच्छे वैद्य या हकीम रखकर रोगियों की दवा पानी का बन्दोबस्त किया जाय। इस काम में जो ख़र्च हो वह शाही मालगुज़ारी से दिया जाय।

(१०) "हर हफ़्ते का पहला दिन विशेष दिन समझा जाय। अपने पिता की तरह मैंने भी हुक्म दिया है कि हर साल मेरे जन्म दिन (१८ रबि-उल-अव्वल) से कुछ दिन तक किसी तरह की हिंसा न की जाय, अर्थात् कोई जीव-जन्तु न मारे जायँ। बृहस्पति को मैं तख़्त पर बैठा हूं और रविवार मेरे पिता का जन्म दिन है। इस कारण हर हफ़्ते बृहस्पति और रविवार को बलिदान का मैंने निषेध कर दिया।

(११) "मैंने हुक्म दिया कि मेरे पिता के समय के जितने अधिकारी, जागीरदार और मनसबदार हैं, सब अपनी अपनी जगह पर बने रहेंगे। उनका काम देखकर कुछ दिन बाद मैंने उनकी तरक़्क़ी कर दी। अहदी लोगों की तनख़्वाह मैंने १० से १५ रुपये कर दी और घर के नौकर चाकरों की १० से १२। पिता के महल में जो स्त्रियां हैं, उनके नौकर चाकरों की तनख़्वाह भी मैंने बढ़ा दी। पिता के समय में सैयद मीरन नामक एक उच्चवंशीय मनुष्य एक धर्म्मसम्बन्धीय पद पर नियत था। मैंने उसे हुक्म दिया कि जो लोग दीन दुखिया और दयापात्र हैं उनको वह हर रोज़ मेरे पास लाया करे।

(१२) "जो लोग बहुत दिन से क़िले और जेल में क़ैद थे उनको मैंने छोड़ दिया है।

"तख़्त पर बैठने के बाद, एक अच्छे दिन, सोने, चाँदी और तांबे के सिक्के जारी किये जाने का मैंने हुक्म दिया। हर धातु के हर सिक्के का मैंने जुदा जुदा नाम रक्खा। हर सिक्के के एक तरफ़ अपने नाम से, और दूसरे तरफ़ ढाले जाने की तारीख़ से, सम्बन्ध रखनेवाला एक एक पद्य मैंने मुद्रित कराया। तख़्त पर मेरे बैठने की तारीख़ को कई आदमियों ने पद्य में वर्णन करने की चेष्टा की। सबके पद्य मैंने देखे। उनमें से अपने पुस्तकालय और चित्रशाला के अध्यक्ष मकतूब ख़ां का बनाया हुआ पद्य मुझे अधिक पसन्द आया।"

वानस्पतिक सज्ञानता ।

क्या इन हरे भरे वृक्षों को, जिनके रङ्ग विरङ्गे वर्ण आँखों को आनन्दित करते हैं, जिनके सुमधुर सौरभ से संसार मोहित हो जाता है, ईश्वर ने वे शक्तियां और गुण नहीं दिये हैं जो अधम से भी अधम पशुओं में पाये जाते हैं? इस प्रश्न के उत्तर में दो विरुद्ध सिद्धान्त माने जाते हैं। एक के अनुसार वृक्षों में प्राण है, ज्ञान है, और मनुष्यों की सी चेतनता है। दूसरे के अनुसार उनमें चेतनता आदि कुछ भी नहीं है।

पुराने समय के लोग प्रायः पहले सिद्धान्त को अधिक मानते थे। पुराणों के अनुसार मनुष्यात्मा वृक्षयोनि को भी प्राप्त हो सकती है। ऋणिया वृक्ष हुआ तो महाजन उसकी छाती चीर कर अपनी जड़ें फैलावेगा। कई पातक ऐसे हैं जिनका करनेवाला वृक्षविशेष का जीवन प्राप्त करेगा। यूनान देश में भी यही सिद्धान्त माना जाता था। इम्पीडाक्लीज़ (Empedocles) के मतानुसार वृक्षों में श्रेष्ठ दरजे का ज्ञान है। एग्रीजेण्टम (Agregentum) के मतानुयायी मानते थे कि (maudrake) तम्बाकू की जातिवाले एक प्रकार के वृक्ष में पूर्ण ज्ञान होता है। छोटा सा भी घाव होने पर यह वृक्ष रोता है—कराहता है। इस वृक्ष की पत्तियां आदि को एकत्र करनेवाले बड़ी सावधानी से इसके पास जाते थे। जादू और टोना भी उन्हें करना पड़ता था, जिससे इस वृक्ष का कराहना उनपर कुछ बुरा प्रभाव न डाल सके। अनेक तरह के टोटके इस वृक्ष के असर से बचने के लिये किये जाते थे। वृक्ष के आसपास तलवार की नोक से तीन लकीरें की जाती थीं। परन्तु मुँह पूर्व ही की ओर रहता था। साथ ही एक आदमी इस वृक्ष के चारों ओर नाचता और मन्त्रोच्चारण करता रहता था। तब वृक्ष में हाथ लगाया जाता था। ऐसेही ऐसे टोटकों के बाद वृक्ष काटा जाता था।

मण्ड्रागोरा (mandragora) नामक वृक्ष पुराने समय में बड़ा प्रसिद्ध था। कहते हैं कि यह वृक्ष सूली ही के स्थान में उगता था। मरे हुओं के शरीर से बनी हुई खाद इसका पोषण करती थी। पुराने लोगों का विश्वास था कि इसको काट कर कोई कुशल से नहीं रह सकता। इसलिए इस वृक्ष को उखाड़ने के लिये भी नाना प्रकार की तरकीबें करनी पड़ती थीं। एक सहल तरकीब यह थी कि एक कुत्ते को लोग वृक्ष की जड़ से बांध देते थे। फिर वे वृक्ष को उखाड़ते थे। ख़याल था कि सारी आफ़त कुत्ते के सिर आवैगी और उखाड़नेवाला साफ़ बच जायगा। उस समय के जादूगर लोग इस वृक्ष को काट छांट कर आदमी के पुतले के रूप में ले आते थे। फिर वे उससे जादू का काम लेते थे। उन लोगों का विश्वास था कि यह वृक्ष पहले मनुष्य के रूप का होता है। फिर वह वृक्षरूप में परिणत हो जाता है। कदाचित् इसी विश्वास के कारण इस वृक्ष का नाम अंथ्रोपोमोर्फोस (anthropomorphos) [Gr. Anthropos, man and morphe, form] पड़गया है। यूनानी भाषा में अंथ्रोपोस मनुष्य को कहते हैं और मोर्फे का अर्थ शक्ल है। इससे इस नाम का अर्थ हुआ आदमी की शक्ल। ग्रीस की पुरानी वृक्षविद्या की पुस्तकों में इस वृक्ष के चित्र भी दिये हुए हैं। उनमें पत्ते आदि तो साधारण वृक्षों के से हैं, परन्तु जड़ की सूरत मनुष्य या स्त्री की सी है।

ऐसे सिद्धान्तों को माननेवाले इस समय भी पाये जाते हैं। एडन्सन साहब (Adanson) का कथन है कि वृक्षों में आत्मा होती है। यही नहीं, यह आत्मा विभाजित भी हो सकती है, क्योंकि एक वृक्ष की शाखा (क़लम) काटकर दूसरी जगह लगाने से जम जाती है। इसीसे यह भी सिद्ध हुआ कि एक वृक्ष में कई आत्मायें होती हैं।

इसी प्रकार आजकल के और भी कई तत्ववेत्ता वृक्षों में ज्ञान—और ऊँचे दरजे का ज्ञान—होना बतलाते हैं। जर्मनी के एक तत्ववेत्ता यहां तक बढ़ गये हैं कि आपने वानस्पतिक मनोविज्ञान की नींव तक डाल दी है।

पुराने वृक्षों की भयावनी सूरत से डरकर पुराने समय के लोग उनकी पूजा करने लगे थे। उनका विश्वास था कि उनके तनों में मनुष्यों की आँख से छिपे हुए देवी देवता वास करते हैं। पुराने वृक्ष का भयावना खोंडर उनके चित्तों में धार्म्मिक भय का सञ्चार करता था। इस समय भी ऐसे विश्वासों ने मनुष्यजाति का पिण्ड नहीं छोड़ा है। जापान की किम्वदन्तियों में कहा जाता है कि कई शताब्दियों के पुराने देवदार नामक वृक्ष (Cedar) के काटने से वृक्ष में से ख़ून टपकने लगता है। इनमें मनुष्य और देवताओं की भांति आत्मायें हैं। कदाचित् इन्हीं विश्वासों के कारण आजकल भी जापान का लकड़िहारा रात को जङ्गल पार करते हुए बहुत डरता है।

भारतवर्ष में भी बरगद, नीम और पीपल की बड़ी महिमा है। इनकी पूजा होती है और इनकी स्तुति के श्लोक पढ़े जाते हैं। देवी देवता और भूत प्रेतों का घर भी इन पर माना जाता है।

इसके विरुद्ध, दूसरा सिद्धान्त अधिक प्रचलित है। वृक्ष निष्प्राण हैं। उनमें चेतनादि कुछ भी नहीं है। उन्हें केवल प्रकृति की कल समझना चाहिए। बस, यही इस दूसरे सिद्धान्त का सार है। डेकार्ट फ़्रांस का एक प्रसिद्ध तत्ववेत्ता होगया है। उसके मतानुसार मनुष्य के अतिरिक्त अन्य पशु कल के समान हैं। उनमें आत्मा नहीं; आत्मा का चिन्ह भी नहीं; इच्छा, द्वेष, सुख, दुख, प्रयत्न और ज्ञानादि कुछ भी नहीं हैं। डेकार्ट के इस सिद्धान्त के माननेवाले भी बहुत हैं। हेल्स (Hales) आदि पदार्थवादियों (naturalists) के मतानुसार भी वृक्ष, प्राकृतिक नियमों के आधीन घड़ी आदि की तरह एक कल है।

परन्तु आज कल वैज्ञानिक संसार में इन दोनों में से एक भी सिद्धान्त नहीं माना जाता। वानस्पतिक जीवन न तो केवल एक साधारण भौतिक रासायनिक आभास (phenomenon) है और न मनुष्यादि की तरह उसमें मानसिक शक्ति ही है। हां, यह सत्य है कि वृक्षों में भी वही प्राणधारक शक्ति (vital force) है जो और सब जीवों में पाई जाती है। जब यह शक्ति जाती रहती है, तब वृक्ष भी मर जाता है। फिर और कोई उपाय उसे बचा नहीं सकता।

विशट आदि तत्ववेत्ताओं के मतानुसार पौधों में भी वही संचालिनी शक्ति और सज्ञानता है जो अनेक जानवरों में पाई जाती है।

बहुत से प्रयोगों के द्वारा यह प्रमाणित हो चुका है कि पौधों को सज्ञानता मानवी चेतनता के समान है। बिजुली से वे मर सकते हैं और तम्बाकू की जातिवाले विषों (narcotic poisons) के प्रयोग से वे ज्ञानशून्य, लक़वे से सताये हुये मनुष्य की तरह संचालनशक्तिविहीन, हो जाते हैं, और मनुष्य ही की तरह वे निर्जीव भी हो जाते हैं। कुछ विशेष जाति के पौधों पर अफ़ीम छिड़कने पर वे सो भी जाते हैं। कई पण्डितों ने प्रयोग द्वारा जाना है कि प्रूज़िक एसिड (Prussic Acid) नामक एक प्रकार का तेज़ाब उतनी ही शीघ्रता से पैाधे के शरीर में विष फैला देता है जितनी शीघ्रता से वह जानवरों का शरीर विषाक्त कर देता है। छुई मुई हाथ लगाते ही सिकुड़ जाती है। वानस्पतिक तन्तु आप से आप संकुचित हो जाते हैं। लेटूस नामक पौधे (Lettuce) की पत्तियों की नोक ज़रा छू दीजिये। आपसे आप उसके रस के दो चार बूँद बाहर निकल पड़ेंगे।

हमारी समझ यह रही है कि प्रयत्न आदि गुण केवल जानवरों ही में पाये जाते हैं। इधर उधर चलना फिरना और हाथ पैर हिलाना केवल जानवरों ही का काम है। यही कारण है कि वानस्पतिक कार्यों की तरफ़ हमारा ध्यान नहीं

गया है। पर यदि हम ध्यान देकर देखें ते पौधों की कार्यकुशलता पर हमें बड़ा आश्चर्य हो। बहुधा पौधों का वानस्पतिक प्रयत्न जानवरों के प्रयत्न से कहीं बढ़कर पाया जाता है। गर्मी के मौसम में तीसरे पहर किसी ग्रीनहाउस (सब्ज़ाघर) में जाइये जहां कैकटस ग्रैंडीफ्लोरस नामक अमेरिका का फूल (Cactus grandiflorus) अपनी लम्बी लम्बी टहनियों का जाल बनाये हुये फैला हो। इन टहनियों पर कहीं कहीं छोटी छोटी नुकीली गांठें आप देखियेगा। इनके सिवा और कोई अद्भुत बात आपको उस समय नहीं देख पड़ेगी। पर ज़रा ठहर जाइये। कोई साढ़े आठ बजने दीजिये। फिर देखिये कि क्या होता है। जब चारों तरफ़ सुनसान होगया, तब उसकी हर एक गांठ सुन्दर पुष्परूप में परिणत होगई। हर एक पुष्प की असंख्य श्वेत और पीत पखुरियां खिल गईं। उसका मुकुट, जिसमें कम से कम कोई पाँच सौ अति सूक्ष्म तन्तु होते हैं, अपने केन्द्र के चारों तरफ़ लहराने लगा। प्रत्येक फूल अति मधुर सौरभ निस्सारित करने लगा। उससे सारा सब्ज़ाघर सुगन्धित हो उठा। परन्तु यह जीवन का आतिशय्य केवल क्षणिक है। दो इञ्च के घेरेवाली गांठ एक फुट व्यासवाले पुष्प में परिणत हो गई सही। परन्तु जैसे यह पौष्प संसार का विचित्राभास कई मिनटों में आविर्भूत हुआ, वैसे ही कुछ ही देर बाद वह लोप भी हो गया। आधीरात के लगभग इस चमकीले और सौरभशाली फूल का प्रत्येक भाग मुर्झाने लगता है और झटपट नष्ट हो जाता है। किस जानवर में इतनी अधिक, पर क्षणभङ्गुर, शक्ति है? इस सुन्दर फूल ने इतनी देर के अल्प जीवनकाल में जो कुछ कर दिखाया, उतना कीड़े मकोड़ों से साल भर में भी सम्पादित हो सकने का नहीं।

छुईमुई जातिवाले वृक्षों में जितनी सज्ञानता और चेतनता पाई जाती है, उतनी औरों में नहीं। इसके किसी एक नन्हें से पत्ते को छू दीजिये। बस, सब पत्ते बन्द हो जायँगे। फिर सारी शाखायें एक एक करके पृथिवी की ओर झुक जायँगी और ऐसा मालूम होगा, मानो पौधे के ऊपर बिजुली गिरी हो। सारा पौधा नई वधू की भांति सहम जायगा। मानो नवागन्तुक के आगे वह लजा रहा हो। इसीलिए ऐसे पौधों का नाम लज्जावती या लाजवन्ती रक्खा गया है।

यदि हम छुईमुई के पौधे की एक ही पत्ती पर एक बूँद तेज़ाब डाल दें तो सारा पौधा संकुचित हो जायगा। यदि उसकी एक ही पत्ती को तपावें तो उसकी सारी शाखायें और पत्तियां झुक जायँगी। आदमी की तरह मानो सारा पौधा अपने दूर से भी दूर अवयव का दुःख अनुभव करता हो। जैसे अँगुली के पोर में कांटा लगने से मनुष्य का समस्त शरीर उछल पड़ता है, वैसे ही इस पौधे की एक पत्ती में अपरिचित आघात या स्पर्श होने से सारा पौधा कँप उठता है। इस पौधे में इतनी सज्ञानता है, जितनी बहुत जानवरों में भी नहीं पाई जाती। अमेरिका के उष्ण देश के मैदानों में जाते हुए एक यात्री ने देखा कि उसके घोड़े की टाप की आवाज़ ही पर सारे छुईमुई के पौधे सिकुड़ गये। मानो डर से वे भयभीत हो गये हों। सूर्य की एक किरण अथवा आकाशस्थित एक छोटे से मेघखण्ड की छाया, इन पौधों में बड़ा परिवर्तन उत्पन्न कर देती है।

इन तजरुबों से मालूम होता है कि वृक्षशरीर और पशुशरीर की बनावट एक सी है। परन्तु वृक्षशरीर में पशुशरीर की भांति तन्तुजाल (Nervous system) है या नहीं, यह प्रश्न अभी तक सन्दिग्ध है। यदि मान लें कि इनमें तन्तुजाल है, तो अच्छी से अच्छी ख़ुर्दबीन द्वारा देखने पर भी जानवरों की नसों के सदृश कोई वस्तु वृक्षशरीर में दिखलाई नहीं देती।

चाहे वृक्षशरीर में तन्तुजाल हो, चाहे न हो, परन्तु इसमें किसीको सन्देह नहीं कि छुईमुई के पौधे में मनुष्य के तन्तुजाल के सदृश कोई न कोई अवयव अवश्य है। इस पौधे पर विषों का असर

होना, उसका अफ़ीम के प्रयोग से सो जाना, बिजुली के आघात से मर जाना, इत्यादि बातें पूर्वोक्त सिद्धान्त को पुष्ट करते हैं।

सबसे अधिक अचम्भे की बात तो यह है कि छुईमुई का पौधा मनुष्यों की तरह अवस्था के अनुसार काम करना भी जानता है। जब धूप लगती है तब हम छाया में खड़े होते हैं। जब पानी बरसता है तब हम घर के भीतर घुस रहते हैं। इसी तरह यह पौधा भी, जिस समय जो आवश्यक होता है, करता है। एक महाशय इस पौधे को अपनी गाड़ी में रख लेचले। जब गाड़ी चलने लगी तब तो मानो उसकी गड़गड़ाहट के डर से पौधा सिकुड़ गया। पर थोड़ी देर बाद यह समझ कर कि वह गड़गड़ाहट कुछ हानिकर नहीं है, वह फिर अपनी प्रकृतावस्था में हो गया। परन्तु फिर जब गाड़ी ठहर गई, तब पौधा सिकुड़ गया, और थोड़ी देर तक सिकुड़ा ही रहा। मानो उसे गड़गड़ाहट के एकाएक बन्द हो जाने से कुछ भय की आशङ्का हुई हो।

बहुत से पौधे जीवनोचित सामग्री के संग्रह करने के लिए बड़े अद्भुत अद्भुत काम करते हैं। लथराई स्कमेरिया (Lathræa squamaria) नाम का एक पौधा होता है। यह साधारण तौर पर पांच या छ इञ्च की उँचाई तक उगता है। एक बार यह पौधा एक खानि के तल में जम गया। पर खानि के भीतर प्रकाश और स्वच्छ वायु कहां? इसलिए इसको खानि के मुँह के ऊपर तक बढ़ना पड़ा। १२० फ़ीट ऊंचा उठकर इसने सूर्य के प्रकाश और खुले मैदान को स्वच्छ वायु का आनन्द लिया*।

सूर्यनारायण दीक्षित।

---

* दि यूनीवर्स (The Universe) नामक पुस्तक के आधार पर लिखित।

"ज़माना" और देवनागरी लिपि।

सरस्वती की किसी संख्या में हमने कानपुर से निकलनेवाले उर्दू के मासिक पत्र "ज़माना" का उल्लेख किया है। उसकी "जौलाई" की संख्या में उसके विद्वान् सम्पादक ने कई "इल्मी नोट्स्" दिये हैं। उनमें आप एक जगह कहते हैं कि "जस्टिस सारदाचरन साहब जज कलकत्ता हाई कोर्ट की तमाम मुल्क के लिए एक रस्मुलख़त क़ायम होने की तजवीज़ कामयाब होते नज़र नहीं आती"। आपकी राय है कि जो लिपि देवनागरी लिपि से कुछ भी समता रखती है, उसी के लिए नागरी लिपि का प्रयोग लाभकारी होगा। अरबी, फ़ारसी, उर्दू, तामील, तिलैगू और कनारी इत्यादि भाषायें यदि नागरी लिपि में लिखी जायँगी तो वे "अपनी असलियत से बहुत दूर जा पड़ेंगी"। क्यों? "एक ज़बान का लफ़्ज़ अपने असली इमला के तग़ैयुर व तबद्दुल से अपने असली मानी अदा करने से क़ासिर हो जाता है"। कोई उदाहरण दीजिए। "इसरार"। इस शब्द में साद भी है और सीन भी। मानी दोनों के अलग अलग हैं।

जिसका देश हिन्दुस्तान है और जिसने हिन्दू-कुल में जन्म लिया है, उसके मुँह से ऐसी राय निकलना बड़े अफ़सोस और बड़े आश्चर्य की बात है। देवनागरी लिपि में लिखीजानेवाली हिन्दी भाषा का "ज़माना" को इतना भी ज्ञान नहीं कि वह अपने एडिटर का नाम तक ठीक ठीक लिख सकता। "ज़माना" के टाइटिल पेज पर लिखा है—"मुरत्तबै दयानरायन निगम बी० ए०"। परन्तु हम लोगों के घर की बेपढ़ी स्त्रियां और बच्चे तक यदि "नारायण" नहीं तो "नारायन" ज़रूर कहते हैं। "ज़माना" की "जौलाई" की संख्या में एक जगह कायस्थ-पाठशाला का इम्ला "कायस्त पाटशाला" लिखा गया है। अतएव जो "ज़माना" अपने एडिटर का, देवनागरी लिपि के अनुसार, नाम तक शुद्ध शुद्ध लिखना नहीं

जानता; जो "ज़माना" कायस्थ-सम्पादित होकर भी कायस्थ को "कायस्त" लिखता है; जो "ज़माना" सारदाचरण (शारदाचरण न सही) ऐसे प्रसिद्ध हिन्दू नाम को "सारधाचरन" लिखता है,—उसे देवनागरी लिपि, या हिन्दी भाषा की योग्यता अथवा अयोग्यता, के विषय में राय देने का क्या मजाज़? जिसे देवनागरी में शुद्ध शुद्ध शब्दज्ञान तक भी न हो, वह यदि कहने लगे कि इस लिपि में "कायस्थ" या कायस्थकुलसूचक "कुलश्रेष्ठ" शब्द ठीक ठीक लिखे ही नहीं जा सकते, तो उसके लिए यह कितने बड़े साहस का काम होगा!

"ज़माना" से हमारी प्रार्थना है कि आपके "जौलाई" के नम्बर में "इसरार" के सदृश और कितने शब्द आये हैं जो हिन्दी में ठीक ठीक नहीं लिखे जा सकते। अथवा इसे जाने दीजिए, आप ऐसे शब्दों की एक सूची छाप दीजिए जिसमें माननीय सारदाचरण उनके नागरी में लिखने की कोई ऐसी युक्ति निकालें जिसमें वे "अपने असली मानी अदा करने से क़ासिर न हो जायँ"। और यदि वे, या उनके पक्ष के समर्थक, कोई ऐसी युक्ति निकाल दें तो क्या आप अपने फ़ारसी-लिपि के पक्षपात को छोड़ने की कृपा करेंगे? "इसरार" नागरी में ठीक ठीक न लिखा जायगा, इससे आप नागरी लिपि को उर्दू लिखने के लायक़ ही नहीं समझते। पर जिस फ़ारसी लिपि में आप लिखे जाते हैं, उसमें आपके एडिटर साहब का नाम जो ठीक ठीक नहीं लिखा जा सकता, उसका भी आपने कभी ख़याल किया है? नहीं किया, तो अब कृपा करके कीजिए, और "नारायण" के ण को फ़ारसी-लिपि में लिखने की कोई तजवीज़ निकालिए। ठीक शब्द "नारायण" है "नरायन" नहीं। क्यों आप हिन्दू नामों की दुर्दशा करते हैं?

"इसरार" का इम्ला उर्दू में दो तरह का है। इसीलिए वह दो मानी देता है। नागरी में उसका इम्ला ठीक न लिखा जायगा। क्योंकि उसमें फ़ारसी के "स्वाद" का समकक्ष कोई वर्ण ही नहीं। इसीलिए नागरी लिपि उर्दू लिखने के लिए नालायक़ ठहरी। पर हम कहते हैं कि जिस अँगरेज़ी का बर्ताव आधी दुनिया में होता है, उसका काम कैसे चलता है? उसमें इयर (Ear), व्यल (Well) पौण्ड (Pound) आदि शब्दों के दो दो क्या और भी अधिक मानी हैं। उनका इम्ला भी एक और उच्चारण भी एक। तिस पर भी अँगरेज़ीवाले, जहां जैसा मौक़ा होता है, वहां उनके वैसेही मानी समझ लेते हैं। शायद उर्दूवालों में किसी की बुद्धि इतनी तेज़ नहीं! इसीसे नागरी लिपि से इतनी प्रतिकूलता!

हम, ज़रा देर के लिए, माने लेते हैं कि देवनागरी में "इसरार" के सदृश शब्दों के लिखने की शक्ति नहीं। यदि उसके इतने ही ऐब के कारण "ज़माना" उसे त्याज्य समझता हो, तो हमारा विनय है कि वह थोड़ा सा स्वार्थ-त्याग (Self-sacrifice) करना भी सीखे। यदि थोड़ी सी तकलीफ़ उठाने से नागरी लिपि का देश भर में प्रचार हो सकता हो तो वह कृपा करके उसे उठाये; देशहित की तरफ़ अधिक ध्यान दे; अपनी तकलीफ़ की तरफ़ कम। थोड़ा छोड़ने से यदि अधिक मिलने की आशा हो तो थोड़े के लिये इसरार करना बुद्धिमान का काम नहीं। फ़ारसी लिपि मुसलमानों की जारी की हुई है। यदि देवनागरी से होनेवाले लाभ की तरफ़ ध्यान न देकर दुराग्रहवश मुसल्मान उसे न छोड़ें तो न सही। हिन्दू क्यों न छोड़ें? यदि "इसरार" या उसके साथी और ऐसे ही शब्द देवनागरी में लिखे ही न जा सकें तो उन्हें न लिखिए। देवनागरी अच्छी तरह सीखिये; कुछ कष्ट उठाइए; फिर ऐसी ऐसी दलीलें करने को आपका जी ही न चाहेगा। फिर आप इसरार को भी ठीक ठीक लिख सकेंगे।

इसी विषय के एक नोट में "ज़माना" के एडिटर साहब लिखते हैं—"जिसका नतीजा एक माहवार रिसाला है जो बँगला, तामिल, तलगू वग़ैरह वग़ैरह ऐसी ज़बानों को, जिनकी माख़ज़

हिन्दी है, हिन्दी हरूफ़ में पेश किया करेगा"। हमारी प्रार्थना है कि "तामिल, तलगू" की माख़ज़ (उद्गम) ते हिन्दी किसी तरह है ही नहीं; वह बँगला की भी माख़ज़ नहीं। बँगला और हिन्दी दोनों की माख़ज़ प्राकृत है। फिर "हिन्दी हरूफ़ कोई हरूफ़ नहीं"। हिन्दी नाम भाषा का है, नागरी नाम हरूफ़ का।

वाल्मीकि-रामायण और बौद्धमत।

वाल्मीकीय रामायण के अयोध्याकाण्ड के १०८वें सर्ग में जाबालि मुनि ने रामचन्द्र से कहा कि आप व्यर्थ क्यों वन को जा रहे हैं? जाइए, अयोध्या में राज्य कीजिए। परलोक को किसने देखा है? इस लोक में, प्रत्यक्ष, जो बात आपको लाभदायक जान पड़े उसे हो कीजिए। इस नास्तिक-मत-विधायक उपदेश को सुनकर रामचन्द्र ने आस्तिक मत का पक्ष लिया और बहुत कुछ कह कर जाबालि की बातों का खण्डन किया। रामचन्द्र का कथन १०९वें सर्ग में है। इस सर्ग में ३९ श्लोक हैं। उनमें से ३४वां श्लोक यह है—

यथा हि चोरः स तथा हि बुद्धस्तथागतन्नास्तिकमत्र विद्धि।
तस्माद्धि यः शक्यतमः प्रजानां स नास्तिके नाभिमुखो बुधः स्यात्।

बुद्ध, अर्थात् बौद्ध, लोग चोर के समान हैं। तथागतों, अर्थात् बौद्धों, को नास्तिक समझना चाहिए। इसलिए बुद्धिमान् को उचित है कि जहां तक शक्य हो वह नास्तिक के सम्मुख न हो। उसका मुँह न देखे। रामायण की टीका में "तथागत" का अर्थ "तत्सदृश" और "नास्तिक विशेष" भी किया गया है। ऊपर के श्लोक के तीसरे चरण का अर्थ किया गया है—"प्रजा के अनुग्रह के लिए जिस बौद्ध का चोर के समान दण्ड किया जाना शक्यतम हो, उसे राजा वैसाही दण्ड दे जैसा चोर को दिया जाता है"। शायद यही अर्थ ठीक हो।

इस श्लोक के सम्बन्ध में सरदारशहर (बीकानेर) के रहनेवाले श्रीयुक्त गणपतिराय वैद्य ने नीचे लिखे हुए प्रश्न किये हैं—

(१) रामचन्द्र को हुए कितना समय हुआ? उनके समय में बौद्ध धर्म्म था या नहीं? यदि नहीं, तो रामचन्द्र ने उसका ज़िक्र क्यों किया?

(२) वाल्मीकीय रामायण कब बनी? रामचन्द्र के समय में या उनसे पीछे? यदि पीछे तो उस समय बौद्धधर्म्म था या नहीं?

(३) बौद्धधर्म्म का प्रचारक शाक्य मुनि (गौतम) था या और कोई? यदि गौतम था तो उसे हुए कितना समय हुआ? पुरावृत्त के पण्डितों ने जो गौतम का जन्म ईसा के ५५८ वर्ष पहले निश्चित किया है, वह ठीक है या नहीं? यदि ठीक नहीं है तो ठीक न होने का प्रमाण क्या है?

(४) पुराणों में रामचन्द्र विष्णु के सातवें और बुद्धदेव नवें अवतार माने गये हैं। वहां बुद्ध से मतलब गौतम बुद्ध से है या और किसी से? यदि और किसीसे है तो किससे और वह कब हुआ?

(५) शङ्कराचार्य्य, जिनका बौद्धों से वाद-विवाद हुआ था, कब हुए?

(६) पूर्वोक्त श्लोक वाल्मीकि का है या प्रक्षिप्त है? यदि प्रक्षिप्त है तो उसके मिलाने का कारण क्या?

इन प्रश्नों का यदि कोई सप्रमाण और सयुक्त उत्तर भेजेगा तो हम उसके लेख को सहर्ष प्रकाशित कर देंगे। पर लेख बहुत बड़ा न होना चाहिए।

पुस्तक-परीक्षा।

बाबू काशिनाथ खत्री की पुस्तकें। परलोकवासी बाबू काशीनाथ के पुत्र ने अपने पिता की बनाई हुई कई किताबें हमारे पास समालोचना के लिए भेजी हैं। उनमें से (१) नीत्युपदेश, (२) भारतवर्ष की विख्यात रानियों के चरित्र और (३) तीन मनोहर इतिहासिक (?) रूपक भी हैं। पहली पुस्तक

अंगरेज़ी के "सेल्फ कल्चर (Self-culture) का अनुवाद है। इसमें नैतिक, शारीरिक ग्रैार बुद्धि-विषयक उन्नति करने के साधनों का वर्णन है। पुस्तक बहुत ग्रच्छी है; सबके पढ़ने लायक है। सेल्फ़ का ग्रर्थ है ग्रपना ग्रैार कल्चर का उन्नति, वृद्धि या सुधार। ग्रतएव नहीं मालूम ग्रनुवादक महाशय ने सेल्फ कल्चर का ग्रनुवाद नीत्युपदेश किस तरह किया? बाक़ी दो पुस्तकें भी ग्रच्छी हैं। वे विशेष करके स्त्रियों के लिए बहुत लाभकारी हैं। तीनों पुस्तकें बाबू केशवचन्द्र खत्री, सरसा, इलाहाबाद, को लिखने से मिलती हैं।

❀

श्रीरघुनाथशतकम्। पिपरपाती (गया) के रहने वाले पं॰ गङ्गाधर शर्म्मा ने इसे बनाया है ग्रैार ग्रापही ने "परिश्रम पूर्वक संशोधन करके" (सपरिश्रमं परिशोध्य) छपाया है। ग्रापने एक ग्रैार भी कृपा की है। ग्रापने इस शतक की एक ग्रालोचना भी खुदही लिख भेजी है। वह इस तरह है—

"१९६० सम्वत् में मैंने एक संस्कृत काव्य 'रघुनाथ शतक' नामक पुस्तक बनाया था, जिसको मुद्रित करा कर प्रायः सभी भारतवासी के घर में १-२ प्रति बिना मूल्य भेज दिया था, जिसका समालोचना का धूम एक बार वेंकटेश्वर, हिन्दीवङ्गवासी इत्यादि समाचारपत्रों में मचा था। उसीके द्वारा उस पुस्तक के चाहनेवालों के पत्र करीब करीब ५०-६० रोज़ हमें पढ़ना पड़ता था। ग्रस्तु मैंने उसी पुस्तक को वर्तमान महाराजाधिराज रीवांधिपति के सेवामें उपहार-रूपेण भेजा। जिसके बदले महाराज ने 'राम-स्वयम्वर' भेज कर, ग्रपनी उदारता तथा गुण-शालिता ग्रैार कविगुणदर्शिता का परिचय दिया था। उसके लिए महाराज को धन्यवाद है। यह वही पुस्तक 'रघुनाथ शतक' है। इसका एक प्रति ग्राप के पास भी भेजता हूं। योग्य समालोचना ग्रपनी पत्रिका में करके ग्रनुगृहीत कीजियेगा।"

हम भी ग्राप ही की लिखी हुई समालोचना प्रकाशित किये देते हैं। ग्रापने बड़ी कृपा की जो समालोचना लिखने की मेहनत से हमें बचा लिया। इस लिए हम ग्रापके कृतज्ञ हैं। ग्राप कहते हैं कि इस पुस्तक की एक दो प्रतियां प्रायः सभी भारतवासियों को ग्रापने भेजी हैं। नहीं मालूम काशी के सिद्धेश्वर प्रेस ने कै करोड़ कापियां इसकी छापी हैं! यह भी नहीं मालूम कि सं॰ १९६० से ग्रब तक (श्रावण शुक्ल, १९६२ तक) हमारी गिनती भारतवासियों में कवि जी ने क्यों नहीं की! पर तीस चालीस करोड़ कापियां बांटने में दो तीन वर्ष से कम समय भी तो नहीं लग सकता।

❀

खड़ीबोलीपद्यादर्श। श्रीश्यामजी शर्म्मा काव्यतीर्थ-कृत। दाम ४ ग्राने। विनय, वसन्त, हर्ष, गुलाब, ग्राशा, वर्षा, इत्यादि २६ विषयों पर बोल चाल की भाषा में कविता। इस पुस्तक की भूमिका पढ़ने लायक़ है। उसमें बोल चाल की भाषा की कविता की ग्रावश्यकता दिखलाई गई है। पण्डित श्यामजी शर्म्मा ने इसी तरह की भाषा में एक २२ सर्ग का वृहत् काव्य बनाया है। उसका नाम है "श्यामहर्षवर्द्धन"। पर छपाई में रुपया ख़र्च होता है। उसके बिना यह काव्य ग्रभी तक बे-छपा हुग्रा पड़ा है। बोल चाल की भाषा में कविता करनेवालों में शर्म्मा जी ने पहला नम्बर बाबू हरिश्चन्द्र को दिया है, दूसरा पण्डित ग्रम्बिकादत्त व्यास को ग्रैार तीसरा पण्डित श्रीधर पाठक को। चैाथा शायद उन्होंने ग्रपने लिए रक्खा होगा। क्योंकि पण्डित ग्रम्बिकादत्त के समय में, ग्राप कहते हैं, ग्राप कालेज में थे। इस पुस्तक की कविता के विषय ग्रच्छे ग्रैार मनोरञ्जक हैं; पर, कविता सरस नहीं। बोलचाल की भाषा की कविता का ग्रभी ग्रादर नहीं है। उसे देखते ही लोग नाक भैांह सिकोड़ने लगते हैं। इससे ऐसी कविता जहां तक रसवती ग्रैार हृदयग्राहिणी हो ग्रच्छा है। कविता ग्रच्छी होने से, लोग उसे ज़रूर

पढ़ेंगे और धीरे धीरे व्रजभाषा की कविता के पक्षपात को छोड़ देंगे। हम पं० श्यामजी के उद्योग और उत्साह की प्रशंसा करते हैं। आशा है, यदि अभ्यास बना रहा, तो कुछ दिनों में आप बहुत अच्छी कविता करने लगें। आपकी कविता में अभी कई तरह के दोष देख पड़ते हैं। आपको उन्हें दूर करना चाहिए। नमूने के तौर पर आपकी कविता का एक दूषित स्थल—

एक दिवस कुरसी पर बैठा
　　जब मैं पैर हिलाता था।
इधर उधर स्वभावही से
　　पुनि आसमान को देखाता था॥

इसमें दूसरी पंक्ति सदोष है। उसका वज़न ही ठीक नहीं।

❀

जोज़ेफ़ विलमट, पहला खण्ड। अँगरेज़ी के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक रेनल्ड ने जोज़फ़ विलमट नाम का एक उपन्यास बनाया है। यह उसीका अनुवाद है। उपन्यास पूरा नहीं है; यह उसका पहला भाग है। इसके अनुवादक और प्रकाशक पं० चतुर्भुज औदीच्य और यशोदानन्दन अखौरी हैं। दाम आठ आना है। यह बहुत ही मनोरञ्जक उपन्यास है। इसमें यह विशेषता है कि पात्रों के चरित में अति-रञ्जना बिलकुल नहीं है। इसके नायक विलमट का चरित मनुष्यमात्र के लिए आदर्शरूप है। इसमें लण्डन के बदमाशों और भिखारियों का चरित बड़ी योग्यता से चित्रित किया गया है। अमीर आदमियों के घर की अनाचारता का भी इसमें अच्छा चित्र है। उपन्यास होने ही के कारण यह उपेक्ष्य नहीं। यह मोल लेने, पढ़ने और उपदेश ग्रहण करने लायक़ है।

❀

रसराजमहोदधि। यह वैद्यक ग्रन्थ है। इसके चार भाग हैं। उनमें से दूसरा, तीसरा और चौथा भाग कल्याण (बम्बई) के लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर प्रेस से हमारे पास समालोचना के लिए आये हैं। इसी प्रेस ने इस पुस्तक को छपाया है। और यही बेचता है। यह प्रायः संग्रह-ग्रन्थ है। इसके कर्ता पं० महावीरप्रसाद मालवीय, वैद्य, हैं। यह हिन्दी में है। यह संग्रह ग्रन्थ है। अर्थात् इसमें चिकित्साविषयक बातें और ग्रन्थों से उद्धृत करके लिखी गई हैं। पर एक जगह पुस्तककर्ता ने भूमिका में लिखा है कि इसमें नई कल्पनायें भी हैं। यह भी सच है, क्योंकि उसमें प्लेग की चिकित्सा का भी विधान है। चिकित्साशास्त्र से सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तकों की आलोचना सिर्फ़ चिकित्सक ही अच्छी तरह कर सकते हैं। हम इतना ही कह सकते हैं कि इसकी रचना का क्रम, विषयों की विवेचना और भाषा अच्छी है।

❀

प्रभातसुन्दरी। यह उपन्यास है। बँगला के "कालापहाड़" नामक उपन्यास का यह अनुवाद है। अनुवादक इसके पं० मुरलीधर शर्म्मा, सोंधी टोला, लखनऊ, हैं। दाम ।॥) पृष्ठ १८१। मुसलमानों के द्वारा उड़ोसा-विजय के आधार पर इस पुस्तक की रचना हुई है। इसलिए इतिहास और गल्प—दोनों—इसकी कथा में मिश्रित हैं। पुस्तक के नायक प्रभात का स्वदेशप्रेम प्रशंसनीय है। इस उपन्यास से और भी कई तरह की शिक्षायें मिल सकती हैं। पढ़ने में मन लगता है। पर भाषासम्बन्धिनी अशुद्धियां बहुत हैं। रचना भी कई जगह अस्वाभाविक है। उदाहरण के लिए मेले में, हज़ारों आदमियों के सामने, प्रभात का अपनी प्रेमपात्री सुन्दरी के सिर को अपनी गोदी में रखना और फिर दोनों का एक दूसरे को देखते हुए आंसू बहाना।

❀

प्रेमेश्वरविरददर्पण। बाबू रामनारायण ब्रह्मभट्ट (बछरावां, रायबरेली) कृत। इसमें द्रौपदी के चीर-हरण की लीला का वर्णन है। पुस्तक पद्य में है। कुछ पद्य प्राचीन हैं, कुछ कविजीने स्वयं बनाये हैं। कोई कोई पद्य अच्छे हैं। सूरसागर में इस विषय के कई गीत हैं। वे करुणरस में डूबे हुए

हैं। नहीं मालूम इस पुस्तक में वे गीत क्यों नहीं रक्खे गये? संग्रह ही करना था तो संग्रहकार ने उनको क्यों छोड़ दिया?

❀

उन्नति का द्वार। मूल्य २ आने। लेखक, काशी के बाबू दुर्गाप्रसाद, बी० ए०, के विद्यार्थी सत्यदेव हैं। यह एक चालीस पृष्ठ की छोटी सी पुस्तक है। पर बातें इसमें बहुत अच्छी कही गई हैं। उन सबका निष्कर्ष यह है कि सदाचार ही उन्नति का मूल है। इसमें जगह जगह पर अङ्गरेज़ी और संस्कृत के विद्वानों के अच्छे अच्छे वाक्यों के अवतरण हैं। अँगरेज़ी के तो इतने हैं कि प्रायः एक भी पृष्ठ उनसे खाली नहीं।

❀

मूर्तिमार्तण्ड। श्री प्रियतमलाल-गोस्वामि-कृत। राजपूत एंग्लो-ओरियण्टल प्रेस, आगरा, में मुद्रित। दाम ॥) इसका विषय इसके नाम ही से झलकता है। इसमें श्रुति, स्मृति, उपनिषद् और गीता आदि के प्रमाणों से मूर्तिपूजा शास्त्रसिद्ध साबित की गई है।

❀

राधाकृष्ण का फ़ोटो। जयपुर में रंगीन चित्र अच्छे बनते हैं। एक चित्रकार ने राधाकृष्ण का एक बड़ा चित्र बनाया है। चित्र आदमी के क़द का है। लक्ष्मीनारायण फ़ोटोग्राफ़र ने उसीका फ़ोटो लिया है। उसे ही पं० रामनिवास भात्रा, गंगापोल, जयपुर, ।) में बेचते हैं। फ़ोटो कार्ड साइज़ का है। विक्रेता महाशय कहते हैं कि उनके पास बड़े आकार के भी फ़ोटो हैं। दाम उनके आकार के अनुसार हैं। आपकी राय है कि--"आज कल के लोग गृहशोभा में जो मेमों की तसवीर लटकाते हैं उनके बदले यह सबही तरह से उपयोगी है"। फ़ोटो में कदम्ब के नीचे राधाकृष्ण के आश्लिष्ट रूप का दृश्य है।

भाग ६] नवम्बर, १९०५ [संख्या ११

विविध विषय ।

इस महीने युवराज "प्रिंस आफ़ वेल्स" और युवराज्ञी "प्रिंसेस आफ़ वेल्स" का आगमन इस देश में है। इसलिए उनके चित्र हम इस संख्या के साथ सरस्वती के पाठकों को भेंट करते हैं।

***

अध्यापक जगदीशचन्द्र वसु ने विज्ञानशास्त्र में बड़ा नाम पैदा किया है। उन्होंने जड़ में भी जगदीश की सत्ता का सबूत देकर संसार को चकित कर दिया है। अब उन्होंने एक नया आविष्कार किया है। उन्होंने साबित किया है कि प्राणिमात्र की तरह पौधों में सचेतनता ही नहीं है, किन्तु उनमें सुख-दुःख के अनुभव करने की शक्ति भी है। उनमें नाड़ियां हैं; हृदय है; ज्ञानतन्तु हैं। अतः उनको मनुष्य की तरह प्रायः सब तरह के भले-बुरे भावों का ज्ञान होता है। उनको काटने-छांटने से पीड़ा होती है और अच्छी तरह रखने से सुख। पौधों की सज्ञानता के विषय में एक लेख सरस्वती की गत संख्या में प्रकाशित हो चुका है।

***

बनारस के पादरी एडविन ग्रीव्स साहब ने जो नई तरह के कैथी-अक्षर निकाले हैं, उनको आपने एक छोटी सी, आठ नौ पृष्ठ की, पुस्तक के आकार में अलग प्रकाशित किया है। इसमें वर्णमाला और संयुक्त वर्णों के सिवा दो तीन छोटे छोटे सबक़ भी हैं। शुरू में एक छोटी सी भूमिका भी अङ्गरेज़ी में है। इसे कैथी की प्राइमर कहना चाहिए। आध आने का टिकिट पाने पर पादरी साहब इसे मुफ़्त देते हैं। हमारी राय में आपकी इस कैथी-लिपि की, इस समय, कोई ज़रूरत नहीं।

***

एक तरफ़ देश के हितचिन्तक हिन्दुस्तान भर में एक-भाषा और एक-लिपि के प्रचार की कोशिश कर रहे हैं। दूसरी तरफ़ कुछ लोग अपने अपने प्रान्त की बोलियों को तरक़्क़ी देने के इरादे से नये नये काम कर रहे हैं। गत श्रावण से

"मिथिलामोद" नाम का एक मासिक पत्र बनारस से मैथिली बोली में निकलने लगा है। मानों, मिथिला वालों के लिए हिन्दी कोई विदेशी भाषा हो; उसे वे बिलकुल ही न समझ सकते हों। यदि इसी तरह, भोजपुरिया, बनारसी, बैसवारी, बुंदेलखण्डी और अवधी आदि भिन्न भिन्न बोलियों में पुस्तकें, अख़बार और मासिकपत्र निकलने लगेंगे, तो बेचारी हिन्दी कहां जायगी, नहीं मालूम। "मिथिलामोद" में संस्कृत, हिन्दी और मैथिली में समस्यापूर्तियां भी छपती हैं। महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी भी इसकी समस्याओं की पूर्तियां करते हैं। इस पत्र के पहले अङ्क के "अद्भुत-समाचार" नामक लेख की नक़ल हम नीचे देते हैं। उससे पाठक जान जायँगे कि मैथिली बोली कैसी होती है।

"अद्भुत-समाचार"।

"गोरखपुर-सेमरी गाम क मालिक गोरखपुरवासी मुखतार रघुनाथसहाय कैँ राति मैँ स्वप्न भेलन्हि जे तोँ शिवालय बनबाबह। ओ व्यक्ति शिवालय बनबौलन्हि ओ शिवालय क समीप मैँ एक पोखरि कोड़ौलन्हि। गत आषाढ़ शुक्ल ७ रवि दिन ५ बजे पोखरि क पानि मैँ रूपा क थारी सन एक वस्तु बहार भय पुन ओही में डूबि गेलैक। १ घण्टा क अनन्तर ४ वा ५ हाथ जल दूध सन भय ताहि स्थान सँ प्रायः १ सय पैर नाम एक हाथ चाकर दूध क रास्ता बनि गेलैक। दोसर दिन प्रातःकाल ८ बजे ताहि स्थान में बेलपात बहार भेलैक। अनन्तर एक शिवलिङ्ग पानि क उपर आबि पुन डूबि गेलाह। १ घण्टा क अनन्तर बहुत पैघ बेली क फूल पानि सँ बाहर भय आब लागल। ताहि समय पोखरि क पानि १ हाथ बढ़ि गेलैक। फूल अनेक बेरि पानि सँ बहार भय २ डूबि गेलैक। जखन फूल बहराइत छलैक पोखरि भरि महामहि होइत छलैक। ई आश्चर्य देख क हेतु बहुत लोक एकट्ठा भेल। भीड़ मेँ रुँ एक ब्राह्मण पानि में पैसि ताक लगलाह जनिका एक विलक्षण नर्मदेश्वर का मूर्त्ति भेटलथिन्ह। जे एक भाग मेँ बाघ क चाम, जटा सँ गङ्गा बहराइत यज्ञोपवीत सँशोभित छथि। एक त्रिकोण माथ मेँ रामानन्दी चानन ओ कारी जटा एहि सभहि सँ सुशोभित मूर्त्ति आषाढ़शुक्ल १३ शुक्र दिन शिवालय मेँ स्थापित भेलाह। मूर्त्ति क नाम श्रीजलेश्वरनाथ।"

क्या इसमें कही गई बात सच है?

* *
*

अमेरिका के पुरुषार्थी पुरुष अब बड़े बड़े मकानों को जड़ से उखाड़ कर दूसरी जगह रख देने लगे हैं। जब किसी कारण से कोई जगह किसी को पसन्द नहीं आती तब वह वहां पर बने हुए अपने मकान को भी जहां वह जाता है उठा ले जाता है। वहां की एक रियासत का नाम डकोटा
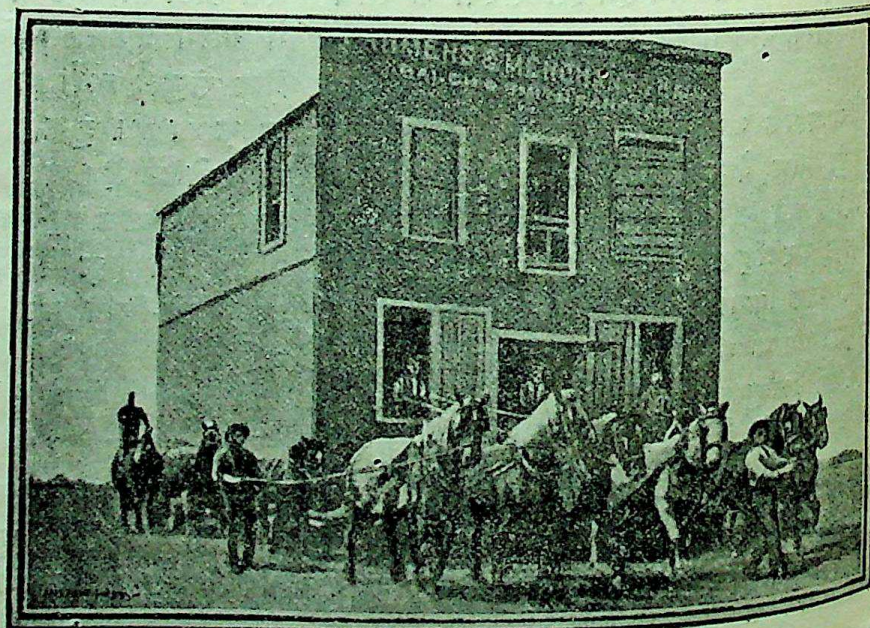
है। वहां एक बैंक था। कुछ दिन हुए वह वहां से उखाड़ कर १५ मील दूर एक दूसरी जगह पर रख दिया गया। बैंक की इमारत उठा कर पहले बड़ी बड़ी गाड़ियों पर रक्खी गई। फिर वे गाड़ियां बेलनों पर चढ़ाई गईं। गाड़ियों में आगे और दाहने बायें बहुत से घोड़े जोत दिये गये। बस, उन्होंने खींच कर बैंक को इच्छित स्थान पर पहुंचा दिया। याद रखिए बैंक की इमारत ख़ाली नहीं थी। उसकी चीज़ वस्तु सब उसीके भीतर थी। यही नहीं, बल्कि उसके कुछ कर्म्मचारी भी यह तमाशा देखने के लिए उसके भीतर थे। कानसस रियासत की कचहरी भी इसी तरह १० मील दूर हटा दी गई। पर इस बार घोड़ों से नहीं काम लिया गया; यञ्जिन लगाया गया। बेलनों के ऊपर गाड़ियां रखकर इमारत पहले उन पर लादी गई। फिर रेल की पटरी बिछाई गई। उसी पटरी पर गाड़ियां चढ़ा दी गईं और यञ्जिन उन्हें खींच ले गया। एक दिन में यह सब हो गया और न कोई दुर्घटना हुई, न कुछ नुक़सान।

***

बनारस के भारतजीवन प्रेस का एक सूचीपत्र हमारे पास पहुँचा है। उसके भीतर छपे हुए काग़ज़ के तीन टुकड़े हैं। एक में कथासरित्सागर का विज्ञापन है; दूसरे में "भारतजीवन कारख़ाना" की घड़ियों का विज्ञापन है; पर तीसरे में जो कुछ है, कहते नहीं बनता। उसके ऊपर-नीचे अँगरेज़ी में "Strictly private" (अत्यन्त गोपनीय) और दाहने-बांये "For only private use" (सिर्फ़ गुप चुप इस्तेमाल के लिए) छपा हुआ है। विज्ञापन के नीचे "रामकृष्ण वर्म्मा, भारतजीवन प्रेस, बनारस" विराजमान है। अब तक अनेक प्रकार के व्यवसाय करके भारतजीवन की मनस्तुष्टि नहीं हुई; इस लिए अब गोपनीय गुटिका और तेल बेचने की आपने ठानी है। इस विज्ञापन को पढ़ कर बड़ा अफ़सोस हुआ। संसार में धनैषणा एक ऐसी चीज़ है कि जिसके कारण कोई कोई मनुष्य अपनी प्रतिष्ठा और गौरव को भी कभी कभी भूल जाते हैं। वाणिज्य-व्यवसाय करना बुरा नहीं; पर ऐसा व्यवसाय कोई करै क्यों जिसके विज्ञापन में "अत्यन्त गोपनीय" लिखने की ज़रूरत पड़ै? और करै तो खुले ख़ज़ाना करै।

***

इलाहाबाद, म्योर सेंट्रल कालेज, के संस्कृताध्यापक श्रीगङ्गानाथ झा, एम० ए०, "रामायण और बौद्धमत" के विषय में यों लिखते हैं—

"वाल्मीकि-रामायण और बौद्धमत के प्रसङ्ग हमको इतना ही कहना है कि आजकल के प्रसिद्ध बौद्धमत के प्रवर्तक जो शौद्धोदनि बुद्ध हुए हैं उनका समय जीज़स से पहिले पांच सौ कई वर्ष

माना जाता है। परन्तु इनके पहिले भी बहुत से 'बुद्ध' हो गये हैं। यह बात बौद्ध 'जातकों' में प्रसिद्ध है। इनके समय के प्रसङ्ग कुछ कहना वृथा कपोलकल्पना होगी। इससे रामचन्द्रजी के बौद्ध-मत चर्चा करने में किसी प्रकार का दोष नहीं पड़ता"।

* * *

सरस्वती के विषय में उर्दू के सुलेखकों और मासिक पत्रों की भक्ति प्रतिदिन बढ़ती जाती है। कोई उसकी गुप्त पूजा करते हैं, कोई प्रकट। पर गुप्त-दान की तरह गुप्त पूजा का माहात्म्य अधिक है। इससे उसीकी तरफ़ लोगों का विशेष झुकाव है। ऐसे गुप्तागुप्त भक्त कितने हैं, ठीक मालूम नहीं। किसी किसी की भक्ति तो इतने ऊंचे दरजे तक पहुंच गई है कि भेद-भाव बिलकुलही जाता रहा है। वे सरस्वती की चीज़ को सर्वथा अपनी समझने लगे हैं। "ज़िन्दा-दिल" नाम का उर्दू-मासिक पत्र, ९ महीने से, कानपुर से, निकलने लगा है। वह बाबू "नानकपरशाद" बी० ए० के एहतमाम से प्रकाशित होता है। श्रीयुक्त "अम्बिका परशादसिंघ वासिल बनारसी" इस जीते जागते दिल वाले पत्र के एक लेखक हैं। आप सरस्वती के अनन्य और भेदभाव-रहित भक्त हैं। इस पत्र के सेप्टेम्बर के अङ्क में आपका एक लेख छपा है। लेख का नाम है "हमारा जिस्म।" यह लेख एप्रिल १९०४ की सरस्वती में प्रकाशित, श्रीयुत महेन्दुलाल गर्ग के "हमारी देह" नामक लेख की नक़ल है। विशेषता इसमें इतनी ही है कि संस्कृत-शब्दों की जगह फ़ारसी-अरबी शब्द रख कर भाषा उर्दू महाविरे की कर दी गई है; जो शब्द समझ में नहीं आये वे या तो छोड़ दिये गये हैं या उनका अनुवाद कुछ का कुछ कर दिया गया है; और कहीं कहीं पर, विशेष करके जहां हिन्दुसे थे, और भी कई ग़लतियां होगई हैं। इसके कहने की ज़रूरत नहीं कि भेद-भाव-हीन भक्ति होने के कारण, लेखक ने सरस्वती की चीज़ अपनी ही समझ कर, सरस्वती का नाम बतलाने की तकलीफ़ नहीं उठाई। सरस्वती को सर्वथा अपनी ही समझनेवाले इन भले मानसों को उनका यह अपूर्व भक्ति-भाव मुबारक हो! "आर्य्य-समाचार" भी कानपुर से उर्दू में निकलता है। उसके गत अङ्क में सरस्वती के "प्रतिभा" नामक लेख का रूपान्तर फ़ारसी अक्षरों में छपा है। पर लेखक, बाबू खुशीलाल वर्म्मा, ने सरस्वती का स्मरण कर लिया है। मालूम होता है, आपको ऊंची भक्तिवाले सम्प्रदाय में जाना पसन्द नहीं।

श्री आत्मानन्द स्वयंप्रकाश सरस्वती।

केरले सशलग्रामे विप्रपत्न्यां मदंशतः।
भविष्यति महादेवि शंकराख्यो द्विजोत्तमः॥

शङ्करदिग्विजय।

उक्त श्लोक यद्यपि शिवमूर्ति श्रीशङ्कराचार्य्य के सम्बन्ध में है, तथापि उसे हम इस लेख के सिरे में दिये जाने के लिए अनुकूल पाते हैं। पुराण-प्रख्यात पवित्र मलय-भूमि ही केरल प्रान्त है, जिसका वर्तमान नाम कनारा है और जिसमें प्राचीन काल में कदाचित् मलाबार देश भी समाविष्ट था। प्रसिद्ध अगस्तकूट से जन्मी हुई ताम्रपर्णी नदी के तट पर वर्तमान् तृणवल्ली ज़िले में सशल ग्राम है, जो परम कर्म्मठ और धर्मिष्ठ ब्राह्मणों की बस्ती है। उसीमें श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य अष्टाङ्गयोगी श्री-आत्मानन्द स्वयं-प्रकाश सरस्वती का जन्म हुआ था। इनका पूर्व नाम "शङ्कर" था*।

* दक्षिण में समय समय पर अनेक विद्वान् महात्मा और योगी होते आये हैं। उस दिन हमने एक मराठी मासिक पुस्तक में पढ़ा कि धारवार ज़िले के हावेरी गांव में, कुछ दिन हुए, एक योगी ने प्रायः एक महीने की समाधि, एक कोठरी के भीतर, लगाई। उसमें किसी चीज़ के आने जाने का मार्ग न था। समाधि खुलने पर देखा गया कि योगी के केश बिलकुल न बढ़े थे। पर शरीर की कांति विशेष तेजःपुञ्ज थी। स० सं०।

गत ग्रीष्मकाल में एक रात को हमको समाचार मिला कि गङ्गा-किनारे "भगवतदास के घाट" पर एक योगी पधारे हैं, जो अष्टाङ्गयोगी भी हैं, और राजयोगी भी। यह समाचार हमको उस समय मिला जब हम "गीतागोष्ठी" में बैठे हुए वेदान्त-विषय ही का विचार कर रहे थे। तत्काल ही ऐसे महात्मा के दर्शन के लिए उत्कण्ठित होकर और उपस्थित मित्रों समेत चल कर हम उक्त घाट पर पहुँचे। हमने देखा कि स्वामीजी समाधि की अवस्था में विराज रहे हैं। उस अवस्था के दर्शन से हम लोगों को जो हर्ष हुआ वह अकथनीय है। उस समय वह घाट प्रायः निर्जन था। इसीलिए स्वामी जी ने खुले स्थान में समाधि लगाने में कोई हानि न समझी थी। परन्तु दूसरे दिन से वहां दर्शकों की भीड़ होने लगी और स्वामी जी समाधि के लिए एकान्त में बैठने लगे, जिससे उस अवस्था का प्रत्यक्ष दर्शन सर्वसाधारण को अलभ्य हो गया; क्योंकि समाधि का लगाना एकान्त ही के लिए विहित है।

स्वामी जी की अवस्था इस समय केवल ३१ वर्ष की है। जब उन्होंने सन्यास धारण किया था, उनकी अवस्था १७ वर्ष की थी। ऐसे तरुण योगाभ्यासी का समाधि-सिद्धि प्राप्त कर लेना किसी अंश में आश्चर्य्यजनक कहा जा सकता है; परन्तु उनके जन्म की कथा सुनकर यह आश्चर्य्य दूर हो जायगा। इसीलिए हम साधु-चरित-प्रेमियों के लिए वह कथा अति संक्षेप से लिखते हैं।

सशाल ग्राम में हरिशंकर घनपाठी नाम के एक धनिक ब्राह्मण हैं। उनके पचास वर्ष की अवस्था तक कोई सन्तान नहीं हुई। उस समय उनका तीसरा विवाह हो चुका था। एक बार वह अपने पूज्य गुरु श्रीविश्वेश्वर सरस्वती जी के पास गये, जो उस प्रान्त में योग की बड़ी से बड़ी सिद्धियों के लिए प्रसिद्ध हैं।

उन्होंने "अपुत्रस्य गतिर्नास्ति" इत्यादि वाक्यों के अनुकूल अत्यन्त विनीत भाव से अपना पुत्र की अप्रातिजात शोक निवेदन किया। गुरुजी ने उनको सोमयज्ञ करने की आज्ञा की और भविष्यवाद किया कि उनके तीन पुत्र होंगे, जिनमें से मध्यम पुत्र को उन्हें सन्यास के लिये दे देना होगा। हरिशङ्करजी ने सात लक्ष मुद्रा व्यय करके विधानपूर्वक सोमयज्ञ किया और ईश्वर की कृपा से उनके तीन पुत्र हुए। मध्यम पुत्र का नाम शङ्कर हुआ जो इस लेख के नायक हैं। अब विचारशील पाठक स्वयं ही समझ गये होंगे कि ईश्वर के व्यापक नियम के अनुसार हरिशङ्करजी का मध्यम पुत्र वही जीव आकर हुआ होगा जो पूर्वजन्म के पुण्य और तप के प्रभाव से योगी होने की योग्यता रखता था। हम इस प्रसङ्ग में भगवद्गीता के वे वचन उद्धृत किये बिना नहीं रह सकते, जो कृष्ण भगवान् ने अर्जुन की अप्राप्त-योग-संसिद्धि पुरुषों की गतिसम्बन्धिनी शङ्का के निवारणार्थ कहे थे—

प्राप्य पुण्यकृतान् लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ १ ॥
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥ २ ॥
तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्व्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥ ३ ॥
पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥ ४ ॥
प्रयत्नाद् यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥ ५ ॥*

(अ० ६, श्लोक ४१-४५)

* योग सिद्धि के प्राप्त होने के पहिले ही मरनेवाला स्वर्ग को प्राप्त कर और वहां बहुत वर्षों तक वास कर पवित्र अंतःकरण वाले धनी पुरुष के घर में जन्म लेता है, अथवा ज्ञानवान् योगियों के कुल में जन्म लेता है, क्योंकि ऐसा जन्म संसार में दुर्लभतर है। वहां वह पूर्व देह के बुद्धिसंयोग को प्राप्त करता है। पूर्वाभ्यास के प्रभाव से वह अकामतः विषयों से दूर हो जाता है। योग का जिज्ञासु भी वेदोक्त कर्म के फल से अधिक फल प्राप्त करके मुक्त होता है। प्रयत्न से पुरुषार्थ करता हुआ योगी पापमुक्त होकर अनेक जन्म से साधन करता हुआ श्रेष्ठ गति को पाता है। [इन वाक्यों में योग से तात्पर्य ज्ञान योग से है]

नव वर्ष की अवस्था में शंकरजी श्री विश्वेश्वर सरस्वती के सौंप दिये गये। कदाचित् इनके माता पिता कुछ समय तक और भी इनके लालन पालन का सुखलाभ करते, परन्तु उनके कनिष्ठ पुत्र का विवाह मध्यम पुत्र के अविवाहित रहते हुए रुका हुआ था। अतएव उक्त समर्पण में कुछ शीघ्रता की गई। कहते हैं कि माता के यह पुत्र-वियोग, असह्य होने के कारण, स्वीकार नहीं था। परन्तु पिता ने प्रतिज्ञा के ध्यान में रख उन पर कोप किया, और पुत्र के सन्यास के लिए देना अपना कर्तव्य समझा। १७ वर्ष की अवस्था तक शङ्कर जी गुरु की सेवा में रह कर विद्या और योग का अभ्यास करते रहे। तत्पश्चात् सन्यास धारण कर उन्होंने चतुर्थ आश्रम में प्रवेश किया।

शास्त्र में सन्यास दो प्रकार का कहा गया है। एक क्रम सन्यास, दूसरा अक्रम सन्यास। क्रम से ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ होकर सन्यासी होना क्रम सन्यास है। अन्यथा अक्रम सन्यास होता है, जिसका कारण तीव्र वैराग्य हुआ करता है।* स्वामी आत्मानन्दजी अक्रम सन्यास के उदाहरण स्वरूप हैं। काञ्चीमठ में उन्होंने सन्यास लिया था। सन्यास के पूर्व और सन्यास के पश्चात् सब मिला कर ११ वर्ष तक इन्होंने गुरुकुल में वास किया। तत्पश्चात् इन्होंने देशाटन प्रारम्भ किया। यह दक्षिण के तीर्थों के अतिरिक्त प्रायः और भी प्रसिद्ध तीर्थों में जा चुके हैं और इनकी वृहत् यात्रा की कथा यदि विस्तार से लिखी जाय तो अवश्य बहुत उपकारी और रोचक हो। परन्तु हम इस लेख के बहुत दीर्घ करना नहीं चाहते, इसलिए केवल थोड़ी सी घटनाओं की हम चर्चा करते हैं।

स्वामी जी के वन का निवास अधिक प्रिय है। जब कभी उनका निवास किसी बस्ती के समीप होता है, तब भी वे यथासम्भव एकान्त-वास ही की आकांक्षा रखते हैं और यदि दर्शक जिज्ञासु होते हैं, तो उनके सतसंग को भी ये स्वीकार करते हैं।

एकबार दक्षिण प्रान्त के किसी घोर वन में स्वामी जी ने कई सप्ताह तक अकेले ही निवास किया। उस स्थान पर आहार की कोई सामग्री नहीं थी। यहां तक कि कोई खाद्यफल का वृक्ष भी समीप नहीं था। बस्ती का ते कोसों तक नाम निशान ही न था। वहाँ दैवी प्रेरणा से, अथवा स्वाभाविक साधु सेवा की रुचि से, अथवा स्वामि जी के तप के प्रभाव से, (जो कुछ समझिये) एक वनचर बहुत दूर से पके जामुनों का एक दोना भेट कर जाया करता था। इस कथन से दो बातें सिद्ध होती हैं। एक तपस्वियों का नितान्त साहस, दूसरे ईश्वर का पोषण-प्रबन्ध।

एक समय, दूसरे वन में, जिस समय स्वामी जी समाधिस्थ थे, एक व्याघ्र ने उनके पैर के किञ्चित् घायल किया, परन्तु रुधिर की धारा न निकलने के कारण, कदाचित् उस शरीर को मृत समझ कर, वह बिना अधिक हानि किये चला गया। अथवा यह कहना चाहिए कि श्वापद भी तपस्वी के हिंसक नहीं होते। यहां यह शङ्का हो सकती है कि उसने घायल ही क्यों किया? इसका समाधान यह है—

> भोगेन त्वितरे क्षपयित्वा संपद्यते।
>
> ब्रह्मसूत्र।

अर्थात् यद्यपि सञ्चित और क्रियमाण कर्मों का अपरोक्ष ज्ञान से नाश हो जाता है, तथापि प्रारब्ध कर्मों का भोग हो से नाश होता है। तब विदेह

---

* "ब्रह्मचर्यं समाप्य गृही भवेद् गृहाद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत्। यदि वेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद् गृहाद्वा वनाद्वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्" ॥

यह श्रुति क्रम सन्यास और अक्रम सन्यास की विधि में है और इसका अर्थ यों है—

अधिकारी पुरुष ब्रह्मचर्य की समाप्ति करके गृहस्थ होवे; तदुपरान्त वानप्रस्थ होवे; तदुपरान्त सन्यास ग्रहण करे। और जो कदाचित् इस अधिकारी पुरुष को पूर्व पुण्य कर्मों के प्रभाव से प्रथम ही तीव्र वैराग्य की प्राप्ति होवे, तो वह ब्रह्मचर्य अथवा गृहस्थाश्रम से ही सन्यासी हो जावे। निदान जिस दिन वैराग्य हो उसी दिन वह सन्यास धारण करे।

मुक्ति प्राप्त होती है। एक समय स्वामीजी पञ्चवटी (नासिक) के समीप एक वृक्ष के नीचे समाधि लगाये हुए बैठे थे। प्लेग महकमे के किसी यूरोपियन डाक्टर ने उनको मृतक समझ कर फूँके जाने की आज्ञा दी। परन्तु जब वहाँ के पण्डों ने इनके शरीर को देखा, तब उन्होंने समाधि का अनुमान कर साहब से प्रार्थना की कि इस शरीर की हम लोग रक्षा करेंगे। यदि यह मृतक है तो हम लोग ही इसका अग्नि-संस्कार करेंगे, क्योंकि यह हिन्दू साधु है। साहब ने इसे स्वीकार किया। तीसरे दिन समाधि खुली। उस समय पंडों को जो आनन्द हुआ वह केवल अनुमान करने योग्य है। नासिक में स्वामी जी कुछ काल तक स्थित रहे, जिससे वहाँ के सदाचरणशील गृहस्थों को उनके दर्शन और उपदेश का लाभ हुआ।

ये दक्षिण की घटनाएं हुईं। अब एक घटना उत्तर की सुनिये। प्रसिद्ध है कि वर्तमान श्री बदरीनारायण के क्षेत्र से प्राचीन बदरिकाश्रम लग भग ४० दिन का मार्ग है। वहीं नर-नारायण का तप हुआ था। और वहीं स्वामी शङ्कराचार्य्य का श्रीदुर्गादेवी से साक्षात्कार हुआ था। वह भूमि अत्यन्त पवित्र और पुण्य तीर्थ मानी जाती है। वहाँ तक पहुँचना तीर्थयात्रा की पराकाष्ठा समझी जाती है। इसमें सन्देह नहीं कि वहाँ उसी तपस्वी का पहुंचना सम्भव है जो हिमालय का शरीर गलानेवाली सर्दी को सह सके और बहुत दिन तक निराहार रहने का सामर्थ्य रखता हो। बदरीनारायण से एक मंज़िल चलने के उपरांत ही वायु, जल और स्थल इतने शीतल हैं कि वहाँ साधारण प्राणी का जीना प्रायः असम्भव है। यही कारण है कि न तो वहाँ कोई जीव जन्तु ही रहते हैं, और न कोई वृक्ष ही उगते हैं। एक आध जाति के वृक्ष जो वहाँ होते भी हैं, वे भी बर्फ़ से ढके रहते हैं। खाने को कुछ भी नहीं मिलता। यदि आहार है तो केवल पवन और पानी का। स्वामी आत्मानन्द ने उस दुर्गम मार्ग को भी पार किया और बदरिकाश्रम जाने का अपना मनोरथ सिद्ध कर लिया।

इस यात्रा में स्वामी जी को अत्यन्त क्लेश हुआ। परन्तु उन्होंने समस्त मार्गक्लेश को सहन करने का साहस करके ही उसका अनुष्ठान किया था। हमको उसके सम्बन्ध में एक वृत्तान्त, जो स्वयं स्वामी जी से ज्ञात हुआ है, लिखने योग्य है। एक बार स्वामी जी मार्ग भूल गये और ९ दिन तक अत्यन्त विषम भूमि और दुर्घट नाले मझाने से उनका शरीर शिथिल हो गया। यहाँ तक कि उनको अपने जीवित रहने में भी सन्देह होने लगा। जब वह अत्यन्त श्रमित होने के कारण विवश हो रहे थे, एक महात्मा अकस्मात् उनके पास आया और उनकी सेवा में तत्पर हुआ। प्रथम तो उसने चाहा कि आग तैयार करके स्वामी जी को तपवावे। परन्तु यह बात स्वामीजी ने स्वीकार नहीं की, क्योंकि अग्नि का छूना वा तापना सन्यासाश्रम के विरुद्ध है। फिर उस महात्मा ने तीन फल भून कर स्वामीजी के आगे रक्खे, जिनमें से इन्होंने दो ग्रहण कर तीसरा उनको वापिस दिया। इस स्वल्प भोजन के उपरान्त उस महात्मा ने इनके चरण दाबना आरम्भ किया। स्वामीजी को निद्रा आगई। जब वे जगे, तब उन्होंने उस महात्मा को न पाया। स्वामीजी ने अपनी राहली, परन्तु फिर तीन दिन तक इनको अधिक क्लेश रहा और इनके चित्त में उसी महात्मा के पुनर्दर्शन की उत्कण्ठा हुई। समाधि लगा कर ये एक जगह स्थित हो गये। समाधि खुलने पर उस महात्मा को स्वामीजी पाकर बहुत हर्षित हुए। महात्मा ने कहा "आप बहुत हठी हैं"। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि, "हम तो हठयोगी हैं ही"। महात्मा मुसुकराया और मार्ग बता कर इनसे बिदा हो गया। महात्मा इनसे संस्कृत में बोलता था।

स्वामीजी की दिनचर्य्या हमने इस प्रकार देखी। ३ बजे उठ कर शौच और स्नान के अनन्तर

समाधि में बैठना। ११ या १२ बजे उठना। अत्यन्त स्वल्प भोजन करना—जैसे बिल्वपत्र या कोई सात्वकी फल*। और यदि प्रस्तुत हो तो किञ्चित् दूध या मठा पीना। तदुपरान्त वेदान्त-विचार करना। और यदि कोई जिज्ञासु दर्शक उपस्थित हों तो उनसे वार्तालाप करना। अथवा प्रसङ्गवशात् और अधिकार भेद से कर्म और उपासनासम्बन्धी उपदेश करना। सायङ्काल होते ही पुनः स्नान करके एक पहर की समाधि लेना। तदुपरान्त जिज्ञासुओं की उपस्थिति और रुचि के अनुसार दो, तीन या चार घण्टे तक सत्सङ्ग करना। फिर शयन करना।

स्वामीजी को हमने इस लेख के आदि ही में अष्टाङ्गयोगी लिखा है। योग के अष्टाङ्ग † ये हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। ये आठों अङ्ग स्वामी जी ने सम्यक् प्रकार से सिद्ध किये हैं। समाधि के लगाने और खोलने में इनको किञ्चित् भी आयास नहीं होता; न किसी सहायक की आवश्यकता होती है। कभी कभी तीन दिन तक समाधि से उत्थान नहीं होता। अन्यत्र जो स्वामीजी का चित्र दिया गया है वह त्राटकमुद्रा और योनि-पद्मासन का है। हमने स्वामीजी को प्रत्यक्ष समाधिस्थ देखा है—एक बार नहीं, अनेक बार।

स्वामीजी को समाधि-सिद्धि हुए ५ वर्ष हो चुके हैं। ऐसी शीघ्रता से योग की अन्तिमसिद्धि के प्राप्त होने का कारण तप के अतिरिक्त अखण्ड ब्रह्मचर्य ही* कहा जा सकता है।

अष्टाङ्ग योग सिद्ध होने पर भी स्वामीजी इस क्रिया को अन्तःकरण की शोधक मात्र ही मानते हैं। मोक्ष तो वे वेदान्तविचार द्वारा ब्रह्मज्ञान ही से मानते हैं। इसी कारण वे हठयोग की अपेक्षा राजयोग (ब्रह्मज्ञान) की महिमा अधिक वर्णन करते हैं। भगवद्गीता में कृष्ण भगवान ने भी—

> अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
> प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः॥

इत्यादि श्लोकों के द्वारा योगचर्चा करते हुए उस प्रसङ्ग को इस श्लोक पर समाप्त किया है—

> श्रेयान् द्रव्यमयाद् यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप!
> सर्वं कर्माखिलं पार्थ! ज्ञाने परिसमाप्यते॥

सम्पूर्ण शुभकर्मों का नाम यज्ञ है। श्रीकृष्णभगवान ने अर्जुन के प्रति गीता में वेदोक्त सम्पूर्ण शुभकर्मों

---

* आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्द्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विकप्रियाः॥१॥

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः॥ २॥

यातयामं गतरसं पूतिपर्य्युषितञ्च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥ ३॥

भगवद्गीता।

आयु, उत्साह, बल, आरोग्य, सुख और प्रसन्नता को बढ़ानेवाले, रससंयुक्त और चिकने, देह में साररूप होकर चिरकाल तक ठहरनेवाले, और दृष्टि को रुचनेवाले, आहार सात्वकी जनों को प्रिय होते हैं॥ १॥

बहुत कड़ुए, खट्टे, नमकीन, गर्म, तीखे, रूखे, जलन पैदा करनेवाले आहार राजसी लोगों को रुचते हैं और दुःख, शोक, रोग के देनेवाले होते हैं॥ २॥

एक पहर से अधिक के बने हुए, रस से हीन, दुर्गंध-युक्त, बासी, जूठे और अभक्ष्य (मांस, कलंज, मद्यादि) आहार तामसीजनों को प्रिय होते हैं॥ ३॥

† इन आठ अङ्गों की व्याख्या राजयोग और हठयोग की प्रक्रिया के अनुसार दो तरह की है। इस प्रसङ्ग में हठ-योग की प्रक्रिया से अभिप्राय है।

व्याख्या के लिये पातञ्जलयोग-दर्शन, पाद २, सूत्र २९; अथवा भगवद्गीता पर स्वामी चिद्घनानन्द-कृत टीका अ० ४, श्लोक २३-३३ तक देखो।

* ब्रह्मचर्य्यप्रतिष्ठायां वीर्य्यलाभः। योगसूत्र २, ३८।

इस पर व्यास-भाष्य इस भांति है—

यस्य लाभादप्रतिमान् गुणानुत्कर्षयति सिद्धश्च विनेयेषु ज्ञानमाधातुं समर्थो भवतीति।

अर्थात् जिसके लाभ से सिद्ध अप्रतिमान गुणों को उत्कर्षित करता है और शिक्षा करने योग्य जिज्ञासुओं को ज्ञान देने में समर्थ होता है।

[वीर्य्य के निरोध से और ब्रह्मचर्य्य के प्रभाव से शरीर, इंद्रिय, और मन का उत्साह उन्नत हो जाता है। (भोजवृत्ति)]

सरस्वती

योगिवर आत्मानन्द स्वयंप्रकाश सरस्वती।

को बारह प्रकारों में विभक्त किया है, और अन्त में उनकी यह ऊपर दी हुई उक्ति है। इसका अर्थ यह है—"हे अर्जुन! द्रव्यमय आदि (कर्म्मोपासना सम्बन्धी) पीछे कहे हुए सम्पूर्ण यज्ञों से ज्ञानयज्ञ (ब्रह्मज्ञान) अत्यन्त श्रेष्ठ है। क्योंकि, हे पार्थ, सब निरवशेष कर्म ज्ञान में ही समाप्त होते हैं"। भावार्थ यह है कि पिछले यज्ञों में कर्म्मोपासना कही है, जिसके, इस जन्म या पूर्व जन्मों में, अनुष्ठान करने से पुरुष को वैराग्य और ब्रह्मज्ञान की जिज्ञासा उत्पन्न होती है।

अब इस लेख को हम इस आशा के साथ समाप्त करते हैं कि इसका पढ़ना सरस्वती के पाठकों के लाभ और विनोद का हेतु होगा।

"यतो जातानि भूतानि जीवन्ति यदनुग्रहात्।
यस्मिन्नेव लये यांति तस्मै चिद्ब्रह्मणे नमः॥"
आत्मबोध।

देवीप्रसाद (पूर्ण)।

शरत्-स्वागत।

[१]
आई ऋतु-प्रवर सुन्दर मोदकारी
शोभा-भरी शरद को अति मात्र प्यारी।
आकाश शुक्लतर-वारिद-वृन्द-पूर्ण
आनन्द आज सबके मन में बढ़ाता॥

[२]
मन्दस्मितानन-मनोहर-फूलवाली
अत्यन्त-रम्य-नव-पल्लव-गात-युक्त।
बाला समान कुच-कुड्मल को छिपाये
देती अहो! कुमुदिनी निशि में प्रमोद॥

[३]
अङ्गूर, सेब, अमरूद, नवीन नींबू,
मेवा अनार, कदलीफल आदिकों का।
बाज़ार है गरम; नित्य नई अनेक
चीज़ें चलीं अति रसाल गली गली हैं॥

[४]
अम्भोज, काश कमनीय, गुलाब आदि
फूले हुए सकल शोभित हो रहे हैं।
मानो नई शरद-सुन्दर-कामिनी को
पाके, प्रमोद मन का दिखला रहे हैं॥

[५]
नक्षत्र-तारक-मयी रमणीय प्यारी
व्योमस्थली रुचिर-रूपवती निशा में।
शोभायमान अति ही, इस काल, देखो,
मानो खिली प्रकृति की वर-वाटिका है॥

[६]
वापी-तड़ाग-नदियां जितनी जहां थीं
सानन्द त्याग निज कल्मष-राग-रोष।
मोती-समान अति-निर्म्मल-नीर-पूर्ण
संशुद्ध-शान्त-रस-मूर्ति बनी विलोको॥

[७]
नवल-मुकुलधारी चित्तहारी द्रुमों के
मृदु दल फहराते हैं लता-मंडपों पै।
रसिक जन जहां हैं पूर्ण आनन्द पाते
रुचिर छवि वहां की वर्णनातीत मित्र!

[८]
प्यारी-प्यारी-कुसुम-कलिका-लीन है भृङ्गराजी;
पी पी फूलों की मधु-सुरा पान से मत्त भारी।
गाती गाती रवमय नये गीत मीठे रसीले
देती पैदा कर रसिक के चित्त में भूरि भाव॥

सत्यशरण रतूड़ी।

* क्रोधाष्टक।

[१]
होती तुरन्त उनकी बलहीन काया;
वे जानते न कुछ भी अपना पराया।
होते अचेत, वर-बुद्धि-विहीन, पापी,
रे क्रोध! जो जन तुझे करते कदापि॥

* जून, सन् १९०५, की "सरस्वती" में प्रकाशित "क्रोध" शीर्षक लेख को लक्ष्य करके यह कविता लिखी गई है। लेखक।

[२]

अच्छा, अनिष्ट, परिणाम न जानने तू
देता, न बात हित की कुछ मानने तू।
तू छीनता सकल ज्ञान बुरे भलेका ;
तूही विनाश करता स्वर है गलेका ॥

[३]

अत्यन्त ही श्रवण-शक्ति-विहीन कर्ण
होते, तथा नयन-आनन रक्त-वर्ण।
सु-ज्ञान, ध्यान, सब शीघ्र पलायमान
होते प्रवेश तव देख विकारवान ॥

[४]

अत्युग्र कण्ठ-रव कर्कश तू कराता,
सारा शरीर कदलीदलवत् कँपाता।
तूही कुवाच्य नर के मुख से कहाता,
तूही अनेक विकृताऽकृति है बनाता ॥

[५]

हैं क्रोध में मनुज जो अनुरक्त होते,
सारा विवेक अपना अति शीघ्र खोते।
जो त्यागते न तुझको यह जान के भी,
होते कभी अहह ! क्या नर श्रेष्ठ वे भी ?

[६]

गम्भीरता, सुखद शान्ति, विवेक, भक्ति,
आनन्द, नीति, क्षमता, सुविचार-शक्ति।
हा हा ! तभी तक मनुष्य-शरीर बीच,
यावत् प्रवेश नहिँ है तव क्रोध ! नीच ॥

[७]

रे क्रोध ! जो प्रबल-वह्नि बिना जलावै,
सारा शरीर-वन भस्म हुआ बनावै।
ऐसा न और तुझसा जग बीच पाया,
हारे विचार हम किन्तु न चित्त आया ॥

[८]

देता तुझे जगह जो उर बीच क्रोध !
होता वही तव कुसङ्गति से अबोध।
तूही बता फिर तुझे नर श्रेष्ठ कैसे
त्यागें न भृङ्ग रसहीन प्रसून जैसे ?

मैथिलीशरण गुप्त।

हे भारत !

हे भारत ! विरचो विधि तोंको
जग में सुन्दर रतन महान !
वा कहिये यों ताहिँ बनायो
फल इक मीठो सुधा-समान ॥१॥

देस देस के नृप विलोकि तोहिं,
मुँह के बल दौरत तव ओर।
तनिक न तन की सुधि वे राखैं
कष्ट सहैं वे यद्यपि घोर ॥ २ ॥

लूट पाट करि करि मनमानी
लाय लाय दल लाख करोर।
तेरे मस्तक पै घहरावैं
निर्दयता सोँ नातो जोर ॥ ३ ॥

ग्रीस देस से दौरत आयो
विजयी वीर सिकन्दर साह।
पाञ्चाल में पोरस नृप ने
तासोँ युद्ध कियो सोत्साह ॥ ४ ॥

पार पञ्चनद करि, अपार दल
लये, बढ़ो वह आगे धाय।
पहुँचो सुर-सरिता के तट पर
जहाँ धान्य धन सदा सुहाय ॥ ५ ॥

इहां महान वीर बलसाली
महानन्द नृप मगध-नरेस।
पालत रहो विपुल सेना सह
अपनो अति उपजाऊ देस ॥ ६ ॥

सुनी सिकन्दर ने जब वाके
बल की बातैं तब वह वीर।
लैाट चलो हिय में शङ्कित ह्वै
बाबुल पहुँचत तज्यो सरीर ॥ ७ ॥

अति दुर्मद उत्तर पश्चिम के
मुसल्मान योधा रनधीर।
चले ताहिँ हत भारत ! लूटन
लीन्हे साथ हज़ारन वीर ॥ ८ ॥

जैसे बाज लवा पर झपटत
वैसे सिंधु नदी के तीर।
गिरे वज़ सम हिन्दु-वृन्द पै
उपजाई अति दुस्तर पीर ॥ ९ ॥

रहा एक महमूद ग़ज़नवी
अति निष्ठुर धर्म्मान्ध विशेष।
आरजगन के मन्दिर जेते
ब्रह्मा, विष्णु, गनेस, महेस ॥ १० ॥

तिनको तोरि फोरि अच्छी विधि
अजसरासि सिर ऊपर लीन।
हे भारत सोऊ तुमने सब
सहो, हुए अतिसय श्रीहीन ॥ ११ ॥

ग़ोर देस तें ग़ोरी धाये
दल बल लै अपने आधीन।
सीधे सादे आरज-राजन
सो नित नूतन विग्रह कीन ॥ १२ ॥

पृथ्वीराज महीपति, भारत!
तेरो मस्तक-मुकुट सरूप।
छल सौं ताहि पराजित करिके
अपनायो यह भूमि अनूप ॥ १३ ॥

तब सौं घाव हुए तेरे तन
सत्य कहहिँ हम हे भारत!
आये अब अँगरेज़ वैद्य सम
जिनमें तू तन मन से रत ॥ १४ ॥

श्रीरामरणविजयसिंह।

पत्नीव्रत।

बाबू गोपालदास की पत्नी श्यामा शय्या पर पड़ी कण्ठस्थ-प्राण हो रही है। डाक्तर, हकीम, वैद्य आदि सब ने साफ़ जवाब दे दिया है। अब केवल दो तीन घण्टे की वह और मेहमान है। कुटुम्ब और परिजन के लोग उस आसन्न-मृत्यु-शय्या को चारों ओर से घेरे हुए रो रहे हैं। मुमूर्षु क्षण क्षण में नेत्र खोल कर सबको ओर देखती और दृष्टि फेर लेती है। गोपालदास के दूरदर्शी पिता उस कण्ठस्थप्राण को ऐसी आकुल अवस्था देख कर उसके मनोभिलाष को समझ गये। उसी समय पुत्र गोपालदास को बुला कर उन्होंने कहा—"गोपाल, हम लोग बाहर जाते हैं, तुम थोड़ी देर यहां बैठो"। इतना कह कर सब लोग बाहर चले गये।

पतिपरायणा कण्ठस्थप्राणा श्यामा पति की ओर एकटक देखने लगी। कुछ देर बाद गोपालदास ने पूछा—"क्या तुम कुछ मुझसे कहना चाहती हो?" तब श्यामा ने धीमे स्वर से कहा—"तुम विवाह कर लेना"। गोपाल के गालों पर आँसुओं की धारा बह रही थी। उन्होंने कहा—"नहीं, अब हम विवाह न करेंगे"। उनको स्त्री बोली "नहीं, तुम्हें कष्ट होगा; तुम विवाह अवश्य कर लेना"। श्यामा के सूखे होठों में वेदाने का दो चार बूँद रस डालकर गोपालदास कहने लगे, "तुम और कोई अनुरोध करो; मैं उसे प्राण देकर भी पूरा करने को प्रस्तुत हूं; किन्तु इस बात की प्रार्थना कदापि मत करो"। मृदु मुसक्यान के साथ श्यामा फिर धीमे स्वर से कहने लगी—"क्यों तुम विवाह नहीं करोगे? परकाल में यदि मुझे क्रोध अथवा ईर्षा करने की शक्ति होगी तो मैं कहे जाती हूं कि मैं ज़रा भी असन्तुष्ट न हूंगी। तुम ख़ुशी के साथ विवाह करना"। गोपालदास स्नेहपुलकित हाथों से श्यामा का हाथ थाम के कहने लगे—"तुम बारम्बार क्यों ऐसा अनुरोध करती हो? मैं विवाह कदापि नहीं कर सकता"। मुमूर्षु के होठों पर मन्द मुसक्यान की छटा देख पड़ी। टिमटिमाता हुआ दीप ज़रा देर के लिए कुछ प्रज्वलित होकर फिर बुझ गया। वह हँसी अविश्वासजनित व्यंग्य की थी, अथवा सन्तोष की, यह ठीक समझ में न आया।

बाबू गोपालदास बीस वर्ष पहले के एक उच्च शिक्षा प्राप्त बी० ए० उपाधिधारी विचारशील युवक थे। तब तक ग्रेजुएट लोगों के विषय में आजकल की सी दुर्दशा का सूत्रपात नहीं हुआ था। श्यामा की श्राद्ध-क्रिया समाप्त होने के पहले ही उनके विवाह की चर्चा लेकर बहुतेरे लोग आने लगे। गोपालदास सबको मीठी मीठी बातों से सन्तुष्ट करके लौटाते रहे। श्राद्ध हो जाने के बाद कन्याभारग्रस्त पिताओं की एक मण्डली ने गोपालदास के पिता को जा घेरा। गोपालदास के पिता ने कहा—"गोपाल के विवाह-सम्बन्ध में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। लड़का स्वयं समझदार और वयोवृद्ध है। अतएव उसका जो मत हो वही आप लोग मेरा भी समझिए। यदि आप लोग उसे राज़ी कर सकें तो अति उत्तम है"। गाँव के सब बड़े बूढ़े गोपाल के पिता को इस भाँति पुत्र का आज्ञाकारी देख उनकी निन्दा करते हुए गोपाल के पास पहुँचे। उनसे उन्होंने तर्क करना चाहा। उनका प्रश्न हुआ—"तुम विवाह क्यों नहीं करते?" गोपालदास ने हँस कर उत्तर दिया—"इस 'क्यों' का तो कोई उत्तर नहीं। हम लोगों के जितने काम होते हैं, सबका कोई न कोई उद्देश्य अवश्य रहता है। दस कारणशून्य कार्य्यों के साथ हमारे इस एक की भी गणना कीजिए"। इन वाक्यों को सुन कर आगन्तुक वृद्धजन क्रोध से जल भुन कर गोपाल और उनके पिता को भला बुरा कहने लगे। जिस समय पिता की इच्छा के अनुसार कार्य्य करना ही शास्त्र समझा जाता था, उस समय गोपालदास के पिता का पुत्र को इस भाँति बढ़ावा देना और पुत्र के द्वारा इतने बड़े बूढ़ों का अपमान होना, ग्रामवासियों को अत्यन्त असह्य बोध हुआ। वे लोग गोपाल के पिता से गर्ज कर कहने लगे—"अँगरेज़ी पढ़ा कर आपने अपने पुत्र को अति सुशील और अति कुलपावन बनाया है। बस अब देश और समाज नष्ट भ्रष्ट हुए समझिए। मोतीचन्द के पुत्र रामकृष्ण ने अँगरेज़ी पढ़ कर भी अपनी कुल-मर्य्यादा को नहीं छोड़ा है। वह अपने कुलीन होने का बहुत बड़ा अभिमान रखता है; परन्तु गोपाल के तुल्य अहङ्कारी लड़का हम लोगों ने और कोई नहीं देखा। उसने बड़े बूढ़ों की मर्य्यादा और प्रतिष्ठा का कुछ भी ध्यान न देकर हम लोगों की बातों को एकदम काट दिया"—इत्यादि। इन बातों को सुनकर गोपाल के पिता ने अति प्रसन्न होकर कहा—"आज आप लोगों ने मुझे असीम आनन्द प्रदान किया। आज मैंने जाना कि मेरे पुत्र को यथार्थ शिक्षालाभ हुआ। जिसका एक पैर स्वर्ग और दूसरा मर्त्य लोक में था, उसी, 'स्त्री' के नाम से पुकारी जानेवाली, पूजनीया और माननीया देवी के सामने मेरे पुत्र ने जो प्रतिज्ञा की थी उसे अपने जीते जी पालन करने का जो उसने यत्न किया है उससे मैं आज बहुत ही सुखी हुआ हूं। अन्त तक यह प्रतिज्ञा अभग्न रहेगी या नहीं, यह मैं नहीं जानता; परन्तु उसके पालन करने के यत्न ही ने मुझे यथेष्ट आनन्दित किया है। आप लोग ज़रा देर बैठिये। इस शुभ-सम्वाद-दान के अनन्तर बिना मीठा मुँह किये आप जाने नहीं पावेंगे"। वृद्ध लोग आश्चर्य-भरे नेत्रों से एक दूसरे की ओर देखने लगे। गोपाल के मित्र हलवाई की दूकान की ओर दौड़े।

* * * * *

दस वर्ष बीतने के बाद की बात है। गोपाल मुमूर्षु पिता की शय्या के पास बैठे हैं। वृद्ध ने गोपाल के सिर पर हाथ रख कर कहा—"हमारा अन्तिम आशीर्वाद और मङ्गलकामना तुम्हारी रक्षा करे। मरने के समय मुझे तुमसे दो चार बातें कहनी हैं। धर्मशील और ईश्वरपरायण होना। हमारे देश में पितृभक्ति के बहुत दृष्टान्त वर्त्तमान हैं। तुम भी सुशील और पितृभक्त हो। मुझे अपनी किसी अपूर्ण इच्छा की पूर्ति के लिए तुमसे कहने की कुछ आवश्यकता नहीं। तुम सभी जानते हो, और जहां तक बन पड़ेगा

बिना कहे ही सब करोगे। मुझे केवल एक बात कहना है। तुमने स्वर्गगामिनी श्यामा के सामने जो दृढ़ प्रतिज्ञा की है उसे अन्तिम काल तक पालना। तुम्हारे शुद्ध प्रेम को मेरी आज्ञा बल प्रदान करे। हमारे देश में 'पतिव्रता' नाम का शब्द है, परन्तु 'पत्नीव्रत' शब्द नहीं है। तुम उस अपने उज्वल दृष्टान्त से 'पत्नीव्रत'-धर्म सार्थक करके इस शब्द की सृष्टि करो! और अधिक मैं क्या कहूं। तुम्हारा मङ्गल हो"।

वृद्ध गोपालदास कठोरभाव से ब्रह्मचर्य पालन करते हुए मृत्यु की राह देख रहे हैं।*

भट्टाचार्य्य।

पुनर्जन्म का प्रत्यक्ष प्रमाण।

इस देश के लोगों का पुनर्जन्म में पूरा विश्वास है। विद्वान्, मूर्ख, युवा, जरठ, स्त्रियां और बच्चे तक समझते हैं, और विश्वास करते हैं, कि इस जन्म के पहले भी वे किसी न किसी योनि में ज़रूर थे और इस शरीर के छोड़ने पर भी वे कहीं न कहीं ज़रूर उत्पन्न होंगे। स्पिरिचुएलिज़म, अर्थात् आत्मविद्या, के बल से त्यक्त-शरीर आत्माओं को—यदि उनका पुनर्जन्म न हुआ हो—हम लोग मनुष्य-चक्र की सहायता से बुला सकते हैं और उनसे वार्तालाप कर सकते हैं। मुक्त मनुष्य चक्रगत मनुष्यों में से सबसे अधिक धार्म्मिक और सतोगुणी के शरीर में घुसकर अच्छी तरह बात चीत करते हैं। जिस समय हम झांसी में थे, हमारे एक मित्र इस प्रकार की चक्र-क्रिया अकसर किया करते थे। ग्वालियर के एक प्राचीन मृत-कवि (उनका नाम हम भूलते हैं) हम लोगों के चक्र से ख़ूब परिचित हो गये थे। चक्रसिद्धि होते ही वे आजाते थे। उनको इत्र सूंघने और गाने से बड़ा शौक़ था। उन्होंने एक युवक को चुन लिया था। उसीके सिर वे आते थे और इत्र और फूल सूंघ कर गाना सुनते थे। वे ख़ुद भी अच्छी अच्छी ग़ज़लें गाते थे। उनका सबसे प्यारा फ़ारसी का यह पद्य था—

> चु कुफ़्र अज़ काबा बरख़ेज़द,
> कुजा मानद मुसल्मानी।
> चरा कारे कुनद आक़िल,
> के बाज़ आयद पशेमानी॥

उनको हम लोग गीतगोविन्द सुनाया करते थे। "पश्यति दिशि दिशि रहसि भवन्तं। तदधर-मधुर-मधूनि पिबन्तम्" यह गीत आपको बहुत पसन्द था। इसको आप बारबार दोहराते थे। हमने पता लगाया तो मालूम हुआ कि ये कविवर ग्वालियर ही के थे और इनको मरे हुए कोई चालीस पचास वर्ष हुए थे।

हमारे चक्र में बांदा का एक लड़का बड़ा उत्पात मचाता था। वह मुसलमान था। वह बीच बीच में, बिना प्रेरणा के, आ जाता था। दो एक दफ़ा जो उसने शरीरसञ्चार किया तो वह बेतरह रोया और चिल्लाया। उसका पता लिखकर हमने बाँदा के स्टेशनमास्टर से उसका हाल दरियाफ़्त किया तो मालूम हुआ कि वह पाँच वर्ष पहले हैज़े से मर गया था। उस समय उसका विवाह होनेवाला था; उसकी उम्र कोई १८ वर्ष की थी।

एक दिन के चक्र में एक लार्ड आये। उस दिन पण्डित मुरलीधर मिश्र, स्कूलों के डेप्युटी इन्सपेक्टर, भी मौजूद थे। अब आप इटावे में असिस्टण्ट इन्सपेक्टर हैं। लाट साहब ने अपना नाम और पूरा पता दिया और कहा कि कलकत्ते में उस समय कोई जलसा है, उसीमें शामिल होने के लिए वे जा रहे हैं। उन्होंने ऐसी अच्छी अँगरेज़ी में बात चीत की कि हम लोग दङ्ग

* वङ्गभाषा के सुप्रसिद्ध "प्रवासी" नामक मासिकपत्र में प्रकाशित बाबू चारुचन्द्र वन्द्योपाध्याय के एक लेख का अनुवाद। अनुवादक।

हो गये। जिसके सिर वे आये थे वह बेचारा मुश्किल से दो चार टूटे फूटे वाक्य अँगरेज़ी में कह सकता था।

इस प्रकार की मुक्त आत्माओं से यदि शुद्ध भाव से पूछा जाय तो बहुत सी अच्छी अच्छी बातें मालूम हो सकती हैं। इनसे हमने कई एक मृत मनुष्यों के विषय में प्रश्न किया। उनमें से कई एक हमारे कुटुम्बी भी थे। मालूम हुआ कि कई का तो पुनर्जन्म हो गया; पर कई अभी मुक्त अवस्था में हैं। उनमें से, हमारी प्रार्थना पर, उन्होंने एक आध मुक्त आत्मा से हमारा परिचय भी कराया। एक दिन हमने ग्वालियर के कवि जी से कहा कि आप कालिदास या भवभूति को, यदि वे मुक्त हों, तो बुलाइए। इस पर कवि जी बेतरह अट्टहास करके हँसे। कोई पाँच मिनट तक आप हँसते रहे। आपने कहा कि भवभूति का हाल यहां किसीको नहीं मालूम। हां, कालिदास को लोग जानते हैं। पर वे कहाँ हैं, किस दशा में हैं, पुनर्जन्म को प्राप्त हो गये हैं, या कहीं किसी अन्य लोक में हैं—इसका पता उनको मालूम नहीं। आपने दिल्लगी में पूछा कि शङ्कराचार्य्य या श्रीकृष्ण से भी बात चीत करने को हम लोगों का जी चाहता है या नहीं?

भारतवासियों को पुनर्जन्म पर विश्वास करने के लिए प्रमाणों की ज़रूरत नहीं है। पर विलायती पण्डितों को पुनर्जन्म पर कम विश्वास है। उनको सब बातों में प्रमाण चाहिए। ख़ुशी की बात है, उनके लिए, पुनर्जन्म के प्रमाणों का भी उपक्रम हो रहा है। कर्नल डिरोचाज़ एक फ़रासीसी पण्डित हैं। आपने एक विलायती मासिक पत्र में एक लेख प्रकाशित किया है। उसमें आप कहते हैं कि मैं बहुत दिन से इस बात की परीक्षा कर रहा हूं कि मनुष्य अपने पहले जन्मों की बातें याद कर सकता है या नहीं। जाँच का फल अच्छा हुआ है। प्राणपरिवर्तन (मेसमेरिज़्म) सम्बन्धी पाश देकर मनुष्य को सुला देने से उसे अक्सर अपने पूर्वजन्मों का स्मरण हो आता है। पहले, विद्यमान जन्म के पिछले जन्म का स्मरण होता है; फिर उसके पहले का; फिर उसके पहले का। इसी तरह यह लगाव दूर तक चला जाता है। उलटे पाश देने पर जब मनुष्य अपनी स्वाभाविक दशा में आ जाता है, तब भी उसे अक्सर पूर्वजन्म-सम्बन्धिनी स्मृति नहीं भूलती। पर इस दशा में उसे स्मरण करने के लायक़ सबसे दूर के जन्म की पहले याद आती है; फिर धीरे धीरे उसे वर्त्तमान जन्म के पास-वाले जन्मों की।

बनारसवासिनी मेम साहब एनी ब्यसण्ट की सूचना के अनुसार, दिसम्बर १९०४ में, कर्नल डिरोचाज़ ने एक फ़रासीसी यञ्जिनियर की लड़की पर प्राणपरिवर्तन विद्या का प्रयोग किया। लड़की अपने बाप के साथ सीरिया प्रान्त में रही थी। वहाँ उसका बाप यञ्जिनियर था। वहां, ९ वर्ष की उम्र तक, उसने अरबी लिखना पढ़ना सीखा था। बाप के मरने पर वह फ्रांस आई। प्रयोग के लिए कर्नल साहब ने उसीको चुना। पाश देते देते जब वह सो गई तब उसने अपनी दाहनी तरफ़ पहले नीले, फिर लाल रङ्ग की एक छाया को देखा। कुछ देर में उसका सूक्ष्म शरीर उसके पाँचभौतिक शरीर से बिलकुल ही अलग हो गया। कोई एक गज़ के फ़ासले पर, बांई तरफ़, उस लड़की ने अपने सूक्ष्म शरीर को, लाल और नीले रङ्ग में, देखा। वह शरीर उसके पञ्च-भूतात्मक शरीर से एक आभासमयी रस्सी से बँधा सा था। जब कर्नल ने उलटी पाशें देकर उसे जगाना शुरू किया, तब उसके सूक्ष्म शरीर के पहले के से दो रूप हो गये। एक नीला, दूसरा लाल। और, धीरे धीरे वे उसके भूतात्मक शरीर में प्रविष्ट हो गये।

इस लड़की का नाम है मेरी मेव। पूछने पर उसने बतलाया कि मेरी आत्मा सफ़ेद अग्निशिखा

के समान है। उसका आकार प्रकाशमयी उँगली के बराबर है। उसे वह अपने भूतात्मक शरीर और सूक्ष्म शरीर के बीच में देखती है।

कर्नल साहब, प्रयुक्त दशा में, जब मेव से कहते हैं कि तुम अपनी वर्तमान उम्र से कम उम्र की हो जाओ, तब वह वैसाही करती है। उसकी उम्र १८ वर्ष की है। आज्ञा पाते ही वह १६, १४, १२ और १० वर्ष की हो जाती है। वह अपने शरीर को उसी दशा में देखती है जिस दशा में वह पूर्वोक्त उम्र में था। १० वर्ष की होने पर जब उससे पूछा जाता है कि तुम कहां हो, तब वह कहती है—"मारसेलिस में"। यह उत्तर ठीक है। वह इस उम्र में वहीं थी। इसी तरह वह दो वर्ष की उम्र तक का हाल बतलाती है। पर एक वर्ष की होने पर वह बोल नहीं सकती। इस जन्म के पहले की बातें धीरे धीरे उसे याद आती हैं। वह कहती है कि किसी अज्ञात शक्ति ने मुझे पुनर्जन्म दिया। मेरे सूक्ष्म शरीर ने मेरे भौतिक शरीर के पैदा होने के कुछ ही पहले उसमें प्रवेश किया। पहले वह मेरी मा के आस पास था।

मेव कहती है, मेरा नाम इसके पिछले जन्म में लीना था। मैं ग्रेट ब्रिटन में एक मछुवे की लड़की थी। २० वर्ष की उम्र में मेरी शादी हुई। मेरे एक सन्तति हुई। दो वर्ष की उम्र में वह मर गई। मेरे पति का रोज़गार भी मछली मारने का था। उसका मछलीमार जहाज़ एक दफ़ा तबाह होगया। मेरे पति की मृत्यु उसीसे हुई। मुझे असह्य दुःख हुआ। मैं भी समुद्र में डूब कर मर गई। मछलियों ने मेरे शरीर को खा लिया। मुझे उस समय कुछ नहीं मालूम हुआ। मैं हवा में मिल गई। मैंने वहां प्रकाशमयी आत्माओं को देखा। पर उनसे बोलने की मुझे अनुमति नहीं मिली। इस दशा में मुझे कोई तकलीफ़ नहीं हुई। न मैं खुशही थी, न नाखुश। मैंने अपने पति और सन्तति को बहुत ढूंढा, पर मुझे उनमें से एक भी नहीं मिला।

तब मेव से कहा गया कि तुम लीना के पहले जन्म में प्रवेश करो और उसका भी वृत्तान्त बतलाओ। इस पर उसने कहा मैं "अन्धकार" में हूं। मुझे तकलीफ़ है। पर वह तकलीफ़ कैसी है, मैं नहीं बयान कर सकती। मुझे याद पड़ता है, मैं लुई, अठारवें, के समय में हूं। मैं आदमी हूं। मेरा नाम मावील है। मैं पेरिस के एक दफ़्र में कर्म्मचारी हूं। लोग गलियों में लड़ रहे हैं और खून ख़राबा कर रहे हैं। मैं भी उनमें शामिल हूं। मैं ने भी कई आदमियों को मार डाला। मुझे मारने में मज़ा आता है। मैं बुरा आदमी हूं। ५० वर्ष की उम्र में मैं बीमार पड़ा। मैंने नौकरी छोड़ दी। इसके कुछ ही दिनों बाद मैं मर गया। मुझे अपने मृतक संस्कार तक की बातें स्मरण आ रही हैं।

इसके बाद कर्नल साहब ने मेव को उसके और दो पिछले जन्मों का स्मरण करने के लिए कहा। एक का तो उसे स्मरण अच्छी तरह आया। उस जन्म में वह स्त्री थी उसकी शादी एक अमीर आदमी से हुई थी। इस जन्म की भी बहुत सी बातें उसने बतलाईं। ४५ वर्ष की उम्र में क्षयरोग से उसकी इस जन्म में मृत्यु हुई। मृत्यु के समय का दृश्य भी मेव के चेहरे पर देख पड़ा। इसके बाद वह "अन्धकार" में फिर लुप्त हो गई। इसके पहले जन्म में मेव लड़कपनही में मर गई। इसके पीछे की बातें स्मरण करने में मेव को बहुत प्रयास पड़ने लगा। इससे कर्नल साहब ने उसे और पीछे नहीं जाने दिया।

कर्नल साहब कहते हैं कि यदि मेव के पूर्व जन्मधारी स्त्री पुरुषों का पता किसी दूसरे द्वारा से लग जाय कि वे सचमुचही थे, तो आत्मा का अविनाशित्व और पुनर्जन्म सप्रमाण सिद्ध हो जाय। अर्थात् आपका सन्देह अभी बना हुआ है!

भाषा और व्याकरण।

न में जो भाव उदित होते हैं, वे भाषा की सहायता से दूसरों पर प्रकट किये जाते हैं। मन की बातों को प्रकट करने का प्रधान उपाय भाषा है। सङ्केतों, अर्थात् इशारों, से भी मन के भाव प्रकट किये जा सकते हैं; पर यह उपाय अप्रधान है। इशारों से वह काम नहीं हो सकता जो भाषा से होता है। इससे, मनोभाव प्रकट करने का प्रधान साधन भाषा है। जिस तरह मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष और लता आदि की उत्पत्ति, वृद्धि और विनाश होता है, उसी तरह भाषा का भी होता है। भाषायें भी उत्पन्न होकर वृद्धि पाती हैं और कालान्तर में विनष्ट हो जाती हैं। मनुष्य और पशु पक्षी आदि की उम्र देश, काल, अवस्था और शरीर-बन्धन के अनुसार जुदा जुदा होती है। भाषाओं की भी उम्र, अनेक कारणों से, जुदा जुदा होती है। कोई भाषा सौ वर्ष, कोई दो सौ वर्ष, कोई पाँच सौ वर्ष और कोई हज़ारों वर्ष तक जीती रहती है। आहार और विहार के परिमाण को परिमित रखने और आरोग्य-शास्त्र के नियमों का उल्लंघन न करने से आदमी अधिक समय तक जीता रहता है; अल्पायु नहीं होता। इसी तरह व्याकरण के नियमों से भाषा के कलेवर को दृढ़ करने से उसका भी आयुर्बल बढ़ जाता है।

शब्दों के समूह का नाम भाषा है। शब्दों के उत्पन्न होने के बाद व्याकरण उत्पन्न होता है। पहले शब्द, तब अनुशासन—पहले साहित्य, तब व्याकरण। पाणिनि का एक सूत्र है "अथ शब्दानुशासनम्"। इसका नाम है अधिकारसूत्र। यहां "अनुशासन" में जो "अनु" उपसर्ग है वह इस बात को सूचित करता है कि शब्दों के अनन्तर उनका शासन किया गया है। अर्थात् पाणिनि ने सदा के लिए यह शब्दशास्त्र नहीं बनाया; किन्तु उनके समय तक शब्दों के जैसे प्रयोग होते थे, उन्हींका उन्होंने अनु-धावन किया है—उन्हींके प्रयोगसम्बन्धी नियम उन्होंने बना दिये हैं।

व्याकरण वह शास्त्र है जिसमें शब्दों और वाक्यों के परस्पर सम्बन्ध के अनुसार अपेक्षित अर्थ के जानने के नियम होते हैं। अथवा यों कहिए कि जिसके पढ़ने से ठीक ठीक लिखना और बोलना आता है। पर हम देखते हैं कि अशिक्षित देहाती व्याकरण नहीं पढ़े होते, तथापि उनकी भी बोली लोग समझ लेते हैं। अथवा स्त्रियां और बालक एकही दो किताब पढ़कर, बिना व्याकरण पढ़ेही, पत्र लिखने लगते हैं और उनके लिखने का मतलब हम लोग समझ लेते हैं। बोलने और लिखने का मतलब सिर्फ़ इतना ही है कि जो कुछ बोला या लिखा जाय, वह दूसरे की समझ में आ जाय। यदि यह बात हो सके तो व्याकरण की फिर क्या आवश्यकता? इस दशा में व्याकरण का महत्व बहुत कम समझना चाहिए। शब्द चाहे जैसे उलट फेर कर रक्खे जायँ, यदि उनमें कही गई बात समझ में आजाय तो व्याकरण अपने घर बैठा रहे। "गो-दुग्ध," "दूध गाय का," और "गाय का दूध" इन तीनों प्रयोगों का अर्थ समझ में आता है। यदि व्याकरण इसलिए है कि उसकी सहायता से लोग प्रयुक्त भाषा का अर्थ ठीक ठीक समझ सकें तो व्याकरण को चाहिए कि वह इन तीनों प्रयोगों को शुद्ध बतलावे; क्योंकि तीनों से तद्गत अर्थ का बोध होने में कोई बाधा नहीं आती। एक और उदाहरण लीजिए। एक प्रान्त के लोग बोलते हैं—"हम जे बात नाहिं जानत"। दूसरे प्रान्त के बोलते हैं—"हम इस बात को नहीं जानते"। तीसरे प्रान्त के बोलते हैं—"हम यह बात नहीं जानित"। अपने अपने प्रान्त में तीनों प्रयोग शुद्ध हैं—और व्याकरण के अनुसार शुद्ध हैं—क्योंकि व्याकरण, प्रयुक्त शब्दों और वाक्यों का अनुशासन मात्र है। पर ये वाक्य अपने से भिन्न प्रान्तवालों की दृष्टि में ज़रूर

खटकते हैं। अतएव व्याकरण की आवश्यकता सिर्फ़ इसलिए है कि नियम-रचना के द्वारा सब प्रान्तों के लिए वह एक सी भाषा सङ्गठित करे। व्याकरण की सहायता से भाषा को स्थिरता आजाती है और वह अधिक दिन तक जीवित रहती है। व्याकरण के नियमों को जानकर लोग अतीत साहित्य को अच्छी तरह समझ सकते हैं। नया नया साहित्य हमेशा उत्पन्न हुआ करता है; नई नई रचनारीति हमेशा निकला करती है। इस कारण, किसी भी व्याकरण के नियम सर्व-व्यापक नहीं हो सकते। तथापि उनसे यह लाभ अवश्य होता है कि जिस समय तक के साहित्य को लक्ष्य करके जो व्याकरण बनता है उस समय तक की रचना के समझने में बहुत सुभीता होता है।

बहुत दिन से हिन्दी भाषा लिखी जाती है। पर इसका एक भी सर्वमान्य व्याकरण अभी तक नहीं बना। इसका फल यह हुआ है कि पचास वर्ष की पुरानी भाषा आजकल की भाषा से नहीं मिलती। यहां तक कि वर्तमान समय में भी एक ही वाक्य को एक लेखक एक तरह लिखता है, दूसरा दूसरी तरह, तीसरा तीसरी तरह। एक अख़बार की भाषा दूसरे की भाषा से नहीं मिलती और दूसरे की तीसरे की भाषा से। इससे क्या हुआ है कि भाषा को अनस्थिरता प्राप्त हो गई है। और बहुत सम्भव है कि यदि यही दशा बनी रही तो आज से सौ वर्ष बाद के लोग आज कल की भाषा के बहुत से वाक्यों को न समझ सकें।

लिखने और बोलने की भाषा में कुछ भेद होता है। लिखने की भाषा थोड़ी बहुत अस्वाभाविक होती है और लेखक के प्रयत्न और परिश्रम से सिद्ध होती है। पर बोलने की भाषा स्वाभाविक होती है। उसके प्रकाशन में किसी तरह की चेष्टा नहीं दरकार होती। लिखने की भाषा अधिक दिनों तक एक रूप में रहती है। बोलने की भाषा में बहुत शीघ्र शीघ्र फेरफार होते रहते हैं। इसलिए कथित भाषा चिरकाल तक एक रूप में नहीं रहती।

पर हैं दोनों प्रकार की भाषायें नश्वर—नाशवान्। यह नहीं कि वे हमेशा एकसी बनी रहें।

मनुष्य और पशु-पक्षी आदि जीवधारियों की तो कोई बात ही नहीं, स्वयं यह संसार ही नश्वर है। उसमें दिन रात परिवर्तन हुआ करता है। जो चीज़ आज है वह कल नहीं, जो कल है वह परसों नहीं। पर इस नश्वरता से क्या किसीको कोई तकलीफ़ होती है? नहीं। समय के अनुसार मनुष्य की इच्छा और अपेक्षा में भी अन्तर होता जाता है। इससे उसे सांसारिक परिवर्तन नहीं खलते। भाषा का भी यही हाल है। जो भाषा सौ वर्ष पहले थी वह अब नहीं है; जो अब है वह आगे न रहेगी। देश, काल और मनुष्य की स्थिति के अनुसार उसमें रद बदल हुआ ही करता है और बराबर हुआ करेगा। उसे कोई रोक नहीं सकता। परिवर्तन होना ईश्वरीय नियम है। उसकी प्रतिबन्धकता कौन कर सकेगा? परन्तु भाषा की नश्वरता और परिवर्तनशीलता से मनुष्य की कोई हानि नहीं। जो भाषा जिस समय होती है, उसीमें वह अपने मनोभाव प्रकट करता है। आज की, और आज से दो सौ वर्ष आगे की, भाषा में जितना भेद हो जायगा, उतना ही भेद मनुष्यों में भी हो जायगा। अतएव, सहज में, उनको भाषा का भेद ही न मालूम होगा। मालूम होगा तब जब वे अतीत और वर्तमान भाषाओं का परस्पर मुक़ाबला करेंगे। जैसे जैसे मनुष्य की स्थिति में परिवर्तन होता है, वैसे ही वैसे भाषा में भी परिवर्तन होता है। भाषा मनुष्य की सहचारिणी है। यदि मनुष्य अपनी स्थिति में परिवर्तन होना रोक दे तो भाषा में परिवर्तन होना आपही रुक जाय। पर यह बात मनुष्य के वश की नहीं।

व्याकरण, भाषा की वृद्धि का अवरोधक है। वह भाषा की सजीवता का नाश करनेवाला है। भाषाओं के भी जीवन की सीमा होती है। वे भी उत्पन्न होकर बढ़ती हैं और प्रतिकूल समय आते ही नाश को प्राप्त हो जाती हैं। जो भाषा उन्नति

कर रही है—बढ़ रही है—उसमें व्याकरण की पख़ लगाना मानों उसको बाढ़ को रोक देना है। व्याकरण एक प्रकार की बेड़ी है। भाषा के पैरों से उसका योग होते ही भाषा बेचारी भयभीत होकर जहां की तहां रह जाती है। उसकी सारी सञ्चरण-शीलता चली जाती है। इस कारण, बोलने की भाषा को व्याकरण की शृङ्खला से बाँधने की ज़रूरत नहीं। उसे यथेच्छ सञ्चरण करने देना चाहिए। और उसका व्याकरण बन भी नहीं सकता। क्योंकि जो भाषा परिवर्तनशील है उसका व्याकरण बनावैगा कोई कितनी दफ़ा? जो प्रयोग, या जो वाक्य, या जो महाविरा आज कल व्याकरण-सिद्ध और सर्वसम्मत है, वही कुछ काल बाद निषिद्ध माना जायगा। तो क्या उस समय फिर एक नया व्याकरण बनैगा? नहीं, यदि इस तरह नये नये व्याकरण बनते रहेंगे तो अनन्त व्याकरणों की ज़रूरत होगी।

पर जो भाषा लिखी जाती है उसकी बात दूसरी है। जिस भाषा में बड़े बड़े इतिहास, काव्य, नाटक, दर्शन, विज्ञान और कलाकौशल से सम्बन्ध रखनेवाले महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे जाते हैं, उसका शृङ्खलाबद्ध होना बहुत ज़रूरी है। उसका व्याकरण बनना चाहिए। लिखित भाषाही में ग्रन्थकार अपने कीर्तिकलाप को रखकर अपना नश्वर शरीर छोड़ जाते हैं। व्याकरण ही उस कीर्ति का प्रधान रक्षक है। विविध विषयों पर ग्रन्थ लिखनेवाले ग्रन्थकारों के अनुभव, खोज, परीक्षा और विचारों से भावी सन्तति को चिरकाल तक तभी लाभ पहुँचेगा जब ग्रन्थों की भाषा व्याकरण के नियमों के द्वारा दृढ़ कर दी जायगी। व्याकरण का नियमन भाषा की उन्नति का प्रतिबन्धक अवश्य है। पर यदि लिखने की भाषा उसका आश्रय लेकर अपनी परिवर्तनशीलता को न रोकैगी तो उससे समाज की बड़ी हानि होगी। क्योंकि, परिवर्तन होते होते कोई समय ऐसा आवेगा जब पुरानी भाषा को लोग बिलकुलही न समझ सकेंगे। अतएव उस भाषा में भरे हुए ज्ञान-समूह से वे लोग वञ्चित रह जायँगे। पुरानी भाषाओं के भी जाननेवाले हुआ करते हैं, परन्तु बहुत थोड़े। इस समय पाली और पुरानी प्राकृत भाषाओं के जाननेवाले कितने हैं? दो चार आदमियों के प्राचीन-भाषाभिज्ञ होने से सारे समाज को लाभ नहीं पहुँच सकता। पाली और प्राकृत को जाने दीजिए। रासो की भाषा को आप देखिये। उसमें कितने अपरिचित शब्द भरे हुए हैं। छ सात सौ वर्ष में तो यह दशा है; हज़ार दो हज़ार वर्ष में यदि भाषा की वर्तमान स्थिति ज्यों की त्यों बनी रही, तो रासो बिलकुल ही समझ में न आवैगा। और सम्भव है, तुलसी, सूर और बिहारी की भाषा भी किसी समय, भविष्यत् में, लोगों को वैसी हो अटपटी मालूम हो जैसी रासो की भाषा इस समय हम लोगों को मालूम होती है।

इन्हीं कारणों से ग्रन्थकार और समाज दोनों के लाभ के लिए यह बात बहुत ज़रूरी है कि लिखित भाषा, कथित भाषा की अपेक्षा, अधिक समय तक स्थायी रहे। चिरकाल तक उसे स्थायी करने का एक मात्र साधन व्याकरण है। यदि व्याकरण अपने अखण्डनीय नियमों से उसे बाँध दे तो वह उसी अवस्था में बहुत काल तक बनी रहे। वैदिक काल से आज तक हमारे पूर्वज कौन कौन सी भाषायें बोलते रहे, इसका पता लगाना इस समय कठिन है। पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि तब से आज तक अनेक भाषायें बोली गईं। तथापि वे सब प्रायः लुप्त हो गईं। इस देश की पुरानी भाषाओं में से कोई भाषा विद्यमान भी है? है। कौन? संस्कृत भाषा। वह लिखित भाषा है। किसी समय वह बोली भी जाती रही होगी। पर जब से वह व्याकरण के दृढ़तम नियमों से प्रतिबद्ध हुई, तब से वह स्थिर हो गई। इसका फल यह हुआ कि हम आज उसे प्रायः उसी रूप में देखते हैं जिस रूप में वह कई हज़ार वर्ष पहले थी। वाल्मीकि, व्यास, शङ्कर, कालिदास, भारवि औ

भवभूति आदि ने इसी भाषा में ग्रन्थरचना की और उनके ग्रन्थों को संस्कृत व्याकरण की सहायता से हम लोग अब भी अच्छी तरह समझ सकते हैं। पाली और प्राकृत भाषाओं में भी अनेक अच्छे अच्छे ग्रन्थ हैं। इन भाषाओं का व्याकरण भी है। परन्तु ये अशिक्षित और ग्राम्य लोगों की भाषायें थीं। उनका व्याकरण अपूर्ण है। उनमें कई एक वर्ण ही नहीं हैं। इसीलिए वे चिरकाल तक सजीव दशा में नहीं रहीं। लिखित भाषा की सजीवता का सबसे बड़ा लक्षण यह है कि वह अधिक दूर तक व्यापक है। जो भाषा जितनी ही अधिक व्यापक होती है, जिस भाषा का प्रचार जितने ही अधिक प्रान्तों में होता है, जो भाषा जितनीही अधिक लोगों की समझ में आती है, वह भाषा उतनीही अधिक सजीव समझी जाती है।

हिन्दी में आज तक कोई अच्छा व्याकरण नहीं। व्याकरण कई हैं। पर सब छोटे छोटे हैं। किसी में कुछ कम है, किसी में कुछ। फिर जो कुछ है उसका भी सर्वांश सर्व-सम्मत नहीं है। ऐसा एक भी व्याकरण नहीं जिसमें सब बातों का विचार किया गया हो। इसीसे हिन्दी की दशा अनस्थिर हो रही है। एक तो हिन्दी भाषा में साहित्य का एक प्रकार से अभावही है। दूसरे उसकी अनस्थिरता उसे और बरबाद कर रही है। जिस अख़बार को उठाइए, जिस पुस्तक को उठाइए, सबकी वाक्यरचना में आपको भेद मिलैगा। व्याकरण के नियम निश्चित न होने से सब अपने अपने क्रम को ठीक समझते हैं। इसकी तरफ़ लोगों का बहुत कम ध्यान जाता है कि हमारा वाक्य व्याकरण-सिद्ध है या नहीं।

यहां पर हम व्याकरणविरुद्ध हिन्दीरचना के दो चार उदाहरण देना चाहते हैं। पर जिनकी रचना के वे उदाहरण हैं उनसे, इस कारण, हम शत वार क्षमा प्रार्थना करते हैं—चाहे वे इस समय इस लोक में हों चाहे परलोक में। इसमें बुरा मानने की बात नहीं। हम स्वयं भी बहुधा व्याकरण-विरुद्ध लिख जाते हैं। इसका कारण यह है कि व्याकरण की तरफ़ लोगों का ध्यानही कम है। और एक की देखा देखी दूसरा भी उसकी कम परवा करता है। अच्छा, अब उदाहरण लीजिए—

"मेरी बनाई वा अनुवादित वा संग्रह की हुई पुस्तकों को श्री बाबू रामदीन सिंह 'खड्गविलास' के स्वामी का कुल अधिकार है और किसी को अधिकार नहीं कि छापै।

२३ सितम्बर १८८२—हरिश्चन्द्र।"

इस वाक्य में 'पुस्तकों' के आगे कर्म्म का चिन्ह 'को' विचारणीय है। "पुस्तकों को * * * स्वामी का कुल अधिकार है"। यह वाक्य व्याकरण-सिद्ध नहीं। यदि 'को' के आगे 'छापने का' ये दो शब्द आ जाते तो वाक्य की शिथिलता जाती रहती। फिर 'छापै' के पहले एक सर्वनाम भी अपेक्षित है। यहां पर मतलब 'पुस्तकों को छापै' से है। पर यदि सर्वनाम भी कोई चीज़ है तो 'पुस्तकों को' की जगह पर 'उन्हें' या 'उनको' ज़रूर आना चाहिए। सम्भव है, बाबू हरिश्चन्द्र ने इस वाक्य को ठीक लिखा हो, पर छापेवालों की असावधानी से ये त्रुटियां रह गई हों। हिन्दी लेखकों में एक बात और भी हम बहुधा व्याकरण-विरुद्ध देखते हैं। वह ब और व का अभेद है। कहीं ब की जगह व हो जाता है और कहीं व की जगह ब। ऊपर के अवतरण में जो 'अनुबादित' शब्द है उसमें 'वा' की जगह 'बा' हो गया है। पर जिस पुस्तक की पीठ पर यह नोटिस छपी है, उस के नाम "वकरी विलाप" की बकरी में ब की जगह व होगया है। ब और व में भेद है। यदि भेद न होता तो एक के बदले दो वर्णों को ज़रूरत ही क्या थी? सामासिक शब्दों को इकट्ठा लिखने की तरफ़ भी लोगों का कम ध्यान है। 'बकरी विलाप' एक सामासिक शब्द है। पर हरिश्चन्द्र जी की पुस्तक में, जो १८८६ की छपी हुई है, उसके दो खण्ड कर दिये गये हैं।

"धरती पर अनेक देश हैं, और उनमें मनुष्य बसते हैं। परन्तु सब (१) देश के लोगों की एक सी बोली नहीं है।"—बालबोध। राजा शिवप्रसाद।

"बिजली कुछ बादलों ही में नहीं रहती। थोड़ी बहुत (२) सब जगह और अक्सर चीज़ों में रहा करती है। यहां तक कि (३) हमारे और तुम्हारे बदन में भी है। और कलों के ज़ोर से भी (४) निकल सकती है"।—विद्याङ्कुर, २३वीं आवृत्ति। राजा शिवप्रसाद।

"औरंगज़ेब ने तख़्त पर बैठ कर अपना लक़ब आलमगीर रक्खा। मुल्तान के पास तक (५) दाराशिकोह का पीछा किया। लेकिन जब (६) सुना कि दाराशिकोह मुल्तान से सिन्ध की तरफ़ भाग गया और शुजा बंगाल से आता है, फौरन (७) इलाहाबाद की तरफ़ मुड़ा।"—इतिहास-तिमिरनाशक १। राजा शिवप्रसाद।

इन अवतरणों में (१) 'सब देश' की जगह 'सब देशों' क्यों न हो? (२) 'थोड़ी बहुत' के आगे 'बिजुली' क्यों न हो? और जहां (३) और (४) अङ्क हैं, वहां 'वह' क्यों न हो? (५) और (६) की जगह 'उसने' और (७) की जगह 'वह' भी अपेक्षित है। कर्तृपदों का ऐसा समूल-संहार शायद ही और किसी लेखक की इबारत में पाया जाय। यदि इस तरह की इबारत अच्छे मुहाविरे में गिनी जाय तो नमः शब्दशास्त्राय!

"यंत्रालयाध्यक्ष महाशय की इस पर ऐसी कृपा हुई कि आज एक वर्ष में छाप कर अब आप लोगों के हस्त गत होने के योग्य किया है।"—कादम्बरी। गजाधरसिंह।

इस अवतरण में 'छाप कर' या 'किया है' के पहले 'इसे' या 'इसको' शब्द अपेक्षित है। 'किया है' का कर्म्म ज़रूर होना चाहिए। उसके बिना वाक्य लँगड़ा मालूम होता है। 'किया है' क्रिया का कर्त्ता कौन है? यंत्रालयाध्यक्ष महाशय। पर सकर्मक क्रिया के कर्ता के आगे कर्ता का चिन्ह 'ने' आना चाहिए। यथा—मैंने काम किया, आपने फल खाया, उन्होंने ग्रन्थ लिखा, इत्यादि। अतएव 'कृपा हुई' के बाद कहीं पर 'आपने' या 'उन्होंने' की ज़रूरत जान पड़ती है। अथवा यदि यह वाक्य दो टुकड़ों में बाँट दिया जाता और 'किया है' के लिए 'ने'-युक्त कर्ता रख दिया जाता, तो भी वाक्य का ढीलापन जाता रहता। किसी किसी का मत है कि सकर्म्मक और अकर्म्मक दोनों तरह की क्रियाओं के लिए एक ही प्रकार का कर्ता हो सकता है। यथा—

हम जब घर गये, लड़के को बीमार देखा।

यहां पर 'देखा' और 'गये' दो प्रकार की क्रियायें हैं; पर उनका कर्ता 'हम' 'गये' के लिए भी है और 'देखा' के लिए भी। सकर्म्मक 'देखा' के लिए 'हमने' की ज़रूरत नहीं समझी गई। इस तरह का प्रयोग व्याकरण-विरुद्ध है। पर व्याकरण सिर्फ़ अपने समय तक की भाषा के मुहाविरों का नियमन करता है। अतएव यदि सब लेखक इस तरह के प्रयोगों को साधु मान लें तो कोई आपत्ति की बात नहीं।

"अँग्रेज़ी में सब दफ़्तर अँग्रेज़ों में हैं जो अँग्रेज़ों की भाषा है। यह चुतियापन्थी नहीं कि आप जिस भाषा को स्वप्न में भी नहीं देखा उसमें दफ़्तर हो। * * * फिर आप अङ्गरेज़ी अख़बारों को, जो आपको सरासर गालियां देते हैं और नित्य बासी मुँह आपके राज्य का सत्यानाश चाहते हैं, उन्हें तो ख़रीदते हैं। * * * * अङ्गरेज़ी अख़बार तो ख़ास इसी वजह से लिये जाते हैं कि वह रियासत के ख़िलाफ़ न लिखें और उर्दू अमलावालों के लिये लेते हैं।"—भारतेन्दु ३-७। श्रीराधाचरण गोस्वामी।

"आप जिस भाषा को स्वप्न में भी नहीं देखा"। इसमें 'आप' के आगे एक 'ने' दरकार है। तीसरे वाक्य, "आप अङ्गरेज़ी अख़बारों को * * * उन्हें तो ख़रीदते हैं" में 'उन्हें' शब्द अधिक है। चौथे वाक्य के पूर्वार्द्ध में 'लिये जाते

हैं कर्म्मकर्तृवाच्य प्रयोग, पर उत्तरार्द्ध में 'लेते हैं' कर्तृवाच्य। यदि उत्तरार्द्ध में कर्तृवाच्य ही लिखना था तो कर्ता 'हम' लिखना चाहिए था। चौथे वाक्य में 'अङ्गरेज़ी अख़बार' बहुवचन में है; परन्तु उनके लिए आया हुआ सर्वनाम 'वह' एकवचन में। 'वह' की जगह 'वे' क्यों न हो? हम देखते हैं कि लोग 'वह' शब्द को बहुवचन में भी लिखते हैं और एकवचन में भी। यदि अधिक लेखकों को 'वे' की जगह भी 'वह' ही लिखना अच्छा लगता हो तो वही सही। इस दशा में व्याकरण बनाने वालों को चाहिए कि वे 'वह' को एकवचन और बहुवचन दोनों में रक्खें। ऊपर के अवतरण में जो शब्द पतले अक्षरों में छपा है, वह अत्यन्त ग्राम्य है। कोई भी सम्पादक किसी राजा के सामने वैसा शब्द अपने मुँह से न निकालैगा।

"यह एक पुस्तक नागरी में है। * * * * जिनको ये दोनों पुस्तक लेनी हों * * * शाहजहांपुर से मँगा लें। * * * तृतीयभाग में निषेधकों के आपत्तियें और कल्पनाओं के विधि-पूर्वक उत्तर हैं।"—काशीनाथ खत्री, सिरसा।

'पुस्तक' के पहले 'एक' शब्द अनावश्यक जान पड़ता है। 'दोनों पुस्तक' की जगह 'दोनों पुस्तकें' क्यों न हो? 'आपत्ति' और 'कल्पना' शब्द स्त्री-लिङ्ग हैं। अतएव उनके सम्बन्ध के सूचक चिन्ह 'के' की जगह स्त्रीलिङ्ग 'को' होना चाहिये।

इस तरह की सारी त्रुटियों को हम मुहाविरा नहीं समझते। यदि वे सब मुहाविरा समझ ली जायँगी तो मुहाविरा की परिभाषा के बाहर शायद एक भी त्रुटि न रह जाय। सभी उसमें आ जायँगी। हम मुहाविरा के ख़िलाफ़ नहीं। मुहाविरा ही भाषा का जीव है। पर उसकी सीमा का होना आवश्यक है।

अब हम अङ्गरेज़ी, संस्कृत, और बँगला आदि भाषाओं के व्याकरण-सम्मत वाक्यों के कुछ उदाहरण देना चाहते हैं। इन उदाहरणों में कर्ता, कर्म्म, क्रिया, लिङ्ग, वचन और विभक्ति आदि सम्बन्धी कोई दोष नहीं हैं।

अङ्गरेज़ी।

"Absolute Silence falls. The wind drops. Plants close their leaves for sleep. Animals seek resting places as on the approach of night; birds hide in the tree-tops, and fowls go to roost. The night plants open their petals; bats emerge; stars appear. The air grows more chill, for the temperature has suddenly fallen, and the wind has dropped."—*Pearson's Magazine*, August 1905.

संस्कृत।

पतिरवोचत्—"यथासम्भवं त्वरितमहं प्रत्यावर्तिष्ये। सर्वमेवाहं ममास्यामनुपस्थितौ तुभ्यं विसृजामि, आशंसे च त्वं तथा प्रयतिष्यसे यथास्माकं बहुमतेयं वत्सा न क्लिश्यत इति"।

माताकथयत्—"भद्रं वत्से, पिता तावत् ते प्रयातः, त्वमिदानीं जनन्या सह सुशीलशिशुरिव गृहं रक्षिष्यसि"।

"एवं, परन्तु प्रत्यावृत्ते ताते, उपायनमेकं मे प्रदातुं न त्वं जननि तं प्रार्थयिष्यसे?"

—मित्रगोष्ठी-पत्रिका, २-२।

बँगला।

"राखालेर स्त्री मृत्युशय्याय। डाक्तार कविराज विदाय लइयाछेन; अवशिष्ट परमायु बड़जोर २।३ घण्टा मात्र। क्रन्दनरत आत्मीय स्वजन मुमुर्षु के घिरिया आछेन। मुमुर्षु चक्षु उन्मीलित करिया सकलेर दिके चाहिया चाहिया दृष्टि फिराइया लइतेछिलेन। राखालेर पिता परलोक-यात्रीर मनोभाव बूझिया पुत्र के डाकिया बलिलेन, 'राखाल, आमरा बाहिरे याइतेछि; तुमि एइ खाने एकटु थाक'। सकले बाहिरे गेलेन; राखाल स्त्रीर शियरे बसिल"।—प्रवासी, ५-४।

इस अवतरण में 'मुमुर्षु' शब्द ज़रा विचारणीय है। वह 'मुमूर्षु' क्यों न हो?

मराठी।

"पार्वती बाई कांहींच बोलली नाही। फक्त हंसल्यासारखं मात्र तिनें केलें। त्या दोघी निघाल्या। त्यांच्या मागें माग तीही चालली; पण त्यांची सोबत वाडीच्या दारापर्यंत च होती। दारातून पडल्या बरोबर त्या फणसवाडी कड़े वडल्या आणि ही त्याच्या उलट बाजू ला चालली। ती गोष्ट ऐकल्यापासून तिच्या अन्तःकरणांत एक दम लख्ख उजेड पडल्यासारखें झालें।"
—मनो-रञ्जन आणि निबन्धचन्द्रिका—खरीं की खोटीं।

हिन्दी।

"हे लार्ड कर्ज़न, तुम चले ही जाओगे। हम जानते हैं, कि तुम बड़े आत्माभिमानी हो,—मनाने से भी न मानोगे। तुम हमैं पहचानो वा न पहचानो; किन्तु हमने तुम्हें पहचान लिया है; हमने तुम्हें समझ लिया है; हम तुम्हें जान गये हैं। तुम तेजस्वी हो; तुम आत्माभिमानी हो।"

जैसे और और भाषाओं के अवतरण व्याकरण की दृष्टि से सिद्ध और पूर्ण हैं, वैसेही ऊपर का हिन्दी का अवतरण भी व्याकरण-सम्मत भाषा का बहुत अच्छा नमूना है। उसे हमने हिन्दी के एक समाचारपत्र से लिया है। इस अवतरण के प्रत्येक वाक्य में अपेक्षित कर्ता, कर्म्म और क्रिया आदि, व्याकरण के अङ्ग, विद्यमान हैं। किसीकी त्रुटि नहीं। इसके प्रत्येक वाक्य का पदपरिचय यदि किया जाय तो अच्छी तरह से हो सकता है। जो वाक्य पूर्ण विराम से नहीं किन्तु अर्द्ध विराम (;) से भी पृथक् किये गये हैं, उनके लिए भी कर्तृपद अलग अलग है। इससे वाक्य में ओजस्विता आगई है। यह ओजस्विता विशेष करके तुम, तुम्हें, हम, हमैं और हमने आदि शब्दों की पुनरुक्ति से उत्पन्न हुई है। "हम तुम्हें जान गये हैं" की जगह यदि "हमने तुम्हें जान लिया है" होता तो यह ओजस्विता कुछ और बढ़ जाती; क्योंकि, ऐसा करने से इस वाक्य का मेल इसके पहले के दो वाक्यों से मिल जाता।

जिस लेखक ने ऐसी अच्छी हिन्दी लिखी है, उसीकी हिन्दी का एक और नमूना देखिए—

"किसीसे नाराज़ होना वा विद्वेष करना उचित नहीं है। (१) फिर तुमसे नाराज़ क्यों कर हो सकते हैं? हमैं बिना जाने पहचाने तुम स्वदेश चले। * * * (२) हमैं समझ लेते तो बड़ी आशा होती। * * * यह कहकर सन्यासी चले गये। (३) गाँव में फिर दिखाई न दिये। * * * (४) उत्तमो ने उन आदमियों के साथ दो गांव को छान डाला; पर बालिका का पता कहीं न लगा। * * कर्नल इमरसन ने इस बात को मजिस्टर के पास पेश किया। (५) उन्होंने जज के पास भेज दिया।"

(१) इस वाक्य में कर्तृपद 'हम' अपेक्षित है; (२) में 'तुम'; और (३) में 'वे'। (४) में गाँव की जगह बहुवचन 'गावों' होता तो अच्छा होता। (५) में सर्वनाम 'उसे' या 'उसको' रह गया है। इसके पहले के उदाहरण में कर्ता और कर्म्म की पुनरुक्तियां हुई हैं; वे यदि न होतीं तो भी वाक्य-बन्ध न बिगड़ता। परन्तु इस अवतरण में, जहां कर्ता और कर्म्म आदि की ज़रूरत थी, वे एक दम ही छोड़ दिये गये हैं। इससे यह नहीं सूचित होता कि लेखक को उनका प्रयोग नहीं आता, या वह व्याकरण नहीं जानता। नहीं, ये दोनों बातें नहीं। बात यह है कि हिन्दी-भाषा अभी अनस्थिर दशा में है। व्याकरण के नियमों की तरफ़ किसीका विशेष ध्यान ही नहीं है। इन त्रुटियों के रहते भी वाक्यों का मतलब समझने में बाधा नहीं आती। परन्तु यदि इसी प्रधार पर इस तरह की इबारत लिखी जायगी तो भाषा को कभी स्थैर्य्य आने का नहीं। सब लोग मनमानी भाषा लिखते रहेंगे और व्याकरण के नियम व्यर्थ हो जायँगे।

हम यह कह आये हैं, कि हम मुहाविरे के ख़िलाफ़ नहीं। परन्तु जिस तरह की भाषा के नमूने हमने ऊपर दिये, याद रखिए, वे हिन्दी के प्रसिद्ध प्रसिद्ध लेखकों के हैं। वे यदि सभी मुहाविरे समझे जायँगे तो, फिर, सारा शब्दसमूह ही मुहाविरा-रूपी क़िले के भीतर सुरक्षित हो बैठैगा। पर ऐसा होना उचित नहीं; मुहाविरे की भी सीमा है। यह ज़रूर है कि कुछ मुहाविरे ऐसे हैं जिनमें कर्ता और कर्म्म आदि पदों को स्पष्ट रखने की ज़रूरत नहीं होती। वे गुप्त रहते हैं। उनके गुप्त रहने ही से वाक्य में शोभा आती है। यथा—

(१) सुनते हैं, राजपूताना में अकाल पड़ा है।

(२) दामोदर, देर मत करो; हमें दफ़्तर जाना है।

(३) कानपुर से एक नया अख़बार निकला है। चल जाय तो है।

इन वाक्यों में 'सुनते हैं', 'देर मत करो' और 'चल जाय' के कर्तृ पद लुप्त हैं और उनका अदर्शन कान को खटकता भी नहीं। इससे ऐसे वाक्यों की गिनती मुहाविरे में हो सकती है। पर, सब कहीं मुहाविरे के बल पर असंयत भाषा लिखना मानो व्याकरण को तिलाञ्जलि देना और भाषा की अनस्थिरता को बढ़ाना है।

आजकल कुछ नये प्रकार के प्रयोग दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए नीचे के वाक्य, जिन्हें हम हिन्दी के अख़बारों से उद्धृत करते हैं, देखिए—

(१) लाचार फ़ौज की सहायता से गिरजा घेर लिया और उसको पकड़ कर क़ैदख़ाने में पहुँचाया गया।

(२) एक स्त्री को सिखा पढ़ा कर उन स्त्रियों का भेद लेने के लिये भेजा गया।

(३) लार्ड किचनर को प्रसन्न करने के लिये लार्ड कर्ज़न को बेइज़्ज़त किया गया।

(४) यदि मुझे वालंटियर नहीं बनाया जायगा तो * * मैं * * अभियोग उपस्थित करूंगा।

जान पड़ता है, इस तरह के प्रयोगों को हमने उर्दू वालों से सीखा है। क्योंकि उर्दू की इबारत में इस तरह के प्रयोग बहुलता से पाये जाते हैं। लाहौर से "तरक़्क़ी" नाम का एक मासिक पत्र निकलता है। उसकी अगस्त की संख्या अभी आज (३ सितम्बर, १९०५) हमारे पास आई है। उसमें इटली के प्रसिद्ध कवि दान्ते का जीवनचरित है। इस चरित के आरम्भ ही में है—

"लुत्फ़ तो तबही होता कि नज़्म को नज़्म की सूरत में दिया जाता।"

'नज़्म' यहां पर कर्म्म है। उसको दिया जाता क्या? ऊपर हिन्दी के चार उदाहरणों में से पहले में कुछ विशेषता है; शेष तीनों एकही तरह के हैं। पहले उदाहरण के वाक्य के दो भाग हैं। पहले भाग का वाच्य एक प्रकार का है और दूसरे का दूसरे प्रकार का। 'गिरजा घेर लिया' की जगह यदि 'गिरजा घेर लिया गया' होता तो वह व्याकरणसम्मत हो जाता। या यदि उसका भी रूप उत्तरार्द्ध के वाच्य का ऐसा कर दिया जाता, तो पूरा वाक्य एक सा हो जाता। इस तरह के (स्त्री को भेजा गया, लार्ड कर्ज़न को बेइज़्ज़त किया गया, आदि) वाक्यों को पण्डित केशवराम भट्ट ने अपने व्याकरण में भाववाच्य का उदाहरण माना है। क्योंकि उन्होंने 'मुझसे लड़कों को रेल पर चढ़ा दिया गया' भाववाच्य के उदाहरण में लिखा है। अच्छा, अब आप देखिए कि इस तरह के प्रयोग भाववाच्य हैं या नहीं।

संस्कृत में वाच्य चार प्रकार के हैं,—कर्तृ वाच्य, कर्म्मवाच्य, भाववाच्य और कर्म्मकर्तृ वाच्य।

कर्तृ वाच्य उसे कहते हैं जिसके कर्ता में प्रथमा और कर्म्म में द्वितीया विभक्ति होती है; और क्रिया के लिङ्ग और वचन कर्ता के अनुकूल होते हैं। यथा—लड़का पुस्तक पढ़ता है; मैं चन्द्रमा देखता हूं; वे काग़ज़ काटते हैं।

कर्म्मवाच्य उसे कहते हैं जिसमें कर्ता तृतीया विभक्त्यन्त और कर्म्म प्रथमा विभक्त्यन्त होता है;

ग्रौर क्रिया के लिङ्ग ग्रौर वचन कर्म्म के ग्रनुकूल होते हैं। यथा—मुझसे झूठ बात न कही गई; उनसे प्रश्न का उत्तर न दिया गया; उससे सब काम न हो सके।

भाववाच्य उसे कहते हैं जिसमें कर्ता तृतीया विभक्तियुक्त होता है। इसमें क्रिया को कर्म्म की ग्रपेक्षा नहीं रहती ग्रौर वह हमेशा पुल्लिङ्ग, एक-वचन, होती है। यथा—मुझसे बैठा नहीं जाता; तुमसे चला नहीं गया; उनसे बोल नहीं ग्राया।

कर्म्मकर्तृवाच्य* में कर्म्म ही कर्ता हो जाता है। ग्रर्थात् कर्ता कर्म्मवत् व्यापार करता है। उसमें प्रथमा विभक्ति होती है ग्रौर क्रिया के लिङ्ग ग्रौर वचन, कर्ता के ग्रनुकूल होते हैं। यथा—भोजन बनाया गया; वह पहुचाया गया; वह भेजो गई; वे बेइज्ज़त किये गये।

इन लक्षणों को हमने संस्कृत-व्याकरण से दिया है। जिसका जो चाहै वह इन्हें वहां देख ले। या, वहां नहीं तो, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के व्याकरण में भी वह इन्हें देख सकता है। ग्रब देखिए, पूर्वोक्त चार उदाहरण इन वाच्यों में से किसके ग्रन्तर्गत ग्रा सकते हैं? किसीके नहीं। वे वाक्य कर्म्मकर्तृवाच्य हैं; परन्तु कर्ता में प्रथमा की जगह द्वितोया विभक्ति है ग्रौर क्रिया भाववाच्य की सी एक वचन पुल्लिङ्ग है। उदि वे इस तरह लिखे जाते—

(१) * * * वह पकड़ कर क़ैदखाने में पहुँचाई गई।

(२) एक स्त्री * * * भेद लेने के लिये भेजी गई।

(३) * * * लार्ड कर्जन बेइज्ज़त किये गये।

(४) यदि मैं वालण्टियर न बनाया जाऊंगा * * *

—तो कर्म्मकर्तृवाच्य के लक्षण से लक्षित हो जाते ग्रौर उनकी सदोषता जाती रहती। हिन्दी की उत्पत्ति संस्कृत से है। इसलिए हमको यथा-सम्भव संस्कृत व्याकरण की सहायता से उसे नियन्त्रित करना चाहिए। हां, यदि पूर्वोक्त प्रकार के मुहाविरे से लेखकों को बहुतही प्रेम हो गया हो, ग्रथवा, यदि उससे भाषा में विशेष सौन्दर्य ग्राने की उन्हें ग्राशा हो, तो उन्हें वे बना रहने दें। हिन्दी में वह एक विचित्र मुहाविरा होगा ग्रौर पण्डित केशवराम की तरह भावी वैय्याकरणों को ज़बरदस्ती उसे किसी वाच्य के भीतर डालना पड़ैगा, या उन्हें एक नया वाच्य बनाना पड़ैगा।

संस्कृत यद्यपि हिन्दी की जननी है, तथापि हिन्दी भिन्न भाषा है; संस्कृत भिन्न। ग्रतएव संस्कृत-व्याकरण के नियमों का प्रतिबन्ध हिन्दी को क्यों? यह दलील युक्तियुक्त है। पर जब कर्तृवाच्य, कर्म्मवाच्य ग्रौर भाववाच्य, ये तीनों, हमने हिन्दी में संस्कृत-व्याकरण के ग्रनुकूल ले लिये, तब कर्म्मकर्तृवाच्य के लेने से हमारी क्या हानि होगी सो भी तो बतलाना चाहिए।

हिन्दी में जब, तब ग्रौर जो (यदि), तो के प्रयोग में भी बड़ा गड़बड़ है। उर्दू में 'जब' के साथ 'तो' बहुधा ग्राता है। उर्दू के प्रसिद्ध कवि ग़ालिब ने लिखा है,—"यह कह सकते हो, हम दिल में नहीं हैं; पर यह बतलावो कि जब दिल में तुम्हीं तुम हो तो ग्राँखों से निहां क्यों हो?" इसमें 'जब' के साथ 'तो' का प्रयोग हुग्रा है। इस तरह के प्रयोग हिन्दी में भी ग्रधिकता से देखे जाते हैं। उनके उदाहरणों की ज़रूरत नहीं। किसी ग्रख़बार को ग्राप उठाइए। उसमें ग्रापको ऐसे ग्रनेक उदाहरण मिलैंगे। परन्तु ऐसे भी लेखक हैं जो 'जब' के साथ 'तब' ग्रौर 'जो' या 'यदि' के साथ 'तो' का भी प्रयोग करते हैं। यथा—

(१) जब वह कमरे का हाल यथार्थ कहैगा तब तुम उसको भेज सकते हो।

---

* कर्म्मवत्कर्म्मणा तुल्यक्रियः ३।१।८७। कर्म्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियः कर्ता कर्म्मवत्स्यात्। * * * कर्तुरभिहितत्वात्प्रथमा। पच्यते ओदनः। भिद्यते काष्ठम्।—सिद्धान्त-कौमुदी, कर्म्मकर्तृप्रक्रिया।

(२) यदि वो वहां तक जाने में असमर्थ है तो नाहीं कर देगा।

आत्मविद्या—श्रीमधुसूदन गोस्वामी।

(३) जो हमें अपने देश का सच्चा प्रेम है तो अपनी मातृभूमि के कल्याण के लिए दृढ़चित्त हो खड़े हो जायँ।

(४) जब तुम कुछ करही नहीं सकते तब मूँड मार कर घर क्यों नहीं बैठे रहते?

हिन्दीप्रदीप—पं० बालकृष्ण भट्ट।

विचार्य्य शब्दों के प्रयोग में विधि-निषेध का कुछ भी बन्धन नहीं देख पड़ता। यहां तक कि 'जो' के आगे कोई कोई 'तब' का भी प्रयोग करते हैं। भाषा की यह अनस्थिरता बहुतही हानिकारिणी है। क्या ये सभी मुहाविरे हैं और सभी शुद्ध हैं। यदि ऐसाही है तो यह कहना चाहिए कि हिन्दी-शब्द-समूह में विलक्षण ग़दर हो रहा है, और जिसे जहां जगह मिलती है वह वहीं स्थान दबा बैठता है। हम यह नहीं कहते कि कोई 'जब' के साथ 'तो' का प्रयोग न करै। यदि यह मुहाविरा अच्छा समझा जाय और सब लेखक इसे पसन्द करैं तो इसके प्रयोग में कोई बाधा नहीं आ सकती। परन्तु जितने लेखक उतने प्रकार के प्रयोगों का होना अच्छा नहीं।

'जब' और 'तब' समयवाचक हैं; पर 'जो' और 'तो' नहीं। 'जो' और 'तो' का प्रयोग वहां अधिक अच्छा लगता है जहां किसी तरह की शर्त होती है, क्योंकि उनसे शर्त ही का अर्थ निकलता है। ग़ालिब के वाक्य का अर्थ है—"जब तुम दिल में हो तो आँखों से क्यों छिपे हो?" इसमें दिल में होने की शर्त है। इसलिए 'जब' की जगह 'जो' क्यों न हो? क्योंकि मुहाविरा ही वैसा है। बहुत अच्छा, उर्दू में वैसाही मुहाविरा रहै; पर हिन्दी में क्यों? हिन्दी का साहित्य अभी बन रहा है। सर्वमान्य व्याकरण भी कोई अभी तक नहीं बना। इस कारण, जो प्रयोग अधिक सयुक्तिक और अधिक सार्थक हों, वही क्यों न काम में लाये जायँ? नीचे के वाक्य देखिए—

(१) जब तुम घर पर होगे मैं आऊंगा।
(२) जब तुम घर पर होगे तब मैं आऊंगा।
(३) जब तुम घर पर होगे तो मैं आऊंगा।
(४) जो तुम घर पर होगे, मैं आऊंगा।
(५) जो तुम घर पर होगे तो मैं आऊंगा।
(६) जो तुम घर पर होगे तब मैं आऊंगा।

इनमें से तीसरे और छठे वाक्य को छोड़ कर और कोई वाक्य नहीं खटकता। पहले और चौथे वाक्य में 'जब' और 'जो' के उत्तर-पद लुप्त हैं। इसलिए उनके विचार की ज़रूरत नहीं। तीसरे उदाहरण में समय की शर्त है और छठे उदाहरण में घर पर होने की। अतएव दोनों के अर्थ में भेद हुआ। फिर अर्थभेद के हिसाब से प्रयोगभेद क्यों न हो?

कुछ मुहाविरे ऐसे होते हैं जो बद्धमूल हो जाते हैं। उनकी रचना का विचार नहीं किया जाता। वे व्याकरण के सामान्य नियमों से बद्ध नहीं होते। उनके लिए व्याकरण को अपवाद करना पड़ता है। परन्तु 'जब', 'तब' इत्यादि के प्रयोग अभी तक बद्धमूल नहीं हुए। कोई एक तरह उनका प्रयोग करता है, कोई दूसरी तरह। इसलिए कम सयुक्तिक प्रयोग अभी परित्यक्त हो सकते हैं।

हिन्दी की अनस्थिरता के दो एक उदाहरण और देकर हम इस लेख को समाप्त करना चाहते हैं। नीचे के वाक्यों को देखिए। उन्हें एक अख़बार से हम उद्धृत करते हैं—

(१) आपको भी इस विषय में लेखनी उठाना चाहिए।

(२) इसके लिये शिक्षा लेना होगी।

(३) वह लोग * * जड़ी बूटियां इकट्ठी करते थे।

ये सब कर्तृवाच्य प्रयोग हैं। कर्तृवाच्य में क्रिया, कर्ता के अनुकूल होती है। यह बात पहले उदाहरण में है। पर दूसरे उदाहरण में क्रिया का

उत्तर भाग (होगी) कर्म्म, 'शिक्षा', के अनुकूल है; और तीसरे उदाहरण में क्रिया का पूर्वभाग (इकट्ठो) कर्म्म, 'जड़ी बूटियां', के अनुकूल है! कहीं कर्म्म के अनुकूल, कहीं कर्ता के! कहीं क्रिया का पहला टुकड़ा स्त्रीलिङ्ग हो गया, कहीं दूसरा! 'लोग' बहुवचन, 'वह' एक वचन! इन बातों के विचार की ज़रूरत है। विचार न करने से भाषा में बेतरह गड़बड़ पैदा हो जायगी।

हिन्दी को कालसह, अर्थात् कुछ काल के लिए स्थायी, करने के लिए यह बहुत ज़रूरी बात है कि उसकी रचना व्याकरण-विरुद्ध न हो; उसमें सिर्फ़ ऐसे ऐसे शब्दों का प्रयोग हो जो विशेष व्यापक हों, अर्थात् जिन्हें अधिक प्रान्तों के आदमी समझ सकें। देश भर में एक ही भाषा होगी या नहीं, और होगी तो कब होगी, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। परन्तु, तब तक, हिन्दी को अधिक व्यापक बनाने में लाभ है, इस बात को सभी स्वीकार करेंगे। अतएव हिन्दी के साहित्य में प्रान्तज और क्षणभङ्गुर शब्दों का आना अच्छा नहीं। जो शब्द किसी प्रान्तविशेष के ही लोग समझ सकते हों, उन्हें प्रान्तज और जो किसी कारण-विशेष से थोड़े दिनों के लिये उत्पन्न हो गये हैं, उन्हें क्षणभङ्गुर कहते हैं। ऐसे शब्दों का प्रयोग न होना चाहिए। संस्कृत के सरल शब्द, और ऐसे विदेशी शब्द जिन्हें सब लोग समझते हैं, प्रयुक्त होने चाहिएं। विदेशी शब्दों का प्रयोग बुरा नहीं। संस्कृत तक में विदेशी शब्द हैं। शब्द चिरस्थायी और सबके समझने लायक़ होने चाहिएं। बस। कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका संस्कृत में कुछ अर्थ है, पर हिन्दी में वे दूसरे ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। ऐसे शब्द सर्वथा त्याज्य हैं। बाधित, निर्भर, आन्दोलन और कटिबद्ध आदि शब्द इसी कक्षा के हैं। संस्कृत में बाधित का अर्थ है बाधा दिया गया; पर हिन्दी में लोग उसका अर्थ करते हैं, उपकृत, कृतज्ञ, अनुगृहीत! राम ने श्याम का उपकार किया। इस कारण श्याम ने राम से कहा—"आपने मेरा उपकार करके मुझे चिरबाधित अर्थात् चिरकाल तक पीड़ित किया!" यह तो वही "यथा बाधति बाधते" वाली बात हुई। नहीं मालूम हिन्दी में किसने इस शब्द को उपकृत अर्थ में पहले पहल लिखा। ऐसे शब्दों का प्रयोग एक दम बन्द हो जाना चाहिए। 'प्रेम फसफसाया' और 'शौक़ चर्राया' आदि शिष्टताविघातक शब्दों का भी प्रयोग उचित नहीं। बहुत से लेखक संस्कृत-व्याकरण के अनुसार दूसरी भाषा के शब्दों में भी पर-सवर्ण, षत्व और णत्व का विधान करते हैं। यथा; अनजुमन की जगह अञ्जुमन, प्रोस्टमास्टर की जगह पोष्टमाष्टर और गवर्नमेन्ट की जगह गवर्नमेण्ट। यह अनुचित प्रतीत होता है।

इस विषय में अभी हमें बहुत बातें लिखने को हैं। परन्तु प्रबन्ध बड़ा हो गया है। इस लिए उन्हें हम फिर कभी लिखेंगे। दूषित भाषा के उदाहरण में जिनके वाक्य इस लेख में उद्धृत किये गये हैं, उनसे हम पुनर्वार क्षमाप्रार्थना करते हैं। हमने दोष दिखलाने के इरादे से ऐसा नहीं किया; सिर्फ़ अपनी बात को स्पष्टता-पूर्वक समझाने के लिए किया है। स्वयं हमारे लेखों में ऐसे ऐसे दोष एक नहीं अनेक रह जाते हैं। लिखते समय उन पर ध्यान नहीं जाता। विचारपूर्वक देखने से ही वे ध्यान में आते हैं।

पण्डित बलदेवप्रसाद मिश्र।

जिन लोगों को हिन्दी लिखने पढ़ने का शौक़ है, वे मुरादाबाद-निवासी पण्डित बलदेव-प्रसाद मिश्र को अवश्य जानते होंगे। इनकी बदौलत कितनी ही अच्छी अच्छी पुस्तकें हिन्दी में होगई। ये प्रसिद्ध वक्ता पण्डित

ज्वालाप्रसाद मिश्र के छोटे भाई थे। चार पाँच दिन बीमार रहकर ७ अगस्त १९०५ को, ३६ वर्ष की उम्र में इनका शरीरपात हो गया। हिन्दी का एक अच्छा लेखक खो गया! अफ़सोस!

सात आठ वर्ष का अर्सा हुआ, जब झांसी में पहले पहले पं० बलदेवप्रसाद हमसे मिले। आपके साथ आपके बड़े भाई पं० ज्वालाप्रसाद, लाला शालग्राम और एक और कोई सज्जन भी थे। जब तक आप बैठे, बराबर साहित्य-विषयक बातें करते रहे। आपसे मालूम हुआ कि आपको गुजराती और मराठी पढ़ने का भी शौक़ है। आपने हमसे इन भाषाओं के प्रसिद्ध प्रसिद्ध अख़बारों का नाम पूछा और हमारे पास से दो एक नमूने भी उनके लिये। झांसी से आप, अपने साथियों समेत, छत्रपुर प्रस्थान कर गये। उस समय आप तन्त्रप्रभाकर नामक पत्र निकालते थे। मुरादाबाद लौटकर आपने अपने पर्य्यटन का वृत्तान्त उसमें छापा। हम लोगों की पारस्परिक भेंट का भी आपने उसमें ज़िक्र किया।

इसके तीन चार वर्ष बाद हमारे एक मित्र की बदली मुरादाबाद को हुई। उनसे मिलने के लिए हम कई दफ़ा मुरादाबाद गये। वहां पण्डित ज्वालाप्रसाद के यहां पं० बलदेवप्रसाद से भी भेंट हुई। इनसे मिलकर बड़ा आनन्द हुआ। हमने देखा कि जो बलदेवप्रसाद चार वर्ष पहले हमसे मराठी और गुजराती के अच्छे अच्छे अख़बारों और ग्रन्थों के नाम पूछते थे, उनके यहां इतने थोड़े समय में इन भाषाओं के कितने ही ऐसे अच्छे अच्छे ग्रन्थ, मासिक पुस्तक और अख़बार इकट्ठे होगये हैं जिनको हमने उसके पहले कभी नहीं देखा था। हमको पं० बलदेवप्रसाद के इस परिश्रम, इस विद्याव्यसन, इस उन्नति और इस पुस्तकावलोकन-प्रेम पर आश्चर्य्य हुआ। हमने उनका हृदय से अभिनन्दन किया और उनके कहने से कई एक गुजराती पुस्तकें मँगाकर उनसे लाभ भी उठाया।

हिन्दी तो पं० बलदेवप्रसाद की मातृभाषा ही थी। उसके और मराठी तथा गुजराती के सिवा आप बँगला भी अच्छी तरह जानते थे। बँगला की भी बहुत सी अच्छी अच्छी पुस्तकें हमने आपके यहां देखीं। पुस्तक-संग्रह से आपको बड़ा प्रेम था। जिन भाषाओं को आप जानते थे, उनके साहित्य-संसार में होनेवाली बड़ी बड़ी घटनाओं से भी आप ख़ूब वाक़िफ़ थे। कोई भी महत्वपूर्ण बात ऐसी न होती थी जिसे आप न जानते हों। सुनते हैं, संस्कृत, अङ्गरेज़ी और उर्दू में भी आपकी गति थी। पर इस विषय में हम ख़ुद कुछ नहीं कह सकते।

जनवरी १९०३ में हम मुरादाबाद में थे। पं० ज्वालाप्रसाद के मकान से थोड़ी दूर पर पं० बलदेवप्रसाद रहते थे। उनके यहां जाकर हम बैठे हैं कि एक हिन्दी अख़बार आया। उसमें सरस्वती की आलोचना थी। आलोचना बुरी तरह की गई थी। आपने उसे हमको दिखाया। उसे पढ़कर कृतज्ञता-ज्ञापन-पूर्वक हमने उन्हें लौटा दिया। थोड़ी देर ठहर कर आपने उस आलोचना के विषय में अपनी राय दी जिससे आपकी सुरुचि का हमें अच्छा प्रमाण मिला।

जब जब हम मुरादाबाद जाते थे, पं० बलदेवप्रसाद अपनी एक आध पुस्तक देने की ज़रूर कृपा करते थे। हमारे मुरादाबादी मित्र को भी हिन्दी की अच्छी अच्छी किताबें पढ़ने के लिए आप दिया करते थे। लाहौर से सनातन धर्म्म का पक्षपाती एक अख़बार उर्दू में निकलता था। शायद वह अब भी निकलता है। उससे और आर्य्यसमाज के एक अख़बार से परस्पर विरोध होगया। विरोधी धार्म्मिक समाजों में अनबन रहती ही है। दोनों तरफ़ कड़े कड़े लेख लिखे जाने लगे। अन्त में कचहरी तक जाने की नौबत आई। उसमें लाहौर के अख़बार से सम्बन्ध

रखनेवालों का पराभव हुआ। इस मुक़द्दमे के सब काग़ज़ात आर्यसमाज के अनुयायियों ने पीछे से पुस्तकाकार छपाये। पं० बलदेवप्रसाद ने इस पुस्तक को मँगा कर बड़े चाव से पढ़ा और हमारे मुरादाबादी मित्र को भी पढ़ने को दिया। उसी दरमियान में हम भी मुरादाबाद गये। पं० बलदेवप्रसाद की बदौलत हमने भी इस पुस्तक को पढ़ा। इसमें कई एक बहुत ही रोमाञ्चकारिणी और घृणित घटनाओं का ज़िक्र था। उनको पढ़कर हम दङ्ग हो गये। धर्म्मजीवी पुरुषों में इतना अनाचार! शिव शिव!

पं० बलदेवप्रसाद ने तंत्रप्रभाकर नामक एक प्रेस खोला था। उसमें आप पहले तंत्रसम्बन्धी पुस्तकें छापते थे। कुछ समय तक हरिद्वार और मुरादाबाद में तांत्रिक ग्रन्थों की बहुत धूम थी। पर कुछ दिन बाद बलदेवप्रसाद ने, किसी कारण से, यह प्रेस बन्द कर दिया और साथ ही तंत्रों के उद्धार को भी समाप्ति कर दी। तंत्रप्रभाकर नाम का अख़बार जो आप निकालते थे, उसे भी आपने कुछ दिनों में बन्द कर दिया। पं० बलदेवप्रसाद ने कुछ समय तक भारतभानु और साहित्य-सरोज आदि कई और भी अख़बारों का सम्पादन किया था।

मुरादाबाद में बहुत दिन से हिन्दी की चर्चा है। इस शहर के कई एक लेखकों की कृपा से हिन्दी में कितनी ही नई नई किताबें निकली हैं। परन्तु इन लेखकों में एक आध ऐसे दैवी महात्मा हुए जिनके कान में देवता और ऋषि-मुनि तक अद्भुत अद्भुत पुस्तकों का आशय सुना जाते थे। उसे ही ये सज्जन लिखकर प्रकाशित करते थे और उन सिद्ध पुरुषों की बदौलत नाम और दाम, दोनों, ख़ूब पैदा करते थे। परन्तु, जहां तक हम जानते हैं, पं० बलदेवप्रसाद को इस तरह का कोई देवता सिद्ध न था।

इस देश में बहुत कम लोग ऐसे हैं जिनका व्यवसाय सिर्फ़ किताबें लिखने का हो। पढ़ने वालों की कमी के कारण इस व्यवसाय से जीवन-निर्वाह कठिनता से होता है। परन्तु पं० बलदेवप्रसाद को अपनी बुद्धि और परिश्रम के बल से इसी व्यवसाय से यथेच्छ प्राप्ति होती थी। मुरादाबाद में हम डाकख़ाने के पास ठहरते थे। सुबह पं० बलदेवप्रसाद जब कभी कभी डाकख़ाने से अपनी डाक लेकर लौटते थे, तब हम बहुत सी चिट्ठियां उनकी किताबों की माँग से भरी हुई उनके पास देखते थे।

पं० बलदेवप्रसाद बड़े परिश्रमी थे। उन्होंने थोड़ी ही उम्र में बहुत सी किताबें लिख डालीं। बम्बई के वेङ्कटेश्वर प्रेस से आपका अधिक सम्बन्ध था। वहां आपकी कई पुस्तकें छपी हैं। आपके अग्रज पं० ज्वालाप्रसादजी ने भी इस प्रेस के लिए कई पुराणों और काव्यों का हिन्दी अनुवाद किया है। आपके अनुवाद बहुत अच्छे हैं। उनका प्रचार भी ख़ूब है। जिस समय हम बम्बई में थे, पं० बलदेवप्रसाद का अनुवाद किया हुआ हिन्दी-राजस्थान वेङ्कटेश्वर प्रेस में छपने के लिए आया था। परन्तु किसी कारण-विशेष से वह अभी तक नहीं छपा। पं० बलदेवप्रसाद की इच्छा थी कि यदि हम फिर कभी बम्बई जायँ तो उनके इस अनुवाद को देखकर सेठ खेमराज के सामने इसकी समालोचना करें। परन्तु तब से बम्बई जाने का हमें मौक़ा ही न आया।

पं० बलदेवप्रसाद जब हमारे स्थान पर, मुरादाबाद में, आते थे, तब आप हमसे हमेशा यह पूछा करते थे कि कोई नई पुस्तक आप लाये? हमारे पास जो कोई किताब होती थी, हम दिखलाते थे। एक दफ़ा "रूलर्स आफ़ मैन काइण्ड" (Rulers of mankind) नाम की अँगरेज़ी पुस्तक को देखकर आप बहुत प्रसन्न हुए। उसकी तसवीरों पर आप मोहित हो गये और अपने मित्र आदि को दिखलाने के लिए उसे घर ले गये। आप बार बार कहते थे कि

यदि इसका हिन्दी अनुवाद हो जाय तो बहुत अच्छा हो।

इन्होंने बँगला, मराठी और गुजराती भाषा की सहायता से बहुत सी पुस्तकें लिखीं और अनुवादित कीं। पानीपत, देवी-उपन्यास, कुन्द-नन्दिनी, दण्डसंग्रह, राजस्थान, नैपाल का इतिहास, ताँतिया भील और पृथ्वीराज चौहान आदि हिन्दी की किताबें इन्हीं की हैं। संस्कृत की भी कई अच्छी अच्छी पुस्तकों का अनुवाद आपने, इसी तरह, किया है। सूर्यसिद्धान्त, वाराही-संहिता, रसेन्द्र-चिन्तामणि, यन्त्रचिन्तामणि, महानिर्व्वाणतन्त्र, अध्यात्म रामायण और कल्किपुराण आदि उन्हीं में से हैं। आपने मराठी-हिन्दी की एक प्राइमर (प्रथम पुस्तक) लिख कर हिन्दी जाननेवालों को मराठी सीखने का द्वार भी उन्मुक्त कर दिया है। यह पुस्तक शायद नवलकिशोर के छापेख़ाने में छपी है। आपके भाई पं० ज्वालाप्रसाद जी ने भागवत का हिन्दी में अनुवाद किया है। वेङ्कटेश्वर प्रेस में उसे छपे बहुत दिन हुए। दो तीन वर्ष हुए पण्डित बलदेवप्रसाद के नाम से भी भागवत का एक अनुवाद "भारत मित्र" प्रेस से प्रकाशित हुआ है। आपकी कई पुस्तकें "भारतमित्र" और "वेङ्कटेश्वर समाचार" के ग्राहकों को उपहार में दी गई हैं। बँगला के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक बङ्कीम बाबू के उपन्यासों का बड़ा आदर है। पर उनके मालिक उन के स्वत्व की रक्षा बहुत ख़बरदारी से करते हैं। यहां तक कि वे बङ्कीम बाबू के स्फुटलेखों को भी दूसरी भाषा में अनुवादित होने की अनुमति नहीं देते; और देते भी हैं तो बहुत मुश्किल से। पर पं० बलदेवप्रसाद ने उनके भी कई उपन्यासों का अनुवाद, किसी तरह, हिन्दी में कर डाला। देवी और कुन्दनन्दिनी बङ्कीम बाबू के ही उपन्यासों का अनुवाद है। आपकी एक आध पुस्तक में मूल ग्रन्थकार का नाम भूल से रह गया है। आपने हिन्दी में कई एक नाटक और उपन्यास भी लिखे हैं। आपकी कुछ पुस्तकें अभी तक बेछपी हुई भी पड़ी हैं। पण्डित प्रतापनारायण की एक पुस्तक अप्रकाशित पड़ी थी। अभी कुछ दिन हुए उसे प्रकाशित करके पं० बलदेवप्रसाद ने बहुत अच्छा काम किया।

जबसे हमारा परिचय पं० बलदेवप्रसाद से हुआ तबसे वे अक्सर अपनी नई पुस्तकों की एक कापी हमको भेजते थे। एक बार उन्होंने नाट्यशास्त्र-सम्बन्धी अपनी एक पुस्तक हमारे पास भेजी। हमें वह पुस्तक बहुत अच्छी लगी। उसके लिए हमने उनको अनेक धन्यवाद दिये। पर हमने इतना लिख दिया कि मराठी में इस विषय की अमुक पुस्तक शायद आपकी नज़र से गुज़री हो। तबसे आप हमसे कुछ विरक्त से हो गये। इसका हमें बहुत अफ़सोस है।

सुनते हैं पं० बलदेवप्रसाद जी कविता भी करते थे; परन्तु आपकी कविता हमारे देखने में नहीं आई।

पं० बलदेवप्रसाद की अकालमृत्यु से उनके कुटुम्बियों और मित्रों को बहुत दुःख हुआ है। हम उनके दुःख से दुखी हैं और उनके साथ अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं। "मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्"। मरना शरीर-धारियों का स्वभावही है। पर कुसमय की मृत्यु से मृत व्यक्ति के आश्रित, सम्बन्धी और स्नेही जनों को बहुत दुःख होता है। तथापि ऐसे मामलों में मनुष्य का कुछ वश नहीं। उसे धैर्य्य ही धरना चाहिए।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि पं० बलदेवप्रसाद के शरीर के साथ हिन्दी का एक बहुत अच्छा लेखक हमेशा के लिये तिरोहित होगया।

कैथी ।

(प्रतिवाद)

अगस्त की "सरस्वती" में "देशव्यापक लिपि" के लेख में नयी कैथी का कुछ बर्णन है। मैं सम्पादक साहिब का बहुत शुकरगुज़ार हूं, क्योंकि मुझे प्रतीति है कि जहां तक इस बात की चर्चा हो जाए और उस पर सोच बिचार किया जाए, वहां तक यह प्रसिद्ध हो जाएगा कि कैथी नागरी की सहायता दे सकती है और उसके द्वारा नागरी अधिक प्रचलित होके उन्नति पावेगी।

मैं आशा रखता हूं कि सम्पादक साहिब अनुग्रह करके मुझे अवकाश देंगे कि उस लेख के और कैथी लिपि के बारे में मैं दो चार बातें "सरस्वती" में प्रकाश करूं।

१. उस लेख में यह बतलाया गया है कि मेरी राय में "यदि कैथी अक्षरों का प्रयोग हो तो.........कागज़ पर से क़लम को बिना उठाये लिखनेवाला उसे दौड़ाता चला जाए"। यह तो भूल है, न तो मेरा यह ख़ियाल है न तो मैंने कभी ऐसा लिखा। "हिन्दूस्तान रीव्यू" में मैं ने लिखा कि "The adoption of a running hand for Hindi in which the letters might be connected without lifting the pen from the paper is beyond the range of the prcticable for the present" अर्थात् हिन्दी के लिये ऐसी लिपि अब लौं नहीं मिल सकती जिससे कागज़ पर से क़लम को बिना उठाये लिखी जा सकती है।

२. मैं मान लेता हूं कि संयुक्त वर्णों की सूची अपूर्ण है। यह मेरी भूल नहीं, जान बूझ के यह ऐसा किया गया है। क्या लाभ है कि बहुत संयुक्त अक्षर बनाये जाएं जो कदाचित दो चार मरतबा साल भर काम में लिये जाएं? "रिक्थ, पक्व, अक्स" ऐसे शब्दों का लिखना कब पड़ता? जब पड़े तो "रिक्‌थ, पक्‌व, अक्‌स" क्यों न लिखे जाएं? विराम के द्वारा काम सहज से निकलता है। संयुक्त अक्षरों के बढ़ाने से कुछ लाभ नहीं। केवल उनको बनाना चाहिये जो अधिक प्रचलित हैं।

३. कैथी सीखने में न अधिक समय न अधिक परिश्रम पड़ता है। लिखना और पढ़ना दोनों बहुत सहज हैं। "सरस्वती" के लेख में यह अच्छे प्रकार से बतलाया गया है क्योंकि यों लिखा है कि "इन वर्णों में सिवा ऊपर की पाई के और कौन बड़ा फ़र्क है?" यह सर्बथा सच है और इस कारण सीखने में बहुत कम परिश्रम पड़ता है।

४. लेख में लिखा है कि "अंगरेज़ों में एक से अधिक लिपियों के होने से सीखनेवालों को—विशेष करके विदेशियों को—थोड़ो बहुत कठिनता अवश्य पड़ती है"। मैं इस बात को मानता हूं, पर यह पूछता कि क्या कोई जो अंग्रेज़ी जानता हो इस बात को प्रसन्न करे कि केवल एक लिपि प्रचलित होवे? कभी नहीं। किसी भाषा की दो लिपियों का होना बुरी बात नहीं है। पुस्तकों के लिये ऐसे अक्षर चाहिये जिनका पढ़ना सहज है। लिखने के लिये उनकी आवश्यकता है जो लिखने में सहज है। दो लिपियों के होने से थोड़ी कठिनता पड़ती है सही, पर लाभ बहुत होता है।

५. मैं सोच बिचार करके और बहुत दिनों से कैथी अपने काम में अभ्यास करके फिर कहता हूं कि अटकल एक तिहाई समय बच जाता है। यह एक ऐसी बात है जो केवल दोनों लिपियों के अभ्यास करने से मालूम हो सकती है। मैं ने ऐसा ही किया और अपने काम के लिये कैथी को सर्बथा प्रसन्न करता हूं।

६. 'आपने "ष" और "ख" का कैथी में एक ही रूप रखा है। यह क्यों?' यह कहना ठीक है। छापेखाने में भूल हुई और मेरी भी भूल हुई कि "प्रूफ़" को देखके मैं ने उसको शुद्ध नहीं किया। कैथी में "ष" नागरी के समान लिखना चाहिये (ऊपर की पाई को छोड़के)।

७. यदि हिन्दुस्तान में सब भाषाओं के लिये नागरी प्रचलित हो जाए तो लाभदायक बात होगी और मैं प्रसन्न हो जाऊंगा। और मेरी समझ में कैथी के द्वारा नागरी के प्रचलित होने में किसी प्रकार की बाधा नहीं होगी पर अत्यन्त सहायता।

एड्विन ग्रीव्स।

उत्तर।

ग्रीव्स साहब के हम कृतज्ञ हैं। इसलिए कि एक हिन्दी मासिकपुस्तक में आपने अपने वक्तव्य को प्रकाशित करना योग्य समझा। आपने "अपना वक्त बचाने के लिए" अपना लेख अपनीही ईजाद की हुई कैथी में लिखा है। आप लिखते हैं कि यदि उनको कैथी पढ़ने में कुछ दिक़्क़त हो तो आप उसे नागरी में नक़ल कराकर भेज सकते हैं। पर, हमने आपको इतनी तकलीफ़ देना मुनासिब नहीं समझा। ग्रीव्स साहब के लेख को पढ़ने में अपने और छापेख़ाने के कर्म्मचारियों के अधिक वक्त ख़र्च होने का ख़याल न करके हमने आपकी कैथी लिपि को ही मंज़ूर कर लिया। साहब की हिन्दी पढ़कर तबीयत बहुत ख़ुश हुई। यद्यपि वह जैसी होनी चाहिए वैसी नहीं है, तथापि ऐसी भी हिन्दी लिखना एक विदेशी के लिए तारीफ़ की बात है। ग्रीव्स साहब ने (अँगरेज़ी-हिन्दी में) हिन्दी का एक बहुत बड़ा व्याकरण बनाया है। वह साढ़े चार रुपये में मिलता है। आपने तुलसीदास के रामायण की भाषा का व्याकरण भी लिखा है। खेद है, हमें आपके व्याकरण देखने का सौभाग्य नहीं हुआ। अब हम आपके लेख के प्रत्येक अंश का यथाक्रम, नम्बरवार, उत्तर देते हैं।

१। ग्रीव्स साहब कहते हैं कि आपकी यह राय नहीं कि "यदि कैथी अक्षरों का प्रयोग हो तो काग़ज़ पर से क़लम को बिना उठाये लिखनेवाला उसे दौड़ाता चला जाय"। आप इसे भूल बतलाते हैं। आप कहते हैं कि उन्होंने इतना ही कहा है कि "हिन्दी के लिए ऐसी लिपि अब लों नहीं मिल सकती जिससे काग़ज़ पर से क़लम को बिना उठाये लिखी जा सकती है"। आपने अपने अँगरेज़ी लेख से जो अवतरण दिया है उसमें "Running hand"—का हिन्दी में क्या अर्थ होगा? "दौड़ती हुई या दौड़नेवाली लिखावट" कहना तो दिल्लगी से ख़ाली न होगा। "द्रुतगामिनी लिपि" कहने का भी महाविरा नहीं है। एक शब्द "घसीट" हिन्दी में है। वह अँगरेज़ी के "Running hand" के अर्थ का बोधक ज़रूर है। इसलिए हम उसका ही प्रयोग यहां पर करते हैं। साहब कहते हैं कि हिन्दी में अँगरेज़ी की ऐसी घसीट लिखावट का होना अब तक साध्य या सम्भाव्य नहीं। यह कह कर आप नई तरह के कैथी अक्षर ईजाद करते हैं और कहते हैं कि उनके लिखने में वक्त और मेहनत दोनों की कोई एक तिहाई बचत होती है। अब, "शार्ट हैण्ड" (Short hand) को छोड़कर, घसीट ही एक ऐसी लिखावट है, जिसमें वक्त की बचत होती है। तो क्या इससे यह अर्थ नहीं निकलता कि ग्रीव्स साहब का मतलब है कि उनकी कैथी लिखने में क़लम को काग़ज़ से उठाने की ज़रूरत न पड़ेगी? यदि व्यञ्जना-वृत्ति भी कोई चीज़ है; यदि व्यञ्जक वाक्य भी कोई चीज़ है; यदि व्यंग्यार्थ भी कोई चीज़ है तो हम कहते हैं कि साहब के वाक्यों से यह अर्थ ज़रूर निकलता है। "अरे मार डाला!" कहने से "दौड़ो, मुझे बचाओ" का अर्थ निकलता है। और, स्कूल के किसी लड़के के मुँह से "अरे दस बज गये!" निकलने से "स्कूल जाने का वक्त हो गया" सूचित होता है। इसी तरह यह लिखकर कि हिन्दी में किसी ऐसी लिपि के होने की अभी तक कोई सम्भावना नहीं जो अविच्छिन्न रीति से लिखी जा सके, उसके बादही ग्रीव्स साहब का नई कैथी-लिपि ईजाद करना और यह कहना कि उसके लिखने में एक तिहाई वक्त की बचत होती है, ज़रूर यह ध्वनित करता है कि-उस लिपि के लिखने में

काग़ज़ से क़लम को न उठाना पड़ेगा। अन्यथा वक़्त की बचत होगी किस तरह ? सिर्फ़ ऊपर की पाई छोड़ देने से ? हरगिज़ नहीं।

हम, ज़रा देर के लिए, माने लेते हैं कि व्यञ्जना से ग्रीव्स साहब के वाक्य हमारे किये हुए अर्थ की पुष्टि नहीं करते। बहुत अच्छा। साहब ने जो अँगरेज़ी-अवतरण दिया है, उसका उत्तर-भाग आपने छोड़ दिया है। वह इस प्रकार है—

"And I would not for a moment advocate the adoption of Roman-Hindi, which is probably an offence to the eye of every true student of Hindi. Does Kaithi hold out any prospect of relief ? I am convinced that its does.

इसका और ग्रीव्स साहब के द्वारा उद्धृत किये गये इसके पूर्वभाग का मतलब यह है—"हिन्दी में अब तक ऐसी किसी लिपि के होने की सम्भावना नहीं जो काग़ज़ के ऊपर से क़लम उठाये बिना लिखी जा सके। और, मैं रोमन-हिन्दी को काम में लाने की सिफ़ारिश, एक पल भर के लिए भी, नहीं करता। रोमन-हिन्दी को देखकर हिन्दी के सच्चे प्रेमियों की आँखों में पीड़ा होना सम्भव है। अच्छा, तो कैथी से उपकार होने—मदद मिलने--की कोई उम्मेद है ? मैं विश्वासपूर्वक कहता हूं कि है।"

साहब ने पहले कहा, अब तक हिन्दी में कोई ऐसी लिपि नहीं जो काग़ज़ से क़लम उठाये बिना लिखी जा सके। फिर आपने वहीं, उसी पाराग्राफ़ में, अनुपद ही, "विश्वासपूर्वक" (ऐसे वैसे भी नहीं) कहा कि कैथी से ज़रूर उपकार होगा—ज़रूर मदद मिलैगी। किसको मदद मिलैगी ? बात चल रही है, काग़ज़ से क़लम न उठाने की। अतएव मदद उसको न मिलैगी तो किसको मिलैगी ? फिर भी ग्रीव्स साहब कहते हैं कि आपने यह नहीं कहा कि आपकी कैथी लिखने में काग़ज़ से क़लम उठाने की ज़रूरत न पड़ैगी ?

२। हमने अपनी आलोचना में ख़ुद ही कह दिया है कि शायद ग्रीव्स साहब ने जान बूझ कर सब संयुक्त वर्णों की सूची नहीं दी। आप कहते हैं, "क्या लाभ है कि बहुत संयुक्त अक्षर बनाये जाए जो कदाचित दो चार मरतबा साल भर काम में लिये जाएं" ? यह लिखते समय साहब को "हिन्दुस्तान-रिव्यू" में प्रकाशित अपने अँगरेज़ी लेख का एक सिद्धान्त भूल गया सा जान पड़ता है। वहां आप कहते हैं—"Insist on conjunct letters being formed and used." अर्थात् संयुक्त वर्णों के बनाये और काम में लाये जाने का आग्रह किया जाय—इसरार किया जाय। इस पूर्वापर विरोध पर साहब ही कृपापूर्वक विचार करें। इस नई कैथी का आविष्कार करने में जिस आविष्कर्ता का ख़ास मतलब वक़्त का बचाना है, उसका यह कहना कि "अक्स" को "अक्‌स" लिखकर लिखनेवाला दो की जगह तीन अक्षर बनावै, मानों अपने ही हाथ से अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारना है।

हमारी प्रार्थना है कि ग्रीव्स साहब की संयुक्त वर्ण-सूची बिलकुलही अपूर्ण है। आपने जो कैथी ईजाद की है, वह सिर्फ़ दसही पाँच संयुक्त वर्णों का प्रयोग करनेवालों के लिए नहीं की, सब के लिए की है। और, अच्छे अच्छे लेखक संस्कृत और फ़ारसी आदि के ऐसे शब्द काम में लाते हैं जिनमें अनेक प्रकार के संयुक्त वर्णों की ज़रूरत पड़ती है। उनको आप हलन्त वर्ण लिखकर, काम निकालने की जो सलाह देते हैं, उसे वे कभी पसन्द न करेंगे। इस प्रकार की सलाह यह साबित करती है कि आपकी कैथी अच्छे पढ़े लिखे आदमियों के काम लायक़ नहीं। हमने आपकी सूची में, पहले व्यञ्जन 'क' के साथ युक्त होनेवाले अक्षरों के न दिये जाने की त्रुटि, नमूने के तौर पर, दिखलाई थी। "रिक्थ" का तो विशेष प्रयोग नहीं होता; परन्तु "पक्व", "परिपक्व", "क्वार", "अक्स", "अक्लर", "बक्लर", और "बाक्स" आदि का

बहुधा प्रयोग होता है। अच्छा अब दूसरा वर्ण 'ख' लीजिए। आपने सिर्फ़ ख+य का संयोग बतलाया है। बस। कहिए अब "सख़्त", "तख़्त", "दरख़्त", "नेकबख़्त", "पुख़्ता", "तख़्ता", "तनख़्वाह" और "शख़्स" इत्यादि कैसे लिखे जायँ ? सब हलन्त के प्रयोग से ! तब तो वक़्त की .खूब बचत होगी। याद रखिए, ये सब शब्द अक्सर लिखे जाते हैं और यदि एक लिपि के प्रस्ताव में थोड़ी भी कामयाबी हुई तो ऐसे शब्दों का प्रयोग और भी अधिकता से होने लगेगा।

आपके "विराम" शब्द का मतलब हमारी समझ में नहीं आया। हिन्दी में "विराम-चिन्ह" "Punctuation" को कहते हैं। विराम से शायद आपका मतलब हलन्त वर्ण के नीचे लगानेवाली तिरछी पाई (हलन्त-चिन्ह) से है।

३। आपकी कैथी सीखने में समय भी दरकार है और मेहनत भी। हिन्दी लिखने पढ़नेवालों के लिए कम, और लोगों के लिए अधिक। आपके कोई कोई संयुक्त वर्ण बहुतही टेढ़े मेढ़े हैं। यदि सब संयुक्त-वर्णों को आप सृष्टि करेंगे तो समय और मेहनत की मात्रा और भी बढ़ जायगी। यदि आपको कैथी-लिपि का प्रस्ताव करना ही था तो इस समय न करना था। जब बङ्गाली, महाराष्ट्र और गुजराती लोगों से हिन्दी के पक्षपाती कह रहे हैं कि आप देवनागरी लिखना सीखिए, तब आपको लिखने के लिए कैथी और छापने के लिए नागरी का प्रस्ताव करना मानों उन लोगों के रास्ते में काँटे बिछाना है। नागरी का कुछ अधिक प्रचार हो जाने पर यदि आप कैथी लिखने का प्रस्ताव करते तो कम विरोध की बात थी। और प्रान्तवाले दो दो प्रकार की लिपियों के सीखने का साहस कम कर सकते हैं।

"इन वर्णों में सिवा ऊपर की पाई के और कौन बड़ा फ़र्क़ है ?" यह हमने नागरी के क-वर्ग से मुक़ाबला करते समय सिर्फ़ आपके कैथी के क-वर्ग के विषय में कहा है; सब अक्षरों के विषय में नहीं। कृपा करके आप हमारी आलोचना के उस अंश को फिर देख जाइए।

४। यदि एक प्रकार की लिपि से अच्छी तरह काम हो जाय तो दो प्रकार की लिपि के होने की कोई ज़रूरत नहीं। दूसरे प्रकार की लिपि के सीखने में जो समय और श्रम दरकार होता है, उसकी मात्रा से, उसके सीखने से होनेवाले लाभ की मात्रा यदि अधिक हो, तभी उसका सीखना युक्तिसङ्गत कहा जा सकता है। हमारी राय में आपकी कैथी-लिपि में यह गुण नहीं।

५। आपके कैथी अक्षरों की बनावट ही कह रही है कि उनका आकार नागरी के अक्षरों के आकार से एक तिहाई कम नहीं है। ऊपर की पाई का कम हो जाना एक तिहाई के बराबर नहीं। अतएव एक तिहाई समय का बचत नहीं हो सकती। हमारे कहने का सबूत आपको सहज में मिल सकता है। आप किसी हिन्दुस्तानी के साथ बैठ कर लिखिए। वह नागरी लिखै, आप कैथी। तब आपको फ़ौरन ही मालूम हो जायगा कि आप कितना जल्द लिख सकते हैं। यदि आपको नागरी-वर्णों के ऊपर की पाई ही समय का अपव्यय करने वाली जान पड़ती है तो आप एकबारगी ही एक सतर काग़ज़ की बाईं तरफ़ से दाहिनी तरफ़ तक खींच कर नागरी लिख सकते हैं। मध्यप्रदेश में नागरी का प्रचार बहुत दिनों से है। वहां कचहरी के मुलाज़िम अक्सर इसी तरह सरकारी काग़ज़ात लिखते हैं और बहुत जल्द लिखते हैं।

६। इस पारा में जवाब देने की कोई बात नहीं।

७। आपकी नई कैथी का प्रस्ताव, इस समय, और प्रान्तों में, नागरी के प्रचार का थोड़ा-बहुत बाधक ज़रूर हो सकता है। क्यों ? यह हम तीसरे पारा के उत्तर में बतला चुके हैं।

मक्का-तीर्थ ।

से हिन्दू लोग सैकड़ों रुपये ख़र्च करके और नाना प्रकार के शारीरिक श्रम उठा कर, तीर्थयात्रा करते हैं, ठीक उसी तरह हमारे मुसलमान भाई भी धर्म्म की प्यास बुझाने के लिये सैकड़ों हज़ारों रुपये बिगाड़ कर और अपनी जान ख़तरे में डालकर तीर्थदर्शन किया करते हैं। मुसलमानी धर्म्म का जन्म अरब में हुआ था। मुसलमानी धर्म्म के जन्मदाता हज़रत मुहम्मद अरब के रहनेवाले थे। इसीसे मुहम्मद साहब का जन्मस्थान मक्का, तथा उनकी समाधि का शहर मदीना, मुसलमानों के सब से बड़े तीर्थ हैं। हर साल पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर तक के हज़ारों धार्म्मिक मुसलमान मक्के-मदीने की हज करने जाते हैं। मुसलमानी तीर्थयात्रा के हज कहते हैं। यात्री लोग हाजी कहलाते हैं।

जिस प्रेस में सरस्वती छपती है, उस प्रेस के एक कर्म्मचारी अभी हाल में हज करके लैाटे हैं। उनके मुँह से मक्का के विषय में जो कुछ बातें सुनने में आई हैं, वही सरस्वती के वाचकों के हम भी सुनाते हैं।

मक्का जाने के लिये हिन्दुस्तान के मुसलमानों के पहले बम्बई जाना पड़ता है। वहां पर यात्री लोगों से जहाज़ पर आने जाने के किराये के सिवा, घर लैाट आने के लिये उनसे रेल का किराया तक वसूल कर लिया जाता है। अरब से लैाट आने पर, ख़र्च चुक जाने से, पहले हाजी लोग, बहुधा, घर नहीं लैाट सकते थे। ख़र्च के अभाव से उनके बड़ी बड़ी तकलीफ़ें उठानी पड़ती थीं। यहां तक कि बहुधा सरकार के अपनी तरफ़ से रेल का किराया देकर ऐसे हाजियों के उनके घर तक पहुंचा देना पड़ता था। इसलिए अब पहले ही से, जहाज़ पर सवार होने के आगे, सब यात्रियों से उनके घर तक लैाटने का किराया वसूल कर लिया जाता है। नहीं ते वे जहाज़ पर सवार ही नहीं होने पाते।

अस्तु, हमारे हाजी भी सतना तक का वापसी टिकट लेकर जहाज़ पर जा बैठे। रीवां में इनके भाई महाराजा के डाक्टर हैं। इसलिये उन्होंने सतना तक, जो रीवां के लिए रेल का स्टेशन है, वापसी टिकट ख़रीदा। जहाज़ों के नियम के अनुसार पांच दिन तक सब लोगों के बम्बई में एक स्थान पर "क़ारनटाइन" में रहना पड़ा। अर्थात् पांच दिन तक सरकार ने ठाक बजा कर सबके देख लिया कि कोई प्लेग या किसी दूसरे रोग से पीड़ित मनुष्य हज के बहाने यमलोक की ओर न चल दे; अथवा अपने पुछल्ले में दूसरे सैकड़ों हाजियों के बांध कर न उड़ा ले जाय। यह प्रबन्ध रोग के रोकने के लिए है। सुनते हैं कि प्लेग पहले हिंदुस्तान में नहीं था। जहाज़ों ही के द्वारा किसी समुद्रपार के देश से यहां पधारा है। परन्तु, तौभी, जहां तक बन पड़ता है, सरकार हर तरह से प्रजा की भलाई ही की चेष्टा करती है।

हाजियों का जहाज़ बम्बई छोड़ कर अनन्त नीले आकाश से घिरे हुए, पहाड़ों की तरह बड़ी बड़ी लहरों से उमड़ते हुए, विशाल अरबसागर की छाती पर पंख मारते आगे बढ़ा। लहरों से टक्कर खाने से जहाज़ बहुत डांवाडोल होता है। इसलिए, जो लोग पहले पहल जहाज़ पर सवार होते हैं, उनके उदर-रूपी सागर के भीतर भी डांवाडोल मच जाता है। लोग ऐसे बीमार हो जाते हैं कि क्षुब्ध हुए पेट-रूपी प्रचण्ड सागर की लहरें मुँह की राह से उछल उछल कर बाहर आने लगती हैं। चारों तरफ़ से 'व्हाक' 'व्हाक' की ध्वनि से यात्री लोग उन लहरों के बाहर बहाने लगते हैं। परन्तु वह पीड़ा सिर्फ़ दो तीन दिनों में शान्त हो जाती है। मानवी शरीर का धर्म्म है कि मनुष्य चाहे कितना ही अनभ्यस्त क्यों न हो, वह शीघ्रही नई प्रकृति के नियमों के वशीभूत हो जाता है। फिर जहाज़ पर शान्ति विराजने लगती है। परन्तु जिनका स्वास्थ्य अच्छा होता है वे लोग बहुधा यह पीड़ा (अंग्रेज़ी में इसे

सी-सिकनेस [Sea-sickness] कहते हैं) नहीं पाते। हमारे हाजी साहब ने एक दिन भी यह पीड़ा नहीं भोगी। उनका प्रशान्त उदरसागर अरब-सागर की लहरों से भेट करने को व्यग्र नहीं हुआ।

जहाज़ आठ दिन में अदन जा पहुंचा। वहां से लालसागर होकर, दस दिन में वह कामरां नामी टापू के किनारे पहुंचा उसीके पास से, उस समय, रूसियों का बाल्टिक बेड़ा जापानियों से कुश्ती लड़ने जा रहा था। परन्तु रात के समय दूर से जलती हुई रोशनी के सिवा और कुछ नहीं देख पड़ा। लाल सागर की चौड़ाई नकशे में ज़रा सी जान पड़ती है। पर जहाज़ पर से समुद्र के किनारे तक नहीं देख पड़ते।

कामरां से चलने पर दो दिन बाद जहाज़ जिद्दा के बन्दर में आ लगा। जहाज़ किनारे पर नहीं लगता। किनारा छिछला होने के कारण भारी जहाज़ों को गहरे पानी ही में लङ्गर डालना पड़ता है। हाजियों के जहाज़ के लङ्गर डालते ही किनारे से सैकड़ों नावों ने आकर उसे चारों तरफ़ से घेर लिया। सैकड़ों अरबी मल्लाह, डारविन साहब के पूर्व-पुरुषों को तरह, रस्सी थाम थाम कर ऊपर चढ़ आये। उस समय सन्ध्या हो गई थी। इसलिये हाजियों के पंडों ने उनको उस समय किनारे उतरने की सलाह न दी। इससे उस रात के लिए सब लोग जहाज़ ही पर रहे। अरबी लोग बड़े चोर होते हैं। नाववाले मल्लाह भी चोरी की कला में एम० ए० पास कर चुके हैं। उनको अफ़सोस इस बात का है कि एम० ए० के आगे और कोई उससे भी बड़ा दरजा ही नहीं। नहीं तो वे उसे भी बात की बात में पास कर डालते। इसलिए जहाज़ के कप्तान ने पुलिस बुलवाकर सब मल्लाहों को जहाज़ पर से खींच खींच कर दूर कर दिया। दो चार मल्लाह लालच न सँभाल सकने के कारण यात्रियों में जाकर छिप बैठे थे। परन्तु पकड़े जाने पर पुलिसवालों ने डंडों से उन सबों की खूब अच्छी तरह ख़बर ली।

दूसरे दिन, सवेरा होते ही, हाजियों के जहाज़ से उतरने की धूम मच गई। जहाज़ पर से सीढ़ियां लटका दी गईं। उन्हीं सीढ़ियों से सब लोग नीचे नावों पर उतरे। उस दिन समुद्र शान्त था। परन्तु जिस दिन हवा चलती है, और समुद्र की लहरें चञ्चल होने से नावें हिलने लगती हैं, उस दिन सीढ़ी का भी मिजाज़ बिगड़ जाता है। तब जहाज़ पर से उतरना सहज नहीं होता।

हिन्दू पाठकों को अच्छी तरह मालूम है कि तीर्थ के पण्डे कैसे लालची, कैसे दुखदाई, होते हैं। हमने समझा था कि हिन्दुस्तानी पण्डे ही यात्रियों को तंग किया करते हैं; परन्तु मुसलमान पण्डे भी उनसे किसी बात में कम नहीं होते। अरब के हर पण्डे के हिस्से में और और देशों की तरह हिन्दुस्तान के भी कई ज़िलों की यजमानी बटी रहती है। हमारे हाजी जी बङ्गाली मुसलमान हैं। उनका घर चौबीस-परगने के ज़िले में है। ऐसा जान पड़ा कि जो पण्डा चौबीस-परगने के यात्रियों का अधिकारी है, उसीके हिस्से में इलाहाबाद भी है। परन्तु उस अभागे के भाग में हमारे हाजी साहब की एक कानी कौड़ी भी नहीं बदी थी। उन्होंने पहले ही से कई हैदराबादी भद्र पुरुषों का साथ कर लिया था। इससे हैदराबाद के अधिकारी पण्डा जी ही हमारे हाजी जी की जोंक बने। हाजी जी ने अपने साथियों का साथ छोड़ना न चाहा। उस दिन जिद्दा के बन्दर पर कम से कम १५० पण्डे मौजूद थे। पण्डों का अरबी नाम मुअल्लिम है।

तुर्की गवर्नमेन्ट की तरफ़ से जो हाकिम नियत रहता है उसे शरीफ़ कहते हैं। पर मुअल्लिम से शरीफ़ तक सब लोग लालची हैं। यदि सरकारी अफ़सर मुअल्लिमों से मिले हुए हों तो भी कुछ आश्चर्य्य नहीं। क्योंकि कोई भी अफ़सर यात्रियों की शिकायत नहीं सुनता। सभी बात बात में हाथ पसारे रहते हैं। अंग्रेज़

गवर्नमेन्ट की ओर से इलाहाबाद के रहनेवाले एक डाक्टर साहब जिद्दा के कानसल हैं।

जिद्दा पहुंच कर यात्रियों से कई तरह के टैक्स लिये जाते हैं। जहाज़ पर से उतरते ही १॥।≈) नाव, कुली इत्यादि के लिए देना पड़ा। उत्तर की तरफ़ रूम के राज्य से मदीने तक एक रेल बन रही है। उसके लिए १॥) लिया गया। परन्तु बहुतेरों ने इसे नहीं भी दिया। यात्रियों की रक्षा के लिए डेढ़ डेढ़ मील पर सौ सौ तुर्की सिपाहियों की चौकी रहती है। उनके पालन-पोषण के लिये भी ६॥) देना पड़ा। मुसाफ़िर-ख़ाने का किराया प्रति मनुष्य ।) रोज़ है। जिद्दा से पूर्व की तरफ़ मक्का है। जिद्दा से वह ३६ मील दूर है। मुअल्लिम को सहायता से यात्रियों ने सवारी के लिए ऊंट मंगवाये। पीछे से मालूम हुआ कि यदि मुअल्लिम के द्वारा ऊंट न मंगाये जाते तो ३६ मील को सवारी में २०।२५ रुपये की बचत हो सकती थी। ३५) रु० की जगह १०) या १५) ही रुपये में ऊंट मिलना असम्भव न था।

परन्तु धर्म्म के नाम पर रुपये पैसे का इतना लालच करना अच्छा नहीं। और धन के बिना धर्म्म की राह भी कठिन हो जाती है। अकसर वह मिलती ही नहीं।

ऊंट आये। ऊंटों पर लोग सवार हुए। कैसे सवार हुए सो भी सुन लीजिए। किसी किसी ऊंट की कुबड़ो पोठ पर एक सोधो चार-पाई बँधो रहती है। कोई उसो पर बैठ कर रत्नाकर की लहरों पर कभी ऊपर, कभी नीचे, हिलता हुआ दूसरी बार सामुद्रो बोमारी का ध्यान करता था। और कोई ध्यान करता था 'सुख दुख' का। संसार-सागर में ग़ोता लगा कर सुख दुख का स्वाद किसने नहीं पाया है। परन्तु अरब के रेत-सागर का 'सुख दुख' एक अपूर्व वस्तु है। उसका अरबी नाम सुगदुप है। सुगदुप एक तरह की सवारी है। अर्थात्, दो खटोलियां ऊंट की पोठ से उसके दोनों ओर लटकती रहती हैं। उन खटोलियों पर अरब-रवि के तीखे किरणों से तनिक बचने के लिए छत की तरह कुछ छाया बनी रहती है। परन्तु जो इस सवारी पर एक बार चढ़ा है, वही कहता है कि इससे जितना सुख मिलता है, उतना ही दुख। इसीसे इसका नाम सुख-दुख, वा सुगदुप, पड़ा होगा। एक तरह की और भी खटोली होती है, उसका नाम छिबड़ी है। उसपर सुख-दुख से कुछ अधिक दुख मिलता है। संसार में दुखही अधिक है। इसी बात की याद दिलाने के लिए शायद यह आविष्कार किया गया हो।

जिधर नज़र उठाइए, मालूम होता है कि पृथ्वी अनन्त रेतीले मैदान ही से बनी है। रेत का न ओर देख पड़ता है न छोर। आगे रेत, पीछे रेत, अगल बग़ल में रेत, चारों तरफ़ रेत,—रेत ही रेत—रेत—रेत,—बस, और कुछ नहीं। कहीं कहीं बीच बीच में ऊंट के कूबड़ों की तरह रेतीले मैदान के भी कूबड़ निकले हुए दिखाई देते हैं। रेतीले टीलों और पहाड़ियों को छोड़ कर इस विशाल रेत के मैदान में और दूसरी वस्तु नेत्रों के सामने नहीं देख पड़ती। ये पहाड़ियां मक्के की राह में कहीं पर कम हैं, कहीं पर अधिक। परन्तु हैं वे भी रेत ही की। उनके पत्थर भी सब बालू के हैं।

अभी कल तक अनन्त अपरिमेय पानी के मैदान पर हाजी जी जा रहे थे। और अब उस लीलामय की लीला को देखिये,—वह पानी का मैदान सूख गया, पानी को जगह बालू भर गया। पानी पर जहाज़ कूद रहा था। बालू पर ऊंट की पीठ कूद रही है। इस बालू-रूपी समुद्र में दुर्बल मनुष्य के लिए ऊंट ही जहाज़ है। ऊंट न हो तो भरभूंजे की भाड़ में चने को तरह इस ज्वलन्त रेतीले भाड़ में मनुष्य भी जल भुन जाय। अंग्रेज़ लोग ऊंट को रेतसागर का जहाज़ (The ship of the desert) कहते हैं, सो ठीक है।

हाजी जी जिस दल में थे, उसमें ३०० ऊंट थे। और तुर्की सरकार की ओर से ५० सिपाही उन लोगों की रखवाली के लिये एक चौकी से

दूसरी चौकी तक जाते थे। अठारहवें मील पर, अर्थात् जिद्दा और मक्का के बीच में, एक पड़ाव है। सवेरे से सन्ध्या तक रेत के जहाज़ों ने सिर्फ़ १८ मील मैदान तै किया। अब सन्ध्या होते ही पहले दिन की यात्रा बन्द हुई। लोग ठहरे कहां? हिन्दूतीर्थ-यात्री समझते होंगे कि वहां पर पण्डों के मकान होंगे, या सराय होगी, या कोई धर्म्मशाला होगी, या सरकारी पड़ाव के लिए कोई ग्राम का बाग़ ही होगा। परन्तु नहीं, वहां पर न मकान थे, न सराय, न धर्म्मशाला, न किसी पेड़ की छाया। नीचे वही रेत, वही बालू, और ऊपर वही नीला स्वच्छ अरबी आकाश। हां, यात्रियों के ठहरने की जगह दो तीन हाथ लम्बी खजूर की डालियों की क़तारों से घिरी हुई थी।

रात होते ही पड़ाववाले बार बार पुकारकर कहने लगे "ख़बरदार, इस हद से बाहर कोई न निकलना, यदि बाहर निकलोगे तो हम तुम्हारे जान माल के ज़िम्मेदार नहीं। बाहर निकले और बद्दुओं ने तुम्हारी जान ली। ख़बरदार, लक्ष्मण जी के इस धनुषचिन्ह से बाहर पैर न बढ़ाना"। बद्दू लोग यहां के लुटेरे डाकू हैं। ऐसा सुना जाता है कि वे हज़रत मुहम्मद साहब की दासी के वंशधर हैं। इसीसे उनका बड़ा प्रताप है। वे किसीसे नहीं डरते। मौक़ा पाते ही मुसाफ़िरों को मार कर वे उनका सर्वस्व छीन लेते हैं। आपको जैसे मच्छर मारने में दुःख, क्लेश, परिश्रम, कुछ नहीं होता, बद्दू भी उसी तरह, जिसको चाहते हैं उसीको, मच्छर की तरह मार डालते हैं।

परन्तु चोर डाकू बहुधा कायर होते हैं। बद्दू भी बड़े कायर हैं। बहादुरी इनमें ज़रा भी नहीं। दूसरे पक्ष का भारी दल देखते ही वे भाग जाते हैं। एक बार एक पञ्जाबी हाजी को बद्दुओं ने घेर लिया। उसने अपनी कमर से रुपये निकाल कर सामने रख दिये और ललकार कर कहा कि कोई माई का लाल हो तो इसे मेरे सामने से ले जाय। बद्दू लोग रुपया न ले सके, परन्तु पञ्जाबी ने चार बद्दुओं को तुरन्त ही जहन्नुम की सैर करने भेज दिया। बाक़ी बद्दू उस समय तो भाग गये, परन्तु किसी और दिन उन्होंने पञ्जाबी को सोते हुए मार डाला।

दूसरे दिन सवेरा होते ही फिर कूच हुआ। इस दिन एक विशेष बात हो गई जिसका लिखना हम उचित समझते हैं। यात्रियों में से एक हैदराबादी सौदागर था। उसकी स्त्री और बम्बई के रहनेवाले दो नौकर भी उसके साथ थे। सौदागर के पास सात सौ अशर्फ़ियां थीं। उसने रात के समय अशर्फ़ियों को निकाल कर गिन डाला। परन्तु जैसे मिठाई का पता मक्खियों को लग जाता है उसी तरह अशर्फ़ियों का पता लुटेरों को लग गया। ऊंटवाले ही बद्दुओं के भाई बिरादर होते हैं। सौदागर के ऊंटवालों ने उसको लूट लेने का सब बन्दोबस्त कर लिया। दूसरे दिन, पौ फटने के पहले, कुछ रात रहते रहते, उन ऊंटवालों ने सौदागर को जगा कर कहा "आज बड़ी भीड़ होगी, बैठने के लिये अच्छी जगह का मिलना कठिन हो जायगा, इससे आप कहें तो हम लोग ज़रा आगे ही कूच करदें।" सौदागर उनकी बातों में आगया और ऊंटों पर बैठ कर वे लोग आगे बढ़े। एक ऊंट की पीठ से लटकती हुई खटोलियों पर सौदागर और उसकी स्त्री सवार हुए, और दूसरे ऊंटपर दोनो नौकर। वे लोग कोई आध ही मील दूर गये होंगे कि ऊंटवाले ने रस्सी काट दी और सौदागर और उसकी बीबी, दोनो, ज़मीन पर जा गिरे। इतने ही में १०।१२ आदमी, जो वहीं पर छिपे हुए थे, उन पर जा टूटे और सौदागर की सब अशर्फ़ियां ले कर रफ़ू चक्कर हो गये। परन्तु आश्चर्य्य की बात यह हुई कि, चाहे जल्दी से हो चाहे और किसी कारण से, किसीकी जान उन्होंने नहीं ली। वे दोनों स्त्री-पुरुष वहीं पड़े रहे।

इस समय बम्बईवाले नौकरों में से एक ने बड़ी बुद्धिमानी का काम किया। उस समय की वार-

दात उसकी समझ में आते ही वह अपने ऊंट पर से कूद पड़ा और उलटे पांव दौड़ता हुआ सरकारी चौकी पर पहुंचा। वहां उसने सिपाहियों से सब हाल बयान किया। सिपाही लोग तुरन्त उसके साथ डाकुओं के पीछे दौड़े। कुछ दूर जाकर सबों ने देखा कि लुटेरे आपस में हिस्सा बाँटने के लिये ख़ूब लड़ रहे हैं। फिर क्या था, सिपाहिओं ने उनको जा घेरा और बिना किसी पूंछ पांछ के उन पर गोलियां चलाईं। १४।१५ डांकू देखते देखते यमलोक की तरफ़ कूच कर गये। यही अरब देश का न्याय है। कहां की गिरफ़्तारी, कहां की कचहरी और कहां के हाकिम! अरब के गरमागरम न्याय का यही नमूना है। सौदागर ने अपने न्यायकर्त्ताओं को कुछ अशर्फ़ियां पुरस्कार दीं और उस बहादुर नौकर को सौ रुपये दिये। अब, पाठक, सोचिए कि हाजियों को कैसी कैसी मुसीबतें रात दिन झेलनी पड़ती हैं।

अभी पर साल की बात है कि भूपाल की बेगम को बद्दुओं के एक दल ने मदीने जाते समय घेर लिया। बेगम ने कहा कि हम मदीने से लौट कर तुम लोगों को बहुत सा धन देंगे। परन्तु मदीने से उन्होंने तुर्की सरकार को तार देकर बद्दुओं की बदमाशी की रिपोर्ट कर दी। वहां से उनकी रखवाली के लिये कड़ा इन्तज़ाम हुआ और कोई हज़ार आदमियों के एक क़ाफ़िले के साथ बेगम साहबा लौटीं। पर, बद्दू लोग बदला लेने में कभी नहीं चूकते। उन्होंने भी बड़ा भारी दल बादल लेकर बेगम साहब के दल पर आक्रमण किया और बेगम साहब की सवारी पर, जो बहुत बढ़िया थी और ख़ूब सजी हुई थी, सैकड़ों गोलियां बरसाईं। परन्तु बेगम साहब ने पहले ही से उत्पात की आशङ्का करके अपनी सवारी छोड़ दी थी। साधारण यात्री की तरह एक और सवारी पर वे जा बैठी थीं, इसीसे उनकी जान बच गई।

एक और कथा लिखकर हम बद्दुओं की चर्चा बन्द करते हैं। एक हिन्दुस्तानी मुसलमान किसी समय हज करने गया। उससे एक बद्दू ऊंटवाले से झगड़ा हो गया। वह झगड़ा इतना बढ़ा कि हाथाबाहीं की नौबत आगई और हिन्दुस्तानी ने ऊंटवाले को मार डाला। मार तो डाला, परन्तु थोड़ी ही देर में उसके हृदय में अनुताप की ज्वाला धधक उठी। उसने सोचा कि मैं सात समुद्र पार होकर आया धर्म्म करने, पर सञ्चय किया मैंने अधर्म्म का। ज़रा सी बात पर तकरार करके मैंने एक आदमी की जान ले ली। अब मुझको इस पाप का प्रायश्चित्त करना चाहिए। यों सोच कर ढूंढ़ता ढूंढ़ता वह उस मृत ऊंटवाले के पिता के घर पर पहुंचा और उससे सब बातें ठीक ठीक कह कर बोला कि तू मुझे क्षमा कर। पाठक, सोचिये तो मृत जवान के बूढ़े पिता ने किस तरह अपने पुत्र-हन्ता को दण्ड दिया। वहां तो छुरी तलवार का चलना एक अत्यन्त प्राकृतिक और नित्य-नैमित्तिक घटनाओं में से हैं। बुड्ढे ऊंटवाले ने अपने युवा पुत्र के मरने का दुःख उतना न माना जितना शायद कोई दूसरा मानता। किन्तु हिन्दुस्तानी की सत्यनिष्ठा ने उसके हृदय पर बहुत बड़ा असर किया। बुड्ढे ने सोचा कि ऐसे सच्चे और धर्म्मात्मा मनुष्य को न छोड़ना चाहिए। इसलिये उसने उस हिन्दुस्तानी को अपने यहां से न लौटने दिया। अपने बेटे के मारे जाने के कुछ ही दिन पहले उसने उसका विवाह कर दिया था। उसकी बहू इस समय घरही पर थी। बुड्ढे ने हिन्दुस्तानी के साथ अपनी बहू का निकाह करा दिया और उसीको अपना पुत्र बना लिया। वह हिन्दुस्तानी अब अरबी—अरबी ही नहीं, बद्दू—बन गया है, परन्तु लूट मार नहीं करता। ऊंट हांकता है, और अरबी, हिन्दुस्तानी आदि कई भाषायें जानने के कारण विदेशियों के लिए वह बहुधा द्विभाषिये का काम करता है।

मुसलमानी धर्म्मग्रन्थों में लिखा है कि ईश्वर को सन्तुष्ट करने के लिए हज़रत इब्राहीम ने

अपने पुत्र इस्माईल का बलिदान दिया था। जब इब्राहीम पुत्र को क़ुर्बान करने के लिये ले जाने लगे, उस समय इबलीस, यानी शैतान, ने इब्राहीम को बहुत फुसलाया और अनेक तरह से वह उसे समझाने लगा कि तेरा बाप तुझे मारने को लिये जाता है। परन्तु इस्माईल बड़े पोढ़े हृदय का धार्म्मिक था। उसने इबलीस की पाप की बातें न सुनीं। उसने कहा कि यदि यह शरीर जिसका नाश एक दिन होना ही है, ईश्वर के कार्य्य में आ जाय, तो मैं अपना बड़ा भाग्य समझूंगा।

अस्तु, उसी क़ुर्बानी की प्रथा अब तक चली आती है। बक़राईद के दिन सब धार्म्मिक मुसलमान किसी पशु का बलिदान देते हैं। मक्के में मोना और मुज़दफ्फ़ा नाम के दो स्थान हैं। उन्हीं के बीच में इब्राहीम ने बलिदान दिया था। वहीं सब हाजी लोग अपनी अपनी श्रद्धा के अनुसार अब भी पशु मारते हैं। बलि के पशुओं का मांस इतना इकट्ठा हो जाता है कि उस सबका लेने वाला नहीं मिलता। इसलिये यात्रियों के हट जाने पर उसे बद्दू उठा ले जाते हैं। उसे वे सुखाते हैं। फिर कूट पीस कर, आटे के साथ मिला कर वे उसकी रोटी पकाते हैं।

यहां से आगे चल कर एक स्थान अरफ़ात है। अरफ़ात मुसलमानों का प्रयाग है, क्योंकि यहां पर यात्री अपना सिर घुटवा डालते हैं। हिन्दू लोग पुरुष और प्रकृति को मानते हैं। मुसलमान आदम और हौवा को मानते हैं। आदम पृथ्वी में पहला पुरुष और हौवा पहली स्त्री थी। लोग कहते हैं कि इसी अरफ़ात ही में आदम और हौवा की पहली मुलाक़ात हुई थी। ईसाई भी इस पहले स्त्री-पुरुष के जोड़े को मानते हैं। पर वे कहते हैं कि आदम और हौवा ईडन के बाग़ में रहते थे। नहीं मालूम वह ईडन का बाग़ कहां है।

अरफ़ात के सामने एक पहाड़ी के नीचे पृथ्वी के सब देशों से आये हुए हाजियों की मजलिस होती है। सब लोग वहां मक्के की ओर मुंह किये हुए क़तार बांध कर बैठ जाते हैं। रूम से आया हुआ एक मुअ़ल्लिम पहाड़ी पर खड़ा होकर कुछ आराधना करता है—क़ुरान की कुछ आयतें वह पढ़ता है। उसके पीछे हज़ारों मनुष्य बैठकर उसकी आराधना सुनते हैं। सुनते क्या हैं, एक मनुष्य का स्वर, इतनी दूर से, सुनाई देना असम्भव है। परन्तु ख़बर आ जाती है कि आराधना आरम्भ हो गई, या अन्त हो गई। आराधना हो जाने पर तोप बार तोप दाग़ी जाती है। बहुत लोग तो मुअ़ल्लिम की सूरत तक को नहीं देख पाते। वह क्या कहकर आराधना करता है उसका सुनना तो दूर की बात है। सुनते हैं, इस बार १,००,००० यात्री वहां गये थे।

यहीं पर तीर्थ का असली कार्य—हज—ख़तम हो जाता है। इसके बाद मक्का-दर्शन। मक्का अरब में हिजाज़ सूबे का सबसे बड़ा शहर है। वह एक बलुई तराई में है। उसके आस पास पहाड़ भी हैं। शहर की लम्बाई कोई ३५०० क़दम और आबादी कोई ६०,००० है। मकान प्रायः पत्थर के हैं। कोई कोई मकान चार चार पाँच पाँच खण्ड के हैं। रास्ते चौड़े परन्तु बेहद मैले हैं। पुराने ज़माने में यहां पर एक अरबी का कालेज था; परन्तु अब वह नहीं है। कालेज की इमारत में अब लोगों के घर हो गये हैं। अब भी एक आध स्कूल वहां हैं। एक शफ़ाख़ाना भी है। यात्रियों के रहने के लिए अनेक मकान और नहाने के लिए अनेक हम्माम हैं। मक्का में सुलतान रूम का राज्य है और उनके अफ़सर भी वहां हैं। परन्तु सब नाम मात्र के लिए। मक्का के कर्ता धर्ता वहां के शेरिफ़ अर्थात् शरीफ़ ही हैं।

मक्का में महम्मद साहब का जन्मस्थान ज़ियारत की जगह है। और भी कई जगहें हैं जहां यात्री लोग बहुत भक्ति-भाव से जाते हैं। पर मक्का में सबसे अधिक प्रसिद्ध जगह वहां की विशाल मसजिद है। मुसल्मानी धर्म्म फैलने के पहले भी मक्का पवित्र तीर्थ माना जाता था। उस समय अरब में जो लोग रहते थे वे मूर्तिपूजक थे। जहां पर

यह मसजिद है, वहीं पुराने मूर्तिपूजकों के मन्दिर इत्यादि थे। उनके भीतर की मूर्तियों को मुसल्मानों ने तोड़ डाला। इसी मसजिद के अहाते में काबा नाम की एक जगह है। उसे मुसल्मान बहुत पवित्र समझते हैं। यहां पर संगे-अस्वाद नामक एक काले पत्थर का टुकड़ा है। यात्री लोग उसे चूमते हैं और हिन्दुओं की तरह उस स्थान की प्रदक्षिणा करते हैं। अँगरेज़ ग्रन्थकारों का मत है कि यह पत्थर पहले मूर्तिपूजकों की किसी मूर्ति के रूप में था। ६८३ ईसवी में आग लग जाने के कारण वह कई जगह से टूट गया था। इससे वह एक चाँदी के बंद से बाँध दिया गया है। मुसल्मानों का कथन है कि इस पत्थर को जिबराईल ने हज़रत इब्राहीम को दिया था। मक्का की इस मसजिद में काबा को छोड़कर ज़मज़म नाम का कुआं भी एक प्रसिद्ध स्थान है। इस मसजिद की कई दफ़ा मरम्मत हुई है। हज के वक्त मक्के में कोई एक लाख के क़रीब यात्री इकट्ठे होते हैं।

जो लोग चाहते हैं वे मक्का से जिद्दा लौटकर, फिर जहाज़ पर बैठ, उत्तर को मदीने की यात्रा करते हैं। रेल बन जाने पर मक्का ही से सीधे उत्तर को तरफ़ रेल पर बैठ कर मदीने जाना सहज हो जायगा। रेल बन रही है।

अरब में मदीना भी एक बड़ा शहर है। वह बिलकुल मैदान में है; परन्तु इसके भी इर्द गिर्द कुछ दूर पर पहाड़ियां हैं। पहाड़ियों से नदियां भी निकली हैं। इसके पास के पहाड़ ज्वालामुखी हैं। १२६६ ईसवी में इनमें से एक पहाड़ का स्फोट हुआ था और गली हुई ईंट, पत्थर और धातुओं की अग्निमय धारायें मदीना के पास तक बह आई थीं। मदीना के चारों तरफ़ शहरपनाह है। आबादी कोई बीस हज़ार के क़रीब है। जो दशा हमारे यहां प्रयाग, काशी और गया आदि तीर्थों की है, वही मक्का और मदीना की भी है। मदीने में हज़ारों आदमी बे हाथ पैर हिलाये यात्रियों के मत्थे मज़े उड़ाते हैं। यहां पर एक क़िला है। उसमें तुर्की फ़ौज रहती है। मकान यहां भी सब पत्थर ही के हैं। गलियां चौड़ी कम हैं, पर साफ़ हैं।

मदीना में महम्मद साहब का रौज़ा है। महम्मद, अबूबकर, उमर और फ़ातिमा इत्यादि के मक़बरे सब एक ही इमारत में हैं। मदीना का महत्व इसी रौज़े के कारण है। पहले यह एक मामूली इमारत थी। जबसे वह बनी तबसे दो दफ़े वह फिर से नई बनाई गई। पर १२५६ ईसवी में वह जलकर बिलकुल ही बरबाद हो गई। इससे तीसरी दफ़ा उसे बनाना पड़ा। इमारत बहुत अच्छी है। जो लोग महम्मद के साथ मक्के से मदीने भग गये थे, उनको भी क़बरें शहर के पश्चिम, कुछ दूर पर हैं। इन मक़बरों की हालत बहुत ख़राब हो गई थी; परन्तु अब किसी किसी की मरम्मत हो गई है।

मदीने से उत्तर करबला है। करबला शीया सम्प्रदायवालों का तीर्थ है। हमने एक अङ्गरेज़ी मासिक पत्र में पढ़ा है कि वहां पर धार्म्मिक मुसल्मान छुरा मार मार कर अपने शरीर से ख़ून बहा कर क़ुर्बानी करते हैं।

कुछ और भी उत्तर की ओर ज़रूसालम है। यह हज़रत ईसा का जन्मस्थान है। परन्तु मुसल्मान भी वहां बहुत जाते हैं। हमारे हाजी जी भी वहां जाने की इच्छा रखते थे। पहले उनके भाई ने भी उनके साथ जाना चाहा था। परन्तु छुट्टी न मिलने से वे इस साल नहीं जा सके। इसीलिए हाजी जी ने अकेले इतनी दूर की यात्रा करना उचित न समझा। अपने भाई के साथ, फिर, इसी अगले दिसम्बर के महीने में, वे मक्का की यात्रा करनेवाले हैं।

पार्वतीनन्दन।
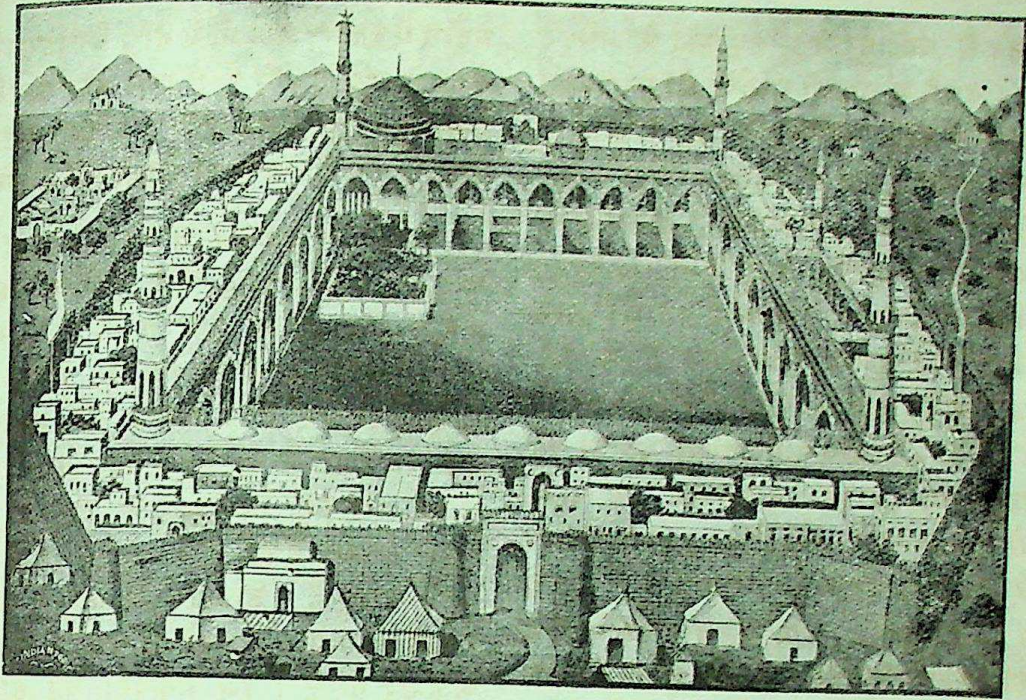
मदीना।
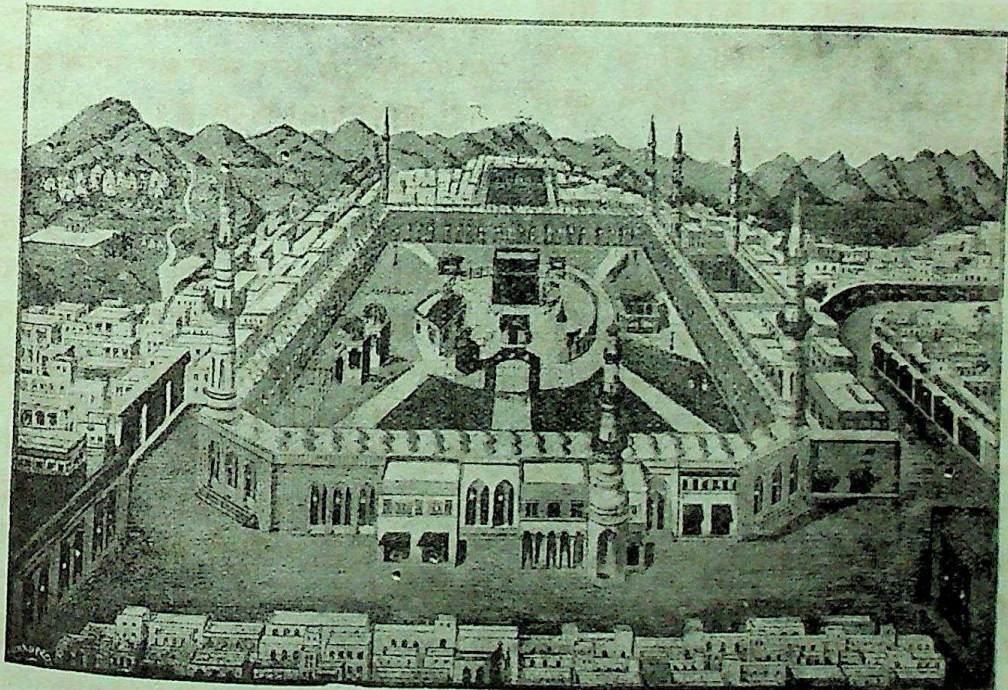
मक्का।

भाग ६] दिसम्बर, १९०५ [संख्या १२

विविध विषय।

इस अङ्क के साथ सरस्वती का छठा भाग समाप्त होता है। नियमानुसार सरस्वती की हर संख्या में ३२ पृष्ठ, अर्थात् साल भर में ३८४ पृष्ठ होने चाहिएं। परन्तु गत वर्ष का पाँचवां भाग ४४४ पृष्ठों में समाप्त हुआ। अर्थात् ग्राहकों में उसी मूल्य में ३२ पृष्ठ की जगह ३७ पृष्ठ, हर महीने, पढ़ने को मिले। इस साल सरस्वती की पृष्ठ-संख्या और भी बढ़ा कर ५०० के क़रीब कर दी गई। अर्थात् हर महीने, ३२ की जगह ४० से भी अधिक पृष्ठ ग्राहकों को मिले। पर मूल्य पूर्ववत् वही बना रहा। इसके सिवा चित्र, छपाई, काग़ज़ और रूप-रङ्ग में भी विशेषता रही। हमें आशा है, सरस्वती के सहायकों ने इस बात को पसन्द किया होगा। इस साल जैसे लेख इसमें निकले, उसके विषय में हम यदि कुछ कहें तो हमारा कहना सर्वथा अनुचित होगा। सरस्वती पर कृपा करनेवाले उसके ग्राहक और पाठकही इस बात का विचार करेंगे।

अपने अनुग्रहरूपी सलिल से सरस्वती को सिञ्चन करनेवाले ग्राहकों की कृपा और सरस्वती के अध्यवसायशील और उत्साही मालिकों के यत्न से इस साल सरस्वती की दशा पहले से बहुत अच्छी रही। उसका प्रचार यथेष्ट बढ़ा, यहां तक कि यदि सब बातें पूर्ववत् बनी रहीं तो अब इसके अकाल-कवलित होने का कोई डर नहीं जान पड़ता। पर हिन्दी के प्रेमियों से हमारा सादर निवेदन है कि वे इसे, अगले वर्ष, कुछ और भी विशेष कृपा की दृष्टि से देखें जिसमें अब तक इसके मालिकों को जो क्षति हुई है वह पूरी हो जाय। हिन्दी उनकी मातृभाषा नहीं; तथापि उसकी हीनावस्था के कारण दयाद्रवित होकर, सरस्वती के द्वारा, उसकी सहायता करने का उन्होंने जो निश्चय किया है उसके ख़याल से हिन्दीभाषा-भाषी सज्जनों का यह कर्तव्य है कि वे उनके घाटे को पूरा कर दें।

इस साल एक विशेष बात यह हुई कि सरस्वती के टाइटिल पेज, अर्थात् आवरण, पर से काशी की सभा का नाम निकल गया। इस बात की कैफ़ियत सरस्वती में प्रकाशित हो चुकी है।

इससे, उस विषय में, अब और कुछ कहने की ज़रूरत नहीं।

किसी बात का वादा करके उसे पूरा न करना हम बहुत बुरा समझते हैं। इसलिए हम पहलेही से यह नहीं कहना चाहते कि अगले वर्ष सरस्वती में कैसे लेख प्रकाशित होंगे, या उसमें किस किस बात की उन्नति होगी। सम्भव है, किसी अनिवार्य्य कारण से हमारा अभिवचन किसी अंश में भङ्ग हो जाय। पर इतना हम अवश्य कहते हैं कि सरस्वती को पहले से भी अधिक उपयोगी और मनोहर बनाने की चेष्टा करने में यथासम्भव किसी तरह कमी न होने पावैगी।

श्रीनगर (पुरनिया) के नरेश श्रीयुक्त राजा कमलानन्दसिंह की सरस्वती बहुत कृतज्ञ है। उन्होंने इस साल सबसे अच्छा लेख लिखनेवाले को जो एक सोने का पदक देने का निश्चय किया है, उसका नतीजा शीघ्रही सरस्वती में प्रकाशित होगा।

* *
*

इस वर्ष दिसम्बर के अन्त में जो कांग्रेस, अर्थात् जातीय महासभा, बनारस में होनेवाली है, उसके सभापति माननीय अध्यापक गोपाल। कृष्ण गोखले, बी० ए०, सी० आई० ई०, हुए हैं। कांग्रेस के साथ जो प्रदर्शिनी कुछ साल से हुआ करती है, उसके सम्बन्ध में, इस साल, कला-कौशल अर्थात् शिल्प या कारीगरी-सम्बन्धिनी एक औद्योगिक सभा भी होगी। उसका सभापति होना श्रीयुक्त रमेशचन्द्र दत्त, सी० आई० ई०, ने स्वीकार किया है। हर साल की तरह इस बार भी एक सामाजिक जमाव होगा; उसके सभापति का आसन पण्डित ज्वाला-प्रसाद शङ्खधर, एम० ए०, को मिला है। शिल्प-कला-सम्बन्धिनी सभा का होना, इस साल, एक नई चीज़ होगी। इस सभा में, सुनते हैं, कारीगरी आदि के विषय में कई उपयोगी लेख पढ़े जायँगे।

* *
*

माननीय विचारपति श्रीसारदाचरण मित्र ने एक लिपि-विस्तार-परिषद् की नियमावली हमारे पास कृपापूर्वक भेजी है। हमने उसे अच्छी तरह देखा, सब नियम उपयुक्त और उचित जान पड़ते हैं। इन नियमों के अनुसार कुछ समय तक कार-रवाई होने पर यदि संशोधन की आवश्यकता जान पड़ै, तो पीछे से उचित संशोधन हो सकैगा। माननीय मित्र महाशय ने परिषद् की स्थापना के विषय में एक पत्र भी हिन्दी, बँगला, मराठी, गुजराती, तामील, तैलङ्गी, कनारी, नैपाली और गुरमुखी भाषा में भेजा है। यह पत्र इन भाषाओं के जानने-वालों के पास परिषद् का सभासद होने के लिये भेजा जायगा। नागरी अक्षरों में लिखे हुए इन पत्रों को भाषाओं को पढ़ने में कोई कठिनाई नहीं होती। नागरी अक्षरों की योग्यता का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है। हम इस परिषद् के सब प्रकार हितचिन्तक हैं, और आशा करते हैं कि इसे किसी समय काम-याबी होगी। चाहै देर में हो चाहै जल्द।

* *
*

एक सज्जन ने हमको एक पत्र भेजा है। आप लिखते हैं—"आपको एक ख़ुशख़बरी सुनाते हैं। सरस्वती की दसवीं संख्या में आपने काशी की सभा की 'खोज' के सम्बन्ध में जो नोट लिखा, उसका ख़ूब असर हुआ मालूम होता है। उस नोट के निकलने के पाँचही सात दिन बाद सभा ने एक बाबू साहब को बुंदेलखण्ड रवाना किया, इस लिए कि वहां जाकर खोजी गई पुस्तकों की वे नोटिसें लिखें। पर, सात आठ महीने पहले जो साहब पुस्तकों और पुस्तकालयों का पता लगाने गये थे, वे ख़ुदही बहुत सी नोटिसें ले आये थे। मालूम नहीं उनका क्या हुआ। क्यों सभाने उनसे यह बेक़ायदे काम कराया? और क्यों उसने अब तक दूसरे आदमी को बुँदेलखण्ड भेजने की ज़रूरत नहीं समझी? आपके नोट के लिए सभा ही के सब मेम्बरों को नहीं, किन्तु हिन्दी-साहित्य के सभी शुभचिन्तकों को आपका कृतज्ञ होना चाहिए"। यदि इस पत्र में लिखी हुई बात सच है तो जो कुछ हुआ अच्छा ही हुआ। पर हमारी राय तो यह है कि

इस काम के लिए दो आदमियों को भेजना व्यर्थ ख़र्च बढ़ाना है।

* *
*

बुख़ार नापने का थर्मामीटर बने बहुत दिन हुए। उसे बहुधा सभी पढ़े लिखे और समर्थ आदमी अपने घर में रखते हैं। अब नाड़ी की परीक्षा के लिए भी एक यन्त्र बन गया। उसका नाम है "स्फ़ाय्ग्मोग्राफ़"। उसके आविष्कर्ता कोई मरे साहब हैं। इस यन्त्र पर एक काग़ज़ का टुकड़ा रहता है और एक पेन्सिल भी रहती है। जब वह नाड़ी पर लगा दिया जाता है तब नाड़ी की गति के अनुसार काग़ज़ पर टेढ़ी, सीधी, छोटी बड़ी रेखायें खिंच जाती हैं। उन्हींको देखकर डाक्टर या वैद्य रोग को पहचान सकते हैं। इस देश में भी अब इस यन्त्र का प्रचार हो चला है।

* *
*

काशी से "मित्रगोष्ठी-पत्रिका" नाम की एक मासिक पुस्तक कोई डेढ़ वर्ष से निकलती है। इसमें बहुधा बहुत अच्छे अच्छे लेख रहते हैं। इसकी संक्षिप्त-आलोचना भी सरस्वती की किसी संख्या में हो चुकी है। कुछ दिन से इस पत्रिका में अजब तरह की संस्कृत-वाक्य-रचना स्थान पाने लगी है। उदाहरण—(१) इसकी भाद्र-मास की संख्या के १५० पृष्ठ में लिखा है। "स खलु महोदयः वङ्ग-भाषायाः महदुन्नतिः संसाधिता"। उन्नतिः संसाधिता केन? स महोदयः! "तेन महोदयेन" शायद ग़लत होता! (२) इसी पृष्ठ में, थोड़ी दूर आगे, लिखा है—"किमपि पाक्षिकं संस्कृतपत्रं * * * प्रचलिष्यतीति। परं याव-दस्य ग्राहकाणामर्द्धसाहस्रं न सम्पद्यते तावन्न प्रचलिता भवेत् अतस्तद्रसिकैः तूर्णं तस्य सम्पादकः पण्डितश्रीरामलालशर्म्मा विज्ञापनीयः"। प्रचलिता भवेत् का? पाक्षिकं संस्कृतपत्रम्! क्या काशी में किसी नये संस्कृत-व्याकरण का अवतार या आविष्कार हुआ है? अथवा, सम्भव हैं, दृष्टिदोष से ऐसे प्रयोग छप गये हों। परन्तु दूसरे उदाहरण में दृष्टिदोष हो सकता है, पहले में नहीं। काशी संस्कृत-विद्या का प्रधान पीठ है। वहीं संस्कृत की ऐसी दुरवस्था देख कर किसे दुःख न होगा?

* *
*

बंगाले में लड़कियों के मदरसों की एक इन्स्पेक्ट्रेस हैं। आपका नाम है मेरी, ए० सी०, मूराट। कुछ दिन हुए आपके नाम से बँगला में एक छोटी सी पुस्तक छपी थी। उसका नाम है "सूची-शिल्प"। उसका हिन्दी-अनुवाद भी अब छप गया है। इसको हमने पढ़कर देखा तो बहुत लाभकारी पाया। आर्मी प्रेस, जुही, कानपुर, के मालिक ने इसकी बहुत सी कापियां मँगा कर अपने यहां रक्खी हैं। किताब का दाम आठ आना है। काग़ज़ और छपाई सब अच्छी है। इसमें कोट, कमीज़, कुर्ता, टोपी, मोज़ा, वग़ैरह सीने की शिक्षा बहुत ही सीधी सादी भाषा में दी गई है। जगह जगह पर अच्छी अच्छी तसवीरें हैं। बेलबूटे बनाना, रफ़ू करना, कपड़ों को काटना, छांटना और तरह तरह की सिलाई का भी वर्णन है। यह किताब स्त्रियों और लड़कियों के बड़े काम की है। विशेष करके इस समय, जब कि स्वदेशी कपड़े और स्वदेशी चीज़ों को काम में लाने की धूम है, यह किताब अनमोल है।

* *
*

कानपुर के उर्दू-मासिक-पत्र "ज़माना" की अजीब समझ है। आप देवनागरी अक्षरों को उर्दू, फ़ारसी और तामील इत्यादि लिखने के लायक़ नहीं समझते। आप देवनागरी में लिखी जानेवाली संस्कृत भाषा की, इस समय, उन्नति करने की भी ज़रूरत नहीं समझते। आप, अपने सितम्बर १९०५ के अङ्क में, लिखते हैं—

हर कस बख़याल ख़ेश ख़ब्ते दारद। अहले बनारस को यह सूझ गई है कि संस्कृत तालीम को फ़रोग़ देने से हिन्दुस्तान फिर पुरानी अज़मत के ज़ीने पर चढ़ जायगा।

माहे गुज़श्ता में जब जनाब लफ़्टिनेन्ट गवरनर वहां तशरीफ़ ले गये तो इस तजवीज़ पर बड़ी सरगरमी से बहस की गई। और फ़ैसला हुआ कि संस्कृत कुतबख़ाना के क़ायम करने, तुलबा को वज़ायफ़ देने और उनके लिये बोर्डिंग हाउस तामीर करने में ढाई लाख रुपया दरकार होगा। उसी वक़्त चंद ख़रे असामियों ने पचहत्तर हज़ार रुपया जमा करके अपने दरियादिली का सबूत भी दे दिया। हम इन असहाब की फ़ैयाज़ियों के मोतरिफ़ हैं। मगर उसके साथ ही यह कहना ज़रूरी समझते हैं कि अगर यह सरमाया, यह दिमाग़ और यह सरगरमी सनअती (कारीगरी) तालीम के लिए सर्फ़ की जाती तो मुल्क को बेइंतहा फ़ायदा होता। हम नहीं समझते कि संस्कृत तालीम की अशाअत से इन असहाबों ने क्या फ़ायदा सोच रक्खा है। क्या यह ख़याल है कि यह कोशिशें इस ज़बान को सारे हिन्दुस्तान की आम ज़बान बना देगी (? देंगी)। अगर ऐसा ख़याल है तो बिलकुल बातिल है। हां अगर अपनी क़दीमी ज़बान की महाफ़िज़त मंज़ूर है तो एक हद तक दाद देने के क़ाबिल है। ताहम जिन मामलात पर ज़िंदगी व मौत का दारोमदार है पहले वह तवज्जह के मुसतहक़ हैं। ऐसे ऐसे मसायल सोसाइटी के ज़ेवर हैं। पहले रोज़ी की फ़िक्र कीजिये। ज़ेवर फिर बन रहेंगे। क्या यह अहले बनारस के लिये बायस नंग नहीं है कि अमेरिका से एक लायक़ व फ़ायक़ प्रोफ़ेसर सनअती तालीम की नीयत से आवे और कोई सामान न देख कर शिकस्ता दिल वापस जावे। माना कि यह कोशिशें एक ग़ैर मज़हब वाले शख़्स ने की थीं। मगर ऐसी कोशिश बिला क़ैद मज़हबी व मिल्लत के हमारी क़दरदानी व अयानत की मुसतहक़ हैं।

संस्कृत की उच्च शिक्षा और उसके द्वारा पुरातत्व-सम्बन्धी अनुसन्धान से लाभ होगा—यह ख़याल बनारसवालों ही का नहीं है, किन्तु जनाब लफ्टिनेन्ट गवर्नर साहब का भी है। पर "ज़माना" की राय में वह सब "ख़ब्त" है। अलीगढ़ में अरबी की उच्च-शिक्षा का जो प्रबन्ध हो रहा है वह शायद आपकी राय में बहुत बड़ी बुद्धिमानी का काम होगा। "ज़माना" का कथन है—"हम नहीं समझते कि संस्कृत तालीम की अशाअत से इन असहाबों ने क्या फ़ायदा सोच रक्खा है?" विनय है कि बनारसवालों ने संस्कृत से वही फ़ायदा सोच रक्खा है जो उर्दू की सेवा से अपना जन्म सफल करनेवालों ने फ़ारसी और अरबी से सोच रक्खा है। अथवा जो योरप और अमेरिका वालों ने ग्रीक, लैटिन, हिब्रू आदि पुरानी भाषाओं के सीखने से सोच रक्खा है।

विदेशी हाकिम संस्कृत की तरक़्क़ी का पक्षपात करें; पर स्वदेशी उसका विरोध! शिव शिव! विदेशी विद्वान् संस्कृत पढ़कर जर्मनी, फ़्रांस और इँगलैण्ड में बैठे बैठे उसका यशोगान करें; पर स्वदेशी युवक, जिन्होंने भूल कर भी संस्कृत का मुँह नहीं देखा, कहें, उसकी तरक़्क़ी की कोई ज़रूरत नहीं! एशियाटिक सोसायटी के प्रयत्न से तैयार हुई संस्कृत की हस्तलिखित पुस्तकों की सिर्फ़ नामावली ही जिसने देखी है, वह भी कह सकता है कि संस्कृत का साहित्य अतिशय विस्तृत और अतिशय श्रीसम्पन्न है। उसमें अनेकानेक ग्रन्थरत्न छिपे हुए पड़े हैं; उनके तथा पुराने शिलालेख आदि के अध्ययन और परीक्षण से पुरातत्व-सम्बन्धी अनन्त नई नई बातें मालूम हो सकती हैं। पर, जिसके पूर्वजों ने संस्कृत-साहित्य को इतना उन्नत बनाया, उसका यह भी न जानना कि संस्कृत की उच्च शिक्षा से क्या लाभ होगा, बड़े अफ़सोस, बड़े खेद और बड़ी लज्जा की बात है! "ज़माना" की राय में यह वक़्त संस्कृत को तरक़्क़ी देने का नहीं। फिर उसको तरक़्क़ी का वक़्त कब आवैगा? जब उसका बचा बचाया साहित्य प्रायः समूलही ध्वंस हो जायगा! "ज़माना" संस्कृत की उच्च शिक्षा के ख़िलाफ़ है। इसलिए ऐसी शिक्षा उसकी राय में मनुष्य के लिए सिर्फ़ एक तरह का ज़ेवर है। उससे आदमी की रोज़ी नहीं चल सकती। रोज़ी चल सकती है कल, कारख़ाने और कारीगरी आदि की शिक्षा से। इसलिए, इस समय, रोज़ी देनेवाली शिक्षा ही की ज़रूरत है। उसीके

लिए लोगों के रुपया ख़र्च करना चाहिए। इसका मतलब यह हुआ कि ताता के दिये हुए रुपये से जो उच्च शिक्षा का वैज्ञानिक कालेज बननेवाला है, वह न बने; लखनऊ में मेडिकल कालेज खोलने का जो प्रबन्ध हो रहा है, वह रोक दिया जाय; लड़कों के स्कूल और कालेजों में जो इतिहास, भूगोल, भाषा और दर्शन-शास्त्र आदि की शिक्षा दी जाती है, वह उठा दी जाय! और तरह की उच्च शिक्षा के लिए देश में अनेक विद्यालय जो खुले हुए हैं, वे बने रहें; परन्तु संस्कृत की उच्च शिक्षा के लिए एक भी विद्यालय न होने पावै! क्यों? इसलिए कि संस्कृत हिन्दुस्तान की पुरानी पवित्र भाषा है; इसलिए कि संस्कृत के भीतर हिन्दुओं का पुराना और पूज्यतम ज्ञान धन भरा हुआ है; इसलिए कि संस्कृत सीखने से हिन्दू और हिन्दुस्तान की पुरानी कीर्ति की रक्षा हो सकती है। और इनको लोप होने से बचाने की कोई ज़रूरत नहीं? याद रखिए यह राय एक हिन्दुस्तानी हिन्दू की है; किसी विदेशी की नहीं!

* *
*

इस समय हिन्दुस्तान में ऐसे अनेक विद्यालय हैं जहां ऊंचे दरजे की शिक्षा दी जाती है; पर वहां कारीगरी की शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं। उनके ख़िलाफ़ "ज़माना" के पास एक शब्द तक नहीं। पर संस्कृत की जिस उच्च शिक्षा के लिए आज तक कोई अच्छा प्रबन्ध नहीं हुआ, उसका नाम सुनते ही आप बेतरह बेज़ार हो उठे, और कारीगरी, कारीगरी, पेशा, पेशा, चिल्लाने लगे। हमारी प्रार्थना है कि दुनिया में सबको रुचि एक सी नहीं होती। किसीकी प्रवृत्ति किसी तरफ़, किसीकी किसी तरफ़। कोई कारीगरी को पसन्द करता है; कोई विज्ञान को; कोई पुरातत्व को, कोई साहित्य को। कारीगरी बुरी नहीं; पर रुचि भी कोई चीज़ है? यदि अपनी अपनी प्रवृत्ति के अनुसार सबकी उच्च शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय तो अपने अपने विषय में सबको अपनी अपनी विद्वत्ता दिखलाने का मौक़ा मिले और उससे लाभ भी हो। जिसे अख़बार-नवीसी पसन्द है, उसे यदि कोई ज़बरदस्ती लोहार का काम दे दे, तो उसमें उसे कहां तक कामयाबी हो सकती है? पर "ज़माना" की राय है कि प्रवृत्ति और निवृत्ति का ज़रा भी ख़याल न करके सब लोग पकड़ कर कारीगरी के जुए में जोत दिये जायँ! ख़ैर इतनी ही है कि बनारसवासी और लेफ़्टिनेंट गवर्नर साहब आपकी आँखों नहीं देखते।

* *
*

चार पाँच महीने से पण्डित रामचन्द्र शुक्ल के हिन्दी-साहित्य-विषयक लेखों की चर्चा हो रही है। इस विषय में वाद-प्रतिवाद-रूप कई लेख "इण्डियन पीपुल" और "ऐडवोकेट" में निकले। शुक्लजी के पहले अंगरेज़ी लेख का वह अंश हमने विशेष आक्षेप-योग्य नहीं समझा था जिसमें उन्होंने दूसरों की किताबों की नक़ल, या उनका अनुवाद, करके अपने नाम से प्रकाशित करनेवालों की निन्दा की थी। पर "मोहिनी" में मिर्ज़ापुर के एक मनुष्य का जो लेख पीछे से छपा, उसे पढ़कर हमको बहुत परिताप हुआ। उसमें भारतमित्र और बाबू काशीप्रसाद पर अशिष्ट, अनुचित और कठोर शब्दों में आक्रमण किया गया। साहित्य-समालोचना करने का सबको अधिकार है; उससे फ़ायदा भी है; पर किसीके कामकी बेजा आलोचना करना अच्छा नहीं। ऐसी आलोचना में यदि गर्हित शब्दों की अधिकता हो तो और भी अफ़सोस की बात है। अब हमें एक छोटी सी छपी हुई पुस्तक मिली है। उसमें "मनस्ताप" नामक एक लेख है। उस लेख में शुक्लजी ने बाबू काशीप्रसाद से अपने इस अनुचित आक्रमण को क्षमा माँग ली है। यह बहुत अच्छा हुआ।

श्रीयुक्त सत्यव्रत सामश्रमी ।

इसमें सन्देह नहीं है कि पृथ्वी का नाम 'वसुन्धरा' ठीकही रक्खा गया है। भारतवर्ष की इस गिरी हुई दशा में भी इस पुण्यभूमि में कितने ऐसे अमूल्य रत्न पड़े हैं जिनसे उपर्य्युक्त नाम अन्वर्थ या सार्थक है। आज जिस महामहिम का चरितगान मैं आपको सुनाना चाहता हूं वह श्रीयुक्त प्रातस्स्मरणीयचरित श्रीसत्यव्रत सामश्रमी जी हैं। इनका सम्पूर्ण जीवन विद्योपार्ज्जन तथा अन्यान्य अत्यन्त गूढ़ गूढ़ विषयों के पता लगाने में बीता है और अद्यावधि इसीमें बीत रहा है। मैं इसे अपना पूरा कर्त्तव्य समझता हूं कि इनकी सुन्दर जीवनी को छिपाकर न रक्खूं।

देखने में आता है, और संसार की गति भी विचित्र है, कि अनेक गुणों के आधार महात्मा-जन, अपनी ज़िन्दगी में अपने अर्ज्जित यश का सुख अनुभव नहीं कर सकते हैं। यह अवश्य बड़े दुःख की बात है। इसी आपत्ति में पड़कर महा-कवि श्रीभवभूति कहता है—

"ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्तु ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्म्मा
कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥"

हां, ऐसे भी कई बड़े आदमी हुए हैं जिन्होंने अपने जीवनकाल ही में अपनी कीर्त्ति देख ली है। परन्तु अधिकांश ऐसेही महात्मा हुए हैं जिनके विषय में हम कम जानते हैं। प्रोफ़ेसर जे० एस० ब्लाकी कहते हैं—"Great men are amongst those of whom the world hears least." फिर भी, काल के निरवधि होने से इनका यश प्रकट होता ही है। और मृत्यु का भी यह गुणही है कि वह इसे यथायथ प्रकट करे; जैसा कि एक कवि कहता है—

"स दोषैर्मुक्तो वा भवतु कलुषी कोऽपि पुरुषः
सदा कान्तैः पुण्यैर्व्यक्तिरतु गुणैः प्रीतिमथवा।
अकीर्तिर्वा तस्य प्रकटितदशास्त्वेव किमिति
तव श्लाघा मृत्यो ! यदिहमहिमानं वितनुषे॥"

अस्तु। यह आपत्ति किसी अंश में श्रीयुक्त सामश्रमीजी को स्पर्श न करे, इसीलिए यह मेरा लघु यत्न है। मैं इसे प्रथमही स्वीकार कर लेता हूं कि इन महात्मा के विद्यादि गुणों की समीक्षा करना मेरी शक्ति से बाहर की बात है। मैं इनका जीवनचरित थोड़े में सुनाऊंगा।

श्रीमान् सामश्रमीजी का जन्म संवत् १८८८, ज्येष्ठ मास, शुक्ल पक्ष, चतुर्थी तिथि को पटने में हुआ था। इनके पिता का नाम श्रीरामदास वाचस्पति और पितामह का नाम श्रीरामकान्त विद्यालङ्कार था। श्रीरामकान्त विद्यालङ्कार कलकत्ते में सुप्रीम कोर्ट के जज थे। श्रीरामदास वाचस्पति ने भी गवर्नमेन्ट के आधीन कई प्रतिष्ठित पद पाये थे और बड़ी योग्यता से कार्य्य किया था। विद्या इनके घर में मानों अनादिकाल से चली आती है। घर में सभी विद्वान् होते आये हैं। और हर किसी ने एक न एक अद्भुत काम किया है। श्रीरामदास वाचस्पति एक अच्छी ज़मींदारी के मालिक थे और सम्पत्तिमान् भी थे।

श्रीमान् सामश्रमीजी का पहला नाम श्रीकालिदास है। परन्तु यह नाम बहुत दिनों तक न रह सका। ये लड़कपनही से सत्यशील और तेजस्वी थे। एक समय की बात है, कि जब यह ४, ५ वर्ष के थे, तब इन्होंने अपने पिता के बाग़ में, एक गुलाब का फूल, जिसे इनके पिता ने, एक शोभा की वस्तु जानकर, रक्षित रक्खा था, तोड़ लिया। पिता को यह बात मालूम न थी कि कालिदास ने ही इसे तोड़ा है। अतः वे अपने नौकरों पर क्रोधित हुए। पर बालक कालिदास ने झट अपना अपराध स्वीकार कर लिया। इस पर पिता ने प्रसन्न होकर इनके गुणानुरूप इनका "सत्यव्रत" नाम रक्खा।

वङ्गदेश में वैदिक पाठशाला का नाम निशान पहले न था। बाबू देवेन्द्रनाथ ठाकुर, तथा, वर्द्धमान के राजा ने, और, और भी कई मनुष्यों ने,

बहुत यत्न किये कि श्रीकाशी से वङ्गदेशीय पण्डितों को वेद पढ़ा कर तैयार करें; और उन्हें वङ्गदेश में अध्यापक नियत करके, वहां वेद की शिक्षा का विस्तार करें; परन्तु उनका यत्न व्यर्थ हुआ। सभी हताश हुए। श्रीरामदास वाचस्पति को, अपने प्रियपुत्र को वेदशिक्षा देने की, अत्यन्त उत्कट इच्छा थी। प्रारम्भ ही से वह इस यत्न में थे कि किसी प्रकार से सत्यव्रत वेद का भारी पण्डित हो। जिस ज़माने की बात मैं लिखता हूं, उस ज़माने में काशी की पण्डितमण्डली वङ्गदेशीयों को वेदशिक्षा देना बुरा समझती थी। अतः प्राथमिक शिक्षा देकर श्रीरामदास वाचस्पति ने अपने पुत्र को वेद पढ़ाने का विचार किया। जब सत्यव्रतजी ७ वर्ष के थे, तब इनके पिता पटने से काशी चले आये। विद्यारम्भ इनका पाँचवें वर्ष में हुआ। इनके पिता ने पण्डित मथुरानाथ शिरोमणि नामक एक अच्छे विद्वान् को, इनको पढ़ाने के लिए, नियुक्त किया। ८ वर्ष की अवस्था में सत्यव्रतजी ने साहित्य, गणित और भूगोल की छात्रवृत्ति परीक्षा पास की। इसके बीच में चाणक्यनीति और अमरकोष हो गये थे। आठवें वर्ष में इनका यज्ञोपवीत हुआ। और सिद्धान्तकौमुदी का प्रारम्भ भी हुआ। ९॥ वर्ष के वय में सिद्धान्तकौमुदी समाप्त हो गई। ये सिद्धान्तकौमुदी, श्रीगौडस्वामी के यहां, अहल्याबाई के घाट पर, और सामवेद पण्डित नन्दराम त्रिपाठी के यहां पढ़ते थे। ये दोनों विद्वान् उस समय के अद्वितीय पण्डित थे। श्रीगौडस्वामी, स्वर्गवासी श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती के गुरु भी थे। १०॥ वर्ष के वयः के भीतरही इनके मनोरमा और शेखर भी, कारकान्त, हो गये। इसके बाद पातञ्जल महाभाष्य, वैयाकरणभूषण, मञ्जूषा, शक्तिवाद, आदि सभी व्याकरणग्रन्थ और पुराण, साहित्य आदि भी, तेरहवें वर्ष से सोलहवें वर्ष तक हो गये। सोलहवें से बीसवें वर्ष तक छः आस्तिकदर्शन, छः नास्तिकदर्शन और चार नवीनदर्शन इन्होंने पढ़े। इन ग्रन्थों के साथ साथ वेद और तत्सम्बन्धी अन्यान्य ग्रन्थ भी ये पढ़ते थे। बीसवें से तेईसवें वर्ष तक इन्होंने वेदभाष्य आदि समाप्त कर पाठशाला जाना बन्द किया।

श्रीयुक्त सत्यव्रत सामश्रमी।

पाठकों को आश्चर्य होगा कि इतने कम वय में इतने कठिन कठिन ग्रन्थ इन्होंने कैसे पढ़े। इसपर मेरा उत्तर यह है कि असाधारण प्रतिभा के अतिरिक्त सामश्रमीजी परिश्रम भी अलौकिक करते थे। आज, ७२ वर्ष की अवस्था होने तक, प्रतिदिन, ३ घण्टे से अधिक ये कभी नहीं सोये। इनका सब समय पढ़ने पढ़ाने की चर्चाही में बीता है। सच है, जिसे विद्यासुख मिल जाता है उसे उसके साथ ही इस मन्त्र का उपदेश भी हो जाता है कि—

"न तदस्ति न यत्राहन्तदस्ति न तन्मयम्।
किमन्यदभिवाञ्छामि यन्मे नास्ति समीहितम्॥"

वेदभाष्य की समाप्ति हो जाने के बाद सामश्रमी जी देशाटन को निकले और जयपुर आदि राजस्थानों में परिभ्रमण करते हुए जहां जहां गये,

वहां वहां इन्होंने आदर पाया। जयपुर महाराज के दर्बार में जो इनका सत्कार हुआ वह वर्णनयोग्य है। और, पिशुन लोगों की चालबाज़ी का वृत्तान्त भी सुनने लायक़ है। परन्तु स्थानाभाव से मैं उसे यहां न लिखूंगा। क्योंकि ऐसी ऐसी बातें इनके शुभजीवन में इतनो हुई हैं कि संक्षेपतः भी उनका वर्णन करना मानो एक बड़ी सी पुस्तक लिखना है।

जब सामश्रमीजी २० वर्ष के थे, तब वे बूंदी-महाराज के यहां गये। बूंदी महाराज के यहां पण्डितों की एक अतीव कठिन परीक्षा होती है। इस छोटी उम्र में भी श्रीसत्यव्रत सामश्रमीजी उसमें पास हुए और उन्होंने सभी को आश्चर्य्ययुक्त कर दिया। यहीं उनको बड़े बड़े पण्डितों ने "सामश्रमी" की उपाधि दी।

इसके उपरान्त सामश्रमीजी को फिर उत्तर की तरफ़ यात्रा करने की इच्छा हुई। इस यात्रा का अभिप्राय यह था कि अन्यान्य वैदिक पण्डितों से परिचय हो; और, जो जो बातें काशी के वैदिक पण्डित न समझा सके थे, उन्हें वे समझें; और साथ ही साथ तीर्थदर्शन भी हो। अतः २४ वर्ष की अवस्था में आपने काशी से पैदल यात्रा की। यह आजकल के ऐसे पण्डित नहीं हैं जो मसनद लगाये बैठे रहते हैं। इनके मन में स्फूर्त्ति, साहस, और बल सदा ही बना रहा। इसी से इन्होंने हज़ारों कोस पैदल चलना स्वीकार किया। सच है, ऐसे ही मनुष्यों का जीवन जीवन है। इस यात्रा में जौनपुर, नैमिषारण्य, हरिद्वार, गङ्गोत्री, आदि स्थानों को देखते वे बदरिकाश्रम गये। लौटती बार चण्डी-पहाड़, रुड़की, कुरुक्षेत्र, दिल्ली, विन्ध्याचल, आत्रेयाश्रम, अनुसूयाश्रम, अमरकुण्डादि घूमते घामते वे प्रयाग लौट आये। फिर वहां से वे काशी आये। इस यात्रा में दो वर्ष लगे और कई बड़े बड़े महात्माओं से भेंट हुई। जिस समय यह हरिद्वार गये, उसी समय वहां कुम्भ का मेला था। बहुत से राजा महाराजा और पण्डित एकत्रित थे। कश्मीर के भूतपूर्व महाराजा रणवीरसिंह जी ने एक बड़ी सभा की थी। उसमें कोई ५०० प्रसिद्ध पण्डित, पश्चिमोत्तर प्रदेश और पञ्जाब के, निमन्त्रित थे। सभा का विषय यह था कि गोसाईं लोग ठीक सन्यासी हैं या नहीं। पं० सत्यव्रतजी भी बुलाये गये। इनके साथ ४ विद्यार्थी भी थे। अधिक पण्डित गोसाइयों की तरफ़ थे। परन्तु जो विचार सामश्रमीजी का था, वही सर्वमान्य ठहरा। सच है, विचार के आगे वितण्डा क्यों कर रह सकती है? यहां गोसाइयों के दुराक्रमण से सामश्रमीजी बड़ी कठिनता से बचे। किस किस अवस्था में मनुष्य अपने को किस किस प्रकार आपत्तियों से बचा सकता है, इस बात को सीखने के लिए भी सामश्रमीजी की जीवनी उपयुक्त है। मैं चाहता हूं कि उन उन बातों को भी लिखूं; पर इस छोटे से लेख में नहीं लिख सकता। कुम्भ मेला के शास्त्रार्थ के बाद महाराजा काश्मीर इन्हें बहुत प्यार करने लगे। परन्तु परोन्नति दुर्दर्शक पिशुन पण्डितों ने अपना दुराशय प्रकट किया। इससे सामश्रमी को निराश होकर वहां से चलना पड़ा।

वहां से, फिर भी, एकबार उत्तर दिशा को गमन करना इन्हें पसन्द हुआ। अतः दो विद्यार्थियों के साथ सप्तस्रोत, रम्भा-सङ्गम, वीरभद्र और कई पुण्य स्थानों को देखते भालते ये हृषीकेश पहुंचे। सामश्रमीजी कहते हैं कि उन्होंने फिर वैसा सुन्दर स्थान कहीं नहीं देखा। यहां इन्होंने एक महामहिम वृद्ध सन्यासी का पता लगाया जिनकी जाति आदि का कोई निश्चय न था। यह कौन थे, कौन जान सकता था? ये अत्यन्त छिपे हुए एक पाषाण-मन्दिर में रहते थे और केवल संस्कृत बोलते थे। इन्हीं महात्मा से सामश्रमीजी को वे सब बातें मालूम हुईं जिनकी खोज में वे निकले थे।

काशीजी लौट आने पर इन्होंने "प्रत्नकम्रनन्दिनी" (The Hindu Commentator) नामक पत्रिका निकालना प्रारम्भ किया। यह पत्रिका संस्कृत भाषा में थी। इसमें इनके रचित अनेक

उत्तमोत्तम लेख, आदि छपते थे। मैं ऊपर कह चुका हूं कि इनके पिता की इच्छा बङ्गाल में वेद की शिक्षा फैलाने की थी। अतः इन्हें और देशाटन करने की आज्ञा न मिली; बङ्गाल ही में चला आना पड़ा। जब ये काशी में थे और "प्रत्नकम्रनन्दिनी" को निकालते थे, तब ये काशिराज के यहां द्वारपण्डित भी थे। काशिराज इन्हें बहुत मानते थे। जैसे जैसे इनकी विचक्षणता और बुद्धि की चमत्कृति का यश फैला, तैसे तैसे वंगवासियों को इनकी चाह हुई। और प्रसिद्ध विद्वान्, डाक्तर राजा राजेन्द्रलाल मित्र, एल० एल० डी०, ने जो संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे, ऐशियाटिक सोसायटी के लिए, सामवेदसंहिता का संस्कार कराना चाहा। यह काम सामश्रमीजी के कलकत्ते आने पर ही हो सकता था। अतः ये काशी से कलकत्ते आये।

१८६९ के नवम्बर में जब बनारस के महाराज के आज्ञानुसार आनन्दबाग़ में स्वामी दयानन्दजी का प्रसिद्ध शास्त्रार्थ हुआ था, तब यही मध्यस्थ चुने गये थे और काशी बुलाये गये थे।

१८६८ में इनके गुणों पर मुग्ध होकर, नवद्वीप के प्रसिद्ध विद्वान् पण्डित व्रजनाथ विद्यारत्न ने, जिन्हें वङ्गदेशीय ब्राह्मण गुरु मानते थे, अपने पुत्र पण्डित मथुरानाथ भट्टरत्न की कन्या का इनसे विवाह कर देना निश्चित किया और तदनुरूप विवाह हुआ। इतने दिनों तक सामश्रमीजी ने विवाह इसलिये नहीं किया था कि ब्रह्मचर्य्य का पालन हो। आजकल ब्रह्मचर्य्य पालन न करने ही से नवयुवक प्रतिभा-शून्य होते हैं। इनकी तरह ब्रह्मचर्य्यनिष्ठ पुरुष विरलाही कोई होगा। ब्रह्मचर्य्य के गुणों में इनको पूरा विश्वास है। बालविवाह के ये पूरे विरोधी हैं।

१८७३ में, जब पण्डित सत्यव्रतजी कलकत्ते ही में थे, बहुविवाहवाद में ये विचारक बनाये गये। स्वर्गवासी पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने इस पर शास्त्रार्थ कराने को पहले पहल विचार किया था। पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने बहुविवाह को शास्त्रविरुद्ध सिद्ध करके सरकारी क़ानून द्वारा उसे उठाने का प्रबन्ध किया था। इसमें सत्यव्रतजी का मत यह था, कि शास्त्र में बहुविवाह की ममानियत नहीं है, परन्तु बुरे समय में यह रीति चली है। और कालक्रम से पुरानी रीतियों का ह्रास होता ही है। अतः इसमें सरकारी दस्तन्दाज़ी की आवश्यकता नहीं। अन्ततः जो सत्यव्रतजी का विचार था, वही सर्वमान्य समझा गया।

इसी प्रकार महाराजा रीवां के यहां भी चक्रांकन के विचार में ये बुलाये गये और इन्हींका विचार प्रशस्त समझा गया। इनके प्रतिद्वन्द्वी श्री रंगाचार्य्य और श्रीहरिश्चन्द्र थे।

फिर कुछ दिन बाद एशियाटिक सोसयटी बङ्गाल के ये "असोशियट" मेम्बर मुक़र्रर किये गये। गवर्नमेन्ट ने भी वेद और दर्शन की परीक्षा में इनको परीक्षक नियत करके इनका आदर किया। १२ वर्ष तक ये वेद और दर्शन की उपाधि परीक्षा के परीक्षक रहे; और अद्यावधि पञ्जाब की शास्त्रिपरीक्षा के परीक्षक हैं।

सत्यव्रत सामश्रमी जी ने कई उत्तमोत्तम ग्रन्थ लिखकर संस्कृत विद्यागार को पूरा किया है। इन्होंने निरुक्तालोचन नामक एक उत्तम ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थ पर पाश्चात्य विद्वानों की जो सम्मतियां हैं, वे देखने लायक़ हैं। सं० १८८९ में सामश्रमी जी ने वैदिक पत्र "उषा" को प्रकाशित किया। यह ३ वर्ष तक निकला। यह परमोत्तम पत्र था; परन्तु, न जानें क्यों, इसका प्रकाश धीमा पड़ गया और अन्ततः बुझ गया। मेरी प्रार्थना है कि सामश्रमीजी उस पत्र को निकालना न बन्द करें, क्योंकि उनके छोड़े हुए विषयों का फिर पूरा होना असम्भव सा है। कालक्रम आज कल ऐसा ही है। पण्डितजी का औदार्य्य भी सराहने योग्य है। किस सचाई से आपने बौद्ध धर्म-ग्रन्थ क़ाण्डव्यूह का संस्कार

ग्रौर उसका अनुवाद प्रकाशित किया है, कि वह साधारण जन का काम नहीं कहना चाहिये।

पण्डितजी के ग्रन्थों के विषय में ग्रौर ग्रौर विद्वानों की सम्मतियों का उल्लेख मैं पीछे करूंगा। यहां पर पण्डित जी के धार्म्मिक विचारों के विषय में कुछ कहना ग्रावश्यक है। जब ग्राप १९।२० वर्ष के थे ग्रौर ग्रापकी विद्योपार्ज्जन की इच्छा ग्रत्यन्त उच्च शिखर पर चढ़ी थी, तब ग्रापने तन्त्र का ग्रभ्यास किया था। ग्रापने सुना था कि श्रीमहाकवि कालिदास ने तन्त्र के बल से ही सरस्वती देवी को प्रसन्न करके सहसा विद्या प्राप्त कर ली थी। यही इच्छा इनको भी हुई। ग्रतः उस समय के महातान्त्रिक पूर्णानन्दस्वामी से ग्रापने तन्त्रविधान सीखा ग्रौर तन्त्र के सब ग्रन्थ पढ़ डाले। तन्त्र में शवसाधन की क्रिया सबसे विकट है; ग्रौर, कहा जाता है, कि तत्क्षण फलप्रद भी है। इससे इन्होंने गुरूपदेशानुसार तन्त्रसाधन प्रारम्भ किया। कुछ दिनों तक ये पूरे तान्त्रिक रहे। फिर इसकी ग्रसारता देख इन्होंने इसे त्याग दिया। जिन जिन क्रियाग्रों को इन्होंने ग्रारम्भ किया, उन्हें बड़े मनोयोग से इन्होंने पूर्ण किया। इसके उपरांत ये वैष्णव धर्म में गये ग्रौर यथायथ वैष्णव हुए। सभी तत्वों को इन्होंने जान लिया। ब्राह्मधर्म में भी इन्होंने प्रवेश किया। इसके ये उपदेष्टा रहे। इसके कई ग्रन्थ इन्होंने संस्कृत में लिखे। ब्राह्मधर्म को भी इन्होंने ख़ूब देखा। तब ये थियासफ़िस्ट (Theosophist) हुए। उसकी भी बातें इन्होंने मालूम कीं। परन्तु पाठकों को यह सन्देह न करना चाहिये कि यह धर्म बदलते रहे। इनका एक धर्म, जिसे ये वैदिक धर्म कहते हैं, सदा ही एक सा रहा है। परन्तु ग्रौर धर्मों के गूढ़ तत्वों को जानने के लिए ग्रपनी वृत्ति इन्होंने तदनुरूप की। क्योंकि यह इनका ख़याल है, कि जब तक ग्रादमी दूसरे के साथ ग्रपनी पूरी सहानुभूति करके उसका मन ग्रपनी तरफ़ नहीं खींच सकता, तब तक उसकी ग्रसली बातें उसको कभी नहीं मालूम होतीं। सामश्रमीजी का ख़याल है कि संसार भर के धर्मों में यदि कोई सच्चा ग्रौर निर्दोष धर्म है तो वह वैदिक धर्म है। पुराण ग्रादि को ये कुछ गल्प, कुछ इतिहास, मानते हैं। गल्प इसलिये कि ग्रपढ़ या ग्रधपढ़ों की मोटी बुद्धि में धर्माङ्कुर जमाने के लिये इनकी रचना है। इसका यह निरुत्तर प्रमाण देते हैं। ग्रस्तु, जोहो, मेरा तो जितना समय इनके साथ बीतता है, उतना परमकल्याणकारी समय मालूम होता है। इतनी विद्या-बुद्धि रहने पर भी इनको गर्व्व का लेशमात्र नहीं है। मिलनसार तो ये इतने हैं कि इनसे मिलकर जो ग्रानन्द से भर जाता है।

विलायत के डाक्टर रोस्ट (Dr. R. Rost, India Office, London,) ने सामश्रमी जी की एक संक्षिप्त जीवनी लिखी है। उसमें वे कहते हैं—

"It would have been strange, if a life of such incessant literary activity, preceded by years of such severe and almost ascetic study, had not left its mark on the Pandit's constitution. A tedious illness of three years' duration and harassing domestic difficulties, happily now passed, have somewhat crippled his naturally strong powers. But it may be hoped that he may yet long be spared both to his country and to philological science, which can ill-afford to lose men of his stamp, of whom no country possesses too many."

बार्थ (M. A. Barth) साहब ने फ़्रेञ्च भाषा के एक लेख में लिखा है—

"His (Samasramin's) training is founded, at least in the first instance, on the native tradition, and among living scholars he is certainly one of the best specimens that the native system of education has produced. But at the same time he has a very open mind, in no way inaccessible to influences from without..........

There is in him no trace of blind hostility, or of a gloomy and stern orthodoxy, even in face of those solutions which shock his most cherished convictions."

इसी प्रकार उन्होंने ग्रैार भी बहुत कुछ कहा है।

ग्रार० सी० दत्त के हिन्दू शास्त्र पर "कलकत्ता रिव्यू" में प्रकाशित हुई सामश्रामीजी के विषय में कुछ बातें सुनिये—

"The first collaborateur of Mr. R. C. Dutta to take the field is the old veteran Pandit Satyavrata Samasrami, at this moment the best Vedic-scholar in India."

इसी प्रकार अध्यापक मोक्षमूलर, बङ्गाल तथा जर्मनी ग्रैार फ्रांस ग्रादि देशों के पण्डित इन्हें बड़े ग्रादर की दृष्टि से देख कर मान्य समझते हैं।

पण्डितजी ग्राजकल भी एशियाटिक सोसायटी के सभासद हैं ग्रैार कई उत्तमोत्तम ग्रन्थ लिख रहे हैं। ग्रापके तीन लड़के हैं। वे सब वेद के पण्डित हैं ग्रैार ग्रंग्रेज़ी भी पढ़े हैं।

मेरी भी डाक्तर रोस्ट के इच्छानुरूप इच्छा है कि ईश्वर पण्डितजी को दीर्घजीवी बनावे जिसमें संस्कृत विद्या की उन्नति होती रहे। पण्डितजी ने ग्राज तक कोई ८० ग्रन्थ लिखे हैं, जिन्हें देखते ही बन पड़ता है। जिन्हें उनको देखना हो वे हितव्रत शर्म्मा, १६।१ घोष की गली, मानिकतल्ला, कलकत्ता, के पते से पत्रव्यवहार करें।

जगन्नाथप्रसाद शर्म्मा।

लार्ड अलिन्-कुमारी।

[ग्रंग्रेज़ी कवि केम्बल (Campbell) कृत "लार्ड ग्रलिन्स डौटर" (Lord Ullin's Daughter) नामक कविता का भावार्थ।]

[१]

हाइलैंड्-गामी नृपति एक यों
बोला "नाविक, लगा न बार,
झील-पार मुझको उतार दे,
दूँगा तुझको धनोपहार।"

[२]

"ग्राप कौन लैागाइल्-तरणार्थी,
ग्राँधी, तम जब भारी है?"
"ग्रल्वा टापू का मैं नृप हूँ,
यह लार्ड् ग्रलिन्-कुमारी है।

[३]

"उसके भृत्यों के सम्मुख से
भगता ग्राता हूँ दिन रात;
यदि वे मुझे पकड़ पाते ता
होता मेरा रक्त-निपात।

[४]

"यदि मेरे पद-चिह्न देख लें
उसके ग्रश्वारोही वीर—
हा! प्यारी किस तरह रहेगी,
हूँगा जब मैं छिन्न-शरीर!"

[५]

बोला हाइलैंड का नाविक
"नृप, मैं लिये चलूँ हूँ पार;
तेरी प्यारी ही कारन है,
न कि तेरा बहु धनोपहार।

[६]

"वचन-शपथ तेरी प्यारी का,
मैं भय तुरत निवारूँगा;
यदपि श्वेत लहरें लहरावें
तौभी पार उतारूँगा।"

[७]

इतने में ग्रति ज़ोर शोर से
ग्राँधी घोर उमड़ ग्राई;
घोर घटा में उनके चेहरों
पर भी ग्रँधियारी छाई।

[८]

ज्यों ज्यों ग्राँधी हुई प्रबलतर
ग्रैार निशा का हुग्रा प्रसार;
दिया सुनाई शस्त्रधरों का
पास वहीं पर पद-प्रहार।

[९]

"कर न देर अब," बाला बोली,
"आँधी, तम का कर न विचार;
क्रुद्ध पिता मिलने से अच्छा
है निमग्न होना सौ बार।"

[१०]

तजा भयङ्कर तट, पर सम्मुख
है दुस्तर जलराशि अशान्त;
हा! अनर्थ!! असहाय अकेली
नाव हो गई झंझाऽऽक्रान्त!!!

[११]

तदपि गरजती, ऊंची लहरें
उसे ज़रा भी सकीं न रोक;
पहुँचा लार्ड अलिन जब तट पर,
कोप-हीन हो हुआ सशोक।

[१२]

क्योंकि आत्मजा देखी उसने,
डरती आँधी से मन में,
एक हाथ रक्षार्थ पसारे,
एक प्रियतमालिङ्गन में।

[१३]

"लौट, लौट," बोला वह दुख में,
"आँधी तम है भयकारी;
क्षमा मिलैगी तेरे प्रिय को,
बेटी, हे बेटी, प्यारी!"

[१४]

व्यर्थवाद; उत्तुङ्ग तरङ्गें
बाधा बनीं बीच में आय;
दुहिता उसकी डूबी जल में,
रहा बिलपता वह दुख पाय!

सनातन शर्म्मा सकलानो।

कलङ्की* को ऐड्रेस।

[१]

रे दोषाकर† ! पश्चिमबुद्धि !
कैसे होगी तेरी शुद्धि ?
द्विजगण‡ को कोने बैठाया;
जड़ दिवान्ध§ को पास बुलाया।

[२]

रवि ने तुझको दिया उजास,
करने को प्रिय-सुमन-विकास।
खिलते हुए सुमन के गुच्छ;
तेरी आँखों खटके तुच्छ!

[३]

तव उजास में जो सो जाय,
बहुधा उसे रोग हो जाय।
अथवा पकड़ हाथ से मस्तक;
रोवै वह दो चार रोज़ तक॥

[४]

अब तक हुए नहीं दो चार—
बेहद तेरे अत्याचार!
अङ्ग भङ्ग तक तू करता है;
पातक से न ज़रा डरता है॥

[५]

झूठे हैं सब अच्छा बोला;
सब जग को अपना सा तोला।
तारा की तू कर ले याद
करता है क्यों वृथा विवाद ?

[६]

सँभल ज़रा, यह है अब आया
कृष्णपक्ष मेरा मनभाया।
अब तू दिन दिन होकर क्षीण
तम में हो जावैगा लीन॥

गिरिधर शर्म्मा।

* चंद्रमा = शशलाञ्छन।
† दोषा (रात) का करनेवाला और दोषों का आकर (खानि)।
‡ द्विजगण = द्विजाति और पक्षिसमूह।
§ दिवान्ध = उल्लू।
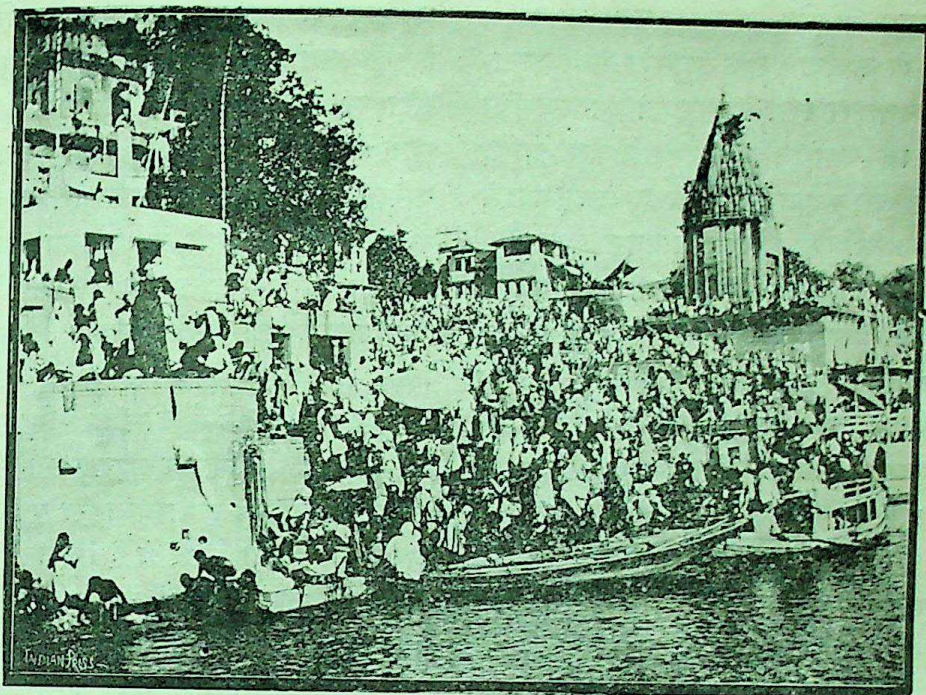
बनारस।

इस महीने के अख़ीर में "इंडियन नेशनल कांग्रेस" का जलसा बनारस में होगा। सामाजिक परिषद् और प्रदर्शनी भी होंगी। दूर दूर से लोग वहां जायँगे। इसलिए बनारस का संक्षिप्त वर्णन हम यहां पर देते हैं।

इस विषय की पुस्तकें।

बनारस पर अँगरेज़ी में अनेक पुस्तकें हैं। शेरिंग साहब ने "हिन्दुओं का पवित्र नगर" (Sacred city of the Hindus) नाम की एक बड़ी पुस्तक लिखी है। जो लोग बनारस जाते हैं उनके लिए उन्होंने एक और छोटी सी किताब भी लिखी है। उसका नाम है "Hand-book for visitors to Benares"। डाक्टर लाज़रस ने रेवरंड पार्कर-कृत बनारस का एक गाइड भी प्रकाशित किया है। केन साहब की "पिक्चरस्क इंडिया" और पादरी केनडी की "बनारस और कमाऊं" नाम की पुस्तकों में भी बनारस का वर्णन है। क्रिश्चियन लिटरेचर सोसाइटी ने भी एक छोटी सी किताब बनारस पर प्रकाशित की है। इनके सिवा बनारस के गज़ेटियर, हंटर के इम्पीरियल गज़ेटियर, कनिंगहम के आरकियालाजिकल सर्वे की रिपोर्टों, और संयुक्तप्रान्तसम्बन्धी पुरानी इमारतों और पुराने शिलालेखों के विषय में फ़ूरर साहब की पुस्तक, में भी बनारस का हाल है। एक महाराष्ट्र महाशय ने मराठी में एक किताब लिखी है। उसमें भी बनारस का अच्छा वर्णन है। पर हिन्दी में बनारस-वर्णन पर एक भी पुस्तक हमारे देखने में नहीं आई। पुराणों में भी, कहीं कहीं बनारस का हाल है।

प्राचीन बनारस।

बनारस बहुत पुराना शहर है। इसका संस्कृत नाम काशी या वाराणसी है। पुराने ज़माने में

यहां काश नाम का एक राजा हो गया है। उसीके नामानुसार शायद काशी नाम पड़ा है। वरुणा और असी नामक नदियों के सङ्गम पर, या उनके बीच में, होने के कारण इसका दूसरा नाम वाराणसी हुआ। बनारस इसी वाराणसी का अपभ्रंश है। विष्णुपुराण, भागवत और हरिवंश आदि पुराणों में काशी का कई जगह वर्णन है। उनमें काशी के पुराने राजाओं का भी थोड़ा बहुत हाल है। काश, दिवोदास और अजातशत्रु आदि काशी के मशहूर राजाओं में से थे। किसी समय काशी के आस पास का देश पुण्ड्र या पुण्ड्रक कहलाता था और उसके राजा पौण्ड्रक। पुण्ड्र गन्ने को कहते हैं। पौंडा पुण्ड्रही का अपभ्रंश है। पुराने ज़माने में "पुण्ड्रक-शर्करा" बहुत प्रसिद्ध थी। अब भी बनारस की चीनी मशहूर है।

विष्णुपुराण में लिखा है कि काशी को एक दफ़ा विष्णु के सुदर्शनचक्र ने जलाकर ख़ाक कर दिया था।

मील उत्तर एक जगह सारनाथ है। उसे लोग धमेख कहते हैं। वहीं बुध ने पहले पहल धर्म्मोपदेश किया था। किसी किसी का मत है कि बनारस पहले वहीं बसा हुआ था। बनारस के आस पास की ज़मीन को देखने से जान पड़ता है कि उसने कई दफ़ा अपना स्थान परिवर्तन किया है। जिस जगह को लोग आज-कल सारनाथ कहते हैं, उसका नाम बौद्धों की पुस्तकों में "मृगदाव" है। सम्भव है, किसी समय यहां जङ्गल रहा हो और उसमें हिरन रहते रहे हों।

होएनसङ्ग के समय में बनारस।

सातवें शतक में चीन का प्रसिद्ध बौद्ध सन्यासी होएनसङ्ग हिन्दुस्तान में आया। वह पञ्जाब की तरफ़ से घूमता हुआ बनारस पहुँचा। वह अपने प्रवास-वर्णन में लिखता है कि उस समय बनारस-राज्य का घेरा ८०० मील था। ख़ास शहर चार मील लम्बा और एक मील चौड़ा था। सब लोग ख़ुश थे। अमीरों के यहां अनन्त धन-दौलत थी।

सारनाथ का मन्दिर और स्तूप।

बनारस कितना प्राचीन शहर है, ठीक ठीक नहीं मालूम। ईसा के १२०० वर्ष पहले तक उसके अस्तित्व का पता चलता है। शाक्यमुनि ने, ईसा के ६०० वर्ष पहले, जिस समय पहले पहल, अपने चेलों को बौद्धधर्म्म का उपदेश दिया, उस समय बनारस एक विशाल नगर था। बनारस से तीन

सब लोग सौम्यस्वभाव के और विद्याव्यसनी थे। हिन्दू बहुत थे, बौद्ध कम। प्रान्त भर में ३० संघाराम थे; उनमें कोई ३००० के क़रीब बौद्ध पुजारी थे। हिन्दुओं के मन्दिरों की संख्या एक सौ थी। उनमें, सब मिलाकर, १०,००० पुजारी थे। लोग प्रायः महादेव के उपासक थे। ख़ास बनारस में

२० देव-मन्दिर थे। महेश्वर की एक प्रतिमा १०० फुट ऊँची थी ! वह ताँबे की थी। वह ऐसी अच्छी बनी थी कि जान पड़ता था कि वह सजीव है।

शहर के उत्तर-पूर्व दिशा में एक स्तूप था। उसके सामने पत्थर का एक स्तम्भ था। वह स्फटिक के समान् चमकता था। वरुणा नदी से दो मील के फ़ासले पर "मृगदाव" का प्रसिद्ध संघाराम था। उसके ८ भाग थे। वह कई-मंज़िला था। उसके हाते में २०० फुट ऊंचा एक विहार था। उसकी छत के ऊपर एक आम (फल) सोने का बना हुआ था। विहार में पूरे क़द की एक बुध की मूर्ति थी। उसी जगह शाक्यमुनि ने अपने धर्मोपदेशरूपी चक्र को सबसे पहले गति दी थी।

मध्यकालीन बनारस।

अनेक कारणों से बौद्धमत का धीरे धीरे ह्रास होता गया। बौद्धों में तांत्रिक सम्प्रदाय की शक्ति जैसे जैसे बढ़ती गई, तैसेही तैसे उनकी नैतिक-शक्ति क्षीण होती गई। इस अवस्था में कुमारिल स्वामी और शङ्कराचार्य आदि हिन्दू आचार्यों के आक्रमण से बौद्ध-धर्म्म के पैर इस देश से उखड़ गये। उनके "विहार" बन्द हो गये; उनके "संघाराम" उजड़ गये; उनके अनुयायी यहां से भग खड़े हुए। दसवीं या ग्यारहवीं शताब्दी में शायद एक भी बौद्ध बनारस में न रह गया। सारनाथ के आस पास की बौद्ध बस्ती जला दी गई। बौद्धों के पूजा-स्थान, उनकी मूर्तियां और उनके पुजारी तक जला दिये गये। अब तक सारनाथ में हड्डियां, लोहा, लकड़ी, राख, पत्थर ज़मीन में गड़े हुए मिलते हैं।

बनारस में दो पुराने ताम्रपत्र मिले हैं। वे सम्वत् ११८१ और ११८५ के हैं। राजा गोविन्द-चन्द्रदेव के वे दान-पत्र हैं। उनसे मालूम होता है कि कान्यकुब्ज के राजाओं का राज्य बनारस तक था। वे वाराणसी के भी राजा कहलाते थे। परन्तु बनारस का इस समय का इतिहास बहुत ही कम ज्ञात है। ११९३ ईसवी में मुहम्मद ग़ोरी ने जब से जयचन्द्र को परास्त किया, तब से बनारस पर मुसल्मानों का अधिकार हुआ और ६०० वर्ष तक बराबर बना रहा। उन्होंने बनारस के बड़े बड़े मन्दिरों को मसजिदों और मक़बरों में परिवर्तित कर दिया और छोटों को गिराकर उनके ईंट पत्थर से अपने मकान और मसजिदें वग़ैरह बनवाईं। अलाउद्दीन इस बात को बड़े घमण्ड से कहता था कि सिर्फ़ बनारस में उसने १००० मन्दिर गिराकर उन्हें उसने ज़मीन के बराबर कर दिया। औरङ्ग-ज़ेब ने उसका नाम मुहम्मदाबाद रक्खा और उसके नये पुराने मन्दिरों को खोदकर ख़ुदा के सबसे बड़े बन्दों की फ़ेहरिस्त में अपना नाम दर्ज कराया। यही कारण है जो दो तीन सौ वर्ष से अधिक पुरानी एक भी पूरी इमारत बनारस में विद्यमान नहीं।

आधुनिक बनारस।

अठारहवें शतक में बनारस-नगर अवध के नवाब सफ़दरजङ्ग के कब्ज़े में आया। १७३८ ईसवी में मनसाराम नामक एक पुरुष ने अपने बेटे बल-वन्तसिंह के लिए नवाब से राजा का ख़िताब और बनारस का इलाक़ा प्राप्त किया। १७६३ में बल-वन्तसिंह ने शाह आलम और शुजाउद्दौला के साथ बङ्गाले पर चढ़ाई की। परन्तु बक्सर की लड़ाई में अँगरेज़ों की जीत होने पर बलवन्तसिंह ने उनसे मेल कर लिया। अँगरेज़ों ने बनारस की ज़मीदारी पर कर, अर्थात् मालगुज़ारी, देने के वादे पर, बलवन्तसिंह का क़ब्ज़ा बना रहने दिया। बलवन्तसिंह के बेटे चेतसिंह ने वारन हेस्टिंग्ज़ की मरज़ी के मुआफ़िक़ काम नहीं किया; उसकी अनुचित आज्ञा को नहीं माना। इससे हेस्टिंग्ज़ ने चेतसिंह को क़ैद कर लिया। क़ैद से निकल कर चेतसिंह ने अँगरेज़ों पर हमला किया; पर काम-याबी नहीं हुई। चेतसिंह की ज़मींदारी छिन गई। उसका कुछ हिस्सा बलवन्तसिंह के पौत्र महीप-नारायणसिंह को मिला। वर्तमान काशीनरेश,

महाराज सर प्रभुनारायणसिंह, महीपनारायणसिंह के बाद तीसरे महीप हैं।

जब चेतसिंह की ज़मींदारी छिन गई, तब उसके प्रबन्ध के लिए बनारस में च्यरी साहब रेज़िडंट नियत किये गये। उस समय लखनऊ का नवाब वज़ीरअली बनारस में था। वह गद्दी से उतार कर बनारस में रक्खा गया था।

प्रिंस आफ़ वेल्स अस्पताल।

१७९९ ईसवी में वह बिगड़ खड़ा हुआ और च्यरी साहब को उसने मार डाला। च्यरी साहब के साथ दो अँगरेज़ और मारे गये। पीछे से वज़ीरअली पकड़ा गया और आमरण कलकत्ते में कैद रहा।

शकल-सूरत आदि।

अनुमान किया जाता है कि सबसे पुराना नगर सारनाथ के पास था। पीछे से नगर का मध्यभाग वरुणा नदी के उत्तर, कहीं पर, रहा। वर्तमान नगर के उत्तर की ओर जो जगह ख़ाली पड़ी है उसमें मन्दिरों और मसजिदों आदि के भग्नावशेष अभी तक हैं। इससे मालूम होता है कि मुसल्मानों के समय तक बनारस वरुणा के दक्षिणी किनारे पर था। इस समय बनारस ठीक गङ्गा के तट पर है। उसकी शकल अर्द्धचन्द्राकार अथवा धन्वाकार है। दशाश्वमेध घाट से नाव पर सवार होकर राजघाट के पुल की तरफ़ जाने में, विशेष करके सुबह, शहर का दृश्य अच्छी तरह देख पड़ता है। गङ्गातट पर नगर की धन्वाकार बस्ती उस समय अच्छी तरह आँखों के सामने आजाती है।

बनारस में मकान सब प्रत्थर के हैं। कोई कोई मकान पाँच पाँच छ छ खण्ड के हैं। गलियां बहुत

तङ्ग हैं। बस्ती बेहद घनी है। यात्रियों की हमेशा आमद रफ़्त रहती है। ग्रहण, मेले ठेले, उत्सव और पर्व आदि में बाहर से आनेवाले आदमियों की संख्या बहुत बढ़ जाती है। बस्ती घनी और गन्दी होने और काशीवास करने के इरादे से अनेक लूले, लँगड़े, अन्धे और बीमार आदमियों से भर जाने के कारण, बनारस की आब हवा बिगड़ी रहती है। मन्दिर, गली गली में हैं। बङ्गाली, नैपाली, महाराष्ट्र आदि हिन्दुस्तान के प्रायः सब प्रान्तों के लोग यहां रहते हैं। उनके महल्ले अक्सर अलग अलग हैं। शहर से पश्चिम और गङ्गा से कोई तीन मील की दूरी पर एक जगह का नाम सिकरौल है। वहीं बनारस की छावनी और सिविल लाइन्स वग़ैरह हैं।

बनारस में कमिश्नर और ज़िले के मामूली हाकिम रहते हैं। अवध-रुहेलखण्ड और बङ्गाल-नार्थ वेस्टर्न रेलवे के कई स्टेशन हैं। पिछली रेलवे ने सारनाथ के पास भी एक स्टेशन बनाया है। अवध-रुहेलखण्ड रेलवे का राजघाट में, गङ्गा पर, पुल है। इस रेलवे की गाड़ियां मुग़लसराय से, बनारस और लखनऊ होकर, बराबर सहारनपुर तक चली जाती हैं।

बनारस में नल है। पानी गङ्गा से आता है। गन्दगी निकालने के लिए मोरियां भी हैं।

व्यापार।

किसी ज़माने में बनारस रेशमी और ज़री के कपड़े के काम में अपना सानी नहीं रखता था। पर विलायती व्यवसायियों ने इस रोज़गार को बरबाद कर दिया। अब भी बनारस में इसका व्यवसाय होता है। कुछ दिन से "काशी सिल्क" नामक रेशमी कपड़े का प्रचार हुआ है। उस पर लोगों की प्रीति होने लगी है। देहली दरबार के समय जो प्रदर्शनी हुई थी, उसमें बनारस के बहुमूल्य वस्त्रों की बड़ी तारीफ़ हुई थी। तिलकोत्सव के समय महारानी अलेग्ज़ण्डरा के पहनने के लिए जो पोशाक बनी थी, वह बनारसही के कपड़े की थी।

बनारस में शकर का रोज़गार पहले बहुत होता था। अब भी कुछ कुछ है।

पीतल और जर्मन सिल्वर के नक़ाशीदार और सादे बर्तन, सोने चाँदी के ज़ेवर, देवताओं की मूर्तियां, लकड़ी के खिलौने और तम्बाकू के लिए भी बनारस मशहूर है।

घाट।

बनारस में सब मिलाकर कोई ५० घाट हैं। उनमें से कुछ के नाम ये हैं—असीघाट, शिवालयघाट, केदारघाट, मुंशीघाट, दशाश्वमेधघाट, मानमन्दिर घाट, मणिकर्णिका घाट, सेंधिया-घाट, पञ्चगङ्गाघाट, त्रिलोचनघाट, हनुमानघाट, राजघाट, और वरुणासङ्गम घाट।

असीघाट सबसे दक्षिण है। यहां से रामनगर घाट, क़रीब १ मील दक्षिण है। वहीं से रामनगर जाने वाले गङ्गा पार करते हैं। रामनगर महाराजा बनारस की राजधानी है। यह घाट यद्यपि बहुत प्रसिद्ध है और काशी के पाँच प्रसिद्ध घाटों में से है तथापि दशा इसकी अच्छी नहीं। यहीं पर असी नाम का नाला गङ्गा में गिरता है। बरसात को छोड़ कर और मौसमों में वह सूखा पड़ा रहता है।

शिवालयघाट बहुत सुन्दर घाट है। उसीके ऊपर चेतसिंह का महल है। महल अभी तक अच्छी हालत में है। वह गवर्नमेंट के क़ब्ज़े में है। उसकी उत्तर तरफ़ की दीवार में पाँच खिड़कियां हैं। उन्हींमें से एक से होकर चेतसिंह, हेसटिंग्ज़ के डर से, १७८१ ईसवी में, भगे थे। अब लोग इस मकान को "ख़ाली-महल" कहते हैं।

केदारघाट बनारस के मशहूर घाटों में से है। यहां बङ्गाली और तैलंगी लोगों की अधिक भीड़ रहती है। इसीके ऊपर केदारनाथ का प्रसिद्ध मन्दिर है। मन्दिर बड़ा है। घाट के नीचे "गैारीकुण्ड" नाम का एक जलाशय है। उसके जल की बड़ी महिमा है।

मुंशीघाट बनारस के प्रायः सब घाटों से अधिक अच्छा है। वह नागपुर के राजा के दीवान

मुंशी श्रीधर का बनवाया हुआ है। इस घाट के ऊपर की इमारत देखने लायक़ है।

दशाश्वमेधघाट बनारस के पाँच पवित्र घाटों में से है। ग्रहण के समय यहां पर बड़ी भीड़

दशाश्वमेधघाट।

होती है। कहते हैं, यहां ब्रह्मा ने दस दफ़ा अश्वमेध यज्ञ किया था। इसीलिए इसका नाम दशाश्वमेध हुआ। इसकी महिमा प्रयाग के बराबर समझी जाती है।

मानमन्दिरघाट। यह घाट महाराजा मानसिंह के मानमन्दिर के नीचे ही है।

मणिकर्णिकाघाट काशी के सब घाटों से अधिक प्रसिद्ध और पवित्र माना जाता है। यह घाट सब घाटों के बीच में है। यहीं पर तारकेश्वर और सिद्ध-विनायक के मन्दिर हैं। यहां पर जो कुण्ड है उसमें शङ्कर के कान की मणि गिर पड़ी थी। इसीसे इसका नाम मणिकर्णिका हुआ। कहते हैं, विष्णु ने इसे अपने चक्र से खोदा था और अपने पसीने से भरा था। इसीके पास वह जगह है जहां मुर्दे जलाये जाते हैं।

सेंधियाघाट बायजा बाई सेंधिया का बनवाया हुआ है। बायजा बाई दौलतराव सेंधिया की रानी थी। बन चुकने के पहले ही यह घाट ज़मीन में धँस गया। इसके दक्षिण जो मन्दिर है उसमें ऊपर से नीचे तक एक दरार हो गई है।

पञ्चगङ्गाघाट में पाँच नदियां मिलती हैं। गङ्गा देख पड़ती हैं; बाकी, धूतपापा इत्यादि चार, सुनते हैं, पृथ्वी के नीचे हैं! इससे वे देख नहीं पड़तीं।
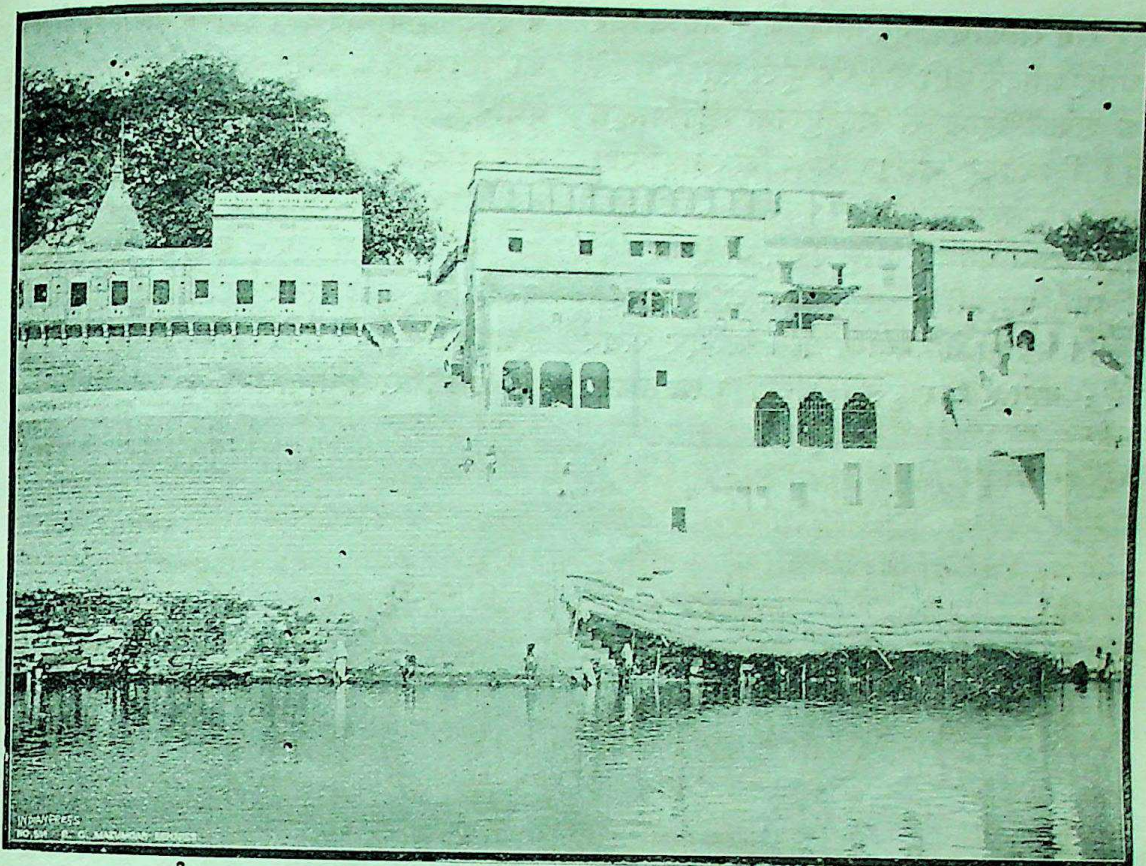
हनुमानघाट।

हनुमानघाट भी काशी का एक प्रसिद्ध घाट है। त्रिलोचनघाट भी पाँच प्रसिद्ध घाटों में से है। इसके आगे राजघाट है और राजघाट के आगे वरुणासङ्गम। वरुणासङ्गम में वरुणा नदी गङ्गा में गिरती है।

मन्दिर।

बनारस में सैकड़ों मन्दिर हैं। उनमें से दो चार प्रसिद्ध प्रसिद्ध मन्दिरों का ज़िकर, बहुत थोड़े में, हम नीचे करते हैं।

विश्वनाथ या विश्वेश्वर। यह बनारस का सब से प्रसिद्ध मन्दिर है। पुराना मन्दिर औरङ्गज़ेब ने तोड़ कर बरबाद कर दिया था। यह नया मन्दिर अहल्याबाई का बनवाया हुआ है। इसकी उँचाई ५१ फुट है। इसके ऊपरी हिस्से में ताम्रपत्र पिटा हुआ है। उस पर सोने का मुलम्मा या पत्र है। सुवर्णखचित करने का काम महाराजा रणजीतसिंह के प्रबन्ध से हुआ था। इसीके पास एक और मन्दिर महादेव का है। यहीं पर अन्नपूर्णा का भी मन्दिर है। यह बाजीराव पेशवा का बनवाया हुआ है। यह, पिछला मन्दिर, भी बहुत सुन्दर है। विश्वनाथ के मन्दिर के हाते में नन्देश्वर की एक विशाल मूर्ति है। यहीं, कुछ दूर पर, ज्ञानवापी नाम का प्रसिद्ध कुँवा है। सूर्य, दुंढिराज, गणेश, गौरीशङ्कर और हनुमान् के भी मन्दिर यहीं पर हैं। कुछ दूर पर साक्षीविनायक नामक गणेश की मूर्ति है। आप काशी के यात्रियों के यात्रा के पूरे होने की गवाही या सरटीफ़िकेट देते हैं।

आदिविश्वेश्वर का मन्दिर औरङ्गज़ेब की मसजिद के पास है। लोगों का कथन है कि यह

मन्दिर सब से अधिक पुराना है और विश्वेश्वर का आदि मन्दिर यही है। पर फ़ूरर साहब कहते हैं कि शकल सूरत से यह पुराना नहीं मालूम होता। विश्वेश्वर का पहला मन्दिर यहीं रहा होगा और मुसलमानों के द्वारा उसके तोड़े जाने पर हिन्दुओं ने वर्तमान मन्दिर बनाया होगा।

दुर्गा। यह मन्दिर असी-सङ्गम के पास है। इसे रानी भवानी ने बनवाया था। मन्दिर पत्थर का है; बड़ा है और उसमें अच्छा काम किया हुआ है। इसका मध्यभाग बारह खम्भों के आधार पर स्थित है। यहां बन्दर बहुत रहते हैं। हर मङ्गलवार को यहां दर्शकों की भीड़ होती है।

भैरवनाथ टाउनहाल के पास हैं। इनके हाथ में दो-ढाई हाथ का एक डण्डा है। इसलिए ये दण्डपाणि कहलाते हैं। रविवार और मङ्गल को यहां अधिक भीड़ रहती है। यही शहर के देवी-देवताओं और मनुष्यों के कोतवाल या मैजिस्ट्रेट हैं। इस मन्दिर को पूना के पेशवा बाजीराव, ने १८२५ ई० में, बनवाया था।

अमेठी का मन्दिर। यह मन्दिर मणिकर्णिका पर है। यह लाल पत्थर का है और बहुत अच्छा बना हुआ है। यह अमेठी के राजा का बनवाया हुआ है।

इनके सिवा गोपाल-मन्दिर, वृद्धकाल, केदारनाथ, कामेश्वर, सोमेश्वर, शुक्रेश्वर, तारकेश्वर, शीतला, संकटा, नवग्रह और शनैश्चर आदि के अनेक मन्दिर हैं। यहां नैपालियों का भी एक प्रसिद्ध मन्दिर है। इसकी बनावट कुछ कुछ चीन के मन्दिरों की सी है।

विश्वेश्वरजी का सुनहरा मन्दिर।
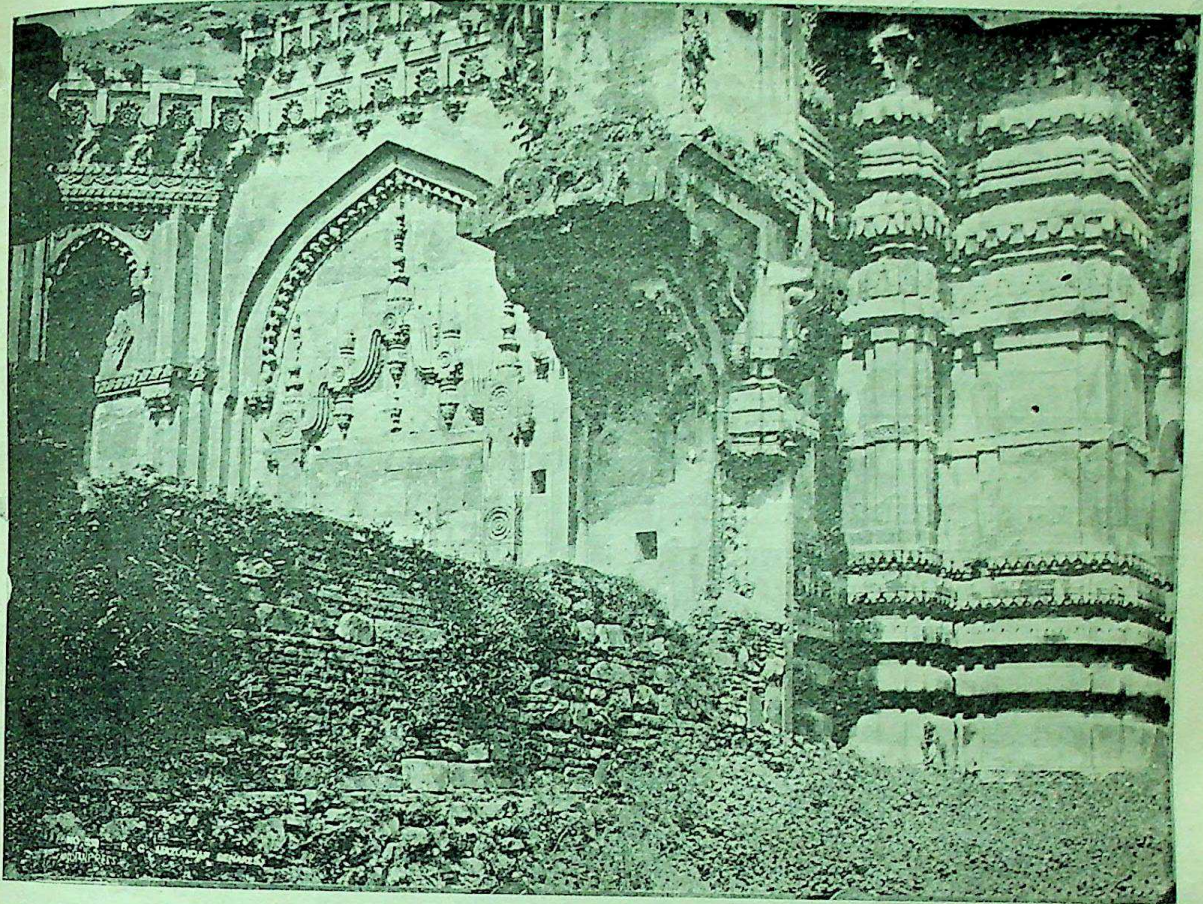
विश्वेश्वर के पुराने मन्दिर का भग्नावशेष।

मसजिदें।

बनारस में जैसे मन्दिरों की अधिकता है, वैसे ही मसजिदों की भी। वहां के निवासियों में कोई एक चौथाई मुसलमान हैं।

ऋौरङ्गज़ेब की मसजिद गंगा के किनारे है। सुनते हैं, विश्वेश्वर का प्रसिद्ध मन्दिर पहले यहीं पर था। उसीको तोड़ कर उसके ऋौर दूसरे मन्दिरों के माल मसाले से यह मजजिद तैयार की गई है। मसजिद की बनावट सादी है। इसके दो मीनार १४७ फ़ुट ऊंचे हैं। इसको लोग माधवराव का धवरहरा भी कहते हैं। मीनारों के ऊपर से सारा शहर ही का नहीं, किन्तु ऋौर भी दूर दूर तक का, दृश्य देख पड़ता है। यहां पर पहले बौद्ध लोगों का एक चैत्य था। जब वह हिन्दुओं के कब्ज़े में आया, तब उन्होंने उसे अपने ढंग का बना लिया। मुसलमानों ने उसे तोड़ कर इस मसजिद में लगा दिया। इसकी इमारत में बौद्ध, हिन्दू ऋौर मुसलमान तीनों का तर्ज़ देख पड़ता है।

विश्वनाथ के पास की मसजिद भी ऋौरङ्गज़ेब की ख़ुदापरस्ती का चिन्ह है। अनेक मन्दिरों को तोड़ कर यह बनी है। इसके सामने बौद्ध या हिन्दुओं के मन्दिरों के खम्भों की एक क़तार है। मसजिद की पश्चिमी दीवार में लगे हुए मन्दिरों के भग्न भाग अच्छी तरह पहचाने जा सकते हैं।

अढ़ाई कँगूरे की मसजिद इसी नाम के महल्ले में है। यह बड़ी ख़ूबसूरत मसजिद है। इसमें लगे हुए चौकोन खंभे, ऋौर कहीं कहीं की जाली, बौद्ध लोगों के समय की है। जान पड़ता

है, जहां से यह सामग्री लाई गई थी, वहां पहले बौद्धों का विहार था। बौद्धों के बाद हिन्दुओं ने उसे अपना मठ बनाया था। जब मुसल्मानों का प्रभुत्व हुआ, तब उन्होंने उसे तोड़ ताड़ कर यह मसजिद तैयार की। इस मसजिद के दूसरे खण्ड में एक पत्थर के ऊपर खुदा हुआ ११९० ईस्वी का एक लेख मिला है। उसमें बनारस और उसके आस पास के कई एक तालाब, मन्दिर और मठों के बनवाये जाने का ज़िकर है।

चौखम्भा की मसजिद भी बनारस की प्रसिद्ध मजजिदों में से है। इसका सिर्फ़ कुछ ही हिस्सा मुसल्मानी ढंग का है। इसके प्रायः सारे खम्भे किसी बौद्ध इमारत से निकाल कर यहां लगाये गये हैं।

दूसरी मशहूर इमारतें।

मानमन्दिर। जयपुर के महाराजा जयसिंह ने हिन्दुस्तान में पाँच वेधशालायें—जयपुर, देहली मथुरा, उज्जैन और बनारस में—बनवाई थीं। बनारस में जो वेधशाला या यंत्रशाला है उसी का नाम मान-मन्दिर है। इसमें जयसिंह के निर्म्माण किये हुए ज्योतिष-विद्या-सम्बन्धी दिगंश-यन्त्र, भित्तियन्त्र, चक्रयन्त्र, और यन्त्रराज आदि यन्त्र हैं। परलोकवासी पण्डित बापूदेव शास्त्री ने इन यन्त्रों के विषय में एक पुस्तक लिखी है। बनारस में मानमन्दिर देखने की चीज़ है; परन्तु यन्त्रों का उपयोग समझानेवाला कोई साथ चाहिए। यन्त्र अच्छी हालत में नहीं हैं।
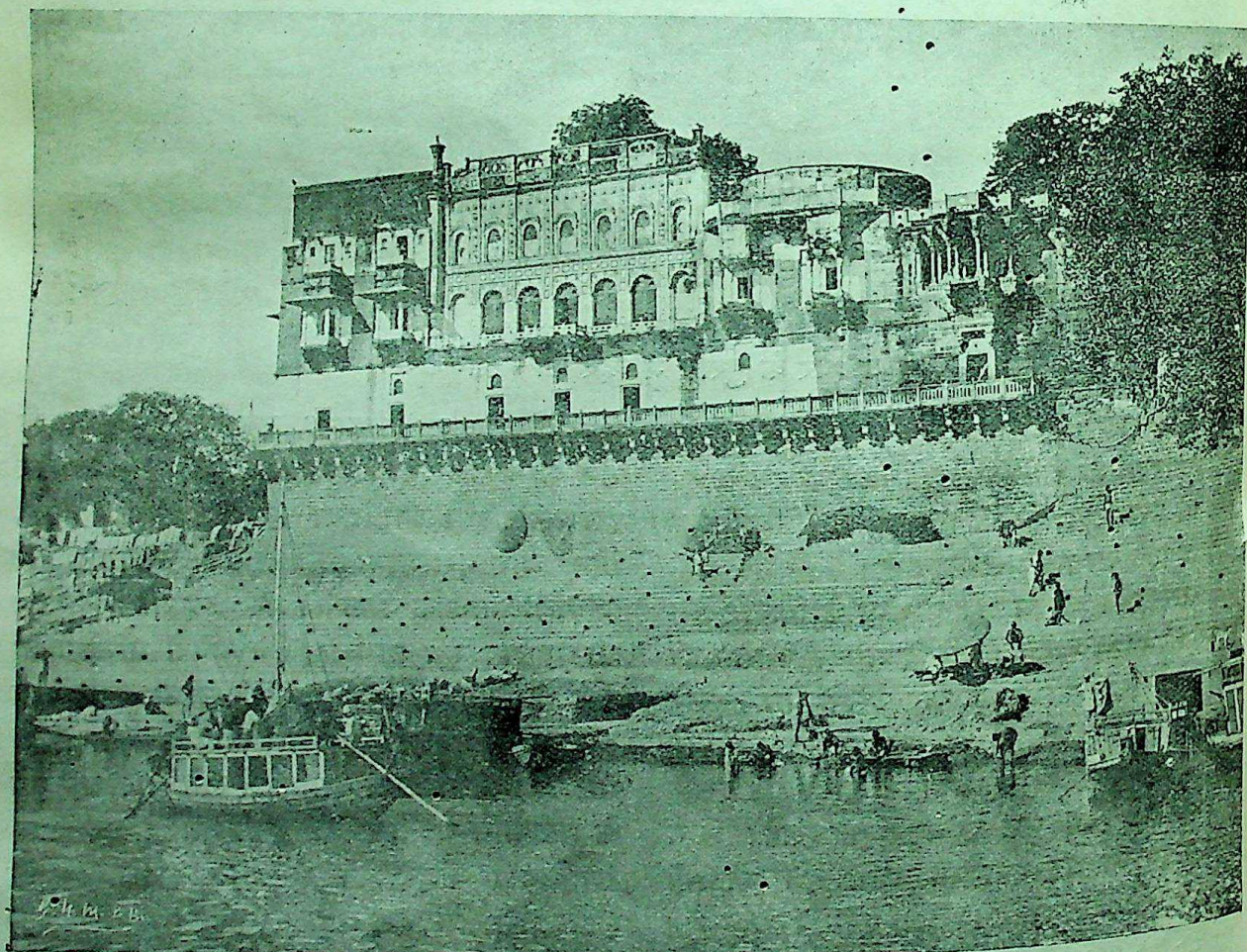
मानमन्दिर।
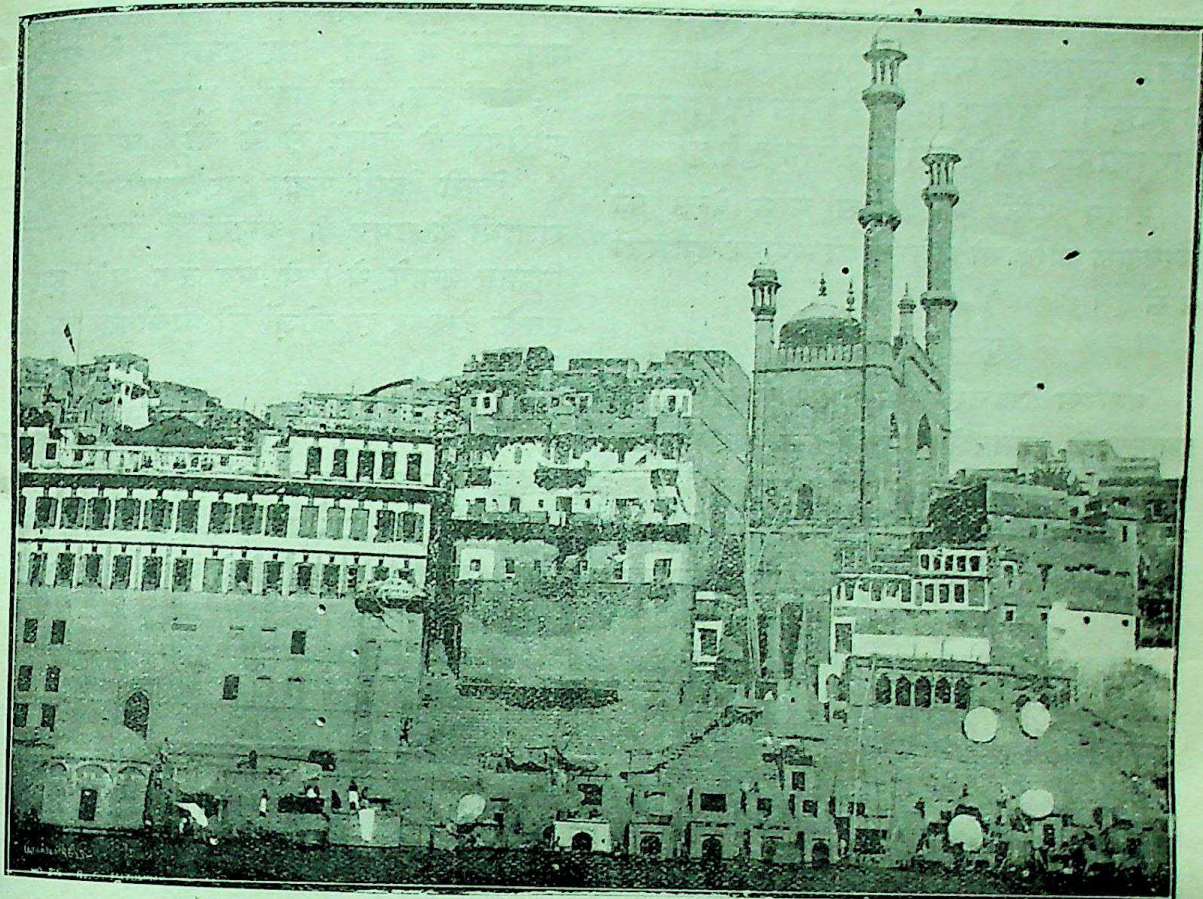
वेणीमाधव घाट और उसके पूर्व की ओर औरङ्गज़ेब की मसजिद।

माधवदास का बाग़ शहर के पश्चिम तरफ़ है। इसके भीतर कई मकान हैं; पर अब वे बुरी दशा में हैं। १७८१ ई० में वारन हेस्टिंगज़ इसी बाग़ में ठहरे थे और यहीं से चेतसिंह को क़ैद करने का हुक्म आपने दिया था। च्यरी साहब के घातक नवाब वज़ीरअली को भी गवर्नमेंट ने यहीं रहने को जगह दिया था।

महाराजा विजयनगरम् की कोठी और बाग़ भेलूपुरा में हैं। यह भी बनारस में देखने की जगह है। कोठी के ऊपर से औरङ्गज़ेब की मसजिद की तरफ़ गङ्गाजी का अच्छा दृश्य देख पड़ता है।

नन्देश्वर की कोठी महाराजा बनारस के अधिकार में है। जनवरी १७९९ में बनारस के जज-मेजिस्ट्रेट डेविस साहब इसीमें रहते थे। जब वज़ीरअली के आदमियों ने (च्यरी साहब को मारने के बाद) उन पर हमला किया था, डेविस साहब ने अपनी मेम और बच्चों को छत पर भेज दिया। आप एक भाला लेकर ज़ीने पर खड़े हो गये और ऐसी बहादुरी से बाग़ियों का मुक़ाबला किया कि उन लोगों को हिम्मत डेविस साहब के पास तक जाने की न हुई। इतने में एक रिसाला आ गया और डेविस साहब मारे जाने से बच गये। वज़ीरअली डेविस साहब की कोठी में आग लगाने जाता था; पर उसका इरादा पूरा न होने पाया।

रामनगर महाराजा बनारस की राजधानी है। रामनगर घाट से गङ्गा पार करके रामनगर जाना होता है। काशिराज का महल देखने के

लिए अनुमति की ज़रूरत होती है। महल से एक मील के फ़ासले पर एक सुन्दर तालाब है। तालाब के पूर्व दुर्गाजी का एक मन्दिर है। उस पर रामायण और महाभारत के ऐतिहासिक चित्र खुदे हुए हैं।

टाउन हाल और प्रिंस आफ़ वेल्स का अस्पताल आदि भी बनारस की मशहूर इमारतों में से हैं।

पुरानी इमारतें।

बनारस के उत्तर तरफ़ बौद्धों के ज़माने की इमारतों के भग्नावशेष कहीं कहीं पर अब तक विद्यमान हैं। जो चैत्य या विहार कुछ अच्छी दशा में हैं, वे भी अब अपने पुराने रूप में नहीं हैं। उनको कहीं हिन्दुओं ने अपने ढंग का बना लिया है, कहीं मुसल्मानों ने। मकानों और मसजिदों में कहीं बौद्ध इमारतों के खम्भे लगे हैं; कहीं कुछ, कहीं कुछ। पुरानी बनावट और कारीगरों के चिन्हों से ये चीज़ें पहचानी जाती हैं। किसी किसी पत्थर पर कारीगरों ने गुप्त-राजाओं के समय के अक्षरों में अपने नाम या निशान बनाये थे। वे अब तक बने हुए हैं। उनको देखकर इन चीज़ों की प्राचीनता का प्रमाण मिलता है।

बकरिया-कुण्ड। शहर के उत्तर-पश्चिम एक महल्ला है। उसका नाम है अलीपुरा। वहां बकरिया-कुण्ड नाम का एक तालाब है। उसके किनारे पुराने ज़माने की इमारतों के बहुत से निशान हैं।
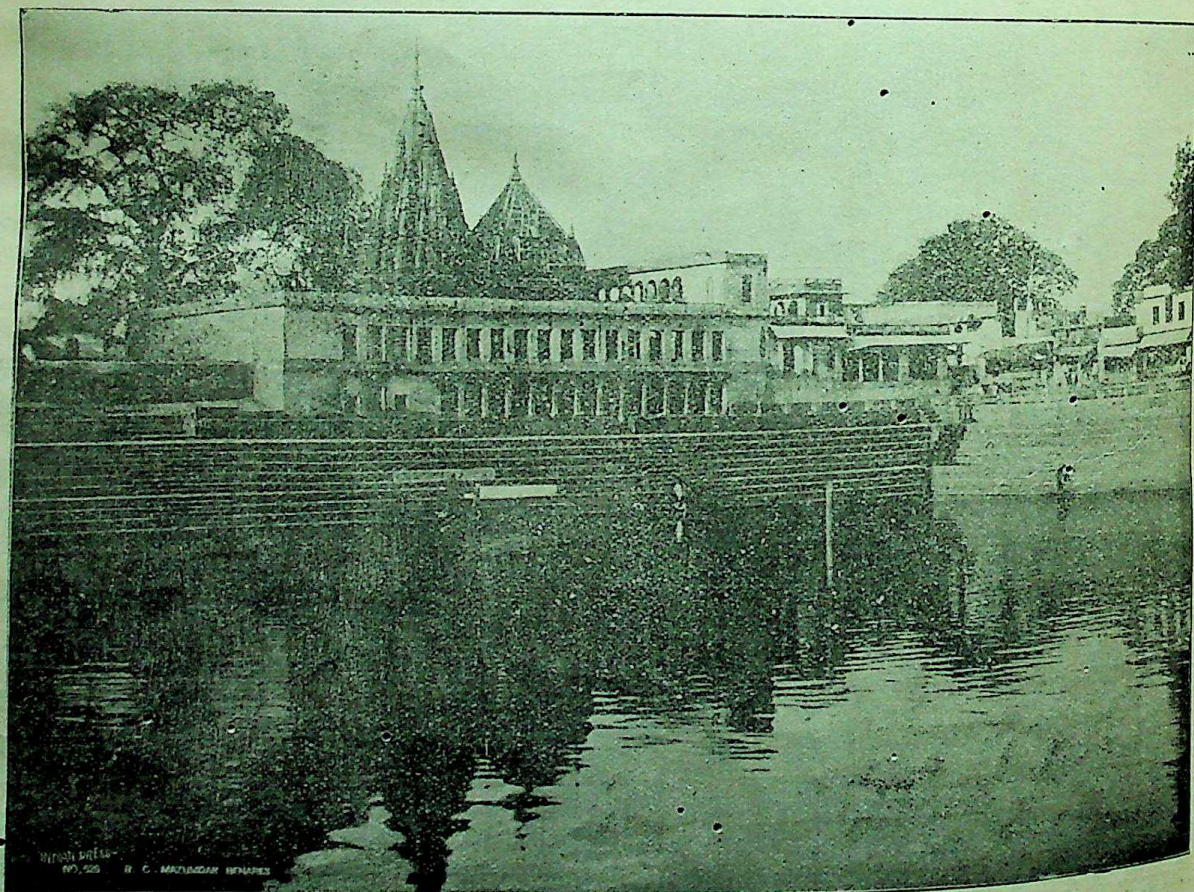
दुर्गाजी का मन्दिर।
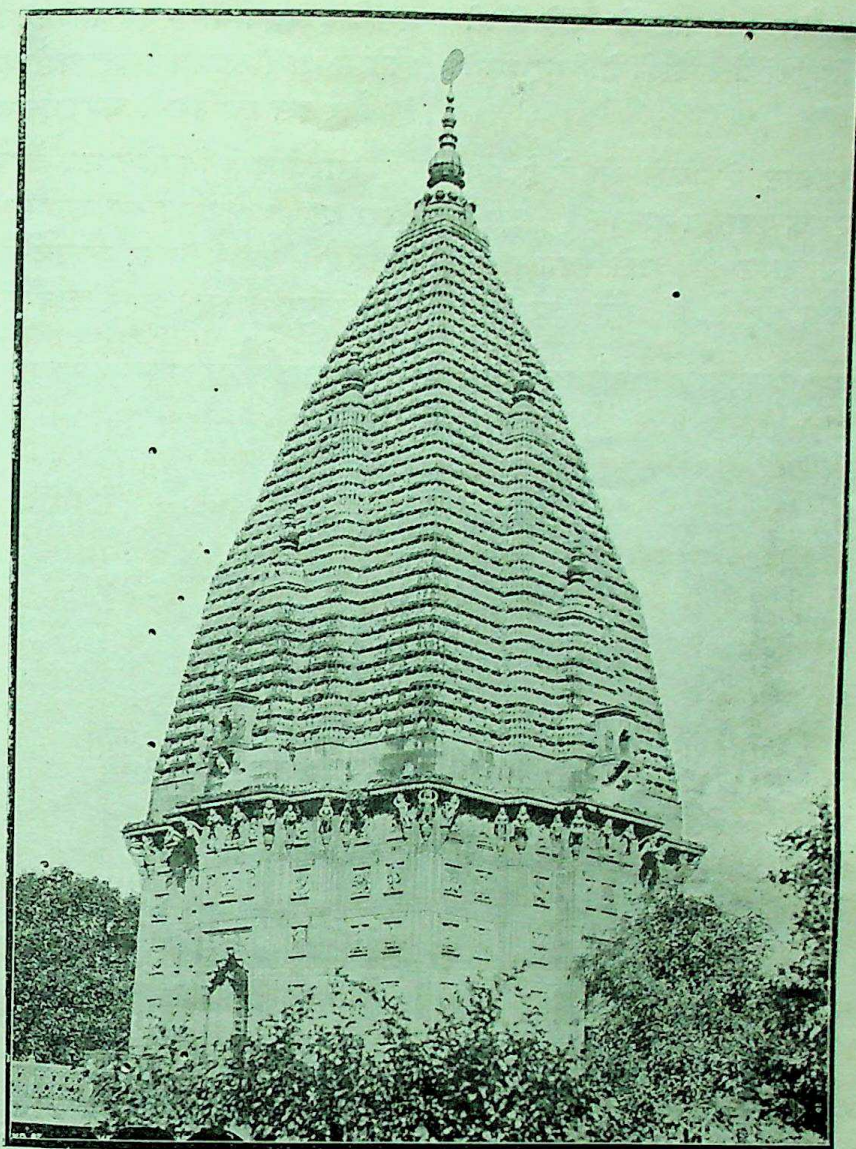
रामनगर में दुर्गाजी का मन्दिर।

वहां कई एक टीले हैं जिनसे जान पड़ता है कि वहां बौद्ध लोगों की इमारतें ज़रूर रही होंगी। कहीं टूटे फूटे खम्भे पड़े हैं; कहीं कलश पड़े हैं; कहीं मूर्तों के भग्नावशेष पड़े हैं। कहीं कहीं पर दीवारें अब तक खड़ी हैं। छतें भी कहीं कहीं पर बनी हुई हैं। वहीं, कुछ दूर पर, एक मसजिद है। उसमें एक शिलालेख फ़ारसी में है। वह फ़ीरोज़-शाह के समय का है। ज़िया अहमद ने उसे १६७५ ईसवी में, बनवाया था। इस मसजिद का प्रायः सभी माल मसाला, हिन्दू और बौद्धों के मन्दिर तोड़ कर, लाया गया है। यहां पर बौद्धों के एक चैत्य का भग्नावशेष अभी तक बना हुआ है। इस चैत्य से कोई दो सौ गज़ के फ़ासले पर एक बौद्ध-मन्दिर भी है। वह कुछ अच्छी हालत में है। उसमें ४२ खम्भे हैं। मुसल्मानों ने छप करके उसमें कुछ जोड़जाड़ कर उसका मक़बरा बना डाला है।

तिलिया नाला ग्रैार राजघाट के क़िले में भी बैाद्धों के प्राचीन विहारों ग्रैार चैत्यों के चिन्ह ग्रभी तक बने हुए हैं।

लाटभैरव राजघाट के क़िले से कोई एक मील है। वहां पर एक बड़ा सा तालाब है। उसके किनारे एक लाट या खम्भा है। उसे लोग लाटभैरव कहते हैं। उस पर ताँबा मढ़ा हुग्रा है।

रामनगर के मन्दिर में पच्चीकारी का नमूना।

उँचाई उसकी बहुत थोड़ी है। पर जिस पत्थर के खम्भे का यह टुकड़ा है, वह कोई ४० फ़ुट ऊंचा रहा होगा। पुरानी इमारतों के विषय में जानकारी रखनेवालों का यही ग्रनुमान है। मुसल्मानों ने उसे तोड़ फोड़ कर छोटा कर दिया है। यह स्तम्भ पहले एक मन्दिर के प्राङ्गण में था। मन्दिर को ग्रैारङ्गज़ेब ने तुड़वा डाला ग्रैार वहीं पर एक मसजिद बनवाया। यह स्तम्भ उस मसजिद के हाते में था। सम्भव है यह ग्रशोक का कीर्ति-स्तम्भ हो ग्रैार इस पर उसके ग्रनुशासन खुदे रहे हों।

सारनाथ में किसी समय बैाद्धों का बड़ा दैारदैारा था। यह जगह बनारस से कोई तीन मील उत्तर है। उसके पास बङ्गाल-नार्थ-वेस्टर्न रेलवे (गोरखपुर लाइन) का स्टेशन भी है। बनारस में लोग इसे धमेख कहते हैं। जनरल कनिंगहम के मत में सारनाथ नाम सारङ्गनाथ का ग्रपभ्रंश है। सारङ्गनाथ का ग्रर्थ "हिरनों का मालिक" ग्रर्थात् बुद्ध भी हो सकता है ग्रैार महादेव भी हो सकता है। कहते हैं, किसी समय, यहां पर मृगदाव नाम का जङ्गल था ग्रैार बुद्ध, ग्रपने किसी पूर्वजन्म में, हिरनों के राजा के रूप में, यहां फिरे थे। गया में

बोधिसत्वता को प्राप्त होकर, शाक्य मुनि ने, इसी जगह, सबसे पहले, बौद्धमत प्रचलित करने का यत्न किया था।

चीन के बौद्धपरिव्राजक फा हियान (३९९ ई० में) और हुएनसङ्ग (६२९-६४५ ई० में), दोनों ने, सारनाथ का वर्णन किया है। पिछला इसके विषय में इस प्रकार लिखता है—"बनारस के उत्तर-पश्चिम अशोक का एक स्तूप है। वह १०० फुट ऊंचा है। वहां एक बहुत बड़ा संघाराम है। वह आठ हिस्सों में बँटा हुआ है। उसके चारों तरफ़ दीवार है। उसके भीतर दोमंज़िले कई महल हैं और एक विहार भी २०० फुट ऊंचा है। स्तूप के चारों तरफ़ छोटी छोटी १०० कोठरियों की एक लाइन है। हर कोठरी में एक एक मूर्ति बुद्ध की है। मूर्तियां सुवर्णखचित हैं। विहार के पास अशोक का बनवाया हुआ एक स्तूप है। उसके सामने ७० फुट ऊंचा एक स्तम्भ है। जहां स्तम्भ है, वहीं बुद्ध ने पहले पहले धर्म्मोपदेश किया था। यहां पर तीन तालाब हैं। मठ से थोड़ी दूर पर एक और स्तूप है। वह ३०० फुट ऊंचा है। उसमें अनेक रत्न लगे हुए हैं"।

इस समय सारनाथ में दो स्तूपों के अवशिष्ट अंश हैं। एक धमेख (धर्म्मोपदेशक?) जो पत्थर का है, दूसरा चौखण्डी जो ईंटों का है। दोनों में कोई आध मील का अन्तर है। बीच की जगह टीले के आकार में ख़ाली पड़ी है। उसमें ईंट, रोड़े, पत्थर और पुरानी मूर्तियों के टुकड़े इधर उधर पड़े हुए हैं। उसके पूर्व, नरोकर या सारङ्ग-ताल नाम का एक बहुत बड़ा तालाब है। धमेख से दक्षिण-पश्चिम की तरफ़ जैनियों ने पार्श्वनाथ का एक मन्दिर बनवाया है।

धमेख को जिस समय जनरल कनिंगहम ने नापा, उस समय वह ११० फुट ऊंचा था। उसका घेरा, नीचे, ९३ फुट था। ४३ फुट की उँचाई तक यह स्तूप पत्थर का है; उसके ऊपर ईंट का। स्तूप के चारों तरफ़ जो मूर्तियों के रखने की जगह हैं, वे सब ख़ाली हैं। उनमें पूरे क़द की बुद्ध की मूर्तियां किसी समय रही होंगी। पत्थरों में फूल, पत्ती और मनुष्यों के चित्र कहीं कहीं पर खुदे हुए अभी तक बने हैं।

१७९४ ई० में राजा चेतसिंह के दीवान जगतसिंह ने, धमेख से १४० गज़ के फ़ासले पर, एक जगह खुदवाई। उससे जो ईंट पत्थर निकला, वह जगतगञ्ज बनाने के काम में आया। जो जगह खोदी गई, वहां पर, ज़मीन के भीतर, एक दालान निकली। उसमें, खोदने पर, दो बक्स निकले। एक पत्थर का था, दूसरा सङ्गमरमर का। उनमें मनुष्य की कुछ हड्डियां और कुछ गले हुए मोती और सोने के वर्क़ वग़ैरह निकले। बुद्ध की एक मूर्ति भी निकली। उस पर १०८३ सम्वत् का एक लेख था। वह गौड़-नरेश महीपाल के समय का था।

चौखण्डी का दूसरा नाम लोरी की कुदान है। यह एक ऊंचा टीला है। इस पर एक अठकोनी मण्डपी या मढ़ी है। उसके एक दरवाज़े पर फ़ारसी में एक लेख खुदा हुआ है। उसमें लिखा है कि हुमायूं बादशाह एक बार इस टीले पर चढ़ा था। उसीकी यादगार में यह मण्डपी बनाई गई है। कनिंगहम साहब की राय में यहीं पर वह स्तूप रहा होगा जिसकी उँचाई होएनसंग ने ३०० फुट बतलाई है।

सारनाथ के टीलों को खोदने पर जो चीज़ें पुराने ज़माने की मिली हैं, वे साबित करती हैं कि किसी समय यहां पर बौद्धों का बहुत बड़ा संघाराम था। दसवीं या ग्यारहवीं शताब्दी में, जब बौद्ध यहां से निकाले गये हैं, इन इमारतों में आग लगा दी गई थी। ख़ाक, बाल, हड्डियां, छिपाई हुई मूर्तें, खाने की चीज़ें, गड़े हुए बर्तन, इत्यादि जो यहां पर निकले हैं, वे सिद्ध करते हैं कि अकस्मात् आग नहीं लगी; किन्तु किसीने जानबूझ कर सारनाथ की बस्ती को अच्छी तरह जलाया था।

सारनाथ एक बहुतही प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान बनारस में है। गवर्नमेंट ने वहां पर एक

जगह बनवाकर, जो जो चीज़ें वहां ज़मीन से निकली हैं, सब रखवा दी हैं। पहले यहां की बहुत सी ऐतिहासिक चीज़ें क्वीन्स कालेज के हाते में रक्खी थीं। शायद वे भी सब अब यहीं आगई हैं। इससे दर्शक उन्हें यहीं देख सकते हैं। अभी, कुछ दिन हुए, वहां ग्रैर भी बहुत सी चीज़ें ज़मीन से निकली हैं। स्तूपों की मरम्मत करने, उनको रक्षित रखने ग्रैर नई नई जगहों पर खोद कर पुरानी चीज़ों को ढूंढने का प्रबन्ध अभी तक गवर्नमेंट की तरफ़ से जारी है। इस विषय में युक्त-प्रान्त की गवर्नमेण्ट के अण्डर-सेक्रेटरी ने अपनी २८ अगस्त की चिट्ठी के साथ जो रिपोर्ट, माँगने पर, हमारे पास भेजी है, उसकी नक़ल हम नीचे, *पाद-टीका में, देते हैं।

* Copy of report in connection with the excavation of ancient ruins at Sarnath near Benares.

Sarnath Stone Stupa (Dhamekh).

The jungle round the Stupa has been cleared and the grounds levelled and unsightly ditches filled up. An estimate for repairing the stone portion of the Stupa is under preparation,

A new stone-shed called the "Museum" was also constructed on a design furnished by Mr. F. O. Oertel, Executive Engineer, in purely Hindu style. The construction of the shed was commenced in the previous year and was completed during the year under review. The old Buddhist sculptures are now kept in this Museum.

Excavations of the ancient ruins at Sarnath were carried out under the instructions of Mr. Oertel. A number of Buddhist Stupas, a large Vihara, and traces of many Buddhist shrines, were uncovered, together with a large number of sculptures of stone, terracotta, and plaster, of great archaeological interest. The most interesting of these latter are (1) a magnificently well finished column with an inscription which fixes it to the period of Asoka ; (2) a huge umbrella, 10 feet in diameter, the inside of which is elaborately carved with scrolls and symbols ; (3) several colossal statues ; (4) a stone railing characteristic of the Buddhist period ; and (5) several sculptures with inscriptions.

All the important sculptures have been kept in the museum.

Chaukhandi at Sarnath.

In the brick Stupa known as Chaukhandi, a well shaft was dug by Mr. Cunningham and left open. To avoid accidents, a stone railing was erected around this. A zigzag path was also made around the brick ruins, providing an easy way up to the brick Stupa.

The ground near the Stupa also contains traces of ancient ruins; so it was considered desirable to acquire it. Moreover with a view to ascertain the nature of the foundation and superstructure of the ancient Buddhist ruins on which the brick Stupa stands, some excavations were carried out, and plans of the traces of wells discovered made under instructions of Mr. Oertel.

कालेज, पाठशाला, छापेख़ाने आदि।

क्वीन्स कालेज बनारस का प्रसिद्ध कालेज है। इसकी इमारत देखने लायक़ है। १७९२ ईसवी में यह जारी हुआ था। इसकी वर्तमान इमारत, १८५३ ईसवी में, १,२७,००० रुपये की लागत से बनी। पहले वह संस्कृत कालेज कहलाता था। इसमें संस्कृत ग्रैर अँगरेज़ी दोनों में ऊँचे दरजे तक की शिक्षा दी जाती है। इसका संस्कृत-विभाग अलग है। कालेज के हाते में ३१½ फ़ुट ऊंचा एक स्तम्भ है। उस पर एक लेख गुप्तवंशीय राजाओं के समय के अक्षरों में है। इस कालेज के पुस्तकालय में अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थ हैं; विशेष करके पुरातत्व-विषयक।

हिन्दू-कालेज। बनारस में एक नया कालेज एनी व्यसण्ट के प्रयत्न से बना है। सुनते हैं इसमें हिन्दुओं की पुरानी पद्धति के अनुसार धर्म्म-शिक्षा भी दी जाती है। पर इसके कार्य्यकर्ताओं में से थियासफ़िस्ट ही अधिक हैं। कालेज का प्रबन्ध, लोग कहते हैं, अच्छा है। इसका एक बोर्डिंग हाउस भी है। काश्मीर-नरेश की संस्कृत पाठशाला भी इसी कालेज में है। उसका भी प्रबन्ध इसी कालेज के अधिकारियों के हाथ में है।

इनके सिवा, बनारस में ग्रैर भी कई स्कूल हैं। बनारस संस्कृत का घर है। वहां संस्कृत की कई एक पाठशालायें हैं। बनारस के प्रसिद्ध पण्डित शिवकुमार शास्त्री महाराजा दरभङ्गा की पाठशाला में हैं।

बनारस में सिर्फ़ एकही पुस्तकालय नाम लेने लायक़ है। वह ज्ञानवापी के पास है। उसका नाम है कारमाइकल लाइब्रेरी। उसमें पुस्तकों का अच्छा संग्रह है।

बनारस में कई छापेख़ाने हैं। उनमें से मेडिकल हाल प्रेस, तारा प्रेस, चन्द्रप्रभाप्रेस, यज्ञेश्वर प्रेस ग्रैर भारतजीवन प्रेस मुख्य हैं। मेडिकलहाल प्रेस से "पण्डित" नामक संस्कृत की प्रसिद्ध
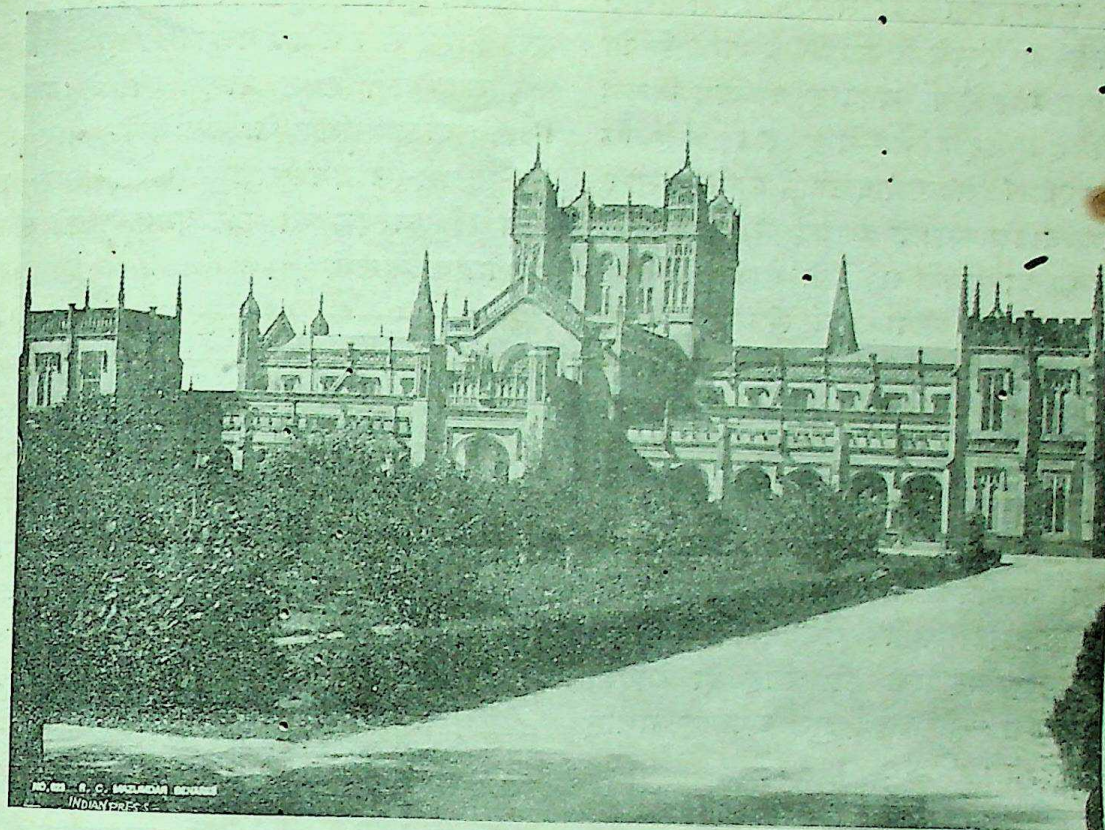
कुइन्स कालेज।

सामयिक पुस्तक निकलती है। हिन्दू कालेज की मैगेज़ीन ताराप्रेस में छपती है। मित्रगोष्ठी पत्रिका नामक संस्कृत-मासिक पुस्तक यज्ञेश्वर प्रेस में छपती है। भारतजीवन नामक हिन्दी का साप्ताहिक अख़बार अपने नाम के छापेख़ाने से निकलता है। कई एक उपन्यासमय मासिक पत्र भी हिन्दी में बनारस से निकलते हैं। बनारस से "चौखम्भा संस्कृत सीरीज़" नामक एक सामयिक पुस्तक संस्कृत में निकलती है। इसमें अच्छे अच्छे ग्रन्थ छपते हैं। इस प्रान्त में हिन्दी लिखने पढ़ने की चर्चा सबसे अधिक बनारस में है। यहां से प्रायः हर महीने हिन्दी की एक आध नई पुस्तक निकलती है। पर इन पुस्तकों में से, बँगला के आधार पर लिखी गई, क़िस्से कहानी की पुस्तकों ही की संख्या अधिक होती है।

नागरी-प्रचारिणी सभा।

कोई बारह वर्ष हुए, स्कूल के कुछ लड़कों ने मिल कर, एक सभा बनाई और उसका नाम नागरी-प्रचारिणी रक्खा। नागरी अक्षर और हिन्दी भाषा दोनों का प्रचार करना इसका उद्देश्य है। पर इसके नाम से इसके दोनों उद्देश्य नहीं सूचित होते। इसने, इतने दिनों में अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली है। पाँच छ सौ सभासद भी इसके हो गये हैं। इसने अपना मकान भी एक अलग बनवा लिया है। यह हिन्दी की पुरानी पुस्तकों का खोज लगाती है; अच्छी अच्छी पुस्तकें प्रकाशित करती है; हिन्दी में व्याख्यान दिलवाती है; और अन्य भी बहुत सी बातें करती है। इस सभा का एक उसूल—सिद्धान्त—बिलकुल ही नया है। वह यह है कि, दूसरों के विषय में

यह जो कुछ कहती है, उसे यह समालोचना समझती है; पर इसके विषय में और कोई जो कुछ कहता है, उसे यह अपवाद, या व्यर्थ निन्दा, समझती है। उदाहरण—यदि सभा कहे कि हिन्दी-अख़बारों के सम्पादकों ने यूनीवरसिटी, अर्थात् विश्वविद्यालय, के बरामदे में क़दम नहीं रक्खा; अथवा उनमें सभा के खोज की रिपोर्ट पढ़कर समझने की लियाक़त नहीं; अथवा उनकी दृष्टि सङ्कीर्ण है, वे उपकारी उद्योगों का विरोध करते हैं, वे तुच्छ समाचारों पर लम्बे लम्बे लेख लिखते हैं,—तो यह कहना विशुद्ध समालोचना है। पर यदि अख़बारों के सम्पादक या और कोई कहें कि सभा हिन्दी-पुस्तकों के खोज का काम अच्छी तरह नहीं करती; अथवा जो बात वह कहती है, उस पर स्थिर नहीं रहती; अथवा, किसी किसी काम के लिए वह एक की जगह दो आदमी व्यर्थ रखती है,—तो वह विशुद्ध अपवाद, अर्थात् व्यर्थ निन्दा, है!

राजटीका।

ला ड़लीप्रसाद के साथ कलावती का जब विवाह हुआ, तब होम के धुवें की आड़ से भगवान प्राजपति ने तनिक सा मुसकरा दिया था। हा, प्रजापति के लिए वह बात चाहे खेल ही क्यों न हो, हम लोगों के लिए वह हँसी की चीज़ नहीं हो सकती।

लाड़ली के पिता पूरनमलजीने अङ्गरेज़ी सरकार में बहुत बड़ा नाम पैदा कर लिया था। अपार सरकार-सागर में बड़ी फुर्ती से सलामों का पतवार चला चला कर वे राय बहादुरी की ऊंची रेतीली चट्टान पर पहुँच गये थे। और भी दुर्गमतर सम्मान-शिखर तक पहुंच जाने की शक्ति उनमें थी; परन्तु पचपन साल की अवस्था में, सामने थोड़ी ही दूर पर स्थित, राज-ख़िताब रूपी कोहरे से ढके हुए पर्वत की धुँधली चोटी पर, चाह भरी दृष्टि डालते ही, वे अकस्मात् ख़िताब-वर्जित लोक को चल बसे; और उनकी बहु-सलाम-शिथिल [सलाम करते करते ढीली पड़ी हुई] गरदन की गांठ श्मशान की सेज पर आराम करने लगी।

परन्तु, विज्ञान कहता है कि शक्ति के स्थान और रूप मात्र में अन्तर हो जाता है, उसका नाश नहीं होता। चञ्चला लक्ष्मी की अचञ्चला सखी, सलाम-शक्ति, पिता के कंधे से उतर कर पुत्र के कंधे पर चढ़ बैठी और लाड़ली का नवीन मस्तक गंगा जी के लहरों में उतराते हुए नारियल की तरह अङ्गरेज़ों के द्वार पर बिना विश्राम के बार बार चढ़ने उतरने लगा।

लाड़ली की पहली स्त्री मर गई। दूसरी बार जिस घर में उसको विवाह करना पड़ा, उसका इतिहास दूसरी तरह का है।

लाड़ली की ससुराल में, ज्वालाशङ्कर अपने जान पहचान वालों में सबके प्यारे थे। घर बाहर, सब जगह, सब लोग, सब बातों में, उनको अनुकरण के योग्य मानते थे।

ज्वालाशंकर विद्या में बी० ए० और बुद्धि में विचक्षण थे; परन्तु भारी नौकरी चाकरी की चाह उनको तनिक भी न थी। उनका कोई बड़ा मुरब्बी या सिफ़ारिश करने वाला भी न था; क्योंकि अङ्गरेज़ उनको अपने पास से जितनी दूर रखते, वह भी अङ्गरेज़ों को उतनी ही दूर रखते थे। इसलिए, ज्वालाशंकर अपने घर की चहार दीवारी के अन्दर, और मेल मुलाक़ातवालों की मंडली, ही में चमका करते थे। दूरवालों की दृष्टि-आकर्षण करने की शक्ति उनमें नहीं थी।

ज्वालाशंकर एक बार तीन वर्ष के लिए विलायत की हवा भी खा आये थे। वहां अङ्गरेज़ों की भलमनसाहत और ख़ातिरदारी से भारतवर्ष

का सारा दुःख अपमान भूलकर अंगरेज़ी साज पहन कर वे देश लौट आये।

ज्वालाशंकर के भाई बहिन पहले पहले उनको देखकर थोड़ा बहुत सकुचाया करते। परन्तु दो चार दिन बाद वही कहने लगे कि भाई साहब, अंगरेज़ी लिबास में आप जैसे अच्छे लगते हैं, दूसरा कोई वैसा अच्छा नहीं लगता। अंगरेज़ी वस्त्रों का घमंड धीरे धीरे घर भर में फैलने लगा।

ज्वालाशंकर विलायत से लौटते समय सोचने लगे कि अंगरेज़ों के साथ बराबरी करके रहने का अपूर्व दृष्टान्त मैं घर लौटकर सबको दिखलाऊंगा। बग़ैर सिर नीचा किये अंगरेज़ों के साथ मेल नहीं हो सकता, जो लोग ऐसी बात कहते हैं, वे अपनी ही हीनता प्रकाशित करते हैं और अंगरेज़ों को भी झूठ मूठ बदनाम करते हैं।

विलायत के बड़े बड़े लोगों के बहुत से आदर-पत्र ले आने से हिन्दुस्तानी अंगरेज़ों में भी ज्वालाशंकर का आदर होने लगा। कभी कभी अंगरेज़ों के यहां चाय, खाना, और खेल तमाशों का हिस्सा उनको, और उनकी स्त्री को भी, मिलने लगा। सौभाग्यमद की मत्तता धीरे धीरे उनकी नस नस में सन सन करती हुई चढ़ने लगी।

उन्हीं दिनों, एक नई रेल की सड़क खोली जाने के अवसर पर, रेलवे कम्पनी के न्योते में, छोटे लाट साहब के साथ बहुत से राज-प्रसाद-गर्वित बड़े बड़े देसी आदमी भी गाड़ियों में लद लद कर नई लैन पर जाने लगे। ज्वालाशंकर भी उनमें से थे।

लौटती वार एक अँगरेज़ दारोग़ा ने देसी मान्य पुरुषों को बहुत अपमानित करके एक विशेष गाड़ी पर से उतार दिया। अँगरेज़ी वस्त्र पहने हुए ज्वालाशंकर भी यह सब देख सुन कर, पहले ही से, अपनी इज़्ज़त बचाने के लिए, गाड़ी से उतरने लगे। उनको उतरते देख दरोग़ा ने कहा, "आप क्यों उतरते हैं? आप बैठे न रहिए!"

इस विशेष सम्मान से ज्वालाशंकर पहले बहुत फूल उठे। परन्तु जब गाड़ी खुल गई, जब सूखे धुंधले मैदान की पश्चिमी सीमा से छिपते हुए सूर्य्य की धीमी किरणें सिर नीचा किये हुए, लज्जित हुए की भांति लाल होकर, सारे देश में फैलने लगीं, और जब अकेले बैठे, खिड़की से मुंह निकाले, टकटकी बांध कर चुपचाप देखते हुए, ज्वालाशंकर, जंगल-पहाड़ों में मुंह छिपाती हुई भारत जननी की दशा सोचने लगे—तब, धिक्कार से उनका हृदय फटने लगा, और दोनों आंखों से अग्नि-ज्वाला से तपी हुई आंसुओं की धारा बहने लगी।

उनको एक कहानी याद पड़ी। एक गधा, किसी देवता की मूर्त्ति लादे हुए, एक रथ को खींच कर बाज़ार से लिये जाता था। राही लोग उसके सामने धूल में लोट लोट कर देव-मूर्त्ति को दंडवत करने लगे। परन्तु उस मूढ़ गधे ने समझा कि सब लोग मुझे ही साष्टाङ्ग प्रणाम कर रहे हैं।

ज्वालाशंकर सोचने लगे कि मुझमें और गधे में इतना ही अन्तर है कि मैंने आज समझ लिया कि यह सम्मान मुझे नहीं, मेरी देह पर लदे हुए बोझे को मिला है; पर गधे ने नहीं समझा। घर आकर ज्वालाशंकर ने घर भर के लोगों को अपने बड़े आंगन में बुलाया, और बबूल के चैलों का एक बहुत बड़ा अलाव जलाकर उसमें सब विलायती वस्त्रों को एक एक करके स्वाहा कर दिया।

इस विलायती-वस्त्र-होम की शिखा जितनी ही अधिक ऊंची चढ़ने लगी, लड़के उतना ही अधिक कूद कूद कर, ताली बजा बजा कर, अग्नि की प्रदक्षिणा करने लगे। तब से ज्वालाशंकर ने अँगरेज़ों के घर का चाय का प्याला, या रोटी का टुकड़ा, छूने की क़सम खा ली। फिर कभी उन्होंने अपने घर से बाहर क़दम न रक्खा।

दुर्भाग्यवश लाड़लीप्रसाद का विवाह इसी परिवार में, ज्वालाशंकर की एक बहिन के साथ, हुआ। घर की लड़कियां, सब की सब जैसी अच्छी

तरह लिखी पढ़ी थीं, देखने में भी वे वैसी ही सुन्दर थीं। लाड़ली ने सोचा, मैंने ख़ूब बाज़ी मारी है।

परन्तु मुझे पाकर तुम लोगों ने भी बाज़ी मारी है, इस बात के समझा देने में लाड़ली ने कसर न की। यह बतलाने के लिए कि किस साहब ने बाबू जी को कब कैसी चिट्ठी लिखी थी,—मानों भूल से आपही आप जेब से निकल निकल कर, एक एक चिट्ठी, आज इस साली के, कल उसके, हाथ में चली जाती। और सालियों के कोमल लाल लाल ओठों में तीखी धार वाली हँसी, लाल मख़मली मीयान के भीतर चमकते हुए छुरे की तरह, झलकने लगती। तब देश, काल और पात्र के विषय में उस हतभाग्य को चेतना हुई। वह मन में कहने लगा, बड़ी भारी ग़लती हो गई।

साली-मंडली में सबसे बड़ी लीलावती ने, एक दिन, शुभ मुहूर्त्त देखकर, लाड़ली के कमरे में सजा सजाया एक बढ़िया सिंहासन बिछाकर, उस पर सिन्दूर से रँगे हुए दो जोड़े विलायती बूट रख दिये। और उन पर फूल चन्दन चढ़ा कर, सामने दो बड़े बड़े दीपक और धूपपात्र जला दिये। जब लाड़ली कमरे में आया, दोनों ओर से दो सालियों की जोड़ी ने उसके दोनों कान पकड़ कर, सिंहासन के सामने उसका सिर झुका कर कहा —अपने इष्ट देवता को प्रणाम करो; उनके आशीर्वाद से तुम्हारा पद बढ़े।

तीसरी साली शीलवती ने कई दिनों तक बड़े परिश्रम से एक चादर पर, जोन्स, स्मिथ, ब्राउन, टामसन, इत्यादि एक सौ अंगरेज़ी नाम, लाल धागे से काढ़े, और एक दिन बड़ी धूम धाम से उसने लाड़ली को वह चादर उढ़ा दी। चौथी साली प्रेमवती उम्र के हिसाब से किसी गिनती में न थी। परन्तु उसने भी कहा, भाई साहब, मैं आपके लिए एक माला गूँथ दूँगी; आप उससे साहब लोगों का नाम जपा करना।

उसकी बड़ी बहिनों ने उसे धमका कर कहा, जा, चिबिल्लीपन मत कर।

लाड़ली के मन में गुस्सा भी आता, और लज्जा भी आती। परन्तु उन लोगों से हटने को जी भी न चाहता। तिस पर बड़ी साली बहुत ही अधिक सुन्दरी थी। उसमें जितना मधु था, उतने ही कांटे भी थे। उनकी मादकता और खरकन दोनों का, मन में, एक ही साथ असर होता था। पतंगा पंख जल जाने पर क्रोध से भन भन करता है; तिस पर भी वह अन्धे की तरह दीपक के चारोंओर घूमा हो करता है। इस तरह वह वहीं मरता भी है।

निदान साली-संसर्ग के प्रबल मोह में गोता मार कर साहबी प्यार की लालसा लाड़ली बिलकुल नकारने लगा। जिस दिन वह बड़े साहब को सलाम करने जाता, सालियों से कहता कि सुरेन्द्रनाथ बाबू आये हैं, मैं उनकी वक्तृता सुनने जाता हूं। नैनीताल से उतरे हुए छोटे साहब को स्टेशन पर सम्मान-निवेदन करने जाता तो कहता कि मैं छोटे मामा जी से मिलने जाता हूं।

साहब और साली, इन दो नावों पर पैर रखकर खड़ा हुआ बेचारा लाड़ली बड़े भारी सङ्कट में फँस गया। सालियां मन ही मन कहने लगीं, तुम्हारी दूसरी नाव के तले बिना छेद किये हम तुम्हारा पिंड न छोड़ेंगीं।

कुछ दिनों में ख़बर उड़ी कि महारानी के अगले जन्म दिन पर लाड़लीप्रसाद 'ख़िताब नाम वाले स्वर्गलोक की पहली सीढ़ी, रायबहादुरी, पर पैर रक्खेंगे। परन्तु ऐसा आनन्द-समाचार, वह बेचारा डरपोक लाड़ली, अपनी सालियों को न सुना सका। जब उससे और न रहा गया, तब, एक दिन खिली हुई चाँदनी में चित्त के आवेग को रोकने से असमर्थ होकर अपनी स्त्री से उसने वह समाचार कह ही डाला। स्त्री ने ज्यों त्यों रात बिताई। दूसरे दिन, पालकी में बैठ, आंखों में आंसू भर, वह अपनी बड़ी बहिन के घर जा पहुंची। लीलावती ने कहा, हर्ज क्या है, राय बहादुर होकर तेरे स्वामी के पीछे पूंछ थोड़े ही निकल आवेगी? तुझे क्यों इतनी शरम लग रही है?

कलावती बार बार घबराकर कहने लगी, नहीं बहिन, और चाहे जो हो जाऊं, मैं रायबहादुरनी न बन सकूंगी।

लीलावती ने ढाढ़स देकर कहा, अच्छा, तू इस बात की कुछ फ़िकर मत कर।

लीलावती के स्वामी रतनचन्द्र किसी पहाड़ी ज़िले में विकालत करते थे। कुछ दिनों बाद लाड़ली के नाम वहीं से न्योता पहुंचा। वह भी आनन्द से रेल में बैठकर वहां तुरन्त जा पहुंचा। रेल में चढ़ते समय उसका बांया अंग नहीं फड़का। और यदि फड़का भी हो, तो आनन्द में मग्न होने के कारण उसने उसकी कुछ परवा न की।

पहाड़ी नगर की ठंढी ठंढी वायु से लीलावती का स्वास्थ्य और भी अच्छा हो गया था। सुन्दरता की लाली उसके खिले हुए मुखड़े पर यों झिलमिला रही थी, जैसे शरद ऋतु में किसी निर्जन नदी के किनारे काश का जंगल मन्द मन्द वायु में लहलहाया करता है।

उसे देखकर लाड़ली की मोहित हुई आंखों पर, मानो सिर से पैर तक फूलों से लदी हुई मालती लता, ओस की बूंदें बरसाने लगी।

मन के आनन्दित होने और पहाड़ की वायु से लाड़ली का अजीर्ण रोग दूर होगया। स्वास्थ्य के नशे से, सुन्दरता के मोह से, लीलावती की पल पल की ख़ातिरदारी से, वह मानो पृथ्वी को छोड़ आकाश पर पैर रख कर चलने लगा। घर के सामने एक बाग़ीचा था। उस के नीचे ही से एक नदी बहती थी। वह मानो लाड़ली ही के चित्त की चञ्चलता के प्रबल वेग से हहाती हुई दौड़ा करती थी।

सबेरे नदी के किनारे घूमते समय ठंढी ठंढी सुगन्ध भरी पहाड़ी हवा, प्रियतम से मिलने के आनन्द की तरह, उसके सारे शरीर को प्रफुल्लित कर देती थी। फिर, घर लौट कर, लीलावती के काम काज में, कभी कभी रसोई पानी में भी, लाड़ली खुद सहायता करने लगते और बात बात में उसके सामने अपना फूहरपन दिखलाया करते। नित्य अपने को बात बात में अपराधी बनाने के कारण आपको जो धमकियां और ताड़नाएं मिलतीं, उनसे मानो आपका जी ही नहीं भरता था।

फिर, थोड़ी देर में, एक ओर भूख की ताड़ना दूसरी ओर साली जी का आग्रह,—रसोई का रसीलापन, और रसोई बनानेवाली की सेवा की मिठास, इन सब के संयोग से आपको भोजन के कार्य्य में वज़न का ध्यान बहुत कम ही रहता था।

इसी तरह बड़े ही आनन्द से श्रीयुत लाड़लीप्रसाद का समय बीतने लगा। पृथ्वी की सारी बातें वह भूल गया। यहां तक कि, साहब लोगों का कृपा-कटाक्ष ही मानवी जीवन का अन्तिम उद्देश है, यह बात भी उस समय उसको याद न रही। प्यारे मित्रों की श्रद्धा और स्नेह से कैसा सुख और आनन्द मिलता है, वह, बस, इसीको सोचा करता।

इसके सिवा, एक और नई बात उसके देखने में आई। रतनचन्दजी कचहरी के बड़े वकील होने पर भी अंगरेज़ों से मिलने नहीं जाते थे। जब इस पर कोई बात छिड़ती तो वे कहते, क्या ज़रूरत है? भाई, अगर वे मेरी ख़ातिरदारी न करें, तो मुझे कितना दुःख होगा। क्या वे भी मुझसे मिलने आवेंगे?

लाड़ली भी यहां आकर इन लोगों के नये दल में मिल गया। उसको परिणाम की चिन्ता न रही। पिता की और अपनी मेहनत से पहले ही जो खेत जोत बोकर तैयार किया गया था, राय बहादुरी की सम्भावनारूपी बेल उसीमें आपही आप बढ़ने लगी; उस खेत में नये सिरे से जल सींचने की आवश्यकता अब न रही। लाड़लीप्रसाद ने अंगरेज़ों के लिए उनके किसी प्यारे नगर में एक घुड़दौड़ की जगह बनवा दी थी।

इतने में कांग्रेस का समय पास आ पहुंचा। रतनचन्द के पास भी चन्दा जमा करने के लिए चिट्ठी आई। लाड़लीप्रसाद लीलावती के साथ बड़े

आनन्द से ताश खेल रहे थे। वहीं रतनचन्द चन्दे की किताब लाकर कहने लगे, भाई, तुमको भी इस पर कुछ लिखना चाहिए। यह सुन कर, पहले संस्कार के कारण, लाड़लीप्रसाद का चेहरा सूख गया। लीलावती ने घबरा कर कहा, ख़बरदार, ऐसा काम मत करना। तुम्हारा घुड़-दौड़ का मैदान मिट्टी में मिल जायगा। लाड़ली-प्रसाद इस ताने के न सह सका। उसने ज़ोर से कहा, हां, हां, उसीकी सोच में तो रात भर मुझे नींद नहीं पड़ती! रतनचन्द ने ढाढ़स देकर कहा, तुम्हारा नाम किसी अख़बार में नहीं छापा जायगा।

लीलावती ने सोच विचार कर कहा, नहीं, नहीं, क्या ज़रूरत है? क्या जाने कहीं कोई बात ही बात में——

लाड़ली ने बड़े ज़ोर से दपट कर कहा, अख़बार में नाम छप ही जाय तो क्या होगा? यों कह कर और रतनचन्द के हाथ से किताब खींच कर उसने खट से एक हज़ार रुपये लिख दिये। वह मन ही मन कहने लगा, यह बात अख़बार में थोड़े ही छपेगी।

लीलावती ने अपने सिर पर हाथ रखकर कहा, तुमने यह क्या कर डाला?

लाड़ली बड़े गर्व से बोल उठा, क्यों, क्या मैंने कुछ बुरा किया?

लीलावती ने कहा, रेल के स्टेशन का गार्ड, व्हाइट वे की दूकान का असिस्टन्ट, हार्टब्रादर का साईस साहब, अगर ये लोग तुम पर रूठ जांय? अगर ये लोग तुम्हारे न्योते में शैम्पेन (शराब) पीने न आवें? अगर मुलाक़ात होने पर वे तुम्हारी पीठ न ठोकें?

लाड़ली ने गरम होकर कहा, तब तो मैं घर आकर बेहोश हो जाउंगा!

कई दिन बाद, सबेरे के समय, चाय पीते पीते, लाड़ली की दृष्टि समाचारपत्र के एक अंश पर पड़ी। किसी 'क्ष' नामधारी पत्रप्रेरक ने कांग्रेस की सहायता के लिए एक हज़ार रुपया दान कर देने पर श्रीयुत लाड़लीप्रसाद की बड़ी तारीफ़ की थी। उसने लिखा था कि उनके ऐसे सज्जन को अपने दल में पाकर कांग्रेस का बल कितना बढ़ गया है, इसका ठीक ठीक वर्णन वह नहीं कर सकता।

कांग्रेस का बल बढ़ गया है! हा स्वर्गगत पिता पूरनमलजी! कांग्रेस का बल बढ़ाने के लिए ही तुमने अभागे को भारत भूमि में जन्म दान दिया था!

परन्तु दुःख के साथ ही साथ सुख भी रहता है। लाड़लीप्रसाद कुछ ऐसे वैसे मनुष्य नहीं हैं। उनको अपनी ओर खींच लेने के लिए एक तरफ़ भारतवर्ष के अंगरेज़ और दूसरी तरफ़ कांग्रेसवाले बड़े आग्रह से वंशी डालकर, टक-टकी बांकधर, बैठे बैठे ताक रहे हैं। यह बात कुछ थोड़ी नहीं है। इसलिए लाड़लीप्रसाद ने हँसते हँसते समाचार पत्र को उठा कर लीला-वती को दिखाया। किसने उस लेख को लिखा है, मानो वह जानती ही नहीं, ऐसा भाव दिखा कर लीलावती ने अपना चेहरा फीका कर लिया और घबराकर बोल उठी, अरे, बनी बनाई बात सब बिगड़ गई। हाय, हाय! तुम्हारे साथ ऐसी दुश्मनी किसने की? उसके क़लम में घुन लग जायं, उसकी दावात में बालू भर जांय, उसके काग़ज़ को दीमक चाट जांय!

लाड़ली ने हँस कर कहा, और मत कोसो! मैं अपने दुश्मन को क्षमा करके आशीर्वाद देता हूं, उसकी क़लम दावात सोने की हो जायँ।

दो दिन बाद कांग्रेस के विपक्षी किसी अंग्रेज़ द्वारा सम्पादित एक अख़बार डांक से लाड़ली के पास आ पहुंचा। उसमें "रहस्य-ज्ञाता" नाम से दस्तख़त करनेवाले किसी आदमी ने उस पहले पत्र का प्रतिवाद छपवाया था। लेखक ने लिखा था कि जो लोग लाड़लीप्रसाद को

पहचानते हैं, वे कभी इस तरह उनकी झूठ मूठ बदनामी पर विश्वास नहीं करते। चीता के लिए अपने चमड़े पर के काले काले धब्बों को मिटा देना जैसा असम्भव है, लाड़लीप्रसाद के लिए कांग्रेस की पार्टी में मिल जाना भी ठीक वैसा ही असम्भव है। श्रीयुत लाड़लीप्रसाद में बहुत बड़ी सार वस्तु है, वे बेकाम उम्मेदवार या मुवक्किल-रहित वकील नहीं हैं। वे दो दिन के लिए विलायत की हवा खाकर पोशाक, खाना पीना और रहन सहन के क़ायदों में बन्दरों की चाल सीख कर, यहां के अंगरेज़ों के साथ मिलने में निराश नहीं हो चुके हैं। इसलिए उनका सा मनुष्य क्यों ऐसा काम करेगा? इत्यादि इत्यादि।

हाय परलोकवासी पिता पूरनमलजी! अंगरेज़ों के पास इतना नाम, इतना विश्वास, पैदा करके तब तुम मरे थे!

यह पत्र भी सालीजी के पास—मोर जैसे अपना पङ्ख फैला देता है उसी तरह—दिखला देने योग्य था। क्योंकि इसमें एक बड़ी भारी बात थी। लाड़ली कोई ऐसा वैसा मनुष्य नहीं है। वह सार वस्तु से भरा हुआ है! साली ने पत्र देखा।

लीलावती फिर आकाश पर से गिर पड़ी। उसने बड़े आश्चर्य से कहा—यह अब तुम्हारे किस मित्र ने छपवाया है? किस टिकटकलेक्टर ने, किस चमड़े के दलाल ने, किस बाजेवाले सार्जेण्ट ने इसे लिखा है?

रतनचन्द ने कहा, तुमको इस पत्र का एक प्रतिवाद तो ज़रूर करना चाहिए।

लाड़लीप्रसाद ने कुछ ऊंचे स्वर से कहा, क्या ज़रूरत है? लोग जब जो कुछ कहें, क्या सभी का प्रतिवाद करना होगा?

लीलावती ने बड़े ज़ोर से चारों ओर हँसी का फ़ौवारा छोड़ दिया।

लाड़ली ने शरमा कर कहा, इतनी हँसी किस बात पर?

इसके उत्तर में लीलावती ने दूसरी बार इतना अट्टहास आरम्भ किया कि उसकी यौवन से फूली हुई देहलता लोटने लग गई।

लाड़ली आँख, मुंह, नाक में परिहास की पिचकारियां खाकर बहुत ही लज्जित हुआ। कुछ मन मसोस कर वह बोला, आप समझती हैं कि मैं प्रतिवाद करने से डरता हूं!

लीलावती बोली, सो क्यों? मैं सोच रही थी कि तुमने अब तक अपने प्यारे घुड़दौड़वाले मैदान की आस नहीं छोड़ी है। ठीक है, जब तक साँस, तब तक आस भी नहीं छूटती!

लाड़ली ने कहा, वाह, मैं क्या उसीलिए नहीं लिखता। वह बहुत क्रोध करके दावात क़लम लेकर बैठ गया। परन्तु लेख में क्रोध की लाल छटा न देख पड़ी। इसलिए रतनचन्द और लीलावती को उसके संशोधन का भार लेना पड़ा। मानो पूड़ियां सेंकी जाने लगीं। लाड़ली पानी से गूंध गूंध, घी लगा लगा कर, ठण्ढी ठण्ढी बेल बेल कर, जहां तक उससे बन पड़ा, चिपटी बनाने लगा; और उसके दोनों सहकारी तुरन्त उनको सेंक कर कड़ी और गरम करके फुला देने लगे। लिखा गया कि घरवाला जब शत्रु होता है तब बाहरी शत्रु से भी वह अधिक भयङ्कर बन जाता है। पठान या रूस भारत गवर्नमेंट के वैसे भारी शत्रु नहीं हैं, जैसे गर्व से फूले हुए हिन्दुस्तानी अंगरेज़ हैं। यही लोग गवर्नमेंट और प्रजा, दोनों के बीच में, खड़े होकर उनमें मेल नहीं होने देते। कांग्रेस ने प्रजा और राजा में मेल कराने की जो चौड़ी सड़क खोली है, हिन्दुस्तानी अँगरेज़ों के समाचारपत्र उसीको रोककर खड़े हो जाते हैं; उसीमें वे काँटे बो रहे हैं; इत्यादि।

लाड़ली मनही मन डरने लगा। और लेख बहुत उत्तम लिखा गया है, यह जान कर मनही मन उसके लिए वह गर्वित भी होने लगा।

इसके बाद समाचारपत्रों में लाड़ली के कांग्रेस में रुपया दे देने पर बहुत वाद-प्रतिवाद होने लगे;

और उसके कांग्रेस में मिल जाने की ख़बर ढोल पीट पीट कर सबको सुनाई जाने लगी।

लाड़ली बेचारा क्या करे, अपनी साली के पास वह देशहितैषिता की डींगें हांकने लगा। लीलावती मनही मन हँस हँस के कहा करती, अभी तुम्हारी अग्निपरीक्षा बाक़ी है।

एक दिन सबेरे, स्नान करते समय, लाड़ली अपनी पीठ आदि शरीर के दुर्गम स्थानों को साबुन से मलने की फ़िक्र में लगे हैं, ऐसे समय में बेहरा ने उनके हाथ में एक कार्ड ला दिया। कार्ड पर स्वयं मेजिस्ट्रेट साहब का नाम लिखा हुआ था। लीलावती हास्य से खिले हुए नेत्रों से, आड़ में होकर, तमाशा देख रही थी।

साबुन के फेनों से भीगी हुई देह से तो मैजिस्ट्रेट साहब से कोई नहीं मिल सकता—बेचारा लाड़ली बड़ी भारी खलभली में पड़ गया। झटपट दो लोटे पानी डाल कर, बदन को पोंछ, ज्यों त्यों कपड़े पहन, हांफता हुआ बाहर दौड़ा गया। मगर साहब नदारद। बेहरे ने कहा, साहब बड़ी देर तक बैठे बैठे ऊब कर चले गये। इस सायन्त झूठ का कितना भाग बेहरे का था, और कितना लीलावती का, यह नैतिक गणितशास्त्र की एक सूक्ष्म समस्या है।

छिपकली की कटी हुई पूंछ घण्टों छटपटाया करती है। लाड़ली का छोटा सा हृदय भी भीतर ही भीतर उसी तरह पछाड़ें खाने लगा। दिन भर खाते पीते, सोते बैठते, उसको चैन न पड़ी।

लीलावती भीतरी हँसी के सब चिन्हों को मुख पर से बिलकुल मिटाकर, बड़ी उदास सी होकर, बीच बीच में पूछती रही, आज तुमको क्या हुआ है? तबीयत तो अच्छी है न?

लाड़ली बड़ी कठिनाई से हँसकर योंही कुछ उत्तर दे देता,—कहता,—आपके पास रहने से भला कहीं तबीयत ख़राब हो सकती है? आप मेरी धन्वन्तरिणी हैं!

परन्तु वह हँसी पल भरही में बिला जाती। लाड़ली फिर सोचता,—एक तो मैंने कांग्रेस में चन्दा दे डाला; अख़बार में कड़ी चिट्ठी छपवाई,—तिस पर ख़ुद साहब मैजिस्ट्रेट मुझसे मिलने आये; मैंने उनको बैठा रक्खा—न जाने वे क्या समझते होंगे!

हा पिता पूरनमलजी! मैं जो नहीं हूं, भाग्य के फेर से, गड़बड़ी में, मैं वही समझा जाने लगा!

दूसरे दिन अच्छे अच्छे कपड़े पहन कर, घड़ी की चेन लटका कर, सिर पर बढ़िया अम्मामा बाँधकर, लाड़ली घर से निकला। लीलावती ने पूछा, कहां चले? उसने उत्तर दिया, एक ज़रूरी काम से जा रहा हूं। लीलावती चुप रही।

साहब के दरवाज़े पर कार्ड निकालते ही अर्दली ने कहा, अभी मुलाक़ात न होगी।

लाड़ली जेब से दो रुपये निकालकर देने लगा। अर्दली ने कहा, हम लोग पाँच आदमी हैं। लाड़ली ने झट १० रुपये का नोट निकाल दिया। साहब के पास से बुलावा आया। साहब तब स्लीपर (चप्पल) जूता और मार्निंग गौन (सुबह के कपड़े) पहन कर लिखने पढ़ने में लगे हुए थे। लाड़ली ने झुककर सलाम किया। मैजिस्ट्रेट ने उनको उंगली से बैठने की आज्ञा देकर, काग़ज़ से सिर बे उठाये ही कहा, क्या चाहते हो बाबू?

लाड़ली घड़ी की चेन हिलाते हिलाते, विनीत और काँपती हुई आवाज़ से बोला, आप मेहरबानी करके मुझसे मिलने गये थे, मगर—

साहब ने भौं चढ़ाकर काग़ज़ पर से आँखें उठाकर कहा, मैं तुमसे मिलने गया था! Babu, what nonsense are you talking? तुम पागल की तरह क्या कह रहे हो?

लाड़ली "Beg your pardon," (ग़लती माफ़ हो)—इत्यादि कहकर, पसीने से तराबोर होकर, कांपते कांपते, किसी तरह, बाहर निकल आया। रात भर, कहीं दूर स्वप्न में सुने हुए मन्त्र की तरह एक बात रह रह कर उसके कानों में गूंजने लगी —Babu, you area howling idiot!

घर लैाटती बेर उसने समझा कि साहब मुझसे मिलने गये थे, यह बात उन्होंने सिर्फ़ ख़फ़ा होकर नकार दी। वह मनही मन कहने लगा, धरती माता, तू फट जा, मैं तुझमें समा जाऊं। परन्तु धरती माता ने जब उसकी बात न मानी तब वह झटपट घर को लैाट आया।

लीलावती से आकर उसने कहा, घर भेजने के लिए मैं मुश्क लेने गया था।

इतनेही में कलकृरी के छः प्यादे चपरास बाँधे हुए आ पहुंचे। वे लोग सलाम करके मुसकराते हुए चुपचाप खड़े रहे।

लीलावती ने हँसकर कहा, तुमने कांग्रेस में चन्दा दिया है, इसीसे कहीं ये लोग तुम्हें गिरफ़ार करने न आये हों।

छहों प्यादों ने दांतों की बारह पंक्तियां निकाल कर कहा, बकसीस, बाबू साहिब!

रतनचन्द पासही के कमरे में बैठे थे। उन्होंने झिड़ककर पूछा बकसीस किस बात की?

प्यादों ने दाँतों को श्रोर भी विकसित करके कहा, हुज़ूर मैजिस्ट्रेट साहब से मिलने गये थे, उसीको बकसीस!

लीलावती ने हँस कर कहा, क्या मैंजिस्ट्रेट साहब ने आजकल मुश्क की दूकान खोली है? ऐसी ख़ुशबूदार सैादागरी तो वे पहले नहीं करते थे।

बेचारा लाड़लीप्रसाद मुश्क श्रोर मैजिस्ट्रेट, दोनों की गांठ एक में जोड़ने की चेष्टा करने में ऐसा अनाप शनाप बकने लगा कि किसीने उसकी बात न समझी।

रतनचन्द ने कहा, बकसीस की कोई ज़रूरत नहीं है। बकसीस नहीं मिलेगा।

लाड़ली ने सकुचाते सकुचाते जेब में से एक नोट निकालकर कहा, ये लोग ग़रीब आदमी हैं; देने में हर्जही क्या है?

रतनचन्द ने लाड़ली के हाथ से नोट छीनकर कहा, इनसे भी अधिक ग़रीब आदमी इस दुनिया में हैं, मैं इसे उन्हींको बाँट दूंगा।

कुपित कालभैरव के भूत प्रेतों को कुछ ठण्ढा करने का अवसर न मिलने से लाड़ली बड़ी आपदा में फँसा। चपरासी लोग जब बज्र की सी कड़ी दृष्टि डालते हुए चलने लगे, तब लाड़ली बड़े हीं करुणभाव से उनकी श्रोर देखने लगा। मनही मन वह मिन्नत करने लगा—बाबा, इसमें मेरा कुछ दोष नहीं है, सो तो तुम लोग जानतेही हो।

कलकत्ते में कांग्रेस हुई। इसलिए रतनचन्द सस्त्रीक राजधानी में जा पहुँचे। लाड़ली को भी उनके साथ जाना पड़ा।

कलकत्ते में पाँव धरतेही कांग्रेसवालों ने चारों श्रोर से लाडली को घेर कर एक महान ताण्डव आरम्भ कर दिया। सम्मान, समादर, स्तुतिवाद की सीमा न रही। सब लोग कहने लगे, आपके ऐसे नायक यदि देशहित कार्य में न लगें तो फिर देश के लिए कोई भरोसाही नहीं। इस बात की सत्यता को लाड़ली ने अस्वीकार करना न चाहा—श्रोर इसी तरह के गड़बड़ में वह अकसात् देश का एक भारी नायक बन गया। कांग्रेस की सभा में जब उसने पदार्पण किया, तब सब लोग मिल कर, खड़े होकर, विदेशी विलायती बोली में चिल्ला कर बोल उठे, "हिप् हिप् हुर्रे!" हमारी मातृ-भूमि के कान लाज से लाल हो गये।

यथासमय महारानी का जन्मदिन आ पहुँचा—लाड़ली का रायबहादुरी ख़िताब, पास पहुँची हुई छाया की तरह, अन्तर्धान हो गया।

उस दिन साँझ को लीलावती ने लाड़ली का न्योता किया, श्रोर उसे नये कपड़े पहनाकर अपने हाथ से उसके माथे पर लाल चन्दन का टीका लगा दिया। लीलावती की दूसरी बहिनों ने अपने हाथों से गूंथी हुई एक एक माला उसके गले में डाली। सबने कहा, आज हमने तुमको राजा बनाया है। भारतवर्ष में ऐसा सम्मान तुमको छोड़ किसी दूसरे को मिलना सम्भव नहीं।

लाड़ली को इससे पूरी तसल्ली मिली या न मिली, यह तो उसका मनही जानता होगा, श्रोर

जानते होंगे सब घट घट के अन्तर्यामी भगवान्। परन्तु हमको पूर्ण विश्वास है कि मरने के पहले वह ज़रूर रायबहादुर हो जायगा—और उसके मरने पर "पायोनियर" और "इङ्गलिश-मैन," दोनों, एकही स्वर से उसके लिए शोक करना न भूलेंगे। अच्छा, तब तक, थ्री चीयर्स फ़ार बाबू लाड़लोप्रसाद! हिप् हिप् हुर्रे!-हिप् हिप् हुर्रे! हिप् हिप् हुर्रे!*

पार्वतीनन्दन।

सम्मिलित हिन्दू-कुटुम्ब-प्रथा के दूषण।

भारतवर्ष में सम्मिलित-कुटुम्ब-प्रथा ऐसी प्रचलित हो रही है जिस का वार पार नहीं। हिन्दुओं का कहना ही क्या है? उनमें तो यह प्रथा पूर्ण रूप से विराजमान ही है; पर उनकी देखादेखी मुसलमानों में भी वह थोड़ी बहुत चल पड़ी है। ग्रामीण मुसलमानों में इसका प्रचार प्रायः वैसाही है जैसा हिन्दुओं में है। हम यह नहीं कहते कि इसमें गुण हैं ही नहीं, अथवा यदि हैं तो इतने कम हैं कि उनपर ध्यान देना व्यर्थ है। ऐसा कदापि नहीं। उसमें अनेक अत्यन्त लाभदायक गुण अवश्य हैं; पर हमको दुःख-पूर्वक कहना पड़ता है कि उसमें गुणों की अपेक्षा हानियां बहुत विशेष और भयंकर हैं। तो भी इसमें सन्देह नहीं कि जिस कुटुम्ब के सभी लोग समझदार हों और इस सम्मिलित परिपाटी के दोषों पर भली भाँति ध्यान रख कर उनसे बचते रहें, उस कुटुम्ब को इस प्रथा से बहुत कम हानियां एवं बहुत विशेष लाभ प्राप्त होंगे। पर ऐसे कुटुम्ब बहुत थोड़े मिलेंगे। अधिकता ऐसेही कुटुम्बों की देखने में आती है जिनके मेम्बरों में या तो खुल्लम-खुल्ला लड़ाई अथवा उदासीनता है, या ऊपरी चमक दमक की आड़ में एक दूसरे मेम्बर के बीच वैमनस्य है। अस्तु, इस प्रथा के गुणों की विवेचना करने का आज हमारा विचार नहीं है। समय पाकर फिर कभी हम इस विषय को अपने पाठकों के सन्मुख छेड़ेंगे। सम्प्रति हम इस सम्मिलित प्रथा के दोषों की विवेचना करना चाहते हैं, क्योंकि किसी बात के दूषण जान लेने से हम उनसे बचने के उपाय आपही आप सोचने लगते हैं। अथवा यदि ऐसा ध्यान में आता है कि उन दोषों से बचना असम्भव है, तो हम उस बात से ही दूर भागने का प्रयत्न करते हैं।

(१) सम्मिलित कुटुम्ब में सबसे प्रधान दूषण यह है कि उसमें स्त्रियों और बच्चों की दशा सन्तोषदायक नहीं रहती। प्रायः देखा गया है कि साधारण समझदार लोग भी इस ओर बहुत कम ध्यान देते हैं। बहुतेरे तो यही कह देते हैं कि "स्त्रियाँ तो कुत्तियाँ हैं, इन्हें भूकने दो। पुरुषों में मनोमालिन्य न होना चाहिए और उन्हें इन की बातों में न लगना चाहिए। बस, इसीमें कल्याण है।" हम यह नहीं कहते कि सम्मिलित घरानों के मेम्बरों को अपनी अपनी स्त्रियों ही के कहने पर चलना चाहिए; पर इसमें सन्देह नहीं कि उन्हें कुत्तियां, बिल्लियाँ, बनाना बड़ी लज्जा की बात है। यदि स्त्रियाँ कुत्तियाँ हैं तो मर्द क्या होंगे? पर स्त्रियों और बच्चों की इस असन्तोषजनक दशा के होने का कारण क्या है?

बच्चों के विषय में हमारी समझ में यही कहा जा सकता है कि उच्च घरानों में लोग अपने लड़कों से बड़ों के दबाव के कारण नहीं बोलते और उन की देखादेखी बड़े भी अपने लड़कों से लज्जा करने लगते हैं। अथवा यों कहना चाहिए कि बड़े भी कभी छोटे थे, और अपने बड़े जेठे के दबाव के कारण अपने लड़कों से न बोलने के आदी थे। इससे जब वे घर के मुखिया भी हो जाते हैं, तब भी उन्हें, छोटों के सामने, अपने बच्चों से बोलने का, साहस नहीं होता। इस कारण पितृस्नेह कुछ न कुछ अवश्य मन्द पड़

* बाबू रवीन्द्रनाथ की कहानी का भावानुवाद।

जाता है। फिर किसी मेम्बर को, जब तक कि वह व्यवसाय अथवा सेवावृत्ति के कारण किसी दूसरी जगह अपने लड़के बालें सहित न रहता हो, यह अधिकार नहीं है कि वह अपनी स्त्री या सन्तति को प्रकट रूप से कोई वस्तु ला दे। क्योंकि यह मान लिया जाता है कि दूसरे मेम्बर अथवा कुटुम्ब का अगुवा उसकी, एवं सभी मेम्बरों को, स्त्री और बच्चों के भरण पोषण का प्रबन्ध करता है, और करैगा। वास्तव में ऐसाही होता भी है। पर मनुष्य बहुत बड़ा सभ्य और विद्वान् होने पर भी अन्त को एक प्रकार का जानवरही तो है। अतः उसके चित्त से पाशवीय आदतें बिलकुल कैसे लोप हो सकती हैं? और ज्ञान का पूर्ण राज्य उसके दुर्बल चित्त में कैसे संस्थापित हो सकता है? मनुष्य चाहै जितना बनै, चाहै जितनी ज़ाहिरदारी दिखावै, और अपने चित्त को चाहै जितना रोकै और समझावै, पर उसके लिए यह असम्भव है कि वह सचमुचही किसी दूसरे की स्त्री और बच्चों से उतनाही स्नेह करै जितना अपनों से। भाइयों में तो कभी कभी देखा गया है कि वे एक दूसरे का अपने अपने लड़कों से यदि अधिक नहीं तो बराबर स्नेह अवश्य करते हैं। पर और किसीको (माता पिता को छोड़ कर) कदाचित् ही कोई मनुष्य अपने लड़कों के बराबर मान सकता हो!

यदि किसी मनुष्य के दो लड़के हों, एक ३० वर्ष का, दूसरा ५ वर्ष का, और उसके बड़े लड़के के भी ५ वर्ष का एक लड़का हो, तो वह मनुष्य अपने छोटे लड़के का, अपने नाती (अथवा पोते) की अपेक्षा, कदाचित् विशेष ही प्यार करैगा, यद्यपि दिखलाने को चाहे वह यही प्रकट करै कि उसे नाती अधिक प्रिय है। इसमें उस मनुष्य का कुछ भी दोष नहीं। यह तो ईश्वरीय नियम है। इसमें किसीका कुछ भी वश नहीं। कोई मनुष्य सम्बन्ध में आपके जितना ही निकट होगा, उतना ही वह आपको अधिक सगा और आत्मीय प्रतीत होगा। पर कोई आपका चाहे जितना निकट सम्बन्धी हो, वह आपकी आत्मा की अपेक्षा अवश्य ही कुछ दूर होगा। अर्थात् आप उसको बिलकुल अपने बराबर नहीं मान सकते। भाई, बेटे और स्त्री को कभी कभी लोग इतना प्रिय मानते सुने गये हैं, कि उनके बिछोह में उन्होंने प्राण तक त्याग दिये हैं; पर ऐसे उदाहरण देखने में बहुत कम आये होंगे, और यदि कोई देखे भी गये होंगे तो यही कहना पड़ैगा कि वे अपने ऐसे भाई, बेटे अथवा स्त्री को इस कारण इतना प्रिय मानते थे कि वे उनके भाई, बेटे या स्त्री थे। अर्थात् वहाँ पर भी आत्मा से सम्बन्ध लगा है। अतः यह स्पष्ट है कि कोई मनुष्य किसी दूसरे के बालबच्चों का उतना प्यार कदापि नहीं कर सकता जितना अपनों का। और यही कारण है कि अपने बच्चे के सिर में साधारण दर्द होने से मनुष्य को जो चिन्ता हो जाती है, उसकी दशमांश चिन्ता दूसरों के लड़कों का कष्ट देख कर नहीं उत्पन्न होती। अपने लड़के की थोड़ी सी भी बीमारी का ध्यान उसे सदाही लगा रहता है। पर दूसरे के लड़कों को अधिक बीमार जान कर भी वह बात उसके चित्त से आप ही आप उतर जाती है; उसका स्मरणही नहीं रहता।

दुर्भाग्यवश मनुष्य में आत्मस्नेह की मात्रा आवश्यकता से बहुत विशेष है। इसका कारण संसारपरिचालन का प्राकृतिक नियम है। ईश्वर के संसार रूपी रथ के दोनों पहिये, आत्मरक्षण और वंशोत्पादन नामक दो प्रबल वासनायें, हैं। इन्हीं दोनों वासनाओं के सहारे वह बाज़ीगर इस संसार को दारुयोषित् कीभाँति नचाता है। सारे जलचरों, थलचरों और नभचरों के सभी कामों में ये दोनों वासनायें सबसे अधिक बलवती होती हैं। इनका प्रभाव प्रत्यक्ष देख पड़ता है। आत्मरक्षावाली वासना के बिना समस्त संसार चुटकी बजाते नष्ट हो जाय। और वंशोत्पादन-

वाली वासना यदि जीवधारियों में न रहे तो यह जगत दूसरी पीढ़ी का मुँह न देख सके। हमारा उत्कट आत्मस्नेह इन्हीं दोनों प्रबल वासनाओं का औरस पुत्र है। हम अपने भाई का स्नेह करते हैं, क्योंकि वह हमारे ही माता-पिता का पुत्र है। और हम अपने पुत्र का स्नेह इस कारण करते हैं कि वह स्वयं हमाराही पुत्र है। अतः साधारण रीति पर भ्रातृस्नेह और पुत्रस्नेह में इतना अन्तर स्वभाव हो से होना चाहिए जितना कि पितृस्नेह और आत्मस्नेह में है। भतीजों का स्नेह तो इस कारण होता है कि वे पिता के पुत्र के पुत्र हैं। तब पुत्रस्नेह और भ्रातृस्नेह में स्वभावतः कितना बड़ा अन्तर होना चाहिए, यह प्रकटही है। परन्तु सम्मिलित कुटुम्ब में भावगोपन की रीति ऐसी स्थिर है कि मनुष्य को विवश होकर प्रायः यह प्रकट करना पड़ता है कि वह अपने लड़कों और भतीजों को बराबर मानता और चाहता है! हम मानते हैं कि एक साथ रहने के कारण अच्छे लोग अपने भतीजों का कभो कभी इस दरजे तक प्यार करने लगते हैं जो पुत्रस्नेह से मिलता जुलता होता है; और सभी अच्छे आदमी उनका सच्चा प्यार करते हैं। पर हमारी समझ में यह बात प्रायः असम्भव है कि कोई उन्हें स्वयं अपने लड़कों ही के बराबर मानै। अतः कदाचित्ही कोई ऐसा मनुष्य हो जो उनका उसी स्नेह से लालन पालन कर सकै जैसा वह अपने लड़कों का।

बालकों के भरण पोषण में केवल सांसारिक पदार्थों ही की आवश्यकता नहीं होती। सच है---

"जेहि चितवत वश होत मन सो चितवनि कछु और"

तथा—

"रहिमन रहिला की भली जो परसै चित लाय।
परसत मन मैला करै सो मैदा जरि जाय॥"

अतः बालकों के लिए सांसारिक वस्तुओं के साथ ही साथ पितृस्नेह की भी बड़ी भारी आवश्यकता रहती है। बालक यही नहीं चाहता कि जाड़े में वह गरम वस्त्र ही ओढ़ै; परन्तु वह यह भी चाहता है कि उसे कोई हृदय से भी लगाये हो। सम्मिलित कुटुम्ब में यह दूसरे प्रकार का स्नेहमय पोषण पिता की ओर से बालकों को बहुत कम नसीब होता है। वह पैत्रिक कोमलता और सहृदयता, जो बालक को एक निकम्मे पिता से भी मिलती है, साधारण तौर पर अच्छे से भी अच्छे चचा से नहीं प्राप्त हो सकती। बालकों के लिए केवल माताही का स्नेह बस नहीं है; क्योंकि उसका प्रभुत्व केवल ज़नाने के चार कोनों ही के भीतर होता है। उसके बाहर बालकों को हृदय के अभ्यन्तर से चुचकारनेवाला कोई नहीं होता। राजा ययाति ने अपनी जेठी स्त्री देवयानी के भय से केवल एक बार अपनी कनिष्ठ स्त्री शर्मिष्ठा के पुत्र पुरु का आदर न किया, जिससे उस बालक का हृदय विदीर्ण हो गया। तब अपने पिता की अपनी ओर प्रतिदिन उपेक्षा होते देख क्या बालकों के चित्त में कुछ भी दुःख न होता होगा? हमने देखा है कि सम्मिलित कुटुम्ब के मेम्बर जिस समय अपने भतीजे-भतीजियों का लाड़ प्यार करने लगते हैं, उस समय स्वयं उन्हींके पुत्र उनको अपने से न बोलते देख मन मार कुछ दुःखित से ज़रूर हो जाते हैं। जिस मानसिक दौर्बल्य के कारण बालक एक बार भी सन्मानित न होने पर रो देता है, उसी कारण बड़े और समझदार होने पर भी उसको यह जान कर भी मनस्तुष्टि नहीं होती कि उसका पिता केवल लोकलाज से उसका सन्मान नहीं करता, यद्यपि वास्तव में उसका हृदय वात्सल्य-पूर्ण है। इस मनस्तुष्टि के अभाव में हमारा पूर्ण विश्वास है। हमने सम्पन्न कुटुम्बों के तीन यौवन-प्राप्त लड़कों से पूँछा तो उन्होंने भी हमारे इस विचार का पूर्ण रीति से समर्थन किया। उन तीनों महाशयों में से केवल एक की उम्र १७-१८ साल की थी; और शेष दो २५ से ३० वर्ष के बीच में होंगे। ये दोनोंही पूर्णतया शिक्षित हैं।

कुछ लोगों का ख़याल है कि सम्मिलित कुटुम्ब-वाले पिताओं को अपने पुत्रों के भरण पोषण, विद्या, विवाहादि में कुछ भी परिश्रम नहीं उठाना पड़ता, और अलग हो जाने पर पढ़े लिखे तैयार पुत्र उन्हें बिना कष्ट मिल जाते हैं। यह ख़याल किसी अंश में भी सच नहीं है। भाई भतीजोंवाले सम्मिलित कुटुम्बों के उन थोड़े से मेम्बरों का, जिनके पुत्र भी मौजूद हैं, यह दृढ़ मत है कि पुत्रों के पालनपोषणादि में जो कष्ट पड़ता है वह वास्तव में आनन्दाश्रु के समान है। और जिसने कभी उन अश्रुओं के सुख को नहीं भोगा, उसको उस सुख का अनुभव ही नहीं हो सकता। यह तो मानसिक सुख की बात हुई। अब यदि आप सांसारिक सुख पर ध्यान दीजिए तो १०० में ९० कुटुम्बों में आप बालक और स्त्रियां सुखी न पावेंगे। इसका मुख्य कारण वही आत्मस्नेह है। हमने सुना है कि लाला लाजपतरायजी ने दृढ़ नियम कर लिया है कि अपनी वकालत की समस्त आय वे दयानन्द कालेज को दे दिया करेंगे, और स्वयं अपना भरण-पोषण तक अपनी अन्य सम्पत्ति द्वारा करेंगे। सुनते हैं कि वे यह देवतुल्य कार्य बहुत दिनों से कर भी रहे हैं और जन्म भर उसे पूरा करने का उन्होंने निश्चय कर लिया है। हम यह भी जानते हैं कि उनका आदर-सत्कार भी देश भर में आज वैसा ही है। उस धन को अपने लिए ख़र्च करने अथवा जोड़ रखने से उक्त लाला साहब का प्रायः कुछ भी नाम न होता; पर उसी धन को कालेज में लगा देने से आज वे समस्त देश में पूज्य बुद्धि से देखे जाते हैं। अपने पूज्य पिताजी के अनुग्रह से यदि आज से हम भी लाला लाजपतरायजी की भाँति अपनी निज की आमदनी देशहितार्थ समर्पित कर दें, तो भी खाने को कोई तकलीफ़ न हो; परन्तु दुर्भाग्यवश स्वार्थ की वासना इतनी बलवती है कि हमसे ऐसा नहीं करते बनता। इसी स्वार्थ-प्राबल्य और हृदय की संकीर्णता के कारण सम्मिलित कुटुम्बों के मेम्बर दूसरे मेम्बरों के लड़कों को प्रायः ऐसे पदार्थ नहीं दे सकेंगे जो वे अपने लड़कों को देते। परिणाम यह होता है कि अनेक सम्मिलित घरानों के कार्यपरिचालक प्रायः अपने लड़कों को छिपछिपाकर जो जो पदार्थ दे देते हैं, उन्हींके लिए दूसरे मेम्बरों के लड़के तरसा करते हैं। यही दशा स्त्रियों की होती है। कहीं कहीं यह भी देखा गया है कि कार्यपरिचालक मेम्बर उदारचेता कहलाने के लालच से दूसरे मेम्बरों की स्त्री और बच्चों की तो ख़बरदारी रखते हैं; पर स्वयं अपनी स्त्री और बच्चों के साथ कृपणता का व्यवहार करते हैं। इससे उन्हें बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। पर ऐसे उदाहरण बहुत कम देख पड़ते हैं।

पैत्रिक कुटुम्ब में पिता का कोई और मन्त्री तो होता नहीं, अतः वह सभी सलाहों में पुत्रों को सम्मिलित करता है। इससे उसके पुत्रों को घर के काम काज और व्यापार-व्यवहारादिक में अधिक पैठ हो जाती है। घर में उनका अधिकार बढ़ जाता है, जिससे उनमें स्वतन्त्रता का बीजारोपण ठीक समय पर हो जाता है, और वे दब्बू चप्पू नहीं होते। हम अपनी बाल्यावस्था में एक पैत्रिक घराने के मेम्बर थे; और, अपने पूज्य पिता के स्वर्गवासी होने पर, अब ६ वर्ष से, भाई-भतीजोंवाले सम्मिलित कुटुम्ब के मेम्बर हैं। हमने देखा है कि थोड़ी उम्र में भी हमारी बात घर की सलाह में जितनी चल जाती थी, उतनी भाई भतीजोंवाले सम्मिलित कुटुम्ब के मेम्बरों* के, हमसे बड़े और अधिक विद्वान्, पुत्रों तक की नहीं चलती। कारण यह है कि ऐसे कुटुम्ब में मेम्बरों ही की सलाह होती है; उनके पुत्र सलाह में सम्मिलित किये ही नहीं जाते। 'प्राप्ते तु षोड़शी वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्" वाली कहावत पैत्रिक घरानोंही में चलती है, भाई-भतीजोंवाले सम्मिलित कुटुम्बों में नहीं। वास्तव में इस दूसरे प्रकार के सम्मिलित कुटुम्ब में पुत्रों

* ध्यान रहे कि मेम्बर हम उन्हें कहते हैं जो अदालत द्वारा अपना हिस्सा बटवा ले सकते हैं। लेखक।

का दरजा प्रायः भतीजों का सा हो जाता है; क्योंकि कोई पिता अपने पुत्र से न तो अच्छी तरह बोल चाल सकै, और न उसकी ख़बरदारी ही कर सकै। तब वात्सल्यभाव कहाँ? ऐसे घरानों में कुटुम्बी बातों में पुत्र सम्मिलित नहीं होते। अतः आपस में और घराने के बाहर उनकी अलग बातें होती हैं। कुटुम्ब की बातों से उनका मन खिन्न और हतोत्साह हो जाता है। पैत्रिक कुटुम्ब में प्रत्येक लड़के का समान सत्कार होता है। परन्तु भाई भतीजोंवाले कुटुम्ब में ऐसा नहीं होता। यदि सब मेम्बरों का भाग बराबर हुआ, और एक के अधिक लड़के हुए, तो जो लड़के गिनती में कम होते हैं वे सोचने लगते हैं कि हमारे पिता का भाग अधिक लड़कोंवाले पिता के भाग के बराबर है। फिर क्या कारण है कि हमको भी उतने ही पदार्थ मिलें जितने अधिक गिनतीवाले लड़कों को? ऐसेही यदि किसीका पिता अधिक धन पैदा करता हो तो वह सोचता है कि मेरा अधिक सम्मान होना चाहिए। इस कारण मेम्बरों के लड़कों में एक दूसरे से विरोध और ईर्षा रहती है और उनमें मेल नहीं बढ़ता। ऐसे कुटुम्ब बहुत कम होते हैं जिनमें मेम्बरों का भाग भी बराबर बराबर हो, उनके लड़के भी बराबर बराबर हों, और उनकी निज की आमदनी भी बराबर बराबर हो।

भाई-भतीजोंवाले सम्मिलित कुटुम्ब में सगे, सौतेले, चचेरे इत्यादि कई प्रकार के भाइयों के एक ही में रहने, और साधारण तौर पर उनमें स्नेहाभाव होने, से उनके चित्त में भाई शब्द उस स्नेह का बोधक नहीं रह जाता जिसका कि उसे होना चाहिए। धीरे धीरे सगे भाइयों में भी इतना प्रगाढ़ प्रेम नहीं रहता जितना कि पैत्रिक कुटुम्ब में होता है यहां तक कि कभी कभी ऐसे कुटुम्बों के लड़के बाहरी मित्रों से सगे भाइयों की अपेक्षा भी अधिक प्रीति रखते देखे गये हैं। स्वयं मेम्बरों में प्रायः प्रगाढ़ स्नेह रहता है; क्योंकि वे किसी समय पैत्रिक कुटुम्ब के मेम्बर रह चुके हैं। परन्तु जो कुटुम्ब पैत्रिक कुटुम्ब से न बनकर भाई-भतीजोंवालेही कुटुम्ब से बनता है—अर्थात् जो कुटुम्ब कभी ऐसा नहीं था जिसका एक मनुष्य अपनी सन्तान के सहित अकेलाही रहता रहा हो—उसमें प्रायः मेम्बरों में भी आपस में बेईमानी, दग़ाबाज़ी और काट छाँट की बातें पाई जाती हैं। उनके पुत्रों की तो कहनाही क्या है? ऐसे कुटुम्ब के मेम्बर स्वयंही किसी समय भाई-भतीजोंवाले कुटुम्ब के मेम्बर रह चुके हैं, अर्थात् उनमें बाल्यावस्थाही से ईर्ष्या और द्रोह वर्तमान थे। तब उनमें हार्दिक सहानुभूति कहाँ सम्भव है?

स्त्रियों का यह हाल है कि वे एक दूसरे से कुछ भी वास्ता न रखनेवाले अनेक कुलों से ला ला कर इकट्ठी कर दी जाती हैं। फिर उनमें प्राकृतिक स्नेह अथवा सहानुभूति कैसे हो सकती है? प्रत्येक मेम्बर की स्त्री भाई के कुटुम्ब में अपना प्रभुत्व जमाना चाहती है। और किसी दूसरी स्त्री से स्वाभाविक स्नेह न होने के कारण उसकी यदि सबसे मन मैली हो जाय तो आश्चर्यही क्या है? भारत के भाग्य में यह अभी कहां कि यहां की स्त्रियां सुशिक्षित हों! अतः उनमें नित नये झगड़े और बखेड़े उठते हैं। यदि मेम्बरों को सम्मिलित कुटुम्ब में रहना अभीष्ट है तो अवश्यही वे अपनी अपनी स्त्रियों पर क्रोध करेंगे। इस प्रकार दम्पति-प्रेम में अवश्य धक्का लगैगा। स्त्रियां तो समझतीं नहीं कि उनके पति के हृदय में वास्तव में वैसी कठोरता नहीं है जैसी कि उन्हें कभी कभी दिखलानी पड़ती है। बस, वे समझ बैठती हैं कि उनका प्राणनाथ उनसे समुचित प्रेम नहीं रखता। स्त्री का चित्त बड़ा दुर्बल होता है; और जब तक मनुष्य स्वाभाविक से कहीं बढ़कर प्रेम उस पर प्रकट नहीं करता, तब तक उसका चित्त प्रसन्न नहीं होता। स्वयं महात्मा भर्तृहरि उचित कर्म्मों की संख्या गिनाते हुए कह गये हैं कि "नारीजने धूर्त्तता"। पर सम्मिलित कुटुम्ब में धूर्ततापूर्वक अधिक प्रेम दिखाने की जगह वास्तविक प्रेम भी

नहीं प्रकट होने पाता। तब स्त्रियां अपने अपने पतियों से कैसे प्रसन्न रह सकती हैं? कभी कभी डाटे जाने के कारण उनके उच्च पद में भी बट्टा लग जाता है। उनकी भूलें, उनकी बातों की उपेक्षा और उनका अनादर देख कर उनके लड़के तक सोचने लगते हैं कि वे मूर्ख हैं। जिसके आत्मज तक उसे मूर्ख समझें उसको प्रसन्नता कैसे हो सकती है? और वे आत्मज उसका क्या सन्मान कर सकते हैं? सारांश यह कि स्त्रियां समझती हैं कि उनका पति उनसे प्रेम नहीं रखता, घर में उनका बहुत कम अधिकार है, और उनके पुत्र तक उन्हें नहीं दबते। इससे वे हतोत्साह और दुःखित सी रहती हैं। मनुस्मृति में लिखा है, जिस घर में स्त्रियां प्रसन्न नहीं रहतीं उस पर देवता और पितरों की कृपा नहीं होती। सो वास्तव में ऐसे घरों में, घर से बाहर तक, पूर्ण प्रसन्नता बहुत कम देखने में आती है। हतोत्साह स्त्रियां अपनी अपनी चोज़ें तो ख़ूब सञ्चित करके रखती हैं; पर, कुटुम्ब की बहुमूल्य चीज़ों की वे ज़रा भी परवा नहीं करतीं—चाहे वे आँगन में ही पड़ी पड़ी सड़ क्यों न जायँ। वहाँ "अशर्फ़ियों की लूट और कोयले पर छाप" वाली कहावत ठीक उतरती है। सारांश यह कि भाइयोंवाले कुटुम्बों में स्त्रियों की दशा बहुतही शोचनीय होती है। कदाचित् इसी दुरवस्था को देखकर गोस्वामी तुलसीदासजी ने स्त्रियों की इतनी भारी निन्दा की है कि कहते नहीं बनता—

"नारि सुभाउ साँचु कबि कहहीं।
औगुन आठ सदा उर रहहीं॥
साहस अनृत चपलता माया।
भय अविवेक असौच अदाया॥

* * * * *

"सती कीन्ह चह तहँउ दुराऊ।
देखहु नारि सुभाउ प्रभाऊ॥

* * * * *

"विधिहु न नारि हृदय गति जानी।
सकल दोष अघ अवगुनखानी॥"

हाय हाय! जो स्त्रियां लक्ष्मी का रूप, दया और सुशीलता की आकर, कोमलता की राशि और सद्गुणों का आगार होती हैं, उन्हींकी श्रीगोस्वामी जी जैसे कवि ने ऐसी अपवादपूर्ण निन्दा करना उचित समझा! कदाचित् यह इसी सम्मिलित कुटुम्बप्रणाली का फल है!!! अस्तु।

(२) इसी पुत्रों और स्त्रियों की कुदशा को देखकर प्रायः प्रत्येक मेम्बर समझने लगता है कि अमुक मेम्बर के कारण यह तकलीफ़ है और ख़ुद अपने को छोड़कर बाक़ी सब मेम्बर किसी न किसी प्रकार दोषभाजन अवश्य हैं। वह समझता है कि अमुक मेम्बर अपने पुत्रों का मेरे पुत्रों से अधिक स्नेह करता और उन्हें अधिक सुखी रखता है; अथवा मेरे पुत्र की अमुक आवश्यकता को वह पूरी नहीं करता; अथवा मेरी स्त्री दो महीने से बीमार है और उसको कोई उचित दवा नहीं करता; अथवा मेरा १५ दिन का छोटा लड़का इस कारण प्रसूतिघरही में मर गया कि और लोगों ने बुरी जगह प्रसूति का प्रवन्ध किया; अथवा दो साल का मेरा लड़का दवा पानी में अमुक मेम्बर की सुस्ती के कारण जाता रहा, इत्यादि, इत्यादि। ये, और ऐसीही ऐसी हज़ारों झूठी-सच्ची, निर्मूल, अथवा कुछ सच और कुछ अज्ञान और स्वार्थरूपी सूक्ष्मप्रदर्शक यन्त्र द्वारा अत्यन्त बढ़ी हुई, शिकायतें प्रत्येक मेम्बर के हृदय को दग्ध किया करती हैं। स्त्रियों की कानाफूसी और लज्जावश उनकी बातों की सत्यता का कोई अनुसन्धान न होना ऐसा है जिसके कारण भी मनुष्य को बड़े बड़े कष्ट सहना पड़ते हैं। इन सब बातों को प्रत्येक मेम्बर अपने हिसाब क्षमा करता चला जाता है, चाहे उसके "क्षमाभाजन" ने कोई क्षमावाला क्या, कुछ भी अनुचित काम, कियाही न हो। सम्भव है कि यदि ऐसी शिकायतों की जाँच हो तो उलटा "क्षमाभाजन" मेम्बर की ही उदारता और सहनशीलता की मात्रा अधिक निकले और उलटे क्षमा करनेवाले महाशय को ही अपनी स्त्री या लड़के

या ख़ुद अपनी भूल पर क्षमा माँगना पड़े। परन्तु लोकलाज के कारण उस बात की जाँच करे कौन? बस, प्रत्येक मेम्बर औरों के ऐसेही ऐसे "अपराध" बराबर "क्षमा" करता चला जाता है और मेम्बरों में प्रकट में तो मेल रहता है, परन्तु चित्त एक दूसरे से खिँचताही चला जाता है। यहां तक कि ऊंट की पीठ तोड़नेवाले अंतिम तिनके का अवसर एक दिन आही जाता है। तब प्रत्येक मेम्बर अपने मन में कह बैठता है कि—

"अब लैाँ सहे अमित अपराध।
अब नहिँ क्षमब नेकु पल आध।"

बस, किसी तुच्छ सी बात पर, तू तू मैं मैं की नौबत आ जाती है। उसी दिन सम्मिलित कुटुम्ब तितर बितर हो जाता है; लड़ाई दंगे खड़े हो जाते हैं; "अदालत द्वारा" अथवा "गृह द्वारा" दंड देने की विधियाँ सोची जाने लगती हैं; मुक़दमेबाज़ी में रुपया पानी ऐसा उड़ने लगता है; भाई भाई में मुँह-बोलाव नहीं रह जाता; और कुछही काल में दोनों की सम्पत्ति स्वाहा हो जाती है। देखनेवाला सोचता है कि "इन भाई भाइयों में तो बड़ा साथ था। ऐसी सड़ी हुई बात पर क्यों इतना बिगाड़ हो गया? ईश्वर की माया विचित्र है!" वह यह नहीं जानता कि सारी चमक दमक ऊपरी थी; पेट में विलक्षण ज्वाला धधक रही थी। अब यदि सोचा जाय तो इसमें दोष एक मेम्बर का नहीं। सभीने प्रकृति के अनुसार काररवाई की। परन्तु इस सम्मिलित कुटुम्ब और सब मेम्बरों की थोड़ी बहुत मूर्खता की बदौलत उनमें घोर शत्रुता होगई।

(३) यदि किसी मेम्बर की निज की आमदनी दूसरे मेम्बरों से बहुत विशेष हुई, पर उसका भाग कुटुम्ब में थोड़ा हुआ, अथवा वह कुटुम्ब का स्वच्छन्द मेम्बरही न हुआ, तो वह बड़ी कठिनाई में पड़ जाता है। यदि वह एक में रहता है तो उसकी आमदनी का एक बहुत ही छोटा अंश उसके हिस्से में पड़ता, या पड़ सकता है; और यदि वह ज़ुदा होता है तो उसके सिर व्यर्थ का अपवाद लगता है, अथवा इस दूसरी दशा में, वह अपनी पैत्रिक सम्पत्ति पा ही नहीं सकता। आगे चल कर चाहे जो कुछ हो। दुर्भाग्यवश समाज में सम्मिलित घरानों का ज़ुदा हो जाना बड़ा दोष समझा जाता है; और जो लोग, जैसे बन पड़ता है, कठिनतायें सहते, दुःख झेलते, मन मारते, हानियाँ उठाते, किसी तरह सम्मिलित दशा में चले जाते हैं, उनकी प्रशंसा भी ख़ूब होती है। पर हमारी समझ में यदि ऐसा मेम्बर कुटुम्ब से ज़ुदा हो जाय तो दूसरे मेम्बरों को, बिना किसी समुचित कारण के, उस पर कुपित न होना चाहिए। क्योंकि यदि वह अपने जन्म पर्य्यन्त की कमाई को बाँट न दे तो वह, सिर्फ़ इसी कारण से, बुरा मनुष्य कदापि नहीं हो सकता। हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि उसे भी इस बात का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए कि उसने सम्मिलित सम्पत्ति से जहाँ तक लाभ उठाया है, उसका पूरे से कुछ अधिक बदला चुका दे।

(४) सम्मिलित कुटुम्ब में एक यह भी दोष है कि यदि एक मेम्बर ५००) रुपये मासिक पैदा करता है, पर दूसरे में केवल १५) रुपये मासिक पैदा करने की योग्यता है, तो वह दूसरा मेम्बर कदाचित् कुछ भी काम न करैगा। वह बेकारही बैठा बैठा तोंद पर हाथ फेरता रहैगा। और यदि १५) रुपये मासिक की नैाकरी कहीं कर भी ली तो वह बीस पचीस रुपये मासिक ख़र्च कर देगा। अतः सम्मिलित कुटुम्बों में प्रायः बेकार मेम्बरों की संख्या बहुत हो जाती है, जिससे देश की द्रव्योत्पादक शक्ति को बहुत बड़ा धक्का लगता है।

(५) सम्मिलित कुटुम्ब में प्रायः सभी मेम्बरों की दशा अनोखी होती है। यदि बड़ा भाई अच्छा और सीधा है तो वह पैत्रिक सम्पत्ति को अपने परिश्रम से बढ़ाता है और अपने जन्म की बहुत बड़ी कमाई उसीमें लगा देता है। छोटे भाइयों का भी पालन-पोषण करके उन्हें वह समर्थ कर

देता है। परन्तु द्रव्योत्पादन के योग्य होने पर सम्भव है कि वे सारी सम्मिलित सम्पत्ति को बँटा लें; और, इस तरह, बेचारे बूढ़े बड़े भाई की जन्म भर की कमाई दबा बैठें, पर अपनी कमाई का एक पैसा भी भी उसे न दें। ऐसे ही यदि बड़ा भाई बेईमान हुआ तो वही प्रायः सारी पैत्रिक सम्पत्ति उड़ा डालता है, अथवा चालाकी से दबा लेता है। और बेचारे छोटे भाई जब बालिग़ होते हैं, तब उन्हें ज्ञान होता है कि बड़े भाई साहब की बदौलत एक सम्पन्न कुटुम्ब से वे कँगाल हो गये। यदि सम्मिलित कुटुम्ब की रीति न प्रचलित होती तो नाबालिगों के हिस्से का कोई नियमबद्ध संरक्षक सरकार से नियत हो जाता, और उनको सम्पत्ति इस प्रकार नष्ट न होने पाती। अतः सम्मिलित कुटुम्ब से बड़े और छोटे भाई दोनों की असीम हानि सम्भव है।

(६) सम्मिलित कुटुम्ब में मेम्बरों और उनके लड़कों में असत्यता की आदत के घुस आने की बहुत बड़ी आशंका रहती है। बालकों में असत्यता इस कारण बहुत घुस आती है कि प्रत्येक बालक का दर्जा भतीजे का होता है। कोई भी उन्हें पुत्र का दर्जा नहीं देता। अतः उन के अपराध बहुत कम क्षमा किये जाते हैं। जितने अपराध बाप क्षमा कर देगा, उतने चचा कभी नहीं क्षमा करेगा। और भाइयों के डर से लड़के का पिता भी उसके अपराध नहीं क्षमा कर सकता। अतः जब बालकों को चुचकार कर नहीं, वरन मार कर, उत्तम सिद्धान्त सिखाये जाते हैं, तब उन्हें अपने अवगुण और दुष्कर्म साफ़ साफ़ बता देने में बड़ा भय रहता है। इस तरह उनमें झूठ बोलने की आदत पड़ जाती है और धीरे धीरे असत्यता से उन्हें स्वाभाविक घृणा नहीं होती। अथवा यों कहिए कि वह उनमें उत्पन्न ही नहीं होने पाती। हमने देखा है कि भाइयों के कुटुम्बों में मेम्बरों के पढ़े लिखे लड़के भी झूठ बोलने में ज़रा भी नहीं हिचकते। इसी तरह प्रायः मेम्बर छिपा छिपा कर अपनी अपनी स्त्री और लड़कों को ख़ुद भी द्रव्य दिया करते हैं और प्रकट रूप से चट इनकार कर जाते हैं। फिर जो लोग अलग अलग कमाते हैं, उनमें से बहुतेरे कुछ अंश तो सम्मिलित कोष में डाल देते हैं और बाक़ी का चुपके चुपके कोलचा करते जाते हैं, अर्थात् उसे अपनेही लिए छिपा कर अलग संचित करते रहते हैं। सारांश यह कि जब तक सभी लोग सुशिक्षित, सत्यप्रिय और सत्सिद्धान्तशील न हों तब तक उनमें असत्यता और बेईमानी का घुस आना एक स्वाभाविक बात है। सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा का यह एक मात्र दोष उसे दोषी ठहराने के लिए बस है। इन्हीं कारणों से बहुत सा सम्पत्ति-पार्थक्य किसीके भी नाम से नहीं होता, जिससे पीछे को इतनी प्रचंड मुक़दमेबाज़ी होती है कि रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कोर्ट फ़ीज़, तलबाना, गवाहों का ख़र्च, वकीलों की फ़ीस, अपील, दूसरी अपील, रिविउ, निगरानी, विलायत, इत्यादि, इत्यादि, के रगड़ों में आधी सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। ऐसे मामलों में वही मेम्बर, जो दूसरे मेम्बरों के लड़कों को अपने लड़कों से अधिक समझने का भाव दिखलाता था, झूठे सच्चे गवाह अदालत में पेश करता है और उन लोगों के विषय में वह वह अपवाद लगाता है जिन्हें सुन कर दूसरों को लज्जा आती है। हिन्दू समाज में नहीं मालूम कितने मुक़दमों में सम्मिलित कुटुम्ब का झगड़ा किसी न किसी रूप में पाया जाता है।

(७) इसी सम्मिलित कुटुम्ब में रहने के कारण नहीं मालूम कितनी छोटी बड़ी तकलीफ़ें लोग उठाते हैं; अलग होते समय उनकी बदनामी होती है; और अदालत करने में प्रायः कुछ न कुछ धन भी फुँकता है। इसी कारण से लोगों को कितने ही आईनी अधिकार भी नहीं होते जो कि साधारण हिन्दुओं को प्राप्त रहते हैं,—जैसे वसीयत लिखना इत्यादि। जान पड़ता है कि इस छोटे से घनिष्ट मेल के कारणही हम लोग बड़े

बड़े मेल करने के अयोग्य हो जाते हैं। नहीं तो, वही हम लोग जो जन्म भर, नहीं कई पीढ़ियों तक, एकही में रह कर काट देते हैं, क्यों बड़ी बड़ी कम्पनियाँ खड़ी करके कारख़ाने, बैंक, रेलवे, इत्यादि, नहीं चला सकते ? पर यह सन्देह मात्र हैं, क्योंकि भारतवर्ष की जिन जातियों में सम्मिलित कुटुम्ब की प्रथा नहीं है, वे भी तो कुछ पुरुषार्थ नहीं दिखाती हैं। अस्तु।

फल यह है कि सम्मिलित कुटुम्ब की रीति से अनेक बहुत बड़ी बड़ी हानियाँ संभव हैं, और वास्तव में होती भी हैं। एक तो स्त्रियों का बड़ा अपमान और निरादर होता है और उनमें आपस में प्रायः बहुत अधिक वैमनस्य हो जाता है। बच्चों का भी समुचित लालन-पालन नहीं होता और उनकी दशा अच्छी नहीं रहती। दूसरे, विशेष करके, स्त्रियों की शिकायतें सुनते सुनते मर्दों के कान पक जाते हैं और जी ऊब जाता है। आज ज़ेवर की शिकायत, कल कपड़ों की, परसों दूसरी स्त्रियों से लड़ाई होने की, चौथे दिन बच्चों की सच्ची या झूठी दुर्दशा होने की, पाँचवें दिन और किसी बात की। बस, इसी तरह, जब देखिए, शिकायतही शिकायत की भरमार रहती है। कंगाल घरों में भोजन और सम्पन्न घरों में विशेष करके ज़ेवर की शिकायतों का तो वार पारही नहीं रहता। शिकायतें सुनते सुनते आदमियों के चित्त स्त्रियों से भी खट्टे हो जाते हैं और परस्पर एक दूसरे मेम्बरों में भी मनोमालिन्य बढ़ जाता है। क्योंकि लज्जा के मारे स्त्रियों की शिकायतों का ठीक ठीक अनुसंधान नहीं होने पाता। मर्द अपने अपने जी में कुढ़ा करते हैं और एक दूसरे की सचाई और ईमानदारी पर सन्देह करने लगते हैं, यहां तक कि, धीरे धीरे, आपस में पूरा वैमनस्य हो जाता है। झुठाई की बानि सभों में पड़ जाती है। दग़ाबाज़ी का प्रादुर्भाव हो जाता है। अपने अपने कोलचे मेम्बर लोग संचित करने लगते हैं; और एक समय ऐसा आजाता है जब किसी छोटी सी बा[त] पर वही लोग लड़ पड़ते हैं और लट्ठबाज़ी और अद[ालत]बाज़ी की शरण लेने लगते हैं, जो यह प्रक[ट] किया करते थे कि हम अपने लड़के से भतीजे को अधिक समझते हैं! ऐसे आदमियों को न सम्मिलि[त] रहने में कुछ सुख मिलता है और न जुदा होने [के] बाद। तीसरे, उन आदमियों को बड़ी कठिनत[ा] पड़ती है जिनकी आमदनी अच्छी होती है, प[र] जिनका कुटुम्ब की सम्पत्ति में बहुत थोड़ा हिस्स[ा] होता है। चौथे, अपनी योग्यतानुसार प्रत्येक मेम्बर काम करने और रुपया कमाने का उपचा[र] नहीं करता। किन्तु कम योग्यतावाले मेम्बर व्य[र्थ] घमण्डी हो जाते हैं और अपनी किसी प्रकार की ज़िम्मेदारी न जानकर आलस की शरण लेते हैं। पाँचवें, प्रायः सभी मेम्बरों की दशा बहुत नाज़ुक होती है। किसी एक मेम्बर की दग़ाबाज़ी के कारण सबकी बहुत बड़ी हानि होने की सम्भावना रहती है। छठे, लड़कों और प्रायः सभी मेम्बरों को असत्यता और ढकोसलेबाज़ी की आदत पड़ जाती है; और "साझे की खेती को गधा भी नहीं खाता" वाली कहावत के अनुसार सम्मिलित सम्पत्ति की—विशेष करके उसकी, जो स्त्रियों के सिपुर्द रहती है,—बहुत छीज हुआ करती है। सातवें, सम्भव है इसी प्रथाजनित दोषों के कारण हम लोग बड़ी बड़ी कम्पनियां नहीं चला सकते।

इस प्रथा के प्रचलित होने के कारण हम लोग ये और ऐसीही और अनेक प्रकार की हानियां सहन करते हैं, अनेक प्रकार के दुःख झेलते हैं और गृहस्थाश्रम के सुखों को मिट्टी में मिलाते हैं; पर ऐसी हानिकारी रीति का हम परित्याग नहीं करते। हमारा यह तात्पर्य्य कदापि नहीं है कि किसी कुटुम्ब को सम्मिलित दशा में रहनाही न चाहिए। पर यह हम अवश्य कहेंगे कि यह प्रथा सर्वसाधारण और सारे देश के लिए बड़ी हानिकारी है। जिन लोगों का कुटुम्ब उत्तमतापूर्वक चलता हो, उन्हें तब तक एक में रहने से को[ई]

विशेष हानि नहीं जब तक बाहर भीतर सब तरह सुमति हो; द्वेष, दम्भ, कपट, मनोमालिन्य इत्यादि का नाम न हो; सम्मिलित कुटुम्ब में रहने से किसी मेम्बर की विशेष हानि न होती हो; स्त्रियों और लड़कों में विशेष बिगाड़ न हो; मेम्बर लोग एक दूसरे पर सन्देह न करते हों; सभी लोग अपने अपने योग्यतानुसार काम करते हों; मेम्बर लोग एक दूसरे से सच बोलते और परस्पर विश्वास करते हों; और जो शिकायतें एक दूसरे के विरुद्ध अपनी अपनी स्त्रियों और लड़कों के द्वारा सुनते हों उनका, समय समय पर, एक जगह बैठकर, वे सन्तोषजनक निबटेरा कर लेते हों। तात्पर्य्य यह कि जब तक कुटुम्ब चारुरूप से सञ्चालित हो, तब तक एक में रहना चाहिए; पर ज्योंही बिगाड़ के लेशमात्र भी चिन्ह दिखाई पड़े त्यों ही वज़ादारी के साथ अलग हो जाना ही श्रेष्ठ है।

श्यामविहारी मिश्र,
शुकदेवविहारी मिश्र।

आख्यायिका।

डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है, कि नवद्वीप-नरेश बल्लालसेन के पुत्र लक्ष्मणसेन को कहीं यह शुभा हो गया कि उसके पिता का चित्त किसी वयौवना रमणी पर अनुरक्त है। राज्य के काम काज की तरफ़ बल्लालसेन का ध्यान भी उस समय बहुत कम था। इससे लक्ष्मणसेन का सन्देह और भी दृढ़ हो गया। इस पर उसने अन्योक्तिपूर्ण एक श्लोक अपने पिता को लिखा। यथा--

शैत्यं नाम गुणस्तवैव सहजः स्वाभाविकी स्वच्छता
किं ब्रूमः शुचितां भवन्ति शुचयः स्पर्शेन यस्यापरे।
किञ्चान्यत् कथयामि ते स्तुतिपदं यज्जीविनां जीवनं
त्वञ्चेन्नीचपथेन गच्छसि पयः कस्त्वां निरोद्धुं क्षमः?

हे जल, आपमें शीतलता का होना तो सहज बात है; स्वच्छता भी आप में स्वाभाविकी है; आपकी पवित्रता की क्या कहना है? आपको छूने ही से और लोग पवित्र हो जाते हैं। कौन कौन से विषय में हम आपकी स्तुति करें? आप तो जीवधारियों के प्रत्यक्ष जीवन हैं। यदि आपही नीच-मार्ग से गमन करेंगे तो आपको रोकनेवाला ही कौन है?

इसका उत्तर बल्लालसेन ने यह भेजा—

तापो नापगतस्तृषा न च कृषा धौता न धूली तनो-
र्न स्वच्छन्दमकारि कन्दकवलः का नाम केलीकथा।
दूरोत्क्षिप्तकरेण हन्त करिणा स्पृष्टा न वा पद्मिनी
प्रारब्धो मधुपैरकारणमहो झङ्कारकोलाहलः॥

शरीर का ताप नहीं गया; प्यास नहीं बुझी; बदन में लगी हुई धूल भी नहीं धुली। केलि, अर्थात् खेलकूद, की बात तो दूर रहो, स्वच्छन्दता-पूर्वक कन्द भी खाने को नहीं मिला। और कहां तक कोई कहे, कर को ऊंचा उठाकर करिवर ने पद्मिनी को छुवा तक नहीं। इस हालत में (इन अन्यायी) मधुपों ने बेफ़ायदे झङ्काररूपी कोलाहल मचा रक्खा है! इस पद्य में कई शब्द दो दो अर्थ वाले हैं; और ध्वनि के भीतर ध्वनि है। जवाब .खूब है।

पुस्तक-परीक्षा।

पञ्चगीत। कर्त्ता—सेठ कन्हैयालाल पोद्दार। दाम तीन आने। मिलने का पता पं० जेष्ठाराम मुकुन्दजी, कालबादेवी, बम्बई। श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध में वेणुगीत, गोपीगीत, युगलगीत, भ्रमरगीत और महिषीगीत—ये पाँच गीत बड़ेही मनोहर हैं। उन्हींका यह समश्लोकी अनुवाद हिन्दी में है। मूल श्लोक भी अनुवाद के साथ दिये हुए हैं। अनुवाद की भाषा में बोलचाल की भाषा और ब्रजभाषा दोनों का मिश्रण है। भाषा कुछ क्लिष्ट

है ग्रैार सरस भी कम है। एक ग्राध जगह छन्दो-भङ्ग भी है। यथा—

बिना छपे ग्रन्थ पडे कई हैं
भर्तृहरी का ग्रनुवाद भी है।

✽

भोजनविधि। कर्त्ता, नन्हेलाल मुरलीधर, सरस्वतीविलास प्रेस, नरसिंहपुर। दाम ६ ग्राने। यह १२८ पृष्ठ की पुस्तक है। इसमें ३४६ तरह की भोजनविधि का वर्णन है। रोटी, दाल, पूरी, कचौरी, तरकारी, खटाई, मिठाई ग्रादि सबका वर्णन है। ग्रमीर ग्रैार ग़रीब सबके खाने लायक़ चीज़ों के बनाने की इसमें तरकीब है। भाषा में कहीं कहीं पर दोष है। पुस्तक सस्ती ग्रैार मतलब की है।

✽

गऊ की नालिश। पण्डित जगतनारायण शर्म्मा की बनाई। धर्म्मामृत प्रेस, गिरगांव, बम्बई से २ ग्राने में प्राप्य। यह नालिश "सृष्टिकर्ता जगदीश्वर की (?) दरबार में भारत की कुदशा पर गऊ" ने की है। पुस्तक पद्य में है। गऊ ग्रैार "सृष्टिकर्ता" का सवाल-जवाब है। इसमें हिन्दू, मुसल्मान, ईसाई, पारसी सब से गोरक्षा के लिए प्रार्थना की गई है ग्रैार भूकम्प का कारण गोरक्षा का ग्रभाव ही बतलाया गया है! पुस्तक की भाषा दोषपूर्ण है। विशेष करके टिप्पणी में जो संस्कृत के प्रमाण दिये गये हैं उनकी दुर्दशा का ठिकाना नहीं है।

✽

स्वदेशवस्तु-प्रचार, नं० १०। बाबू हीरालाल-गुप्त कृत। टामसन कालेज, रुड़की में कर्ता के पास से सवा ग्राने में प्राप्य। इसका विषय इसके नाम ही से ज़ाहिर है। स्वदेशीवस्तु व्यवहार करना इस देशवालों का कर्तव्य है। विलायती खाँड के व्यवहार के प्रतिकूल इसमें ग्रनेक मान्य लोगों की सम्मतियाँ हैं। इसमें पद्य भी कुछ है। पद्य में स्वदेशी वस्तु की महिमा वर्णन की गई है। पद्य की कई सतरें सरस्वती से ले ली गई हैं; पर भूल से उसका नाम देना रह गया है।

✽

स्वदेशबान्धव। इस नाम का एक मासिकपत्र एप्रिल १९०५ से, राजपूत एंग्लो-ग्रोरियंटल प्रेस ग्रागरा, से निकलता है। इसकी सालाना क़ीमत सिर्फ़ ११ ग्राने है; इसमें डाक महसूल भी शामिल है। इसके हर ग्रङ्क में, छोटे साँचे के १६ पृष्ठ रहते हैं। इसकी भाषा सबके समझने लायक़ होती है। लेख भी इसके कोई कोई ख़ूब उपयोगी होते हैं। इसके ग्रगस्त के ग्रङ्क में "पुस्तक-प्रेम", "स्वदेश प्रेम" ग्रैार "कसरत" ग्रच्छे लेख हैं। यह पत्र सस्ता ग्रैार उपादेय है। यदि स्कूलों के लड़के इसे पढ़ें तो उन्हें इससे बहुत लाभ हो।

✽

ग्रनाथरक्षक। यह "श्रीमद्दयानन्द-ग्रनाथालय ग्रजमेर, का मासिकपत्र" है। इसे निकलते को तीन वर्ष हुए। साल-भर इसे लेने से १ रुपया देना पड़ता है। इसके तीसरे भाग का दसवां ग्रङ्क हमारे पास समालोचना के लिए ग्राया है। उसमें ग्रनाथालय ग्रैार ग्रार्यसमाज से सम्बन्ध रखनेवाले ही लेख ग्रैार समाचार ग्रधिक हैं। एक लेख इस ग्रङ्क में, जो लण्डन की जीव-जन्तुशाला के विषय में है, बहुत मनोरञ्जक है।